

नेनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-यूज्यभी-घासीणामजी-महाराज-  
विरचितयाऽऽभाचारविन्तामणि-न्यास्यया समम्कृतं

हिन्दीगुर्जरभाषाऽनुवादसहितम्-

# आचाराङ्गसूत्रम् ।

ACHARANGA SUTRA

( तृतीयो भाग अध्या० ५-९ )

[ प्रथमः श्रुतस्कन्धः ]

नियोगः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-  
पण्डित-मुनिश्रीकन्हैयालालजी-महाराज

प्रकाशक

अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखाः  
श्रेष्ठि-श्री-शान्तिनाथलाल-सङ्गलदामभाई-महोदय  
मु० राजकोट

भणवातु ठेकाणु

श्री. अ. ला. प्रवे स्थानकेवासी

बैन शा ओ द्वा २ स मि ति

श्रीन बोज पाणे, राजकोट

\*

प्रथम आवृत्ति : अत १०००

वीर सप्तत : २४८३

विक्रम सप्तत : २०१३

ध्रुवी सप्तत १६५७

\*

मुद्रक

भणुलाल छगनलाल शाह

धी नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस

बीकानेर रोड : अमहावाह

રૂ. ૧૦,૦૦૦] આપનાર આદ્ય સુરભ્રી  
સમિતિના પ્રમુખ દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મગજદારશાહ  
અમદાવાદ.

---

---

श्री-वर्धमान-अमल-सधना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामल महाराजश्रीये

आपेक्ष

## सभमतिपत्र

\*

उपसंत

पूज्य श्री वासीदासल महाराज-रचित

नील सूत्रोनी टीका भाटे तेजोश्रीना मतम्बे

\*

तेमल

अन्य महात्मज्जे महासतीलज्जे, अचतन-पद्धतिवाण्य केलेल्या प्रोफेसरा

तेमल

शास्त्रज्ञ आचर्यना अविभागे

ठे श्रीन बोळ पासे  
जरीया कुवाणेद  
राजकेद : सौसपू

}

श्री अचिद भारत रवे. स्वा. देन  
शास्त्रोपार समिति

---

---

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी  
 महाराज तथा न्याय व्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
 श्रीहेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओका दिया हुआ  
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

### सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-नंबवच्छर २४५८ आसोट्ठि

( पुण्णमासी ) १५ सुक्कमारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचदेण य पडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-  
 सगसुत्तस्स अगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंत  
 सुया, समीईण, इय वित्ती जहाणाम तहा गुणेवि धारेट्ठ, मच्चं अगाराण तु उमा  
 जोवण ( सज्जमजीवण ) दाई एव अत्थि । वित्तिरुत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-  
 सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सायणविसेसप्रम्मो, णयसियवायवाओ,  
 कम्मपुरिसद्ववाओ, समणोवासयस्स वम्मददया य, इच्चाडविसया अस्सि फुडरीट्ठओ  
 वण्णिया, जेण कत्तणो पडिहाए सुटुप्पयारेण परिचओ होह, तह इह्हासदिट्ठिओवि  
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण-भरद्ववासस्स य कत्तुणा विसय-  
 प्पयारेण चित्त चित्थिय, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए  
 भासीण य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्ज  
 परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्यभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
 लाहप्ययं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो  
 अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चतपरिस्समेण जइणजणतोवरिअसीमो-  
 वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,  
 जेसिं पहावओ वा गहणाओ आयो निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ  
 पुरिसक्कारपरकमवाओ य अपस्समेव दंसणिज्जो, किं बहुणा इमीए वित्तीए पत्तेय-  
 विसयस्स फुडसहेहिं वण्णं कय, जह अनोवि एवं अम्हाण पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं  
 भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तहा सचस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ-

उवज्जाय--जइणमुणि--आयाराम,-पंचनईओ,

## सम्मतिपत्र

( मापान्तर )

श्री बोरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ला ( पूर्णिमा ) १५ शुक्रवार छधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिभी घासीलाल-जीकी रबी हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक गीका पंडित मूलचन्द्रजी ब्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सब यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-संयमरूप जीवनको देनवाली-ही है। गीकाकारने मूलसूत्र क भाषको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा आबकका सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस गीकामें अच्छे रंगसे बतलाया है। स्यादादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-घाद और आबकको धर्मके अन्दर दड़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें मलीमांति किया है। इससे गीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भ्रमण भगवान महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहल्ली पर था ? और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा ? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंका भी पुग लाभ होगा, क्योंकि गीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका फल लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। गीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भाषसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें आबको ( गृहस्थों ) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः गीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें आबकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षकर अधिकारी होता है, तथा अधिकार्यताबाद और पुरुषकार

पराक्रमवाद हरणकको अवश्य देखना चाहिये । कहां तक कहें उम टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं । हमारी सुसंप्राय ( सोई हुईसी ) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञानचारित्र तथा श्रीसधका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.

✽

इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा ५० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिने हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी सस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं । आप जैसे व्यक्ति-योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है । आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है ।

वि सं १९८९ मा आश्विन  
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.

✽

श्री ज्ञातापरमकथा मूत्र की 'अनगारधर्माश्रुतवर्षिणी' टीका पर  
 जैनद्विषाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य धर्मेय  
 भैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माश्रुत-वर्षिणी'  
 टीका पाठे श्री ज्ञातापरमकथा मूत्रका मुनिश्री रत्नघन्टजीसे आद्योपान्त  
 भवण किया।

यह निःसन्देह करना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी  
 म ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें मूलक शब्दका सामानिक अर्थ  
 और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवरण आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल  
 स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा  
 असाधारण सभी संस्कृत पाठकोंको काम होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायमेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे हृदिकारके परिश्रम  
 को सफल बना कर धार्मिकों ही गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित  
 करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमानजी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की  
 ओ सम्मति है वह इस पत्रके माध्यम से भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म ठामे ६ सुखशान्तिसे विराजत हैं।  
 पूज्य श्री घासीलालजी म सा ठामे ४ को हमारी ओरसे पन्धना अर्पणकर  
 सुखवाता पुछें।

पूज्य श्री घासीलालजी म श्री का लिखा हुआ (विषाकमूत्र) महाराजश्रीजी  
 देसना चाहते हैं इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस  
 भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो बर्दास मिछे बर्दास १ कापी ऊपर मिज-  
 बाने का कष्ट करे, उपर बन्द देनेकी कृपा करे। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवृद्ध

प्यारेकाल जैन



जैनागमचारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर

### सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री वासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरञ्जक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

मैं आशा करता हू कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति पठन-द्वारा जैनागम सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर ग्रहास्त्री बनेंगे।

वि. सं. २००२

मृगसर सुदि १

}

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम  
लुधियाना (पंजाब) शुभमस्तु ॥

\*

वीकानेरवाळा समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियानो अभिप्राय-

\*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है।  
इससे जैन जनताको काफी लाभ पहुंचेगा।

( ता. २८-३-५६ना पत्रमायी )

॥ श्रीः ॥

जैनागमचारिणि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-  
 महारामानी पञ्चनद-(पंजाब) स्वानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
 मर्थबोधिनीनामफटीकायामिदम्-

### सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री चासीलालमुनिभिः सङ्गृहिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-  
 बोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिस्ययोगपूर्वकं सफलाऽपि स्पष्टिष्यन्तेनाऽभावि मया, इयं  
 हि वृत्तिर्गुणिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं  
 य प्रयत्नो व्यथायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानैरिति त । यथा वेद्यं वृत्ति-  
 सरला सुबोधिनी च तथा सारवस्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु  
 मिर्निर्वाणपदमनुसरन्निर्वाण-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः भाषकैश्च ज्ञान-  
 दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्यान्त्येऽप्यास्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आश्वासे श्रीमदाशुकरिर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीशुपां विदुषां मनस्तोपाय  
 जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्यं सरलाः  
 सुस्पष्टाश्च वृत्तिर्बोधाय तांस्तान् सूत्रप्रम्यान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिभय सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां  
 सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाययिष्यन्त्यवश्यं मुयोग्या इमनिमाः पाठकाः । ”  
 इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२  
 भाष्यकृष्णा प्रतिपदा  
 लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनि

( श्री दशवैकालिकमूत्रका सम्मतिपत्र )

॥ श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम् ।

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलाछेण विरइया सक्कय-हिंदी-भाषाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमजूसा वित्ती अवलो-हया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्धान अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाण पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ । आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुच्च उल्लेहो कडो, तथा अहिंसाए सरूव जे जहा-तहा न जाणनि तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कड, तथा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय जुत्ता सिज्जइ । सक्कयछाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठवा । अम्हाण समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सन्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं ? उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोगो भवित्ता पुणो निब्बाणं पाविहिइ अओहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन-  
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले  
( अलवरस्टेट )

इ-  
उवज्जाय-जइण-मुणी, आयारामो  
( पचनईओ )

ऐसे ही :-

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है ।

निरयाबलिकासूत्रका सम्मतिपत्र  
 आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतंत्र जैनाचार्य पूज्यश्री  
 आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुआ  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयाबलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनका शिष्य पं श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं । कृपया एक कोपी निरयाबलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।।

भवदीय

गुजरमल-पल्लवतराय जैन

॥ सम्मति ॥

( लेखक जैनमुनि पंडित श्री हेमचन्द्रजी महाराज )

सुन्दरशोचिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादमहिंसा च श्रीनिरयाबलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधमां शोषकारकं भविष्यतीति सुदृढमेजमिमत्तम्, मस्कृतटीकेय मरला सुशोषा सुललिता चान एष अन्यर्धनाम्नी चाप्यस्ति । सुविधादत्त्यात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्गोषपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकेषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाषिनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतदुभाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवतामिति सम्यक् संभाषयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-धामीलालजी-महाराजानां परिभ्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादाहौभ ते मुनिमत्तमाः । एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्री-कन्हैयालालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावभाषियानुक्तमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोपोऽपि दत्तः स्यात्सहिं वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावद्वक्तां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्यांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिभ्रमं सफलपिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्ममूषण  
महान् विद्वान् संतोए तेमज चिद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी  
छे तेमना नामो नीचे ममाणे छे-

- (१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के  
मडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १०००८ श्री उपाध्याय श्री  
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १०००७ तच्छिष्य  
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न श्री  
१००८ श्री भागचंदजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७  
श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खिचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८  
श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज
- (४) बालाचोर-ता १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री  
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.
- (५) घम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री  
कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत् चञ्चल श्री १००८ जैनदिवाकर  
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यमेयी  
श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित  
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७  
श्री सोमागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-  
स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परममतापी पंजावकेशरी श्री  
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सेलाना-ता २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान्  
रतन्मालजी डोसी

(११) म्बीचन-ता ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुभाषक  
श्रीयुक् माधवलालजी

सादर जय जिनेन्द्र

आपका मेजा हुआ उपासकदर्शांग सूत्र तथा पत्र मिला यहाँ विरा-  
जित प्रबर्नक षयोवृद्ध श्री १०८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री  
किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुम्ब प्रांति में विराजमान हैं  
आपके यहाँ विराजित जैनशास्त्राचार्य पूष्यपाद श्री १००८ श्री  
घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नभ से हमारी वन्दना भर्ज कर  
सुख प्रांति पूछे, आपने उपासकदर्शांग सूत्र क विषय में यहाँ  
विराजित मुमिषरों की सम्मति मंगाई उसके विषय में वक्ता  
श्री मोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी  
समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र  
की वृत्ति रचनका साइस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा  
अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त  
उपयोगी तो यों है ही संस्कृत प्रोक्त हिंदी और गुजराती भाषा होने से  
चारों भाषा बाछे एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैन समाज  
में ऐसे विद्वानों का गौरव पढे यही शुभ कामना है। आशा है कि  
स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करमा सीखेगा।

योग्य लिखे शेष शुभ

मबदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

भागरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोपमलजी  
महाराज व पंडितरत्न सुष्पात्प्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी  
महाराज ने हम पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-  
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है, वास्तवमें ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी ।

\*

ता. २९-११-३६

अम्बाला (पजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-  
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई  
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।  
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।  
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों  
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ  
सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

शास्त्रमाधी बैराम्यमूर्ति त्स्वचारिणि, वैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर भी भी १००८ भी स्वचदमी महाराज साहेबने सूत्र भी उपासकदशाज्ञी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीठाकनी महाराज ने उपासक-दशाज्ञ सूत्रकी टीका स्विसमे में बडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार मत्येक सुभोषी संशोधनपूर्वक सरल गीका और शुद्धहिन्दी अनुवाद होने से भगवान निर्दोषों के प्रयत्नों के अपूर्व रस का नाम मिल सकता है।

•

वासुदेव से भारतरत्न अतापधानी पंडित मुनि भी १० ८ भी रतनचन्द्रजी महाराज फरमाते हैं कि—

उचरोत्तर जोतां मूल सूत्रकी संस्कृत टीकाओ रचरामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्णे छे, जे स्थानकवासी समाज माने मगकरी लेषा जेषु छे, पन्नी करवाचीना भी संघे सारा कामठ्ठमां अमे सारा टाईपमां पुस्तक छयावी प्रगट कर्णु छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छ

•

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि भी नानचन्द्रजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है मयात्त अच्छा है।

•

स्वीडन से स्पचिर क्रियापात्र मुनि भी रतनचन्द्रजी महाराज और पंडित रत्न मुनिभी समर्थमम्जनी महाराजभी फरमाते हैं कि—विद्वान् महारामा पुरुषोका मयात्त सराहनीय है, जैनागम भीमद् उपादशास्त्रसूत्र की गीका, एष ठमकी परम सुशोषनी शुद्ध हिन्दी माया बडी हो सुन्दरता से मिली है।

•



श्री वीतरागय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जे-  
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शान्त्र मास्टर  
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, गतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा  
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवामी जैनाचार्यने  
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह  
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना  
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान  
करे ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहे और  
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन  
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

## इतरपारी बाजार

नागपुर ता १९-१२-५६

प्रखर बिद्वान् जैनाचार्य मुनिराज भी चासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्वारा हुआ और हो रहा है सचमुच मन्सराज भी का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढ़ा, पढ़ कर बिद्वान् मुनिराजभी की शुद्ध अद्वैत या छेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पड़ी।

वास्तव में मुनिराज भी जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा हथकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता यह सभी समाज को अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर गृह गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



## શ્રી દશવકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતત્ર લીનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહાગળે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

✽

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ વ્યાસ (નાગોર મારવાડવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ધાનીલાલજી મુનિ વિરચિત સ્મૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવકાલિક સૂત્રની આચારમણિમળૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર ણની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને નમનવવામા આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ જુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો છટ્કો કરેલ છે જે આધુનિક-મતાવલખી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામા પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શુ વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક ગીણ વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સમ્મતિ છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદજોડ સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ વધારે શુ કહેવું? અમારી ગમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમત્રાય—સુતેલો સમાજ અને હુમત્રાય એટલે લોપ યામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અમે વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૬૦ ફાલ્ગુન શુકલ } ઈઈ  
તેરસ મગળવાર }  
(અલવર સ્ટેટ )

ઉવજ્ઞાય જઈણી  
સુણી આચારામો  
પંચનઈઓ

શ્રી ૧૦૦૦] આપનાર આદ્ય મુરુગીશ્રી



શ્રી ૧૦૦૦] આપનાર આદ્ય મુરુગીશ્રી  
ભાષ્ય પદ

## શ્રી દશવક્રલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતત્ર જ્ઞાનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

✽

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ વ્યાસ (નાગૌર મારવાડવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવક્રલિક સૂત્રની આચારમણિમજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર બની છે તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામાં આવેલ છે

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો છંદોબ કરેલ છે જે આધુનિક-મતાવલખી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે ‘અહિંસા શુ વસ્તુ છે’ તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમાં એક ખીલ વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદોછેહ સુખોપદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાણીએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ વધારે શુ કહેવું? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુસપ્રાય—સુતેલો સમાજ અને હુસપ્રાય એટલે હોપ પામેલું સાહિત્ય એ બંનેનો ફરીથી ઉદય થશે અમે વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૬૦ ક્રાશ્વન શુકલ } ઈઈ  
તેરસ મગળવાર }  
(અલવર સ્ટેટ )

ઉવજગ્રામ જઈણી  
મુણી આચારામે  
પ ચનઈઓ

इ. २००७ आपनार आद्य सुरक्षीभी



श्री क हर अ य द हा णी दा नु वा ही आ  
सा ष प द

અમલ્ય સંઘના પ્રનારમત્રી પૂજ્યબહેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચ દેહ મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શબ્દોને માટે મળેલા અભિપ્રાય.

\*

શાસ્ત્રોદ્દાસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રચરિત્રિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્દારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જરૂને મળ્યુત ઠરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જરૂરીથી જરૂરી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શુભજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇન્દ્રવરલાલ મહારાજ સાહેબના

## સૂત્રો સખ ઘે વિચારો

નમામિ વીર ત્રિસ્તારધીર

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવરશ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનેયાલાલ મહારાજ આદિ શાસ્ત્રા છત્રી સેવામાં—

બમલાવાદ શાસ્ત્રપુર ઉચાશ્રવણી મુનિ દેવાનદેહના ૧૮ પ્રહિષાત.

આપ સવે શાસ્ત્રાઓ સુખ સમાધિમાં હરો નિરતર ધર્મધ્યાન ધર્માશ ધનામાં લીન હરો.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકલિક તથા આચાર્યમ કોક કોક ભાગ જાહી છે ટીકા પુખ સુદર, સરળ અને પંડિતજનેને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વિનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તે આવકજન્ય તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્ય શુરુદેવને આજે શોવીયો ઉત્તરાભ્યે છે અને સાહુ છે એજ.

આસો શુદ્ધ ૧૦, મંગળવાર તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇષ્ટ્યો,

દયામુનિના પ્રહિષાત.

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચિંદણ મહારાજનો અભિપ્રાય  
શ્રી

રાણપુર તા ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘામીલાલજી મહારાજ આદિ  
મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ આપના  
પ્રકાશિત થયેલા કેટલાક સૂત્રો એવા જોયા સુદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ  
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્રપ્રકાશનનું કામ  
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત  
થાય એજ અભ્યર્થના.

લી પંડિતરત્ન બાળપ્રદ્યારી  
પૂં શ્રી ભાઈચિંદ મહારાજની  
આજ્ઞાનુમાર શાન્તિમુનીના  
પાયવદન સ્વીકારશે.

\*

તા ૧૧-૫-૫૬

વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનવ્યદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના  
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.  
ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્કૃત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘામીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર  
અને સરળ લખામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ  
સમય જોઈને મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી છતાં જેટલું સાહિત્ય  
જોઈયું છે, તે બહુ જ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને  
અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદાળુ જીવોને વાચવા યોગ્ય છે આમાં  
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દંડતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે  
આચાર્યશ્રી અર્પૂં પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.

સુ ખીચન.

\*



## હી મઠી સપ્રદામના સદાનદી મુનિમી ઊટાલાલ

મહારાજનો જ્ઞાપિપ્રાથ

શ્રી વીતસમદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીથ કર-નામ-ગ્રોત્ર વ્યાખ્યાનુ નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામા સદામ કરનાર, અને તેને જ્ઞાનમોહન આપનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષમ કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી અને છે શાસ્ત્રસ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલ મહારાજ પોતે અધિધાન્તપદ્યે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગેમા પણ કરી શકા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે વહનીય છે તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ખજસ ધણા પ્રમાદિઓને જ્ઞાનકર્ણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલ મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અધિધાન્ત પ્રવૃત્ત કરે છે તેમજ-શાસ્ત્રોદારસમિતિના કથવાહકો પણ જેમા સદામ કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી શકેલ છે તે પણ અરેખર ધન્યવાદના પૂજ્ય અધિકારી છે

જે સમિતિના કાર્યકરોને મારી જોઈ સુચના છે કે —

શાસ્ત્રોદાર પ્રવર પઠિત અપ્રમાદી સત ધાસીલાલ મહારાજ ન શાસ્ત્રોદારનું કામ કરી શકેલ છે તેમા સદામ કરવા માટે-પઠિતો વિવેચના માટે જે પર્ષો ધર્ષ શકેલ છે તેને પદોચીજળવા માટે સારૂ સરખુ ફડ જોઈએ જેમા માટે મારી જે સુચના છે કે:-શાસ્ત્રોદારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જે જની શકે તે પ્રમુખ પેલે અને બીજા જે ત્રણ વળુઓ મુજબત, સૌશ્ચ, અને કમ્પમા પ્રવાસ કરી મેળવે જનાવે અને આર્થિક સદામ મેળવે

જે કે અધ્યાત્મી પરિસ્થિતિ વિષમ છે આપારીએ, ધધારીઓને પેતાના અવહાર સામવવા પણ મુશ્કેલ જન્યા છે છતાં જે સભવિત મુશ્કેલી પ્રવાસે નીકળે તેા જરૂર કામ સફળ કરે જેવી મને મદદ છે

આર્થિક અનુકૂળતા ધવાધી શાસ્ત્રોદારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી ધર્ષ શકે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલ મહારાજ નાં મુધી આ તરફ વિધરે છે ત્યાં મુધીમા જોમની જ્ઞાનશક્તિને જેટલો લાભ હેવાય તેટલો લર્ષ હેવો કથાય સૌશ્ચમા વધુ વખત શહેવાધી તેમને હવે જહાર વિહરજની ઇચ્છા મતી હોય તેા શાન્તિભાઈશિકે પેવાએ વિનિતિ કરી અમદાવાદ પધારખ, અને ત્યા અનુકૂળતા મુજબ જે-ત્રણ જની સ્થિસ્તા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદારનું કામ પૂજ્ય કરવી હેનું જોઈએ

ધેાધ વજતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદારશ્રીટી મજબની છે તે વજતે ઉપરની સુચના વિચારાય તેા ઠીક

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વાર વાર અભિનંદન છે શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે હૈં અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીબડી } લી  
સ ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી જૈનમુનિ છેટાલાલજી

\*

### શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચ દ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમજ આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાયું છે, આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુદર છે સસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમાં પરિતરન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભર્ગીરથકાર્ય શીઘ્ર સંકળ ધાય એ જ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ }  
તા ૨૨-૪-૫૬ સ્વીવાર } સુનિ પુનમચ દ્રજી  
મહાવીર જયતિ }

\*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય  
લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગજાસભાઈ  
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત ટ્રેવેલ સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
સુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈઠીના સૂત્રોમાથી ઉપાસકદશાગસૂત્ર, આચારાગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવેદિકાલિકાસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને સુબજાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને જ્ઞાનુજ્ઞ જતીને પણ જ લાભદાયક છે તે વાચન બહુ જ સુદર અને મનોરમ છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અગત્ય પુસ્તકો કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને ખત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને પણ લાભવું કારણ છે

હવે સમાજ પુસ્તિકાઓ આત્માઓ સ્વપરના લેદથી નિખાલસ ભાવનાઓ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ઝીરવ લેવા જેવું છે દરેક જાતના આત્માઓને સૂચન કરું કે આ સૂત્રો પાત-પોતાના ઘરમાં વસાવાતી સુદર વાકને ચુકસો તકિ કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપર ધરાને પુસ્તિકા સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને અપથી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ કરી રહ્યા છે તેમ મદદ નિર્ભરવું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એ જ

શ્રી શારદાબાઈ સ્વામી

અગત્ય સંપ્રદાય.

\*

### બરવાળા સુપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીશ્રી મેઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

૫ મુકા વા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શ્રી ગાન્ધીલાલ મજાણસભાઈ

પ્રમુખ જી. આ. ટ્રસ્ટે સ્વા. જૈનશાસ્ત્રોદાર સમિતિ

સુ. ૧૧૪૭૮૮

અત્રે બીજાના સુ સુબના બહાર મહાસતીશ્રી વિદુષી મેઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિશ્રીઓ અને સુપ્રદાયમાં બીજાને છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધમ આન કરશે જોજ આશ છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહાસત્જી શ્રી શાસીલાલશ્રી મહાગાળના સ્વેલાં સૂત્રો બાઈ પાપટ ધનજીબાઈ વરુશી લેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આધોપન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતલજમારને ખુબ જ વૈનત બનાવનાર છે તેમ આપણી મદદ જોટલી ત્યાગશ્રી કરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ઝીરવ લેવા જેવું છે હવે સમાજ

આત્માઓ જ્ઞાનજરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન લવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુર્ણ કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ ધરવાળા સ પ્રદાયના વિદુષી

મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી

ના ફરમાનથી લી જોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધ ધુકા

સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

૨

## અદ્યતન પદ્ધતિને 'અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સ પ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારજ જૈનશાસ્ત્રોના સ સ્કૃત ટીકાખંદ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમા ભાષાતરૈ કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમા વ્યાપ્ત થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સ સ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિખળાત છે એ એમનો ટુક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સ પાઠન કરવામા તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સ પ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્રતા ઘણી ઓછી છે, તે દિગ્ગજ મૂર્તપૂજક પ્રવેતાબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમા આવતા હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું. પૂઠ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સ પ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સ સ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો મારા આપવામા આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાતરૈ પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે અને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરૈને વાચનાસ્થમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

એમ. એ.

## મુંબઈની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મળજાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા. સેનસબોદારશમિતિ,

રાજકોટ.

પૂજ્યભાઈ શ્રી ઘાસીલાલ મહાશયે તેવાર કરેલાં આચાર્યજી દર્શવેકા લિંક, આવશ્યક ઉપાસકદશ્યાજ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં આ સૂત્રા ઉપર સસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે દિ હી અને શુજરાતી ભાષાતરણ પણ આપવામાં આવ્યાં છે સસ્કૃતટીકા અને શુજરાતી તથા દિ હી ભાષાતરણ જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પસંદ જોઈ સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર પ્રથેમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુખ્ય કરી કે તેની છે શુજરાતી તથા દિ હીમાં થયેલાં ભાષાતરણમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોખપાત્ર છે જેવી વિદ્વજ્ઞ અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે જેવી જોમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે કર સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે જીન ૭ સૂત્રો લખાઈને તેવાર થઈ ગયા છે આ બધાં જ સૂત્રો અચારે જોમને હાથે તેવાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જીન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ બહારો જોમાં સરથ નથી. આચાર્યશ્રી આ મહાન કર્મને જીનસમાજને વિશેષતા જ્ઞાનકવાસી સમાજનો સપૂણ સહકાર સાંપડી રહેશે જેવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ શીમનલાલ શાહ

સેન્ટ ગ્રેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ

સોફીયા કોલેજ મુંબઈ



રાજકોટ ધર્મે દ્રષ્ટિ હજી કોલેજના પ્રોફેસર આદેખનો અભિપ્રાય

જ્ઞમહાલ

ભગવાન પ પ્લોટ

રાજકોટ તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યભાઈ ૫ મુનિશી ઘાસીલાલ મહાશય આ? જીનસમાજ માટે જોઈ જોવા હાઈમાં અમ થયેલા છે કે જે સમાજ માટે જટુ ઉપયોગી થઈ પડશે મુનિશીએ તેવાર કરેલા આચાર્યજી, દર્શવેકાલિક શ્રી વિપાકમુત વિ. મે જોયાં

આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાળુ જણાઈ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અબ્બણી નથી. આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૃ ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આઠ્યાત્મકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, ચરણ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા આવ્યાં છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમજ જીવન સૂત્રોમા વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમા વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા મુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલી શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો રસિકલાલ કરતુરચંદ ગાંધી  
એમ એ એલ એલ બી  
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ  
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

\*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ બિનાસર કોન્ફેરન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ સશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદહી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દોષરેખ નીચે આ મા એ સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા અચાર્યમત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ ઠામદાર એમ. એ. પોતાનું અવિસ્તર પ્રભાષણ આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદાર કમિટીના કામને આ સંબંધે તથા કેન્દ્રોત્પન્ન હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને બધાં બધાં અને જે જે જગ્યા પડે-પાંડિતની અને નાણાની પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને બહાર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા પ્રગટ છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને બધારે આટલી જાંબી પ્રગણાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કેન્દ્રોત્પન્ન પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ તુરી હોય તે પૈ ૨ શ્રી વાસીલાલજી મહાસજની સાનિધ્યમાં જઈ જતાવીને સુખાસ્વા પ્રથલ કરવો આ કામને દલ્દે બહાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે બેવા પ્રમુખ સાહેબને બહામણ કરે છે.

(સ્વા. જૈન પત્ર વા. ૪-૫-૫૬)



સ્વતંત્રવિચારક અને નિરૂપક લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના ત્રીજી  
શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. વાસીલાલજી મહાસજને સૌજન્યમાં બોલાવી તેમની પાસે જતીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની દિલચાલ ચાલવી હતી ત્યારે તે દિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાહેબે મારે પત્રબ્યવહાર વાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સમ્રજ્ઞમા યુનિ.શ્રી વાસીલાલ મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન યુનિ. બેજામાં આવતા નથી. હાંની તપાસને જતે મેં યુનિ.શ્રી વાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે.

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પિતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. આપણે તેમજ યુનિ.એ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાનવર્યા પણ હતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીનો પસંદગી થવાય જ હોય એમાં

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાત્રી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહાગજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આજુ સૂત્ર સર-જતાથી સમજાય છે

કેટલાકને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું કામ આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં ( અર્ધમાગધી ભાષામાં ) સૂત્રો બનાવેલા છે. એટલે સૂત્રો વાચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણા સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાચવા.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બાંજા છ સૂત્રો લખા-યેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુએ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫



३। परंपरु आपनार खाद्य सुरक्षीकी



डोरा की परगो वि ह बा छी ले थ ह  
गल डोर

## શ્રુત-મઠિત

(પૂં આચાર્ય શ્રી ધાર્મીલાલજી મં સાંની આજી અનુસાર લખનાર)

૬ સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદેશ પરમપૂજ્ય, જ્ઞાનદિવાકર પં મુનિશ્રી ધાર્મીલાલજી મં ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુચર, અનુપમ ન્યાય મુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક ચરમ શાંતળ વાણીના શ્રોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સસ્કૃત્યશિ અનેક ભાષાના પ્રખર પદ્ધિ છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાથ ટીકા, વિસ્તૃત, વિવરણ સાથે પ્રકાશમા લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે

બ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમનો વાણી રૂપે અક્ષરરેહ જણુધર મહારાજેએ શ્રુતપરપરાએ સાક્ષવી રાખ્યો શ્રુતપર પસંથી સજવાતુ જ્ઞાન ન્યાયે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિંજણિ ક્રમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામાં તે આગમીને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અધમાગથી ભાષામાં છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવેની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા ક્રમણો અને ક્રમણીઓ તથા સુમુક્ષુ આવક શાળિકાઓ સુખપાઠ કરે છે પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા શૈલાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણા શ્રદેશ પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી જાણે છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી શૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ગણ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ધાર્મીલાલજી મહાર.એ સત્ સક્રમ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરજ પહેલી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમા સકળ જ્ઞીનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો જોઈ અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા જોઈ

બ મહાવીરને જણુધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શુ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેના પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સચ્ચાસ્ત્ય કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા અજ્ઞાનધર્મમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો દિગ્બરો અને અન્ય ધર્મિઓ કલ્પથી અને લાજો દર્શાવા જાય છે હિંદુ ધર્મમા પવિત્ર મનાતા શ્રુત ગીતાના સેકંદો નહિ પણ કલ્પથી ટીકા પ્ર થો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઉચ્ચ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ ગાઈજલના પ્રચારકો તેનું જ્ઞાનની સવ



## “ જૈનસિદ્ધાંતના ” તત્ત્વીયીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર ખઠનારી આ જોઈતી જોઈ સંસ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ ખાઠ ટીકા, ઢિંદી તથા શુભસતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાંડ્યાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ જોઈ મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા જોસ્વના વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી શુક્યાં છે હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો છપાઈ ગયાં છે અને જ જૂઠીય પ્રતિષ્ઠિ તથા નદીસુખ તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મત્રી શ્રી સાકલ્ય ઇ ભાઈચિંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આજો વખત આવે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વધેવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી પાસીલાલ મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તેમને કરે છે મુનિશ્રીને આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો જાણી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના શ્રેયસ્કર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું શોભું ઝલ્લુ આઠકું જણાય. કાજવાને કહ્યું છે કે પદ્મ પાત્ર તમો જ્યાં પહેલું સ્થાન પછી જ્યાં, જ્યાં ધર્મને ઘણાઈ સમજવો હોય તો કાજવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

જોઈલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈન પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સવ ધર્મશાન આપણ સૂત્રોમાં જ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચીને આપ જરૂરું છે

“ જૈનસિદ્ધાંત ” ધીસેમ્બર-૫૬

## શ્રી ઉપાશક દશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ ભા શ્વે સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા શાક, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ ખીજી આવૃત્તિ બેવડું (ગોઠુ) કદ પાકુ પુઠું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાનુ ઉપાશકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે એમા લગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત લગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધા તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તે જ પ્રમાણે ણીજી નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્ત્વેજ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજક સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહત્ત્વનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સળધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત્વેજ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચવું જોઈ એ, એટલું જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવવું જોઈ એ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સમતિપત્ર તથા ખીજી સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“ જૈનસિદ્ધાંત ” બા-સુઆરી-૫૭

३। ५००१) आपनार आध सुरभीश्री



(सं.) श्री ३ भारती बाई एन सुभाई  
सोसायरी

## आचारानुसूत्रके प्रथम अध्यायनकी

### विषयानुक्रमिका-

#### प्रथम उद्देश

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ अध्यायनके साथ प्रथम अध्यायनका सम्बन्धमतिपादन	१
२ प्रथम अध्यायनके छ उद्देशों में वर्णित विषयोंका सूचन	२-३
३ प्रथम सूत्र का अन्वय	३
४ प्रथम सूत्र और उसकी छाया	४
५ इस लोकमें कितनेक मनुष्य, प्रयोजन अथवा बिना प्रयोजन के प्रस-स्वावर बीबों की हिंसा करते हैं, वे दुर्गतिमागी होते हैं। वे अति तीव्र सन्दादिविषयोंकी अभिलाषा के कारण इन प्रस-स्वावर बीबों की हिंसा करते हैं और इसके फल स्वरूप उन्हें जन्म-परम के दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता; अत एव विषयों के सुखोंसे उन्हें वृत्ति भी नहीं होती। और जो अपूर्वकरण से ग्रन्थि को मिश्र कर चुके हैं वे न कर्मोंके बीचमें हैं और न बाहर ही; अपना जिन्दगी पारिम का काम कर लिया है वे न जो कर्म या संसार के मध्य में हैं और न बाहर; अपना-अर्थक्य से द्वाइशाङ्ग उपदेशक तीर्थकर मगवान् न संसार के मध्यमें हैं न उसके बाहर ही।	४-१६
६ द्वितीय सूत्र का अन्वय, द्वितीय सूत्र और छाया	१७
७ सम्यक् के प्रमाण से संसार की अज्ञानता समझनेवाले मध्य जीव अपने जीवनको वायुमन्मथि द्वाप्रस्थित अतमिन्दु के समान समझते हैं, उसी प्रकार वे बाळजीवों के जीवनको भी अतिशय समझते हैं। बाळजीव भ्रू कर्मोंको करते रहते हैं, वे उनके दुष्परिणामको नहीं समझते हैं और जन्ममरण के चक्र से कमी भी छुटकारा नहीं पाते।	१७-२६

विषय -	पृष्ठाङ्क
८ तृतीय सूत्र का अवतरण ।	२६
९ तृतीय सूत्र और छाया ।	२७
१० संशय के परिज्ञान से जीव ससार के प्रति संशयशील हो उसका परित्याग करता है, और संशय के अपरिज्ञान से जीव न तो ससार के प्रति संशयशील होता है और न उसका परित्यागही करता है ।	२७-३१
११ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र, छाया ।	३२
१२ संसारके कटुविपाकको जाननेवाले चतुर पुरुष, किसी भी प्रकारके सागारिकका सेवन नहीं करते । जो मूढ पुरुष महोद्वयसे सागारिक सेवन करते हैं, उनकी प्रथम वालता सागारिक सेवन करना है और दूसरी वालता पूछे जाने पर उसको छिपानेके लिये असत्य भाषण करना है । इस लिये प्राप्त शब्दादि विषयोंको परित्याग कर और अमाप्त विषयोंको मनसे भी चिन्तन नहीं करते हुए भव्य जीव, उन विषयोंको इहलोक और परलोकमें कटक फल देनेवाले जान कर दूसरे लोगोंको भी 'मैथुन अनासेवनीय है'—ऐसा उपदेश दें ।	३३-३५
१३ पञ्चम सूत्र और छाया ।	३५
१४ कितनेक मनुष्य रूपमें और कितनेक स्पर्शमें गृह्य हो कर नरकादि गतियों के भागी होते हैं । सावध व्यापार करनेवाले मनुष्य, इन सावधव्यापाररतत्पर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, अथवा पट्टजीवनिकार्यों में उत्पन्न होते हैं । साधु होकर भी कितनेक विषयस्पृही हो जाते हैं, फिर पापकर्मों में रत रहने लगते हैं, वे अग्रणको ही शृणु मानते हैं, कोई २ उनमें एकलविहारी भी हो जाते हैं । ये अत्यन्त क्रोध आदि दुर्गुणोंसे युक्त होते हैं, सुसाधु वननेका ढोंग करते हैं, 'मेरे दोषोंको कोई	



समझे नहीं' इसके लिये सर्वदा प्रयत्नशील होते हैं। वे भ्रान्तमत्त दोषस युक्त होनेसे धर्मके मर्मज्ञ नहीं होते। विषयकृतपापोंसे पीड़ित ये कर्म बांधनेमें दृष्ट होते हैं, साधन व्यापारोंमें लगे रहते हैं, और ये 'रत्नप्रयत्नके आराधन बिना ही मोक्ष होता है' ऐसा उपदेश देते हैं। इनका कमी भी मोक्ष नहीं होता। ये तो संसारचक्रमें ही फिँस रहते हैं।

३५-४९

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देशः ॥

- १ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धकथन
- २ प्रथम सूत्र और छाया।
- ३ इस लोकमें कितनेक पद्मजीपनिकायोंके रसक संयमी धुनि होते हैं। वे मनुष्यजन्म-मार्गज्ञेयोंको कर्मसफलका भ्रमसर समझते हैं। वे कर्मसफलके लक्ष्य अभ्येक्षण करते रहते हैं। इस सम्पत्संज्ञानचारित्र्यस्य मार्गका उपदेश तीर्थकरोंनि किया है। साधु कमी भी प्रमाद नहीं करे किसी भी जीवको आस्ताता नहीं पहुँचावे। इस संसारमें मनुष्योंकी रुचि भिन्न होती है इस लिये सुखदुःख भी सबके लिय समान नहीं है। इसलिय धुनि हिंसा मृपावाद आदिसे रहित होकर, परीपहोपसर्गोंसे स्पृष्ट होता हुआ भी उन शब्दस्पर्शादिविषय अमित परीपहोंको भीतनेका प्रयत्न करे।
- ४ द्वितीय सूत्र और छाया।
- ५ परीपहोंको भीतनेवाला धुनि क्षमितापर्याय अथवा सम्य रूपर्याय कहा जाता है। इस प्रकारका धुनि चारित्र्यमोहनी यदि अथवा हिंसादि पापकर्मोंमें आसक्त नहीं होता है। यदि उसको कमी क्षीय माधसनेपासे शुभादि रोग, या कि भातङ्क

५०

५०-५१

५१-५९

५९

- कहे जाते हैं हो जाते हैं तो वह उनकी वेदनाको शान्तिपूर्वक सहता है, और वह इस प्रकार विचारता है-यह स्वकर्मजनित वेदना पहले या पीछे मुझे ही सहनी होगी। यह शरीर विनाशशील है, विध्वंसनशील है, अशुभ है, अनित्य है, अशाश्वत है, चयापचयिक है, परिणमनशील है। अतः ऐसे शरीरको और सुकुलजन्म और बोधिलभ आदिके अवसरको पा कर तप सयम आदि द्वारा अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये। ५९-६८
- ६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ६८
- ७ शरीर की विनाशशीलता आदि देखनेवाला मुनि नरकादि गति के भागी नहीं होता है। ६९-७१
- ८ चतुर्थसूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ७१
- ९ इस लोकमें कितनेक मनुष्य परिग्रही होते हैं। थोड़ा या बहुत, अणु या स्थूल, सचित्त या अचित्त जो भी परिग्रह इनके पास होते हैं उन्हीं परिग्रहों में ये मग्न रहते हैं। यह शरीर ही किसीर को महाभयदायक होता है। मुनि, असंयमी लोगों के धन को या व्यवहार को महाभय का कारण जानकर उससे दूर रहता है। द्रव्यपरिग्रह के संबन्धके त्यागी परिग्रहजनित भय नहीं होता है॥ ७१-७५
- १० पञ्चम सूत्र और छाया ७६
- ११ निष्परिग्रह मुनि अपने कर्तव्य मार्ग में जागरूक होता है, प्रत्यक्षज्ञानियोंने ऐसे शिष्यों के लिये ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र का उपदेश किया है। इसलिये हे भव्य ! मोक्ष की ओर लक्ष्य रखकर सयममें विशेषतः पराक्रमशाली बनो। ऐसे संयमी ही ब्रह्मचारी होते हैं। यह सब मैंने तीर्थङ्कर भगवान् के मुख से सुना है, इसलिये यह सब मेरे हृदयमें स्थित है। ब्रह्मचर्यमें स्थित मनुष्य का ही बन्ध से प्रमोक्ष (छुटकारा) होता है। अथवा-ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्मों का सम्बन्ध-

रूप बन्ध और उन कर्मों से पृथक् होनास्य, प्रमोक्ष, ये दोनों अन्तःकरणमें ही हैं। आरम्भपरिग्रह या अमशस्त भाव से रहित साधु, सभी प्रकारों के परीपहों को यावज्जीवन सहे। असंयतों को तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग से बहिर्वर्षी समझे। तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग क अन्तर्वर्षी मुनि अपमत्त होकर विचर। मगवत्प्रसूति इस चारित्र का परिपालन, हे शिष्य ! तुम अच्छी तरह करो। उदश समाप्ति।

७६-८१

॥ इति द्वितीय उदश ॥



॥ अथ तृतीय उदश ॥

- १ द्वितीय उदश क साथ तृतीय उदश का संपन्ध रूपन । ८२
- २ प्रथम सूत्रका अनंतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ८२
- ३ जो कोई इस लोकमें अपरिग्रही होते है, वे संयमीजन, अन्य रूपल आदि वस्तुओंमें ममत्व के अभाव से ही अपरिग्रही होते है। मेधावी मुनि तीर्थकर आदियों की वाणी सुनकर और उसीको धर्म समझकर, तदनुसार आचरण कर क अपरिग्रही हो आता है इस मार्गमें मैंने कर्मपरम्परा दूर करने का जैसा सरल उपाय बतलाया है वैसा अन्यमार्ग में नहीं है। इसलिये इस मार्गमें स्थित मुनि अपनी शक्ति को न छिपावे । ७३-८८
- ४ द्वितीयसूत्र का अनंतरण, द्वितीयसूत्र और छाया । ८८
- ५ तीन प्रकार के लोग होते है—कोई समय ग्रहण करता है और मरणपर्यन्त पूर्वतत्परता क साथ उस निभाता है, कोई संयम ग्रहण करता है और परिपहापमग स मापित हा उसे छोड़ देता है; और कोई न समय छेता इन उस छोड़ता है। जो

संयम लेकर गृहस्थों के आश्रित होकर रहने लगता है वह भी गृहस्थ—जैसा ही है ॥

८९-९२

६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ९३

७ तीर्थकरोंने यह सब अपने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष करके कहा है। उस तीर्थङ्करोक्त प्रवचनमें व्यवस्थित मुनि, तीर्थकर के आज्ञानुसार चलनेवाला, पण्डित और स्वजन तथा विषय संबन्धी स्नेहरहित होता है; पूर्व और अपर रात्रिमें प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि सद्गुणानमें प्रयत्नशील होता है, शील के स्वरूप को जानकर उसका पालन करता है; शील के आचरण और अनाचरण के फलको सुनकर वह कामरहित और अज्ञा-रहित हो जाता है। भक्त्यों को इन ज्ञानाचरणीयादिकर्मरूप आन्तरिक शत्रुओं से ही युद्ध करना चाहिये, बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने से क्या लाभ ?

९३-१००

८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । १०१

९ परीपह आदिके साथ युद्ध करने योग्य यह औदारिक शरीर दुर्लभ है । इस संसारमें कुशल तीर्थङ्करादिकोंने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञाका विवेक कहा है । धर्मसे च्युत अज्ञानी जीव, गर्भादिमें निवासजनित दुःखका अनुभव करता है । यह विषय, आर्हत प्रवचनमें ही कहा गया है । धर्मसे च्युत जीव रूप आदिमें और हिंसा आदिमें प्रवृत्ति करता है । जो मुनि होता है वह धर्मपथमें सतत प्रवृत्त, आस्रवरहित और रत्नत्रयके अभ्यासी होता है । वह असयत लोगोंको जानता है; इस लिये वह ज्ञानाचरणीयादि कर्मोंको और उनके कारणों को अच्छी तरह ज्ञपरिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे परित्याग करता है, और वह हिंसासे सर्वथा विरत होता है, संयमी होता है, धृष्टता नहीं करता है, सभीके सुखदुःखके जाननेवाला होता है, स्वपरके कल्याणाभिलाषी होता है, मोक्षमार्गमें ही

सतत प्रवृत्त रहता है, सावधान्यसे रहित होता है, बाह्य आभ्यन्तर अभिव्यक्तके परिस्थायी हो ताई और भीनोंमें आसक्ति नहीं करता है। इस प्रकारका मुनि कोई भी सावधान्य नहीं करता है।

१०१-११५

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चमसूत्र और छाया।

११५

११ वसुमान् मुनि पदार्थज्ञानयुक्त आत्मासे संपन्न होकर, अकारणीय पापकर्मोंका अन्वेषी नहीं होता है। जो सम्यक्त्व है वही मीन है, जो मौन है वही सम्यक्त्व है—इस वस्तु को समझो। इस सम्यक्त्वका आचरण वह नहीं कर सकता है जो क्षियिल होता है, पुत्रादिकों के प्रेममें फसा रहता है, श्रद्धादि विषयों में निसक्की अभिरुचि होती है, जो प्रमादी है और जो सह स्थित है, जो इस सम्यक्त्वका आचरण करता है ऐसा मुनि सर्व सावधान्यस्वरूपपरित्यागरूप मुनिभाव को सम्पन्न प्रकार से प्रणय कर कार्मण और औदारिक आदि क्षरीरों को दूर करे। ऐसा मुनि नीर होता है, अन्तर्मात आहारको संयन करता है। ऐसा मुनि ही संसारसागर को तिरनेवाला, सूक्त और विरत कहा गया है। उद्देशसमाप्ति।

११६-१२१

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ चतुर्थ उद्देशः ॥

१ तृतीय उद्देश क साय चतुर्थ उद्देश का संबन्धकथन।

१२२

२ प्रथम सूत्र और छाया।

१२२

३ ध्यात्मानभिन्न और मन्वन्वयस्क मुनि को पक्काकी प्रामानुग्राम विहार नहीं करना चाहिये।

१२२-१२६

४ द्वितीय सूत्र और छाया।

१२७

- ५ कोई कोई एकाकि-विहारी मुनि, गृहस्थोंसे शिक्षावचनद्वारा उपदिष्ट होनेपर भी क्रुपित हो जाता है। ऐसा अभिमानी मुनि महामोहसे युक्त होता है। इसको विविध प्रकारके परीपहोप-सर्गजनित वेदनाओंका अनुभव करना पडता है, इसलिये विवेकी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये। उसे तो भगवान्‌के कथनानुसार गुरूकी आज्ञामें रहते हुए सावधानताके साथ विहार करना चाहिये। १२६-१३२
- ६ तृतीय सूत्र और छाया। १३३
- ७ आचार्यके आज्ञानुसार चलनेवाला मुनि गमनागमनादि क्रियायें शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार करता हुआ गुरूकुलमें निवास करे। कभी कभी मुनिगुणोंसे युक्त मुनिके द्वारा भी द्विन्द्रियादि प्राणियोंकी विराधना हो जाती है, परन्तु उनके वह विराधनाजनित कर्म उसी भवमें क्षीण हो जाते है, क्यों कि अप्रमादपूर्वक उन कर्मोंके क्षणार्थ प्रायश्चित्त करता है। १३३-१३८
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। १३९-१४०
- ९ ऐसे मुनिकी दृष्टि और ज्ञान विशाल होता है। ये सर्वदा ईर्यासमिति आदिसे युक्त होता है। वह स्त्री आदिके भोगोंकी निरर्थकतासे पूर्ण परिचित होता है। वह स्त्री विषयक वासना को विविध उपायोंसे दूर करता है। ऐसा मुनि स्त्रियोंसे उनके घर सम्बन्धी कुछ भी नहीं पूछता, स्त्रियोंसे मेल-जोल बढ़ानेकी कभी भी चेष्टा नहीं करता। यह सर्वदा वाग्गुप्त, अध्यात्मसंरुत हो कर पापोंसे सदा दूर रहता है। हे शिष्यों ! इस प्रकारके मुनिधर्मका पालन करो। १४०-१४९

॥ इति चतुर्थ उद्देशः ॥

## ॥ अथ पञ्चम उद्देशः ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देशके साय पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन ।	१५०
२ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	१५१
३ आचार्य महाराज इदके समान निर्मल और अज्ञोभ्य होकर निर्मय हो विचरते है ।	१५१-१५२
४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	१६०
५ संश्रयात्मा शिष्य कमी भी स्यापि नहीं पाता । कोईर गुरुस्य भी तीर्षकरादिके उपदेशानुसार मनुषि करनेमें तत्पर रहता है और कोई कोई अनगार भी । किसी ज्ञानी मुनिके द्वारा तीर्षकरादि-उपदेशानुसार मनुषि-निमित्तप्रेरित शिष्य कमी भी निर्दिष्ट [दुःस्वित्त] न होवे ।	१६०-१६६
६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	१६६-१६७
७ तीर्षकोंने जो कुछ कहा है वह सभी सत्य और निश्चय है ।	१६७-१६९
८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	१६९-१७०
९ कोईर भद्राल्ल विश्वासी मनुष्य, वीसा लेनेके बाद जिनोक जीवादि तत्त्वोंमें सन्देह होने पर 'जिनोक सभी तत्त्व यथार्थ ही हैं, अन्वया नहीं हो सकता' इस प्रकार उन तत्त्वोंका सम्यक् मानता है और वह बादमें भी उनको सर्वदा सम्यक् ही मानता है । कोईर सम्यक् माननेवाला बादमें असम्यक् मानने लगता है । कोईर असम्यक् मानने वाला बादमें सम्यक् मानने लगता है । कोईर सम्यक् माननेवाला बादमें भी सर्वज्ञोक्त पदार्थोंको सम्यक् और असर्वज्ञोक्त पदार्थोंको असम्यक् ही मानता है । जिन मगवान से कथित होनेके कारण जो पदार्थ सम्यक् ही हैं उनको असम्यक् माननेवाला कोईर बादमें भी मिथ्यादृष्टिोंके	

तत्त्वोंको सम्यक् मानता है और जिनोक्त तत्त्वोंको असम्यक् मानता है। सन्देहरहित संयमियोंको चाहिये कि वह सन्देह-शील लोगोंको संयममें उद्योगशील होनेकी प्रेरणा करें। इस प्रेरणासे संयमके विरोधी ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंकी परम्परा नष्ट हो जाती है। संयमाराधनमें सतत जागरूक मुनियों के आचरणका अनुकरण करो। बालभावमें कभी भी मत पडो।

१७०-१८२

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

१८२-१८३

११ तुम जिसे हन्तव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं है; अपि तु वह, तुम स्वयं ही हो। इसी प्रकार तुम जिसको आज्ञापयितव्य मानते हो, जिसे परितापयितव्य मानते हो, जिसे परिग्रहीतव्य मानते हो और जिसे अपद्रावयितव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं; अपितु तुम्हीं हो। इस प्रकारके परिज्ञानवाला ऋजु-सरल होता है। इसलिये किसी भी जीवका घात न करो और न करवाओ। जो घातक होता है उसे भी उसी प्रकार घातका अनुभव करना पडता है। इसी लिये किसी को भी हन्तव्य नहीं समझे।

१८३-१८८

१२ छठा सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया।

१८९-१९०

१३ जो आत्मा है वही विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिससे जाना जाता है वह आत्मा है। वह ज्ञानस्वरूप आत्मा भी उम आत्मशब्दसे ही कहा जाता है, अर्थात् ज्ञान भी 'आत्म' शब्दसे व्यवहृत होता है। यह आत्मवादी सम्यक्पर्याय कहा जाता है।

१९०-१९९

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥



- विषय
- पृष्ठाङ्क
- १ पञ्चम उद्देशके साथ छठे उद्देशका सम्बन्धकथन, और प्रथम सूत्रका अवतरण । २००-२०१
- २ प्रथम सूत्र और उसकी छाया । २०१
- ३ कितनेक लोग तीर्थकरसे अनुपदिष्ट धर्मांश मार्गमें उद्योगवासी होते हैं और अपनेको तीर्थकरोपदिष्ट धर्ममार्ग के संयमी समझते हैं निन्दित मार्गके अनुयायी कितनेक लोग तीर्थकरोसे अनुपदिष्ट धर्ममार्गमें सर्वथा अनुयोगी होते हैं । हे शिष्य ! तुम ऐसे मत बनो पूर्वोक्त दोनों प्रकारका न बनना यह तीर्थकरोका अभिमत है । शिष्यको सर्वदा आचार्यके संकेतानुसारी होना चाहिये । २०१-२०४
- ४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २०५
- ५ जो परीपद्मोपसर्ग अथवा धातिकर्म ऋष्यको परामित करके स्वयं उन परीपद्मोपसर्गोंसे या परतीर्थिकोंसे पराजित न हो कर मिनोक्त तत्त्वकी जिज्ञासा करते हैं वह कित्सीका आत्मन्वन नहीं छेत्त है । रत्नश्रयकी आराधना करनेवाले इन महापुरुषोंका मन बहिर्षधी नहीं होता । वे पूर्वाचार्यका पारम्परिक उपदेशसं बीतरागके बचनोंका अभिमत हो जाने हैं, वे परतीर्थिकोंका मतका खण्डन करते हैं । तीर्थकरोक्त तत्त्वोंको कितनेक सपनी अपनी सहज बुद्धिसे समझ लेते हैं, भाईत आगमके अभ्याससे उन्हें समझत है, और कितनेक आचार्य आदिके उपदेशद्वारा उन्हें समझते हैं । २०५-२१५
- ६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २१६
- ७ मेधावी मुनि, बीतरागोपदेश और मिथ्यादृष्टियोंके मतकी तुलनात्मक समीक्षा करके, बीतरागोपदेशको उपादेय और मिथ्यादृष्टियोंके मतको हेय समझे, कभी भी बीतरागोपदेशका

- अतिक्रमण न करे । मोक्षाभिलाषी वीर मुनि संयमका स्वरूपको जान कर उसका आचरण करता हुआ विचरे । हे शिष्य ! तुम सर्वदा वीतरागोपदेश और आचार्योपदेशका अवलम्बन करके संयमाचरणमें पराक्रम करो । २१६-२२०
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २२०
- ९ ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यग्लोक, इन सभी स्थानोंमें मिथ्यात्व, अविरति आदि स्रोत, अर्थात्-आस्रवद्वार हैं । ये आस्रवद्वार नदीके स्रोत समान कहे गये हैं । इन्हीं आस्रवोंसे जीव कर्मोंको बांधते हैं । २२०-२२३
- १० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । २२४
- ११ वीतरागोपदिष्ट आगमके परिज्ञाता मुनि, आवर्त्तको पर्यालोचना करके आस्रवद्वारोंसे विरत होता । कर्मोंके आस्रवोंको दूर करनेके लिये प्रव्रजित ये महापुरुष मुनि अरुमा होता है, और ज्ञान-दर्शनसे युक्त होता है । परमार्थ जाननेवाला ये मुनि, अच्छी तरह विचार कर किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं करता । मोक्षप्राप्तिके लिये उद्युक्त ये मुनि मनुष्यलोकमें रहता हुआ भी जीवोंकी आगति और गतिको जानकर जन्म मरणके मार्गका उल्लङ्घन कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है । २२४-२२८
- १२ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । २२८-२२९
- १३ सिद्धावस्थाका वर्णन । २२९-२३८
- १४ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । २३९
- १५ मुक्तात्मा जीवोंका वर्णन । २३९-२४१

॥ इति षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम अध्यायन सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

- विषय पृष्ठाङ्क
- १ प्रथम अध्यायनके साव षष्ठ अध्यायनका सम्बन्धकरण ।  
भूत सम्बन्धका अर्थ और भेद । इस अध्यायनके पाठों उद्देश्योंमें  
प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमिक वर्णन । प्रथम सूत्रका अवतरण,  
प्रथम सूत्र और छाया । २४२-२४४
  - २ इन मनुष्योंमें जो 'मनुष्य' सम्यग्ज्ञानवान् है, वे ही अन्य  
मनुष्यों के लिये सम्यग्ज्ञानका उपदेश देते हैं । वे सम्य  
ग्ज्ञानी केवली और भुतकेवली होते हैं । वे एकेन्द्रियादि  
जीवोंको यथार्थरूपसे जानते हैं । वे ही इस अनुपम सम्य  
ग्ज्ञानके उपदेशक होते हैं । २४४-२४७
  - ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २४७
  - ४ तीर्थंकर गणपर आदि, विंशानिष्ठ, धर्मावरणके सिद्धे  
व्यक्त और हेयोपादेयबुद्धिपुक्त मनुष्योंके लिये सुक्तिमार्गका  
उपदेश देते हैं । इन उपदेश प्राप्त लोगोंमें कितनेक महा  
वीर कर्मशुभ्रोंके नाशार्थ पराक्रम करते हैं । इनसे भिन्न  
मोहनिबन्ध प्राणी कि जिनकी बुद्धि अन्यत्र लगी हुई है, वे  
विपादयुक्त रहते हैं । २४७-२४९
  - ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २४९
  - ६ क्षैबाल आदिसे युक्त पुराने इदमें रहनेवाला पञ्चय, जैसा  
उत्तीमें निक्षिप्त चिह्न होनेसे उससे बाहर नहीं हो सकता,  
उसी प्रकार हेयोपादेय बुद्धिरहित मनुष्य, कभी भी इस  
संसाररूपी महाइदसे बाहर नहीं निकल सकता । २४९-२५२
  - ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २५२
  - ८ जैसे बृह शाखाच्छेदनादि इ'त्यों सहते हुए अपने ही स्थान  
पर रहते हैं, वहाँसे हट नहीं सकते, उसी प्रकार क्लृप्तक

- अतिक्रमण न करे । मोक्षाभिलाषी वीर मुनि संयमका स्वरूपको जान कर उसका आचरण करता हुआ विचरे । हे शिष्य ! तुम सर्वदा वीतरागोपदेश और आचार्योपदेशका अवलम्बन करके संयमाचरणमें पराक्रम करो । २१६-२२०
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २२०
- ९ ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यग्लोक, इन सभी स्थानोंमें मिथ्यात्व, अविरति आदि स्रोत, अर्थात्-आस्रवद्वार हैं । ये आस्रवद्वार नदीके स्रोत समान कहे गये हैं । इन्हीं आस्रवोंसे जीव कर्मोंको बांधते हैं । २२०-२२३
- १० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । २२४
- ११ वीतरागोपदिष्ट आगमके परिज्ञाता मुनि, आवर्त्तको पर्यालोचना करके आस्रवद्वारोंसे विरत होता । कर्मोंके आस्रवोंको दूर करनेके लिये प्रव्रजित ये महापुरुष मुनि अरुर्मा होता है, और ज्ञान-दर्शनसे युक्त होता है । परमार्थ जाननेवाला ये मुनि, अच्छी तरह विचार कर किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं करता । मोक्षप्राप्तिके लिये उद्युक्त ये मुनि मृनुष्यलोकमें रहता हुआ भी जीवोंकी आगति और गतिको जानकर जन्म मरणके मार्गका उद्वलङ्घन कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है । २२४-२२८
- १२ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । २२८-२२९
- १३ सिद्धावस्थाका वर्णन । २२९-२३८
- १४ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । २३९
- १५ मुक्तात्मा जीवोंका वर्णन । २३९-२४१

॥ इति षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम अध्यायन सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

विषय

पृष्ठ

- १ पञ्चम अध्यायनके साथ षष्ठ अध्यायनका सम्बन्धकथन ।  
पूत स्रष्टका अर्थ और भेद । इस अध्यायनके पाचों उपोक्षोंमें  
प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमिक वर्णन । प्रथम सूत्रका अन्वय,  
प्रथम सूत्र और छाया । २४२-२४४
- २ इन मनुष्योंमें जो मनुष्य सम्यग्ज्ञानवान् है, वे ही अन्य  
मनुष्यों के लिये सम्यग्ज्ञानका उपदेश देते हैं । वे सम्य  
ग्ज्ञानी केवली और श्रुतकेवली होते हैं । वे एकेन्द्रियादि  
जीवोंको यथार्थरूपसे जानते हैं । वे ही इस अनुपम सम्य  
ग्ज्ञानक उपदेशक होते हैं । २४४-२४७
- ३ द्वितीय सूत्रका अन्वय, द्वितीय सूत्र और छाया । २४७
- ४ तीर्थंकर गणधर आदि, विंशान्विष्ट धर्माचरणके लिये  
षष्ठ और हेयोपादेयबुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये सुक्तिमार्गका  
उपदेश देते हैं । इन उपदेश प्राप्त लोगों में कितनेक महा  
वीर कर्मशुभ्रोंके नाशार्थ पराक्रम करते हैं । इनसे मिल  
याहपिबन्ध प्राप्ति कि जिनकी बुद्धि अन्यत्र लगी हुई है, वे  
विपादयुक्त रहते हैं । २४७-२४९
- ५ तृतीय सूत्र का अन्वय, तृतीय सूत्र और छाया । २४९
- ६ शैवाल आदिसे युक्त पुराने इदमें रहनेवाला कच्छप, जैसा  
उसीमें निविष्ट विच होनेसे उससे बाहर नहीं हो सकता,  
उसी प्रकार हेयोपादेय बुद्धिरहित मनुष्य, कभी भी इस  
संसाररूपी महाछदसे बाहर नहीं निकल सकता । २४९-२५२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अन्वय, चतुर्थ सूत्र और छाया । २५२
- ८ नैस ह्य शाखाधेयनादि दुःखों सहते हुए अपने ही स्थान  
पर रहते हैं, जहाँसे हट नहीं सकते; उसी प्रकार कितनेक

विषय	पृष्ठाङ्क
मनुष्य, स्त्री, पुत्रादिसे अपमानित, अनेक आधि व्याधियोंसे ग्रस्त, और राजपुरुपादिकोंसे हृतसर्वस्व होते हुए भी गृह-त्याग नहीं कर सकते । वे दुःखी हो कर सकरुण विलाप करते हैं और निदान करते रहते हैं, इस कारण इन्हें मोक्ष नहीं मिलता ।	२५२-२५४
९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र ।	२५५
१० हेयोपादेय विवेकरहित मनुष्य जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहते हैं ।	२५५
११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया ।	२५६
१२ हेयोपादेय विवेकरहित अनात्मज्ञ पुरुष स्वकृत कर्मोंके फल स्वरूप कुष्ठादि रोगोंसे और विविध परीपहोंसे आक्रान्त होते रहते हैं ।	२५६-२५९
१३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया ।	२५९-२६०
१४ जो प्राणी तममें अर्थात् नरकादि अथवा मिथ्यात्वादिमें पड़े हुए हैं वे अन्धे हैं । ऐसे जीव कुष्ठादिसे आक्रान्त हो कर दुःख भागी होते हैं ।	२६०
१५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया ।	२६१
१६ वासक रसग आदि जो जीव हैं ये सभी दूसरे जीवोंको कष्ट देते हैं ।	२६१
१७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया ।	२६२
१८ यह लोक महाभययुक्त हैं, और इसमें रहनेवाले सभी प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं ।	२६२
१९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया ।	२६३
२० कामासक्त मनुष्य, इस क्षणभंगुर निस्तार शरीरकी पुष्टि-	

निमित्त प्राणिद्विधा और तन्मनित कर्मबन्ध किया करते हैं ।

२६३-२६४

२१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया ।

२६४

२२ मार्च और बहुदुःस्वसुक्त अज्ञानी मनुष्य, अनेक विष दुष्कर्म करके सोलह प्रकारके रोग आतङ्कके भागी होते हैं, और फिर वे उन रोगोंकी चिकित्सानिमित्त एकेन्द्रियादि बीबोंकी हिंसा करते हैं ।

२६४-२६५

२३ बारहवें सूत्रका अवतरण, बारहवां सूत्र और छाया ।

२६६

२४ कर्मोद्यत्जनित रोगोंकी निवृत्तिमें चिकित्साये समर्थ नहीं है । अतः रोगनिवृत्त्यर्थे प्राणिजन्तसे निष्पन्न चिकित्सा, विवेकियों के लिये हेय है । इस प्रकारकी चिकित्साविधि, जन्म-मरणारूप महामयोंकी कारण है । इस लिय किसी भी प्राणीका उपमर्दन नहीं करना चाहिये ।

२६६-२६७

२५ तेरहवां सूत्र और छाया ।

२६८

२६ अष्टविध कर्मके विनाशक भूतबादको समझो; सुनो । इस संसारमें आत्मकृत कर्मके परिणामस्वरूप बीष उष्णनीचादि हस्तोंमें जन्म लेते २ क्रमिक सुनित्तको प्राप्त करते हैं ।

२६८-२७१

२७ चौदहवें सूत्र और अवतरण ।

२७१

२८ बीजाके लिये उद्युक्त मनुष्यके लिये माता-पिता आदि विनाश करते हैं, और आक्रोश वचन बोलते हैं ।

२७२

२९ पन्द्रहवें सूत्रका अवतरण, पन्द्रहवां सूत्र और छाया ।

२७३

३० संप्रामाणिसापी मनुष्य, बीजाके समयमें रोते हुए अपने माता पिता आदिकी ओर विशुद्ध ध्यान नहीं देता । उसका इस प्रकारका व्यवहार उचित ही है, क्या कि वह संसारकी वास्तविकतासे अभिन्न, मरक-जैसे गृहवासमें रह ही कैसे

सकता ! हे शिष्य ! उस धृतवादीक्त ज्ञानका सर्वदा  
चिन्तन करो ।

२७४-२७६

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धकवन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २७७-२७८
- २ इस पङ्जीवनीकायरूप लोकको आतुर जान कर, गृहस्थावास को छोड़ कर, विरतियुक्त हो कर ब्रह्मचर्यमें स्थित कितनेक मुनि अथवा एकादश प्रतिमाधारीश्रावक श्रुतचारित्रधर्मके वास्तविकतत्त्वको जानते हुए भी मोहोदयके कारण समयके पालनमें असमर्थ हो समयमोपकरणका परित्याग कर देते हैं । इनमेंसे कितनेक देशचिरत हो कर रहते हैं और कितनेक तो मिथ्यात्वी हो जाते हैं । शब्दादि विषयोंमें ममत्व करनेवाले इन समय छोड़नेवालोंमें से कितनेक अन्तर्मुहूर्त में मर जाते हैं और कितनेक अहोरात्रमें कितनेक हमसे अधिक कालमें । इस प्रकार ये भोगार्थी, दुःखसार शब्दादि विषयोंमें आसक्त हो इस मनुष्य जीवनको व्यर्थमें नष्ट कर डालते हैं । २७८-२८१
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २८२
- ४ कितनेकमनुष्य समयी हो कर, समय ग्रहणके कालसे ले कर संयमानुष्ठान में सर्वदा तत्पर रहते हैं । ऐसे महा-मुनि ही कर्मधूननमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्ति-शील होते हैं । २८२-२८३
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २८४



- विषय
- ६ ममत्व भावनासे रहित, अत एव 'अहमेक एवास्मि'—ऐसी भावनासे माधित अन्तःकरणवाला मनुष्य, सभी प्रकारके बाधनोंको छोड़ कर प्रव्रमित हो जाता है और अवेस यह मुनि अवमोदरिकासे ही रहा करता है। २८४
- ७ चतुर्थ सूत्रक अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। २८५
- ८ ऐसे अवमोदरिकायुक्त मुनि, पर्मानभिद्ध मनुष्योंद्वारा विविध प्रकारसे अपमानित होता हुआ भी उन अपमानोंको समतापूर्वक सहता हुआ बिचारता है, और वह सभी परीप होंको समतापूर्वक सहता है। २८५-२८७
- ९ पञ्चम सूत्र और छाया। २८७
- १० सम्यग्दृष्टि मुनि परीपहप्रयुक्त सभी दुःखिन्तानोंका परि त्याग कर परीपहोंको सहे। २८७
- ११ षष्ठ सूत्र और छाया। २८७
- १२ प्रवन्त्याको किसी दुःखरिस्थितिमें नहीं त्यागता, ऐसा मुनि ही निर्ऋन्व है। २८७-२८८
- १३ सप्तम सूत्र और छाया। २८८
- १४ 'बिनागमके अनुसार ही बिनधर्मका पालन करना चाहिये' यही तीर्थकर्मोंका उचम उपदेश मनुष्योंके लिये है। २८८
- १५ आठवाँ सूत्र और छाया। २८९
- १६ कर्मभूमनके उपाय इस संयममें संलग्न हो कर, अष्टविध कर्मको स्थापित हुए बिचरे। समेद कर्मोंको जान कर मनुष्य, उन कर्मों को भ्रमणधर्मका आराधन करके स्थापता है। २८९
- १७ नवम सूत्रक अवतरण, नवम सूत्र और छाया। २८९-२९०
- १८ इस बिनशासनमें रह कर जिन्होंने कर्मबन्धको छिपिस कर दिया है ऐसे कितनेक मुनि एकाक्षिबिहार प्रतिमाभारी होते हैं, उन्हें अनेक प्रकारके परीपह प्राप्त होते हैं, उन परीपहोंको वे भीर मुनि समतापूर्वक सहे। २९०-२९३

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

## ॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ द्वितीय उद्देशके साथ तृतीय उद्देशका सम्वन्धकथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	२९४
२ ममतारहित, ज्ञानाचारादिके प्रतिपालक मुनि, धर्मोपकरणके अतिरिक्त कर्मबन्धके कारण ब्रह्मादिकों को छोड़ कर विचरता है ।	२९४-२९५
३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	२९५
४ जो साधु, अचेल ( अल्पब्रह्मधारी ) और साधुमर्यादामें व्यवस्थित होते हैं उन्हें जीर्णवस्त्रसम्बन्धी चिन्ता कभी भी नहीं होती ।	२९६-२९८
५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	२९८-२९९
६ कर्मबन्धोंके विनाशके निमित्त प्रयत्नशील उस अचेल मुनिको उस अचेलभावस्थामें अनेक प्रकारके परीषद प्राप्त होते हैं, वे परीषद उस मुनिके लिये तपःस्वरूप ही हैं ।	२९९-३०१
७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । भगवानकी आज्ञानुसार, अपनी २ सामर्थ्यके अनुकूल उत्कृष्ट या अपकृष्ट साध्वाचार पालनमें प्रवृत्त सभी मुनि सम्यक्स्वी हैं । सभी तीर्थङ्करोंके शासनकालमें अचेल मुनि विविध परीषदोंको सहते हैं ।	३०२
९ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया ।	३०६
१० जो सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हो चुके हैं उनकी बाहें अथवा बाधाये कृश ( क्षीण ) हो जाती है कर्मक्षपणार्थ प्रवृत्त इन सम्यग्ज्ञानियोंके मांसशोणित सुख जाते हैं । ये अपनी सम- भावना और क्षमा आदि गुणोंसे संसारपरम्पराको छिन्न करके रहते हैं । इस प्रकारके साधु, तीर्थङ्करों द्वारा तीर्थ- मुक्त और विरत कहे गये हैं ।	३०२-३०५
११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया ।	३०६-३०८
	३०८

विषय

पृष्ठाङ्क

- १२ असंयमसे निवृत्त, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभाध्यवसायमें महत्त्व और बहुत कालसे संयममें स्थित ऐसे मुनिको क्या संयममें अरति हो सकती है ? । ३०८-३०९
- १३ सप्तम सूत्रका अन्वय, सप्तम सूत्र और छया । ३०९
- १४ पूर्वोक्त प्रकारके साधु, उत्तरोत्तर अधिकधिक मद्यस्त परिणामपारा अथवा गुणस्थानपर आरूढ़ होते हैं, अतः उनको अरति हो ही कैसे ? । जैसे द्वीप, असन्दीन-चाड़के उपवनसे रहित होता है, उसी प्रकार यह मुनि भी, उपसर्ग आदिसे बाधित नहीं होता है, अथवा-जैसे असन्दीन द्वीप यात्रिकों के लिये आश्रयस्थानीय होता है, उसी प्रकार संसारसागरको त्रिनेत्री इच्छापाळे मनुष्य, इस प्रकारके साधुओंके ऊपर विश्वास करते हैं । ३१०
- १५ आठवे सूत्र और छया । ३११
- १६ असन्दीन द्वीपके समान भगवद्भाषित धर्म भी है । ३११
- १७ नवम सूत्रका अन्वय, नवम सूत्र और छया । ३११-३१२
- १८ यह मुनि, निस्पृही अहिंसक सर्वलोकप्रिय साधुमर्यादामें व्यक्तित और पण्डित होता है । ३१२
- १९ दशम सूत्रका अन्वय, दशम सूत्र और छया । ३१२-३१३
- २० आचार्य महाराजको पादिये कि जैसे पत्नी अपने बन्धुओंको सहना सिखाते है उसी प्रकार वे भी धर्मानुष्ठानमें अनुस्सारी शिष्योंको दिन-रात क्रमशः एकादश अङ्गोंकी शिक्षा दें । आचार्यद्वारा शिक्षित वे शिष्य, सकल परिपक्वोंके सहन और संसारसागरके पार करनेमें समर्थ हो जाते हैं । ३१३-३१४

॥ इति तृतीय उच्छेद ॥

## ॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ तृतीय उद्देशके साथ चतुर्थ उद्देशका संबंधकथन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ३१५
- २ आचार्यद्वारा परिश्रमपूर्वक शिक्षित किये गये उन शिष्योंमें से कितनेक अहंकारयुक्त हो कर उपशमको छोड़ गुरुजनोंके साथ भी कठोर व्यवहार करते हैं । ३१५-३१६
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३१७
- ४ कितनेक शिष्य ब्रह्मचर्यमें रह कर भी, भगवान्की आज्ञा की आराधनामें सर्वथा तत्पर नहीं हो कर देशतः भगवान् की आज्ञाकी अवहेलना करते हुए सातागौरवकी अधिकतासे बाहुशिक हो जाते हैं । ३१७
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ३१८
- ६ कितनेक शिष्य, आचार्यद्वारा कुशीलाचारके विपाकका प्रतिपादन करनेपर, उन आचार्यों के ऊपर ही क्रुद्ध हो जाते हैं ।
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३२०-३२१
- ८ ये अवसन्न पार्श्वस्थादि, शीलवान् उपशान्त और हेयोपादेय ज्ञानपूर्वक संयममार्ग में प्रवृत्ति करनेवाछे साधुओंको 'चारित्रहीन' कहा करते हैं, यह उनकी द्वितीय बालता है, पहली बालता तो इनकी यह है जो ये स्वयं भ्रष्ट हैं । ३२१-३२२
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र । ३२२
- १० कितनेक स्वयं संयमाचरणमें असमर्थ होते हुए भी मूलगुण और उत्तरगुणकी शुद्ध रूपसे व्याख्या करते हैं, उनको द्वितीय बालता नहीं होती है । ३२२
- ११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया । ३२३

- १२ कितनेक सम्यक्स्वपठित ज्ञानध्रष्ट मुनि, द्रव्यतः आचार्यादिको मज्जाम भादि करते है, परंतु वे भावतः अपनी आत्माको सम्यक्चारिभ्रष्ट मोक्षमार्गसे भ्रष्ट ही करते रहते है । ३२३
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३२४
- १४ कितनेक परीपहोपसर्गस आक्रान्त हो भीष्मके मोक्षसे संयमका परित्याग कर देते है, उनका सप्त कुछ व्यर्थ ही है । ३२४
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । ३२५
- १६ जीवनके सुखके निमित्त जो चारिभ्रष्टा परित्याग करते है वे पामरजनोंसे भी निन्दित होत है, और वे एकेन्द्रियादि दुर्गतिके मानी होते है, संयमस्थानसे गिरकर भी वे अपने को पण्डित मानते हुए अपनी मर्झसा करते है और उच्य साधुओंकी निन्दा करत है, उनके ऊपर असत्य दोषोंका आरोप करते है । मेघावी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये । ३२५-३२७
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३२८
- १८ आरम्भार्थी साधु, हिंसाके निमित्त दूसरों को भेरित करते है, हिंसाकी अनुमोदना करते है । 'तीर्थङ्करोक्त परमं पोर अर्थात्-दुरनुचरणीय है'-ऐसा मान कर तीर्थङ्कराक्त परमकी उपेक्षा करते रहते है 'सं मनुष्योंको तीर्थङ्करनि विपण्ण अर्थात् काममोग-मूर्च्छित और विवर्ध अर्थात् पदभीषनिकायोंके उपमर्दनमें तत्पर कहा है । ३२८-३२९
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३२९
- २० कितनेक जन, मातापिता, ज्ञातिबन्धु और धन-धान्या दिकोंको छोड़ कर संयम लेत है और उस संयमका पास्त्र अण्डी तरह करते है, परन्तु बादमें वे ही कर्मदोषवन्न संयमसे गिर पडते है हीन-हीन हो कर अतिविषसक हो जाते है । ३३०-३३३

विषय	पृष्ठाङ्क
२१ ग्यारहवे सूत्रका अवतरण, ग्यारहवा सूत्र और छाया ।	३३३
२२ संयमसे च्युत लोगोंकी सर्वत्र निन्दा होती है ।	३३३-३२५
२३ बारहवे सूत्रका अवतरण, बारहवा सूत्र और छाया ।	३३५
२४ कितनेक अभागे साधु, उग्रविहारियोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं, विनयशील साधुओंके साथ रहते हुए भी अविनयी होते हैं, विरतोंके साथ रहते हुए भी अविरत होते हैं, संयमाराधकोंके साथ रहते हुए भी असंयमी होते हैं । अतः संयमी साधुओंकी सगति प्राप्त कर सर्वदा संयमाराधनमे तत्पर रहना चाहिये ।	३३५-३३६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

\*

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

१ चतुर्थ उद्देशके साथ पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	३३६-३३८
२ उन मुनियोंको अनेक स्थानोंमें अनेक प्रकारके उपसर्ग प्राप्त होते हैं, उन उपसर्गोंको वे मुनि अच्छी तरह सहें ।	३३८-३३९
३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	३३९-३४०
४ जैनागमके ज्ञाता मुनि, लोकस्वरूपको तथा पूर्वादि दिग्भि-भागोंको भी अच्छी तरह जान कर दयार्धमकी प्ररूपणा करे और धर्मानुष्ठानका फल कहे ।	३४०
५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	३४१
६ वह आगमज्ञ मुनि, सुननेकी इच्छावाले उत्थित, अनुत्थित सभी प्रकारके लोगोंको शान्ति, चिरति, उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव और लाघवकी व्याख्या आगमानुसार करके समझावे ।	३४१-३४२

विषय	पृष्ठाङ्क
७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	३४२
८ मुनि एकेन्द्रियादि सभी प्राणियोंके हितकी ओर दृष्टि रखते हुए धर्मोपदेश करे ।	३४३
९ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया ।	३४३-३४४
१० धर्मोपदेश करते हुए मुनि, न अपने आत्माकी विराचना करे, न दूसरे मनुष्योंकी विराघना करे और न अन्य प्राण, मृत, जीव और सत्त्वोंकी विराघना करे ।	३४४-३४५
११ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया ।	३४५
१२ जीवोंके अनाशातक मुनि सभी प्राणियोंके शरण होते हैं ।	३४६-३४७
१३ सातवें सूत्रका अवतरण, सातवां सूत्र और छाया ।	३४७-३४८
१४ कर्मविनाशके लिये उत्थित मुनि, श्रुतचारित्र्य धर्ममें स्थिर हो कर, बलवोर्यको नहीं छिपाते हुए, सभी प्रकारकी परिस्थिति में निष्कम्प, स्थिरधातरहित अर्थात् उग्रविहारी और सयमकी ओर लक्ष्य रखते हुए विहार करे ।	३४८
१५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया ।	३४९
१६ सम्पन्नदृष्टि धीमं जिनोक्तधर्मको जानकर परिनिर्णय हो जाता है ।	३४९
१७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया ।	३४९-३५०
१८ आसक्तियुक्त प्राणी, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहोंसे निबद्ध होते हैं, उनमें निमग्न रहते हैं, कामभोगमें अभिनिविष्ट विचषाद्ये होते हैं । मुनिको चाहिए कि वे आसक्तिरहित हो कर संयम प्राप्त करें, संयमसे कमी भी भयभीत न हों ।	३५०-३५१
१९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया ।	३५२
२० यह आरम्भ कि जिससे हितक बन भयभीत नहीं होते हैं, उसको सम्बन्ध प्रकारसे जान कर और आरक्षणार्थका ध्यान करके मुनिजन संयममार्गमें विचरते हैं । ऐसे मुनिजनके सभी कर्म बन्धनशून्य जाते हैं ।	३५२-३५४

विषय

पृष्ठाङ्क

- २१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया । ३५५
- २२ इस औदारिक आदि शरीरके विनाशको तीर्थकरेनि सग्रामका अग्र भाग कहा है । मुनिजन ज्ञानाचारादिरूप नौकाका अवलम्बन कर ससार महासागरके पारगामी होते हैं । परीपह और उपसर्गोंसे हन्यमान मुनि, रागद्वेषरहित अपने मरणकाकसे अभिज्ञ हो कर बारह वर्षकी सलेखनासे शरीरका सलेखन करके भक्तप्रत्याख्यान आदिमेंसे किसी एक मग्नसे अपने मरणकालकी प्रतीक्षा करे । इस प्रकारके मुनि सकल कर्मक्षय करके मोक्षगामी होते हैं । ३५५-३६०
- २३ अध्ययनविषयोपसंहार । ३६०-३६१

॥ इति षष्ठ अध्ययन ॥

\*

॥ अथ अष्टम अध्ययन ॥

( प्रथम उद्देश )

- १ सप्तम अध्ययनके विच्छेदका कारण । ३६३-३६५
- २ अष्टम अध्ययनका उपोद्घात । ३६५-३६६
- ३ अष्टम अध्ययनमें प्रतिपादित विषयोंका उद्देशक्रमसे संक्षेपतः कथन । ३६७-३७०
- ४ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और उसकी छाया । ३७०
- ५ अवसन्न पार्श्वस्थ आदि स्वमतावलम्बियोंका और शाक्यादि परमतावलम्बियोंको, साधु कभी भी आहार आदि न देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, और न उनकी श्लथ्थुषा ही करे । ३७०-३७१
- ६ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३७१-३७२



- ७ अथसप्त पार्श्वस्थादिक स्वमतासलम्बियोंद्वारा और शाक्यादि परमतासलम्बियोंद्वारा आहारादि निमित्त आमन्त्रित होनेपर साधु, कमी भी उनके आमन्त्रणका स्वीकार न करे। ३७२-३७३
- ८ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ३७४
- ९ कितनेक लोगोंको आचारगोचर अर्थात् सर्वज्ञोपदिष्ट संयम मार्गका परिचय नहीं होता है, अतः वे आरम्भार्थी होते हैं, और उन आरम्भार्थी लोगोंकी तत्त्वके सम्बन्धमें परस्पर भिन्न भिन्न दृष्टि होती है। इस लिये उनका परम वास्तविक नहीं होनेके कारण मय्योंके लिये सर्वदा परिस्थान्य है। ३७४-३९६
- १० चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ३९६-३९७
- ११ इस अनेकान्त धर्मका प्ररूपण मगधान् तीर्थकरने किया है। उन्होंने अपने साधुओंके लिये कहा है कि परबादियोंके साथ बादमें मायासमितिका ध्यान सतत रखे। वे परबादियोंसे इस प्रकार कहें कि आपके आत्मोंमें पञ्चीबनिकयोपमर्दनरूप आरम्भ, धर्मरूपमें स्वीकृत किया गया है यह हमें ज्ञात नहीं है। क्यों कि आरम्भ नरकनिगोत्रादिके कारण होने से पाप है। हम साधुघातकके त्यागी हैं, अतः हमें इस विषयमें आपके साथ बाद नहीं करना है और यही हमारे लिये उचित भी है। 'धर्म न ग्राममें है और न अरण्यमें, धर्म तो बीषाणीबादि-तत्त्व-परिज्ञानपूर्वक निरवघातुष्ठानमें ही है'-यह माइन-मगधान् महावीरका उपदेश है। मगधान्ने तीन यामोंका प्ररूपण किया है, इन यामोंमें संशुष्यमान और सद्बुत्पित्त आर्यजन जो कि पापकर्मोंसे निवृत्त हैं वे ही अनिदान कहे गये हैं। ३९७-४०३
- १२ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया। ४०३

विषय

- १३ ' ऊर्ध्वादि सभी दिशाओं एवं विदिशाओंमें संक्षमवादरादि सभी प्राणियोंकी विराधनारूप कर्मसमारम्भ होता है '- इस बातको जान कर मेधावी साधु न स्वयं इन पङ्जीवनिकार्योंके विषयमें दण्डका समारम्भ करे, न दूसरोंसे करावे, न करते हुए की अनुमोदना ही करे। हे शिष्य ! तुम्हे इस प्रकारसे विचारना चाहिये कि इन दण्डसमारंभ करनेवालोंके साथ वार्तालाप करनेमें भी मुझे लज्जा होती है, फिर मैं दण्डसमारम्भका अनुमोदन कैसे करूँ ? मैं कभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। उस प्रकार निश्चय कर के साधुमर्यादामें व्यवस्थित, प्राणातिपातसे भयभीत तुम, उस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका, अथवा-अन्य दण्ड का समारम्भ कभी नहीं करना।

४०४-४०५

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देशका प्रथम उद्देशके साथ सम्बन्धकथन, प्रथम सूत्र और उसकी छाया। ४०६-४०७
- २ श्मशान आदिमें स्थित साधुको अकल्पनीय अग्नादिक छेनेके लिये यदि कोई गृहपति आग्रह करे तो साधु उसके आग्रहको कभी भी नहीं स्वीकारे। ४०८-४१२
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४१२-४१३
- ४ उस साधुके समीप आ कर कोई गृहपति उस साधुको, अकल्पनीय अग्नि आदि ला कर देवे, या रहनेके लिये अकल्पनीय उपाश्रय देवे, तो साधुको चाहिये कि वह उस गृहपतिके वचनोंको कभी भी स्वीकार नहीं करे। ४१३-४१६
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४१६

मिष्य

- ६ अज्ञानादिस्वित्त साधुके, गृहपतिद्वारा प्रदत्त अकल्पनीय अज्ञानादिक न खेनेपर, यदि वे गृहपति उस साधुकी ताडना आदि कर तो साधु उस ताडनादिकको शान्तिपूर्वक सहन करे। अथवा वह साधु उस गृहपतिके सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिबद्ध अनुमान कर, यदि वह सम्यग्दृष्टि हो तो उसे साधुके आधारका परिज्ञान करावे। अथवा—यदि देखे कि यह गृहपति मिथ्यादृष्टि है तो कुछ भी नहीं करे। सुप चाप उसके द्वारा किये गये उपमर्गोंको शान्तचित्त हो कर सहे। ४१६-४२२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४२२-४२३
- ८ वह साधु गृहपतिद्वारा प्रदत्त उस आहारादिकके कमी भी स्वीकार न करे। इतना ही नहीं वह साधु श्लाघादि पर तीर्थिकोंको कमी भी अज्ञानादिक नहीं देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, न उनकी सेवा करे, और न उनका भावर ही करे। ४२३
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र। ४२३-४२४
- १० मगधानकी आज्ञा है कि साधु अपने सापेक्षिक साधुको अज्ञानादिक प्रदान कर, उसको निमन्त्रित करे, उसकी सेवा करे और उसका आदरस्कार करे। ४२४-४२५

॥ इति त्रितीय उद्देश ॥



॥ अथ सूतीय उद्देश ॥

- १ सूतीय उद्देशका त्रितीय उद्देशके साथ सम्बन्धकथन। पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया। ४२६-४२७

- २ कितनेक मनुष्य युवावस्थामें ही सबुद्ध हो मुनि हो जाते हैं। उनमें जो बुद्धबोधित होते हैं वे पण्डितों अर्थात् तीर्थ-करगणधर आदिके समीप धर्मवचन सुन कर, उन्हें हृदयमें उतार कर समताभावका अवलम्बन करे; क्यों कि तीर्थकर-गणधर आदिकोंने समतासे ही धर्मका प्ररूपण किया है। उन साधुओंको चाहिये कि वे शब्दादिक विषयोंकी अमि-लाषासे रहित हो कर, प्राणियोंकी हिंसा और परिग्रह नहीं करते हुए विचरते हैं। ऐसे मुनि कभी भी परिग्रहोंसे लिप्त नहीं होते हैं, और न ये प्राणियोंके ऊपर मनोवाक्यायदण्डका ही प्रयोग करते हैं। ऐसे मुनियोंको तीर्थकरोंने महान् और अग्रन्थ कहा है। ऐसे मुनि मोक्ष और संयमके स्वरूपके परिज्ञाता होते हैं, और वे देव, नारक, मनुष्य और तिर्यञ्चके जन्म-मरणादिक दु खोंको जान कर कभी भी पापकर्म नहीं करते हैं। ४२७-४३०
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४३१
- ४ आहारसे परिपुष्ट प्राणियोंके ये शरीर, परीषहोंके आनेपर विनष्ट हो जाते हैं। देखो; कितनेक प्राणी क्षुधापरीषहसे कातर हो जाते हैं, और इनके विपरीत कोई २ रागद्वेष-वर्जित मुनि क्षुधापरिषहके प्राप्त होने पर भी निष्प्रकम्प हो कर षड्जीवनिकायके ऊपर दया करनेमें ही संलग्न रहते हैं। ४३१-४३३
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४३३-४३४
- ६ पूर्वोक्त मुनि आगममें कुशल होते हैं और वे काल, बल, मात्रा, क्षण, विनय और समयके ज्ञाता होते हैं। वे परि-ग्रहमें ममत्व नहीं रखते हैं, यथाकाल अनुष्ठान करनेवाले होते हैं और अप्रतिज्ञ होते हैं। ऐसे मुनि रागद्वेषको छिन्न करके मोक्षको प्राप्त करते हैं। ४३४

विषय

७ ऋष्यं सूत्रका अवतरण, ऋष्यं सूत्र और छाया ।

८ श्रीतस्मैसे कम्पितशरीर मुनिको देख कर यदि गृहपति पूछे कि 'हे आयुष्मन् ! क्या आपका शरीर कामबन्धित पीडासे कम्पित हो रहा है ?' तो मुनि उससे कहे—'हे गाथापति ! मेरा शरीर कामबिधारसे नहीं कंप रहा है, किन्तु शीतकी बाधाको मैं नहीं सह पा रहा हूँ इसलिये कंप रहा है ।' इस पर यदि गृहपति कहे कि 'हे आयुष्मन् ! तो आप अभिसेवन क्यों नहीं करते ?' इस पर वह साधु कहे कि 'हे गाथापति ! मुझे अधिको मन्वस्त्रि करना या उसका सेवन करना नहीं कल्पता ।' इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहपति या अन्य गृहस्थ आग जला कर उस मुनिके शरीरको तापित करे तो वह मुनि गृहस्थको सम्झा कर अभिसेवनसे दूर ही रहे ।

४३५-४३९

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ ऋष्यं उद्देश ॥

१ ऋष्यं उद्देशका तृतीय उद्देशके साथ सम्बन्धमतिपादन, मयम सूत्रका अवतरण, मयम सूत्र और छाया ।

४४०-४४१

२ मुनिको तीन बल और शीया पात्र का रखना कल्पता है । इस प्रकारके साधुको यह भावना नहीं होती है कि शीये बलकी याचना करेंगा । साधु एषणीय बलकी याचना करते हैं, भैसा बल मिल जाता है उसीको धारण करते हैं, बलोंको धीमे नहीं है और रंगते ही हैं । साधु धौतरक बलको धारण नहीं करते हैं । वे कमो भी बलोंको छिपाते नहीं, क्योंकि उनका बल शीर्ण और मखिन होनेके कारण

मूल्यवान नहीं होता है। इस प्रकारके साधु सामान्तरों में निर्द्वन्द्व विचरते हैं। स्वर्गारी साधुओंकी यही तीन रस्य और चौथा पात्ररूप सामग्री होती है।

४४१-४४४

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया।

४४४

४ हेमन्त ऋतुके वीतने पर ग्रीष्म ऋतुके प्राग्भ्रमं साधुको जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग करना चाहिये। अथवा ग्रीष्मकालमें वीतने पर भी क्षेत्र, काठ और पुरुष स्वभारके कारण यदि शीतवाधा हो तो तीनों वस्त्रोंको धारण करे, अर्थात्—शीत लगने पर तीनों वस्त्रोंको धारण करे, ग्रीष्म न लगे और उसकी आगङ्गा हो तो अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा शीतकी अल्पतामें एक वस्त्रको धारण करे, और जब शीत विलकुल ही न रहे तब अचेल अर्थात् मावरणरहित रहित हो जाय। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा लघुतासे युक्त हो जाती है। इस प्रकारसे वस्त्रत्याग करनेवाले मुनिको कायक्लेशनामक तप भी होता है।

४४५-४४७

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

४४८

६ यह सब भगवान् महावीरने कहा है; इस लिये मुनि इस सबका अच्छी तरह विचार कर सचेल और अचेल अवस्थाओंमें साम्यभाव ही रखे।

४४८

७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

४४९

८ जिस मुनिको यह होता है कि मैं रोगातङ्कोंसे अथवा शीतादि या स्त्रीके उपसर्गसे स्पृष्ट हो गया हूँ, मैं इनको सह नहीं सकता हूँ, वह असुमान् मुनि उस समय अपने अन्तःकरणसे हेय और अपादेयका विचार कर उन उपसर्गोंका प्रतिकार नहीं करते हैं। ऐसे तपस्वी मुनि स्त्रियोंके उपसर्ग उपस्थित होने पर वैश्यास आदि मरणद्वारा शरीर छोड़ देते हैं परन्तु मुनिको नहीं छोड़ते हैं। मुनिको वह मरण बालमरण

विषय

नहीं है, अपि तु वह पश्चित मरण ही है। पर मुनि पशुतः ससारान्तकारी ही होता है। इस प्रकार वह विमोहका आयतनस्वरूप वैहायस मृत्यु ही उस साधुके हित आदिफ्री करनेवासी होती है।

४४९-४५६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥

•

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

१ पञ्चम उद्देशका श्लेष उद्देशके साथ संबन्धमतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया।

४५७-४५८

२ जो मिथु, दो क्लृप्त और एक पात्र धारण करनेके लिये अग्नि ग्रहसे युक्त है उसे यह मायना नहीं होती कि तीसरे क्लृप्तकी याचना करेगा। वह यथाक्रम एपणीय क्लृप्तकी याचना करता है, उसकी इतनी ही सामग्री होती है। जब हेमन्त ऋतु शीत जाती है और ग्रीष्म ऋतु आने लगती है तब वे परिजीर्ण क्लृप्तको छोड़ दें। अथवा शीत समय शीतन पर भी छत्र, काल और पुरुषस्वभावके कारण यदि शीतभाषा हो तो दोनों क्लृप्तकी धारण कर। शीतकी भावना हो तो अपने पास रखे, स्पार्गे नहीं। अथवा जबमथेल हों, अथवा एकस्रष्टकभारी होवे, अथवा मथेल हो जावे। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा छापव गुणसे युक्त हो जाती है। मगत्रामले जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार मुनि सर्वदा मायना कर। यदि मुनिको ऐसा लगे कि रोगादिकोंसे स्पृष्ट हो गया हूँ निर्बल हूँ, मैं मिसाचर्याके लिये गृहस्वके घर जानेमें असमर्थ हूँ, उस समय यदि कोई गृहस्थ मुनिक लिये अन्ननादिक सामग्रीकी पोषना करे तो मुनि उसे अक्षत्यनीय ... समझकर कभी भी नहीं स्वीकारे।

४५८-४६१

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।

४६२

४ जिस भिक्षु का आचार इस प्रकार का होता है कि—

(१) जिसको किसीने वैयावृत्त्य करने की प्रेरणा नहीं की वह यदि अग्लान होगा और वह आकर मुझ ग्लान को निवेदित करेगा कि मैं आपकी वैयावृत्ति करूँगा तो मैं साधर्मिकों द्वारा निर्जरा के लिये की जाती हुई वैयावृत्ति स्वीकार करूँगा । और अग्लान तथा दूसरोंसे अप्रेरित मैं ग्लान साधु की वैयावृत्ति अपने कर्मनिर्जरा की इच्छा से करूँगा उसके लिये आहारादि की गवेषणा करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का भी स्वीकार करूँगा । (२) दूसरों के लिये आहारादि का अन्वेषण करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार नहीं करूँगा । (३) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा परन्तु दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार करूँगा । (४) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा और न दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार ही करूँगा । इस प्रकार अभिग्रहधारी मुनि अपने अभिग्रह को पालते हुए, शान्त, विरत, होकर और अन्तःकरण की वृत्तियोंको विरुद्ध कर ग्लानावस्थामें भक्तप्रत्याख्यान से ही अपने शरीर का परित्याग करे । उस मुनि का वह कालपर्याय ही है । उस का इस प्रकार से शरीर त्याग करना विमोहायतन—महापुरुषकर्तव्य ही है और, हित, सुख, क्षम, निश्रेयस एव आनुगामिक ही है । उद्देश समाप्ति ।

४६३-४६८

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

\*

॥अथ षष्ठ उद्देश ॥

१ षष्ठ उद्देश का पञ्चम उद्देश के साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्र का अवतरण, प्रथमसूत्र और छाया ।

४६९-४७०



- २ जो मिष्ठ एक बख और एक पात्र के अभिग्रहणारी है, उसको यह भावना नहीं होती कि द्वितीय बख की याचना करूँगा। वह मिष्ठ एपणीय बख की याचना करे, जो बख मिले उसी को पारण कर, यावत् ग्रीष्म ऋतु आगे भीर्ण बख का परित्याग कर देवे। अथवा—एक घाटक पारण करे, अपना अवेस होनावे। इस प्रकार के मुनि की आत्मा लघुता-गुण से मुक्त हो जाती है। उस मिष्ठ का इस प्रकार का आचार तप ही है। मगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार वह मिष्ठ सर्वदा भावना करे। ४७०
- ३ द्वितीय सूत्र का अन्वयण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४७०-४७१
- ४ जिस मिष्ठ को यह होता है कि—मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ। वह साधु अपने को अकल्पा ही समझे। इस प्रकार के साधु की आत्मा लघुता गुण से संपन्न होती है उस साधु की यह भावना तप ही है। मगवानने जो कहा है वह समुचित ही है, ऐसी भावना वह साधु सर्वदा रखे। ४७१-४७२
- ५ तृतीय सूत्र का अन्वयण तृतीय सूत्र और छाया। ४७२-४७३
- ६ साधु अथवा साध्वा आहार करते समय आहार को घृह के दाहिने भागसे बाँये भाग की ओर स्वाद लेते हुए नहीं ले जावे, उसी प्रकार बाँये से दाहिने की ओर नहीं ले जावे। इस प्रकार स्वाद की मापना से रहित होकर आहार करना तप ही है। मगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित ही है, ऐसी भावना साधु को सर्वदा करनी चाहिये। ४७३-४७५
- ७ चतुर्थ सूत्र का अन्वयण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४७६
- ८ जिस मिष्ठ को यह होता है कि—मैं इस समय मग्न हूँ, इसलिये इस शरीर को पूर्ववत् परिचर्या करने में असमर्थ हूँ।

विषय

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।

४ जिस भिक्षु का आचार उस प्रकार का होता है कि—

(१) जिसको किसीने वैयावृत्त्य करने की प्रेरणा नहीं की वह यदि अग्लान होगा और वह आकर मुझ ग्लान को निवेदित करेगा कि मैं आपकी वैयावृत्ति करूँगा तो मैं साधर्मिकों द्वारा निर्जरा के लिये की जाती हुई वैयावृत्ति स्वीकार करूँगा । और अग्लान तथा दूसरों से अप्रेरित मैं ग्लान साधु की वैयावृत्ति अपने कर्मनिर्जरा की इच्छा से करूँगा उसके लिये आहारादि की गवेषणा करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का भी स्वीकार करूँगा । (२) दूसरों के लिये आहारादि का अन्वेषण करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार नहीं करूँगा । (३) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा परन्तु दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार करूँगा । (४) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा और न दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार ही करूँगा । इस प्रकार अभिग्रहधारी मुनि अपने अभिग्रह को पालते हुए, शान्त, विरत, होकर और अन्तःकरण की वृत्तियोंको विरुद्ध कर ग्लानावस्थामें भक्तप्रत्याख्यान से ही अपने शरीर का परित्याग करे । उस मुनि का वह कालपर्याय ही है । उस का इस प्रकार से शरीर त्याग करना विमोहायतन—महापुरुषकर्तव्य ही है और, दित, सुख, क्षम, निश्रेयस एव आनुगामिक ही है । उद्देश समाप्ति ।

४६३-४६८

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

\*

॥अथ षष्ठ उद्देश ॥

१ षष्ठ उद्देश का पञ्चम उद्देश के साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्र का अवतरण, प्रथमसूत्र और छाया ।

४६९-४७०

- विषय
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ४९१-४९२
- ४ उस संप्रमर्मे पराक्रम करते हुए उस अघेष्ठ साधुकी वृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दशमशकस्पर्श प्राप्त होते हैं । वह साधु उन स्पर्शों को तथा अन्य भी विविध स्पर्शों को सहता है । उसकी आत्मा स्थापमयुक्त होती है । उसका यह अघेष्ठस्व तप ही है । उस साधुकी यह भावना सर्वदा होनी चाहिये कि भगवान्‌ने जो कहा है वह सर्वथा संगत है । ४९१-४९२
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ४९२-४९३
- ६ जिस मिथुका यह होता है कि मैं दूसरे मिथुमर्के लिये अज्ञान आदि सा कर दूंगा और दूसरोंके लिये हुए अज्ञानादिकको स्वीकार भी करूँगा १ । जिस मिथुको यह होता है कि मैं दूसरे मिथुमर्के लिये अज्ञानादिक सा कर दूंगा और दूसरेके लिये हुए अज्ञानादिकका स्वीकार नहीं करूँगा २ । जिस मिथुको यह होता है कि मैं दूसरे मिथुमर्के लिये अज्ञानादिक सा कर नहीं दूंगा, परन्तु दूसरेके लिये हुए अज्ञानादिकको स्वीकार करूँगा ३ । जिस मिथुका यह होता है कि-मैं दूसरे मिथुमर्के लिये अज्ञानादिक सा कर नहीं दूंगा और न दूसरके लिये हुए अज्ञानादिकको स्वीकार करूँगा ४ । ये चार प्रकारके अभिग्रहणारी मुनि शक्त हैं । पाँचवे प्रकारके अभिग्रहणारी मुनि होता है । जिसका अभिग्रह इस प्रकारका होता है कि मैं अपनेस लिये हुए एषणीय अज्ञानादिकद्वारा साधर्मियों की पैयाहृत्य करूँगा और साधर्मिकोंके द्वारा भी अपनेस अवशिष्ट दिय गय एषणीय अज्ञानादिकका स्वीकार करूँगा । ४९४-४९६
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ४९७
- ८ जिस साधुको यह मान्य है कि मरा शरीर अब सन्नक्त नहीं है वह साधु संभारा कर । उद्देश समाप्ति । ४९८-४९९

॥ इति सप्तम अधेष्ठ ॥

विषय

उस मुनि को चाहिये कि आहार को क्रमिक अल्प करे, आहार को अल्प कर के और कपायों को कृश कर के अपनी आत्मा को समाहित करते हुए, और मसारजनित कर्म के क्षपण करने की भावना रखते हुए इन्द्रित मरण करे।

४७६-४७९

९ पञ्चम सूत्र का अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया ।

४८०

१० ग्रामादि किसी स्थानमें जाकर साधु तृण की याचना करे, तृण लेकर एकान्त स्थानमें जायें । वहाँ कल्पनीय भूमि की प्रतिछेखना प्रमार्जना कर के वहाँ पर तृण का संधारा करें और फिर इन्द्रित मरण से शरीर त्याग करे । ऐसा मुनि सत्यवादी, रागद्वेषरहित, तीर्ण, हृद, जीवाजीवादिपदार्थश्च और अपारससार का पारगामी होता है । वह मुनि इस इन्द्रितमरण को सत्य समझकर अनेकविध परीपहोपसर्गों को सह कर, इस जिनशासनमें विश्वस्त हो कातर जनों के असाध्य साधुओं के आचार का आचरण करता है । व्याधिनिमित्त इन्द्रित मरण करने वाले साधु का वह धरण पण्डित मरण ही है, यावत् वह आनुगामिक है । उद्देश समाप्ति ।

४८१-४८७

॥ इति पण्ड उेश सपूर्ण ॥

+

॥ अथ सप्तम उद्देश ॥

१ सप्तम उद्देशका षष्ठ उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन,

प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया

४८८-४८९

२ जो प्रतिमाधारी साधु बस्त्ररहित हो कर संयममें तपस्व रहता है उस मुनिके चित्तमें यह भावना होती है कि मैं तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशरुस्पर्श सह सकता हूँ, और भी विविध स्पर्शों को सह सकता हूँ ; परन्तु लज्जाको नहीं छोड़ सकता हूँ । ऐसे साधुको कटिचन्धन धारण करना कल्पता है ।

४८९-४९१

विषय	पृष्ठसं.
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८
१४ मुनि ग्राम अधमा अरण्यमें प्राणिवर्मित स्पष्टिस्मका प्रति छेदन करके वहां पर दर्भका संयारा बिछावे ।	५०८
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०९
१६ मुनि आहारको छोड़ कर उस दर्भसंयाराके ऊपर शयन करे, अतुच्छ्रु प्रतिदूष्य सभी परिपर्हाका सह ।	५०९-५१०
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६१०
१८ उस छत्र्या पर उस मुनिके मांसलोभितको कीटियां और सूक्ष्म आदि पक्षी स्त्रावे तो उनकी हिंसा न करे और न सतस्थानका प्रमार्जन ही करे ।	५१०
१९ दशवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५११
२० साधु यह विचार करे कि ये प्राणी मेरे शरीरकी हिंसा करते हैं रत्नप्रयकी तो नहीं करते। ऐसा विचार कर वह उन्हें निवारित न करे। अपनी शत्रुतासे कमी दूर न जाय और परीपहो पसमौका सहन करे ।	५११
२१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया	५१२
२२ बाह्याभ्यन्तर ब्रह्मसे रहित अपनी आत्माको माणित करते हुए मुनि अन्तिमभावोच्छ्वासपर्यन्त समाधियुक्त रहे । इस प्रकारका मुनि कर्मके निश्चेष होने पर मोक्षगामी होता है और यदि कर्म अवशिष्ट रह जाता है तो देवलोकगामी होता है। गीतार्थ संपत्नी इस इच्छित मरणको सम्यक् प्रकारसे स्वीकृत करता है ।	५१२-५१३
२३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५१३
२४ यह इच्छितमरणकर्म धर्म महाबाल महावीरन कहा है, यह मरण मत्स्यपरिग्रामरणसं मिश्र है। इस मरणका अभिलाषी मुनि	

विषय	पृष्ठाङ्क
१ अष्टम उद्देशका सप्तम उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम गाथा और उसकी छाया ।	५००
२ बुद्धिमान् धीर मुनि क्रमशः भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और पादपोषगमनरूप विमोहको प्राप्त कर, उस भक्तपरिज्ञानादिक के औचित्य अनौचित्यको विचार कर समाधिका परिपालन करे ।	५०१-५०२
३ द्वितीय गाथाका अवतरण, द्वितीय गाथा और छाया ।	५०२
४ मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तपका सेवन कर, शरीरके अशक्त हो जाने पर भक्तप्रत्याख्यान आदिमें से किसी एकको स्वीकार कर आहारादिकी गवेपणासे निवृत्त हो जाता है ।	५०२-५०३
५ तृतीय गाथाका अवतरण, तृतीय गाथा और छाया ।	५०३
६ वह भिक्षु अल्पाहारी होता है, कपायादिको कृश करके दूसरोंके दुर्वचनोंको सह लेता है । यदि उस भिक्षुको आहार न मिले तो वह आहारका परित्याग कर देता है ।	५०४-५०५
७ चतुर्थ गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०५
८ सलेखना करनेवाले मुनिको जीवन-मरणकी अभिलाषासे रहित होना चाहिये ।	५०६
९ पांचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०६
१० सलेखनाकारी मुनि निर्जराकी अपेक्षा रखता हुआ मध्यस्थ हो कर समाधिकी परिपालना करे, और कपाय एवं शारीरिक उपकरणों को छोड़ कर अन्तःकरणको शुद्ध करे ।	५०६-५०७
११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०७
१२ अपनी आयुके उपक्रमको जान कर मुनि संलेखनाकालके बीचमें ही भक्तप्रत्याख्यान करे ।	५०७-५०८

- ग्रहण नहीं करना चाहिये। इच्छित मरणमें स्थित मुनि अपनी आत्माको काययोग और मनोयोगसे पृथक् करे और समी परीपद्मोपसर्गोंको सहन करे। ५२०-५२२
- ३७ उषीसर्वी गाथाका अवतरण, गाया और छाया। ५२२
- ३८ इच्छित मरणकी अपेक्षा श्रेष्ठ पादपोषगमन मरणमें जो मुनि स्थित होता है उसके समी अङ्ग भक्त्य भायें तो मी वह अपने स्वान्तर्ग नहीं ठठे। ५२२-५२३
- ३९ तीसरी गाथाका अन्तरण, गाया और छाया। ५२३
- ४० यह पादपोषगमन मरण मन्त्रपरिज्ञा और इच्छितमरणसे श्रेष्ठ है, अतः मुनि पादपोषगमनमरण स्वीकार करे। ५२४-५२५
- ४१ इषीसर्वी गाथाका अन्तरण, गाया और छाया। ५२५
- ४२ मुनि ऋषिवादाहारको छोड़कर अविच्छिन्न स्थब्धिलमें पर्वतके समान अप्रकम्प रह कर विहित प्रत्युपेक्ष्यादि क्रिया करते हुए समी प्रकृतिसे शरीर ममत्त्वका परित्याग करे। यदि उसे परीपद्मोपसर्गकी बाधा उपस्थित हो तो विचार करे कि यह शरीर अब मेरा नहीं है तो उसमें होमेवामी परीपद्मोपसर्गकी बाधासे मेरा क्या सम्बन्ध ? यह मेरा कुछ भी नहीं भिगाह सकती। ५२६
- ४३ चौथी गाथाका अन्तरण, गाया और छाया। ५२७
- ४४ इन परीपद्मोपसर्गों को तो पादपोषगमन सहना ही है। ऐसा विचार कर शरीर परित्यागनिमित्त, सकल शारीरिक म्या पारसे रहित हो कर पादपोषगमनमरणके विधिज्ञ वह मुनि समी परीपद्मोपसर्गों को सह। ५२७
- ४५ तेईसवीं गाथाका अवतरण, गाया और छाया। ५२७-५२८

विषय

पृष्ठाङ्क

- ४६ यह मुनि ऐहिक कामसोगोंका अनुरागी न बने,  
और मोक्षके स्वरूपका पर्यालोचन कर इन्द्रादि देवपदोंकी  
भी अभिलाषा न करे । ५२८
- ४७ चौबीसवीं गाथाका अवतरण; गाथा और छाया । ५२९
- ४८ यदि राजा जीवनपर्यन्त निर्वाहके लिये धनादिक प्रदान  
करे, और कोई देव दिव्य ऋद्धि देनेके लिये प्रगट होवे तो  
भी मुनि अपने तपको खण्डित नहीं करे । वह मुनि राज-  
प्रदत्त ऐश्वर्यको और देवप्रदत्त दिव्य ऋद्धिको आत्मकल्याण  
के प्रतिकूल जान कर ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मोंको  
विनष्ट करे । ५२९-५३०
- ४९ पच्चीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३०-५३१
- ५० पाचों प्रकारके शब्दादिकोंमें अथवा उनके साधक धनोंमें  
गृद्धि छोड कर मुनि पादपोषगमन मरणसे आयुकालका पार-  
गामी होवे । मुनि तितिक्षाको उत्कृष्ट समझ कर भक्तपरिज्ञा,  
इङ्गितमरण और पादपोषगमन, इन तीनोंमेंसे किसी एकको  
अपनी शक्तिके अनुसार स्वीकार करे; क्यों कि ये तीनों  
ही कर्मनिर्जराकारक हैं । अष्टम उद्देशकी समाप्ति । ५३१-५३२
- ५१ अध्ययनस्य विषयोंका उपसंहार । ५३२-५३५

॥ इति अष्टम अध्ययन ॥

\*

॥ अथ नवम अध्ययन ॥

( प्रथम उद्देश )

- १ नवम अध्ययनका पूर्वोक्त अध्ययनोंके साथ सम्बन्धप्रतिपा-  
दन, 'उपधानश्रुत' शब्दकी व्याख्या, अध्ययनके चारों  
उद्देश्योंमें आये हुए विषयोंका दिग्दर्शन । ५३६-५३८



विषय

पृष्ठाङ्क

- २ मगधम गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३८
- ३ मगधान् महावीरस्वामीके चरित्रवर्णन का प्रस्ताव । मगधान् महावीरस्वामी उल्लिखित हो मगध्याकासको जान कर हेमन्त ऋतुमें प्रव्रजित हुए, और मगध्या ग्रहण कर दूरन्त ही वहाँ से बिहार किये । ५३८-५३९
- ४ दूसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३९
- ५ मगधान्ने जो ब्रह्म धारण किया था वह तीर्थङ्करपरम्पराके रक्षार्थ; नहीं कि हेमन्तऋतुमें अतीरघञ्जादन निमित्त । ५४०-५४१
- ६ तीसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४१
- ७ मगधान्के शरीरपर भ्रमरादि माणी कुछ अधिक भार महीनों तक बन्धनादिकी गन्धसे आकृष्ट हो कर विघरते थे और रक्तमांसकी जमिजापासे उनके शरीरको छसते थे । ५४२
- ८ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ९ मगधान्ने एक वर्षसे कुछ अधिक काल तक ब्रह्म धारण किया, उसके बाद ब्रह्म त्याग कर वे अचेस हो गये । ५४२-५४३
- १० पाँचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ११ मगधान् जब रास्तामें बिहार करते थे तो बाष्कलग्ण उन्हें देख कर भूछि-पत्थर आदिका प्रक्षेप करते थे, और इनको देखनेके लिये दूसरे बाष्कोंको भी पुछाते थे । ५४३-५४४
- १२ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४४
- १३ मगधान् जब किसी पासस्वानमें घिरावते थे, वहाँ कि स्त्री पुरुष आदि सभी रात्रिवासके लिये ठहरते थे । वहाँ किसी स्त्रीद्वारा प्रार्थित होने पर भी मगधान् उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते अपि तु समय माग में अपनी आत्माको स्थापित कर ध्यान करते थे । ५४४-५४५

विषय	पृष्ठाङ्क
१४ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४५
१५ गृहस्थलोग भगवान्के पास एकत्रित होते तो वे उनकी ओर लक्ष न दे कर अपने ध्यानमें ही मग्न रहते । यदि वे गृहस्थ उनसे कुछ पूछते तो चुपचाप वहांसे चल देते । वे ध्यानसे कभी भी विचलित नहीं होते ।	५४६
१६ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४६
१७ भगवान्को कोई अभिवादन करता था तो वे उससे प्रसन्नता नहीं प्रगट करते थे, और यदि कोई अभिवादन न करे तो उस पर क्रुद्ध भी नहीं होते थे । अनार्य देशोंमें भगवान् को यदि कोई ताडन आदि करता तो भी उनका भाव कलुषित नहीं होता ।	५४६-५४७
१८ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४७
१९ भगवान् महावीरस्वामी कठोर वचनोंको सहते थे, वृत्त्य, गीत, दण्डयुद्ध और मृष्टियुद्ध आदिको सुनने और देखनेके लिये उन्हें क्रुतहलता नहीं होती ।	५४८
२० दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४८
२१ भगवान्ने कभी कभी परस्पर कामकथामें संलग्न स्त्रियोंको देखा, परन्तु उन्हें राग नहीं हुआ । भगवान्ने संयमकी आराधनानिमित्त परीषद्दोपसर्गों को कुछ भी नहीं गिना ।	५४८-५४९
२२ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४९
२३ भगवान् साधिक दो वर्ष सचित्त जलका परित्याग कर एकत्व भावना भाते और क्रीष छोडते हुए, सम्यक्त्वभावना एव शान्तिसे युक्त हो कर प्रव्रज्या ग्रहण की ।	५४९-५५०
२४ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५०

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- २५ मगवान् पद्मजीवनिकायके स्वस्वको ज्ञान कर उनके आरम्भ का परिहार करते हुए विचरते थे । ५५०
- २६ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५१
- २७ 'ये पृथिवी आदि पद्मजीवनिकाय सचिच हैं' । ऐसा विचार कर उनके स्वस्व और मेघ-पमेदोंको ज्ञान कर उनके आरम्भ को परिषिञ्चित करके विचरते थे । ५५१
- २८ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५१-५५२
- २९ स्वावर जीव प्रस हो कर उत्पन्न होते हैं, और प्रस जीव स्वावर हो कर । अथवा समी जीव अपने उपार्जित कर्मांनुसार समी योनियोगि उत्पन्न होते हैं । ५५२-५५३
- ३० पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५३
- ३१ मगवाने इस प्रकार समझा कि ये मोहयुक्त प्राणी द्रव्य और मातृ उपधिसे युक्त हो कर कर्मके प्रभावसे कष्टोक्तका अनुभव करते हैं । इस सिद्ध मगवान् ने समी प्रकारके कर्मोंका परित्याग कर दिया । ५५३
- ३२ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५४
- ३३ मगवान् ने दोनों प्रकारके कर्मोंको ज्ञान कर और आशानस्रोत, अतिपावस्रोत और दुष्पिहित मनोवाक्यायको कर्मबन्धका कारण ज्ञान कर संयमको पाठा । ५५४-५५५
- ३४ सप्तहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५५
- ३५ मगवान् ने हिंसाको सर्वथा छोड़ कर अहिंसाका उपदेश दिया उन्होंने शिष्योंको सकल कर्मबन्धका मूल समझा, इस प्रकार उन मगवान् ने संसारके यथाप्रमिथ स्वस्वको देखा । ५५५
- ३६ अठारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५६
- ३७ ये मगवान् आपाकर्मविदोपयुक्त आशान्तदिको ज्ञान कर पीयादि कर्मोंका बन्ध समझा, इसीसिधे उन्हें निःसंशय सेवन

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- नहीं किया । तथा भगवान् ने पापकारण सदोप अन्नादिकको स्वीकार नहीं करते हुए प्रासुक आहारका सेवन किया । ५५६
- ३८ उन्नीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५६-५५७
- ३९ उन भगवान् ने दूसरोंके वस्त्रका कभी भी सेवन नहीं किया, दूसरेके पात्रमें भी उन्होंने भोजन नहीं किया। भगवान् अपमानकी गणना नहीं करके आहार बननेके स्थानमें आहारके निमित्त जाते थे । ५५७
- ४० बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५७
- ४१ भगवान् अशनपानके मात्राज्ञ थे, वे कभी भी मधुरादिरसोंमें आसक्त नहीं हुए । भगवान् सर्वदा अप्रतिज्ञ रहे । उन्होंने ने आंखे कभी भी, नहीं धोयीं, और न उन्होंने ने कभी शरीर को खजुआया । ५५८
- ४२ इक्कीसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५५९
- ४३ भगवान् मार्ग में चलते हुए न अपनी दृष्टि को तिरछी करते थे और न पीछे की ओर वे दृष्टिपात करते थे, कोई कुल पूछता था तो कोई उत्तर भी नहीं देते थे, किन्तु आगे की ओर अपने शरीरप्रमाण भूमि को देखते हुए यतनापूर्वक विहार करते थे । ५५९
- ४४ बाईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५५९
- ४५ मार्गमें चलते हुए भगवान् महावीर शिशिर ऋतुमें वस्त्र छोड़ कर, दोनों बाहुओं को कन्धों पर नहीं रख कर किन्तु दोनों बाहुओं को पसार कर परीषद और उपसर्गों को सहने के लिये यत्न करते थे । ५६०
- ४६ तेईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५६०
- ४७ भगवान् ने इस प्रकार का आचार का सेवन किया । उन्होंने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे मुनि भी इसी तरह आचारकापालन करे । उद्देश समाप्ति । ५६०-५६१

॥ इति प्रथम उद्देश संपूर्ण ॥

## ॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ द्वितीय उद्देश का प्रथम उद्देश के साथ सन्ध्यामतिपादन, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६२
२ विहार में भगवान् जिन आसनों को, शून्याओं को सवित किया उन्हें करें—इस प्रकार जम्बू स्वामी का प्रथम ।	५६२
३ द्वितीय गाथा का अवतरण, गाथा और छया ।	५६३
४ सुषर्मा स्वामी का उचर—भगवान् ने विहारकाष्ठीमें शून्य गृहोंमें, समाश्रमोंमें, प्रपाशालाओंमें, पण्यशालाओंमें, कारस्ता नोंमें, पुञ्जाल की बनी कुटियोंमें निवास किया ।	५६३-५६४
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छया ।	५६४
६ भगवान् ने कमी चर्मशालाओंमें, उद्यान स्थित गृहोंमें, नगर के मध्यभागमें, स्नानशालाओंमें, शून्यगृहोंमें, वृक्षमूलोंमें निवास किया ।	५६४
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छया ।	५६५
८ भगवान् ने इस प्रकारके आवासोंमें कुछ अधिक तेरह वर्षों तक निवास किया, और वहाँ पर निद्रादिप्रमाद और विस्रोत सिद्ध से रहित भगवान् ध्यानावस्थामें रहे ।	५६५
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छया ।	५६५
१० भगवान् महावीर स्वामी अधिक सोते नहीं थे, यदि निद्रा आने लमवी थी तो भगवान् सावधान होकर जागते रहते थे, भूमितिष्ठ भगवान् छत्रस्वावस्थामें रात्रि के अन्तिम प्रहरमें अन्तर्गृहार्चनाप्र श्रयन करते थे ।	५६६
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छया ।	५६६
१२ भगवान् महावीरस्वामी निद्राके दोषोंको अच्छी तरह जानते हुए निद्रा आनेके समय उठ कर, बाहर निकल कर, एक गृहार्च भ्रमण कर फिर ध्यानमें बैठ जाते थे ।	५६६-५६७

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- १३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५६७
- १४ आश्रयस्थानोंमें भगवान्को भयकर, अनेक प्रकारके उपसर्ग हुए और सांप, नेवले तथा गीध आदिके भी उपसर्ग हुए । ५६७
- १५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५६७-५६८
- १६ चोर व्यभिचारी आदि, शक्तिधारी ग्रामरक्षक, व्यभिचारिणी स्त्रियां और अन्य पुरुष लोग भगवान्को उपसर्ग करते थे । ५६८-५६९
- १७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५६९
- १८ भगवान् ऐहलौकिक पारलौकिक अनेक प्रकारके उपसर्गों को सहते थे, और अनेक प्रकारके सुरभि-दुरभिगन्धों को भी सहते थे । ५६९
- १९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७०
- २० भगवान् पांच समितियोंसे युक्त होकर अनेक प्रकारके स्पृशोंको सहन किये, अल्पमापी भगवान् संयममें अरति और विषयानन्दमें रति को दूर कर संयमके आराधनमें प्रवृत्त हुए । ५७०
- २१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७०
- २२ शून्य घरोंमें अथवा निर्जन प्रदेशोंमें लोग भगवान्से विविध प्रश्न पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे । कभी कभी कोई कोई जार पुरुष आदि आ कर भगवान्से पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे; तब वे क्रुद्ध हो कर भगवान् को दण्ड मुष्टि आदिसे ताडते थे; लेकिन भगवान् निर्विकार हो कर सब सह लेते थे । ५७१
- २३ बारहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५७२
- २४ भगवान्से कभी कोई पूछता-‘तुम कौन हो?’ तब भगवान् कहते मैं भिक्षु हूँ । तब वे भगवान् को निकल जानेके लिये कहते तब भगवान् वहांसे चले जाते । यदि नहीं जानेको कहते तो भगवान् कपाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावसे मौन होकर धर्मध्यानमें सलग्न रहते । ५७२
- २५ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७३

विषय	पृष्ठाङ्क
२६ शिशिर ऋतुमें पवनके चलने पर कितनेक अनगार कांपते थे, कितनेक अनगार उस हिमपातसे बचनेके लिये निर्वात स्थानकी खोज करते थे।	५७३
२७ चौदहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया।	५७३
२८ उस हिमऋतुमें कितनेक अनगार शीतनिवारणके लिये सपाटी ओढ़ते थे। परतीर्थिक तापसादि धूनी चला कर शीतपारण करते थे और गृहस्थ लोग विविध प्रकारके वस्त्र पारण करते थे।	५७४
२९ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।	५७४-५७५
३० भगवान् महावीरने उस शिशिर ऋतुके हिमपातमें भी अनाहत स्थानमें ही रह कर हिमस्पर्शको समभावसे सहते थे।	५७५
३१ सोलहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया।	५७६
३२ भगवान् महावीरने इस प्रकारके दुःसह शीतोंको अनेकवार सहा। भगवान्का उद्देश इसमें यह था कि दूसरे साधु भी इसी प्रकार शीतका सहन करे। उद्देश समाप्ति।	५७६-५७७

।इति द्वितीय उद्देश संपूर्ण।।

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

१ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धरूपन, भगव गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया।	५७८
२ भगवान् सर्वदा सभी प्रकारके स्थलों को सहते थे।	५७८-५७९
३ द्वितीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।	५७९
४ भगवान्ने दुःखर साह देखती ब्रह्मभूमि और शुभ्रभूमिमें विहार किया। वहां अन्तमान्त शय्या आदिका दर्शन सेवन किया।	५७९-५८०

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- ५ तृतीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८०
- ६ लाह देशमें वहाँके लोगोंने भगवान् को बहुत उपसर्ग किये । कितनेक तो भगवान् की ताडना करते थे, और कुत्ते भगवान् को काटते थे और गिरा कर उनके ऊपर चढ़ बैठते थे । ५८०-५८१
- ७ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८१
- ८ बहुत थोड़े ऐसे लोग थे जो हिंसक मनुष्योंको और काटते हुए कुत्तों को रोकते थे; अधिकतर तो ऐसे ही मनुष्य थे जो भगवान् को ताडन करके उनके ऊपर कुत्तों को हुलकाते थे । ५८१
- ९ पांचवीं गाथाका अवतरण, और छाया । ५८२
- १० लाह देशकी वज्रभूमिके लोग तुच्छअन्नभोजी और क्रूर स्वभावके थे । वहाँ पर अन्यैतैरिक्क श्रमण लाठी और नालिका ले कर विहार करते थे । ५८२-५८४
- ११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८४
- १२ उस लाहदेशमें लाठी और नालिका ले कर यद्यपि अन्य तैरिक्क श्रमण विहार करते थे तो भी उन्हें कुत्ते काट लेते थे । यह लाह वस्तुतः बड़ा ही दुश्चर था । ५८५
- सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८५
- १४ भगवान् लाहदेशकी उस अनार्य भूमिमें भी हंडे आदिके विना ही विचरण करते हुए सभी प्रकारके उपसर्गों को सहै । ५८६
- १५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८७
- १६ सम्राटके अग्रभागमें हाथी जैसे शत्रुसेनाको जीत कर उसके पारगामी होता है उसी प्रकार भगवान् भी परीपहोवसर्गोंको जीत कर उनके पारगामी हुए । विहार करते हुए भगवान्



कमी २ ग्रामको प्राप्त नहीं करते वे अर्थात् ग्रामसे दूर भरण्य आदिमें विद्यत मार्गपर होते उसी समय ग्रामवासी अनार्य लोग आकर मगवान्को परीपदोपसर्ग किये ।

५८७

१७ नवमी गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।

५८८

१८ मगवान् बिहार करते हुए ग्रामके समीप पहुचते वे कि ग्रामवासी लोग आकर उन्हें दण्डे आदिसे ताडित करते थे और कहते थे कि यहसि चले जाओ ।

५८८

१९ दसवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।

५८९

२० अनार्य लोग मगवान्को दण्डे आदिसे बाइत कर रक्षा मचाते थे ।

५८९

२१ ग्यारहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।

५८९

२२ मगवान्के शरीरमें जहां जहीं पाव या बरिं ये अनार्य लोग नोंचते थे और मगवान् के ऊपर घुल्लि डालते थे ।

५८९-५९०

२३ बारहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।

५९०

२४ मगवान्को कितनेक अनार्य ऊपर उठाकर पटक देते थे, कितनेक उन्हें आसनसे गिरा देते थे; इन सभी उपसर्गोंको कायोत्सर्गस्थित धर्मप्यानसीन मगवान्ने समतापूर्वक सहा ।

५९०-५९१

२५ तेरहवीं गाथा का अन्तरण, गाथा और छाया ।

५९१

२६ संग्राम के अग्रभागमें शूर वीर पुरुषके समान मगवान् बहों पर घुल्ल मोढ़े पिना आगे आगे बिहार करते थे ।

५९१-५९२

२७ चौदहवीं गाथा का अन्तरण, गाथा और छाया ।

५९२-५९३

२८ मगवान् महावीरने इस प्रकार के उपसर्ग परीपदोंको इसलिये सहा कि इसरे घुनि मो मेरे देखादेखी उपसर्ग-परीपदोंके सहनेमें हठ रहें। ठरेस समाप्ति ।

॥ इति तृतीय उद्वेग संपूर्ण ॥

- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव संसारका स्वरूप जानकर स्वयं सबुद्ध हो तीर्थप्रवर्तन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से समुद्भूत आत्मशोधि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कषायाग्नि के प्रशमन से शीतीभूत होकर यावज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सत्रहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का वारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाळा कि दूसरे भी साधु भैरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पाळन करें । उदेश समाप्ति । ६१६
- ३३ नवम अध्ययन का उपसंहार और शास्त्रप्रशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



॥ अध्याचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामक पञ्चममध्ययनम् ॥

गर्तं चतुर्थमध्ययनं साम्मतं पञ्चममध्ययनं प्रारभ्यते । चतुर्थाध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणमन्यं चारित्र्यं, तदेष प्रधानं मोक्ष-कारणमतस्तदस्य लोक सारभूतमिति लोकसारास्यमिदमध्ययनम् ; तथा हि—लोकस्य सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारचारित्र्यं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य प्रतिपादनम्, तेन लोकसारतया चारित्र्यमत्र प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहाध्ययन-पर्याप्तिकारस्तु 'लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः' इति । उद्देशार्थाधिकारो यथा—

॥ आचाराङ्गसूत्र का लोकसारनामक पांचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है । अब यहाँ पंचम अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का नाम 'लोकसार' है । लोकमें सारभूत चारित्र्य है । यह चारित्र्य सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होना है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला चारित्र्य ही सम्यक्चारित्र्य है । वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है । लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र्य और चारित्र्यका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्र्यका ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र्य ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये । इस प्रकार यहाँ पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार इस प्रकार है—

आचाराङ्गसूत्रनु 'लोकसार' नामनु पांचसु अध्ययन.

यद्यु अध्ययन कहेवाचं अयं छे हवे अर्थाधी पांचमा अध्ययनना प्रारंभ वाच छे यथा अध्ययनमा सम्बद्धत्व जने तेना अतर्गत ज्ञानगी समबद्ध आप-वाभा आवी छे आ यत्रमा अध्ययननु नाम 'लोकसार' छे लोकमा सारभूत चारित्र्य छे ते चारित्र्य सम्बन्धर्तन जने सम्बन्धज्ञानधी वाच छे तदर्थं छे तेनाधी वर्तु चारित्र्य तेष सम्बद्ध चारित्र्य छे तेने व मोक्षनु प्रधान कारण मानवार्थ आवे छे लोकने सार धर्म धर्मना सार ज्ञान, ज्ञानना सार चारित्र्य जने चारित्र्यना सार मोक्ष छे आ कारणधी लोकमा सारभूत होनेधी चारित्र्यनु व वर्णन आ अध्ययनमा कस्याभा आवये. "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र्य व लोकना सार छे ज्येभ माननु ज्येभजे. आ अर्धी अध्ययनना अर्थाधिकार छे. उद्देशना अर्थाधिकार आ प्रभावे छे—

## ॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देश का तृतीय उद्देश के साथ संबन्धकथन, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९४
२ भगवान् अवमोदरिका तप करते थे और कभी भी चिकित्सा (इलाज) नहीं करवाते थे ।	५९४-५९५
३ दूसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९६
४ भगवान् कभी भी रेचन और वमनका औषध नहीं लिया और गात्राभ्यञ्जन, सवाहन और दन्तप्रक्षालन नहीं किये ।	५९६-५९७
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९९
६ भगवान् शब्दादि विषयों से निवृत्त, अहिंसक और अल्प भाषी होकर विचरते थे और शीतकालमें वृक्ष या लता-मण्डप की छायामें बैठ कर धर्मध्यान ध्याते थे ।	६००
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६००
८ भगवान् ग्रीष्म ऋतुमें सूर्याभिमुख उत्कृडुकासन (उकडु आसन) से बैठ कर सूर्यकी तापना लेते थे, और नीरस ओदन, वेरका चूर्ण, कुल्माष आदि आदि से शरीरनिर्वाह करते थे ।	६००
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६०१
१० भगवान् इन नीरस ओदनादिकों को सेवित करते हुए आठ मास वित्ताये, कभी अर्द्धमासिक चतुर्विधाहारस्थागरूप तप किया ।	६०१
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६०१-६०२
१२ कभी कभी भगवान् अट्ठाई महीने तक, तो कभी कभी छ महीने तक पानी भी नहीं छेते हुए चोचिहार तपस्या की, और पारणा के दिनमें अन्त भ्रान्त ओदनादि से पारणा किये ।	६०२
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०२
१४ भगवान् सयमसमाधिको देखते हुए छठ, अष्टम, दशम और द्वादश तपका पारणा करते थे ।	६०२

क्रिय	पृष्ठ
१५ आठवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०३
१६ भगवानने पापकर्मोंका तीन करणतीन योगसे परित्याग किया ।	६०३
१७ नवमी गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०३
१८ भगवान् ग्राम और नगरमें प्रवेश करके उद्गमदोष और उत्पादनादोष रहित शुद्ध आहारको ग्रहणपणादोषका परिषेवन करत हुए ग्रहण करते थे ।	६०३-६०४
१९ दसवां गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०४
२० भगवान् कीड़े और कबूतर आदि पक्षियोंको पृथ्वी पर आहारके निमित्त स्थित देख कर उन्हें बाधा नहीं हो, इस प्रकारसे मार्गके एक ओरसे धीरे धीरे चले हुए आहारकी श्लेषणा करते थे ।	६०४-६०५
२१ न्यारहवीं और बारहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०५
२२ प्राणियों या क्षाम्पादि श्रमणों या अन्य जीवोंकी हृत्तिच्छेद नहीं हो; इस प्रकारसे आहारका अन्वेषण करते थे ।	६०५-६०६
२३ तेरहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०६
२४ भगवानको निर्दोष आहार जैसा-कैसा अन्त भ्रान्त भी मिलता था उसीको छे कर समयमें स्थित रहते थे, और यदि नर्हा मिश्रता था तो वे किसीकी निन्दा नहीं करते थे ।	६०६-६०८
२५ चौदहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०८
२६ उच्छुद्धिकादि आसनस्थित भगवान् निर्विकार हो कर ध्यान करते थे ।	६०८-६०९
२७ पन्द्रहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६०९
२८ भगवान् कषाय और वृद्धि और ममत्वरहित हो कर ध्यान ध्याते थे । भगवानने छत्रस्थानस्थानमें भी कर्मो ममाद नहीं किया ।	६०९-६१३
२९ सोलहवीं गाथाका अन्तरण, गाथा और छाया ।	६१४

विषय

- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव संसारका स्वरूप ज्ञानकर स्वयं सद्बुद्ध हो तीर्थप्रवर्तन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से समुद्भूत आत्मशोधि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कपायाग्नि के प्रशमन से शीतीभूत होकर यावज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सत्रहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का वारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे भी साधु मेरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पाछन करें । उद्देश समाप्ति । ६१६
- ३३ नवम अध्ययन का उपसंहार और शास्त्रप्रशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामकं पञ्चममध्ययनम् ॥

गते चतुर्थमध्ययनं साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारम्भ्यते । चतुर्थाध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणमन्यं चारित्र्यं, तदेव प्रधानं मोक्षकारणमतस्तद्वद् भोके सारभूतमिदं मोक्षसारास्यमिदमध्ययनम् । तथा हि—लोकस्य सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारचारित्र्यं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य प्रतिपादनम्, तेन लोकसारतया चारित्र्यमात्रं प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहाध्ययनार्थाधिकारस्तु 'लोकस्य सार' परिधिन्तनीयः' इति । उद्देशार्थाधिकारो यथा—

॥ आचाराङ्गसूत्रं का लोकसारनामकं पाँचवां अध्ययन ॥

चतुर्थं अध्ययनं प्रतिपादितं किया जा चुका है । अब यहाँ पंचम अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का नाम 'लोकसार' है । लोकमें सारभूत चारित्र्य है । यह चारित्र्य सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होता है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला चारित्र्य ही सम्यक्चारित्र्य है । वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है । लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र्य और चारित्र्यका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्र्यका ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । "लोकस्य सारः परिधिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र्य ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये । इस प्रकार यहाँ पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार इस प्रकार है—

आचाराङ्गसूत्रं 'लोकसार' नामनु पाँचवुं अध्ययन

चतुर्थं अध्ययनं कहेवाळें जयुं छे हवे अर्धीशी पावभा अध्ययनने प्रारंभ बाळ छे वीधा अध्ययनमा सम्भूत्वं जने तेना अतर्गतं ज्ञानणी सम्यक्त्व आचाराङ्गमाणी छे आ पावभा अध्ययननु नाम 'लोकसार' छे लोकमा सारभूत चारित्र्य छे ते चारित्र्य सम्भूदर्शन जने सम्भूज्ज्ञानधी बाळ छे तात्पर्यं छे तेनाधी यतुं चारित्र्य तेज सम्भू चारित्र्य छे तेने च मोक्षनु प्रधान कारण मानवामा आवे छे लोकने सार धर्म धर्मने सार ज्ञान, ज्ञानने सार चारित्र्य जने चारित्र्यने सार मोक्ष छे आ कारणधी लोकमा सारभूत होवाणी चारित्र्यनु च वर्णन आ अध्ययनमा क्वाभा आवरी. "लोकस्य सारः परिधिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र्य च लोकने सार छे जेभ मानवुं मोक्षमे. आ अर्धी अध्ययनने अर्थाधिकार छे उद्देशने अर्थाधिकार आ प्रभावे छे—

प्रथम उद्देशे—हिंसासमारम्भाधिकारः प्रथम, यदर्थं हिंसादयः सावधव्यापारा विधीयन्ते, तेषां विषयाणामधिकारो द्वितीयः, विषयार्थमेव विहरन्न मुनिर्भवतीति च तृतीय इत्यधिकारत्रयं प्रतिपाद्यते ।

द्वितीये च—‘हिंसादितो विषयादितोऽप्रशस्तैकचर्यातो वा विरतो मुनिर्भवती’-ति वर्णितम् ।

तृतीये—एष विरत एव मुनिरपरिग्रहो निर्विण्णकामभोगश्च भवतीति दर्शितम् ।

चतुर्थे—चाऽगीतार्थमुनेरेकाकिविहरणे प्रत्यक्षाया भवन्तीति कथितम् ।

इस अध्ययन के छह उद्देश हैं, इन में—(१) प्रथम उद्देशमें प्रथम-हिंसासमारम्भाधिकार, द्वितीय-जिनके लिये हिंसा आदि सावध व्यापार किये जाते हैं उन विषयों का अधिकार, तृतीय-विषयों के लिये ही विचरण करनेवाला मुनि नहीं होता है, इसका अधिकार, इस प्रकार तीन अधिकार बतलाये गये हैं ।

(२) द्वितीय उद्देशमें यह बतलाया गया है कि-हिंसादि से विषयादि से तथा अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त ही मुनि होता है ।

(३) तृतीय उद्देशमें इस बात की व्याख्या की गई है कि-जो हिंसादि से, विषयादिसे और अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त है वही मुनि है, वही अपरिग्रही है और वही कामभोगों से विरक्त है ।

(४) चतुर्थ उद्देशमें अगीतार्थ मुनिको एकाकी हो कर विचरना नहीं चाहिये, क्यों कि-इस प्रकार के विहार में उसे अनेक विघ्नबाधाएँ आती हैं, यह विषय बतलाया गया है ।

आ अध्ययनना छ उद्देश छे, ते उद्देशे पैकी (१) प्रथम उद्देशमा पहुँचो-हिंसासमारम्भाधिकार, गीने-जेने माटे हिंसा आदि सावध व्यापारे करवामा आवे छे ते विषयोना अधिकार, तीने-विषयोने माटे न विचरषु करवावाणो मुनि नथी थतो-जेना अधिकार, आ प्रकारे त्रयु अधिकारो कहेवामा आवेला छे

(२) तीन उद्देशमा जे पताववामा आव्यु छे के हिंसादिथी, विषयादिथी अने अप्रशस्त ऐकचर्याथी रहित न मुनि थाय छे

(३) तीन उद्देशमा जे बातनी व्याख्या पताववामा आवी छे के न हिंसादिथी, विषयादिथी अने अप्रशस्त ऐकचर्याथी रहित छे, ते न मुनि छे, ते न अपरिग्रही छे अने ते न कामभोगीथी विरक्त छे

(४) चौथा उद्देशमा आ गीतार्थ मुनिजे ऐकलवाया (ऐकलविहारी) लवनमा रहिने विचरवुं न जेई जे, कारण के आवा प्रकारना विहारमा तेने घण्टा प्रकारना विघ्नो आवे छे, आ विषय पताववामा आवेल छे



पञ्चमे च—इदोपमा सर्वतो गुणा निःसङ्गा ज्ञानदर्शनचारिप्रचारिणो विश्वोत्सिका  
रक्षिताः संपमिनो मवयुरिस्वमिरितम् ।

पठे च—कुदृष्टे रागद्वेषयाध परित्यागा वर्षित ।

अन्तरसूत्रसम्बन्धा यथा—पूर्वसूत्रे 'साहिस्सामो नाण वीराणं सहियाणं'  
इत्यादिना चारित्रग्रहणं कथित, चारित्रपरिपालनार्थमेव चेद्धारिप्रवर्ता दोषा  
वर्षनीया इति । चारित्रदापानेवाढाटयित्वादिमूत्रमाह—'आवंती' इत्यादि ।

(५) पंचम उद्देशमें यह बतलाया गया है कि—मुनिको हृदके समान  
होना चाहिये, मन बचन और काय—गुणियुक्त होना चाहिये, स्त्री आदि  
के संगसे रहित होना चाहिये और सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रका  
धारक होना चाहिये, मद्रायादिक दोषों से रहित होना चाहिये ।

(६) छठ उद्देशके अन्तर सायुक्तो उन्मार्ग में गमनका और राग एवं  
द्वेषका त्याग करना देना चाहिये, यह विषय बतलाया गया है ।

इस अध्ययनका अनन्तर सूत्रके साथ इस प्रकार सम्बन्ध है—पूर्व  
सूत्रमें—'साहिस्सामो नाण वीराणं सहियाणं' इत्यादि सूत्रसे चारित्रका  
ग्रहण करना प्रकृत किया गया है । जय तक अचारित्री (असंयमी) के  
दोष यहां नहीं फललाये जायेंगे तब तक चारित्रका पालन नहीं हो  
सकता; इस लिये अचारित्रधानके दोषों को प्रकृत करने के लिये प्रथम  
सूत्र कहते हैं—'आवंती' इत्यादि ।

(५) पाचमा उद्देशमा ज्ये जताववाभा आभ्यु छे के मुनिने हृदसमान  
होवुं ज्ये ज्ये मन, बचन ज्ये ज्ञानाना योग स्थिर राषणा ज्ये ज्ये, स्त्री आदिना  
सजधी इर रहेवुं ज्ये ज्ये ज्ये सम्यग्दर्शन ज्ञान ज्ये ज्ये चारित्रने धारण करवा  
वाणे होवा ज्ये ज्ये ज्ये ज्ये ज्ये दोषाधी पडे होवा ज्ये ज्ये

(६) छठ्ठा उद्देशनी अन्तर सायुक्ते उन्मार्गमे विवस्वाने त्याग ज्ये ज्ये ज्ये  
वध द्वेषने त्याग करवे ते विवस्व जताववाभा आभ्ये छे

ज्ये अध्ययनने अनन्तर सूत्रनी साथे ज्ये ज्ये प्रहारने सुवाध छे—पूर्व  
सूत्रमे 'साहिस्सामो नाण वीराणं सहियाणं' इत्यादि सूत्रधी चारित्रने ग्रहण करवुं  
तेमे जताववाभा आवेस छे ज्ये सुधी अचारित्री ज्ये ज्ये के अस वर्षनीया दोष जता  
ववाभा न आवे तब सुधी चारित्रनु पालन जनी शकतुं तधी आधी चारित्रना पालन  
भाडे अचारित्रधानाना दोषे प्रगट करवा सूत्रकार प्रथम ज्ये सूत्र कहे छे—  
'आवंती' इत्यादि ।

मूत्रम्—आवंती केयावंती लोयंसि विप्परामुसंति अट्टाए अण-  
ट्टाए, एणसु चेव विप्परामुसंति, गुरू से कामा, तओ से मारंते,  
जओ से मारंते तओ से दूरे, नेव सो अंते नेव सो दूरे ॥ सू० १ ॥

छाया—यावन्तः कियन्तो लोके विपरामुशन्ति अर्थाय अनर्थाय, एतेषु एव  
विपरामुशन्ति, गुरवस्तस्य कामाः, ततः स मारान्तः, यतः स मारान्तस्ततः स  
दूरे, नैव सोऽन्तनैव दूरे ॥ सू० १ ॥

टीका—‘घाघन्त’—इत्यादि। लोके=पञ्चास्तिकायरूपे चतुर्दशरज्ज्वात्मके वा,  
यद्वा—गृहस्थान्यतीर्थिके लोके, यावन्तः=यत्प्रमाणा अतीतानागतवर्तमानाः, किय-  
न्तः=ये केऽप्यसंयता आरम्भजीविनो मनुजाः प्राणिनो वा, ते—अर्थाय=प्रयोजनाय

“ लोयंसि ” पञ्चास्तिकायरूप अथवा चौदह राजुप्रमाणवाले लोकमें,  
अथवा गृहस्थ तथा अन्यतीर्थिकरूप लोकमें “ आवंती केयावंती ” जितने  
कितने भी असंयमी—आरम्भजीवी प्राणी हैं वे “ अट्टाए अणट्टाए ”  
किसी प्रयोजन या विना प्रयोजनसे त्रस स्थावर जीवोंका “ विप्परा-  
मुसंति ” अनेक प्रकारसे उपमर्दन ( घात ) किया करते हैं ।

विशेषार्थ—यह लोक—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्ति-  
काय जीवास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय, इन पांच अस्तिकायरूप द्रव्योंसे  
समन्वित है और चौदह राजु प्रमाणवाला है । इसमें जितने भी असं-  
यमी जीव भूतकालमें हुए हैं, भविष्यत्कालमें होंगे और वर्तमानकालमें  
हैं, वे सब भूतकालमें आरम्भजीवी थे, भविष्यमें आरम्भजीवी होंगे  
और वर्तमानमें भी आरम्भजीवी हैं । आरम्भजीवी प्राणी प्रयोजन या

“ लोयंसि ” पांच अस्तिकायरूप अथवा चौदह राजु प्रमाणवाला लोकमा  
अथवा गृहस्थ तथा अन्यतीर्थिकरूप लोकमा “ आवंती केयावंती ” अट्टाए  
अणट्टाए पण अणसु चेव विप्परामुसंति आर लणवी प्राणीथे छे तेणो “ अट्टाए अणट्टाए ”  
अण्डे पण प्रयोजन अजर तो प्रयोजन वजर त्रस स्थावर लोवोना “ विपरामुसंति ”  
अनेक प्रकारथी उपमर्दन—घात कर्या करे छे

विशेषार्थ—आ लोक—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, लवा  
स्तिकाय अने पुद्गलास्तिकाय, आ पांच अस्तिकायरूप द्रव्योथी समन्वित छे अने  
चौदह राजु प्रमाणवाणे छे तेणी अहर अट्टाए अणसु चेव विप्परामुसंति अथवा  
अविष्यकाणमा थथे अने वर्तमानमा छे ते पथा लूतकाणमा आर लणवी उता,  
अविष्यमा आ लणवी थथे अने वर्तमानमा आर लणवी छे आर लणवी प्राणी

धर्मार्थकामाद्यर्थाय, पृथगपि धर्माप=देवप्रतिमा-देवमन्दिर-निमित्तम्, अर्थार्थ  
 =कृप्याद्यर्थे, कामार्थ=मासादाद्यर्थे च पृथिवीकार्थे, कृप्यादिसेवनाद्य अस्काय,  
 पाकाद्यर्थे तैजसकार्यं, ग्रीष्मसन्तापोपशमनाय ताम्रघ्नतादिना वायुकायम्,  
 एवं पक्ताद्यर्थे वनस्पतिकार्यं, तप्तदाभित प्रसकार्यं च, एवमनर्थार्थ=  
 निष्प्रयामनाय=स्पर्शमिति यावत्, कौतुकवशात्पृथिव्यादिकं सूयाद्यय प्रसाध  
 'विपरामृशन्ति' विषयप्रकारेण परामृशन्ति=उपतापयन्ति=वनित्रकुशाभादिश्लेषेण  
 घातयन्तीत्यर्थे, एवं शपत्रतेष्वपि 'मस्यव्रते मृपावादिना विपरामृशन्ती' -त्यादि  
 विना प्रयोजनसे भी अस स्यावर जीवों की हिंसादि कार्यों में प्रवृत्तिशील  
 रहना करते हैं। धर्म अर्थ और काम, इन तीनों पुरुषार्थों की सिद्धिके लिये,  
 अथवा पृथक्-धर्मादि एक एक क लिये ऐसे प्राणियोंसे जीवोंकी हिंसा  
 अवश्य होनी रहती है। देवप्रतिमा तथा देवमन्दिर बनवाने, कृप्यादि कार्य  
 करने कराने और महल-भक्तान आदिके चिनाने में पृथिवीकायिक जीवों  
 की, कृपि आदिके सेवनमें अस्कायिक जीवों की, मोजन आदिके तैयार  
 करने कराने में तैजसकायिक जीवोंकी, ग्रीष्मजन्य तापके उपशमन करने  
 करानेमें पक्वा आदिसे वायुकायकी, तथा शाक पाक आदिके लिये वनस्पति  
 कायकी एवं पृथिवी आदिके आश्रित असकायिक जीवोंकी विराधना होती  
 है। इसी प्रकार विना प्रयोजन भी-अर्थ ही कौतुकवशात् पृथिव्यादिक के  
 पावडे एव कुवाली आदि द्वारा मोवनेसे, शिकार आदिके करनेसे पृथिवी  
 कायिक आदि स्यावर एवं असकायिक जीवोंकी हिंसा होती है।

प्रयोजन अंगर केअ पञ्च प्रकाशना प्रयोजन वत्रर त्रस अने स्यावर लोवनी  
 हिंसकाय कार्यमा प्रवृत्तिशील रहा करे छे धर्म अर्थ अने काम आ त्रसे पुत्र  
 पार्थनी सिद्धिने माए अथवा पृथक्-धर्मादिना केअ अेकेठ काश्कने माए अेवा  
 प्राणीवेषी लोवनी हिंसा करेर भती रहे छे देवनी प्रतिमा बनावणी, भदिर  
 बनावणी, जेतीनुं काम करवु के कशवपु तेमा अने भहेल-भक्तान बनाववामा पृथ्वी  
 कायिक लोवनी भेती वजेरेना कामकावमा, अप्कायिक लोवनी सेवन आदि तयार  
 कस्या कराववामा तेलस्कायिक लोवनी अने जशमीमा कडी कवाना उपयोग भाटे  
 पञ्च आदिधी वायुकायिक लोवनी तेमए पाक आदिने भाटे वन पतिठायिक  
 लोवनी अने पृथ्वी आदिना आश्रित त्रसकायिक लोवनी हिंसा काय छे  
 तेवी रीते केअ पञ्च अतना शरवण वत्रर लक्ष-कृतुकवशात् पृथ्वी आदिने पावज  
 काशणी अस्मादि काश जोडवाणी, शिकार जेदां कामों करवाधी पृथ्वीकायिक आदि  
 स्यावर तथा त्रसकायिक लोवनी हिंसा काय छे

યોગ્યમ્ । एतेषु एव=एइजीवनिकायेष्वेव तत्तदुपघातकारिणः मध्मवादरपर्याप्त-  
 कापर्याप्तकरूपान् जन्तुनिरुह्य 'विपरामृशन्ति' वि=विविधप्रकारेण नानायोगि-  
 भावत्वेन परामृशन्ति=उत्पद्यन्ते । यद्वा-एतेषु एव तत्तत्तजीवनिकायघातप्राप्तकर्म-  
 मिस्तेष्वेव जीवनिकायेषु जन्म लब्ध्वा तेन तेन प्रकारेण विपरामृशन्ति=त्रि-  
 विविध दुःखं परामृशन्ति=अनुभवन्ति ।

भावार्थ—अहिंसा व्रतके न पालनेसे असयमी जीव, ग्रम एव  
 स्थावरकायकी किसी भी प्रयोजनवशा हिंसा करते रहते हैं । विना प्रयो-  
 जन के भी उनसे हिंसाका परिहार नहीं होता, जैसे—अपने पासकी घाम-  
 दुर्वा, आदि उगवाटना, मिट्टी खोदना आदि, इसी प्रकार रस्ते चलते किसी  
 वृक्ष आदिकी डाली तोड़ लेना, लकड़ीसे कुत्ते आदिको मारना, इत्यादि ।

इसी प्रकार जो सत्यव्रत अचौर्यव्रत आदि नहीं पालते हैं ऐसे  
 सृष्टावादी और चौरा आदि पाप करनेवाले प्राणी भी ग्रस और स्थावर  
 की हिंसासे बचे नहीं रह सकते, उन्हें भी ग्रस और स्थावरकी हिंसासे  
 होनेवाला पाप लगता ही रहता है, इस प्रकारकी योजना उपव्रतों में भी  
 कर लेनी चाहिये ।

“ एतेष्वेव विपरामृशन्ति ”—इस प्रकार असयमी जीव उस २  
 कायकी विराधना या विराधनाजन्य पापकर्मके बन्धसे उस २ निकायके  
 जीवोंमें उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ—अहिंसाव्रत न पाणवाधी असयमी एव ग्रम અને સ્થાવરકાયના  
 જીવોની કોઈ પ્રયોજનાર્યે હિંસા કરતા રહે છે, કારણ વગર પણ તેમનાથી હિંસાને  
 ત્યાગ થઈ શકતો નથી એવા કે આમપાનતુ ધાસ-ધરે વગેરે ઉગાડણુ, માટી  
 ખોદવી, આ ઉપરાત રસ્તે ચાલતા ચાલતા વૃક્ષ વગેરેની ડાળીઓ તોડવી,  
 લાકડીથી કુતળ વગેરેને મારવા ઇત્યાદિ

આ પ્રકારે જે સત્યવ્રત, અચૌર્યવ્રત વગેરે પાળતા નથી એવા જીવો ગોલા  
 અને ચોરી આદિ પાપ કરવાવાળા પ્રાણી પણ ગ્રમ અને સ્થાવરની હિંસાથી  
 બચી શકતા નથી, તેઓને પણ ગ્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી થતુ પાપ લાગ્યા  
 વગર રહેતુ નથી આ પ્રકારની યોજના શેષવ્રતોમા પણ કરી લેવી જોઈએ

“ एतेष्वेव विपरामृशन्ति ” આ પ્રકારે અસયમી જીવો તે તે કાયની વિરાધના-  
 જન્ય પાપકર્મના બંધથી તે તે કાયોના જીવોમા ઉત્પન્ન થાય છે

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और वादरके मेदसे दो प्रकारके हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। अपर्याप्त २ योग्य पर्याप्तियाँ जिन जीवोंकी पूर्ण हो जाती हैं वे पर्याप्त, और जिनकी पूर्ण नहीं होती वे अपर्याप्त कहलाते हैं। ये असंज्ञी ही होते हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय-विकलत्रय जीव तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। विकलेन्द्रिय तीन असंज्ञी ही होते हैं, इनके मन नहीं होता। इन्म प्रकार ये सानो प्रकारके जीव पर्याप्त और अपर्याप्तके मेदसे चौदह प्रकारके होते हैं। जो अमं यमी जीव किसी प्रयोजनवश या बिना किसी प्रयोजनके इनकी विरा धना करता है यह इन्हीं जीवों में अनेक प्रकार की पर्याप्तियोंके धारण करता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की न किसी द्वारा घात होती है न इनके द्वारा किसीकी घात होती है, फिर भी मनकी वृष्परिणति से हिंसा होती है। इस कारण टीकाकारने जीवके चौदह भेदोंमें उनका यहाँ निर्देश किया है। अथवा—इन जीवोंकी जो जिस जिस रूपसे विरा धना करता है यह इन जीवों की विराधना से होनेवाले कर्मव्यपके कारण इनही जीवनिकायोंमें जन्म धारण कर उसी उसी प्रकारसे अनेक दुःखों का अनुभव करता है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय एव सूक्ष्म अने वादरना सेदधी के प्रकारे छे तेजो पर्याप्त अने अपर्याप्त छे चित्तपोतानी भेद्य पर्याप्ति के लोचनी सपूर्व भाव छे ते पर्याप्त अने नेमनी पर्याप्ति पुरी नधी बली ते अपर्याप्त कहवाय छे आ लोच असंज्ञी होय छे आ प्रकारे के—ईन्द्रिय एव, त्रय-ईन्द्रिय एव चार-ईन्द्रिय एव, आ त्रय विकलेन्द्रिय एवो, तथा संज्ञि-पञ्चेन्द्रिय अने असंज्ञि-पञ्चेन्द्रिय एव पञ्च पर्याप्त अने अपर्याप्त होय छे विकलेन्द्रिय त्रय असंज्ञी के होय छे तेने मन नधी होत आ रीते आ सते प्रकारना एव पर्याप्त अने अपर्याप्तना सेदधी बौध प्रकारे भाव छे के असंज्ञी लोचो कोष पञ्च प्रयोजनवश अथवा ते प्रयोजन वगर तेनी विराधना करे छे तेजो त लोचोमां अनेक प्रकारनी पक्षधिये धारण करे छे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लोचनी न कल्पनीय घात भाव छे अने त लोचो द्वारा पञ्च कोषनी भाव धरि शकती नधी तो पञ्च भाव मननी वृष्परिणतिधी हिंसा भाव छे आ कारणे गीकाकारे एवना चौद सेदोमां तेजोने अर्द्धा निर्देश करेव छे अथवा ते लोचनी के के प्रकारे विराधना करे छे तेजो ते लोचनी विराधनाधी धनारा कम लोचने कारणे तेव अननिकायोमां कम धारण करी तेवा तेवा प्रकारे अनेक दुःखोना अनुभव करे छे।

કિમર્થ સાવધવ્યાપારાન્ કરોતીત્યાહ 'ગુરવ્' ઇત્યાદિ । તસ્ય=નરકનિગોદાદિકદુઃખલાનભિજ્ઞસ્ય પુમ્: કામા: શબ્દાદિવિષયા ગુરવઃ=અનતિક્રમણીયા દુસ્ત્યજતયા લઘ્વયિતુમનર્હા ઇત્યર્થઃ, યો યસ્યાનતિક્રમણીયઃ સ તસ્ય ગુર્ભવતીતિ તાત્પર્યમ્, યતઃ શબ્દાદયો દુસ્ત્યજા અનસ્તત્રાપ્તયે પટ્ટકાયોપમર્દનપ્રવૃત્તઃ સ ગુરુકામઃ પાપમુપચિનોતીતિ ભાવઃ । પાપોપચયાચ કિમિત્યાહ—'તતઃ' ઇત્યાદિ, તતઃ=પદ્મજીવનિકાયઘાતાનન્તરં ગુરુકામાનન્તરં ચ સ=ગુરુકામી 'મારાન્તઃ' મરણં મારઃ=

જીવ્ઝ ઇન સાવધ વ્યાપારોંકો કર્યો કરતા હૈ ? હસકા ઉત્તરરૂપ "ગુરવસ્તસ્ય કામાઃ" યહ વાક્ય સૂત્રકાર કહતે હૈં । ઇસમૈં વે યતલાતે હૈં કિ ઉસકી ઇચ્છાઞ્ પ્રબલ હૈં । હિંસાદિક સાવધ વ્યાપારોં કે કરને મૈં ઉસે શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઞ્ નિમિત્ત હોતી હૈં । ઇન ઇચ્છાઓંકે અધીન બના હુઆ સસારી જીવ સાવધ વ્યાપારોં કો કરતા હુઆ "નરકનિગોદાદિક કે દુઃખોં કો હમૈં સહન કરના પડેગા" ઇસ પ્રકારકે ભયસે નિર્મુક્ત રહા કરતા હૈ । વાત મી સચ હૈ—જિન્હેં સાવધ વ્યાપારોંકે ફલસ્વરૂપ નરકનિગોદાદિક કે ભયકર દુઃખોંકે સહન કરનેકા કુછ મી વિચાર નહીં હૈ ઁસે અજ્ઞાની પ્રાણિયોંકી શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઞ્ બલિષ્ઠ હોં તો ઇસ મૈં આશ્ચર્યકી વાત હી કૌનસી હૈ ? । ઁન પ્રકારકી ઇચ્છાઓંકા અધીન જીવ ઇસ લિયે હોતા હૈ કિ વહ ઁન્હેં અજ્ઞાનસે દુસ્ત્યજ માન બૈઠા હૈ । જિસકા છોડના જિસે અશક્ય હોતા હૈ વહ વિષય ઉસે મારી માલૂમ દેતા હૈ । અજ્ઞાની જીવ શબ્દાદિક વિષયોંકો દુસ્ત્યજ

છવ આવા સાવધ વ્યાપાર શા મારે કરે છે ? તેના ઉત્તરમા "ગુરવસ્તસ્ય કામાઃ" આ વાક્ય સૂત્રકાર કહે છે એમા તેમણે બતાવ્યુ છે કે એમની ઇચ્છાઓ પ્રબળ છે હિંસાદિક પાપ કામો કરવામા તેઓને શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ નિમિત્ત બને છે આ ઇચ્છાઓને આધીન બનેલા સસારી છવ સાવધ વ્યાપારો કરતા કરતા 'નરક નિગોદાદિકના દુ ખ અમારે લોગવા પડશે' આવા પ્રકારના લયથી નિર્મુક્ત રહ્યા કરે છે વાત પણ સાચી છે, જેઓને પાપાદિ વ્યાપારોના ફળસ્વરૂપ નરકનિગોદાદિકના લય કર દુ ખો સહન કરવા પડશે એવો ખ્યાલ નથી એવા અજ્ઞાની પ્રાણિયોની શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ ભેરદાર હોય તો તેમા કોઈ આશ્ચર્યની વાત નથી આવી ઇચ્છાઓને આધીન થયેલા છવો 'આ તછ શકાય તેવુ કાર્ય નથી' એવુ તે અજ્ઞાનથી માની બેઠા હોય છે જેવુ છેડવુ જેઓને મારે અશક્ય હોય છે તે વિષય તેઓને મનભારે કઠીન લાગતો હોય છે અજ્ઞાની શબ્દાદિક વિષયોને નહીં તજવાબેગ સમજે છે, એટલા મારે અસચમિત છવી

समझते हैं, इस लिये असंयमित जीव पन बे उन २ वैपयिक इच्छाओं की पूर्ति करनेके लिये यद्वायके जीवों का उपमर्दन करते हुए पापों का उपार्जन और बर्धन करते रहते हैं। इस प्रवृत्ति से वे "मारान्त" जन्म मरण के चक्रसे नहीं छूटते हैं। "मरण-मारः-आयुषो विनाशः"। 'मार' शब्दका अर्थ आयुका अन्त-मरण है। वे जीव इसके भीतर ही रहते हैं, इससे परे नहीं होते हैं। परे होनेके मापनों से वे रिक्त-रहित हैं। जन्म-मरण के मापनों में ही जुटे हुए हैं। हिंसादिक पाप कर्मों से अथवा अपनी वैपयिक इच्छाओंके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे संसारमें किसी भी प्राणीका जन्म-मरणस्य बंधन नहीं छूटा है; न छूटेगा और न छूटना ही है। जन्म-मरणका अभाव उन्नी जीवको होता है कि जिस का भवान्तरूपम्रादि कर्म नष्ट हो चुका है। इस कर्म को नष्ट करनेके लिये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेकी एवं संयमित जीवनके आराधनकी आवश्यकता है। इससे विपरीत प्रवृत्ति में यह कर्म गुरुतर बंधता है, जो जीवको बारंबार जन्म-मरणके चक्रमें डालता रहता है "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" यह सिद्धांत है। जिसका जन्म है उसका मरण है जिसका मरण है उसका जन्म है। इसी समस्त अमि

अनी तेजो ते ते वैपयिक इच्छाओंकी पूर्ति कर्वा भाटे छ प्रकाशना लुपनी हिंसा करे छ अने तेभी बहुत पाप उपार्जन करे छ अने तेभा बंधारे कर्वा रहे छ आवी प्रवृत्तिभी तेजो "मारान्तः जन्म मरणस्य चक्रमाभी छूटी शक्या नहीं। "मरण-मारः-आयुषो विनाशः। मार शब्दको अर्थ आयुष्यको अन्त-मरण छे त लुपकोनी अन्तर छ रहे छ जेनाभी छूटा परी शक्या नहीं, छूटा बवाना साधनोर्ध ते पूज करे छ व म-मरणस्य साधनो साधे व सङ्गपेक्षा रहे छ हिंसादिक पापप्रवृत्तिया कर्मोर्धो जववा पोतानी वैपयिक इच्छाओं अनुसार प्रवृत्ति कर्वाभी संसारमा कोषपक्ष प्राणी जन्म-मरणस्य बंधनभी छूटा नहीं, न ता छूटी शक्ये, अने न छूटे छे व म-मरणको अभाव ते लुपने व भाव छे के जेना जवान्तराप्रम्रादि कर्मो नाश बधेतां होय छे आ कर्मोना नाश कर्वा भाटे इन्द्रियो उपर विजय प्राप्त कर्वानी अने संयमित लुपनत आराधन कर्वानी आवश्यकता छे जेनाभी विपरीत प्रवृत्तिमा ज्ञा कर्म गुरुतर बंधाव छे के लुपने वारवार व म-मरणस्य चक्रमा लो अथ छे "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" जे सिद्धांत छे जेने जन्म छे तेनु मरण छे तेनु मरण छे तेने व म पक्ष छे जे वधा अकिप्रधाने हृदयमा शपिने

આયુષો વિનાશસ્તસ્ય અન્તઃ=મધ્ય એવ યરીવર્તિ, મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિકર્મ-  
સદ્ભાવાદુત્પદ્યત એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાન્નિયત પંચેતિ, મસારે મજ્જ-  
નોન્મજ્જનમાસાદયત્યેવેત્યર્થઃ । યદ્વા મારઃ=કર્મ મંમારો યા, તન્મ્યાન્તર્વર્તી સમ્ભૂયો  
જન્મમરણાદિક લભત એવેતિ, ઉક્ત ચ-

‘મા મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમય મરણાદપિ, કર્મ ભવો યા ભવેન્મારઃ ॥ ” ઈતિ ।

પ્રાય કો હૃદયમેં રગ્વકર ટીકાકાર કહતે હૈ કિ—“ મૃતો હિ પુનર્ભવા-  
ન્તરોપગ્રાહિકર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યત એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાત્  
ન્નિયત એવ ” ।

ટીકા હી હૈ, મૃત આત્માકી ભવાન્તરોપગ્રાહી કર્મ કે સદ્ભાવસે પુનઃ  
ઉત્પત્તિ, ઓર ઉત્પન્ન હુગ કા ઝમી કર્મકે સદ્ભાવસે મરણ હોતા હૈ । અથવા  
-‘માર’ શબ્દકા અર્થ સામાન્ય કર્મ યા મસાર હૈ । અસયમી જીવ વૈષ-  
યિક સુખ કે વશવર્તી હો કર કર્મોં કા આશ્રવ કરતે હૈ ઓર વારવાર  
જન્મમરણજન્ય દુઃખોં કો ક્રીલતે રહતે હૈ, કહામી હૈ-

“માં મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમય મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્મારઃ ” ॥૧॥

માર શબ્દકી વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક હસ પદ્ય સે યહી વાત ટીકાકારને  
પ્રદર્શિત કી હૈ । હસમેં માર-શબ્દકા અર્થ કર્મ યા સંસાર વતલાયા હૈ ।  
જો જિસકી હિંસા કરતા હૈ વહ ડસકા વૈરી હોતા હૈ, વૈરભાવસે સંસારકા

ટીકાકાર કહે છે કે—“ મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિ-કર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યતે એવ,  
જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાત્ નિયતે ” ।

ટીકા જ છે, મૃત આત્માની ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મના સદ્ભાવથી ફરીથી  
ઉત્પત્તિ, અને ઉત્પન્ન થયેલાનુ તે જ કર્મના સદ્ભાવથી મરણ થાય છે અથવા  
‘માર’ શબ્દનો અર્થ સામાન્ય કર્મ અગર સંસાર છે, અસયમી હોવો વૈષ-  
યિક સુખોને વશ બની કર્મોના આશ્રવ કરે છે અને વારવાર જન્મ-મરણના  
દુ ખોને લોગવતા રહે છે કહ્યું પણ છે—

“મા મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમય મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્માર ॥ ”

ટીકાકારે એ જ માર શબ્દની વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક વાત આ પદ્યથી પ્રદર્શિત  
કરી છે આમા ‘માર’ શબ્દનો અર્થ કર્મ અથવા સંસાર બતાવવામા આવેલ છે ।



मारान्तर्भवतेनेनापि किं तस्येत्याह—'यत्' इत्यादि, यतो=यस्मात् सः=कामगुरुको मारान्तः=सुदुर्मुदुर्मपापप्रादिकमान्तर्बर्ती भरणान्तर्बर्ती वा ततः=तस्मात् हेता सः दूरे रत्नप्रपातकार्यभूतमोक्षाद्दूरबर्ती भवतीत्यर्थः । यथा—सुखमिच्छन् हि कामान् सेवते, उरसवनाथ मारान्तर्भवते, मारान्तर्भवतेनाद् हि जन्मजरामरबरागन्धाकम्पादुन्वो मोक्षमुखाद्दूर एव विष्टतीति तात्पर्यम् । यथाज्यं मारान्तर्बर्ती तस्मात् सः=गुरुकामसेवी नैव भन्तः=शब्दादिविषयसुखस्य मध्य नैव वर्तते, अद्यापि तत्सृष्टास्सुच्छासेनानवाप्तेष्ट-विषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तदुपस्यनुभवामाभावात्, नैव स दूरे तस्माद्विषयसुखाद्विरम्य दूरवर्ती नैव भवति, तदभिप्रायस्यापरित्यागादिति ।

वर्धन होता है और इस दृष्टिसे वे दोनों परस्पर हिंस्य-हिंसक बनते रहते हैं ।

जो मारान्तर्बर्ती है अथवा वैषयिक इच्छाओं के पराधीन है वह भसयमी जीव रत्नत्रयरूप धर्मसे, अथवा उसके कार्यभूत मोक्षसे भी दूरवर्ती है । यही बात सूत्रकारने " यत् स मारान्तस्तता स दूरे " इस वाक्यसे प्रदर्शित की है । तात्पर्य यह है कि रत्नत्रयरूप धर्म अथवा उसके कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वैषयिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना होता है । जब तक प्राणी इच्छाओं के अधीन बना रहता है तब तक मुक्ति का मार्ग सदा उससे दूर रहता है । इच्छाओं का निरोध मोक्षामिलापीके लिये इस लिये बतलाया है कि इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे उसकी आत्मामें एक प्रकारकी अपूर्व शक्तिकी जागृति होती है, जो इसे कर्मक्षय करनेमें विशेष सहायक होती है । भीक व्यक्ति कर्मों के साथ

वैषयिकी वसावतु बधन याव उ अने आधी ते जन्ने परस्पर हिंस्य अने हिंसक बनता रहे छे

ये मारान्तवर्ती छे अथवा वैषयिक इच्छाओंने आधीन छे ते भसयमी छव रत्नत्रयरूप धर्मभी अथवा तेना कार्यभूत मोक्षभी पलु इर ने दूर रहे छे आ ज याव सूत्रकारे यथा स मारान्तस्तता स दूरे आ वाक्यभी प्रदर्शित कयी छे वात्पर्यं जे छे हे—रत्नत्रयरूप धर्म अथवा तेना कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करवा भाटे वैषयिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त करवे जेछे जेनां सुधी प्राणी इच्छाओंने आधीन जनी रहे छे त्या सुधी मुक्तिने मार्ग सदाने भाटे तेनाभी इर रहे छे इच्छाओंने निरोध मोक्षामिलापी भाटे आ कष्टकुशी जवापनामा आवेछ छे हे—आवा प्रहासनी प्रवृत्तिभी तेना आत्माभां जेक प्रहासनी अपूर्व शक्तिनी जागृति याव छे अने ते कर्मक्षय करवायां विशेष सहायक जने छे

संग्राम नहीं कर सकते। जो इन्द्रियों के दास हैं वे ही मुक्तिमार्गमें भीरु हैं। आत्मामें जो समय २ पर विषयोंकी अप्राप्ति से अशान्तिरूप सताप हो जाता है उसका वैषयिक इच्छाओं के दमन से सर्वथा अभाव हो जाता है। इस अभावकी प्रकर्षता की वृद्धि से आत्मा मुक्तिमार्गका सच्चा आराधक बन जन्म मरणके दुःखों से सदाके लिये छुटकारा पा जाता है। इसी लिये सूत्रकारने यहां पर मुक्तिमार्गसे दूर रहनेमें असंयमीके लिये इसे कारण बतलाया है। अथवा—जीव जब इन्द्रियों के अधीन होता है तभी तो वह मारान्तर्वर्ती होता है। कभी भी उसकी इस प्रकारकी प्रवृत्ति से भवोपग्राही कर्म का, अथवा उसके संसार का अभाव नहीं होता, प्रत्युत उसे उनके अन्तर्वर्ती ही रहना पड़ता है, अतः मुक्तिका मार्ग और मुक्ति सदा उससे दूर रहती है।

भावार्थ—संसारी जीव सुख प्राप्त करनेकी अभिलाषासे विषयोंको भांगता है। उससे वह मारान्तर्वर्ती होता है। मारान्तर्वर्ती होनेसे वह जन्म, जरा, मरण, रोग और शोकसे व्याकुल होता रहता है फिर उसे मोक्षसुखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? 'मोक्षसुखकी प्राप्तिके लिये रत्नत्रय धर्म की आराधना आवश्यक है। इस आराधना से तो वह

लीड् प्राण्णी कर्मोनी साधे लडी शकतो नथी ने इन्द्रियोने दाम छे ते न मुक्ति मार्गभा लीड् छे, आत्माभा ने समय समय पर विषयोनी अप्राप्तिथी अशान्ति-रूप सताप थई नथ छे तेना वैषयिक इच्छाओना दमनथी सर्वथा अभाव थई नथ छे आ अलावनी प्रकर्षतानी वृद्धिथी आत्मा मुक्तिमार्गने साधो आराधक यनी जन्म मरणना दुःखोथी सहने भाटे छुटकारा भेणवे छे तेठला भाटे सूत्रकारे आ ज्योओ मुक्तिमार्गथी दूर रहेवामा असंयमी एवो भाटे तेने कारण बतावेल छे अथवा न्यारे एव इन्द्रियोने अधीन थाय छे त्यारे ते मारान्तर्वर्ती थाय छे क्यारेय पणु तेनी आवा प्रकारनी प्रवृत्तिथी लवोपग्राही कर्मने अथवा तेने संसारने अलाव थतो नथी, परंतु तेने तेना वश रहेवु पडे छे, तेथी मुक्तिनी मार्ग अने मुक्ति सदा तेनाथी दूर रहे छे

भावार्थ—संसारी एव सुख प्राप्त करवानी अभिलाषाथी विषयनो लोकात भने छे, ओथी करी ते मारान्तर्वर्ती यनी रहे छे मारान्तर्वर्ती बनवाथी ते जन्म, जरा, मरण, रोग अने शोकथी व्याकुल थतो रहे छे तो करी तेने मोक्षसुखनी प्राप्ति केवी रीते यने? मोक्षसुखनी प्राप्तिने भाटे रत्नत्रय धर्मनी आराधना यवी आवश्यक छे आ आराधनाथी तो ते इच्छु पणु वचित यनी रहेल छे,

अमी तक भी यंचित पना हुआ है अत एव—' नैष सोऽन्तर्नैष दूरे ' अर्थात्—यह जीव जिस वजहसे मारान्तर्वर्ती है इसी लिये गुरु कामसेवी है । जब ऐसी वस्तुस्थिति है तो यह गुरुकामसेवी असंयमी जीव शब्दादिकविषयजन्य सुखोक्ति मध्यवर्ती तक भी नहीं है, पर्यो कि अमी तक भी विषयजन्य सुखका अनुभव करनेवाला उसका ज्ञान एक तरहसे अभावस्वरूप ही है । मध्यवर्ती तो तब वह माना जाता जब कि वैषयिक सुखों का अनुभव करते २ वह उनकी तृप्तिरूप पूर्णताके अनुभवके कुछ निकट आ जाता । पूर्णता के निकट तक आया हुआ यह इस लिये नहीं कहा या माना जा सकता कि अमी तक उसे इष्ट वैषयिक सुखकि भोगने की स्पृहा का समुल्लास जो हो रहा है । जब तक उसे इष्ट विषयकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक यह महा आकुलित रहा करता है । आकुलतामें वैषयिकतृप्तिजन्य सुखकी प्राप्ति भी उसे नहीं होती है, अतः उसका ज्ञान इष्ट विषयकी प्राप्तिके अभावसे वैषयिक सुखानुभव से ग्रन्थ जैसा ही बना हुआ रहता है । यह मानी हुई बात है कि विषयोंसे तृप्ति जीवों को कमी नहीं होती है, एक क याद एक विषयको भोगने की छालसा प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती है । जब यह हालत है तो फिर उसको तृप्तिरूप विषयभोगजन्य सुखकी पूर्णता कैसे

गाए २- नैष सोऽन्तर्नैष दूरे " अर्थात्—आ एव २ आ भोग-तवर्ती ३ ते आ गुरुकामसेवी ४ अथवा आ प्रकारनी वस्तुस्थिति ५ ते तो गुरुकाम सेवी अनुभवता एव शब्दादिकविषयजन्य सुखोक्त मध्यवर्ती सुधी पक्ष नहीं ६ इत्यु के हस्तु सुधी विषयजन्य सुखोक्त अनुभव करवायागु तेनु गान कोक प्रकारे अभावश्च ७ ८ मध्यवर्ती तो तेने त्वारे भानवाया आवे के अथवा वैषयिक सुखोक्त अनुभव करवा करवां ते तेनी तृप्तिरूप पूर्णत्वाना अनुभवनीकरा नल्लक आवे । पूर्णत्वानी नल्लक आवेव ९ अथवा तेने न कही शक्य के मानी शक्य, १० इत्यु के तेने हस्तु सुधी इष्ट वैषयिक सुखोक्त भोगवानी स्पृहानो समुल्लास ११ १२ अथवा सुधी तने प्रथि विषयनी प्राप्ति नही वती त्वसुधी ते पोते गन्ध व्याकुल रहे १३ व्याकुलत्वानां तेने वैषयिकतृप्तिजन्य सुखनी प्राप्ति पक्ष भती नहीं १४ आधी तेनु ज्ञान धरि विषयनी प्राप्तिना अभावधी वैषयिक सुखानुभवधी शून्य केतु वनी रहे १५ आ सिद्ध भवेवी वात १६ के विषयोक्त एवोने तृप्ति भती पक्ष भती नहीं, कोक पछी कोक विषयने भोगवानी छालसा धरि धरि उत्पन्न भती १७ रहे १८ अथवा आ कालव १९ त्वारे तेने तृप्तिरूपी विषयभोग

मिल सकती है ? जब इस प्रकारकी पूर्णताका अनुभव जीवको नहीं होता है तो वह जीव विषयसुखोंको भोगते २ उनके मध्यदेश तक प्राप्त हो चुका है, यह कैसे माना जा सकता है ? क्यों कि वह तो अभी तक भी अपने को विषयसुखों के भोगने का प्रारम्भक ही मानता है, अतः उसके ज्ञानमें वैषयिक तृप्तिके अनुभवका अभाव सा ही झलकता रहता है । उसका ज्ञान जब तृप्ति की पूर्णता से ही सर्वथा वंचित हो रहा है तो वह उस तृप्ति के मध्यतक पहुंचा हुआ कैसे माना जा सकता है । उसमें तो अभी वैषयिक सुखोंको भोगनेकी प्रारम्भक दशाका ही भान हो रहा है । यही बात टीकाकारने “ अद्यापि तत्सृष्टासमुल्लासेन अनवाप्तेष्टविषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्त्यनुभवाभावप्रायत्वात् ” इन पक्तियों में प्रदर्शित की है । अर्थात् अभी तक विषयसुखों की इच्छाके समुल्लाससे, इष्ट विषयकी प्राप्ति से रहित विषयसुखजन्य ज्ञानसे युक्त उस जीवको वैषयिक तृप्तिके अनुभव की शून्यता जैसी है, इस लिये वह वैषयिक सुखके मध्यवर्ती नहीं है । वह गुरुकामसेवी विषयसुखसे विरक्त हो कर उनसे दूर भी नहीं होता है, क्यों कि अभी तक भी जो उसके उनके सेवनकी अभिलाषा घनी हुई है ।

अन्य सुधी पूर्णता केवी रीते मणी शके ? न्यारे आ प्रकारनी पूर्णताने अनुभव एवने धतो नधी तो पछी ते एव विषयसुखोने भोगवता भोगवता तेना मध्य भाग सुधी पहोयी सुकेल छे ओ केम मानी शकाय ? कारण के ते तो इणु सुधी पोताने विषयसुखो भोगववानो प्रारंभक न माने छे, माटे तेना ज्ञानमा वैषयिक तृप्तिना अनुभवनो अभाव न लेवामा आवे छे ओनु ज्ञानन्यारे तृप्तिनी पूर्णताना अनुभवधी न वचित रहेल छे त्यारे ओने तृप्तिना मध्य सुधी पहोयेल छे ओनु कथं रीते मानवामा आवे, तेमा तो इणु वैषयिक अणो भोगववानी प्रारंभक दशा भासी रहेल छे आ बात टीकाकारे “ अद्यापि तत्सृष्टासमुल्लासेन अनवाप्तेष्टविषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्त्यनुभवाभावप्रायत्वात् ” आ पक्तिओमा प्रदर्शित करेल छे, अर्थात् इणु सुधी वैषयिक सुखोनी इच्छाना उल्लासधी इष्ट विषयनी प्राप्तिधी रहित विषयसुखजन्य ज्ञानधी युक्त ते एवने वैषयिक तृप्तिना अनुभवनी भाभी देणाछ आवे छे, आ कारणे ते वैषयिक सुखोने मध्यवर्ती नधी, अने ते गुरुकामसेवी विषयसुखधी विरक्ता णनी तेनाधी दूर पणु थछं शकतो नधी, कारणे के इणु तेना दिलमा विषयसेवननी अभिलाषा लरी पडी छे

अथवा यथापूर्वकरणेन मित्रप्रन्धिको गुरुकामी स किं कर्मणो मध्ये वर्तते यदि  
वेति शिष्यनिष्ठासायामाह—'नैव'त्यादि। सः नैव अन्ताः=कर्मणो मध्ये न वर्तते तस्य  
प्रन्थिमदन कर्मणयापपचेरवश्यम्भावित्वात्, नैव=नापि दूरे-वेद्योनकात्किंती  
कर्मस्थितिकत्वात् ।

अथवा—“नैव सोऽन्तर्नैव दूरे” इसका यह भी अर्थ होता है—  
अपूर्वकरण से जिसने रागद्वेषरूपी प्रन्थि (गाँठ) का मेव कर दिया है  
वह अबिरतसम्यग्दृष्टि जीव भी गुरुकामसेवी है क्यों कि अभी तक  
भी उसका किसी भी प्रकारका सयम नहीं है, अतः इस अवस्थामें  
शिष्य गुरुदेवसे प्रसन्न करता है कि उस सम्यग्दृष्टि जीवको कर्म क मध्य  
में स्थित मानना चाहिये या कर्मसे बाहिर रहनेवाला मानना चाहिये ? ।  
इस प्रकारकी शिष्यकी आशंकाका समाधान इन पंक्तियों में सूत्रकारने  
किया है, वे कहते हैं—उसे कर्मके मध्यवर्ती इस लिये नहीं मानना  
चाहिये कि उसका प्रन्थिका मेव हो चुका है और प्रन्थिमेव होनेसे  
उसके कर्मोंका क्षय आगे अवश्यमावी है । मध्यवर्ती तो वह जय माना  
जा सकता था कि वह जीव यदि वहीं रहना; परन्तु ऐसा तो है नहीं,  
क्यों कि उसका कर्मोंका क्षय नियमस होगा । कर्मों से दूर उसे इस  
लिये अभी नहीं माना जा सकता है कि उसके कुछ कम अन्त-कोटा  
कोटीसागरोपम कर्मों की स्थितिका सञ्जाय है ।

अथवा— नैव सोऽन्तर्नैव दूरे अनेना अे पञ्च अथ याव छे के—अपूर्व  
करणधी अे अे रागद्वेषरूपी आठने बोधी नापेव छे ते अविरतसम्यग्दृष्टि एव  
पञ्च सुदृढमसेवी छे । अथव के अथ सुधी तेनामा केअं पञ्च प्रकारनी सयम  
नधी अथी अा अवस्थाभा शिष्य सुदृढेवधी प्रसन्न करे छे के —अथ सम्यग्दृष्टि  
एवने कर्मना मध्यमां स्थित मानवो के कर्मणी अकार स्वेवावाणा मानवो  
नेअंके ? अथ प्रकारनी शिष्यनी आशंकांनु समाधान अे पठिअेअेअं सूत्रकारे  
करेव छे त अे छे के—तेने कर्मना मध्यवर्ती अेटला आटे नकि मानवा अेअंके  
के तेनी अथिना बोध अथ सुदृढ छे अने अथिबोध यथावी अेना कर्मिनी क्षय  
आजग अवश्य यवानी छे मध्यवर्ती तेअे त्पारे मनात्ता के ते एव तथा ने त्प  
स्मिर स्तेनो परन्तु अेव ता छे अ नकि, अथव के तेना कर्मना क्षय नियमधी  
यवानी अ कर्मधी दूर तेने अे आनर नधी मानवाअं अथवतो के तेने बोध  
आअं अतःकोटाकोटी सागरोपम कर्मिनी स्थितिना सङ्गाय स्तेव छे

यदि वा लब्धचारित्रोऽपि सः नैव अन्तः=कर्मणः ससारम्य वा मध्ये न वर्तते द्वादशरूपायः रवर्तित्वात्, नैव च दूरे, उत्कर्षतो मोक्षगमनस्य सप्ताष्टव-ग्रहणानतिक्रमणात् ।

यद्वा-य इमां द्वादशाङ्गीमर्थरूपेण यदा प्ररूपितवान् स किं तदा ससारस्यान्तर्वहिवर्त्तिःऽऽसीदिति जम्बूस्वामिप्रश्नयुत्तरयति- ' नैवे '—त्यादि । स तदा नैव अन्तः=संसारमध्ये वर्तते स्म, तदानीं त्रीणघातिकर्मचतुष्टयत्वात्, नापि दूरे=तदानीमपि अघातिकर्मणा चरमसमयापेक्षितत्वात् ॥ सू० १ ॥

अथवा-लब्धचारित्र भी वह सम्यग्दृष्टि जीव कर्म और ससार के मध्यवर्ती नहीं है, क्यों कि उसके अनतानुबन्धी आदि चार प्रकारकी कषायों का अभाव हो चुका है । मोक्षसे दूरवर्ती इसलिए नहीं है कि वह उत्कृष्ट से सात आठ भवमे मुक्ति की प्राप्ति कर लेगा ।

अथवा—जिन्होंने इस द्वादशाङ्गरूप आगमकी अर्थरूपसे प्ररूपणा की है वे उस समय ससार के अन्तर्वर्ती थे या वहिर्वर्ती ? इस प्रकार के श्री जम्बूस्वामीके प्रश्नका उत्तर श्री सुधर्मास्वामी देते हुए कहते हैं—इस द्वादशाङ्गरूप आगमकी अर्थरूपसे प्ररूपणा करनेवाले तीर्थङ्करादि परमात्मा न तो संसारके मध्यवर्ती थे और न ससार से दूर ही थे, क्यों कि उनके उस समय चार घातिया कर्मों का अभाव हो चुका था, इसलिए वे संसारके अन्तर्वर्ती नहीं थे, और चाकीके चार अघातिया कर्मों का सद्भाव था इसलिए उस समय वे ससार से वहिर्वर्ती भी नहीं थे ॥ सू० १ ॥

अथवा—लब्धचारित्र पणु ते सम्यग्दृष्टि एव कर्म तेभ्यः ससारतो मध्यवर्ती नहीं, केमके तेने अनतानुबन्धी आदि चार प्रकारना कषायोना अभाव थर्त्तुकेल छे मोक्षथी इस्वर्ती छे भाटे नहीं छे ते उत्कृष्टथी सात आठ लवभा मुक्तिनी प्राप्ति भेजवी छेसे

अथवा—नेत्रोत्रे आ द्वादशाङ्गप्र आगमनी अर्थरूपथी प्ररूपणा करेले छे तेओ ते समये ससारने अन्तर्वर्ती छता के अहिवर्ती ? आ प्रकारना श्री जम्बूस्वामीछना प्रश्नने उत्तर श्री सुधर्मास्वामी आपता कहे छेके—आ द्वादशाङ्गप्र आगमनी अर्थरूपथी प्ररूपणा करवावाणा तीर्थङ्करादि परमात्मा न तो संसारना मध्यवर्ती छता तेम ससारथी दूर पणु न छता केमके तेमने ते वषते चार घाती कर्मोना अभाव थर्त्तुकेल छतो तेथी तेओ ससारना अन्तर्वर्ती न छता अने चाकीना चार अघातीया कर्मोना सद्भाव छतो, आ कारणे ते समये तेओ ससारथी अहिवर्ती पणु न छता ( सू० १ )

यद्य प्राप्तसम्पत्स्व संसारसागरतीरवर्षीं स किं निभिनोति? इति दर्शयितुमाह  
- 'से पासइ' इत्यादि ।

मूढम्—से पासइ फुसियमिष कुसगगे पणुन्न निवइयं वा  
परियं, एव धालस्स जीविय मदस्स अविषाणओ, कूराइ क  
म्माइ धाले पकुळ्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ,  
मोहेण गळ्म मरणाइ छइ, छत्थ मोहे पुणो पुणो ॥ सू० २ ॥

छाया—स पश्यति पृषदिव कुशाग्रे मधुर्न निपतितं वातेरितम्, एव वास्त्व  
जीवितं मन्दस्याधिमानतः, कूरापि कर्माणि वास मङ्गर्माणस्तेन दुःखेन मूढो  
विपर्यासमुपैति, मोहेन गर्भे मरणाद्येति, अत्र मोहे पुनः पुनः ॥ सू० २ ॥

टीका—'स पश्यति' इत्यादि । म=सम्पत्स्वमहिम्ना परिहातसंसारारोऽप  
नीतमिध्यात्वमभिनिकाः प्रणुन्ने=सन्ततपूर्वापरपुद्गलोपचयात् प्रेरितं वातेरितं=वातेन=  
बायुना ईरितं=कम्पितं सत् कुशाग्रे=वर्माग्रे निपतितं नि=नियतमधिकं वा पतितं  
पृषदिव=विन्दुं यथा पश्यति, तस्यातिस्तोकसमयमाश्रित्यतिष्ठत्वात्, एवं=तयैव

जिस जीवको सम्पत्त्व प्राप्त हो चुका है ऐसा जीव नियम से इस  
संसाररूपी सागरके तीरवर्ती ही माना गया है। इसकी विचारधारा कैसी  
होती है? इस विषयको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार सूत्र कहते हैं—  
'से पासइ' इत्यादि ।

मिध्यात्वरूपी जन्तिका (पढ़वा) के अभाव से प्राप्त हुए सम्पत्त्व  
के प्रमादसे जिसने संसारकी असारता अच्छी तरहसे जान ली है ऐसा  
वह सम्पददृष्टि जीव अज्ञानी प्राणीके जीवनको धर्म की अनीपर पड़ी  
हुई ओसकी विन्दुके समान जानता है। जिस प्रकार धर्म की अनीपर  
ठहरी ओसकी विन्दु अति बज्रल होती है, जरा सा भी पवन का झोंका

ने लवेने सम्पत्त्व प्राप्त गर्भ मुढेइ ते ते लवेने नियमधी आसंसार  
रूपी सागरने तीरवर्ती मानपाया अवेइ ते, तेनी विचारधारा केयी ओइ ते  
जे निवर्तने प्रगट इत्था भाटे सूत्रकार केहे छे—'स पासइ' इत्यादि ।

मिध्यात्वरूपी जन्तिका (पढ़वा) न अभावधी प्राप्त अवेइ सम्पत्त्वनी  
प्रभावधी लेखे संसारनी असारता सारी शीते लखेयी छे जेवा ते सम्पददृष्टि  
एव अज्ञानी प्राणीना लवनने इर्कनी अली उपर पडेवा व्यङ्गना बिइ समान  
माने छे ? प्रकारे इकनी अली उपर पडेवा व्यङ्गना बिइ अति बज्रल जीव छे,

मन्दस्य=अल्पज्ञस्य मूढस्येति यावत् अविजानतः=नरकनिगोदादिक रुद्रकफले सोपक्रमायुर्वाऽनवबुध्यमानस्यात् एव वाल्म्ये=हिताहितप्राप्तिपरिहारानभिज्ञस्य जीवितं=जीवन सोपक्रमायुर्वाऽतिवञ्चल पश्यति=जानाति । परमार्थानभिज्ञः किं कुर्यादित्याह—‘क्रूराणी’—ति क्रूराणि=घातुकानि कर्माणि गलकर्तनादीनि प्राणा तिपातादीन्यष्टादशप्रकाराणि वा मनोवाक्यैः प्रकुर्वाणः=समाचरन् शालः, तेन=प्राणातिपातादिजनितरुद्रकफलोत्पादकेन दुःखेन=शारीरमानसेन, दुःखजनकेन कर्मणा वा विविधयोगिषु भ्रामं भ्रामं मूढः=तत्तद्भयोपग्राहिकर्मजन्यरुद्रकफलान-  
 उसे क्षणमात्रमे भूमि पर गिरा देता है, वह बहुत समय तक वहां स्थिर नहीं रह सकती, वह तो बहुत ही थोड़े समय तक वहां ठहरती है । उसी प्रकार अज्ञानी का जीवन भी वायु के तुल्य पूर्व और अपर काल सम्बन्धी कर्मपुद्गलोंसे सदा प्रेरित बना रहता है । ज्यों ही हवाके हल्के झोंके से दर्भ के अन्न भाग पर स्थित ओसविन्दुके समान आयु-कर्म का अन्त आ जाता है, या किसी शस्त्रघातादिक का निमित्त मिल जाता है तो इसे भी विनष्ट होते देर नहीं लगती । यह भी अस्थिर और क्षणिक है । अज्ञानी के जीवनको दर्भ की अनी पर पड़ी हुई ओस की विन्दुकी उपमा इस लिये दी है कि जिस प्रकार वह अति चञ्चल-अस्थिर है उसी प्रकार इसका जीवन भी, चाहे यह किसी भी गतिमें रहे, स्थिर नहीं है । सर्वत्र क्षणिकता का एकच्छत्र राज्य छाया हुआ है । चाहे यह नरकगति में रहे, चाहे निगोद में रहे, चाहे कहीं भी रहे, यह स्थिर नहीं ।

पवनतो जश सरभो पञ्च अपाटो लागता ते क्षणमात्रमा जमीन उपर डे काठ न्य छे, ते त्या लाणा समय सुधी स्थिर रही शकतु नथी, मात्र थोडा समय सुधी ज ते त्या टके छे ते ज प्रकारे अज्ञानीतु एवन पञ्च पवनसदृश पूर्व अने अपर-काल सगधी कर्मपुद्गलौधी सदा अचल रहे छे, ज्यारे पवनना साधारण्य अपाटाथी दर्भनी अणु उपर पडेला आकणना बिन्दुनी जेभ आयु-कर्मनो अत आवी न्य छे, अथवा तो कोर् शस्त्रघात आदि निमित्त भणी न्य छे त्यारे तेनो पञ्च नाश यता वार लागती नथी, आ पञ्च अस्थिर अने क्षणिक छे अज्ञानीना एवनने दर्भनी अणु उपर पडेला आकणबिन्दु साथे उपमा जे भाटे आपवामा आवेल छे के जे प्रकारे जे अतिचञ्चल अने अस्थिर छे जे ज प्रकारे अज्ञानीतु एवन गमे ते स्थितिमा होय छता स्थिर रहेतुं नथी क्षणिकतानु जेकछत्र राज्य थारे तरश् व्यापक छे, गमे जे नरकगतिमा रहे अजर निगोदमा रहे, गमे ते स्थणे रहे छता स्थिर नथी



शाकून—सम्यग्दृष्टि जीव भी अपनी पूर्वपर्यायों में अनेक गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं, तथा जब तक उन्हें मुक्ति का लाभ नहीं हुआ तब तक उनका जीवन भी तो इस तरहसे अस्थिर ही है; फिर यहा बाल जीवन को ही क्यों अस्थिर बनलाया ?

समाधान—यद्यपि यह शाकून ठीक है, फिर भी यहां पर जो अज्ञानी के जीवन को ही अस्थिर बनलाया है उसका त्वास मतलब है, और यह यह है कि अज्ञानी का जीवन समकित के अभाव के कारण स्थिर नहीं हो सकता, सम्यग्दृष्टि का जीवन तो समकित के सन्नायके कारण स्थिर हो जाता है। समकित के होने पर यदि यह अयत्नायुष्क है तो नियमसे यह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और वहां से ध्यय कर महाविदेहादिक क्षेत्रमें जन्म ले कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है। इस तरहसे ब्रह्म की अपेक्षा से उमका जीवन अस्थिर नहीं है, किंतु स्थिर ही है। परन्तु अज्ञानी का जीवन इस तरह का न होनेसे क्षणिक-अस्थिर है। अज्ञानी नरकनिगोदादिक के कटुक फल को जानता नहीं है। अपनी क्षण २ में व्यतीत होती हुई आयु का भी उसे कुछ भी ख्याल नहीं होता है। जैसा असमकित जीव होता है समकित जीव वैसा नहीं होता, वह तो शास्त्रादिकों के परिशीलन से या शुर्बादिक के निमित्त से

शक—सम्यग्दृष्टि एव पक्ष पातानी पूर्व पर्यायोंमें अनेक अतिथेयों परिभ्रमण करे छ तथा न्या मुभी तेने मुक्तिने लाभ नथी धये त्या मुभी तेनु एवन पक्ष तेवा प्रकारे अस्थिर छे त्थरे अर्द्धि पावएवनने न शक भट्टे अस्थिर भवान्यु ?

समाधान—जे के न्या शक ही छे छवा पक्ष मा स्थले जे अज्ञानीना एवनने अस्थिर उपमां भवावेस छे जेने न्या त्वास मतलब छे, जने ते जे छे के अज्ञानीनु एवन समकितना अभावना कारणे स्थिर भनी शकनु नथी, सम्यग्दृष्टिनु एवन ता समकितना सहजानना कारणे स्थिर भनी लाभ छे समकित वधाधी जे ते अयत्नायुष्क छे तो नियमधी ते वैमानिक देवमा उत्पन्न ध्यय छे अने त्थाधी व्यतीते ते महाविदेहादिक क्षेत्रमा जन्म लखने मुक्तिने लाभ प्राप्त करे छे न्या प्रकारे ब्रह्मनी अपेक्षाधी तेनु एवन अस्थिर नथी, परहे स्थिर न छे परन्तु अज्ञानीनु एवन न्या प्रकारनु न होवाधी लक्षिक-अस्थिर छे अज्ञानी नरक-निगोदादिकना क वा क्खने भवतो नथी, पाताना लजे क्खे अतीव वदा आयुष्मनु पक्ष तेने न्यन होतु नथी, जेभ असमकित्ती एव होय छे तेभ समकित्ती एव होवा नथी, ते वा शक्यदिकना परिशीलनधी

नरकनिगोदादिक के दुःखों का ज्ञान होता है, क्षण २ में व्यतीत होने-  
वाली अपनी आयु की एक २ घड़ी भी व्यर्थ नहीं ग्योता, समझने के  
सद्भावसे उसकी सफलता करता रहता है। इसी समझ अभिप्राय को  
हृदयमें रख कर सूत्रकार ने “ एवं वालस्म जीवियं मदस्म अविद्या-  
णओ ” यह सूत्रांश कहा है। वालका विशेषण “ मन्द ” को जो लिखा है,  
उसका तात्पर्य यही है कि जब वह मन्द नरकनिगोदादिक के कटुक  
फल को अथवा क्षण २ में व्यतीतवाली अपनी आयुको नहीं जानता है  
तो फिर वह अपने हित और अहित की प्राप्ति एवं परिहारका ज्ञान भी  
कैसे हो सकता है?। यहां पर यह शङ्का कोई कर सकता है कि मन्द प्राणी  
नरकनिगोदादिक एवं अपनी व्यतीत होती हुई आयु को नहीं जानता  
है, इसलिये वह यह भी नहीं समझता है कि मेरा हित किसमें है और  
अहित किसमें? परन्तु सम्यग्दर्शि भी तो ऐसा ही है तो फिर वह हितप्राप्ति  
और अहितके परिहार करनेमें समर्थ कैसे हुआ? सो ऐसी शङ्का करना  
ठीक नहीं, क्योंकि यह अभी बतला दिया गया है कि सम्यग्दर्शि जीव  
शास्त्र के अनुशीलन से अथवा गुरुआदिक के उपदेश के निमित्तसे  
नरकनिगोदादिक के दुःखों का तथा अपनी व्यतीत होती हुई आयुका ज्ञान

अथवा शुद्ध आदिना निमित्तथी नरक-निगोदादिकना हु भोना जाणुकार भने छे,  
अने क्षण क्षण घटता जाता पोताना आयुध्यनी अकेक घड़ी पणु ते व्यर्थ  
जवा हेतो नथी, समझितना सद्भावथी अनी सङ्गता करतो रहे छे आ  
समस्त अभिप्रायने हृदयमा गणी सूत्रकारे “ एवं वालस्म जीवियं मदस्म  
अविद्याणओ ” आ सूत्रांश कहेल छे मन्द आ विशेषणु “ मल ”ने उदेशीनेने  
लपेल छे अने भतलण अे छे के न्यारे ते मद्भाषी नरकनिगोदादिकना कडवा  
क्षणने अथवा तो क्षण क्षणमा घटती जाती पोतानी आयुध्यने नथी समजतो  
तो करी ते पोताना हित अने अहितनी प्राप्ति तेमज परिहारने जाणुकार कथं  
रीते गनी शके? आ स्थणे कोर्छ अेवी शका करी शके के मद्भाषी नरक-निगो-  
दादिकने अने पोताना व्यतीत थता जाता आयुध्यने जाणुतो नथी, भाटे ते आ  
पणु नथी समज शकतो के भाइ हित अने अहित शाना छे? परतु सम्य  
ग्दर्शि एव पणु तो अेवो ज छे, त्यारे ते हितनी प्राप्ति अने अहितने परि-  
हार करवामा समर्थ केवी रीते थाय छे? अेवी शका करवी हीक नथी, कारणु के  
हुमणु ज समजववामा आयु छे के-सम्यग्दर्शि एव शास्त्रना अनुशीलनथी  
अथवा शुद्ध आदिकना उपदेशना निमित्तथी नरक-निगोदादिकना हु भोना ज्ञाना  
थाय छे अने पोताना व्यतीत थता आयुध्यने पणु जाता थाय छे आ भाटे ते

होता है। इसीलिये तो यह "समयं गोयम मा पमायए" इस प्रसुके वाक्यानुसार प्रमाद में अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाने देता। सावधान हो कर ही प्रत्येक क्रियाओं को करता है जिससे उसकी आयुका एक २ क्षण सफल बन। यह जानता है—यह जीवन क्षणमंगुर है, इसकी सफलता जैसे भी हो सके वैसे कर लेने में ही बुद्धिमान्नी है।

परमार्थसे अनभिज्ञ बने हुए वे पालजीव गलकर्तनादि जैसी घातक क्रियाओं अथवा अठारह प्रकारके पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकों को मम, बचन एवं काय से आचरते हुए प्राणातिपातादिजनित और कटुक फलक उत्पादक शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे, अथवा दुःखोंको वेनघाते कर्मों से अनेक योनियों में चारवार जन्म-मरण रूप परिभ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—जिन्हें हित और अहित का कुछ भी मान नहीं होता है ऐसे अज्ञानी जीव मूल कार्यों को करने में जरा भी नहीं हिचकते। इन्हें इस बात का कुछ भी ख्याल नहीं होता कि इन कार्योंके करनेका अन्तिम परिणाम क्या होगा?। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति उनकी ऐसे ही अधम गलकर्तनादि (गर्वन काटना आदि) रूप कार्योंके कर नेमें लालसावाली बनी रहती है, इससे वे ऐसे २ अछुम कर्मों का उपार्जन

"समयं गोयम मा पमायए" आ प्रसुना वाक्यानुसार प्रमादमा पीतानु ज्येक पवु क्षण निरर्थक बन्ना देतो नथी सावधान बनीने इरेक क्रियाज्या करे छे जेधी तेना आयुष्यते ज्येठेक क्षण पवु अक्षण बने, ते बज्जे छे हे—आ एवन क्षण बज्जे छे तेनी सक्षणता जेटही बने तेठही सत्वर ठरी बीवी ते बुद्धिमाननु काम छे परमार्थधी अज्ञान ज्येवे बालएव गलकर्तनादि जेवी घातक क्रियाज्या बने अठार प्रकारना पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकीने मन बचन बने कामधी आचरिने प्राणातिपातादिजनित बने कटुकक्षणना उत्पादक शारीरिक तेमक मानसिक दुःखधी अथवा दुःखने देवाज्या कर्मोभा बनेक योनियोभा चारवार जन्म-मरणरूप परिभ्रमण करते रहे छे

भावार्थ—जेने हित बने अहितनु कछ पवु बान नथी ज्येवे अज्ञानी एव घातकी कार्य करवाभा बस पवु इस्तो नथी तेने ज्ये वातने कछ ज्येवे अज्ञान नथी अतवेते हे आ कामनु अन्तिम परिव्राम हेतु आवये, तेनी मानसिक वाचिक बने वाचिक प्रवृत्ति अर्हिन कायवा आदि अधम कार्यो करवाभा लालसायुक्त बनी रहे छे जेधी ते अथवा अथवा अशुभ कर्मोनु उपार्जन बने वर्धन

और वर्धन करते हैं कि जिनका परिणाम भविष्यमें उन्हें महादुःख दायक होता है। नरकनिगोदादिरूप अनेक योनियों में बार २ भ्रमण कर वे वहाँकी अनन्त वेदनाओं को सहते २ अपने अमूल्य जीवन को विलकुल नष्ट करते रहते हैं। अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक दुःखोंकी प्राप्ति जीवोंको ऐसे ही कार्योंके फलस्वरूप होती है।

वे मृदु घालजीव अनेक योनियोंमें दुःखप्रद कर्मके कटुकफलसे अनभिज्ञ होते हुए जिससे आत्माका कल्याण होता है जो अनेक दुःखोंका नाशक है और साक्षात् या परम्परारूपसे जो इस जीवको मुक्तिमें ले जाता है ऐसे सुखजनक उस धर्मको दुःखरूप जानते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार कामला (पीलिया) रोगसे दूषितदृष्टिवाला प्राणी अन्य शुभ्र (सफेद) पदार्थोंको भी पीतरूपसे ग्रहण करता है—जानता है, ठीक उन्ही प्रकार जो जीव अनादि मिथ्यात्वकर्मकी वासनासे ओतप्रोत होते हैं वे प्राणी भी सुखदायी धर्मको दुःखदायी रूपसे जानते हैं। यह उनकी मलिन आत्माका ही दोष है।

अज्ञानसे अन्ये हुए वे प्राणी दुःखजनक सावय व्यापारोंको अपने दुःखको दूर करनेके लिये करते हैं।

करे छोड़े नेनु परिष्णाम लविष्यमा तेने महादुःखदायी धाय छे नरक—निगो दादिरूप अनेक योनियोंमा बारबार भ्रमण करी ते त्यानी अनन्त वेदनाओं सहन करी पौतानु अभूष्य लवनेना नाश करे छे, अनेक प्रकारना शारीरिक अने मानसिक दुःखोंनी प्राप्ति लवनेने जेवा करीना कृणस्वइप न धाय छे

ते मृदु गाललव अनेक योनियोंमा हु अग्रद कर्मोंना कडवा कृणोंना अनभिज्ञ छोड़ नेनाथी आत्मानु कल्याण धाय छे, ने अनेक दुःखोंना नाशक छे अने साक्षात् अथवा परंपराइपथी ने आ लवने मुक्तिमा लख लय छे जेवा सुभ—जनक ते धर्मने हु अइप लखे छे

भावार्थ—जे प्रकारे कामलाना रोगथी दूषित दृष्टिवाला प्राणी भील शुभ्र पदार्थोंने पण भीणाइपे लुखे छे, जेवा प्रकारे जे लव अनादि मिथ्यात्व कर्मनी वासनाथी ओतप्रोत होय छे ते प्राणी पण सुखदायी धर्मने हु अ हाथी लखे छे, ते तेना मलिन आत्मानो दोष छे

अज्ञानथी आधणो गनेलो ते प्राणी हु ग आपवावाणा सावय—पापकारी व्यापारोंना पौताना हु अने दूर करवा भाटे उपयोग करे छे

मिथो विपर्ययैः विपरीत्यं दुःस्वननकषमादेर्दुःस्वननकादिरूपम् उपैति—मानोति,  
अज्ञानान्मोहि दुःस्वननकषावध्यापार तदुपसमाय विदधातीत्यर्थः । अपि च  
मोहेन—स्वविपर्ययैरुपैति विवेकं, अप्रान्तभूतमोहस्य ग्रहणादादिमध्यवर्तिनो राग-  
द्वेषयोरपि ग्रहणं, तेन रागेण द्वेषेण वा, यद्वा—मिथ्यात्वकषायविपर्ययमित्यापमयत्वं  
मोहनीयेन कर्मणा, गर्भ—जन्नीकठरनिषास्वरूप, तेन च मरणादि एति—गच्छति ।  
मरणादीत्यमादिग्रहणात्—

भाषार्थ—वे यह नहीं जानते हैं कि जिस प्रकार रक्त से दूषित  
वस्त्रकी शुद्धि रक्तसे नहीं होती है उसी प्रकार से मावस व्यापार जो  
स्वयं दुःस्वरूप या जीवों को दुःस्वदायी है, भला ! उनके करने से दुःस्वों  
का उपशम कैसे हो सकता है । ऐसा बोध उन्हें हो भी कहाँ से; क्यों  
कि वे तो अज्ञानसे अंधे जो हो रहे हैं । इनके कर्मबल्लु भले ही निर्दोष  
हों, परन्तु जिनसे भले-बुरे का बोध होता है इनके उन ज्ञानबल्लुओं  
पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है ।

तत्त्वोंमें विपरीताभिनिवेश का कारण जो अविवेकरूप मोह है  
उससे, अथवा राग और द्वेषसे, या मिथ्यात्व—कषाय—विपर्ययमित्याप-  
स्वरूप मोहनीय कर्म से वे पाल्जीव जमनी के जठरमें रहनेरूप गर्मा  
वस्था एवं मरणदशा को प्राप्त करते हैं । यद्वा पर अन्तभूत मोह के  
ग्रहणसे उसके आदि और मध्यवर्ती राग और द्वेष का भी ग्रहण हुआ  
है । मरणमें शूहीत आदिपदसे—

भाषार्थ—ते जेम नहीं जानते के जेवी शीते लोहीधी दूषित वस्त्रेवा बननी  
शुद्धि लोहीधी बनती नहीं तेवी शीते फ्रपकारी व्यापार के स्वयं दूषण अने  
छपने दुःस्वदायी छे तेने उपशम करवावी दुःस्वानु निवारणु शी शीते यद्य  
शुद्धे जेवे उपदेश जेने लागे पणु कषाधी, कस्यु के जेते अज्ञानधी व्याप  
णो न यद्य शक्य छे जेना अमयल्लु भवे निर्दोष छे परंतु जेनापी भवा—पुशनी  
व्याप याव त ज्ञानबल्लुओ उपर अज्ञानो पडरो पडेवे छे

तत्त्वोमा विपरीत आवरणं कस्यु के अविवेकरूप मोह छे तेनाधी, अथवा  
रक्त अने द्वेषधी अथवा मिथ्यात्व—कषाय—विपर्ययमित्याप—स्वरूप मोहनीय कर्मधी ते  
पाल्जीव भावानु उदरमा स्थितिरूप जर्मावस्था जेव भरणु इशाने प्राप्त याव छे  
जा स्वयं अन्तभूत मोहन्य अक्षुधी तेने आदि अने मध्यवर्ती राग अने द्वेषनु  
पणु अक्षु भवेत छे भरणुमा शूहीत आदि पदधी—

“ पुनरपि जनन पुनरपि मरणं, पुनरपि कर्मोपार्जनकरणम् ।

पुनरपि नरकनिगोदनिपातः, पुनरपि जननीजठरे पातः ॥१॥” इति ।

पूर्वं मरणं पुनर्गर्भगमनं, ततो जन्म, ततः पापवृद्धिस्ततो भृशं हिंसादिक्रूर-  
कर्मप्रवृत्तिस्ततः कर्मणो भरस्तेन च नरकनिगोदादिपात इति मज्जनोन्मज्जनक्रमेण  
भूयो भूयो गर्भस्य मरणादेरेव प्राप्तिम्नस्य भवतीति तात्पर्यम्, अत एव—अत्र=  
अस्मिन् मोहे=अज्ञाने मोहनीये—मोहजन्ये गर्भजन्मजरामरणादिके कर्मभरे वा  
पुनः पुनः परिभ्रमति, स तेभ्यो न बहिर्निःसर्तुं प्रभवतीति भावः ।

“ पुनरपि जनन पुनरपि मरण, पुनरपि कर्मोपार्जनकरणम् ।

पुनरपि नरकनिगोदनिपातः, पुनरपि जननीजठरे पातः ॥”

इस पद्योक्त जन्ममरणादि की परम्परा का ग्रहण किया गया है।  
अर्थात्—मरण, पुनः गर्भमें गमन, फिर जन्म, फिर पापों का वर्धन,  
उससे हिंसादिक क्रूर कर्मों में प्रवर्तन, उससे फिर कर्मों का उपार्जन,  
पश्चात् पुनः नरकनिगोदादिकमें पतन; इस प्रकार की जन्म मरणादि की  
परंपरासे इस धाल अज्ञानी जीव का कभी भी छुटकारा नहीं होता है।  
जिस प्रकार समुद्रादि जलाशयमें पडा प्राणी उसीमें उतराता (ऊपरआता)  
और डूबता है उसी प्रकार जीव को भी वार २ गर्भ, जन्म और मरणकी  
प्राप्ति होती रहती है। इसी आशय की पुष्टि सूत्रकारने “अत्र मोहे  
पुनः पुनः” इस सूत्रांश से की है।

“ पुनरपि जननं पुनरपि मरण, पुनरपि कर्मोपार्जनकरणम् ।

पुनरपि नरकनिगोदनिपातः, पुनरपि जननीजठरे पातः ॥ ”

आ पद्योक्त जन्ममरणादिनी परंपरातु अद्वयु करेले छे अर्थात्—मरण,  
पुन गर्भमा आववु, इरी जन्म, इरी पापोतु वर्धन, अथी हिंसादिक क्रूर कर्मोमा  
प्रवर्तन, अथी इरी कर्मोतु उपार्जन, पछी पुनः नरकनिगोदादिकेमा पतन, आ  
प्रकारनी जन्ममरणादि परंपराथी आ धाल अज्ञानी एव क्यारेथ छुटकारो  
मेणवी शकतो नथी जे रीते समुद्र आदि जलाशयोमा पडेलेो प्राणी अेमा ज  
उपर आवे छे अने दुणे छे आ रीते आ एवने पद्य वारवार गर्भ, जन्म  
अने मरणनी प्राप्ति थती रहे छे आ आशयनी पुष्टि सूत्रकारे “अत्र मोहे पुन  
पुनः” जे सूत्रांश द्वारा करी छे

भावार्थ—संसारमें राग, द्वेष, अज्ञान और मोह भादि मलिन भाव इस जीवके सबसे प्रबल शत्रु हैं। बाध शत्रु तो इसके लिये एक ही भयमें दुःखदायी होते हैं; परन्तु ये तो इसे भय २ में अनन्त कष्टों को देते रहते हैं। इसके ज्ञानादि गुणोंके निघान को छूट कर इसे नरक निगोदादिका अधिकारी बनाते रहते हैं। यह इन कारणोंसे जन्म मरणादिकी परम्परा से कमी छुटकारा नहीं पा सकता है। जिस प्रकार असहाय प्राणी समुद्रादि जलाशयमें पड़ने पर वहीं डूबता और उतराता है, वह जिस प्रकार वहाँसे बाहर नहीं निकल पाता, अन्तमें बेचारेका वहाँ पर प्राणान्त हो जाता है। ठीक यही दशा इस अज्ञानी जीव की हो रही है। इस संसाररूपी समुद्रमें पड़ कर यह भी उसीमें डूबता रहता है और सरता रहता है। तप और संयमका प्रयत्न प्राप्त किये बिना इसका इससे उधार नहीं हो सकता है, अत मोक्षामित्वापीका कर्त्तव्य है कि वह इस रागद्वेषादिरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। तभी यह अज्ञान-मोह जन्य गर्भ, जन्म, मरणादिसे अथवा कर्मके भारसे रहित हो सकता है, अम्यथा—“अथ मोहे पुन पुनः” इस मोहादिरूप मलिन भावोंमें ही इसका जन्मजन्मान्तर का समय व्यतीत होता रहेगा।

भावार्थ—संसारमा रागद्वेष अज्ञान अने मोह भादि मलिन भावो आ  
 लुना अधाशी प्रबल शत्रु छे बाध शत्रु तो तेने भाटे अनेक लक्ष्म दुःख  
 दायी बाध छे परंतु आ तो लोकात्ममा अनन्त कष्टोने देता रहे छे तेना ज्ञानादि  
 गुणोना अक्षरने दुष्टीने तेने नरक-निगोदादिना अधिकारी जनावे छे आ कारणोने  
 लक्ष्म जन्म-मरणादिनी परपराभाषी छुटकारो अणवी शकतो नथी जेनी शीते  
 असहाय प्राणी समुद्र आदि जलाशयोमा पडबासी त्मां दुखे छेअने उपर आने  
 छे ते त्मांकी जेम अकार नीकणवा असमय होय छेअने अते तेना त्याज देवांत  
 बाध छे आवी अ इया अवा अज्ञानी लोकोनी बती रहे छे आ संसाररूपी  
 समुद्रमां पडी ते आवे शीते तेमां दुखे छे अने भरे छे तप अने संयमने  
 लोका अक्षय कर्मा सिवाय तेना उधार लक्ष्म शकतो नथी आषी मोक्षामित्वापीनुं  
 कर्त्तव्य छे के आवा रागद्वेषादिरूप शत्रुणे उपर विजय प्राप्त करे त्परे अ  
 ते अज्ञानमोहजन्य जल अ म मरणादिषी अथवा कर्मान्तराधी संबित जनी  
 शक छे अम्यथा ‘अथ मोह पुन पुनः’ जे मोहादिरूप मलिन विषयाभांज  
 तेना जन्मजन्मान्तरने समय व्यतीत बते रहेरी

यद्वा-अत्र=समारे तत्तद्वृत्तिषु वम्भ्रम्यमाणस्य पुनः पुनः कर्मवन्धनेन सांसारिकदुःख, तेन मोहे=पूर्वोक्तस्वरूपे समुत्पद्यते, इति ॥ सू० २ ॥

ननु ससारपरिभ्रमणाभावश्च मोहाभावान्, य च त्रिणिष्ठज्ञानाविर्भावात्, सोऽपि च मोहाभावात्, तन्वान्योन्याश्रयो दुर्गारः, मोहाभावाद्दिशिष्ठज्ञानाविर्भावः, तस्माच्च मोहाभावः, एवं च यावत् त्रिणिष्ठज्ञानाविर्भावो जातो न तान्कर्मोपशान्तये पुरुषस्य प्रवृत्तिः स्यादित्याकाङ्क्षायामर्थसंशयादपि प्रवृत्तिर्भवतीति दर्शयति—‘संसय’ इत्यादि ।

“अत्र मोहे पुनः पुनः” इस वाक्यांशका टीकाकार इस प्रकारसे भी अर्थ करते हैं—इस संसारमें उन २ गतियों में भटकनेवाले इस अज्ञानी जीव को पुनः पुनः कर्मवन्ध, उससे सांसारिक दुःखों की प्राप्ति, उससे पुनः मोह में पतन, इस प्रकारके भ्रमणमें पड़ा ही रहना पड़ता है ॥ सू. २ ॥

मोहके अभावसे इस जीवका संसारमें परिभ्रमण नहीं होता है, परन्तु जब तक सम्यग्ज्ञान का आविर्भाव इस जीवके नहीं होता है तब तक मोहका अभाव नहीं हो सकता है, और सम्यग्ज्ञान का आविर्भाव भी जब तक मोहका अभाव नहीं होता है तब तक नहीं हो सकता। इस प्रकार तो यहां पर अन्योऽन्याश्रय दोष दुर्गार होगा, क्यों कि मोहाभावसे सम्यग्ज्ञानाविर्भाव होता है, और सम्यग्ज्ञानाविर्भाव से मोहाभाव, तब तो जब तक सम्यग्ज्ञानका आविर्भाव नहीं हुआ है तब तक कर्मोपशमनके लिये पुरुष की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकारकी

“अत्र मोहे पुनः पुनः” आ वाक्याशने टीकाकार आ प्रकारे पञ्च अर्थ करे छे—आ ससारमा ते ते गतिओमा लटकना ते अज्ञानी एवने पुन पुन कर्मबंध, तेनाथी सासारिक दुर्गोनी प्राप्ति, पुन मोहमा पतन, आवा प्रकारना भ्रमणमा न पञ्च न रहेवु पडे छे ॥ सू० २ ॥

मोहना अभावधी आ एवन्तु ससारमा परिभ्रमण धर्तु नधी परतु न्या सुधी सम्यग्ज्ञाननो आविर्भाव आ एवने थतो नधी त्या सुधी मोहनो अभाव थथ शकतो नधी, अने सम्यग्ज्ञाननो आविर्भाव पञ्च न्या सुधी मोहनो अभाव नधी थतो त्या सुधी थतो नधी आ प्रकारे तो आ स्थणे ‘अन्योन्याश्रय’ दोष अवश्य थथे, केम के मोहना अभावधी सम्यग्ज्ञाननो आविर्भाव थाथ छे, अने सम्यग्ज्ञानना आविर्भावधी मोहनो अभाव थाथ छे त्यारे तो न्या सुधी सम्यग्ज्ञाननो आविर्भाव थतो नधी त्या सुधी कर्मोपशमनने माटे पुश्चनी प्रवृत्ति



सूत्रम्—ससय परियाणभो ससारे परिज्ञाय भवइ, ससय अपरियाणभो ससारे अपरिज्ञाय भवइ ॥ सू० ३ ॥

ध्याया—संशयं परिजानतः संसारः परिज्ञातो भवति, संशयमपरिजानतः संसारोऽपरिज्ञातो भवति ॥ ३ ॥

टीका—‘संशय’-मित्यादि संशयसमुच्चयकारिषिषयवत् ज्ञानमित्यर्थः, परिजानतः=भवमुप्यमानस्य संसारः=संशयविषयीभूत परिज्ञातः=परिज्ञया स्वरूपेण फलन च ज्ञात सन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिस्थितो भवति, तथैव संशयम् अपरिजानतः संसारोऽपरिज्ञातः=प्रत्याख्यानपरिज्ञातोरविषयो भवति । स चात्र सखभादाज्ञात होने पर सूत्रकार “अर्थमें संशय होनेसे मी प्रवृत्ति होती है” इस प्रकार उक्तारूप सूत्र कहते हैं—“संसय” इत्यादि ।

उभयकोटि को स्पर्श करनेवाले ज्ञानका नाम संशय है । तात्पर्य यह है कि—सामान्य धर्मका प्रत्यक्ष होने पर और विशेष धर्म का अप्रत्यक्ष होने पर ही संशयज्ञान होता है, जैसे—यह स्थाणु है या पुरुष? यहां पर पुरुष और स्थाणु का सामान्य धर्म उच्चाई आदि है । विशेष धर्म पुरुष क-शिर, हाथ, पैर आदि हैं, तथा स्थाणु के बक्रता कोटर आदि हैं । देखनेवाले को उभयपदार्थगत सामान्य धर्म प्रत्यक्ष है और तद्वत् विशेष धर्म अप्रत्यक्ष है, तभी उसका ज्ञान परस्परविरुद्ध उभय कोटि को स्पर्श करता है, और इसलिये यह ज्ञान संशय-स्वरूप होता है । इस प्रकार संशयके स्वरूप को जानने वाले व्यक्ति के लिये संशयज्ञान का विषयभूत यह समार परिज्ञान होता है—अपरिज्ञातारा स्वरूप एवं

यसं शक्यं नधी न्वा प्रकाशनी आशङ्क्यवाणी सूत्रकार “अर्थमा संशय शोवाधी पक्ष प्रवृत्ति भाव छे न्वा प्रकारे उत्तररूप सूत्र कहे छे—ससय” इत्यादि

उक्तार कोटिने स्पर्श इत्यापक्ष्य ज्ञाननु नाम संशय छे तात्पर्य छे—सामान्य धर्म प्रत्यक्ष होय विशेष धर्म अप्रत्यक्ष होय त्पारे संशय ज्ञान भाव छे तेम-न्वा स्थाणु छे जगर पुरुष ? न्वा जन्मोत्पे पुरुष अने स्थाणुनो सामान्य धर्म उच्चाई आदि छे विशेष धर्म पुरुषने भायु हाथ अने पैर आदि छे त्पारे स्थाणु ने वाक्रपक्षु अने पोलापक्षु आदि छे जेनारने अने पदाधीना सामान्य धर्म प्रत्यक्ष छे अने तद्वत् विशेष धर्म अप्रत्यक्ष छे त्पारे ज तेनु ज्ञान परस्परविरुद्ध अनेछ कोटिने स्पर्श करे छे अने कोटि ज ते ज्ञान संशयस्वरूप भाव छे न्वा प्रकारे संशयना स्वरूपने ज्ञानार अङ्गि भाटे संशयज्ञाननो स्वरूपनू न्वा संसार परिज्ञाय भाव छे—अ-परिज्ञा

योऽर्थानर्थोभयकोटिकविचार एव गृह्यते, तत्रार्थो मोक्षस्तत्साधनं च रत्नत्रयम् । मोक्षे सशयासम्भवं, तस्य परमपदत्वेन मरुत्तैरिथैरभ्युपगमात् । मोक्षसाधने तु संशये सत्यपि प्रवृत्तिर्भवति, तत्संशयस्य प्रवृत्त्यद्भवात् । तथाहि—‘चारित्र्यं मोक्षसाधनं भवति न वा?’ इति संशये सति तन्निवारणार्थं सद्गुरुरूपदेशश्रवणे प्रवृत्तिलोके दृश्यते ।

एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च, तत्र संसारस्य तत्कारणमप्य च संशय-फलसे जाना गया यह संसार प्रत्याख्यानपरिज्ञासे परित्यक्त होता है । इसी प्रकार संशय को नहीं जाननेवाले व्यक्तिके लिये यह संसार अपरिज्ञात होता है—ज और प्रत्याख्यान—परिज्ञा का विषयभूत नहीं होता है । यहां अर्थ और अनर्थ इन उभयकोटिका विचारस्वरूप ही संशय ग्रहण किया है । यहां अर्थ—शब्दसे मोक्ष और उसके साधनभूत रत्नत्रयका ग्रहण हुआ है । मोक्षमें संशय का अभाव है, क्योंकि उसे परमपदरूप से अन्यमतानुयायियोंने भी स्वीकार किया है, परन्तु मोक्षके कारण—साधन में संशय है, तो भी यहां प्रवृत्ति होती है, क्योंकि तद्विषयक संशय उसमें प्रवृत्तिका कारण होता है । जैसे—“चारित्र्य मोक्षका साधन है या नहीं” इस प्रकार चारित्र्यमें मोक्ष साधनताविषय संशय होने पर उसे दूर करनेके लिये सद्गुरुके उपदेश का आश्रय करने की लोकमें प्रवृत्ति देखी जाती है ।

इसी प्रकार अनर्थ अर्थात्—संसार और उसके कारण के विषय में

द्वारा स्वल्पमेव इत्थं ज्ञात आ संसार प्रत्याख्यान—परिज्ञाथी परित्यक्त थाय छे आ प्रकारे संशयने नहि जाणुवावाणी व्यक्ति भाटे आ संसार अपरिज्ञात थाय छे—सं—परिज्ञा अने प्रत्याख्यान—परिज्ञानो विषयभूत धतो नथी, आ स्थणे अर्थ अने अनर्थ आ उभयकोटिना विचारस्वरूप ए संशय मानवाभा आव्यो छे आ स्थणे ‘अर्थ’ शब्दथी मोक्ष अने तेना साधनभूत रत्नत्रयतु शक्य करवाभा आवेल छे मोक्षमा संशयने अभाव छे, कारण के तेने परमपदरूपथी थीना मता नुयायियोंके पणु स्वीकार करेल छे, परन्तु मोक्षना कारणो—साधनोमा संशय छे, तो पणु प्रवृत्ति थाय छे, कारण के ते विषयने संशय तेमा प्रवृत्तितु कारण अने छे जेवी शीते “चारित्र्य मोक्षतु साधन छे के नहि ?” आ प्रकारे चारित्र्यमा, मोक्षसाधनविषयक संशय धता तेने दूर करवा भाटे सद्गुरुना उपदेशने आश्रय करवाणी लोकमा प्रवृत्ति जेवाभा आवे छे

आ प्रकारे ‘अनर्थ’ अर्थात् संसार अने तेना कारणना विषयमा संशय पणु

विषयस्त्व सति सत्ता निवृत्तिरवश्य मनसि, अनर्थसंशयस्य निवृत्त्यङ्गत्वात् । 'संशयं परिजानत' इत्यनेन परिज्ञानविषयीभूतस्य संशयस्य—अर्थोऽनर्थो वा विषय, तत्र—अर्थविषयकमज्ञपस्यानर्थविषयकसंशयतो मदात् संशयस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप फलं मिश्रमत्र भवति । विषयस्य ज्ञानमदनियामकतया संशयपरिज्ञाने तदीयविषयसंशय भी उनकी निवृत्ति का कारण होता है, क्योंकि संसार और उसके कारणों में संशय होने पर ही उस ओर प्रवृत्ति होगी । प्रवृत्ति से उनके वास्तविक स्वरूप का बोध होगा । बोध होने पर उनसे निवृत्ति होगी । इस प्रकार परम्परासूत्रसे यह संशय निवृत्तिका कारण बनता है । यही वाक्य "एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च" इत्यादि पंक्तियों में टीकाकारने स्पष्ट की है । अनर्थविषयक संशयके उसकी (अनर्थ की) निवृत्तिका कारण होने से, संसार और उसके कारणोंके विषयमें संशय होने पर उनसे निवृत्ति अवश्य होगी है ।

"संशय परिमाणम्" इस पदसे सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि ज्ञानके विषयभूत संशय के अर्थ और अनर्थ, ये दो विषय हैं । वहाँ अर्थ-विषयक संशय का अनर्थविषयक संशय से भेद होनेसे उनके प्रवृत्ति रूप और निवृत्तिरूप फल परस्पर भिन्न ही हैं, क्योंकि विषयके ज्ञान भेदका नियामक होनेसे संशयके विषयभूत पदार्थोंका परिज्ञान अवश्यमावी है ।

तेन निवृत्तिं कश्चि जने उ कश्चि के संसार जने तेन कश्चिमां संशय भवामी च ते तत्र प्रवृत्ति भवती प्रवृत्तिषो तत्र वास्तविक स्वप्नेषु बोध भवे, बोध भवामी तेनानी निवृत्ति भवे आ प्रकारे परपश्यन्ती संशय निवृत्तिं कश्चि जने उ आ वात एवमनर्थ संसारस्तत्कारणं च" इत्यादि पंक्तियोंमां टीकाकारे रूप कही उ अनर्थ-विषयक संशय (अनर्थनी) निवृत्तिं कश्चि याव उ भवे संसार जने तेन कश्चिमां विषयमा संशय भवामी तेनानी निवृत्ति अवश्य याव उ

"संशय परिमाणम्" का पदको सूत्रकार जेवु समझावे उ के-ज्ञानना विषयभूत संशयना अर्थ जने अनर्थ के वे विषय उ जेनामा अर्थ-विषयक संशयने अनर्थविषयक संशयको भेद बोधको जेनी प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप रूप परस्पर भिन्न च उ केभके विषयज्ञान केदना नियामक याव उ भवे संशयनु परिज्ञान बोधको संशयना विषयभूत पदार्थनु परिज्ञान अवश्यमावी उ

सशयवतः ससारः परिज्ञातो भवति, तत्परिज्ञानाच्च सर्वविरतिरिति ता निर्देष्टु-  
माह—‘जे छेण’ इत्यादि ।

सूत्रम्—जे छेए से सागारियं न सेवइ; कट्टु एवमवियाणओ  
विइया मंदस्स बालया; लद्धा हुरथा पडिलेहाए आगमिन्ता  
आणविज्जा आणासेवणयाए—त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—यश्चेकः स सागारिक न सेवते, कृत्वा एवमविजानतो द्वितीया  
मन्दस्य बालता, लब्धानप्यर्थान् प्रत्युपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनतयेति  
ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

सन्देह होता है तो वह उस सन्देहसे उसका निर्णय कर वहाँ से निवृत्त  
होता है, इस लिये विशिष्ट ज्ञानके अभावमें संशय से भी जीवकी जष  
पदार्थ के निर्णय करने की ओर प्रवृत्ति होती है तो इस प्रकारसे अन्योन्या-  
श्रय दोष नहीं आता है, क्यों कि मोहके कारणभूत संसारादिक पदार्थों  
में ‘ये सुखदायी हैं अथवा नहीं?’ इस प्रकार के सन्देह के निर्णयार्थ उनमें  
प्रवृत्तिशील पुरुष के सन्देह दूर होते ही विरागपरिणति हो जायगी।  
इस परिणतिका नाम ही मोहका अभाव है, अतः सूत्रकार का यह कथन  
कि ‘संशय को नहीं जाननेवाले के लिये ससार अपरिज्ञात है और उसे  
जाननेवाले के लिये वह परिज्ञात है’ ठीक ही है ॥ सू० ३ ॥

सशयज्ञानवाले को संसार परिज्ञात होता है और उसके परिज्ञात  
होने पर उसे सर्वविरति का लाभ होता है, अतः उस विरति को सूत्र-  
कार कहते हैं—‘जे छेए’ इत्यादि ।

प्रकारे अथारे भोक्षथीं एवमे तेमा सदेह थाय छे ते ते अे न देहथी तेने  
निर्णय ठरी त्याथी निवृत्त थाय छे आ कारखे विशिष्ट ज्ञानना अलापमा स शयथी  
पक्ष अथारे पदार्थने निर्णय करवा तरइ एवनी प्रवृत्ति थाय छे त्तारे ‘अन्यो  
न्याश्रय’ दोष आपतो नथी कारखे के मोहना कारखुल्ला स आरादिक पदार्थोमा  
‘अे सुखदाथी छे के नहि’ अेवा प्रकारना निर्णय भाटे तेनामा प्रवृत्तिशील  
पुरुषने स देह इर थता अ विराग-परिणति थर्थ अथे, आ परिणुतिनुं नाम अ  
मोहनेो अलाप छे, भाटे सूत्रकारनु आ उथन के ‘स शयने नहि अणुनाश भाटे  
स सार अपरिज्ञात छे अने तेने अणुवापाजा भाटे ते परिज्ञात छे’ ठीक अ छे ॥ सू० ३ ॥  
स शयज्ञानवापाने स सार परिज्ञात थाय छे अने स सार परिज्ञात थवाथी  
तेने सर्वविरतिने लाभ थाय छे, भाटे अे विरतिने सूत्रकार देहे छे—‘जे छेए’ इत्यादि

टीका—‘यच्छोक’ इत्यादि । पं कश्चित् छेकः=चतुर परिष्कारविषयकदु  
 विपाक इत्यर्थः, स सागारिकः=मैथुनं वैभमानुपतैरभस्मं न सेवते=न करोति मनोवा  
 कायैर्मैथुनपरायणा न मषतीत्यर्थः । यद्य मोक्षयोगेन पुरुषवेदोदयान्मैथुनं सेवते स  
 कृत्वा=विषयय गुर्वादिभिः पृष्टे सति एवं=मैथुनसेवनं, अविमानतः=अन्तर्मांसित्य  
 र्थतया अविज्ञापयत् गुरवे पानिवेदयत्तदपह्नुवानस्येत्यर्थः मन्वस्य=महस्य=अ-  
 धिवित्तमैथुनकदुःकफस्य द्वितीया=मैथुनसेवनादपरा मृपावादस्या, यद्वा=द्वितीया  
 =कृतपापापनोदाय पुनरकरणतयोत्पाय प्रायश्चित्तानावरणरूपा, वास्ता=अज्ञानता  
 मषति, उक्तम्—

जो कोई चतुर है, अर्थात् विषयांके कदुक विपाक का शक्ता है,  
 वह देव, मनुष्य और तिर्यगों के मैथुन का मन, वचन और काय से  
 सेवाम करने में परायण नहीं होता है । जो मोहके बंधसे अथवा पुरुष  
 वेद के उदयसे एकान्तमें कामसेवन करता है और गुरु आदिकके पूछने  
 पर अपने कृत मैथुनको छिपाता है—नहीं प्रकट करता है, मैथुन के कदुक  
 फलको नहीं जाननेवाले उस अज्ञके मैथुनसेवन से एक तो चतुर्थघत,  
 भंगजन्य दोष छगता है, और पूछे जाने पर ‘मैंने मैथुन सेवन नहीं किया  
 है’ इस प्रकार छिपाने से मृपावादस्य द्वितीय पापका भी वह पात्र होता  
 है । अथवा कृत पाप को दूर करने के लिये ‘मैं अथ इस पाप का सेवन  
 नहीं करूंगा’ इस प्रकार के विचारसे युक्त होकर प्रायश्चित्त नहीं लेने से  
 अज्ञानता का प्रसंग आता है । कहा भी है—

ये काल चतुर छे जेइते विषयाना क वा विषयाने ज्ञानकार छे ते देव,  
 मनुष्य जने तिर्ययाना मैथुनने मन, वचन जने अर्थाधी सेवन कएवाअ पसयस्य  
 बतो नधी, जे मोहना पशधी अथवा पुरुष-वेदना उदयधी जेकातमां काम-सेवन  
 करे छे जने अइ आदिना पुछवाधी पीते करेस मैथुन-पापने तेनाधी छुपावे छे-  
 अथ कस्ते नधी मैथुनना कइवां इजने न ज्ञानकार ते ज्ञानी एवने मैथुन  
 सेवनधी कोइ तो चतुर्थघत-का जन्म होय आवे छे जने अथरे तेने पुछवाना आवे  
 छे त्पारे ते मै मैथुन सेवेस नधी, आ प्रकार छुपावे छे तेधी मृपावादस्य  
 जीव पापने पात्र पय ते काम छे अथवा करेवा पापने दूर करवा भाटे हुं कवे  
 ज्ञान पापनु सेवन नछि कइं अत प्रकारना सकस्य करीने पय जे तेने  
 भाटे प्रायश्चित्त ज्ञानी करेस नधी तो तेने ज्ञानताने अज्ञान आवे छे  
 कइ पय छे—

“ જે સ્વલુ વિસળ સેવડ, સેવિત્તા વા ણાલોપડ, પરેણ વા પુટ્ટો નિપ્હવડ, અહવા તં પરં સણ દોસેણ વા પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જડ ”-હતિ ।

જ્ઞાયા—યઃ સ્વલુ વિપય સેવતે, સેવિત્વા વા નાલોચયતિ, પરેણ વા પૃષ્ઠો નિહુતે, અથવા ત પરં સ મ્વેન વા દોપેણ પાવિષ્ટતરેણ વા દોપેણોપલિમ્પતિ, હતિ ।

ક્રિમેતેનેત્યાહ--‘લ્હા’-નિત્યાદિ, લ્હાનપિ=પ્રાપ્તાનપિ મ્વાધીનાનિત્યર્થઃ, અર્થાન્=શબ્દાદિવિપયાન, અત્ર દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાઽઽર્પત્વાત્ ।

યદ્વા ‘ હુસ્થા ’ હતિ દેશીભાષયા ‘ વહિર્દ્વા ’ તેન લ્હાન્=વિપયાન ચિત્તા-દ્વહિર્વિદધ્યાત્, અલબ્ધાથ મનસાઽપિ ન ચિન્તયેદિતિ ભાવઃ । પ્રત્યુપેક્ષ્ય=નરક નિગોદાદિદુઃસ્વજનકત્વેન પર્યાલોચ્ય, તાનેવ પરત્રેહ ચ કટુકફલપ્રદતયા આગમ્ય=

“ જે સ્વલુ વિસળ સેવડ, સેવિત્તા વા ણાલોપડ, પરેણ વા પુટ્ટો નિપ્હવહ, અહવા ત પર સણ વા દોસેણ પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જડ ” હતિ ।

જો વિષયસેવન કરતા હૈ; સેવન કરને પર ઉસકી આલોચના નહીં કરતા હૈ, દૂસરે-ગુર્વાદિકોં કે પૂછને પર ઉસે છિપાતા હૈ, વહ અપને પાવિષ્ટતર ( ગુસ્તર ) દોષ સે સ્વયં ઉપલિસ હોતા હૈ ।

હસ લિપે સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ મોક્ષાર્થભલાપી કા કર્તાવ્ય હૈ કિ વહ પ્રાપ્ત ધી ઉન શબ્દાદિક વિષયોં કા યહ વિચાર કર ત્યાગ કરે કિ-ઇન કા વિપાક જીવ કો નરકનિગોદાદિકકે દુઃસ્વોં કા જનક હૈ, તથા ઇનકે સેવનકર્તા, હસ લોક ઓર પરલોક, દોનોં લોકોં મે ભયંકર દુઃસ્વોં કો ભોગતે હૈ । જિસ પ્રકાર યહ સ્વય ઉનકા કટુક વિપાક જાન કર ઉનસે

“ જે સ્વલુ વિસળ સેવડ સેવિત્તા વા ણાલોપડ, પરેણ વા પુટ્ટો નિપ્હવહ, અહવા તં પરં સણ દોસેણ વા પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જડ ”-હતિ ।

જે વિષયનુ સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં ઝોની આલોચના કરતો નથી, ધીજુ શુર આહિના પુછવા છતાં છુપાવે છે તે ચોતાના પાવિષ્ટ તર (શુરતર) દ્વાપથી પોતે ઉપલિસ થાય છે

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે-મોક્ષાર્થીજનનુ એ કર્તાવ્ય છે કે તે પ્રાપ્ત પણ શબ્દાદિ વિષયોના આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક છુપને માટે નરક-નિગોદાદિક ઇ.ખોનું કારણ છે અને તેનુ સેવન કરનાર આલોક અને પરલોકમા ભયકર ઇ ખો ભોગવે છે જે પ્રકારે તે પોતે તેના કડવા વિપાક નહીંને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તે જ પ્રકારે તે ધીજન

ज्ञात्वा मन्यान्—स्वातिरिक्तान् जनान् अनासेबनसया ' मैथुनमनासेबनीयम् ' इत्यादिरूपेण भाङ्गापयेत्=तीर्थकराङ्गामवधार्योपदिशत् । स्वयमपि तस्माद्भिरमेदि त्यर्षोऽपि । इति ब्रवीमीत्यधिकारसमाप्त्यर्थं ॥ सू० ४ ॥

अन्यत्प्याह—' पासह ' इत्यादि ।

मूकम्—पासह एगे रूबेसु गिद्धे परिणित्तमाणे । इत्थ फासे पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयसि आरमजीवी, एएसु चेष आरमजीवी । इत्थवि घाले परिपद्यमाणे रमइ पावेहिं कम्ममेहिं, असरणे सरणाति मन्नमाणे, इहमेगेसि एगचरिया भवइ । से घट्टुकोहे घट्टुमाणे घट्टुमाये घट्टुलोभे घट्टुरए घट्टुनडे घट्टुसडे घट्टु सकप्पे आसयसक्की पलिउच्छे उट्टियवाए पवयमाणे, ' मा मे केइ अदक्खू ' अघ्नाणपमायदोसेण सयय मूढे भम्म नामि जाणइ, अहा पयामाणव । कम्मकोविआ जे अणुवरया अविज्जाए पलिमुक्खमाहु, आवट्टमेव अणुपरियट्टसि—त्तिषोमि ॥ सू० ५ ॥

जाया—एकान् रूपु गृहान् परिणीयमानान् । अत्र स्वर्णान् पुन पुनः, यावन्तं क्रियन्तां शक्ये आरम्भजीविन , एतेष्वेष आरम्भजीविन । अप्रापि बावः परिपच्यमानो रमत पापेषु कर्मसु, अन्नरणं द्रग्णमिति मन्यमानः, इदंकेया मकचर्पा मषति । स बहुकाषा बहुमाना बहुमायो बहुआमा बहुरमा ( बहुरतो ) बहून्तो बहुश्रुता बहुसंख्य आसयसक्तिः पम्भितापच्छा उत्पित्तवार्दं भवदन् , ' मा मां केऽप्यद्राभु ' अघ्नानममाददापेण सततं मूढो धर्मं नाभिजानाति, मातां प्रजा मानव । कर्मकोविदा यऽनुपरता अविद्यया परिमासमाहु , आवर्तमेवातुपरिषर्तन्ते, इति ब्रवीमि ॥ सू० १ ॥

धिरत होता है उसी प्रकार दूसर जीवों को भी " ये मैथुनादि विषय सेवन करने योग्य नहीं हैं " इस प्रकार उनसे धिरत्त होनेका उपदेश देता है । " इति ब्रवीमि " इस प्रकार यह विषय जैसा मैंन अगवान् के मुख से सुना है वैसा ही इ जम्भू ! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहत हैं—' पासह ' इत्यादि—

शुभेने पज्ज " मनुयादि विषये सेवन करवा भोज्य नहीं ' आ प्रसारे तेनाधी निरस्त भवानो उपदेश आपे इति ब्रवीमि " आ प्रसारे आ विषय के प्रसारे मे अत्रवानना मुझेभी नाभोज्ये छते प्रसारेण देवोपू ! तमने कहते छे ॥ सू० ४ ॥  
इरीधी पज्ज हटे छे— पासह इत्यादि

“ જે સ્વલ્પ વિસર્ણ સેવહ, સેવિત્તા વા ણાલોણ્હ, પરેણ વા પુટ્ટો નિપ્પહવહ, અહવા તં પરં સપ્પણ દોસેણ વા પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જહ ”-ઇતિ ।

જ્ઞાયા—યઃ સ્વલ્પ વિપયં સેવતે, સેવિત્વા વા નાલોચયતિ, પરેણ વા પૃષ્ઠો નિહુતે, અથવા તં પરં સ સ્વેન વા દોષેણ પાપિષ્ઠતરેણ વા દોષેણોપલિમ્પતિ, ઇતિ ।

ક્રિમેતેનેત્યાહ—‘લઙ્ગા’—નિત્યાદિ, લઙ્ગાનપિ=પ્રાપ્તાનપિ સ્વાધીનાનિત્યર્યઃ, અર્થાન=શબ્દાદિવિપયાન્, અત્ર દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાઽઽર્પત્વાત્ ।

યદ્વા ‘હૃસ્થ્યા’ ઇતિ દેશીભાષ્યા ‘ચક્ષુર્દ્રા’ તેન લઙ્ગાન=વિપયાન્ વિત્તા-દ્વાદિર્વિદ્ધ્યાત્, અલઙ્ગાંશ્ચ મનસાઽપિ ન ચિન્તયેદિતિ ભાવઃ । પ્રત્યુપેક્ષ્ય=નરક નિગોદાદિદુઃસ્વજનકલ્પેન પર્યાલોચ્ય, તાનેવ પરત્રેહ ચ કટુકફલપ્રદતયા આગમ્ય=

“ જે સ્વલ્પ વિસર્ણ સેવહ, સેવિત્તા વા ણાલોણ્હ, પરેણ વા પુટ્ટો નિપ્પહવહ, અહવા ત પરં સપ્પણ વા દોસેણ પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જહ ” ઇતિ ।

જો વિષયસેવન કરતા હૈ; સેવન કરને પર ઉસફી આલોચના નહીં કરતા હૈ, દૂસરે-શુર્વાદિકોં કે પુછને પર ઉસે છિપાતા હૈ, વહ અપને પાપિષ્ઠતર ( શુસ્તર ) દોષ સે સ્વયં ઉપલિસ હોતા હૈ ।

હસ લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ મોક્ષાર્થાભલાપી કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ પ્રાસ મો ઉન શબ્દાદિક વિષયોં કા યહ વિચાર કર ત્યાગ કરે કિ-હન કા વિપાક જીવ કો નરકનિગોદાદિકકે દુઃસ્વો કા જનક હૈ, તથા હનકે સેવનકર્તા, હસ લોક ઓર પરલોક, દોનોં લોકોં મેં ભયંકર દુઃસ્વોં કો મોગતે હૈં । જિસ પ્રકાર યહ સ્વય ઉનકા કટુક વિપાક જાન કર ઉનસે

“ જે સ્વલ્પ વિસર્ણ સેવહ સેવિત્તા વા ણાલોણ્હ, પરેણ વા પુટ્ટો નિપ્પહવહ, અહવા તં પરં સપ્પણ દોસેણ વા પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જહ ”-ઇતિ ।

જે વિષયનુ સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં એની આલોચના કરતો નથી, બીજુ શુદ્ધ આદિના પુછવા છતાં છુપાવે છે તે પોતાના પાપિષ્ઠ તર (શુદ્ધતર) દોષથી પોતે ઉપલિપ્ત થાય છે

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે-મોક્ષાર્થીજનનુ એ કર્તવ્ય છે કે તે પ્રાસ પશુ શબ્દાદિ વિષયોના આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક છુપને માટે નરક-નિગોદાદિક દુઃખોનું કારણ છે અને તેનુ સેવન કરનાર આલોક અને પરલોકમા ભયકર દુઃખો ભોગવે છે જે પ્રકારે તે પોતે તેના કડવા વિપાક બાણીને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તે જ પ્રકારે તે બીજા



ज्ञात्वा मन्यान्—स्वाविरिक्तान् जनान् मनासेवनतया ' मैथुनमनासेवनीयम् ' इत्यादिरूपेण भाङ्गापयत्—तीर्थकराङ्गामपचार्योपदिशेत् । स्वयमपि तस्माद्विरमेदि त्यर्थोऽपि । इति श्रीमीत्यपिकारसमाप्स्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अन्यदप्याह—' पासह ' इत्यादि ।

मूत्र—पासह एगो रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे । इत्थ फासे पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयसि आरभजीवी, एणसु चेव आरभजीवी । इत्थवि घाले परिपञ्चमाणे रमइ पावेहिं कम्ममेहिं, असरणे सरणति मत्तमाणे, इहमेगेसिं एगवरिया भवइ । से बहुकोहे बहुमाणे बहुमाये बहुलोभे बहुरणे बहुनडे बहुसडे बहु संकप्पे आसवसक्की पलिउच्छन्ने उट्टियवाय पवयमाणे, 'मा मे केइ अदक्खत्तू' अज्ञानप्रमादवापेण सयय मूढे भम्म नामि जाणइ, अहा पयामाणव ! कम्मकोविआ जे अणुवरया अविज्जाए पलिमुक्खमाहु, आवट्टमेव अणुपरियट्टति—त्तिषोमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—यस्मत् एकान् रूपसु सुदान परिणीयमानान । अत्र स्पर्शान् पुन पुनः, पासन्त' क्तिपन्तो लोके आरम्मजीविन , पत्तेण्वेव आरम्मजीविन । अत्रापि पासः परिपच्यमानो रमत पापेषु कर्मसु, अज्ञरणं अगमिति मन्यमानः, इहेकेपा मेक्कपा भवति । स बहुकाया बहुमानां बहुमायो बहुलामा बहुरमा ( बहुरतो ) बहुनटो बहुसटा बहुसंकल्प आसवसक्तिः पन्नितावच्छन्न उचितवत्तं प्रबदन , ' मा मां केउप्पेसु ' अज्ञानप्रमादवापेण सतत मूढो भर्म नामिजानाति, आतां प्रमा मानव ! कर्मकोविदा येऽनुपरता अविद्या परिमाधमाहु , माएवमेवानुपरिषट्ठन्ते, इति प्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

धिरत होता है उसी प्रकार दूसरे जीवों को भी " ये मैथुनादि विषय सेवन करने योग्य नहीं हैं " इस प्रकार उनसे धिरत होनेका उपदेश देता है । " इति प्रवीमि " इस प्रकार यह विषय जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है वैसा ही है जम्ह ! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहते हैं—' पासह ' इत्यादि—

एतेने पणु " मैथुनादि विषयो सेवन करवा सोअ नहीं " अत्र प्रकारे तेनाधी विरक्त भवानो उपदेश आये इति प्रवीमि " अत्र प्रकारे आ विषय के प्रकारे ये अज्ञानान्त्य भुजेथी नाभज्यांछेते प्रकारे ए देण्यु ! तमने कह्येछे ॥ सू० ४ ॥

श्रीश्री पणु कहे छे— पासह इत्यादि

टीका—‘ पश्यत ’ इत्यादि । हे भव्यजीवा ! यूयं रूपेषु—शुक्लादिषु चक्षु-  
रिन्द्रियप्रत्यक्षविषयेषु, बहुवचननिर्देशेन शब्दादिषु—शब्द-गन्ध-रस-स्पर्शेषु कटुक-

हे भव्य ! देखो ये कितनेक ससारी जीव, चक्षु-इन्द्रियके विष-  
यभूत शुक्लादि रूपों में, तथा अन्य इन्द्रियोंके विषयभूत शब्द, गन्ध,  
रस और स्पर्शरूप विषयों में कि जिनका सेवन इन जीवों को परि-  
णाममें कटुक फल प्रदाता होता है उनमें कैसे मूर्च्छित हो रहे हैं ।  
इन्द्रियोंके विषयों में लुब्ध ये प्राणी उन २ विषयोंको प्राप्त करनेकी  
ओर झुकी हुई इन्द्रियों द्वारा विषयोंके सन्मुख और संसारके सन्मुख  
होते रहते हैं ।

भावार्थ—इन्द्रियों में आसक्त प्राणी इन्द्रियोंके विषयों में अधीन  
बन कर उनके सेवनजन्य परिणाम का कुछ भी विचार न करके  
निरन्तर उन्हींमें आसक्त होता रहता है । उसे इस बात का भान  
ही नहीं होता कि इन विषयोंके सेवनसे इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं  
होगी । विषयाभिलाषा इन्द्रियोंको अपने २ विषय की ओर ही  
अधिकाधिक रूपमें आकृष्ट करती रहती है । इस परिणति से वह अपने  
संसारकी वृद्धि ही करता है । एक २ इन्द्रियके विषयको सेवन करने  
वाले प्राणियोंकी वह दृढ़ता अपने नयनोंसे निहारता है फिर भी अपने  
को सुरक्षित मान रहा है, यही विषयोंके सेवनकी बलवत्ता है । वह

हे भव्य ! जे तो भरो, आ डेटलाक ससारी लोवे अक्षु इन्द्रियना विष-  
यभूत शुक्लादि रूपोना तथा बीजा इन्द्रियोना विषयभूत शब्द, गंध, रस, अने  
स्पर्शादिक विषयोना हे जेतु सेवन ते लोवेने परिष्णाममा कडवा कृण आपवा  
वाणु निवडे छे ओमा डेवा मूर्च्छित थर् रडेल छे इन्द्रियोना विषयोमा लुब्ध ते  
प्राणी ते ते विषयोने प्राप्त करवा तरङ्क डणती इन्द्रियो द्वारा विषयोनी सामे अने  
संसारनी तरङ्क जेवाछ रडेल छे

भावार्थ—इन्द्रियोमा आसक्त प्राणी इन्द्रियोना विषयोने आधीन भनी  
तेना सेवनना परिष्णामनाे काछ पणु विचार कर्या वजर डर-ड भेश तेमा आसक्त  
भनी रहे छे, तेने ओ वातनु बान धनुं नथी डे तेवा विषयोना सेवनथी इन्ड्रि-  
योनी तृप्ति धवानी नथी विषयोनी अबिलाषा इन्द्रियोने पोताना विषय तरङ्क  
अधिकाधिक रूपमा जेवती रहे छे आ परिष्णतिथी ते पोताना संसारनी वृद्धि  
न करे छे ओके ओके इन्द्रियना विषयनु सेवन करनार प्राणीनी दृढ़ता ते  
पोतानी आजे जुओ छे छता पणु पोताने सुरक्षित माने छे, ओ न विषयोना

तरविपाकजनकेषु एकान् कांभित् सुदान्=मूर्च्छितान् परिणीयमानान्-परि=सर्वशो  
नीयमानान्=इन्द्रियैर्विषयसम्मुखं संसारसम्मुखं परत्र नरकनिगोदादिषु वा प्राप्य

देव्यता है कि (१) स्पर्शन-इन्द्रिय का मोठी मत्स गजराज म्बड़े में गिर कर  
अपने प्यारे जीवन का नाश कर देता है, (२) रसना-इन्द्रिय का कामी मत्स्य  
कटिमें लगे हुए मांस की अभिलाषा में पड़ कर अपन प्राणों को खो देता  
है, (३) घ्राण-इन्द्रिय का बशीमूल बना विचारा भ्रमर कालके गालमें पड़  
जाता है। (४) श्रुति-इन्द्रिय का लोलुपी पत्तंग अपने प्राणों को दीपक की लौ में  
पड़ कर नष्ट कर देता है, (५) कर्ण-इन्द्रिय के विषय का लोभी मृग बधिकों  
द्वारा अपने मोछे-भाछे जीवन का उत्सर्ग कर देता है। परन्तु यह सब  
कुछ अपनी आंखों से देखते हुए भी प्राणों इन्द्रियाँ के विषयों में मत्स  
हूआ यह प्राणी फिर भी नहीं चेतता, यही घड़ी विचित्रता है। विष  
यासक्त जीवों की विषयों की ओर प्रवृत्ति होनेसे संसारमें उनका पतन  
तो होता ही है, परन्तु वे परमब्रह्म में भी नरकनिगोदादिकमें जा कर  
निवास करते हैं। यद्यपि "संसारसम्मुखं" इस पदसे ही नरक-निगो  
दादिकमें उनका पतन निश्चय होता है, फिर भी "परत्र नरकनिगोदा-  
दिषु" यह जो वाक्य पृथक् रूप से दिया है उसका अभिप्राय यह है  
कि अज्ञानी जीव अथवा चार्वाक (नास्तिक) जैसे मौनिकवादी प्रत्यक्ष

सेवनी अथवा ते ते बुद्धे छे के- (१) स्पर्शन-इन्द्रियमा मत्स अनेके गजराज  
अथवा पत्तंग पौतान्य प्यारा लवनने नाश करी दे छे (२) रसना-इन्द्रियनु  
बोहुरपी भाछु मत्स (काटा)मा लानेक मत्सनी अभिलाषामा पत्तंग पौतान्य  
प्राण मोछे जैसे छे (३) घ्राण-इन्द्रियने वशीमूल अनेक भ्रमरे क्षणमा गालमा  
पत्तंग पड छे (४) श्रुति-इन्द्रियने सासुप पतंगीधे दीपकशिषामा पत्तंग  
पौतान्य प्राण पौतान्य करी दे छे (५) कर्ण-इन्द्रियमा विषयने बोली भूज  
शिकारीद्वारा पौतान्य बोला लवनने नाश वहीरी छे छे परतु अजपु पौतान्य  
सगी आये जेतो धरे। पञ्च प्राण्ये इन्द्रियोना विषयोमा मत्स अनेक आ मानव प्राणी  
सतते नथी आर मत्स विचित्रता छे विषयासक्त लवोनी विषयो तरक प्रवृत्ति  
होवने छे अथवा संसारमा तेनु पतन वर्तु अ रहे छे परतु परमब्रह्म पञ्च तेने नरक-  
निगोदादिकमा निवास करवे। पठे छे. के के 'संसारसम्मुखं' आ पदधी अ नरक-  
निगोदादिकमा तेनु पतन निश्चय थाप छे तो पञ्च "परत्र नरकनिगोदादिषु" अ अ  
वाक्य पृथक् रूपे अथवा छे तेने अभिप्राय के छे के अज्ञानी अथवा अथवा  
चार्वाक (नास्तिक) लेवा मौनिकवादी अथवा इक्ष्वाक्य अथवा अनुप्य अने तिस्य

माणान्, अस्मिन्नपि लोके महामोहान् पारदारिकादीन् आक्रोशवधवन्धनप्रहरणादि-  
भिर्दुःखैर्वाहमानान्, अथवा—वाद्यरतिपु संसक्तान्, वध्यस्थाने वधार्थं परिणीयमानान्,  
यथा बुध्यमानान् रागद्वेषवद्भान् विषयस्रोतोभिरतत्र तत्र परिणीयमानान्, अथवा  
दृश्यमान इत्थं मनुष्य और तिर्यञ्चगतिको ही संसार समझ रहे हैं और  
इनके दुःखों को ही दुःख मान रहे हैं, परन्तु हमें यह समझना है कि  
तुम्हारी मान्यता से भी अधिक संसार और दुःखराशि है। अपने हाथ  
से सबको साढेनीन हाथ समझना जिस प्रकार गलत है उसी प्रकार  
अपनी मान्यतानुसार ही संसार एवं दुःख समझना भी गलत है। यहाँ  
पर दुःखों का वर्णन चल रहा है, अतः उन्हीं की प्रधानता प्रकट करने  
के लिये नरकनिगोदादिक गतियों का यहाँ पर निर्देश किया गया है।  
नरकों के दुःखों से भी बढ़कर निगोद गति के दुःख होते हैं, जिन्हें  
विषयासक्त जीव प्राप्त करते हैं—सहन करते हैं।

इस लोक में भी परदार—आसक्त महामोही जीव आक्रोश, वध,  
बन्धन, और प्रहरणादि—( शस्त्रादि )—जन्य दुःखों को तो प्राप्त करते हैं,  
साथमें उन्हें फांसी भी लटकना पड़ता है।

अथवा—जानकार भी विषयों में आसक्त प्राणी राग और द्वेष से बद्ध  
हो कर विषयस्रोतोंद्वारा उन विषयों की ओर झुकते रहते हैं। अथवा—वे

गतिने न संसार समझे छे अने मोना हु भोने न हु.ण माने छे, परहु  
आमाइ वक्रतन्त्र अणु छे के तेमनी मान्यताधी पणु अधिक संसार तथा  
हु अराशि छे पोताना हाथधी गधाने साअत्रणु (३॥) हाथ समजवा, अने नेरीते लूल-  
लसुं छे तथा प्रधारे पोतानी मान्यतानुसार न संसार अने हु ण समजवा पणु  
भूल लरेल छे, आ स्थणे हु भोनु वर्णुन आवे छे भाटे तेनी प्रधानता प्रकट  
करवा नरकनिगोदादिक गतिअनेना आ नअ्याअने निर्देश करेल छे नरकोना  
हु आधी पणु वधारे निगोदगतिना हु भां छे नेने विषयासक्त एव प्राप्त करे  
छे—सहन करे छे

आ लोडना पणु परस्त्री—आसक्त नेवा महामोही एव हु ण, वध, ण धन  
अने शस्त्रादिजन्य हु भोने तो प्राप्त करे न छे तेम न तेने क्षारी पर पणु  
लटकवु पठे छे

अथवा नालुकार पणु विषयोभा आसक्त प्राणी राग अने द्वेषधी ण धार्धने  
विषयस्रोतोद्वारा ते ते विषयोनी तरङ्ग भे आतो रहे छे अथवा ते विषयमेव न करी

कर्मणा संसारसमुद्रे परिणीयमानान् पश्यतः—प्रेसम्भम् । ते च विषयविषयमूर्च्छिता  
 क्रिमासाद्यन्तीत्याह—‘अत्रे’—स्यादि, अत्रे—इह संसारे इन्द्रियलोच्छ्वाः स्पर्शान्—विष  
 यासवनजन्यदुःखानि पुनः पुनः समन्त इत्यर्थः, आरम्भे वा प्रवर्तते । के समन्ते ?  
 इत्याह—‘यावन्त’ इत्यादि, श्लोके—सावधव्यापारमवृत्ते गृहस्थलोक यावन्त  
 कियन्तः आरम्भनीविनः—सावधव्यापारपरायणा गृहस्था नरकनिगोदादीनि पूर्वो  
 क्तानि दुःखान्यनुमेषु । ये च गृहस्थाभिता द्रव्यलिङ्गिनस्तऽपि दुःखभाजो भव  
 न्तीत्याह—‘एतेष्वेव’—स्यादि, एतेष्वेव—सावधव्यापारसम्पर्यु गृहस्पृश्वेव, आर  
 म्भनीविना—आरम्भेव—असंयमन जीवितु शीघ्रं यथा त आरम्भजीविन—सवार्थ

विषयसेवन—कर्मों द्वारा इस संसारसमुद्रमें घकेल दिचे जाते हैं । विषयों में  
 मूर्च्छित प्राणी क्या प्राप्त करते हैं ? इस विषयको प्रकट करने के लिये  
 सूत्रकार कहते हैं—‘अत्रे’—स्यादि, विषयलंपट मानव इस संसारमें विषय  
 सेवनजन्य दुःखोंको पारंपार प्राप्त करते रहते हैं, अपवा आरंभदिकों में  
 प्रवृत्ति करते रहते हैं । गृहस्थ—जीवन, यिमा सावध व्यापारों में प्रवृत्ति  
 किये बल नहीं सकता, इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि सावध व्यापारों में  
 प्रवृत्तिशास्त्री गृहस्थजन होते हैं, अतः इनमें जितने भी आरंभजीवी—  
 सावध व्यापारोंको करने में लगे हुए गृहस्थजन हैं वे पूर्वोक्त नरक  
 निगोदादिकोंके दुःखोंका अनुभव करनेवाले होते हैं । तथा गृहस्थोंके  
 भावित जो भी द्रव्यलिङ्गी माधु होते हैं वे भी दुःखोंको प्राप्त करते हैं  
 यह बात “ एतेष्वेव आरम्भजीविन ” इस सूत्राद्या से प्रतिपादित किया  
 है । आरंभ—असंयम से जीनेका जिनका स्वभाव होता है वे आरंभ-

द्वारा या संसारसमुद्रमा चकेलवामा आवे छे विषयेमा मुग्ध अनेक प्राणी  
 शु प्राप्त करे छे ? आ विषयने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे—अत्रे  
 इत्यादि विषय—लंपट मनुष्य आ संसारमा विषय—सेवन—जन्य दुःखने वार  
 वार प्राप्त करते रहे छे अथवा आरंभ आदिना प्रवृत्ति करतो रहे छे गृहस्थ—  
 लवन अथवा सावध व्यापारमा प्रवृत्ति किये बालतु नहीं, आ भाटे सूत्रकार  
 कहे छे के—सावध व्यापारमा प्रवृत्तिशाली गृहस्थ भावुसो होय छे भाटे आमा  
 नेटवा पणु आरंभलुवी सावध व्यापार करवामां बालेव गृहस्थ भावुसो छे  
 तन्मे पूर्वोक्त नरक—निगोदादिना दुःखाना अनुभव करवावाया होय छे तेमक  
 गृहस्थाना भावित के द्रव्यलिङ्गी माधु होय छे तेमके पणु दुःखोने प्राप्त करे  
 छे आ बात “ एतेष्वेव आरम्भजीविन ” आ सूत्रशधी प्रतिपादित करवामां  
 आवेव छे आरंभ—असंयमधी लवनाने नेने स्वभाव छे के आरंभलुवी छे

स्वेन साक नीयमानगृहस्थैः सम्पादितेनाधार्कमादिदोषदूषितेनाशनेनोपजीविनो दण्डिशाक्यादयो गृहस्थनिश्रया विहारिणोऽवसन्नपार्श्वस्थादयो वा मुनिवेषधारिणो द्रव्यलिङ्गिनो वा षड्जीवनिकायोपमर्दकाः समुत्पद्यन्ते ।

यद्वा—एतेष्वेव=षड्जीवनिकायेष्वेव आरम्भजीविनो जायन्ते । यश्च सम्यग्दर्शनादिकप्रपलभ्यापि विपरीतपरिणतेः साफल्यमनवाप्य चारित्रान्तरायोदयात्पुनरपि सावधानुष्ठायी भवतीति दर्शयति—

‘अत्रापि’—त्यादि, अत्रापि=आर्हतसयमाभ्युपगमेऽपि बालः=अविदिततत्कुरुफलः परिपच्यमान=विषयतृष्णया परिपीड्यमानः, यद्वा ‘परितप्यमानः’ जीवी हैं । सावद्य व्यापार में तत्पर इन गृहस्थों में ही ये षड्जीवनिकाय के उपमर्दक आरंभजीवी, अर्थात्—सेवाके लिये अपने साथ जो गृहस्थों को रखते हैं तथा उनके द्वारा निर्मापित और आधाकर्मादि दोषों से दूषित आहार से जो जीते हैं ऐसे दण्डिशाक्यादि साधु, अथवा गृहस्थों की निश्रामें विहार करनेवाले अवसन्न-पासस्थादिक, अथवा मुनिवेषधारी द्रव्यलिङ्गी साधु उत्पन्न होते हैं । अथवा—ये आरंभजीवी दण्डिशाक्यादिक षड्जीवनिकायों में ही उत्पन्न होते हैं । जो सम्यग्दर्शनादिकको प्राप्त कर के भी अपनी विपरीत परिणति से उसकी सफलता को न पा कर पश्चात् चारित्र-अन्तराय ( चारित्र-मोहनीय ) के उदय से पुनरपि सावद्य व्यापारों को करनेवाला होता है, उसको “अत्रापि बालः परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु अशरणं शरणमिति मन्यमानः” इस सूत्रांश से सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं कि—

सावद्य व्यापारमा तत्परं वा गृहस्थोभा न षड्जीवनिकायना उपमर्दक आरंभजीवी, अर्थात् सेवा भाटे पोतानी साथे न गृहस्थोने साथे छे तथा येना द्वारा निर्मापित अने आधाकर्मादिक दोषोधी दूषित आहारथी न लवे छे अथवा दंडी शाक्यादि साधु अथवा गृहस्थोनी निश्रामा विहार करवावाणा अवसन्न-पासस्थादिक अथवा मुनिवेषधारी द्रव्यलिङ्गी साधु उत्पन्न थाय छे अथवा—आ आरंभजीवी दंडी, शाक्यादि षड्जीवनिकायोभा न उत्पन्न थाय छे

ने सम्यग्दर्शनादिकने प्राप्त करीने पण्यु पोतानी विपरीत परिणतिथी तेनी सङ्गताने प्राप्त न करता पाछणथी चारित्रात्तराय ( चारित्रमोहनीय ) ना उदयथी पुन सावद्य व्यापारना करवावाणा भने छे सूत्रकार—“अत्रापि बालः परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु अशरणं मे शरणमिति मन्यमानः” आ सूत्राशथी तेवा लोपोनु प्रदर्शन करे छे के-दीक्षाने अगीकार करीने पण्यु ने सावद्य

इतिच्छाया; परितप्यमानः=इष्टाप्रार्थानिष्कामिगमे चेष्टविद्योगे वा तद्व्याकुलतया सर्वतोऽन्तर्भेदित्वा तप्यमानः, एवम् अन्तरात्-पचनपाचनादिसावध्याकरणमथ शरण= भेषस्कारमस्तीति मन्यमानः=बुध्यमानो विषयस्पृहामवनिकातिरोहितसम्पत्त्यर्केन सन् तथैवासक्तो मवतीत्यर्थ, पापेषु=पापजनकषु कर्मषु=सावध्यापारोषु रमते= क्रीडति । ' पापेहि कर्महि ' इत्यभ्यर्थात्सावध्यापारोषु तृतीया । सावध्यापारवर्ता गृहस्थादीनां वा कथा? केचिन्मुनयोऽपि विषयविषयवर्तितान्तःकरणा अनाधार माधरन्तीत्याह— ' इहे '—त्यादि, इह=निजशासने; एकेषां=श्रियिष्कर्मणां कुञ्जीस- पार्श्वस्थादीनाम् ' एकवर्षा '—परमं वर्षते वा वर्षा, एकस्य वर्षा एकवर्षा— दीक्षा स्वीकार करके भी जो सावध व्यापार के कटुक परिणाम से अप रिक्षित है और विषयवृत्त्या से सर्व प्रकार पीड़ित है, अधया-इष्टकी अप्राप्ति और अनिष्टके सम्पर्क में, या इष्ट के विद्योग होनेपर जो अत्यंत व्याकुल होने से सर्व प्रकार से अन्दर-बाहर सन्तप्त हो रहा है, तथा अन्तरात् को ही अर्थात्-पचनपाचनादिकरूप सावध व्यापारों को ही ' ये शरण-भेषस्कार हि ' ऐसा मान रहा है, वह विषयरूपी जघनिका (पदार्थ) से तिरोहित समकितवाला हो कर उन सावध व्यापारों में ही आत्मकचित्त होता है, और उन्हीं पापजनक कार्यों—सावध व्यापारों में क्रीडा करता रहता है—आनन्द मानता रहता है । अरे सावध व्यापारमें लबलीन गृहस्थों की तो कथा ही क्या कहनी? परन्तु ऐसे भी कई मुनि होते हैं जो विषयरूपी विषयसं घूर्णित-उद्ध्वान्त अन्तःकरण बन अनाधार सेवन करते हुए लजाते नहीं हैं । यही बात " इह एकेषाम् एकवर्षा भवति "

व्यापारमा कदा परिष्कारधी अपरिचित छे अने विषयवृत्त्यधी सर्व प्रकार पीड़ित छे अथवा इष्टकी अप्राप्ति अने अनिष्टता संपर्कधी, अगरे इष्टने विद्योग भवाधी छे अत्यंत व्याकुल अनीने सव प्रकारधी अन्तर अने अन्तरात् सतप्त अने छे अने अन्तरात् अने अर्थात् पचन-पाचनादिकरूप सावध व्यापारने अन्तरात् शरण-भेषस्कार-छे भेष अने छे ते विषयवृत्ती जघनिका(पदार्थ)धी तिरोहित समकितवाला अनीने तेवा सावध व्यापारभा अ लबलीन अने छे अने तेवा अ पापजनक कार्यों-सावध व्यापारभा एवम्-पत्त्या रहे छे-अनन्त मानवा रहे छे अरे । सावध व्यापारमा तहीन बुद्धिस्थानी तो बात अ कथा इत्थी ? परन्तु जेवा पञ्च डेटलाइ इत्यति जी मुनिजो जेवा छे ते के विषयवृत्ती विषयी उद्ध्वान्तचित्त अनीने अनाधारनु सेवन इत्थामा लबलानधी अ वात ' इह एकेषाम् एकवर्षा भवति ' अ सूत्राधी सूत्रकार कहे छे—

एकाकिविहारणं भवति । एकचर्या प्रशस्ताप्रशस्ताभ्यां द्विधा, नाजपि पुनर्द्रव्यभाव-  
भेदात्प्रत्येकं द्विविधा । द्रव्यतः प्रशस्ता स्वविरकल्पिकस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य श्रद्धा-  
द्यष्टगुणसम्पन्नस्य वा भवति, तदुक्तं स्थानाङ्गे—

“अद्विहिं ठाणेहिं सपन्ने अणगारे अरिहड एगळ्ळविहारपडिमं उपसंपज्जित्ताणं  
विहरित्तेण, तंजहा—‘सद्धी पुरिसजाण (१), मन्चे पुरिमजाण (२), मेधावी  
पुरिसजाण (३), बहुसुण पुरिसजाण (४), सत्तिम (५), अप्पहिगरणे (६),  
धित्तिमं (७), वीरियसपन्ने (८) । (ठा. ८ सू. १)

इस सूत्रांग से सूत्रकार कहते हैं—इस जिनशासनमें शिथिल कर्मवाले  
कुशील पासत्यादिकों की एकचर्या होती है—एकाकी विहार होता है ।  
आचरण करना या जो आचरित की जाती है वह चर्या है । एक की चर्या  
एकचर्या है । यह प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से दो प्रकार की है । प्रशस्त  
और अप्रशस्त चर्या के भी द्रव्य और भावसे दो दो भेद हैं । वारह प्रकार  
की मुनिप्रतिमा को धारण करनेवाले, अथवा श्रद्धा आदि आठ गुण  
विशिष्ट स्वविरकल्पी साधुकी चर्या द्रव्यसे प्रशस्त चर्या है ।

स्थानाङ्गमें यही विषय ‘अद्विहिं ठाणेहिं’ इत्यादि सूत्र से कहा है ।  
उसका अर्थ यह है—“आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार एकाकिविहारप्रतिमा  
को धारण कर विहार करनेलायक है । वे आठ स्थान ये हैं—(१) अद्धी  
पुरुषजात, (२) सत्य पुरुषजात, (३) मेधावी पुरुषजात, (४) बहुश्रुत  
पुरुषजात, (५) शक्तिमान्, (६) अल्पाधिकरणवाला, (७) धृतिमान्, और  
(८) वीर्यसम्पन्न” [ ठा. ८ सू. १ ]

આ છનનાસનના શિથિલ કર્મવાળા કુશીલ પાસત્યાદિકોની એકચર્યા થાય  
છે—કુશીલ પાસત્યાદિકો એકલા વિહાર કરે છે આચરણ કરવું અગર જે  
આચરણ કરવામા આવે છે તે ચર્યા છે એકની ચર્યા એકચર્યા છે આ પ્રશસ્ત  
અને અપ્રશસ્ત રૂપથી બે પ્રકારની છે પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત ચર્યાના પશુ દ્રવ્ય  
અને લાવથી બે ભેદ છે ૧૨—ગાર પ્રકારની મુનિપ્રતિમાને ધારણ કરવાવાળા  
અથવા શ્રદ્ધા આદિ આઠ ગુણ સહિત સ્વનિરકલ્પી સાધુની ચર્યા દ્રવ્યથી  
પ્રશસ્ત ચર્યા છે સ્થાનાંગમા એ ૮ વિષય ‘અદ્વિહિં ઠાણેહિં’ ઇત્યાદિસૂત્રથી કહ્યો છે

“આઠ સ્થાનોથી સપત્ત અણગાર એકાકિવિહારપ્રતિમાને ધારણ કરી વિહાર  
કરવાને લાયક છે એ આઠ સ્થાન આ છે—(૧) અદ્ધી પુરુષજાત, (૨) સત્ય  
પુરુષજાત, (૩) મેધાવી પુરુષજાત, (૪) બહુશ્રુત પુરુષજાત, (૫) શક્તિમાન,  
(૬) અલ્પાધિકરણવાળા, (૭) ધૃતિમાન, (૮) વીર્યસપત્ત” (ઠા ૮ સૂ ૧)



छाया—अष्टमिः स्यान् संपन्नोऽनगारोऽईति एकाक्षिविहारप्रतिमाद्युपसपद्य  
निर्गते, तद्यथा—श्रद्धि पुरुषजात (१), सत्यं पुरुषजातं (२), मेधाधि पुरुषजातं (३),  
बहुभुवं पुरुषजातम् (४), शक्तिमत् (५), जल्पापिकरमम् (६), घृतिमत् (७), वीर्यं  
सम्पन्नम् (८), इति ।

भावता प्रशस्ता एकश्या रागद्वेपरहितस्य भवति, भावतोऽप्रशस्तैकश्या न  
भवति, सा च रागद्वेपसम्बन्धन स्यात्, भावस्वभावश्यायां रागद्वेपासम्बन्धम्, तयोरम  
श्व चामशस्ताया अमात्रात् । द्रव्यताऽप्रशस्तैकश्या च गृहस्यपाम्बुिकादीनामश  
सम्पन्नार्थस्यादीनां विधिलक्ष्णामनुपदशस्यमाणक्रोधापष्टदोषवतां भवति । प्रकृते

रागद्वेपरहित साधुकी श्या भावसे प्रशस्त श्या है । जिसका  
भाव अप्रशस्त है वह एकश्या (एकाक्षिविहारिता) नहीं कर सकता,  
क्यों कि उमकी एकश्या रागद्वेपके सङ्घाव से होती है । भावनेदवाली  
एकश्यामें राग आर द्वेपका सङ्घाव नहीं होता है, इस लिये इनके  
अमश्व में अप्रशस्तता नहीं आती है । तात्पर्य यह है कि अप्रशस्त—एक  
श्यामें “ भावसे अप्रशस्त एकश्या ” यह शब्द नहीं घणित होता है, क्यों  
कि भावों में अप्रशस्तता राग द्वेपके सङ्घाव से ही आती है । जहां राग  
द्वेपके अभावसे एकश्या होती है वह भावसे प्रशस्त एकश्या है ।  
राग द्वेपके निमित्तको छे कर जहाँ एकश्या है वह भावसे एकश्या नहीं  
है; किन्तु अप्रशस्त एकश्या ही है । द्रव्यस अप्रशस्त एकश्या गृहभ्यों,  
पाम्बुिकियों ग्य साधुसमाचारी से शिथिल पामत्पादिका तथा अनुपद कह  
जानेवाले क्रोधादिक आठ दोष वालों क होती है । प्रकृत ( प्रकरण ) में

शमद्वेपरहित साधुनी श्या भावता प्रशस्त श्या छे जेने भाव अप्रशस्त  
छे ते अेकश्या ( एकाक्षिविहारिता ) तथा करी शकते, कारण छे तेनी  
अेकश्या शमद्वेपना साधुवधी भाव छे भावनेदवाली अेकश्यामा शम अने  
द्वेपने नइभाव अनता तथा जे भावे तेना अमश्वमां अप्रशस्तता आवती  
नहीं । तात्पर्य अ छे क अप्रशस्त अेकश्यामा भावधी अप्रशस्त अेकश्या  
जे जेह भाव जेनेना तथा कारण छे भावतामा अप्रशस्तता शमद्वेपना साधुभा  
वधी अ भावे छे जेना शमद्वेपना साधुवधी अेकश्या भाव छे ते  
भावधी प्रशस्त अेकश्या छे । शमद्वेपना निमित्तने लघने जेना अेकश्या छे त  
भावधी अेकश्या नहीं परतु अप्रशस्त अेकश्या अ छे । द्रव्यधी अप्रशस्त अेकश्या  
भूदश्या ५. प्रथीमा अने साधुसमाचारीधी शिथिल पामत्पादिक तथा अनुपद  
द्वेपार्थ अमश्वताया दीपादिक अमश्वतायां मुक्त ने भाव छे प्रकृत ( प्रकरण ) मा

ચાપ્રશસ્તૈઋચર્યાયા एव प्रसङ्ग इति बोध्यम् । अप्रशस्नैऋचर्याचारी कीदृशो भवतीत्याह—‘ स बहुक्रोधः ’ इत्यादि, सः=विषयमुग्धलोलुपोऽप्रशस्नैऋचर्याचारी मुनिः बहुक्रोधः—बहवः क्रोधा क्रोपा यम्य स बहुक्रोधः—अधिकक्रोपवान्, बहुमानः=अतीवाभिमानी, बहुमायः=कुत्कुचादिभिरनल्पमायावान्, सर्वमिदमाहाराद्यर्थं विद्यते, अत एव बहुलोभः, अत एव बहुरजाः=अधिकरुपापी, यद्वा—‘बहुरत्न’ अप्रशस्त एकचर्या का ही प्रसङ्ग है, अतः इस प्रकरण में अप्रशस्न एकचर्या का ही कथन समझना चाहिये । इस अप्रशस्न एकचर्यावाला व्यक्ति कैसा होता है ? इसके लिये सूत्रकार “ स बहुक्रोधः ” इत्यादि पदों से उसका विवरण करते हैं—विषयमुग्धलोलुपी वह अप्रशस्न एकचर्याचारी मुनि बहुत क्रोधी होता है । बहुत है क्रोध जिसके वह बहुक्रोध है । यहां पर “ बहवः क्रोधाः ” ऐसा जो बहुवचन का प्रयोग किया है, वह क्रोध की अनेक जानियों का प्रदर्शक है । जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे क्रोध तीन प्रकार का होता है । विषयसुखलोलुपी अप्रशस्त एकचर्याचारी मुनिके क्रोध का उत्कृष्ट प्रकार होता है । अथवा यह अल्पक्रोधी नहीं होता, किन्तु बहुत क्रोधी होता है । इस विवक्षा में भी क्रोधके तीन प्रकार होते हैं—अल्प क्रोध, मध्यमक्रोध और बहु क्रोध । यहां पर तीसरे प्रकार के क्रोधका ही वर्णन किया गया है । इसी प्रकार—मान, माया और लोभादिकों में भी समझ लेना चाहिये । वह बहुतमानी होता है, बहुत मायावाला होता है, बहुत लोभी होता है ।

अप्रशस्त ऐकचर्याना प्रसङ्ग एव छे माटे आ प्रकरणमा अप्रशस्त ऐकचर्यानु ए कथन समज्जु नेछे એ આ અપ્રશસ્ત એકચર્યાવાળી વ્યક્તિ કેવી હોય છે ? તેને માટે સૂત્રકાર “ સ બહુક્રોધ ” ઇત્યાદિ પદોથી તેનું વિવરણ કરે છે—વિષયસુખ લોલુપી તે અપ્રશસ્ત—એકચર્યાચારી મુનિ ઘણો ક્રોધી હોય છે ઘણો ક્રોધ છે જેને તે બહુક્રોધ છે આ જગ્યાએ “ બહવઃ ક્રોધા ” એવો જે બહુવચનનો પ્રયોગ કરેલ છે તે ક્રોધની અનેક જાતીઓનું પ્રદર્શક છે જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના ભેદથી ક્રોધ ત્રણ પ્રકારનો હોય છે વિષય—સુખ—લોલુપી અપ્રશસ્તએકચર્યાચારી મુનિને ક્રોધનો ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાર થાય છે અથવા તે અલ્પક્રોધી નથી હોતો, પરંતુ ઘણો ક્રોધી હોય છે આ પ્રકારમા પણ ક્રોધના ત્રણ પ્રકાર છે, અલ્પ ક્રોધ, મધ્યમ ક્રોધ, અને બહુ ક્રોધ આ સ્થળે ત્રીજા પ્રકારના ક્રોધનો જ સહજ કરવામા આવેલ છે એ જ પ્રકારે માન, માયા અને લોભ આદિમા પણ સમજી લેવુ નેછે એ—તે ઘણો માની હોય છે, બહુ માયાવાળો હોય છે, ઘણો લોભી હોય છે ઘણો લોભી થવાનું

इतिच्छाया; बहुरतः=आरम्भात्सिक्तः, बहुन=मोहाय न इव बहुन् वेपान्  
 विदधाति, तथा=अन्वित्कूर्ची क्वचिज्जटी क्वचित् शिली क्वचिच्च सुण्ठी यूत्वा  
 तत्र तत्र सम्मानादिसमासादनाय विविधवपारी तिष्ठतीत्याश्रयः । तथा बहुशठ  
 बहुमिः प्रकारैः श्लाघयुक्तः, किंच बहुसकल्पः=बहुन्-पूर्जां सस्कारमाहारदिकं  
 च सर्वं संकल्पयति=नार्यपतीति बहुसकल्पः, पुनः स कीदृशो मपतीत्याह-आसन्न  
 बहुलोमी होनेका कारण यह है कि वह यही समझता है कि यह सब  
 कुछ खाने के लिये ही है । इस प्रकार से वह स्वाद्य वस्तुओं के समग्र करने  
 में अधिक लोलुपी होता है-अधिक पापी होता है । अथवा-बहुरत होता  
 है-आरंभ-समारंभदिकों में आसक्त रहता है । जिस प्रकार अन्य  
 प्राणियों को मोहित करने के लिये नट अनेक प्रकारके बेपों को घरता है  
 उसी प्रकार यह भी अन्य जीवों को अपने ऊपर मुग्ध करने के लिये  
 अनेक प्रकार के बेपों को धारण करता है-कमी अपनी बाड़ी के बालों  
 को बड़ा लेता है, कमी अपने शिरकी जटाओं को बड़ा लेता है, कमी  
 धावा रम्बता है, कमी बालों का पिलकुल मुण्डन करा लेता है । इस  
 प्रकार के अनेक बेपों को घर १ कर मान-सम्मान भादि प्राप्त करने का  
 यह सदा अभिलाषी होता है । इसी दुर्बुद्धि से यह इस प्रकार के बेपों  
 को समय २ घरता रहता है । यह बहुशठ होता है, अर्थात्-अनेक  
 प्रकारों से अपनी शक्तता का उपयोग करता है । यह बहुसङ्गुपी भी  
 होता है-रत्न विन यह यही बिचार किया करता है कि मेरी प्रतिष्ठा

कारण के छे छे ते जेवु मभ ? छे छे ना अणु ज्ञाया भाटे ज छे आ रीते ते  
 ज्ञाय वस्तुज्जाने स मरु करवामा अधिक होणुपी जने छे मा/ ते बहुशठ-अधिक  
 पापी होम छे अथवा बहुरत होम छे-आरंभसमारंभदिकोमा आसक्त रहे छे  
 बहुन काव छे-ने प्रकारे पीव्य प्राणीज्जाने मोहित करव भाटे न/ अनेक प्रकारे  
 वेपे धारण करे छे तेवी रीते आ पणु पीव्य ज्जाने पेतानी तरु मुग्ध करव  
 भाटे अनेक प्रकारे वेपे धारण करे छे-कथारेक जे पेतानी बाडीना वज  
 वधारे छे, कथारेक पेताना शिली जटाने वधारे छे कथारेक माध्याम कोटली  
 शारे छे अने कथारेक माध्याम शिकथु सपाट जन्तवी हे छे आ रीते अनेक  
 प्रकारे वेपे धारण करीने मान-स मानादि प्राप्त करव सदा अभिलाषी रहे  
 छे आ न/ दुर्बुद्धिभी जे समय समय पर ज्ञेया प्रकारे वेपे धारण करे छे  
 ते बहुशठ काव छे जे/हे-अनेक प्रकारे पेतानी शक्ताने उपयोग करे  
 छे ते बहुसङ्गुपी पणु काव छे-रत्न विन ते जेवे बिचार करे छे के मारी

त्यादि, आस्रवसक्तिः=आस्रवेषु प्राणातिपातादिषु मक्तिः = सङ्गो यस्यास्ति स आस्रवसक्तिः=हिंसादिष्वभिसङ्गवान्, एव पलितावच्छन्नः=पलितंन=आरम्भसमारम्भादिकर्मणा अवच्छन्नः=अवच्छन्नः-युक्त इत्यर्थः, अपि च उत्थितवादम्=उत्थितः=रत्नत्रयसमाराधनाय समुद्यतस्तस्य वाद इव वादस्त लोकावश्चनार्थं प्रदत्त, 'अहमपि भगवदुपदिष्टस्यमाचरणार्थं शासनोद्भासनाय च तत्परोऽस्मी'-त्येव न्यून प्रतिपिष्टामप्येकाकिविहरणादिकामनुतिष्ठतीति भावः । स सावधव्यापारमाचरंश्चेतम्येव कैसे बढे, कैसे लोग मेरा सत्कार करे, किस विधि से मुझे उत्तम २ आहारादिक सामग्री का लाभ हो । यह आस्रवसक्ती-कर्मों के आस्रव के कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्यों में आसक्तिवाला होता है । यह पलितावच्छन्न होता है । आरम्भ-समारम्भादिक कर्मोंका नाम पलित है । उससे युक्त होना सो पलितावच्छन्न है । यह उत्थितवाद का कथन करनेवाला होता है । रत्नत्रय की आराधना करनेके लिये उद्यत होनेका नाम उत्थित है । लोकोंकी बचना के लिये इसका कहना सो उत्थितवाद है । इस उत्थितवाद को यह अपने में इस प्रकार से प्रकट करता है कि 'मैं भी भगवत्प्रतिपादित संयम की आराधना करने के लिये, और उस उस स्थान पर जिनशासन की प्रभावना के लिये कटिबद्ध हूँ' । तात्पर्य यह है कि-इस प्रकार यह आगमनिषिद्ध एकाकिविहार करनेरूप मार्गका पथिक होता हुआ भी भगवत्प्रतिपादित संयममार्गके आराधक, और जिनशासन के प्रभावकरूप से अपनी ख्याति करता है । सावध प्रतिष्ठा डेवी शीते वधे, डेवी शीते लोके भाइ सम्मान करे, क्या कार्यधी मने उत्तम उत्तम आहारादि सामग्रीना लाभ भणे ? ते आ आस्रवसक्ति होय छे-कर्मोना आस्रवना कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्योंमा आसक्ति धरावनार बने छे ते पलितावच्छन्न होय छे, आरम्भसमारम्भादिक कर्मोनु नाम पलित थाय छे तेनाधी युक्त थयु ते पलितावच्छन्न छे उत्थितवादनु कथन करनार बने छे, रत्नत्रयनी आराधना करवा भाटे उद्यत थयु तेनु नाम उत्थित छे, लोकेने छेतरवा भाटे येने आव अताववे ये उत्थितवाद छे, आ उत्थितवाडने ते पितानामा येवा प्रकारे प्रकट करे छे के 'हूँ पञ्च भगवत्प्रतिपादित संयमनी आराधना करवा भाटे मने ते ते स्थान पर जिनशासननी प्रभावना भाटे कटिबद्ध हूँ' तात्पर्य ये छे के-आ प्रकारे ते आगमनिषिद्ध ऐकाकीविहार करवाइय मार्गोनु अनुगामी होवा छता पञ्च भगवत्प्रतिपादित संयममार्गना आराधक अने जिन शासनना प्रभावकरूपी पितानी ख्याति करे छे सावध व्यापारो करवा छता

चिन्तयति 'मा मा'-मित्यादि, केऽपि=अथे मां प्राणातिपातादिकारिणं प्रच्छन्ना  
 धर्मविषयिनम् मत्नीयेन अज्ञानप्रमाददोषेण, अज्ञानं च प्रमादभाज्ञानप्रमादौ, तयो  
 र्दोषस्तेन, 'अयं गुप्तपापमकार्यं करोति' इति मा आशुः=नो पश्यन्तु-नो  
 जानन्तिवत्पर्ययः ।

यद्वा—'अज्ञानप्रमाददोषेण' इति पदं 'मूढः' इत्यनेनापि मध्यमणिन्यायेन  
 सम्बध्यते, अज्ञानप्रमाददोषेण दर्शनमोहनीये च युज्यते, ततो दर्शनमोहनीयेन चारित्रमाह  
 नीयेन च मूढः=परमार्थानभिद्धः सन् धर्म-भ्रुतचारित्रमध्य स्वीयधर्म-येन सक्रम  
 कर्मक्षयो भवति तं नामिजानाति=नारयुध्यते । एतेषां का दशा भवति' इत्याह—  
 'आर्त्ताः' इत्यादि, हे मानव ! हे भव्य ! सदुपदेशार्थात्प्रम्य, आर्त्ताः=विषयक  
 पापै पीडिताः प्रमा-य=कर्मण जायन्त=कर्तृगतिषु कर्मणा समुत्पद्यन्त इति प्रमा=  
 घ्यापारो को करता हुआ भी यह अपने मनमें इस प्रकार से उस समय  
 विचार करता है कि इस प्राणामिपातादिक अकार्य तथा गुप्तरूप से पाप  
 करनेवाले मुझे और कोई न देखे । इस प्रकार प्रमाद और अज्ञानके  
 दोष से वह नहीं करने योग्य गुप्त पापोंको करता है ।

अथवा—“ अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः ” इस प्रकार से भी  
 मध्यमणिन्याय से “ अज्ञानप्रमाददोषेण ” इस पदका सम्बन्ध “मूढ”  
 पदके साथ करने से यह अर्थ होता है कि—यह दर्शनमोहनीय एवं  
 चारित्रमोहनीयके उद्भय से निरन्तर परमार्थसे अनभिज्ञ हो कर समस्त  
 कर्मोंका क्षय करनेवाले भ्रुतचारित्ररूप अपने आत्मधर्म को नहीं जानता है।  
 ऐसे व्यक्तियों की दशाका विग्रह करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
 “ आर्त्ताः ” इत्यादि, हे भव्य ! विषयकपापों से पीडित ऐसी प्रजा-

पद्म के पीतान्ध बनगा ते बभते केवा प्रहसने विचार करे छे के 'आना  
 प्राणातिपातादिक अकार्य तथा गुप्तरूपकी पाप करवावाला मने केअं केअं  
 अथ ? आनी छेते प्रमाद अने अज्ञानना दोषकी ते नदि करवा योग्य गुप्त  
 पापों करे छे

अथवा—“ अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः ” आ प्रकारे एव मध्यमणि  
 न्यायका अज्ञानप्रमाददोषेण आ पदको सम्बन्ध 'मूढ' पदकी आदि करवाभी केवे  
 अथ साथ छे के ते दर्शनमोहनीय अने चारित्रमोहनीयता उदयकी निरन्तर पर  
 मादकी अनभिज्ञ अनी सक्रम कर्मोंका क्षय करवावाला अत-अतिरक्ष्य पीतान्ध  
 अत-अधर्मने अज्ञानी नहीं आनी अज्ञानिअनी अज्ञानु पद्म न करवा सुनकर कहे छे—  
 “ आर्त्ताः ”— इत्यादि हे भव्य ! विषयकपापोंकी पीडित ऐसी प्रजा-प्राणी, कर्मोंकेविद-

પ્રાણિનઃ, કર્મકોવિદાઃ-કર્મણિ=આરમ્ભસમારમ્ભાદૌ કોવિદાઃ=દક્ષાસ્તત્પરા ઇત્યર્થઃ, ન તુ ધર્માચરણે, યે ચ અનુપરતાઃ=સાવધવ્યાપારેભ્યોઽપરાહ્મુસ્વાઃ, અવિદ્યા=રત્નત્રયં વિદ્યા, તદ્વિપરીતા અવિદ્યા, તયા પરિમોક્ષ પરિ=સર્વતો મોક્ષમ્=આત્મનઃ કર્માપનયનમ્, આહુઃ=કથયન્તિ । તે ધર્માનમિજ્ઞાઃ કર્મવન્ધકોવિદાશ્ચ વિપયવ્યાલ-વિષકવલિતાઃ, આવર્ત=ભાવાવર્તં સસારમેવ અનુપરિવર્તન્તે-અનન્તભવજનક કર્મ સમુપાર્જ્ય તત્રૈવ મુહુર્મુહુઃપ્રામ્યન્તીત્યર્થઃ, ચારિત્રદોષેષુ ક્રોધાદ્યાધિક્યેન ચૈકચર્યા-

-પ્રાણી કર્મકોવિદ=આરમ્ભ સમારમ્ભ આદિ કર્મોં મેં નિપુણ હોતી હૈ, ધર્મ મેં નહીં । “ પ્રકર્ષેણ જાયન્તે ઇતિ પ્રજાઃ ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોં કે ઉદય સે જો વાર વાર ચતુર્ગતિરૂપ સંસાર મેં જન્મ ધારણ કરતે હૈં ઉનકા નામ પ્રજા-પ્રાણી હૈં ।

“ યે અનુપરતા અવિદ્યા પરિમોક્ષમાહુઃ ” જો સાવધ વ્યાપારોં સે અપરાહ્મુસ્વ હૈં વે ‘ અવિદ્યા સે હી સર્વ પ્રકાર સે મુક્તિ હોતી હૈ ’ એસા કહતે હૈં । રત્નત્રયકા નામ વિદ્યા હૈં । ઇસ સે જો વિપરીત હૈં વહ અવિદ્યા હૈં । ધર્મ સે અનમિજ્ઞ ઓર કર્મવન્ધ મેં કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પ કે વિષ સે કવલિત હો ભાવાવર્તરૂપ સંસાર મેં હી અનુપરિવર્તન કરતે રહતે હૈં-અનન્તભવજનક કર્મોં કા આસ્રવ ઓર વન્ધ કર કે ઉસી સસારમેં વારંવાર જન્મ-મરણ કરતે રહતે હૈં । ચારિત્ર કે દોષોં મેં ક્રોધાદિક કી અધિકતા સે એકચર્યારૂપ દોષ કી પ્રધાનતા હૈં । ઇસસે સાવધ-વ્યાપારોં કા આચરણ હોતા હૈં । ઇસ આચરણ સે વિરતિ કા અભાવ ઓર ઉસસે ઉસમેં મુનિત્વ કા અભાવ હોતા હૈં । મુનિધર્મ કા પાલક ન હોને સે વહ

આરભ અમાઝ ભાદિ ક્રમોંમા નિપુણ હોય છે, ધર્મમા નહિ “ પ્રકર્ષેણ જાયન્તે ઇતિ પ્રજાઃ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોંમા ઉદયથી જે વારવાર ચતુર્ગતિરૂપ સમારમા જન્મ ધારણ કરે છે તેનુ નામ પ્રજા-પ્રાણી છે

“ યે અનુપરતા અવિદ્યા પરિમોક્ષમાહુઃ ” જે સાવધ વ્યાપારોંથી અનિવૃત્ત છે તે ‘ અવિદ્યાથી જ સર્વ પ્રકારની મુક્તિ થાય છે ’ તેવુ કહે છે રત્નત્રયનુ નામ વિદ્યા છે, આનાથી જે વિપરીત તે અવિદ્યા છે ધર્મથી અનમિજ્ઞ અને કર્મ બધમા કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પના વિષથી કવલિત થઈ ભાવાવર્તરૂપ સસારમા અનુપરિવર્તન કરતો રહે છે અનતભવજનક કર્મોંમા આસ્રવ અને બધ કરીને આ સસારમા વારવાર જન્મ-મરણ કરતો રહે છે ચારિત્રના દોષોંમા ક્રોધાદિકની અધિકતાથી એકચર્યારૂપ દોષની પ્રધાનતા છે એનાથી સાવધવ્યાપારોં આચરણ થાય છે આ આચરણથી વિરતિનો અભાવ અને તેનાથી તેનામા મુનિત્વનો

दोषस्य प्राधान्यास्तापघ्न्यापाराक्षरणेन शिरनेरमावाद्गुनिः सम् शिरकालं जन्म  
मरणं कुर्वन्तीति भावः । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थं पूर्वम् ।

॥ पञ्चमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः ॥ ५-१ ॥

प्राणी शिरकास्तक जन्म-मरण करता रहता है । “ इति ब्रवीमि ” इन  
पदोंका अर्थ पहिले की तरह है ॥ सू० ५ ॥

॥ पांचवे अध्ययन का प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ५-१ ॥

त्वनेो असाव आवे छे मुनिधर्मनुं पावन न मवाशी ते प्राणी शिरकाव सुधी  
जन्म मरण करते रहे छे इति ब्रवीमि' आ परोने अर्थ पहिलानी भाइ छे  
पांचमा अध्ययननेो पहिलो उद्देश समाप्त ॥ ५-१ ॥



## पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

अभिहितः प्रथमोद्देशः साम्प्रतं द्वितीयः प्रारम्भ्यते । अस्य चायमनन्तरोद्देश-  
सम्बन्धः, पूर्वोद्देशे एकाकि-विहरणशीलः सावद्यव्यापारासक्ततया 'असंयतः' इत्य-  
भिहितम् । अत्र च यथा संयतः स्यात्तथा प्रतिपाद्यते—

अथ हिंसादि सावद्यव्यापारान्निवृत्त एव मुनिर्भवतीति दर्शयति—'आवती' इत्यादि ।

मूलम्—आवंती केयावंती लोए अणारंभजीविणो तेसु । एत्थो-  
वरए तं झोसमाणे अयं संधीति अदक्खू, जे इमस्स विग्गहस्स  
अयं खणेत्ति अन्नेसी । एस मग्गे आरिएहिं पवेइए । उट्टिए नो  
पमायए, जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं । पुढोळंदा इह माणवा,  
पुढो दुक्खं पवेइयं । से अविहिंसमाणे अणवयमाणे पुद्दो फासे  
विपणुन्नए ॥ सू० १ ॥

### ॥ पांचवें अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

प्रथम उद्देश कहा जा चुका है । अब द्वितीय उद्देश का प्रारम्भ करते  
हैं । इस उद्देश का अनन्तर उद्देश के साथ सम्बन्ध इस प्रकार से है—  
प्रथम उद्देश में “ जो एकाकी विहार करता है वह सावद्य व्यापारमें आसक्त  
होने के कारण विरतिविहीन है, जो विरति से विहीन है वह मुनि नहीं  
है ” यह प्रकट किया है, यहां पर जीव के मुनिपना जिस रीति से  
आसक्ता है वही रीति प्रतिपादित की जाती है । अथवा 'हिंसादिक  
सावद्य व्यापारोंसे निवृत्त ही मुनि होता है' यह बात दिखलाई जाती है—  
“ आवंती केयावंती ” इत्यादि

### पांचमा अध्ययनना पीणे उद्देश.

प्रथम उद्देश कहेवाचं गयो छे, दुवे पीण उद्देशना प्रारंभ थाय छे आ  
उद्देशना अनन्तर उद्देशनी साथे सम्बन्ध आ प्रकट छे — प्रथम उद्देशमा  
“ जे एककी विहार करे छे ते सावद्य व्यापारोमा आसक्ता होवने कारणे विरति  
वगरना छे, ते मुनि नहीं ” जेम प्रकट करेले छे आ स्थणे लवने मुनिपण  
जे रीतिथी आवे छे ते ज रीति कहेवामा आवे छे अथवा 'हिंसादिक सावद्य  
व्यापारोधी निवृत्त ज मुनि होय छे' जे बात दिखलाईवामा आवे छे—  
' आवंती केयावंती ' इत्यादि



छाया—यावन्तः क्षियन्तो लोके अनारम्भजीविनस्तेषु । अत्रोपरतस्तज्ज्ञोपयन्  
अयं सन्धिरिति मद्राभीत्, योज्यं विप्रहस्यार्यं सप्य इत्यर्थेपी । एष मार्ग आर्यैः  
प्रवेदितः । उत्थितो नो प्रमादयत्, इत्या इत्सं मर्येकं सातम् । पृषपञ्चन्दा इह  
मानवाः, पृषप्य दुःसं प्रवेदितम् । सोऽर्षिर्द्विषनपनदन स्पृष्टः स्पर्धान्  
विप्रशोदयेत् ॥ सू० १ ॥

टीका—‘यावन्त’ इत्यादि । लोके=मनुष्यलोके यावन्त’ क्षियन्तश्च तेषु=  
पहनीयनिकायेषु अनारम्भजीविन’—आरम्भः=सावध्याचरण, तद्विपरीतस्त्यनारम्भः  
तेन जीवित्तुं शीलं यथा तं अनारम्भजीविनाः=संयमिनः, यद्वेन्द्रियविषयकयायेषु  
मदृष्टा आरम्भजीविनस्तद्विधा अनारम्भजीविनो ह्यनयः सन्ति । ये हि स्वनिमित्त  
पचनपाचनानि सावधव्यापारतत्परान् यद्दृष्ट्या=शरीरयात्रामात्रनिर्वाहार्थमज्ञानादि सु  
हीत्वा निरवधानुष्ठानमदृष्टाः सन्ता नखिनीदम्भयम्बुमेव निर्लेपा मवन्तीति

इस मनुष्यलोक में कितनेक मनुष्य अनारम्भजीवी हैं । सावध  
व्यापारों में प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है । इससे विपरीत का नाम अना  
रम्भ है । इससे जीने का जिनका स्वभाव है वे अनारम्भजीवी हैं । अनार  
म्भजीवी संयमी होते हैं ।

अथवा—इन्द्रियविषय एवं कषायों में जिनकी प्रवृत्ति है वे आरम्भ-  
जीवी हैं, उनसे भिन्न मुनिजन ही अनारम्भजीवी हैं । अपने निमित्त  
पचन-पाचनादि सावध व्यापारों में तत्पर रहस्यजन से शरीरयात्रामात्र  
के निर्वाहार्थ आहारादि लेकर निरवध-निर्वोष अनुष्ठान में प्रवृत्तिशील  
होने के कारण ये मुनि पानीसे कमलपत्र की तरह निर्लेप होते हैं । इससे  
यह निष्कर्ष निकलता है कि जो सावध व्यापारों में प्रवृत्तिशील हैं वे पूर्ण  
संयमाचरण से बाहर हैं, और जो इस हिंसादिक आरंभ से निवृत्त हैं वे

आ मनुष्य लोकेण कर्तव्यं मनुष्य अनारम्भजीवी उ सावध व्यापारो  
प्रवृत्तिं नाम आरम्भ उ तेनाथी विपरीतं नाम अनारम्भ उ तेनाथी वेने  
लक्षणो स्वभाव इत्ये ते अनारम्भजीवी उ अनारम्भजीवी उच्यते इत्ये  
उ अथवा उन्द्रिय विषय एते कषायोना जेनी प्रवृत्ति उ ते आरम्भजीवी उ  
तेनाथी विना मुनिजन च अनारम्भजीवी उ योताना निमित्त पचनपाचनानि  
सावध व्यापारोना तत्पर जलसम्बन्धी शरीरयात्रामात्रना निर्वाह भारे आह  
रादि लभते निरवध-निर्वोष अनुष्ठानम् प्रवृत्तिशील ज्ञानाने इत्ये पादुथी  
कमलपत्रनी भाक्त निर्लेप इत्ये उ आथी जे व्यापार निवृत्ति उ ई-ने सावध  
व्यापारोना प्रवृत्तिशील उ ते पूरु संयम आचरणधी जलार उ जने वे व्याप

તાત્પર્યમ્ । एवं तर्हि किमेतेनेत्याह—अत्रेत्यादि, अत्र=इह जगति उपरतः=  
 हिंसाधारम्भाद् निवृत्तः, यद्वा-अत्र=वीतरागोपदिष्टे धर्मे तत्परः सन् उपरतः=  
 सावधव्यापारनिवृत्त सः तत्=षड्जीवनिकायोपमर्दनात् समापतितं कर्म क्षोषयन्=  
 क्षपयन् मुनिर्भवति । केनाशयेनात्रोपरतः? इत्याह—‘अयं’मित्यादि, अयं=प्रत्यक्ष-  
 ही मुनि हैं—पूर्णसंयमाचरणमें लवलीन हैं। पूर्णसंयमाचरण में तत्परता  
 ही वीतरागोपदिष्ट धर्मारोधन में पूर्णतत्परता है, क्यों कि इसके हुए  
 बिना वीतरागोपदिष्ट धर्म की पूर्ण आराधकता जीवों में नहीं आ सकती।  
 जब तक पूर्ण धर्मारोधकता नहीं प्राप्त हो जाती तब तक कर्मों के विनाश  
 करने का मार्ग भी जीवों को प्राप्त नहीं होता; अतः कर्मों को नाश करने  
 के लिये सच्चे मुनि होनेकी आवश्यकता है। इन सब विचारों को हृदय  
 में रख कर सूत्रकार “अत्रोपरतः तं क्षोषयन्” इस सूत्रांश का कथन  
 करते हैं। इसमें बेबतलाते हैं कि इस संसार में जो हिंसादिक आरम्भ  
 कार्यों से निवृत्त—पराङ्मुख हो चुका है, अर्थात् सावध व्यापारों से जिसने  
 अपने आप को हटा लिया है, या वीतरागप्रसुद्धारा प्रतिपादित धर्म में  
 तत्पर हो कर जो सावध व्यापार से निवृत्त है, वह जीव षड्जीवनिकाय  
 के उपमर्दन से आस्रवित कर्मों का विनाश करता हुआ मुनि होता है। इस  
 आशय से वह षड्जीवनिकाय के हिंसादिक पापकर्मों से विरत होता  
 है कि मुझे यह सन्धि मिली है, अर्थात्—यह महादुर्लभ नरपर्याय मुझे

હિંસાદિક આરભથી નિવૃત્ત છે તે જ મુનિ છે—પૂર્ણ સંયમ આચરણમાં તહીન  
 છે પૂર્ણ સંયમ આચરણમાં તત્પરતા જ વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મ આરાધનમાં પૂર્ણ  
 તત્પરતા છે, કારણકે એના વગર વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મની પૂર્ણ આરાધકતા  
 જીવોમાં આવતી નથી જ્યાં સુધી પૂર્ણ ધર્મઆરાધકતા નથી પ્રાપ્ત થતી ત્યાં સુધી  
 કર્મોના વિનાશ કરવાનો માર્ગ પણ જીવોને પ્રાપ્ત થતો નથી માટે કર્મોના નાશ  
 કરવાને માટે સાચા મુનિ બનવાની આવશ્યકતા છે આ બધા વિચારોને હૃદયમાં  
 રાખીને સૂત્રકાર “અત્રોપરત તં ક્ષોષયન્” આ સૂત્રનો અર્થ કરે છે તેમાં તે બતાવે  
 છે કે જે હિંસાદિક આરભ કાર્યોથી નિવૃત્ત થઈ ચુકેલ છે અર્થાત્ સાવધ વ્યાપારોથી  
 જેણે પોતે પોતાની બાતને હટાવી લીધેલ છે અને વીતરાગપ્રસુદ્ધારા પ્રતિપા  
 દિત ધર્મમાં જે પોતાને તત્પર કરે છે તે જીવ ષડ્જીવનિકાયના ઉપમર્દનથી  
 આસ્રવિત કર્મોના વિનાશ કરીને મુનિ બને છે આ આશયથી તે ષડ્જીવનિ-  
 કાયના હિંસાદિક પાપકર્મોથી વિરક્ત થાય છે, કે અને આ સન્ધિ મળેલ છે,

નિર્દિષ્ટાઃ સન્ધિઃ=મનુષ્યજન્મા ડર્યક્ષત્ર-શોમનકુસોત્પત્તિ-સકલપૂર્ણેન્દ્રિયનિર્મૂલિ  
 મદ્દા-સંવેગાદિમાત્તિમ્સમ\* કર્મસપ્તાવસરઃ, યદ્દા-શુભાખ્યવસાયસન્ધાનસ્વરૂપાઽ-  
 સ્તિ, ઇતિ યઃ અદ્રાસીત્=દષ્ટવાન, ઇતાદશો મુનિ\* સ્થામપિન પદ્મવિષમમાત્વપરાયમા  
 મવદિત્યાશ્રયા । કચ ન પ્રમત્ત સ્પાત્ ? ઇત્યાહ-‘જે હમસ્ત’ ઇત્યાદિ । ય ઉપસ્મન્ભતસ્થો  
 મુનિ અસ્પ=ઔદારિકસ્ય વિગ્રહસ્ય=શરીરમ્ય, તૈમસ કાર્મણ ષ શરીરઔદારિકાન્ત  
 ગતમેવતિ જ્ઞેયમ્, મયં=વિષમમાન સ્થાન=સત્રકામસંયમકર્મક્ષપણભેગિરૂપાઽવસરાઽ-  
 સ્તિ, ઇત્ય બેપી-ઇતિ=દ્વમન્વેષ્ટું શ્રીશ્મસ્યેત્ય બેપી-સળગવેષ્યપરાયમા મવતિ ।

મિલી છે । હસ મેં મી આર્યજ્ઞેષ્ટ્ર ઉત્તમ કુલ મેં મેરી ઉત્પત્તિ હુઈ છે । સકલ  
 ઇન્દ્રિયોંની પૂર્ણ રચના, મદ્દા સંવેગાદિક સદ્ગુણોંની ઉપલબ્ધિ મુજ્જે  
 હુઈ છે । યદી તો કર્મક્ષય કરમે કા અવસર છે । અથવા મેરી આત્મા કા  
 યદી નિજ સ્વરૂપ છે કિ મેં સદા શુભ અખ્યવસાયોં કા સંધાન કરતા  
 રહ્ । હસ પ્રકાર જો અપની ઓર નિહારતા છે-અપને નિજ સ્વરૂપ કા  
 વિચાર કરતા રહ્તા છે યહ ઈક ક્ષણ મી પાંચ પ્રકાર કે પ્રમાદોં કા  
 સેધન નહીં કરતા । હસ પ્રકાર કા મુનિ કૌન હોતા છે ? હસ પર કહ્સે  
 છે-‘જે હમસ્ત’ ઇત્યાદિ । જો તત્ત્વજ્ઞ મુનિ છે એ સદા હસ પ્રકાર કા  
 વિચાર કરે કિ એ જો ઔદારિક શરીર (તૈમસ ઓર કાર્મણ શરીરોં  
 કા હસી ઔદારિક શરીર મેં અન્નમાંશ કર લિયા છે) મુજ્જે પ્રાપ્ત  
 હુઆ છે ઉત્તકા યહ ક્ષણ-જ્ઞેષ્ટ્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણભેગિરૂપ અવસર  
 છે; હસ પ્રકાર જો અન્વેષી-ક્ષણગવેષણ મેં પરાયણ હોતા છે યહ સદા

એટલે મને આ મહાદુર્લભ નરપર્યાય મળેલ છે તેમા પણ આર્ષજ્ઞેષ્ટ્ર ઉત્તમ  
 જગમા મારી ઉપત્તિ યદી છે સદા ઇન્દ્રિયોંની પૂર્ણ રચના મદ્દા અવેગાદિક  
 સદ્ગુણોંની ઉપલબ્ધિ મને થયેલ છે હવે તો કર્મક્ષય કરવાને અવસર છે મને  
 આજ આત્માનુ જે જ નિજ સ્વરૂપ છે કે હું સદા શુભ અખ્યવસાયોંને સંધાન  
 કરતો રહું આ પ્રકારે એ પોતાની તરફ નિકાળો છે, પોતાના નિજ સ્વરૂપને  
 વિચાર કરે છે તે એક ક્ષણ પણ પાચ પ્રકારના પ્રમાદોંનુ સેવન કરતો નથી

આવા પ્રકારને મુનિ કોણ કોણ છે ? આ પ્રકારની શિખની શકાનુ  
 આધાધાન કરવા માટે સુત્રકાર કહે છે- જે હમસ્ત ઇત્યાદિ તત્ત્વજ્ઞ મુનિ છે તે  
 સદા એવા પ્રકારને વિચાર કરે છે-એ આ ઔદારિક શરીર મને પ્રાપ્ત થયેલ છે તેમા  
 આ કાલ-જ્ઞેષ્ટ્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણભેગિરૂપ અવસર છે આ પ્રકારે ? અન્વેષી-

एतत्कथनस्य स्वरूपितत्वनिरासायाह—‘प्प’ इत्यादि, एपः=पूर्वोक्तो वक्ष्यमाणो वा मार्गः=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपो मोक्षमार्गः, आर्यः=तीर्थङ्करगणधरैः प्रवेदितः=सदेवमनुजपरिषदि कथितः। तेषां वचनमेवाह—उत्थितः=गृहादीनि परित्यज्य सन्धिमासाद्य रत्नत्रयाराधनाय समुद्युक्तः सन् नो प्रमादयेत्-क्षणमपि पञ्चविंशं प्रमादं नैव कुर्यादित्यर्थः । आत्मोपम्येनान्येषामपि द्विसादीनि नैव विद्व्यादित्याह—ज्ञात्वेत्यादि, प्रत्येकः=प्रत्येकप्राणिना दुःखः=शारीरमानसिक दुःखजनक कर्म वा, तथा सातः=मुखं च ज्ञात्वा=बुद्ध्वा उत्थितो नो प्रमादयेदिति पूर्वेषां प्रमादरहित होता है ।

भाचार्य—जो तत्त्वज्ञ मुनि होता है, वह यही सदा विचार करता है कि मुझे ऐसा कोई सा भी समय प्राप्त नहीं है जिसे मैं प्रमाद सेवन में व्यतीत कर सकूँ। हाँ ! यदि कोई समय अवशिष्ट होता तो मैं उसे प्रमादसेवन में व्यतीत कर देना, परन्तु इस प्राप्त औदारिक शरीर का एक २ क्षण भी क्षेत्रकाल संयम कर्मक्षपणश्रेणिरूप है। इस प्रकार जो एक २ क्षणकी भी सदा सावधानी रखते हैं वे कभी प्रमादवश पतित नहीं बन सकते। यह पूर्वोक्त कथन अथवा आगे जहा जानेवाला विषय मैंने अपनी कल्पना से नहीं कहा है किन्तु यह सम्यग्-दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप मार्ग तीर्थङ्कर और गणधरादिक महापुरुषों ने देवसहित मनुष्यों की परिषदा में कहा है। उन्हीं के वचनों को सूत्रकार कहते हैं—“उद्विग्नो पमायणः” इति। जो घर आदि को छोड़ कर, संधिको प्राप्त कर,

क्षणमेवमप्युक्त्वा परत्यज्य थाय छे ते सदा प्रमादरहित बने छे

भावार्थ—शिष्यनी पूर्वोक्त शब्दों आ स्थले सूत्रकारे समाधान करेले छे ते कहे छे के-के तत्त्वज्ञ मुनि डोय छे ते सदा एवो विचार करे छे के-मने एवो केछे पणु समय प्राप्त थये नथी केने हु प्रमादसेवनमा व्यतीत करी शकु, कदाच केछे समय अवशिष्ट छेते तो हु तेने प्रमाद सेवनमा व्यतीत करी देत, परतु आ प्राप्त थयेले औदारिक शरीरनी ऐक ऐक क्षण पणु क्षेत्रकाल संयम कर्मक्षपण श्रेणीरूप छे, आ प्रकारे के ऐक ऐक क्षणनी पणु सदा सावधानी राखे छे ते कदापि प्रमादवश बनी शकता नथी आ पूर्वोक्त कथन अथवा आगण कहेवामा आपनार विषय मे भारी चोतानी कल्पनाथी कहेले नथी परतु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-स्वरूप मार्ग तीर्थङ्कर अने गणधर आदि महापुरुषोके देवसहित मनुष्योनी परिषदांमा कहेले छे ऐभना न वचनोने सूत्रकार कहे छे के—“उद्विग्नो पमायणः” के घर वगेरे छोडीने अवसर

सम्बन्धः । सर्वेषां प्राणिनां दुःखमिलषणीयं, दुःखं च परिहरणीयं मन्वतीत्यालोप्य  
 कस्यापि दुःखं नोत्पादयेदित्याश्रयः । सर्वेषां जन्तूनां दुःखजनकाध्यवसायोऽपि  
 विभो मन्वतीति दर्शयति—‘पृथग्नि’—त्यादि, इह—मनुष्यलोके सिद्धिलोके वा, मान्वाः—  
 मनुष्याः पृथक्छन्दाः=पृथग् भिन्नं छन्दाः=अभिप्रायो येषां ते पृथक्छन्दाः=भिन्नरु  
 चयो मन्वन्ति, यथा क्षीरपान कञ्चित्सुखाकरोति कञ्चित्च दुःखाकरोतीत्यादि, तथैव

रत्नत्रयों की आराधना के लिये कटिबद्ध हैं वह अपना एक क्षण भी  
 पञ्चविध प्रमाद के सेवन में व्यतीत न करे। समस्त जीवों को अपने समान  
 मान कर कमी भी उनकी हिंसा आदि न करे। प्रत्येक प्राणी के शारी  
 रिक मानसिक दुःखों को, तथा उनके कारणभूत कर्मों को, तथा सुख को  
 जानकर उत्थित व्यक्ति कमी भी प्रमत्त न बने। तात्पर्य यह कि—  
 समस्त प्राणियों को सुख अमिलषणीय है और दुःख परिहरणीय  
 है, ऐसा विचार कर किसी भी प्राणी को दुःखित न करे।

संसार के समस्त प्राणियों के दुःखजनक अभिप्राय भी एकसे न  
 हो कर भिन्न २ ही होते हैं; अतः सूत्रकार “पुत्रो” इत्यादि पदसे इसी  
 बात को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इस मनुष्य लोक अथवा संसृष्टि  
 लोक में जितने भी मनुष्य और संसृष्टि प्राणी हैं वे सब भिन्न २ अभिप्रा  
 यसंपन्न हैं। जैसे क्षीरपान किसी को सुखदायी होता है और किसी को  
 दुःखदायी होता है, उसी प्रकार जो उपाय आदि किसी जीव को सुख  
 प्रद होता है वही उपायादि अन्य जीव के लिये दुःखप्रद भी होता है। यह लो

भेदहीने रत्नत्रयणी आराधना आटे परपर छे ते पीतानी जेक पञ्च लक्षु पात्र  
 प्रकारना प्रमादना सेवनमा व्यतीत न करे समस्त लोकोने पीताना समान गळीने  
 केछ वमत पञ्च तेनी छिआ आदि न करे, प्रत्येक प्राणीना शारीरिक मान  
 सिद्ध इहाने तथा तेना कारणभूत कर्मोने तथा सुखने लोकोने उत्थित व्यक्तित  
 केछ वमत पञ्च प्रमत्त न बने तात्पर्य जे के—समस्त प्राणीकोने सुख अमि  
 लषणीय छे जने दुःख परिहरणीय छे जेवु समलोने केछ पञ्च प्राणीने  
 दुःखी न करे

संसारना समस्त प्राणीकोना दुःखजनक अभिप्राय पञ्च जेक प्रकारना  
 न केव-सित भिन्न प्रकारना होय छे आटे सूत्रकार “पुत्रो” इत्यादि  
 पदोनी आ वातने समलोकोने केछे छे के-आ मनुष्यलोके तथा संसृष्टिलोका  
 केटवा पञ्च मनुष्य जने संसृष्टि-प्राणी छे ते तथा भिन्न भिन्न अभिप्राय  
 संपन्न छे जेवो रीते भीरु सेवन केछीने सुखदायी होय छे जने  
 केछीने दुःखदायी होय छे जेवा प्रकार के उपाय नजेर केछे लोकोने  
 सुखप्रद होय छे ते व उपाय आदि अन्य लोकोने आटे दुःखदायी होय छे

યદેવ કસ્યચિત્સુખાય ભવતિ તદેવ પરસ્ય દુઃસ્વાય ચેતિ ' મિત્તરુચિર્હિલોકઃ ' इति लोकोक्तेरिति । यद्वा-पृथक्छन्दाः=पृथक्सकल्पाः-अगणिताभिप्रायाः-इति यावत्, मानवा इत्युपलक्षणादन्येषामपि सङ्गिनां पृथक्छन्दत्वेन ग्रहण ज्ञेयम् । यत एव प्राणिनः पृथक्छन्दास्तस्मादुपादेय कर्मापि पृथक्, कर्मजनितं दुःखमपि पृथगेव, कारणभेदस्य कार्यभेदनियामकत्वात्, एतदेव-कथयति ' पृथगि ' -त्यादि, सर्वेषां जन्तूनां दुःखं पृथक्=भिन्नरूपं प्रवेदितम् । एतत्सर्वमालोच्यानारम्भजीवी किं विदध्यादिति दर्शयति-' स ' इत्यादि । सः निखिलजीवसुखदुःखपरिज्ञाता कोक्ति है कि "भिन्नरुचिर्हिलोक " लोगों की रुचि भिन्न भिन्न हुआ करती है । अथवा-"पृथक्छन्दा इह मानवाः " इसका अभिप्राय यह भी है कि मनुष्य और अन्य संज्ञी प्राणी जितने भी हैं उन सबके छन्द-सकल्प अभिप्राय पृथक्-अगणित हैं । संसार में जितने भी संज्ञी प्राणी हैं वे सब अपनी अपनी अपेक्षा अगणितअभिप्रायविशिष्ट हैं । मानव-शब्द उपलक्षण है, इससे अन्य संज्ञी प्राणियों का भी यहां ग्रहण हो जाता है । जब यह माना गया है कि प्राणियों के संकल्प भिन्न २ या अगणित हैं तो यह भी इससे सिद्ध होता है कि उनके कर्तव्य कर्म तथा कर्मजनक दुःख भी भिन्न २ या अगणित हैं, क्यों कि कारणों में जब भेद है तब उसके कार्यों में भी भेद मानना पड़ता है, अतः यह निश्चित होता है कि समस्त जीवों का दुःख पृथक्-भिन्न २ रूपमें है । इस सब का विचार कर अनारंभजीवी क्या करे ? इसकी प्ररूपणा सूत्रकार " सोअहिंसमाणेअणचयमाणे " इस

આ પ્રકાશની લોક કહેવત છે કે-મિત્તરુચિર્હિ લોક ' લોકોની રૂચી ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારની રહ્યા કરે છે, અથવા-"પૃથક્છન્દા ઇહ માનવા " તેનો અભિપ્રાય એ છે કે મનુષ્યમાત્ર અને અન્ય સજ્જિ-પ્રાણી બેટલા છે તે બધાના છન્દ - સકલ્પ અભિપ્રાય અલગ અલગ છે સંસારમા બેટલા પણ સજ્જિ-પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાની અપેક્ષા અગણિત અભિપ્રાય ધરાવનાર છે માનવગણ, ઉપલક્ષણ છે બેનાથી ધીન સજ્જિપ્રાણીઓના પણ આ સ્થળે સમાવેગ વધે છે ત્યારે આ માની લેવાયું છે કે પ્રાણીઓના સમસ્ત સકલ્પ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે તે આથી પણ એ સિદ્ધ થાય છે કે તેનું કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃખ પણ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે, કેમ કે કારણોમા ત્યારે ભેદ છે ત્યારે એમના કાર્યોમા પણ ભેદ માનવો પડે છે આથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે સમસ્ત જીવોના દુઃખો પણ ભિન્ન ભિન્ન રૂપના છે આ બધાનો વિચાર કરી આરભણવી હવ શું કરે ? આ અંગે " સોઅહિંસમાણે

मनुन् भविषिन्-चि-षिविषैरुपायैरिषिन्-अधिराधयन्, अपि च भनपवदन्-  
 अपवदति-मुपावदति य साऽपवदन, यधन ताहसः सः मनपवदन्-सत्यवादी, चप  
 सस्त्राढन्पेसामपि अस्तावानादिप्रवतानां ग्रहणं, तन-परभनान्यनाडदत्, मधुनमना-  
 सुखांघासे करते हैं-जब वह अनारम्भजीवी अपने आप को इतना  
 तयार कर लेता है कि जिससे वह अन्य समस्त प्राणियों के सुख और  
 दुःख का भली भांति ज्ञाता हो जाता है, जब वह किसी भी प्राणी की  
 हिंसा नहीं करता है, और न ऐसा कोई उपाय भी करता है कि जिससे  
 अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचे। यह अपनी दैनिकियों को तथा अपनी  
 प्रवृत्ति को इतनी सुरक्षित रखता है कि उसमें किसी भी प्राणी को छेदा  
 मात्र भी दुःख का अनुभव उसकी ओर से नहीं होने पाता है। झूठ  
 नहीं बोलता, परक घनादिकका अपहरण नहीं करता, कुशील के सेवन  
 से सर्वथा पर रहता है और परिग्रह का भी वह बिलकुल परित्याग कर  
 देता है। इस प्रकार उसकी जय अच्छी तरह से तयारी हो जाती है तब  
 वह वास्तविक मुनिपदकी शोभाभाला होता है। सुखस्थ "अणवयमाणे"  
 पद अन्य अदस्तादानादिक व्रतों का उपलक्षक है। तात्पर्य यह कि-  
 हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के सर्वथा परिचर्जन  
 करने से ही ममुष्य मुनिपदको वीपानेवाला होता है। इन हिंसादि के त्याग  
 से वास्तविक रूपमें पंच महाव्रतों का वह सच्चा आराधक होता है।

अणवयमाणे" अ सुखी प्रपुत्रा इत्या सुत्रकार उक्तं छे के अन्वये के अनार  
 भलुची पेटानां बनने केरही उहे तेमर उरी वे छे के केनाथी ते अन्य  
 समस्त प्राणीजान्य सुख अने इ अपने चारी रीते लखुआर जनी लय छे अने  
 कोमं पयु प्राणीनी के हिंसा इस्तो नहीं तेमल मनम्य जेवे विचार सरथो  
 अवना हेतो नहीं के केथी केअ प्राणीजाने छट पछेथि ते पेटाना दैनिक मर्चने  
 तथा प्रवृत्तिने केरही सुरक्षित राये छे के केथी केअ पयु प्राणीने वैशमात्र पयु  
 इःअना अनुभव जेना तरथी भवा न पमे, लुके नहीं गिबतो फरका बननी  
 चारी नहीं इस्तो कुशीलसेवनथी के सद्य सर्वथा इर रक्त छे परिचर्जनो ते  
 सर्वथा परित्याग करी के छे अ प्रकार जेनी स पूजु वैधारी कथ लय छे त्पारे  
 ते वास्तविक मुनिपदने शोभावनार अने छे सुत्रस्थ "अणवयमाणे" पद छे के  
 वीज्य अदस्तादानादिक व्रतोंने उपलक्षक छे तात्पर्य के के-हिंसा, लुके चोरी  
 कुशील अने परिग्रहनु तपथा परिचर्जन इत्यादी अ मनुष्य मुनिपदने शोभा  
 वनार अने छे आदिवादिना त्या गी वास्तविक रूपमा पंच महाव्रतोंने के सद्य  
 आराधक अने छे

सेवमानः, परिग्रह च वर्जयन् मुनिर्भवति । अपरं तस्य कार्यमुपदिशति—‘स्पृष्टः’ इत्यादि, स पञ्चमहाव्रतनिर्वाहपरायणः स्पृष्टः=परीषदोपसर्गैरालिङ्गितः स्पर्शान् शीतोष्णादिरूपान् , स्पर्शग्रहणस्योपलक्षणत्वादन्यानपि शब्द-रूप-रसादीन् विप्रणोदयेत्-वि=विशेषेण विविधोपायैर्वा प्र=प्रकर्षेण जीवितस्य क्षणदृष्टनष्टतादिसमालोचनेन नोदयेत्=प्रेरयेत्-शब्दादिविषयालाभेन स्वात्मानं नावमन्येतेत्यर्थः । मनो-

मुनिजन के अन्य कार्यों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार “पुट्टो फासे विपणुन्नप” इस सूत्रांश से उनका दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि पांच महाव्रतों के निर्वाह करने में तत्पर वह मुनि परीषद् और उपसर्गों से सम्बन्धित होता हुआ भी शीतोष्णादिरूप स्पर्श तथा अन्य-शब्द, रूप और रसादिक विषय कि जिनका यहां पर “स्पर्श” इस उपलक्षणरूप पदसे ग्रहण हुआ है उनका सम्बन्ध विशेष रीति से, अथवा विविध उपायों द्वारा अपनी आत्मा से हटा देवे। “विप्रणोदयेत्” इस क्रिया में “प्र” शब्द इस बात का समर्थन करता है कि इन विषयादिकरूप स्पर्शों से संबंध विच्छेद करनेके लिये मुनि को इस बातका विचार करना चाहिये कि यह मेरा जीवन अत्यल्प है, कल के भरोसे पर मुझे नहीं रहना चाहिये, जो कुछ करना है उसे आज ही अब ही कर डालना चाहिये, क्या पता कल आवे या न आवे, इस प्रकार जीवनमें क्षणदृष्टनष्टतादिकी समालोचनासे इन स्पर्शादिक विषयों के सम्बन्ध से आत्मा स्वयं सचेत हो कर रहित हो जाता है, फिर उनकी अप्राप्तिमें आकुलता नहीं होती

मुनिजनता अन्य कार्योंने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार “पुट्टो फासे विपणुन्नप” आ सूत्रद्वारा समन्वयता कहे छे के-पाच महा व्रतोधी निर्वाह करवामा तत्पर जेवा मुनि परीषद् अने उपसर्गोभा लाग लेनार अने शीतोष्णादिरूप, स्पर्श तथा अन्य शब्द, रूप, गंध अने रसादिक विषयो के जेना अदि “स्पर्श” आ उपलक्षणरूप पदधी स्वीकार करथो छे ते सगंध विशेष रीतिधी, अथवा विविध उपायोधी पोताना आत्मार्थी हर के “विप्रणोदयेत्” आ क्रियाभा “प्र” शब्द जे वातर्तु समर्थन करे छे के आ विषयादिक स्पर्शोना सगंध विच्छेद करवा भाटे मुनिजे आ वातनो विचार करवो जेधजे के ‘माइ आ एवन अत्यंत अल्प छे डालना बरोसे भारे न रहेबु जेधजे जे कर्म करबु छे ते आजे न अने अत्यारे न करबु जेधजे डाल थरो कु डेम जेना बरोसे शु ?’ आ प्रकारे क्षण एवन अने तेना नाशनी मनभा सभा होथना करी आ स्पर्शादिक विषयोना सगंधधी, आत्मा स्वयं सचेत जानीने अलिप्त जनी जाय छे पछी जेने अप्राप्तिभा आकुलता धती नथी तेभ



इन्द्रादीनधिगम्य तपु रागममनाङ्गान् प्राप्य तेषु च श्रेयं चापनयन् मध्यस्थभावेन तेषु पर्वमानो मुनिर्मपतीति मृप्रतात्पर्यम् ॥ सू १ ॥

तादृशमनेर्घणानुपदर्शयति—'एस' इत्यादि ।

सूत्रम्—एस समियापरियाप वियाहिण, जे असत्ता पावेहिं कस्मेहिं, उदाहु ते आयंका फुसति, इति उदाहु धीरे ते फासे पुहो अहियासइ । ने पुठिंवेपेय पच्छापेय मेउरधम्म विद्ध सणधम्म अधुव अणिइय असासय चयावचइय विप्पणिगाम धम्म पासह एयं रूवसधिं ॥ सू० २ ॥

छाया—एव श्रमितापर्यायो भ्याख्यात, येऽसक्ता पापेषु कर्मसु, उदाह तान् मातङ्गा सृञ्चन्ति, इति उदाहूर्ध्वीरस्तान् स्पृष्टाऽभ्यासवत् । स पूर्वमप्यतत् पश्चात् प्येतद् मिदुरमर्म विध्वंसनधर्ममधुवमनित्यमश्राश्वत चयापवयिकं विपरिणामधर्म पश्यतेतं रूपसन्धिम् ॥ सू० २ ॥

टीका—'एव' इत्यादि, एव=परीपहण्यादकः श्रमितापर्याय -श्रमोऽस्ति अस्मति शमी=शमवान्, तस्य माय श्रमिता, तथा पर्यायधारिभ्यश्चरणं यस्य स श्रमि- और न आत्मग्लानि ही जगती है । इस सूत्रका भाषार्थ यह है—“मनोऽश्रान्दाविक विपर्यो की प्राप्ति में राग, और अमनोऽश्र-अरुचिकर की प्राप्ति में श्रेयको दूर कर मुनिक्रम कर्तव्य है कि वह उनमें मध्यस्थभावसे बर्तन करे । तब ही वह सच्चा त्यागी-मुनि हो सकता है ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार के मुनियों के गुणोंका प्रवर्धन सूत्रकार करते हैं—'एस' इत्यादि ।

जो परीपह का जीतनेवाला होता है वही श्रमिता-पर्यायवाला होता है । शम जिसका होता है वह शमी-शमवान् है । शमी का भाष श्रमिता

आत्मभ्यानी पञ्च आती नथी. आ सूत्रनी भाषार्थ आ से-डे मनोऽश्र श्रान्दाविक विपर्योनी प्राप्तिमां सत्र कने अमनोऽश्र-अरुचिकरणी प्राप्तिमां श्रेयने दूर कस्यां जे मुनिः कर्तव्य से डे-ते मध्यस्थभावधी बर्तन करे त्पारे क ते श्रमि त्यागी जेटहे मुनि बने से ॥ सू १ ॥

आ प्रकारे मुनिप्याना श्रमिता वर्धन कस्या सूत्रकार कहे से- 'एस' इत्यादि

के परिपहने लक्षणवाणी बने से ते क श्रमिता-पर्यायवाणी बने से. शम कने शय से क शमी - शमवान् से, शमिनि भाष श्रमिता से. श्रमिताधी

तापर्यायः, व्यधिकरणानुव्रीहिः। यद्वा-सम्यक्पर्याय इति-ज्ञायाः 'सम्यक्पर्यायः  
 =सम्यक्=प्रशस्तः पर्यायो यस्य स सम्यक्पर्यायः=प्रशस्तचारित्रवान् व्याख्यातः-  
 वि=विविधप्रकारेण आख्यातः=रूढितः। परीपहोपसर्गापनोदकस्य असातावेदनी-  
 यकर्मोदयाद्रोगसमुदये तस्यैव तत्पद्मशीलतामाह—'येऽसत्ताः' इत्यादि, ये=  
 अनिर्दिष्टनामानः पापेषु=पापजनकेषु चारित्रमोहनीयेषु वा कर्मसु भ्रमक्ताः=भ्रनि-  
 भेरा, यद्वा-पापेषु कर्मसु हिंसादिषु अयक्ता =अस्पृष्टाः सन्ति, मूले चार्पित्वात्सम्य-  
 र्ये तृतीया; उदाह=कदाचित्तान् पापकर्मस्वमक्तान् मुनीन् आतङ्गाः=शीघ्रप्राणघातिनः  
 शूलादयो रोगविशेषाः स्पृशन्ति=आक्राम्यन्ति-अभिभ्रमन्तीत्यर्थः, एव चेत्किमेते-  
 है। शमिता से चारित्रका ग्रहण जिसके होता है वह शमितापर्यायवाला  
 है। वह विविध प्रकारसे कहा गया है। अथवा-"समियापरियाण"  
 इसकी मस्कृत ज्ञाया "सम्यक्पर्यायः" भी होती है। सम्यक् का अर्थ  
 प्रशस्त, पर्याय का अर्थ चारित्र है। प्रशस्त है चारित्र जिसका वह  
 सम्यक्पर्यायवाला-प्रशस्तचारित्रवाला विविध प्रकार से कहा है।  
 अर्थात्-परीपहों का जीतनेवाला समताभाव से चारित्र का ग्रहण करने-  
 वाला अथवा-प्रशस्तचारित्रवाला कहा गया है।

परीपह और उपसर्गों को जीतनेवाले साधु के असातावेदनीय कर्म  
 के उदय से रोगसमुदय आने पर उसे उनको सहन ही करना चाहिये,  
 यह बात मंत्रकार "जे असत्ता" इत्यादि सूत्रांश से प्रकट करते हैं। जो  
 साधु पापजनक कर्मों में अथवा चारित्रमोहनीय कर्मों में अनासक्त हैं  
 उन्हें कदाचित् शीघ्र प्राणघातक शूलादिक रोगविशेषों का सामना भी

के चारित्र ग्रहण करे छे ते शमिता-पर्यायवाणो भवे छे

"समियापरियाण" आनी मस्कृत ज्ञाया "सम्यक्पर्याय" पद्य थाय छे  
 अभ्यङ्गने अर्थ प्रशस्त, पर्यायने अर्थ चारित्र छे जेनु चारित्र मङ्गल छे-  
 वथाणुवा जेवु छे ते अभ्यङ्गपर्यायवाणा-प्रशस्तचारित्रवाणा विविध प्रकारे  
 ठडेवाय छे, अर्थात्-परिषडोने छतना० अने समताभावधी चारित्रनु ग्रहणु करना०  
 अथवा-प्रशस्त चारित्रवाणा ठडेवाय छे

परिषद अने उपसर्गोंने छतनार साधुने असाता-वेदनीय कर्मना उदयधी  
 शङ्कने उपद्रव आवे तो जेने तेजे सहन करवे जेछेजे आ बात सूत्रकार  
 "जे असत्ता" इत्यादि सूत्रधी प्रकट करे छे - जे साधु पापजनक कर्मना अथवा  
 चारित्रमोहनीय कर्मना अनासक्त छे तेने कदाच शीघ्र प्राणघातक शूलादिक रोग

नेत्याह—'इती'—त्यादि, इति=एतत् भक्ष्यमाणम्—उदाहुः=अधितन्तस्तीयेङ्करण  
 पराह्य, किमाहुरित्याह 'धीर'—इत्यादि—शून्यादिरागविज्ञपे सृष्टः=अभिमूतः धीर  
 =तस्सहने भयनात् सन् तान् स्पशान्=रागविज्ञपोत्पन्नाः वदना अव्यासयेत्=  
 महत्—नाद्विजेतस्यर्षः । चारित्र्यमोहनीयकर्मण क्षयापशयन चारित्रं ममते, वेदनी  
 योश्च न च केवलिनाऽपि रागा अभिमवन्ति, तत्र च तै रागै सृष्टा मनास्त्वानि न  
 कुर्यादित्याशय । किंचैतदपि अतसि परिचित्य वदनां सहेतेत्याह—'म' इत्यादि,  
 सः=रागीरभिभूताः चिन्तयत्—यत्—एतत् अमातावेदनीयविपाकजनितं दुःखं पूर्वमपि  
 करना पड़ता है—उन पर प्राणघातक शूलादि रोगविशेष आक्रमण करते  
 भी हैं । ऐसे मुनियों के लिये तीर्थङ्कर देवोंने या गणधरादिक महर्षियोंने  
 यह (वक्ष्यमाण) पात कही है । क्या कही है ? इस जिज्ञासा का 'धीरे'  
 इत्यादि द्वारा समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं "कि यह धीर—धीर  
 साधु शूलादिक रोग विशेषों से आक्रान्त होता हुआ भी उन शूलादिक  
 जनित वेदनाओंको सहै, उनसे उद्विग्नचित्त न बने । चारित्र्यमोहनीय  
 कर्म के क्षयोपशमसे जीव चारित्र्यकी प्राप्ति करता है । वेदनीय कर्म के  
 उदय से अनेक प्रकार की वदनाएँ उत्पन्न होती हैं, अतएव केवलियों तक  
 को भी रोगोंका सामना करना पड़ता है । वे भी जब वेदनीयके उदय  
 से रोगोंसे आक्रान्त हो जाते हैं, तो साधारण मुनियों की तो पात ही  
 क्या है ? इस लिये ऐसी परिस्थिति में मुनि को कमी भी आत्मग्लानि  
 नहीं करनी चाहिये । वृमरे—अपने मनमें यह भी विचार कर वेदनाओं  
 को सहम करना चाहिये कि मैं इस समय जो रोगादिकों से अभिमूत

वज्रेणो सामना करवे । उं छे—जेना उपर प्रबुध्वातक शूलादिक राज ओकाही  
 आक्रमण करे छे जेवा मुनियेने भाटे तीर्थङ्कर—देवेजे तेमअ गजुधरादिक मह  
 विष्णोजे आ वात कही छे शु ठहुं छे ? आ एरासानु साशस्त्रास्र समाधान कएत्ता  
 सुत्रकार हटे छे के—अ धार वार साधु शूलादिक राजभी आक्रान्त कीव अर्था  
 शूलादिक वेदनाओ अहे, जेनाभी जे उद्विग्नचित्त न बने । अद्विग्नचित्तकी कर्मण  
 क्षयोपशमभी एव चारित्र्यी प्राप्ति करे छे वेदनीय कर्मना उदयभी अनेक प्रकारनी  
 वेदनाओ उदय पाव छे केवजियेने पणु राजेने सामना करवे पडे छे तेजो  
 पणु ज्यो वेदनीयना उदयभी राजेभी विसर्ष जव छे ते पछी साधारण मुनि  
 येनी तो वात क शी करवी ? भाटे ज्योनी परिस्थितिभा मुनिजे कही पणु ज्यो  
 ज्योनी करवी ओछे जे नही पणु येज्यो मतमां जेवे पणु विचार करी वेद  
 नाओने अहेवी ओछे जे के दुं आ समय के राज चारिणी चिदित दुं जे जहा

मयैव सहनीयम्, एतत्=एतदेव दुःखं पश्चादपि वर्तमानकालानन्तरं वार्द्धक्यादावपि मयैव सर्वं स्यात्, तीर्थङ्करादीनामपि तत्सम्भवादित्यवधार्य स्वात्मानं नावमानयेत्, उक्तंच—

हो रहा हूँ, सो यह सब असातावेदनीय-कर्मजनित विलास है। इस जीव के साथ इसका सम्बन्ध पहिले से लगा आ रहा है। यह अभी नवीन तो बधा नहीं है। तब जो कर्म बधा है उसका उदय तो आवेगा ही। उसके उदयमे खेदखिन्न होना उस कर्म के नवीन बंध की दृढता का कारण है, समता से उसके फल को भोगना निर्जरा का हेतु है, अतः इसका उदयजन्य दुःख पूर्व में भी मैंने ही भोगा है और आगे भी वृद्धावस्था आदि में वही दुःख मुझे ही भोगना पड़ेगा। अरे! मेरी तो यहां पर क्या गिनती है? दुःख यह समझ कर मुझे थोड़े ही छोड़ देगा कि 'यह साधु है'। अरे! मेरे जैसों की क्या बात? तीर्थकरादिकों को भी तो कष्टों की संभावना रहती है।

भावार्थ—दुःखों के आने पर दुःखित प्राणी जब अपने समक्ष अन्य दूसरे व्यक्तियों के दुःखों का विचार करता है, तो उसे आगत दुःखों को सहने में प्रोत्साहन मिलता है, यही बात यहां पर टीकाकार ने प्रकट की है, तीर्थङ्करादिक जैसे महापुरुषों का उसके समक्ष उस अवस्था में आदर्श उपस्थित किया है, जिससे वह दुःखों के सहने में

असाता-वेदनीय कर्मोना विपाक छे आ एतन्नरी साथे तेना सभ ध पड़ेलाधी लागेला छे, आ आने नवीन तो अ धारेल नधी, त्यारे के कर्म अ धारेल छे तेना उदय आववाने अ, आ उदयमा अकणामण्य अनुभववी ते कर्मोना नवा अ धतु अ धन गाधवा समान छे समताधी तेना इणने भोगवतु ते निर्जराणे छेतु छे, अटले तेना उदयजन्य दुःख पूर्वमा पण्य मे भोगव्या छे अने आगण पण्य वृद्धावस्था आदिमा पण्य दुःख भारे भोगवतु पडेशे अरे! भारी तो शु गणुत्री छे दुःख अणु समएने भने नही छोडी दे के 'अ साधु छे' तीर्थकरादिकने पण्य कष्टनी संभावना रहे छे

भावार्थ—दुःखना आववाधी दुःखित प्राणी पेतानी साथे भील व्यक्तित्तोना दुःखने विचार करे छे तो तेने आगण आवता दुःखोने सहन करवामा प्रोत्साहन भणे छे आ वातने टीकाकारे अहिं प्रकट करेल छे तीर्थकरादिके नेवा महापुरुषांना तेनी साथे तेवी अवस्थामा आदर्श उपस्थित करेल छे नेधी ते दुःखो सहन करवामा बीला-पेशे न अनी नव्य आरित्री प्राप्ति अन्य कर्मोना

“स्वकृतपरिणतानां, दुर्नयानां विपाक, पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।  
इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिमावाप्तसङ्घतं सयतैस्तत् ॥१॥” इति  
मलिनपरिणामी न बन सके। चारित्र्यकी प्राप्ति अन्य कर्म के क्षयोप-  
शमाधिक का कार्य है और दुःखों का आना अन्य अन्य दूसरे कर्म के  
उदय का कार्य है। एक के क्षयोपशम में अन्य का भी क्षयोपशम हो  
जायगा यह तो कोई नियम नहीं है। अतः चारित्र्याराधन करनेवालों  
को कष्टों का सामना न करना पड़े यह मान्यता कैसे युक्तियुक्त हो सकती  
है। इसलिये कष्टों को भोगते समय आत्मा में समताभाव धारण  
करना ही श्रेयस्कर मार्ग है। आत्मरक्षण करना कर्मपथकी हठता का  
कारण बनता है; इसलिये मोक्षार्थीजनका यह कर्तव्य है कि वह बीर्योद्भास-  
शाली बन उनका सदा सामना करनेमें कटिबद्ध रहे। कहा भी है—

“स्वकृतपरिणतानां दुर्नयानां विपाकः,

पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं,

समपरिणतिमावाप्तसङ्घतं सयतैस्तत्” ॥१॥ इति,

इस प्रकार दुःखों का आने पर साधुजनका उमके सहन करने का  
यह विचार परम पवित्र है। वे यह सोच कर दुःखों को सहन करें कि  
मेरे कर्मों की निर्जरा का यही सुन्दर अवसर है।

क्षयोपशमाधिक्य काम छे आने दुःखेण आवणु जीवना कर्मोना उदयणु काम छे.

जेठना क्षयोपशममा जीवणु पणु क्षयोपशम जनी रहे छे जेवे तो ठोड निजम

नधी भागे ज्य चारित्रणु आशयन इत्यावाणाने इष्टोना आमणे न इरवे पठे

जे मान्यता केवी रीते अक्षयसती बध शके ? ज्ये इष्टोने योगवती समम

आत्मार्थ समताभाव धारणु इरवे जे श्रेयस्कर मार्ग छे, आत्मरक्षण इष्टी जे

कम अक्षयनी इष्टानु धारणु जने छे जेधी मोक्षार्थी जणु जे इत्ये छे ते

मज्जम जनी तेने सदा सामने इत्यागा इतिवद रहे । कहु पणु छे—

स्वकृतपरिणतानां दुर्नयानां विपाकः पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं समपरिणतिमावाप्तसङ्घतं सयतैस्तत् ॥१॥ इति

ज्य प्रकटना दुःखे आववाधी साधुजनने तेने प्रकन इरवाने तेवे विचार

परम पवित्र छे ते जेवे विचारि दुःखाने सहन इरे के मात्र कर्मोनी निर्जराने

ज्य सुदशम सुंदर अवसर छे

પરમાવસરોડયં કર્મનિર્જરાયા ઇતિ ક્ષમેત વેદનામિતિ તાત્પર્યમ્ । કિંચ-ઉદં શરીરં રસાયનાદિસેવનેન સમુપજાતોપચયમપિ પાર્થિવામકુમ્ભવદન્તઃસારશૂન્યં ક્ષણદૃષ્ટનૃપ્તમસ્તીત્યાહ-‘મિદુરધર્મ’-મિત્યાદિ,-મિદુરધર્મ=મિદુરઃ ક્ષણમહુરો ધર્મઃ સ્વભાવો યસ્ય તત્ મિદુરધર્મ=વિનશનશીલ શરીરમ્, ઔદારિકસ્ય સુપોપિતસ્યાપ

તથા—રસાયનાદિક કે સેવન સે હસ શરીરમેં પુષ્ટિ આતી હૈ તો ખી જિસ પ્રકાર મિટ્ટી કા કચા ઘટ ખીતર મેં સારરહિત હોતા હૈ—પાની કે ક્ષીટે લગતે હી જૈસે વહ દેખતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, ડસી પ્રકાર સે હસ શરીર કી ખી યહી પરિસ્થિતિ હૈ । વેદના આદિ ચલવાન આયુઃ ક્ષયકે કારણો કે આ જાને પર સચ રસાયનાદિ અકિચ્ચિત્કર (રોગ હટાને મેં અસમર્થ) હો જાતે હૈં ઓર યહ શરીર ખી દેખતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, અપના ક્રિયા-કરાયા સચ નિષ્ફલ હો જાતા હૈ । મુનિકો ઁસા વિચાર કર વેદનાઓં કે સહને મેં કાયરતા નહીં લાની ચાહિયે । ડસ પ્રકાર ડસકે ડત્સાહ-વર્ધનાર્થ સૂત્રકાર “ મિતરધમ્મ વિદ્વંસણધમ્મ ” ડત્યાદિ પદોં સે શરીર કા સ્વભાવ પ્રદર્શિત કરતે હૈ । ક્ષણમંચુર જિસકા સ્વભાવ હૈ વહ મિદુરધર્મ હૈ । યહ ઔદારિક શરીર વિનશનશીલ હૈ । અચ્છી તરહ સે પોષિત કરને પર ખી યહ અપને સ્વભાવ કો નહીં છોડતા હૈ । કદાચિત્ વેદનીય કા ડદય હો જાતા હૈ તચ શીઘ્ર હસકે અંગ-ડપાંગોં મેં અનેક પ્રકાર કે પરિવર્તન હોતે દેખે જાતે હૈ । હસીકી પુષ્ટિ ટીકાકાર-

કરી—અર્થાત્ રસાયણાદિકના એવનથી શરીરમા પુષ્ટિ આવે છે તે પછુ જે પ્રકારે માટીનો કાચો ઘડો અદરથી સાગ્રહિત હોય છે, તેને પાણીનો થોડો માત્ર સ્પર્શ થતા જોત-જોતામા તે ગળી જઈ નાશ પામે છે, એ જ રીતે આ ગરીબની પછુ તેવી જ સ્થિતિ છે વેદના આદિ બલવાન આયુ ક્ષયના કારણે ઉપસ્થિત બનતા બધા રસાયનાદિક અકિચ્ચિત્કર ( રોગને નિર્મૂળ કરવામા અસમર્થ ) બની બંધ છે, અને આ રોગને જોત-જોતામા નાશ થઈ બંધ છે, અને ડ્યુ કરાચુ બધુ નિર્મૂળ બની બંધ છે મુનિએ આવો વિચાર કરી રોગની વેદના ચક્રન કરવામા ડાંઈ પ્રકારની કાયરતા બતાવવી ન જોઈએ આ કારણે એમનામા ઉન્સાહ દે બનાવવા સુત્રકાર “ મિતરધમ્મ વિદ્વંસણધમ્મ ” ડત્યાદિ પદોથી ગરીબનો સ્વભાવ કેવો છે તેનુ વર્ણન કરે છે—ક્ષણુલ શુ એનો સ્વભાવ છે, એ મિદુરધર્મ છે મુહુર દેખાતો માનવદેહ વિનાશ માટે જ મર્ત્યો છે ગમે તેવુ લાલન-પાલન કરે છતાં એ પોતાનો સ્વભાવ ડાંડતો નથી કોઈ વખત વેદનીયનો ઉદય થાય છે ત્યારે તેના અંગ ઉપાંગોમા શીઘ્ર અનેક પ્રકારનુ

कदाचिद्विद्वानीयावपाच्छिरः कुक्षिनयनहृदयादिषु चापयवेषु स्वत एव शीघ्र विशरा  
स्वात् । अपि च-विष्वसनधर्म इस्तपावादे कस्यचिद्वपवविशेषस्योपपात्ता  
विष्वसनम्-अप-पतनं धर्मो मय्य तद्विष्वसनधर्म और्वशीर्षवप्रादिवद्वच पतनशी

कुक्षिनयनहृदयादिषु चापयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारक्त्यात् ११ इत्  
पंक्तिसे करते हैं । मस्तक में, च्दर में, आंखों में और हृदयादिक अव  
यवों में स्वत एव शीघ्र विनयनशीलता प्रतीत होती है । यह तो प्रसिद्ध  
ही है-कि जब मस्तक में अस्वामावेदनीय के निमित्त से प्रयत्न पीड़ा  
होती है या उसमें कोई नर्यकर चोट लगती है तो ऐसी अवस्था में  
वेहान्त तक हो जाता है । यही हालत प्राणी की पेटकी प्रयत्न पीड़ासे भी  
होती है । आंखों में वर्ष होने से जो पहिले बड़ी लुभावनी एवं सुन्दर  
मालूम देती थी वे ही आंखें कुछ ही कालान्तर में फूट जाने से घृणा-  
स्पद बन जाती हैं । यदि ऐसा न भी हो तो भी उनकी रोशनी कम हो  
जाती है । हृदय की गति बंद होने से हृत्-कक्षा पहाभी एक मिनिट में  
कमल के गाल में समा जाता है । इससे यही प्रतीत होता है कि इस औदा-  
रिक शरीर का कोई विश्वास नहीं, न जानें कब नष्ट हो जाय । इसका  
क्षण २ में परिचर्तन होता रहता है । इसी अपेक्षा से इसे मितुरधर्मात्मक  
कहा गया है । तथा-यद् शरीर विष्वसनधर्मस्वरूप है । इसके किसी

परिवर्तन मृत होनाय छे आनी पुष्टिमा शिरःकुक्षिनयनहृदयादिषु चापयवेषु  
स्वत एव शीघ्र विशरारक्त्यात् ११ पंक्तिमा कहे छे के-माधमा पेटमा, आपोमा  
तेमव हृदयादिक अवयवोमा स्वत एव त्प्राकृतिक विनयन शक्त तेनी प्रतीति  
की छे आ बात तो प्रसिद्ध न छे के आरे माधमा असात्वावेदनीयता  
कारण प्रयत्न पीडा शक्त छे अथवा तो जेमा कोर् प्रयत्न कोट पछेवाणी लक्ष छे  
आ अवस्थामा प्राणीने वेहान्त पक्षु आनी लक्ष छे, आनी न कालत पेटमा  
ईर्षी पक्षु जने छे आपोमा ईर्षी यवाधी पछेवा ने जुन न लोकावतारी मुँह  
होवावी कती ते आपो योय न वजलता कुटी अवाधी बुजुरूपर जनी लक्ष  
छे कथम जेवु न जने तो पक्षु जेनी शशनी लोडी चर्ष लक्ष छे लुडकी  
जति जेध पक्षवाधी अशक्त जने तद्वस्तु मायुय जेक न नीनीतमा अणमा  
विकसन पक्षमा कर्ष पडे छे आधी जे आनीत शक्त छे के आ औदाधिक  
शरीरने केछ विश्वास नहीं, होख जेवे क्यारे जने कर्ष यदीपे जेने नाश कर्ष लक्ष  
कक्ष अणुमा जेमा परिवर्तन मृत न रहे छे जेव न शक्ते मितुरधर्मात्मक कहे  
बामा आवेक छे आ शरीर ने विष्वसनधर्मस्वरूप छे जेना कक्ष पक्ष

લમિત્યર્થઃ, एवम्-अधुवम्-अनिश्चितस्थितिकं चञ्चलस्वभावत्वात्, अनित्यम्-तत्त्वा-  
प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरायोघनस्वभावं नित्यं, न नित्यम्-अनित्यम्-अस्थायिस्वभावम्,

भी हस्त-पादादिक अंगविशेष में उपघात-चोट आदि के लगने पर इस का अधःपात हो जाता है । जिस प्रकार जीर्ण-शीर्ण पत्तों का अधःपतन होता रहता है, ठीक यही दशा इस शरीर की होती रहती है । मर्मस्थानों में या हस्त-पादादिकों ( हाथ-पग ) में विशेष चोट लगने से मृत्यु हो जाती है, यह अनुभवसिद्ध बात है, इसलिये इसे अधुव भी कहा है । इसके रहने की कोई निश्चित स्थिति नहीं है । यद्यपि शास्त्रों में औदारिक शरीर की स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य रीति से प्रदर्शित की गई है; परतु उतनी ही स्थिति इसके उदय मे आवेगी यह तो कोई निश्चित बात नहीं । अकाल में भी इसका पतन होता देखा जाता है । क्यों कि इस का स्वभाव ही चंचल है, स्थिर नहीं, अतः इस अपेक्षा से यह अनित्य है । यद्यपि द्रव्यदृष्टि से किसी भी वस्तु का समूल नाश नहीं होता है, तो भी पर्यायदृष्टि से प्रत्येक पदार्थ परिणामनशील है । जो वस्तु अपने स्वरूप से अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिर और अयोघन स्वभाववाली होती है उसका नाम नित्य है । इस प्रकार की नित्यता से जो रहित है, वह अनित्य है । इस शरीर में इस प्रकारकी नित्यता नहीं है, क्यों कि यह पूरण-गलन-

કલ્યાણિ કોઈ ભાગ ઉપર ચોટ આદિ લાગી જતા તેના અધ પાત થઈ જાય છે જેવી રીતે આડ ઉપરના લુણ પાઈડાને હવાને માધારણ સ્પર્શ લાગતા જ તે ખરી પડે છે, ઠીક આવી દશા આ શરીરની થતી રહે છે મર્મ સ્થાનોમા અને હાથ પગોમા વિશેષ ચોટ લાગવાથી મૃત્યુ થાય છે, એ અનુભવસિદ્ધ વાત છે આ ઠારણે એને અસ્થિર કહેવામા આવે છે તેને ઠેઠવાની કોઈ નિશ્ચિત સ્થિતિ નથી તો પણ શાસ્ત્રોમા ઔદાગિક શરીરની સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ અને જઘન્ય રીતિથી પ્રદર્શિત કરેલ છે, પરતુ એટલી જ સ્થિતિ તેના ઉદયમા આવશે એવી તો કોઈ નિશ્ચિત વાત નથી. અકાલમા પણ તેનુ પતન થવુ અમભવ નથી, કારણ કે તેનો સ્વભાવ ચચલ જ છે-સ્થિર નથી, એથી આ અપેલાએ આ અનિત્ય છે, પરતુ દ્રવ્ય-દૃષ્ટિથી કોઈ પણ વસ્તુનો સમુળો નાશ થતો નથી તો પણ પર્યાયદૃષ્ટિથી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ છે, જે વસ્તુ પોતાના સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુત અનુત્પન્ન સ્થિર અને અયોઘન સ્વભાવવાળી હોય છે તેનુ નામ નિત્ય છે, આવા પ્રકારની નિત્યતાથી જે રહિત છે તે અનિત્ય છે આ શરીરમા એવા પ્રકારની નિત્યતા છે નહિ, કારણ કે તે પૂરણ-ગળન-



अशाश्वतम्-शश्वत्-सर्वदा मयं शाश्वतं, न शाश्वतम्-अशाश्वत-नित्यावस्थान-  
रहितम्, धर्म चयापचयिकम्-इष्टाहाराद्युपयोगादौदारिककायवर्गणापरमाणुनाष्ट  
पचयाचय, तद्विकृताऽपचय, चयभापचयश्च चयापचयो, तावस्त्यस्यति चयापच-  
यिकं-वृद्धिक्षयत्वभाष्यम्; अत एव विपरिणामधर्म वि-विधिवै गर्भकौमार्योपवनवा  
र्षकादिरूपैः परिणाम-दुग्धस्य दधिपदन्ययाभावो विपरिणाम, म एव धर्म स्वभावा  
स्वभावबाला है। इसलिये यह प्रच्युत उत्पन्न और अस्थिर है। जिस  
प्रकार कूटस्थ नित्य में कोई भी जात का परिणामन दृष्टिपथ नहीं होता  
है उस प्रकार का कूटस्थ नित्य अपोघनस्वरूप यह शरीर नहीं है,  
इसलिये यह अनित्य है-अस्थायित्वस्वभावबाला है। जो निरन्तर रह  
उसका नाम शाश्वत है, जो शाश्वत नहीं है उसका नाम अशाश्वत है।  
यह शरीर अशाश्वत इसलिये है कि इसका अवस्थान नित्य नहीं है।  
इसी प्रकार यह शरीर चय और अपचय विधिगट है-इष्ट आहारादिक  
क उपयोग-क्षेपन से औदारिक कायवर्गणा के परमाणुओं की वृद्धि से  
इसमें चयस्वभावता, और इससे विपरीत आहारादिक क उपयोग से  
अपचयस्वभावता सिद्ध है। चय और अपचय में षड् समास है।  
चय और अपचय से जो पुक्त हो-अर्थात् चय और अपचय जिस में हो  
वह चयापचयिक है। वृद्धिक्षयत्वभाष्यरूप यह शरीर है। समयानुसार  
घटती-वदती शरीर में होती हुई प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, इसीलिये  
यह विपरिणामिभमबाला है। जिस प्रकार दूध का परिणाम दही-आदि

स्वभावबाला उ आ कश्चे त प्रच्युत उत्पन्न अने अस्थिर उ के प्रकार  
कूटस्थ नित्यता कर्ष पञ्च वातानु परिणाम जेवाम् आगतु नधी त प्रकारानु  
अपोघनस्वरूप आ शरीर नधी भाटे आ अनित्य उ-अस्थायी स्वभावबाला  
उ के निरन्तर रहे तेनु नाम शाश्वत उ न शाश्वत नधी तेनु नाम अशा-  
श्वत उ आ शरीर अशाश्वत जेटला भाटे उ उ जेनी अपचय नित्य नधी.  
आ प्रकारे अ शरीर चय अने अपचय-विशिश्ट उ परत अष्टाश्विन्या उप  
योग-सेवन-मी औदारिककायवर्गणा परमाणुज्येनी वृद्धिधी तेम चय-स्वभावता-  
अने ज्येनी विपरीत अष्टाश्विन्या उपयोगधी अपचय-स्वभावता सिद्ध उ  
चय अने अपचयमा आभवाये स्वभाव उ चय अने अपचय जेम काम त  
अवाचयविक उ वृद्धि-क्षय-स्वभावबाला आ शरीर उ समयानुसार घट-वप  
शरीरमा चय उ तेम प्रत्यक्ष हेभाध आवे उ आ कश्चे त विपरिणामधर्म  
बालो उ जेम इधनु परिणाम इही अति अवस्थाएप भाय उ तेवी शीते आ

यस्य तद्विपरिणामधर्मम् एकस्मिन्नेव जन्मनि विविधावस्थाविशेषैरनेकविध-  
परिणामस्वभावं शरीरं वर्ततेऽतोः हे मुनयः । यूयम् एतं रूपसन्धिम्=भिदुरादिस्व-  
भावं शरीरं सुकुलजन्मबोधिलाभाद्यवसर च पश्यत=प्रेक्षध्व जानीतेत्यर्थो वा, तेन  
शरीरे ममत्वं विहाय तपःसंयमादेः साफल्य विधेयमिति भावः ॥ सू० २ ॥

भिदुरधर्मादिस्वरूपं शरीरं विलोकयतो यद्भवेत्तदशरीर्यति-‘समुप्पेह०’-इत्यादि ।

मूलम्—समुप्पेहमाणस्स इक्काययणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स  
नत्थि मग्गे विरयस्स—त्तिवेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—समुत्प्रेक्षमाणस्यैकायतनरतस्येह विप्रमुक्तस्य नास्ति मार्गो विरत-  
स्येति ब्रवीमि ॥ सू० ३ ॥

अवस्थारूप होता है उसी प्रकार इस शरीर के परिणामस्वरूप गर्भ-  
कौमार ( बाल्य अवस्था ) और यौवन एव वृद्ध अवस्थाएं हैं । इस प्रकार  
एक ही जन्म में इन अनेक अवस्थाविशेषों से इस शरीर का भिन्न २  
रूप में परिणमन होता हुआ देखा जाता है । इसलिये हे मुनियों !  
रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभाववाला रूप=शरीर को एवं उत्तमकुल  
में उत्पत्ति तथा बोधिलाभ आदि प्राप्त करने की संधि=अवसर को देखो ।  
इसका अभिप्राय यह है कि-शारीरिकप्रभता छोड़ कर तप संयम  
आदि का आराधन कर जीवन को सफल बनाओ ॥ सू० २ ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट शरीर को समझनेवाले मुमुक्षुजन  
को जो लाभ होता है, सूत्रकार उसे प्रकट करते हैं-‘समुप्पेह’०इत्यादि ।

शरीरनु परिष्णाम-स्वइप गर्ल णाव्यावस्था अने यौवन तेमज वृद्ध  
अवस्थाआं छे- आ रीते अके ज न-ममा गुही गुही अनेक अवस्था उपलब्ध  
आ शरीरना लिन लिन इपमा परिष्णमे छे जे समयानुकूल हेणाअ आवे छे  
आ ठारणे छे मुनियो ! रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभाववाला रूप, शरीरनी  
उत्तम कुलमा उत्पत्ति, लाल आदि प्राप्त करवानी संधि-अवसरने गुणो-  
आने अलिप्राय अे छे के शारीरिक भमताने छोडीने तप सयम आदितु  
आराधन करी एवनने नइल बनावो ॥ सू० २ ॥

आ पूर्वोक्त विशेषणोंથી विशिष्ट शरीरने समझवावाणा मोक्षाधी० जनने  
जे लाल धाय छे तेने सूत्रकार प्रकट करे छे- “समुप्पेह०” इत्यादि

टीका—‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’-त्यादि। समुत्प्रेक्षमाणस्य-सम्पू=सम्पद्य उत्प्रेक्षमाणस्य=पश्यतः-मिदुरादिषर्ममिदं शरीरमित्यव निम्नित्त इत्यर्थे, एकायतनरतस्य=सकृत्सावधय्यापारेभ्य आत्मा आयस्यते यस्मिन्, निपुञ्जाचरण वा यत्नवान् विधीयते इत्यायतनं=रत्नत्रयम्, एकम्=सजातीयद्विवीपरहितम् आयतनम् एकायतनं, तस्मिन् रतः=त्वर =एकायतनरतस्त्वम्-रत्नत्रयममाराधनपरायणस्य

जिसे यह दृढ़ प्रतीति हो चुकी है कि पौष्टलिक होने से यह शरीर मिदुरादिषर्मात्मक है, इससे आत्मकल्याण का मार्ग साधा जा सकता है, अतः इसकी उपयोगिता अवश्य कर लेनी चाहिये, नहीं तो न माकूम कप इसका पतन हो जावे और मंयों की संसार में परिभ्रमण करता रहे। इस प्रकार की पवित्र भावना के यथावर्ती हो कर जो सकल सावधय्यापारों से निवृत्त होते रहते हैं व रत्नत्रयरूप निज आत्मस्वभाय में रत यत्न हैं। तथा संसार, शरीर एवं भोगों से सर्वथा छोड़ी हुई कौचली से मप की तरह जो अलिप्त रहत हैं, अपनी प्रवृत्ति को रातदिन वैराग्य की भावना रूपी पुटसे निर्मूल बनाते रहत हैं, ऐसे विरत मुनि का नरकनिगोदादिक में गमन नहीं होता है। इन्हीं समस्त अभिप्रायों को चित्त में धारण कर सूत्रकार ने ‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ इस सूत्र का अवतरण किया है। ये कहते हैं—‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ यह शरीर मिदुरादिषर्मात्मक है इस प्रकार से इस शरीरका अच्छी तरह से जिसे निश्चय हो चुका है, वार इमीलिये जो “एकायतनरतस्य” एकायतनरतस्यरत्नत्रय में रत बना हुआ है—सकृत्

नेनाधी आपी एव आरा धर्मयुक्तं उ के पौष्टगति के वाया आ शरीर जिदुरादिषर्मात्मक उ ज्येष्ठी अक्षमकल्याणने मान शर्मा प्रकाय उ ज्येष्ठ ज्येष्ठा उपशान्ति रक्षमा इरी लोके लोके न जाने कथारे ज्येष्ठा पतन यथोक्त, आ नसाश्मा दु आर शीत परिभ्रमण इत्या न र्दु ज्येष्ठा प्रकाशनी पवित्र भावनाने वरा यथो न कल सावध व्यापारमा निवृत्त जने उ त ज्येष्ठ उप पित्तान् अन्नरस्यभावनाना एत जने उ जने अन्तार शरीर तथा ज्येष्ठी यथो जेम उदारैवी शब्जणीया वरा इन रह उ ते शीत अलिप्त रूपी पानानी प्रवृत्तिने नदीयत्र वैराग्यनी भावनायुक्तं पु धी निम ग पनायन स्टे उ ज्येष्ठा विरत मुनिनु नरक-निगोदादिकमा नमत वनु तथा आ श्रयणा अक्षिप्रयाने दिवमा धाम्नु इरी स्वकारे समुत्प्रेक्षमाणस्य आ स्वयं अपयत्न्यु करैव उ न कले उ के—समुत्प्रेक्षमाणस्य आ शरीर मिदुरादिषर्मात्मक उ आ प्रकाशनी अ शरीरने आरी शीते जने अनुभव यथो तथा उ जने तेषी व ने “एकायतनरतस्य”-

यस्य तद्विपरिणामधर्मम् एकस्मिन्नेव जन्मनि विविधावस्थाविशेषैरनेकविध-  
परिणामस्वभावं शरीरं वर्त्ततेऽतोः हे मुनयः । यूयम् एतं रूपसन्धिम्=भिदुरादिस्व-  
भावं शरीरं मुकुलजन्मबोधिलाभाध्वसर च पश्यत=प्रेक्षध्व जानीतेत्यर्थो वा, तेन  
शरीरे ममत्वं विहाय तपःसंयमादेः साफल्य विधेयमिति भावः ॥ सू० २ ॥

भिदुरधर्मादिव्यरूपं शरीरं विलोक्यतो यद्भवेत्तद्दर्शयति—'समुप्पेह०'—इत्यादि ।

मूलम्—समुप्पेहमाणस्स इक्कायणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स  
नत्थि मग्गे विरयस्स—त्तिवेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—समुत्प्रेक्षमाणस्यैकायतनरतस्येह विप्रमुक्तस्य नास्ति मार्गो वित-  
स्येति ब्रवीमि ॥ सू० ३ ॥

अवस्थारूप होता है उसी प्रकार इस शरीर के परिणामस्वरूप गर्भ-  
कौमार ( बाल्य अवस्था ) और यौवन एव वृद्ध अवस्थाएँ हैं। इस प्रकार  
एक ही जन्म में इन अनेक अवस्थाविशेषों से इस शरीर का भिन्न २  
रूप में परिणामन होता हुआ देखा जाता है। इसलिये हे मुनियों !  
रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभाववाला रूप=शरीर को एवं उत्तमकुल  
में उत्पत्ति तथा बोधिलाम आदि प्राप्त करने की संधि=अवसर को देखो।  
इसका अभिप्राय यह है कि—शारीरिकममता छोड़ कर तप संयम  
आदि का आराधन कर जीवन को सफल बनाओ ॥ सू० २ ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट शरीर को समझनेवाले मुमुक्षुजन  
को जो लाभ होता है, सूत्रकार उसे प्रकट करते हैं—'समुप्पेह०'—इत्यादि।

शरीरतु परिष्णाम-स्वइप गलं मादथावस्था अने यौवन तेमज्ज वृद्ध  
अवस्थाओ छे- आ रीते ओक ज्ज जन्ममा गुही गुही अनेक अवस्था उपलब्ध  
आ शरीरता भिन्न भिन्न रूपमा परिष्णमे छे जे समयानुसृत देणाछ आवे छे,  
आ धारणे छे मुनियो ! रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभाववाण रूप, शरीरनी  
उत्तम कुणमा उत्पत्ति, लाल आदि प्राप्त करवानी संधि-अवसरने गुणो  
आने। अलिप्राय ओ छे ते शारीरिक ममताने छोडीने तप सयम आदितु  
आराधन करी जवनने नइल बनावो ॥ सू० २ ॥

आ पूर्वोक्त विशेषणोधी विशिष्ट शरीरने समजवावाणा भोक्षधी जन्मे  
जे लाल थाय छे तेने सूत्रकार प्रकट करे छे— "समुप्पेह०" इत्यादि

साधव्यापारविरतो मुनिर्ममतीत्यभिपायाधुना तद्विपरीताचारमावरन् परिग्रहानिति दर्शयितुमाह—'आरंभती' इत्यादि ।

मूमम्—आवती केयावती लोगसि परिग्गहावती, से अप्य वा बहुं वा अणु वा थूलवा चित्तमत वा अचित्तमत वा, एणसु चेष परिग्गहावती, एयमेव एगेसि महच्चमय भवइ, लोगवित्त च ण उवेहाए, एण सगे अधियाणआ ॥ सू० ४ ॥

छाया—पावन्त कियन्तो लोक परिग्रहवन्तः, तद्व्यं वा बहु वा अणु वा म्युमं वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा, एतपु चैव परिग्रहवन्त । एतद्व एकेपां महामयं मरति, लोकवित्त च मन्मुख्येस्यैतान् सद्धानविजानत ॥ सू० ४ ॥

गीषा— ग्राहन्त ' इत्यादि, लोक=मनुष्यलोक पावन्त=कियन्त परिग्रहवन्त-परिग्रहो येषामस्ति ते परिग्रहवन्तः=परिग्रहवत्स्यग मभयु । यम्यद्रूप्यस्य परिग्रहस्तवु द्रुष्यम् अल्प=स्तार्कं=मून्यत कपर्दिकादिकं, प्रमाणतोऽर्कत्वादिकं,

इसलिय उमका यह मार्ग नहीं है । यह कथन मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा है; परतु जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है वह मय वैसा तुमसे कहा है—इस प्रकार सुधर्मस्वामीने जम्मुस्वामीसे कहा ॥ सू० ३ ॥

'मावद्य व्यापारां से विरत मुनि होता है' इस बातको कह कर मय 'जो इससे विपरीत अपनी प्रवृत्ति करता है वह परिग्रही है' इस विषय को प्रकट करनेके लिय सूत्रकार कहते हैं—'आरंभती' इत्यादि ।

इस मनुष्य लोक में कितनेक मानव परिग्रहशाली हैं । यह परिग्रहीत द्रव्य, चाहे अल्प हो; चाहे बहुत हो, परिग्रह चाहे अणुरूप में हो; चाहे स्थूलरूप में हो; चाहे सचित्त हो; चाहे अचित्त हो; इनमेंसे

बहु नहीं आ सकते तेमने ते मात्र नहीं. आ कथन मे पीतानी बुद्धिसे कल्पित नहीं, परतु आ मे भगवानना मुखेसे आश्रुतु छे जे अणु तमिने कहु छे. आ प्रकारे सुधर्म स्वामीजे जम्मु स्वामीने कहु ॥ सू० ३ ॥

साधव्यापारविरतो मुनि होता है, आ बात कहीने कवे जे जेनापी विपरीत पीतानी प्रवृत्ति करे छे ते परिग्रही छे आ विषयने प्रकट करवा भाये सूत्रकार कहे छे—'आरंभती' इत्यादि

आ मनुष्यलोकमें कितनेक मानव परिग्रही छे—परिग्रह जेने छे ते, परिग्रहीत द्रव्य जेसे बहुत होय, जेसे थोड़े होय, जेसे अणुरूप होय, जेसे स्थूलरूप होय, जेसे सचित्त होय, जेसे अचित्त होय, आभासी कर्म

इह=शरीरे जन्मनि ससारे वा विप्रमुक्तस्य-परिग्रहममत्वादिरहितत्वेन वि=विविध-  
प्रकारैः प्रकर्षेण च मुक्तस्य-वैराग्यभावनया शरीराद्यनुरागरहितस्य, विरतस्य=  
सावधव्यापाररहितस्य मुनेः मार्गः=नरकनिगोदादिगत्यागतिरूपः पन्थाः नास्ति=  
न विद्यते । विरतस्य मुनेः कर्मणः शरीरस्य चासत्त्वान्न नरकादिगतिषु गमनं भव-  
त्यतस्तस्य स मार्गो नास्तीत्याशयः । इति ब्रवीमि=न मया स्वमत्या प्रोक्तम्,  
यद्भगवत्सकाशान्मया श्रुतं तत् सर्वं त्वा ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ३ ॥

सावध व्यापारों से निवृत्त किया जाता है आत्मा जिसकी स्थिति में, अथवा  
निपुण आचरण में यत्नवाला किया जाता है आत्मा जिसके द्वारा उसका  
नाम आयतन है, वह रत्नत्रयस्वरूप है, यह आत्मा का निजधर्म है। इसके  
साथ दिया गया “ एक ” विशेषण यह बतलाता है कि इसकी जोड़का  
और कोई पदार्थ इस दुनिया में नहीं है। यह एक-असहाय-सर्वोत्कृष्ट धर्म  
है। एकायतन में जो रत्न-लवलीन है, अर्थात् रत्नत्रय की अच्छी तरह  
से आराधना करने में तत्पर है वह एकायतनरत्न है। तथा “ इह ”  
शरीर, जन्म अथवा ससार में “ विप्रमुक्तस्य ” परिग्रह एवं ममत्वादि  
से रहित होनेसे जो “ वि ” विविध प्रकारों से और “ प्र ” प्रकर्ष से  
“ मुक्तस्य ” वैराग्यभावना से शरीरादिक के अनुराग से रहित है  
ऐसे सावध व्यापारों से रहित मुनि का मार्ग-नरकनिगोदादिक का गति-  
आगतिरूप मार्ग नहीं होता है, कारण कि विरत मुनि के तज्जातीय कर्म  
एव शरीर का असत्त्व होने से नरकादि गतियों में गमन नहीं होता है।

श्रेयसायतनस्वरूप रत्नत्रयमा रत्न भवेत्ता छे अथवा भावध व्यापारोधी निवृत्त कराव छे  
आत्मा जेनी स्थितिमा, अथवा निपुण आचरणमा यत्नवायो भनावी हेवाभा आवे  
छे आत्मा जेनाधी तेनु नाम आयतन छे ते रत्नत्रयस्वरूप छे आ आत्माना  
निजधर्म छे तेनी साथे आपवामा आवेल “ एक ” विशेषणु अे भनावे  
छे के तेनी जोडना केध पदार्थ दुनियाभा छे न नहि ते अेक असहाय सर्वो  
त्कृष्ट धर्म छे श्रेयसायतनमा जे तत्पर छे अर्थात् रत्नत्रयनी सारी रीते आरा  
धना करवाना तत्पर छे ते श्रेयसायतनरत्न छे तथा “ इह ” शरीर, जन्म  
अथवा ससारमा “ विप्रमुक्तस्य ” परिग्रह ममत्वादिही रहित होवाधी ते  
“ वि ” विविध प्रकारधी “ प्र ” प्रकर्षधी “ मुक्तस्य ” वैराग्य भावनार्थी शरीरादि  
प्रत्येनी ममनाधी रहित छे अेवा सावध व्यापारोधी रहित मुनिना मार्ग-नरक  
निगोदादिदना गति-आगतिरूप मार्ग-होतो नही, कारणु के विरत-मुनिना तज्जा  
तीय कर्म अथवा शरीरमा आसत्त्वपूर्ण न होवाधी नरकादि गतियोभा तेनु गमन

परिग्रहिणो भवन्ति, तदेवाह—एतेष्वित्यादि, एतेषु चैव=पशुजीवनिकायैष्वन्य बहुस्युम्भवादिषु चैव प्राणिनः परिग्रहन्तः ममत्वन्तो जायन्ते। य कोऽपि विरतोऽविरतो वाऽन्यादिवस्तुजातेन परिग्रहवान् भवति, तत्र च पञ्च—महाव्रतेष्वेक-व्रतविराधनात् सर्षपवचिराधका भवति, अनिवारितास्रनत्वादिति भावः। एतेषां परिग्रहाद्यस्तेष्विनामपरिग्रहामिमामिनां शरीरमनयायैवत्याह—‘एतदेवै’त्यादि।

ग्रहण से जीव परिग्रही होते हैं। इन पशुजीवनिकायरूप अल्प, बहु, स्थूल और लघुरूप परिग्रहमें मूर्च्छाशाली होने से जीव ममत्वपरिणामी होते हैं। जो कोई अधिगत प्राणी अपने को विरतरूप से घोषित करता हुआ भी ‘ममेदं’—भाषसे अल्प परिग्रहरूप वस्तु का भी ग्रहण करता है वह परिग्रही ही है। इसी प्रकार से पंचमहाव्रतोंमें से जो एक भी व्रतकी विराधना करता है वह अपने ममत्व व्रतोंका विराधक होता है। कहीं किसी एक व्रत में भी जिम्मेके अपराध का सञ्जाय हुआ है उसके ममत्व अर्थों में भी अपराधीपना आता है; क्योंकि ऐसी हालतमें उसके आत्मव क्य वार पद नहीं होना। उत्तर गुणों में अतिचार भी ऐसा ही होता है यदि मूलगुणों का विष्वंसक न हो।

शङ्का—अल्पादिवस्तुरूप परिग्रह के ग्रहण से यदि परिग्रहवत्ता मानी जावे तो फिर जो अल्पादिरूप परिग्रहका सेवन करते हुए भी अपने को अपरिग्रही कहते हैं उनके आहार एवं शरीरादिक भी

आ अथाना अद्वयं अथवा ठाठ ठाठना अद्वयं एव परिग्रही अने छे  
आ पशुजीवनिकायरूप अल्प, बहु, स्थूल तेमच लघुरूप परिग्रहमा मूर्च्छाशाली  
होनाची एव ममत्वपरिग्रही अने छे जे ठाठ अविश्व प्राणी पोताने  
विरतग्रहणी बाहेर करी भवेत्—आपची अल्पपरिग्रहग्रह वस्तु पशु अद्वय  
करे तो ते परिग्रही न छे. आ प्रकारे पाच महाव्रतमांया जेके मत्तनी विरा  
धना करे छे ते पोताना समस्त व्रताने विरतक अने छे अर्थात् ठाठ जेके  
अथमा पञ्च वेनामा अपराधने अहंभाव भवे पछी तेना समस्त अथिमा  
अपराधीपणुं जावी नाव छे केमके जेवां दाहवर्मा जेना आअपत्या द्वार  
अर्थ नथी वर्ता. जे भूगजुजेने विष्वंसक नहि होय तो उत्तरगुणमां पञ्च  
अतिचार जेमच कथ छे

शङ्का.—अल्पादिवस्तुरूप परिग्रहना अद्वयं जे परिग्रहवत्ता मना  
वामा अने ते पछी अल्पपरिग्रह परिग्रहनु सेवन करवा ज्वा पोताने अपरि-  
ग्रही कहे जेना आहार अने शरीरादिक पशु अनर्थना करवा जनरी? अ

वहु=अधिक वा-मूल्यतो रत्नादिकं, प्रमाणतः काष्ठादिकम्; अणु वा-मूल्यतो-  
लघुतृणादिक, प्रमाणतो वज्रादिक, स्थूलं वा-मूल्येन प्रमाणेन च गजादिकम् ।  
तानि च द्रव्यभावभेदेन द्विविधानि बोध्यानि; तथा द्वि-किञ्चिद् वस्तु द्रव्यतोऽल्पं  
न भावतः-वज्रादिमणिः, अपर च भावतोऽल्पं न द्रव्यतः-एरण्डकाष्ठादिकम्,  
अन्यच्च द्रव्यतो भावतोऽल्पं कपर्दादिकम् ; उभयतो बहु स्थूल च गोशीर्षकह-  
मिचन्दनादिकम् । यद्वा-परिग्रहश्चतुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् । एतच्च सर्वं  
चित्तवद् वा अचित्तवद् वा, उपलक्षणान्मिश्रस्यापि ग्रहणम् । सर्वेषामेतेषा योगेन  
कुछ भी जिसके पास है वह परिग्रही है । यह परिग्रह ही अविरतियों  
और विरतियों को महान् भयस्वरूप होता है । इस प्रकार इस लोकवित्त  
को समझ कर जो इससे विरत है उनके परिग्रहजन्य भय नहीं होता है ।  
परिग्रहमें अल्पता और अधिकता मूल्य की एवं प्रमाण की अपेक्षा से  
बतलाई गई है । मूल्यकी अपेक्षा जिसके पास एक कोड़ी-मात्र अल्प परि-  
ग्रह है अर्थात् इतना भी जिसके परिग्रह है कि जिसकी कीमत एक कोड़ी है  
वह भी परिग्रही है । प्रमाण की अपेक्षा-अर्कतृलादि ( आककी रूई )  
मात्र भी जिसके परिग्रह है वह भी उसमें ममत्वभावविशिष्ट होने से  
परिग्रहयुक्त है । इसीप्रकार मूल्यकी अपेक्षा रत्नादिक, प्रमाणकी अपेक्षा  
काष्ठादिक बहुत परिग्रह हैं । मूल्यकी अपेक्षा लघु-अणु तृणादिक, प्रमाण  
की अपेक्षा वज्रादिक, मूल्य और प्रमाण से स्थूल हाथी घोड़े आदि  
परिग्रह है । सचित्त और अचित्त परिग्रहके ग्रहण से मिश्र परिग्रहका  
भी यहां ग्रहण हुआ है । इन समस्त के ग्रहण से अथवा कुछ २ के

पक्ष जेनी पामे छे तेने परिग्रही कहे छे आ परिग्रह न अविरतियो अने विरति  
येने महालयस्वरूप छे आ प्रकारे आ लोक परिग्रहने समजने जे तेनाधी  
विरत छे तेने परिग्रहजन्य लय हातो नही परिग्रहमा अल्पता अने अधि-  
कता मूल्यनी अने प्रमाणनी अपेक्षार्थी जताववामा आवी छे किमतनी अपेक्षा  
जेनी पामे ओके कोड़ी मात्र अल्प परिग्रह छे अर्थात् ओटलो पक्ष परिग्रह छे के  
जेनी किमत ओके कोड़ी छे ते पक्ष परिग्रही छे प्रमाणनी अपेक्षा आकडातु ३  
मात्र पक्ष जेने परिग्रह छे ते पक्ष तेनामा ममत्वभावविशिष्ट होवार्थी  
परिग्रहयुक्त छे तेथी रीते मूल्यनी अपेक्षा रत्नादिक, प्रमाणनी अपेक्षा काष्ठ  
आदिक धरोज परिग्रह छे मूल्यनी अपेक्षा लघु-अणु-तृणादिक, प्रमाणनी अपेक्षा  
वज्रादिक, मूल्य अने प्रमाणार्थी स्थूल हाथी घोडा आदि परिग्रह छे सचित्त  
अने अचित्त परिग्रहना अलघुर्थी मिश्र परिग्रहने पक्ष अडि अलघु थयेल छे



સજ્જાયા અમસ્વાહ્યાફનિન્યસ્ત્વેન મિનશાસનમ્પવોત્પાદનાપ્ચ સ્વપરયોર્મહામયકારિ મવતિ । મગવતાઽપિ સંયમ સજ્જાયાઃ પ્રાથમ્યમભિહિત્, તયાદિ “સજ્જા-દયા-સંજમ-ચ-મચ્ચેર” ઇત્યાદિ । યસ્માત્પરિગ્રહાઽનયૌય મવતીત્યત્ ઉપવિશ્વતિ ‘લોકવિષ્’ મિત્યાદિ । વિરલો ઘુનિ શ્લોકવિષ્ લોકસ્ય=અસંયત્શ્લોકસ્ય વિષ્=અનમ્ અસ્વાધિરૂપમ્, પદ્મા-‘લોકવૃક્ષ’મિતિષ્ઠાયા, તેન-શ્લોકસ્ય હૃતમાષરજમ્=આહાર-મય-મૈયુન-પરિગ્રહસંગ્રારૂપ મહત્ મયાય મવતીતિ, ચ=પુન, સહ=વાક્યાભદાર ઉત્પેસ્ય=જાત્મા ઇપરિગ્રયા, પ્રત્યાસ્થાનપરિગ્રયા પરિગ્રેત્ । તાદૃશ્યસ્ય યસ્ત્યાધદાદ-‘પતાન્’ ઇત્યાદિ । પતાન્-પૂર્વોક્તાન મગાન્=દ્રવ્યપરિગ્રહસમ્બન્ધાન્ અધિજાનતઃ=અધિવપતઃ-પરિગ્રહસમ્બન્ધરહિતસ્ય ઘુનેઃ પરિગ્રહોત્પન્નં મહામયં ન મવતિામ્ ૦૪॥

इसलिये ऐसी हालत में उनका शरीर लज्जकारिण होने से लोक निर्दाका पात्र होता है, इससे जिनशासनकी अवछेदना होती है; इस लिये उनका वह शरीर स्व-पर के लिये महामयकारी होता है। संयममें मगवान्में “लज्जा-दया-संजम-च-मच्येर” इत्यादिवाक्यानुसार लज्जाके लिये प्रथम स्थान दिया है। जिस कारण से परिग्रह अनर्थकारी बतलाया गया है इसी लिये सूत्रकार कहते हैं-‘लोकविष’-मित्यादि असंयतलोकका धन, अथवा-असंयत लोककी आहार, भय, मैयुन और, परिग्रह-संग्रारूप लोकवृक्ष (‘लोकविष’की ‘लोकविष’ या ‘लोकवृक्ष’ संस्कृतशब्दाया होती है) उन्हें बड़े भारी भयके लिये होता है। सूत्र में “म्बलु” शब्द वाक्या संकार में प्रयुक्त हुआ है। इसलिये मोक्षार्थीजन लोकविष अथवा लोक-वृक्ष को महामयकारी इपरिग्रा से जानकर प्रत्यास्थानपरिग्रा से उसका परित्याग करे। परिग्रह के परिवर्जन से त्यागी के जो लाभ होता है उसे सूत्रकार “पतान् संगान् अधिजानत” इस सूत्रांश से कहते हैं।

હાલતમાં તેનું શરીર લજ્જાકારિણ હોવાથી લોકનિર્દાને પાત્ર બને છે. તેનાથી લનશ્યાસનની અવછેદના માત્ર છે માટે તેનું તે શરીર સ્વ અને પરને માટે મહાભયકારી બને છે. સમયમાં ભગવાને “લજ્જા-દયા-સંજમ-ચ-મચ્ચેર” ઇત્યાદિ વાક્ય અનુસાર લજ્જાને માટે પ્રથમ સ્થાન અપેક્ષ છે જે કારણથી પરિગ્રહ અનર્થકારી બતાવેલ છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે-‘લોકવિષ’-ઇત્યાદિ. અસંયત લોકનુધન અથવા અહમ વત લોકના આહાર ભય, મૈયુન અને પરિગ્રહ સંગ્રાહપદોલ્લક્ષ્ય તેના માટે ભારે ભયભરતક હોય છે આ માટે મોક્ષાર્થી જન લોકવિષ અથવા લોકવૃક્ષને મહાભયકારી ઇ-પરિગ્રાથી ભાષીને પ્રત્યાસ્થાન-પરિગ્રાથી તેને ત્યાગ કરે પરિ ગ્રહના પરિવર્જનથી ત્યાગીને જે લાભ માય છે તેને સૂત્રકાર પતાન્ સંગાન્ અધિજાનત આ સૂત્રથી કહે છે કે આ દ્રવ્ય-પરિગ્રહની શામે પતાને સભય

एकेषा=केषाचिद् विरतानामविरतानां वा परिग्रहिणाम् एतदेव शरीरं महाभयं=कारणे कार्योंपचारात्प्राणातिपातादिकरणेन नरकनिगोदादिकदुकफलरूपमहाभयजनकत्वान्महाभयमेव भवति ।

यद्वा—यथा—पाणिपुटभोजिना शरीराहारादेरन्यस्याप्यल्पस्य पात्रवस्त्रादेरसत्त्वाद् गृहस्थसन्ननि चाधःकर्मादिदोषदुष्टमाहारादिकमश्रता हि महता कर्मवन्धेन पोषणाच्छरीरं महाभयहेतुत्वान्महाभयं, तथा तच्छरीरं गुह्यस्थानेऽनाच्छादनेन अनर्थके लिये होंगे ? इस शंकाका समाधान करने के लिये सूत्रकार “ एतदेव एकेषां महाभयं भवति ” इस सूत्रांश का कथन करते हैं। वे कहते हैं—चाहे विरतिसपन्न हो, चाहे उससे रहित अव्रती हो उसके अल्पादिरूप परिग्रह की सत्ता में भी ‘ममेदं’-भावसे अवश्य परिग्रहपना है। यह परिग्रहवत्ता ही उनके लिये नरकनिगोदादिक के भयंकर फलरूप महाभय का कारण होने से महाभयस्वरूप होता है।

अथवा—परिग्रहयुक्त प्राणियों के “ एतदेव ” यह शरीर और आहारादिक महाभयस्वरूप हैं, जैसे—जो पाणिपुट (करपात्र) में भोजन करनेवाले हैं, जिनके पास पात्र और वस्त्रादिक कुछ भी नहीं हैं; परन्तु वे गृहस्थों के यहां आधाकर्मादिक दोषोंसे दूषित आहारादिक के लेने से महान् कर्मों का बध करनेवाले होते हैं, इससे उनका शरीरादिक उन्हें महाभय का हेतु होने से महाभयस्वरूप हैं। तथा—उनका शरीर, वस्त्र से रहित होने से गुह्यस्थान निरावरण रहता है;

शकानु समाधान करवा भाटे सूत्रकार “ एतदेव एकेषां महाभयं भवति ” आ सूत्रतु कथन करे छे ते कहे छे के-लवे विरतिस पन्न डोय थोडे अनाथी रक्षित अव्रती डोय छता अल्पादिरूप परिग्रहनी सत्ताभा पशु ममेदलावधी अवश्य परिग्रहपावुं छे आ परिग्रहवत्ता न अने भाटे नरकनिगोदादिकना लय कर इणरूप महाभयतु अरथु डोवाधी महाभयस्वरूप अने छे, अथवा—परिग्रहयुक्त प्राणीअने “एतदेव” शरीर तेमन आहारादिक महाभय स्वरूप छे नभके-ने पाणिपुट ( करपात्र )थी न लोअन करवावाणा छे, नेनी पासे पात्र तेमन वस्त्रादिक काध पशु नथी परतु ने गृहस्थोने त्या आधाकर्मादिक दोषोधी इषित आहारादिक लेवाधी महान् कर्मोना बध करवावाणा डोय छे आथी तेना शरीरादिक तेने महाभयने हेतु डोवाधी महाभयस्वरूप छे तथा तेनु शरीर वस्त्र रक्षित डोवाधी गुह्य अंग खुल्लु रहै छे, आ अरथु अने

हेतुह्यन्तीः शिष्याणां प्रापितमित्यर्थः । इति=एवं ज्ञात्वा=विचार्य हे पुरुष।=हे मध्य ! परमब्रह्म=परम-ज्ञानं तवः संयमो वा ब्रह्म=नेत्रं यस्य स परमब्रह्म=से पुष्टि की है । यद्वा-इसी मार्गद्वारा उन्होंने अपने शिष्यों को ज्ञाना दिकों की प्राप्ति कराई है ।

भावार्थ—यह राजमार्ग है कि परिग्रह के त्याग किये बिना साधु को अपने कर्तव्य पथ में सच्ची आराधना की जायति नहीं हो सकती है । कारण कि इसके सद्भाव में सदा आत्मा में आकुलता रहती है । आकुलता में स्वधर्मापन हो नहीं सकता । परिग्रह के सद्भाव में ही साधकप्रवृत्ति एवं अनेक अनर्थों की परपरा बढ़ती है । परिग्रह के त्याग से आत्मा में अपूर्व शांति और स्वरमणता आती है । अतः यही मार्ग सर्वोत्तम है । इस मार्ग का जो पथिक है वही सन्धे रूप में अपने कर्तव्य पथ का मित्रानेपाला और सम्पदवर्धनादिकरूप मोक्षमार्गका अनुयायी है । इसी मार्गद्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियों ने अपने श्येय की प्राप्ति की है और अपने शिष्यों को भी इसी मार्गक अनुसरण करने का उपदेश दिया है । हेतु और दृष्टान्तों से इसी मार्ग की उन्होंने पुष्टि की है ।

“ इति ज्ञात्वा ” इसलिये हे मध्य पुरुष ! ऐसा समझ कर इसी मार्ग पर चल कर तुम ज्ञान अथवा संयम या तपस्वी ब्रह्मों की प्राप्ति

निमित्ते मुक्ति अने श्यातर्षी अमलवेद छे तमव आ मात्र द्वारा तेभ्यो पोताना शिष्योने ज्ञानादिकनी प्राप्ति करवी छे

भावार्थ—आ राजमार्ग छे हे परिग्रहने मात्र कर्षा वगर साधुने पोताना कर्तव्य पथमा आनी आराधकतानी ब्रह्मूती नणी सकती नधी कारण हे परिग्रहना सदभावमा आत्मानी सदा आकुलता रहे छे आकुलतामा धर्मतु आराधन नधी बर्ध सकतु परिग्रहना सदभावमा ब साधक प्रवृत्ति तेमक अनेक अनर्थोनी परपरा बधि छे परिग्रहना त्यागभी आत्मासा अपूर्व शान्ति तेमक स्वरमणता आवे छे आ मात्र ब सर्वोत्तम छे आ भाजनेके पथिक छे ते ब ध्याना रूपमा पोताना कर्तव्यपथने निजापनार तेमक सम्बन्धनदिकरूप मोक्षमार्जने अनुयायी छे आ ब मात्र द्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियोंने पोताना श्येयनी प्राप्ति करी छे अने पोताना शिष्योने पञ्च आ ब भाजनु अनुसरण करवाने उपदेश आवेक छे हेतु अने दृष्टान्तोभी आ मार्गने तेमके स्वीकार कर्षे छे

“ इति ज्ञात्वा ” अनेवा भाटे हे मध्य पुरुष ! आ समझने आ ब मा । उपर आनी तमो ज्ञान अथवा संयम अथवा तपस्वी ब्रह्मोंनी प्राप्ति करी सकसो-

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘ સે સુપદ્વિબુદ્ધં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે સુપદ્વિબુદ્ધં સૂચનીયંતિ નચ્ચા પુરિસા ! પરમ-  
ચક્ષુ વિપરક્કમા । ઇણસુ ચેવ બંધચેરં તિવેમિ । સે સુયં ચ મે,  
અજ્ઞતથયં ચ મે, બંધપમુક્ત્વો અજ્ઞતથેવ । ઇત્થ વિરણઅણગારે  
દીહરાયં તિતિક્કલ્લ । પમત્તે વહિયા પાસ, અપ્પમત્તો પરિલ્લવ્ણ ।  
ઈણં મોણં સમ્મં અણુવાસિજ્જાસિ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—તસ્ય સુપ્રતિબુદ્ધ મુપનીતમિતિ જ્ઞાત્વા પુરુષ ! પરમચક્ષુર્વિપરાક્રમસ્વ ।  
એતેષુ ચૈવ બ્રહ્મચર્યમિતિ વ્રવીમિ । તત્ત્વશ્રુત ચ મયાઽવ્યાત્મક ચ મે વન્ધપ્રમોક્ષોઽ  
ધ્યાત્મે ઇવ । અત્ર વિરતોઽનગારો દીર્ઘરાત્રં તિતિક્ષેત । પ્રમત્તાન્ વદ્ધિઃ પશ્ય, અપ્ર-  
મત્તઃ પરિવ્રજેત્ । ઇતન્મૌનં સમ્યક્ અનુવાસયેઃ, ઇતિ વ્રવીમિ ॥ મૃ૦ ૫ ॥

ટીકા—‘ તસ્યે—’ત્યાદિ, તસ્ય=પરિગ્રહરહિતસ્ય, સુપ્રતિબુદ્ધં—સુ=શોભન પ્રતિ-  
બુદ્ધં=જાગરિતં, મુપનીતં=શોભન દર્શિતં જ્ઞાનાદિક્ત્રિક મુદ્દષ્ટિકૈઃ પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિમિઃ  
હસ દ્રવ્ય પરિગ્રહ કે સાથ અપના સંબંધ નહીં રચનેવાલે અર્થાત્ પરિગ્રહ કે  
સંબંધ સે રહિત મુનિકો પરિગ્રહજન્ય મહાભય નહીં હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ઔર भी ब्रान सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘ से सुपद्विबुद्धं ’ इत्यादि ।

જો મનુષ્ય પરિગ્રહ સે રહિત હૈં ઉનકા હી અપને માર્ગ મેં સચ્ચા  
જાગરણ હૈ ઔર ઉનકે હી જ્ઞાનાદિક્ત્રિક નિર્દોષ હૈં, અથવા—ઉનકા  
અપને કર્તવ્યપથ મેં જો જાગરણ હૈ વહ સુપનીત હૈ—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ-  
જ્ઞાનિયો ને અચ્છી તરહ સે પ્રકટ કિયા હૈ, ઔર હસી માર્ગ કી ઉન્હોં ને  
અપને શિષ્યોં કો જ્ઞાનાદિક્ત્રય કી પ્રાપ્તિકે નિમિત્ત યુક્તિ ઔર દૃષ્ટાન્ત

નહિ રાખવાવાળા અર્થાત્ પરિગ્રહના સંબંધથી રહિત મુનિને પરિગ્રહજન્ય મહા-  
ભય હોતો નથી ॥ સૂ૦ ૪ ॥

કરી એક ખીલ પણ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—“સે સુપદ્વિબુદ્ધં” ઇત્યાદિ

જે મનુષ્ય પરિગ્રહથી રહિત છે તેનું જ પોતાના માર્ગમાં સાચું જાગરણ  
છે, અને તેના જ્ઞાન આદિ નિર્દોષ છે, અથવા તેનું પોતાના કર્તવ્યપથમાં જે  
જાગરણ છે તે સુપનીત છે—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનીઓએ સારી રીતે  
પ્રગટ કરેલ છે, અને તે માર્ગ તેમણે પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાનાદિક્ત્રયની પ્રાપ્તિ



મોક્ષકેદર્શનઃ સન્ વિપરાક્રમસ્વ=સયમે જ્ઞાનાવરણીયાદ્યપ્તવિધર્મભક્ષણનિરવધાન્નુ-  
 ઘ્ઞાનસ્ય તપસશ્ચાચરણેન વિ=વિશેષેણ પરાક્રમસ્વ=પરાક્રમ કૃત્વ, તપોવીરો  
 ધર્મવીરશ્ચ ભવેત્યર્થઃ, કિમર્થ સંયમે પરાક્રમોપદંત્રઃ? इत्यत आह—‘एतेषु’  
 इत्यादि, एतेषु चैव=परिग्रहाग्रहपराङ्मुखेष्वेव चन्तुतो ब्रह्मचर्यं मैथुननिवृत्त्या-  
 दिनविविधरूपं विद्यते नेतरेषु सपरिग्रहेषु, तेषु नवविधव्रतचर्यगुप्त्यसम्भवात् ।  
 यद्वा-एतेषु=पञ्जीवनिकार्येषु तदुपमर्दनविरतिरूपसयमाचरणमेव ब्रह्मचर्यं, नान्यत्।

કર સકતે હો—મુક્તિ માર્ગ કે ઢર્શક બન સકતે હો। જબ અપરિગ્રહતા  
 તુમ્હે પ્રાપ્ત હો જાયગી, તબ હી તુમ જ્ઞાનાવરણીયાદિક અષ્ટ પ્રકાર કે  
 કર્મોં કો સમુન્મૂલન કરનેવાલે નિરવધ અનુષ્ઠાનરૂપ તપ કી આરા-  
 ધનામેં વિશેષ પરાક્રમ કરોગે ઓર હસ તરહ સેતુમ તપવીર ઓર ધર્મ-  
 વીર બન સકોગે। સયમ અથવા તપ મે પરાક્રમશાલી હોને કા ઉપદેશ  
 હસીલિયે દિયા જાતા હૈ કિ જો પરિગ્રહ કે ગ્રહણમે પરાઙ્મુખ હૈ ઁન  
 મેં હી વસ્તુતઃ નૌ પ્રકાર કે મૈથુન કી નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્યવ્રતકી સમ્યક્  
 રીતિસે રક્ષકતા આતી હૈ, અન્યોંમેં નહી; કારણ કિ બે પરિગ્રહકે ગ્રહણ  
 કરને મેં આસક્ત હોનેસે નૌ પ્રકાર સે ઁસ બ્રહ્મચર્યકી રક્ષા નહીં કર  
 સકતે હૈ। અથવા—“ एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम् ”—હસ વાક્ય કા ઘહ ઢી  
 અર્થ હોતા હૈ, કિ હન પઙ્જીવનિકાર્યોં કે ઘાત કરનેકી ચિરતિરૂપ જો  
 સંયમ હૈ હસકા આચરણ કરના હી બ્રહ્મચર્ય હૈ, અન્ય બ્રહ્મચર્ય નહીં હૈ।

મુક્તિ માર્ગના ઢર્શક બની શકશે ત્યારે આ અપરિગ્રહતા તમે પ્રાપ્ત કરી  
 શકશે ત્યારે જ તમે જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ કરવાવાળા  
 નિરવધ અનુષ્ઠાનરૂપ તપની આરાધનામા વિશેષ પગલું કરશે, અને આવી રીતે  
 તમે તપવીર અને ધર્મવીર બની શકશે સયમ અને તપમા પગલું મશાળી  
 હોવાને ઉપદેશ એ નાટે આપવામા આવેલ છે કે જે પરિગ્રહના અહલ્યમા  
 પરાઙ્મુખ છે તેમનામા ખરી રીતે તપ પ્રદારના મૈથુનની નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્ય  
 મતની સમ્યક્ રીતિથી રક્ષકતા આવે છે, ખીલ્લમા નહી. કારણ કે તેઓ પરિ-  
 ગ્રહના અહલ્ય કરવામા આસક્ત હોવાથી તપ પ્રદારના તેમા બ્રહ્મચર્યની રક્ષા  
 કરી શકતા નથી, અને “ एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम् ” આ વાક્યને એ પણ અર્થ  
 થાય છે કે પઙ્જીવનિકાર્યોની ઘાત કરવાની વિવૃત્તિરૂપ જે સયમ છે તેનુ આચર  
 ણ કરવું એ જ બ્રહ્મચર્ય છે, ખીલુ બ્રહ્મચર્ય નથી

एतत् मौनं-मगधदावेदित चारिभं हे शिष्य ! त्वं समनुवासय -सम्=सम्यक्=पूर्वोक्त  
यथार्थरूपेण अनुवासय=परिपालय । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-२ ॥

यह मुनिसंप्रदायी कर्तव्य-चारित्र्य भगवान् ने कहा है, सो हे शिष्य ! पूर्व में  
प्रतिपादित यथार्थरूप से तुम इसका पालन करो ! "इति ब्रवीमि" इस  
प्रकार श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्भूस्वामी से कहा ॥

॥ पंचम अध्ययन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५-२ ॥

अथलगीत अनी "परिव्रजेत्" अत्रन्वा-आमवती हीक्षाने लती प्रकारे पालन करे  
आ मुनिख लभी कर्तव्य ज्येले चारित्र्य भगवाने कहेल छे, भाटे हे शिष्य । पहेला  
कहेवाभा आवेस बधार्थ ३५वी तमे वेनु पालन करे। इति ब्रवीमि" आ प्रकारे  
श्री सुधर्मा स्वामीने श्री जम्भूस्वामीने कहे।

पञ्चमा अध्ययनने। नीजे उद्देश समाप्त ॥ ५-२ ॥



आत्मन्येव स्तः, रागद्वेषयोरात्मन्येव सद्भावात् । अपि च-अत्र=आरम्भपरिग्रहे  
 अप्रशस्ताध्यात्मे वा विरक्तः=उपरतः, अनगारः=मुनिः दीर्घरात्रं=यावज्जीवं परिग्र-  
 हासत्वाद् यत् क्षुत्पिपासादिकम् आतदादिकं वा समापतेत् तत्सर्वं तितिक्षेत=सहेत ।  
 अन्यमप्युपदेशमाह-‘प्रमत्तान्’-इत्यादि, प्रमत्तान्=असयमान् आरम्भपरिग्रहीतान्  
 कुलिङ्गिनः परतीर्थिकान् वह्निः=भगवदाज्ञारूपाद् धर्माद्वह्निर्भूतान् पश्य । अतो  
 भगवदाज्ञावर्ती मुनिः अप्रमत्तः=सयमानुपालनार्थं प्रयत्नवान्, यद्वा-अप्रमत्तः=  
 पञ्चविधममादरहितः सन् परिव्रजेत्=प्रव्रज्या परिपालयेत्-विहरेदित्यर्थः । किंच-  
 बंध और प्रमोक्ष “अध्यात्मे एव” आत्मा में ही हैं । क्यों कि राग  
 और द्वेष आत्मा में ही होते हैं । जहां बंध है वही मुक्ति है । तथा-  
 आरम्भ और परिग्रह में अथवा अप्रशस्त अध्यात्म-गगद्वेष विशिष्ट  
 आत्मामें जो लीन नहीं है-उनसे विरक्त है, उस मुनिको दीर्घरात्रं-  
 जीवनपर्यन्त परिग्रह के असत्त्व से जो क्षुधा तृषा आदि परीषह अथवा  
 किसी भी प्रकार का रोग उपद्रव आवे तो उन सय का उसे सहन  
 करना चाहिये । तथा जो असंगत हैं, आरम्भ-परिग्रहमें आसक्त हैं,  
 द्रव्यलिङ्गी हैं ऐसे पासत्थादिकों और परतीर्थिकों को वीतराग प्रभुकी  
 आज्ञारूप धर्ममार्गसे बाहर समझना चाहिये । जो वीतरागप्रभुकी  
 आज्ञानुसार प्रवृत्ति करनेवाले हैं और सयममार्गकी परिपालना करनेमें  
 प्रयत्नशील हैं वे अनगार मुनि हैं । इसलिये भगवान्की आज्ञावर्ती  
 मुनि अप्रमत्त होकर अपने संयम के पालन करनेके लिये प्रयत्नशील  
 बन “परिव्रजेत्” प्रव्रज्या-भागवती दीक्षा का भले प्रकार पालन करे ।

पृथक् यत् तेनु नाम प्रमोक्ष छे आ जन्ने जध अने प्रमोक्ष “अध्यात्मे एव”  
 आत्माभा ज छे, कारणु के गग अने द्वेष आत्माभा ज डोय छे, न्या जध छे  
 त्या मोक्ष छे तथा आरभ अने परिग्रहमा अथवा अप्रशस्त अध्यात्म-राग  
 द्वेषविशिष्ट आत्मा-भा के लीन नहीं अेटके तेनाथी विरक्त छे ते मुनिने दीर्घरात्र-  
 लवनपर्यन्त परिग्रहना असत्त्वधी के क्षुधा तृषा आदि परिषह अथवा कोर्ष पणु  
 प्रकारना रागानो उपद्रव आवे तो अे जधाने सहन करवु नैछंअे तथा के असयत  
 छे, आरभ परिग्रहमा आसक्त छे, द्रव्यलिङ्गी छे, अेवा पासत्थादिक अने  
 परतीर्थिकोने वीतराग प्रभुनी आज्ञारूप धर्ममार्गथी गडार समजवा नैछंअे के  
 वीतराग प्रभुनी आज्ञ-अनुसार प्रवृत्ति करवावाणा छे, अप्रमत्त छे, अने सयम  
 मार्गनी परिपालना करवाभा प्रयत्नशील छे ते अनगार-मुनि छे आ कारणु  
 भगवानना आज्ञावर्ती मुनि अप्रमत्त जनीने पोताना सयमवु पालन करवा भादे



एतत् मौने-भगवदावेदितं चाग्निं हे शिष्य ! त्वं समनुवासयः-सम्-सम्यक्-पूर्वोक्त  
ययार्थरूपेण अनुवासयः=परिपालय । इति प्रथमीत्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्त ॥ ५-२ ॥

यह मुनिसंघी कर्तव्य-चारित्र्य भगवान् ने कहा है, सो हे शिष्य ! पूर्व में  
प्रतिपादित ययार्थरूप से तुम इसका पालन करो ! "इति प्रथमि" इस  
प्रकार श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्भूस्वामी से कहा ॥

॥ पंचम अध्यायन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५-२ ॥

अथलशील जनी "परिव्रजेत्" अथ-आ-आजवती ब्रीक्षाने लक्ष्मी प्रकारे पालन करे  
आ मुनिसंघी कर्तव्य क्लेशे चारित्र्य भगवान् ने कहेल छे भाटे हे शिष्य ! पहलेवां  
कहेवाभां आवेल ययार्थ रूपी तमें तेनु पालन करे । इति प्रथमि" आ प्रकारे  
श्री सुधर्मास्वामीने श्री जम्भूस्वामीने कहेल ।

पंचम अध्यायनने लीले उद्देश समाप्त ॥ ५-२ ॥



## अथ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

उक्तो द्वितीयोद्देशोऽधुना तृतीयः समारभ्यते । एष चानन्तरोद्देशेन सम्बन्धः, पूर्वत्र चाविरतिमान् अल्पादिद्रव्यैः परिग्रहवान् भवतीत्युपदर्शितम् । अत्र च मुनेः परिग्रहप्रतिपक्षभूतोऽपरिग्रहो व्याख्यातव्यो येन मुनित्वं न व्याहन्येतेति ।

मुनेः परिग्रहप्रतिषेधं प्रदर्शयति—‘आवन्ती’ इत्यादि ।

मूलम्—आवन्ती केयावन्ती लोयंसि अपरिग्गहावन्ती एएसु  
चेव अपरिग्गहावन्ती, सोच्चा वई मेहावी पंडियाण निसामिया  
समियाए धम्मे आरिष्हिं पवेइए जहित्थ मए संधी झोसिए  
एवमन्नत्थ संधी दुज्झोसए भवइ, तम्हा वेमि नो निहणिज्ज  
वीरियं ॥ सू० १ ॥

छाया—यावन्तः कियन्तो लोकेऽपरिग्रहवन्त एतेषु चैवापरिग्रहवन्तः, श्रुत्वा  
वाचं मेधावी पण्डितानां निशम्य समतया धर्म आर्यैः प्रवेदितो यथाऽत्र मया सन्धि-  
ज्ञोषित एवमन्यत्र सन्धिदुर्ज्ञोषितो भवति, तस्माद्ब्रवीमि नो निहन्याद्वीर्यम् ॥१॥

## पांचवे अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देश का कथन हो चुका । अब तृतीय उद्देशका प्रारम्भ  
होता है । इसका संबंध अनंतर उद्देश के साथ इस प्रकारसे है—द्वितीय  
उद्देश में यह प्रकट किया है कि अविरतिसम्पन्न प्राणी अल्प आदि वस्तुओं  
से सम्बन्धित होने पर परिग्रही होता है । इस उद्देश में उसके प्रतिपक्ष-  
भूत अपरिग्रहवादका सिद्धान्त प्रतिपादित करना है, क्यों कि निष्परि-  
ग्रहता से ही मुनिमें मुनिता आती है, अन्यथा नहीं । इसलिये सर्वप्रथम  
मुनिके परिग्रह का प्रतिषेध करने के लिये कहते हैं “आवन्ती” इत्यादि ।

## पाचमा अध्ययनने। त्रीजे उद्देश

गीण उद्देशनु वक्राव्य पृइ थयु, इवे त्रीजे उद्देश शरु थाय छे नेनो  
स अथ अनतर उद्देशनी साथे आ प्रकारे छे—गीण उद्देशमा ओम कडेवामा  
आवेण छे के अविरतिस पक्ष प्राणी अल्प आदि वस्तुओथी स अ धित होवथी  
परिग्रही भने छे आ उद्देशमा तेना प्रतिपक्षलूत अपरिग्रहवादनो सिद्धात सम  
जावे छे, कारणु के निष्परिग्रहताथी न मुनिमा मुनिता आवे छे, गीणथी नहि  
ओटला माटे सर्व प्रथम मुनिने परिग्रहनी प्रतिषेध करवाने कडे छे—“आवन्ती” इत्यादि।

टीका—‘यावन्त’ इत्यादि, लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्त=याप  
 त्प्रमाणा केचन अपरिग्रहन्त=अल्पस्यूलादिद्रव्यपरिग्रहरहिताः मृनयो मन्त्रि, ते  
 सर्वे संयमिनो हि एतेषु वैश्व=अल्पस्यूलादिष्वेव वस्तुषु ममत्वामात्राद् अपरिग्रहन्तः=  
 निष्परिग्रहाः अनगारा उच्यन्ते ।

इस मनुष्यलोक में कितनेक अल्प और स्यूल द्रव्य परिग्रहसे रहित  
 मुनि होते हैं । वे समस्त संयमी इन अल्प स्यूलादि द्रव्यों में ममत्वरहित  
 होने से अपरिग्रही कहे जाते हैं ।

भाषार्थ—“ अल्पस्यूलादिक द्रव्यों के परिग्रहसे रहित कितनेक मुनि  
 हैं ” इस कथनसे कोई यह न समझ लेवे कि और भी कोई मुनि अल्प  
 स्यूलादि द्रव्यबाले भी होते होंगे । सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि  
 संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सब प्रायः परिग्रहाधीन हैं । इस परि  
 ग्रहका विवेचन अल्पस्यूलादिक के भेदसे द्वितीय उद्देश के चौथे सूत्र में  
 किया जा चुका है । समस्त प्राणियों में धिरछे ही मुनि होते हैं और वे  
 परिग्रह के त्यागी ही होते हैं । अथवा—सूत्रकार को यहां पर मुनिधर्म  
 का प्रतिपादन करना अभीष्ट है । द्रव्यलिङ्गी पास्त्यादिक भी नाम से  
 मुनिसंज्ञावाले हैं । दण्डिशाक्यादिक भी लोकमें त्यागी मुनि कहलाते  
 हैं, परन्तु इनमें वास्तविक मुनिपना नहीं है । क्यों कि जो परिग्रह से  
 रिक्त होते हैं वे ही वास्तविक मुनि माने गये हैं । यद्यपि इन पास्त्या

या मनुष्य लोकमें कटलाक अल्प अने स्त्व द्रव्यपरिग्रहणी रहित  
 मुनियो हव्ये ते सर्वविस्तु सबमो ज्ञाना अल्प स्त्वादि द्रव्योना ममत्वरहित  
 कीपाणी अपरिग्रही कहेवाय्ये ।

भाषार्थः—“ अल्प स्त्वादि द्रव्योना परिग्रहणी रहित कटलाक मुनि हीय  
 ते ” या कथनका ठोस ज्ञेय न समस्त वे के ज्ञेय हीय मुनि अल्प स्त्वादि  
 द्रव्यवाला हरी सूत्रकारना अभिप्राय को के के—संसारमां कटलाक अर्थात् ते  
 समस्त प्राणी हरी परिग्रहने ज्ञेयते । या परिग्रहणु विवेचन अल्प स्त्वादि  
 द्रव्य वेदणी ज्ञेय उद्देशना कोषा सूत्रमां कहेवायां ज्ञेयते । समस्त प्राणी  
 कोमां विस्तु अ मुनि अने के अनेते परिग्रहणा त्यागी अ कहेवाये । अथवा सूत्रकारे  
 या स्त्वो मुनिधर्मनु प्रतिपादन कस्तु उचित समझे । द्रव्यलिङ्गी पास्त्यादिक पद्य  
 नामणी मुनिसंज्ञावाला । इ ही शाक्यादिक पद्य वेदकां त्यागी—मुनि कहेवाय्ये ।  
 परंतु तेकोमां वास्तविक मुनिपण्यु नहीं, कारण के के परिग्रहणी इर स्त्वो ।  
 ते अ वास्तविकपद्ये मुनि भाणी शक्य को के ज्ञाना वास्त्यादिकमां पद्य ज्ञान

પરિગ્રહ: પરિવર્જનીય ઠીક કથ જાનાતીત્યાહ-શ્રુત્વેત્યાદિ, મેઘાવી=સાધુમ-  
ર્યાદાજ્ઞાનકુશલ: પષિડતાનાં=તીર્થઙ્કરગણધરાટીના “ વર્ટ ” વાચં=પરિગ્રહજનિતનર-  
નિગોદાદિપરિભ્રમણકકદુકુફલસ્વરૂપાં વાળીં શ્રુત્વા=સમાકર્ય, અત્ર ‘ વર્ડ ’ ઇતિ  
મૂલે દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાડડર્પત્વાહ; ઇવં નિશ્ચય મગવદ્વચનમેવ ધર્મ ઇત્યવધાર્ય સચિ-  
ત્તાચિત્તમિશ્રપરિગ્રહપરિત્યાગાન્નિષ્પરિગ્રહો ભવતીતિ સમ્બન્ધ: । સ ચ ધર્મ: કીટશો  
ભવતીત્યાહ—‘ સમતયે ’-ત્યાદિ, ધર્મ: =તીર્થઙ્કરાણુપદિષ્ટ: ‘ સમનયા ’ સમસ્ય  
ભાવ: સમતા તયા-શત્રુમિત્રેષુ તુલ્યસ્વભાવેન વર્તનરૂપો ધર્મ આયં: =તીર્થકુદ્ધિ: પ્રવે-

દિકોં મેં મી વાચ્યરૂપ સે મુનિ કી આકૃતિ વગેરહ હોતી હૈ; પરન્તુ ઇસ  
આકૃતિમાત્ર સે મુનિતા ડનમેં નહીં માની ગઈ હૈ, મમેદં (મમત્વ) ભાવ  
કા અલ્પસ્થૂલાદિક દ્રવ્યોં મે પરિત્યાગ હી વાસ્તવિક મુનિપને કા ચોતક  
માના ગયા હૈ । ઇસલિયે મુનિ હોકર મી સવ મુનિ નહીં હૈ । કિન્તુ  
પરિગ્રહ કે પરિત્યાગી હી મુનિ હૈં ।

“ પરિગ્રહ છોડને યોગ્ય હૈ ” યહ મુનિજન કૈસે જાનતે હૈં ? ડસકે  
પ્રત્યુત્તર મેં સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ—“ જો પરિગ્રહી હોતા હૈ વહ નરક-  
નિગોદાદિગતિયોં મેં પરિભ્રમણરૂપ કદુક ફલકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ” ઇસ  
પ્રકાર તીર્થઙ્કર ગણધર આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનિયોં કી વાત મુન કર સાધુ  
કી મર્યાદા કે જ્ઞાનમેં કુશલ અર્થાત્-મેઘાવી સાધુ યહ જાન લેતે હૈં કિ  
પરિગ્રહ છોડને યોગ્ય હૈ । તવ વે મુનિજન સચિત્ત અચિત્ત ઓર મિશ્ર  
પરિગ્રહકે ત્યાગસે નિષ્પગ્રહી હોતે હૈં । તીર્થઙ્કરાદિદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ કૈસા  
હોતા હૈં ? ઇસી શિષ્યકી જિજ્ઞાસા કે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર કહતે હૈ—

૩પથી મુનિની આકૃતિ વગેરે હોય છે પરતુ એ આકૃતિ પરથી મુનિપણુ તેમ-  
નામા માનવામા આવતુ નથી મમત્વભાવને અલ્પસ્થૂલાદિક દ્રવ્યોમા પરિત્યાગ  
જ વાસ્તવિક મુનિપણુને ઘોતક માનવામા આવેલ છે માટે મુનિ બનીને પણ  
મેઘા મુનિ નથી, પરતુ પરિગ્રહના પરિત્યાગી જ મુનિ છે

‘ પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે ’-તે મુનિજન કેવી રીતે બાલુ છે ? તેના પ્રત્યુ-  
ત્તરમા સૂત્રકાર કહે છે કે જે પરિગ્રહી છે, તે નરક-નિગોદાદિ ગતિઓમા પરિ-  
ભ્રમણરૂપ કડવા ડગને પ્રાપ્ત કરે છે, આવા પ્રકારની તીર્થકર ગણધર આદિ વિશિષ્ટ  
જ્ઞાનીઓની વાણી સાબળીને સાધુની મર્યાદાના જ્ઞાનમા કુશલ મેઘાવી મુનિ બાણી  
લે છે કે પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે, ત્યારે તે મુનિજન સચિત્ત અચિત્ત અને  
મિશ્ર પરિગ્રહના ત્યાગથી નિષ્પરિગ્રહી થાય છે તીર્થકરાદિદ્વારા સમબલેલ ધર્મ  
કેવો હોય છે ? એવી શિષ્યની ઇચ્છાસાતુ સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે  
છે-તીર્થકરાદિએ જે ધર્મને ઉપદેશ આપ્યો છે, તે ધર્મ એ છે કે શત્રુ અને

दितः—कथितः, स्तुतिनिन्दादिषु सर्वत्र समभाववर्ती निष्परिग्रहो मुनिर्मवति, उक्तम्—

“जे संक्षणेण वाहुं आलिंपइ, वासिणा वा तच्छेति ।

सधुणइ वा य णिंदति, महेसिणा तत्थ समभावो” ॥ १ ॥ इति ।

छाया—पद्मन्दनेन वाहुमुपलिम्पति, वास्या वा तक्ष्णोति ।

संस्तौति यश्च निन्दति महर्षेस्तत्र समभावः ॥ १ ॥ इति ।

तीर्थङ्गरादिने जिस धर्मका उपदेश दिया है वह धर्म यही है कि शत्रु और मित्र में मुनिजन समभावी रहें । शत्रु-मित्र में समभावसे चलने वाला मुनि ही निष्परिग्रही होता है ।

भावार्थ—शत्रु मित्र में राग द्वेष रस्यनेवालेमें निष्परिग्रहता नहीं आ सकती, कारण कि परिग्रह का छक्षण मूच्छा-ममत्व-भाव बतलाया गया है । राग होना ही ममत्वभाव है, अथवा ममत्वभावका कार्य राग है । कार्य के सद्भाव में कारण का सद्भाव माना ही जाता है । अतः राग के सद्भाव में सखिलादिपरिग्रहता रागीमें आती है । इस हेतु निष्परिग्रह होनेके लिये शत्रु-मित्रमें समभावसे प्रवर्तन करनेरूप धर्मका उपदेश तीर्थङ्गरादिक आर्य पुरुषों न दिया है ।

कहा भी है—

“जे संक्षणेण वाहुं आलिंपइ वासिणा वा तच्छेति ।

संघुणइ जो य णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो” ॥१॥ इति—

मित्रभा मुनिजन समभावी रहे. शत्रु-मित्रभा समभावधी वर्तवानाण मुनि न निष्परिग्रही होय छे

भावार्थ—शत्रु-मित्रभा रागद्वेष सखवाक्याभां निष्परिग्रहित्वा आपत्ती नथी, कारणे छे परिग्रहेण लक्षणं ममत्वभाव जत्तावेह छे, राग येषो जे ममत्वभाव छे ममत्वभावतु धर्म राग छे भावना सद्भावभा कारणेण सद्भाव भावनाभा आवे छे भाटे रागना सद्भावभां सखितादिपरिग्रहेण रागीभा आवे छे अतः कारणे निष्परिग्रह होवने भाटे शत्रु-मित्रभा समभावधी प्रवतन करवावध धर्मने उपदेश तीर्थङ्गरादिक आर्य पुरुषोको करेव छे शत्रु पण छे—

जे संक्षणेण वाहुं आलिंपइ वासिणा वा तच्छेति ।

सधुणइ जो य णिंदति महेसिणो तत्थ समभावो ॥ १ ॥ इति ।

યદ્વા-‘ આરિર્ણિ ’ ઇતિ મૂલે સપ્તમ્યર્થે તૃતીયા, તેનાઽઽર્યેષ્વિતિચ્છાયા; આર્યેષુ=દેશભાષાચારિત્રાર્યેષુ, ઉપલક્ષણાટનાર્યેષુ ચ ધર્મઃ વીતરાગેણ સમ- તયા=સમભાવેન પ્રવેદિતઃ-સમજીવોપકારાય સદ્ગતયા પ્રવર્તકત્વાત્તેષામ્, “ જહા પુણ્ણસ્સ કત્થઈ તહા તુચ્છસ્સ કત્થઈ ” ઇત્યાદિવચનાત્, અથવા- ‘ સમિયાણ ’ ઇતિ મૂલસ્ય શમિતયેતિચ્છાયા, તતશ્ચ ‘ શમિતયા શમી=ઇન્દ્રિયનો-

उनका यह कथन है कि चाहे कोई भुजाओं में चंदनका लेप करे अथवा तलवार या कुल्हाड़ी से काटे, कोई उनकी स्तुति करे या निंदा करे, तो भी महर्षि वहां पर समभाववाले ही होते हैं।

अथवा—मूल सूत्र में “ आरिर्णि ” ऐसा पद है। जिसकी संस्कृत-छाया-पहिले “ आर्यैः ” ऐसी की है। परन्तु जब “ आरिर्णि ” इस पद में सप्तमी विभक्ति के अर्थमें तृतीया विभक्ति मानेंगे तब इसकी छाया “ आर्येषु ” होगी। उस अवस्था में ऐसा इसका अर्थ होगा कि देशार्य, भाषार्य और चारित्र्यार्यों में तथा उपलक्षण से अनार्यों में भी वीतरागप्रभुने समभावसे धर्मका उपदेश दिया है। क्योंकि वीतराग प्रभुकी प्रवृत्ति समस्त जीवोंपर उपकार करने के लिये एकसी होती है। “ जहा पुण्णस्स कत्थई तहा तुच्छस्स कत्थई ” ऐसा आगम का वचन है।

‘समियाण’ इस मूल पदकी संस्कृत-छाया ‘शमितया’ होती है। इन्द्रिय और मनका जो निग्रह करता है वह शमी है, शमीका भाव

આનો ભાવ છે કે લક્ષે કોઈ બુદ્ધિઓમાં ચદનનો લેપ કરે અથવા તલવાર અથવા કુહાડીથી તેને કાપે, કોઈ એની સ્તુતિ કરે અથવા નિંદા કરે, તો પણ મહર્ષિ આમાં સમભાવ દાખવનાર જ રહે છે

અથવા—મૂળ સૂત્રમાં “ આરિર્ણિ ” એવો પદ છે. જેની સંસ્કૃત છાયા પહેલા “ આર્યૈઃ ” એમ કરી છે

પરંતુ જ્યારે ‘ આરિર્ણિ ’ આ પદમાં સપ્તમી વિલક્ષિતના અર્થમાં તૃતીયા વિલક્ષિત માનવામાં આવશે, ત્યારે તેની છાયા “ આર્યેષુ ” એવી થશે આવી અવસ્થામાં આવે એનો અર્થ થશે કે-દેશાર્ય, ભાષાર્ય અને ચારિત્ર્યાર્યોમાં, તથા ઉપલક્ષણથી અનાર્યોમાં પણ વીતરાગ પ્રભુએ સમભાવથી ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે કારણ કે વીતરાગ પ્રભુની પ્રવૃત્તિ સમસ્ત જીવો ઉપર ઉપકાર કરવા માટે એકધારી હોય છે આગમનું વચન છે કે-“ જહા પુણ્ણસ્સ કત્થઈ તહા તુચ્છસ્સ કત્થઈ ”

“ સમિયાણ ” આ મૂલની સંસ્કૃત છાયા “ શમિતયા ” થાય છે ઇન્દ્રિય અને મન ઉપર જે કાબુ મેળવે છે એ શમી છે, શમીના ભાવ શમિતા છે.

इन्द्रियोपसर्ग, तस्य मातः शमिता तथा आर्यैः=वीर्यहरैः पर्यः प्रवेदितः, भगवान् मि  
 प्याहृष्टिरूपितोपदेशस्य हेयतामुपदर्शयति 'अहित्व' इत्यादि; अत्र=अभिमान-शासनो  
 क्ते रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गे मया घातिकर्म मोक्षमुपायेन मया=येन प्रकारेण सन्धिः=  
 सन्धानं सन्धि' कर्मपरम्परा, सन्धीयते वासन्धिः=ज्ञानावरणीयादिकर्मसन्ततिः, स  
 कृत्स्नो ह्योपिता=अपनीतो दूरीकृतः, एवं=तथा अन्यत्र=दुर्तीर्यिकप्रतिपादित  
 शासने सन्धिः=पूर्वोक्तो दुर्ज्ञोपितः=दुःखेनापनीतोऽपनेतुमशक्य इत्यर्थः, मयति,  
 दोषराहित्येन वीतरागप्रतिपादित एव मोक्षमार्गं साधीयास्तु सर्वसमारम्भश्लेन  
 सन्धिभोजिना रागद्वेषाद्विहता परेण प्रतिपादितो मार्गो मोक्षाय मवतीत्यभिप्रायः,  
 शमिता है। शमिता से आर्य वीर्यहरादिकों न धर्म की प्ररूपणा की है  
 -ऐसा समझना चाहिये।

वीतराग से अन्य अवीतराग मिथ्यादृष्टिका उपदेश हेय है—छोड़ने  
 योग्य है—इस बात को प्रदर्शित करने के लिये स्वयं भगवान् कहते हैं—  
 'अहित्व'—इत्यादि। इस आर्हत-शासनमें प्रतिपादित रत्नत्रयात्मक मोक्ष-  
 मार्गमें घातिकर्मों को नाश करनेकी कामनावाले मने जिस प्रकार से  
 कर्मपरंपरा-ज्ञानावरणीयादिक कर्मों की सन्तति सम्पूर्ण रूपसे दूर की  
 है उस तरह से वह कर्मपरम्परारूप संधिका अन्याय-मिथ्यादृष्टियों द्वारा  
 प्रतिपादित सिद्धान्त में दुर्ज्ञोपित-अपनयन-दूर करना अशक्य है।  
 अर्थात् मिथ्यादृष्टियों के सिद्धान्त के सहारे यह कर्मपरम्परा नष्ट नहीं  
 हो सकती है। अभिप्राय इसका यही होता है कि दोषरहित होने से  
 वीतराग द्वारा प्रतिपादित ही मोक्षमार्ग सर्वोत्कृष्ट है, सर्वसमारम्भ-

शमित्यादी आर्य वीर्यहरादिको न धर्म की प्ररूपणा करी है येन समस्तु नोर्ध्वे

वीतरागधी अन्य अवीतराग-मिथ्यादृष्टिना उपदेश अशक्य नहीं-छोड़ना  
 योग्य है—आ वात रूपक इत्यां स्वयं भगवान् कहे है— 'अहित्व' इत्यादि  
 अ आर्हत शासनमा प्रतिपादित रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गमा घातिकर्मिना नाश  
 करवानी कामनावाणा मे ने प्रारथी कर्मपरंपरा-ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनी सन्तति  
 स पूर्ण रूपधी दूर करेक है ते वीते ये कर्मपरंपराउपसंधीना अन्यत्र-मिथ्या  
 दृष्टिनाशास प्रतिपादित सिद्धान्तमा दुर्ज्ञोपित-दूर करतुं अशक्य है अर्थात् मिथ्या  
 दृष्टिनाशास सिद्धान्तने सहारेया कर्म परंपरा दूर मयं अशक्यर नहीं अन्विष्टय आने  
 के है—दोषरहित मनाधी वीतरागद्वारा प्रतिपादित न मोक्षमार्ग सर्वोत्कृष्ट है

તસ્માત્કારણાત્ વ્રવીમિ=કથયામિ, યત્ એતદાર્હતે માર્ગે સમ્યગ્વ્યવસ્થિતેન મયા કર્માપનીતમ્ તતો વ્રવીમિ અન્યોઽપિ સયતો વીર્યસયમાચરણે તપસિ વા સામર્થ્યે નો નિહન્યાત્=નો ગોપયેત્ અનિગૂહિતવલવીર્યેણ મુનિના ભાવ્યમિતિ ભાવ, ડતિ સુધર્મા સ્વામી સ્વશિષ્યાય વીરમોક્તં વ્રવીતીત્યાગયઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

અપિ ચ સ કથમ્ભૂતો ભવેત્? ડત્યાહ—‘ જે પુવ્વુદ્ઘાઈ ’ ડત્યાદિ ।

મૂલમ્—જે પુવ્વુદ્ઘાઈ નો પચ્છાનિવાઈ, જે પુવ્વુદ્ઘાઈ પચ્છાનિવાઈ, જે નો પુવ્વુદ્ઘાઈ નો પચ્છાનિવાઈ, સેઽવિ તારિસણ સિયા, જે પરિજ્ઞાય લોગમણુસિસયા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—યઃ પૂર્વોત્થાયી નો પશ્ચાન્નિપાતી, યઃ પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી, યો નો પૂર્વોત્થાયી નો પશ્ચાન્નિપાતી, સોઽપિ તાદૃશઃ સ્યાત્, યે પરિજ્ઞાય લોકમન્વાશ્રિતાઃ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સ્વભાવવાલે સચિત્તભોજન કરનેવાલે ઓર રાગ ંવં ઢેષમેં આગ્રહવાલે અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગ દ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષપ્રાપ્તિ કે લિયે યોગ્ય નહીં હૈ । ડસી કારણ સે મૈ કહતા હૂં કિ ડસ આરહત માર્ગમેં અચ્છી તરહસે રહતે હુણ મૈને કર્મોંકા નાશ કિયા હૈ, તો ઓર અન્ય સંયતોં સે ખી મેરા યહી કહના હૈ કિ વે ખી સયમ કે આચરણમેં અથવા તપકી આરાધનામેં અપની શક્તિ કો નહીં હુપાવેં । જો અપને બલ ઓર વીર્ય કો હુપાતા હૈ વહ સન્ચા મુનિ નહીં હૈ । ડસ હેતુ સચ્ચે મુનિ હોને કે લિયે અપને બલ વીર્ય કો નહીં હુપાના ચાહિયે, તખી જા કર વહ સચ્ચા મુનિ હો સકતા હૈ । ડસ પ્રકાર સુધર્માસ્વામીજી વીર ભગવાનદ્વારા પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તકો અપને શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીકે પ્રતિ કહ રહે હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સર્વસમારભસ્વભાવવાળા અને સચિત્ત ભોજન કરવાવાળા તેમજ રાગ અને ઢેષમા આગ્રહ રાખવાવાળા અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય નથી, આ કારણે હું કહું છું કે આ આરહંત માર્ગમા રહીને એ કર્મોના નાશ કરેલ છે, અન્યને પણ માફ આ કહેવું છે કે તેઓ પણ સચમના આચરણમા અથવા તપની આરાધનામા પોતાની શક્તિને ન હુપાવે એ પોતાનું બળ અને વીર્ય હુપાવે છે એ સાચા મુનિ નથી આથી સાચા મુનિ થવા માટે પોતાના બળ વીર્યને ન હુપાવવું જોઈએ આથી જ એ સાચા મુનિ બની શકશે આ પ્રમાણે સુધર્માસ્વામીએ વીર ભગવાન પાસેથી બાણેલ સિદ્ધાન્ત પોતાના શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીને કહેલ છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥



टीका—'य' इत्यादि, य=विचारितसंसारसारो परमावृष्टानपरायमः पूर्वोत्पायी पूर्व-चारित्र्यग्रहणावसरे चारित्र्याचरणेनोत्पातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्पायी, नोपप्राप्तिपाती-पश्चात्-चारित्र्यग्रहणानन्तरं निपतितुं शीलं यस्य नास्ति स नोपप्राप्तिपाती भवति । सिंहवन्निष्कान्तः सिंह इव एकान्तविहरणशीलः गणधरादि तुल्य, इति प्रथमो मङ्गः, स चात्युत्तमः ।

तथा—मुनिजनको कैसा होना चाहिये ? इस बात को प्रकट करने के लिये कहते हैं—“जे पुम्बुडाई” इत्यादि ।

‘पूर्व—चारित्र्यग्रहणावसरे चारित्र्याचरणेन उत्पातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्पायी’-चारित्र्य ग्रहण करने के अवसर में चारित्र्य के आचरण से अपनी वृद्धि करने का जिसका स्वभाव है वह पूर्वोत्पायी है । अपौरु-चारित्र्यको अंगीकार कर के जो अपने चारित्र्यमय आचरण से अपने जीवनकी उत्पत्ति करता है उसका नाम पूर्वोत्पायी है । वह पूर्वोत्पायी “नोपप्राप्तिपाती” चारित्र्य ग्रहण के अनन्तर अपने गृहीत चारित्र्य से कभी पतित नहीं होता है क्योंकि इसका स्वभाव गृहीत चारित्र्य से निपतनशील नहीं होता है, प्रत्युत इसके परिणाम चारित्र्य ग्रहण के अवसरसे लगा कर सदा वर्धमान रहते हैं । इसीलिये वह पश्चात्तिपाती नहीं होता है । सिंह की तरह एकान्त विहरणशील होने से यह गणधरादि के समान माना गया है । यह प्रथम मंग है । इस मंगबाला मुनि अति उत्तम है ।

इति—मुनिजनने हेतुं यतुं केधजे ? आ वातने प्रभट कस्त्य कहे छे—  
“जे पुम्बुडाई” इत्यादि.

पूर्व—चारित्र्य-ग्रहणावसरे चारित्र्याचरणेन उत्पातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्पायी-चारित्र्य अदक्ष कस्वाना समये चारित्र्य आचरणशीलोत्पत्तानी वृद्धि कस्वानो जेने स्वभाव छे ते पूर्वोत्पायी छे केटवे-चारित्र्येनो अजीकार करी के पाताना चारित्र्यमय आवस्थुशी पाताना उत्पन्नगी उत्पत्ति करे छे जेनु नाम पूर्वोत्पायी छे जे पूर्वोत्पायी “नोपप्राप्तिपाती” चारित्र्य अदक्ष कभी पछी पोते जेने स्वकार करे छे जेनावी अद्वित यतो नवी. जेम के जेने स्वभाव अदक्ष करेला चारित्र्य पातनमां जल अ मज्जम जनेली जेय छे जेथी जे चारित्र्य अदक्ष कभी पछीगी उत्पत्तिपर जेमां अ स्त जनी रहे छे जेथी ते “पश्चात्तिपाती” यतो नवी. सिद्धनी माके के जेकत विहरणशील जेनावी तेने जलधरादि समान मानवामां आवेल छे आ प्रथम मंग छे. आ मंग पाण्य मुनि अति उत्तम छे

દ્વિતીયમદ્વમાહ—‘ય’ ઇત્યાદિ, યઃ કશ્ચિત્ પૂર્વોત્થાયી ચારિત્રં ગૃહીત્વા પશ્ચાન્નિપાતી=ચારિત્રાન્તરાયોદયાત્ પશ્ચાન્નિપતનશીલઃ । આચારાત્પતિતઃ શૈલકઃ, લિઙ્ગાત્પતિતો નન્દિષેણકુમારઃ, દર્શનતઃ પતિતો જમાલિઃ, આચારતો લિઙ્ગતશ્ચ પતિતઃ પશ્ચાત્કૃતઃ, કશ્ચિન્નિમિરપિ પતિતો ભવતીત્યભિપ્રાયઃ, અય ચ દ્વિતીયો મદ્ગઃ ।

યો નો પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી—ઇતિ તૃતીયમદ્વસ્યાભાવાદપ્રતિપાદનં મૂલે, ઉચ્ચિષ્ટતો દિ નિપાતો જાયતે, ઉત્થાનપ્રતિષેધે ચ કુતસ્તરા નિપાતચિન્તેતિ વોધ્યમ્ ।

જો પૂર્વોત્થાયી તો હૈ; પરન્તુ ચારિત્ર ગ્રહણ કર કે ખી જો અપને ગૃહીત ચારિત્ર સે, પીછે ચારિત્ર-અન્તરાય કે ઉદય સે નિપતનશીલ હૈ-વહ ‘પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી’ એસા દ્વિતીય મંગ હૈ । જૈસે આચાર સે પતિત શૈલક રાજક્ર્ષિ હુણ, લિઙ્ગ સે પતિત નન્દિષેણ હુણ, દર્શન સે પતિત જમાલિ હુણ । આચાર ઓર લિઙ્ગ ઇન દોનોં સે પતિત પશ્ચાત્કૃત હૈ; જૈસે કણ્ડરીકાદિ । કોઈ ૨ આચાર, લિઙ્ગ ઓર દર્શન ઇન તીનોં સે ખી પતિત હુણ હૈ ।

જો પૂર્વોત્થાયી તો નહીં હૈ પરન્તુ પશ્ચાન્નિપાતી હૈ । યહ તૃતીય મંગ હૈ । પરન્તુ ઇસ મંગકી સંભાવના હી નહીં હો સકતી હૈ; કારણ કિ જો પૂર્વોત્થાયી હોગા ડસી મેં નિપાત કા વિચાર લાગૂ હોતા હૈ । જબ વહાં ઉત્થાન કા હી પ્રતિષેધ હૈ તો ફિર નિપાત કી વિચારણા વહાં કૈસે હો સકતી હૈ ? અર્થાત્-ચારિત્ર જિસને ગ્રહણ કિયા હૈ ડસી મેં પીછે યહ ઉત્થાનશીલ હૈ યા અનુત્થાનશીલ હૈ—ઇસ પ્રકાર કા વિચાર કિયા જા

જે પૂર્વોત્થાયી તો છે પરતુ ચારિત્ર ગ્રહણ કરવા પછી પોતે ગ્રહણ કરેલ ચારિત્રથી આગળ વધી શકતો નથી અને અન્તરાયના ઉદયના કારણે નિપતન શીલ છે-તે “ પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી ” એમ દ્વિતીય ભગ છે, જેમ કે આચારથી પતિત શૈલક રાજક્ર્ષિ થયા, લિંગથી પતિત નન્દિષેણ થયા, દર્શનથી પતિત જમાલી થયા, આચાર અને લિંગ, આ અનેથી પતિત પશ્ચાત્કૃત છે, જેમ-કન્ડરીક આદિ કોઈ કોઈ આચાર, લિંગ અને દર્શન આ ત્રણેથી પણ પતિત થયેલ છે

જે પૂર્વોત્થાયી તો નથી પરતુ પશ્ચાન્નિપાતી છે આ તૃતીય ભગ છે પરતુ આ ભગની સંભાવના જ નથી, કારણ કે જે પૂર્વોત્થાયી હોય છે એમા જ નિપાતનો વિચાર લાગુ થાય છે બન્યારે ત્યા ઉત્થાનનો જ પ્રતિષેધ છે ત્યા પછી નિપાત અને અનિપાતની વિચારણા જ કઈ રીતે થઈ શકે ? અર્થાત્-ચારિત્ર જેણે જ કરેલ છે તેના વિષયમા જ એ આગળ વધી ગયેલ છે કે

चतुर्थमाह—यः गृहस्थस्य नोपूर्वोत्पायी विरसेरसम्नापत्, अत एव नो-  
पमाभिपाती, उचिष्ठत एव निपातो नानुचिष्ठतो मक्तीत्याश्रयः । सोऽपि=इष्टि  
शाक्यादिरपि शास्त्र.=चतुर्थमङ्गान्तर्गतः सावधानरक्षतया नोपूर्वोत्पायी, यत एव  
नोपूर्वोत्पायी तत एव नापमाभिपाती, गृहस्थसदृशः स्यात्, उभयोरप्यसदृशास्र-  
दारत्वात् । यऽप्यसमारम्भिणस्तेऽपि शास्त्रा एवेत्याह—'येऽपी'त्यादि, येऽपि

सकता है । परन्तु जय मूलमें ही यह चीज उसके पास नहीं है तब उस  
विषय को लेकर उत्थान और पतन का विचार कैसे हो सकता है ?  
इसीलिये सूत्रकारने सूत्रमें इस तृतीय अंगका प्रतिपादन नहीं किया है ।

जो गृहस्थ के समान हैं, वे न पूर्वोत्पायी हैं और न पश्चात्निपाती  
हैं । पूर्वोत्पायी इसलिये नहीं हैं कि उनमें चारित्र्यका सम्भाव नहीं है, और  
इसीलिये वे पश्चात्निपाती भी नहीं हैं । चारित्र्य के सम्भावबाले में ही  
पश्चात्निपातिस्य संभवित होता है, इसके अभावबाले में नहीं । ऐसे  
वर्णिकशाक्यादिक हैं । ये चतुर्थमङ्ग के अन्तर्गत ही हैं । कारण कि ये  
सावध व्यापारों में प्रवृत्तिशील होते हैं; अतः इनका आचार सावध  
विशिष्ट होने से इनमें विरति नहीं है । विरति के अभाव  
से ये पूर्वोत्पायी नहीं हैं । जय ये पूर्वोत्पायी नहीं हैं तो पश्चात्निपाती  
भी नहीं हैं । अतः ये गृहस्थ ही हैं । क्यों कि जिन प्रकार गृहस्थजन  
कर्मों के आश्रय के द्वार से असंपृक्त होते हैं, अर्थात् अविरति आदि

कटकी पदक से जेवो विचार करवाने रहे से परतु ज्ञान मूलभां से जेनी  
पदके से भी नही त्वां कृतवान जने पतनने विचार से कर्षीते कर्ष शके  
अथ से कश्चे सूत्रकारे सूत्रभा ज्ञा तृतीय अंगने स्वीकार करैत नही

जे गृहस्थनी रीते रहेवाण्य से ते न तो पूर्वोत्पायी से ते न तो पश्चा-  
त्निपाती से पूर्वोत्पायी अथ माटे नही से जेभने चरित्रने अज्ञाव नही ज्ञा  
अथ कश्चे पश्चात्-निपाती पक्ष नही चरित्रअज्ञाववाणभां से पश्चात्-निपा-  
तिस संभवित होय से ज्ञान अज्ञाववाणभां नही जेवा इही शाक्यादिक  
से जे चतुर्थमङ्गना अन्तर्गतहोय से कश्चे से जे सावध व्यापारभां प्रवृत्ति-  
शील रहेवा होय से जेकहे जेभने आचार सावधविशिष्ट होवाधी जेनाभा  
विरतिरूपता नही विरतिरूपतना अभावधी जे पूर्वोत्पायी नही ज्यारे जे  
पूर्वोत्पायी अथ नही तो पश्चात्निपाती पक्ष नही, ज्ञानी जे गृहस्थ अथ से, कश्चे से  
गृहस्थजन कर्मना आश्रयना द्वारधी असंपृक्त होय से अर्थात्

द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिशाक्यादयः लोकम्=अचिरतलोकं परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया  
 ज्ञात्वा परिहृत्य च पुनस्तमेव लोकं सावद्यव्यापारिणम् अन्वाश्रिताः=तादृशलोक-  
 स्यैवानुसरण कृतवन्तः । पचनपाचनादिव्यापारेभ्यः पूर्वमुपरम्य पश्चाच्चारित्रान्तरायो  
 दयात्पुनरपि तमेव समारम्भवन्त लोकमनुसरन्तः पाचनानुमोदनाभ्या गृहस्थसदृशा  
 एव भवन्तीत्याशयः ॥ सू० २ ॥

कर्मों के आनेके द्वार हैं, गृहस्थजनका कर्मों के आगमन का यह द्वार बंद  
 नहीं होता है उसी प्रकार अचिरति आदि से युक्त होने के कारणसे  
 दण्डि-शाक्यादिकों के भी कर्मों के आगमनके द्वार खुले ही रहते हैं । ये  
 कर्मों के आस्रव से रहित उस अवस्था में नहीं हो सकते हैं । इसी तरह  
 जो असमारभी तो हैं, परन्तु पचन-पाचनादि कार्यों की अनुमोदनादि करते  
 हैं वे भी गृहस्थतुल्य ही हैं, और चतुर्थ अंगमें उनका अंतर्भाव होता है, यह  
 सूत्रकार प्रकट करते हैं—द्रव्यलिङ्गी मुनि दण्डिशाक्यादिक बगैरह ज्ञपरि-  
 ज्ञासे अचिरत लोक को जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे उसका परिहार  
 कर फिर उसी सावद्य व्यापारी लोकका जो अनुसरण करते देखे जाते हैं,  
 अर्थात्—ये प्रथम पचन-पाचनादि व्यापारोंसे अपने को निवृत्त करके भी  
 पश्चात् चारित्र-अन्तरायके उदयसे उसी समारम्भशील लोकका अनुसरण  
 करते हुए पाचन और अनुमोदन से गृहस्थतुल्य ही हो जाते हैं ॥ सू० २ ॥

अचिरति आदि कर्मोंने आववातु से द्वार से गृहस्थजनने कर्मोंना आगमनतु  
 आ द्वार भ ध यतुं नधी से प्रकारे अचिरति आदिधी युक्त होवाना कारणधी  
 दडी शाक्यादिकोंने पञ्च कर्मोंना आगमनना द्वार खुला न रहे से से कर्मोंना  
 आस्रवधी रहित ते अवस्थामा भनी शकता नधी आ रीते से असमारभी तो  
 से, परन्तु पचन-पाचनादि कार्योंनी अनुमोदना करे से, से पञ्च गृहस्थतुल्य न  
 से आधी चतुर्थ अंगमा सेमने समावेश थाय से आम सूत्रकार प्रकट करे  
 से. आधी द्रव्यलिङ्गी मुनि दडी-शाक्यादिके विगेरे ज्ञ-परिज्ञाधी अचिरत  
 लोकोंने ज्ञाने अने प्रत्याख्यान-परिज्ञाधी तेने परिहार करीने करी-ते सावद्य  
 व्यापारी लोकतु न ते अनुसरण करता होभवामा आवे से, अर्थात्—ते पचन पाच-  
 नादिसे व्यापारधी पोते निवृत्त होवा छता पञ्च पाछणधी चारित्र-अन्तरायना  
 उदयधी ते समारम्भशील लोकतु अनुसरण करता करता पाचन अने अनुमो-  
 दनधी गृहस्थतुल्य भनी रहे से ॥ सू० २ ॥

सर्वमिदं न मया स्वबुद्ध्या प्रोक्तमित्याह—‘ पर्य ’ इत्यादि ।

मूलम्—पर्य नियाय मुणिणा पवेइय, इह आणाकखी पडिप अणिहे, पुब्बावरराय जयमाणे, सया सील सपेहाप सुणिया भवे अकामे अइइहे, इमेण चेष जुज्झाहि, किं ते जुज्जेण वज्जओ ॥ सू० ३ ॥

प्राया—एतश्चास्वा मुनिना प्रवेदितम्, इहाऽऽहत्काही पण्डितोऽस्तिहः, पू वापरराय यतमान, सदा शीलं संप्रेक्ष्य भुत्वा मवेदकामोऽग्रच्छः, अमेन चैव बुध्यन्, किते पुदेन बाह्वतः ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ एत ’-दित्यादि, मुनिना = तीर्थङ्करेण एतत् = पूर्वोक्तम् उत्याननिपतनादिकं वक्ष्यमाणं वा इत्या=विमम्केवलाभाकेन बुद्ध्या प्रवेदितम्=ममिहितम् ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे नहीं कहा है—ऐसा कहते हैं—‘ पर्य ’ इत्यादि तीर्थङ्कर भगवान् ने यह पूर्वोक्त उत्यान निपतनादिक अथवा वक्ष्यमाण विषय अपने निर्मल केवलज्ञानरूपी आलोक से जान कर ही कहा है ।

भावार्थ—सूत्रकार पूर्वोक्त कथन में अथवा आगे कहे जानेवाले विषयमें अपनी कल्पना से कथनका निषेध करते हुए उसमें वे तीर्थङ्कर-प्रणीतता प्रकट करते हैं । यह इसलिये प्रकट की गई है कि “ वक्तुः प्रामाण्यात् वचसि प्रामाण्यं ” वक्ता की प्रमाणता से ही वचनमें प्रमाणता आती है । अन्यथा रष्या-पुरुषादिक ( मतकरो फिरते बजारू ) की तरह उसमें अप्रमाणता होनेसे यह अय्याह हो जाता है ।

आ अथपि मे मारी बुद्धिधी कहेल नधी जेम कहे छे—“ पर्य ” इत्यादि तीर्थङ्कर भगवान् ने आ पूर्वोक्त उत्यान निपतनादिक अने वक्ष्यमाण विषय चेताना निमण केवलज्ञानरूपी आलोकधी लक्ष्मीने कहु छे

भावार्थ—सूत्रकार पूर्वोक्त कथनमें अने आगण कहेवाला विषयमा चेतानी कल्पनाधी कथननो निषेध करीने तेमां ते तीर्थङ्कर प्रणीतता प्रकट करे छे आ जे माटे प्रकट करे छे के “ वक्तुः प्रामाण्यात् वचसि प्रामाण्यम् ” जेटवे वक्ष्यानी प्रमाणताधी व वचनमा प्रमाणता आवे छे ते सिवाय रष्या पुरुषादिक ( मतकरो इत्या आदिक ) नी माइठ तेमां अप्रमाणता होवधी ते अय्याह अनी अय छे

तदेवाह—‘इहे’—त्यादि. इह=अस्मिन् मौनीन्द्रप्रवचने व्यवस्थितः सन्  
 “आज्ञाकाङ्क्षी” आज्ञा=तीर्थकृदुपदेशमाकाङ्क्षितुं शील यस्यास्ति स आज्ञाऽऽकाङ्क्षी  
 =अर्हच्छासनोक्तानुष्ठायी, अस्निहः=मातापित्रादौ शब्दादिविषये शरीरादौ वा  
 स्नेहवर्जितः पण्डितः=तीर्थङ्कराज्ञापरिज्ञानकुशलः पापभीरुर्भवति, मातापितृपुत्रकल-  
 त्रादिस्नेहवर्जित शकटरक्षार्थमक्षे तैलदानवदेहस्थित्यर्थमेवाहारमभ्रन् रागद्वेषशून्य-  
 स्तीर्थङ्कराज्ञाराधको मुनिः पण्डितो भवतीति तात्पर्यम् । अपि च—‘पूर्वे’त्यादि, पूर्वा-

“इहेत्यादि” पदों से तीर्थङ्कर-प्रणीत वक्ष्यमाण विषय को प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—इस मौनीन्द्र ( वीतराग ) प्रवचनमें व्यवस्थित मुनि को तीर्थङ्कर भगवानने जो कुछ भी मुनिधर्मके विषयमें अपने उपदेशमें कहा है उसका अनुष्ठान करना चाहिये। “आज्ञां-तीर्थकृदुपदेशम् आकाङ्क्षितुं शीलं यस्यास्ति स आज्ञाकाङ्क्षी” क्योंकि यह आज्ञाकाङ्क्षी है—तीर्थङ्कर भगवान् के उपदेशकी आकाङ्क्षा (वांछा) करने का जिसका स्वभाव होता है वही आज्ञाकाङ्क्षी है । अर्थात् जो जिसके शासनमें रहता है वह उसके शासनोक्त नियमों का अनुष्ठापक होता है । स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाला जिस प्रकार उस शासन से बहिर्भूत समझा जाता है उसी प्रकार जिनप्रणीत मुनिशासनको छोड़कर अपनी इच्छानुसार चलनेवाला मुनि भी शासनसे बहिर्भूत होता हुआ आज्ञाकाङ्क्षी ( आज्ञा-आराधक ) नहीं माना जाता है ।

आज्ञाकाङ्क्षी होने के लिये उसे मुनिधर्मके इन नियमों का पालन आवश्यक है—अस्निहः—अपने माता और पिता आदिमें, शब्दादिक

“इह” इत्यादि पहोधी तीर्थ करे कहेल वक्ष्यमाण विषयने प्रकट करता सूत्रकार कहे छे—आ वीतराग प्रवचनमा व्यवस्थित मुनिने तीर्थ कर भगवाने के कर्ष पण्ड मुनिधर्मना विषयमा पोताना उपदेशमा कछु छे तेनु अनुष्ठान करणु नेधये करणु के ते “आज्ञाकाङ्क्षी-आज्ञाकाङ्क्षी” आज्ञाने अनुसरनार छे तीर्थ कर भगवानना उपदेशनी आकाङ्क्षा करवाने जेना स्वभाव छे ते आज्ञाकाङ्क्षी छे अर्थात् जे जेना शासनमा रहे छे ते तेना शासनधर्मना पालक भने छे स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करवावणा जे प्रकारे ते शासनधी विभुष गणुवामा आवे छे ते प्रकारे एतप्रणीत मुनिशासनधी विभुष पोतानी इच्छानुसार पालवावणा मुनि पण्ड शासनधी बहिर्भूत जनीने आज्ञाना आराधक जनता नधी

आज्ञाकाङ्क्षी थवा माटे तेणु मुनिधर्मना जेवा नियमोनु पालन करणु आवश्यक छे—अस्निहः—पोताना माता पिता आदिमा, शब्दादिक विषयोमा, अने

विषयों में, अथवा शरीरादिकों में स्नेह-ममता-रहित होना । पण्डितः- तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा समझने में कुशलमति होना ।

भावार्थः—नियमों का अच्छी तरह से परिशीलन करनेवाला और उनका द्रव्य, क्षेत्र कालादि की व्यवस्था के अनुसार पालन करनेवाला व्यक्ति जिस प्रकार अभ्यन्त्रालु न हो कर अपने प्रत्येक कार्यको उप योगपूर्वक करता है और तद्वजन्य सुफल से लोक में प्रशंसनीय एवं कुशलमति माना जाता है उसी प्रकार से जो मुनि धर्मके प्रत्येक नियमोंका अच्छी तरहसे परिशीलन कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे व्यवस्था नुसार उनका पालन करता है—उनका उचित रीतिसे हार्दिक लगन से सेवन करता है वह मेधावी मुनि कभी भी अपने कर्तव्यपथसे विचलित नहीं होता है, और मुनिधर्मपालनजन्य कर्मोंकी अनन्तगुणी निर्जरारूप सुफल से द्योमित होता हुआ क्रमशः मुक्तिका लाभ करता है । इसलिये आवश्यकता है कि मुनिजन मौनीन्द्र ( धीतराग ) प्रबचनमें स्थित हो कर उसके प्रत्येक नियमों और उपनियमों के सच्चे ज्ञाता बनें । मुनिधर्ममें दक्ष मुनि पापभीरु होता है । माता-पितादिकमें स्नेह रित्त मुनि शकट-गाड़ीकी रक्षा के लिये अक्ष ( घुरी ) में तैलदान की तरह देहकी स्थिति के निमित्त ही विना किसी राग-द्वेषके आहार करता हुआ तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा का पालन वन मुनिधर्मका सच्चा धारायक होता है ।

शरीर आदिकमा स्नेह ममता रहित वपु पण्डित-अटवै तीर्थं कर प्रभुनी आज्ञाम् कुशलता प्राप्त कर्षी ।

भावार्थः—निधमने सारी रीते पाणवावाणी जाने तेने इन्व क्षेत्र काल आदिनी व्यवस्था अनुसार पालन कर्षवावाणी वञ्चित केषी रीते अभ्यन्त्रालु न जनीने पोताना प्रत्येक कार्यने उपयोगपूर्वक करे छे जाने तेधी लोकमा प्रशंसनीय तेमज कुशल मन्ताव छे आ व रीते के मुनिधर्मना प्रत्येक निधमने सारी रीते कुशलतापूर्वक पाणे छे इन्व क्षेत्र काल जाने वापधी व्यवस्थानुसार पालन करे छे तेनो मेधावी मुनि कर्म पथ वजते पोताना कर्तव्य-पथधी वञ्चित घते नधी जाने मुनि धर्म पालनजन्य कर्मोनी अनन्तगुणी निर्जरारूप सुफलधी श्रेणित जनीने कर्मधी मुक्तिने लाभ करे छे आ काले आवश्यक छे के मुनि जन धीतराग प्रवचनमा स्थित जनीने तेन प्रत्येक निधमं जाने उपनिधमोने साथे आवश्यक जाने मुनिधर्म मा इम मुनि पापभीरु होव छे मातापितादिकमा स्नेहरहित मुनि गाडीना भरतमा पुराता तेहनी भाईक देहनी स्थिति भाटे व

“महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।

त्रिदण्डविरतित्वं च, कषायाणां च निग्रहः” ॥ १ ॥

तच्च शीलमिति ब्रुवे” तत्र क्षणमपि नो प्रमादयेदिति भावः । शीलतो गुणमाह—श्रुत्वेत्यादि, यः श्रुत्वा=शीलपरिज्ञान तदनुपालनफलं तद्विपरीत कर्तृणा नरकनिगोदादिपरिभ्रमणं च गुरुसकाशादागमाद्वाऽऽकर्ण्य, अकामः=इच्छादि धना करे । ५ महाव्रतों के साधनभूत ३ गुप्तिका पालन और पांच इन्द्रिय और एक मनका दमन करना, कषायों का निग्रह करना ये सब बातें शील के ही अन्तर्गत हैं । मुनिजन को “शील का पालन करना चाहिये” इस की वक्तव्यतामें इन समस्त बातों का अवश्य पालन उचित है । इन सबका पालन मुनिधर्म से संबन्ध रखता है । कहा भी है—

“महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।

त्रिदण्डविरतित्वं च, कषायाणां च निग्रहः” ॥ १ ॥

अर्थात्—महाव्रतादिकों का आराधन शीलरूप से कहा गया है, ऐसा समझ कर इनके पालने में एक क्षण भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । ‘श्रुत्वा’—इत्यादि पदोंद्वारा शीलवानके गुणको सूत्रकार कहते हैं—

जो मुनि शीलके परिज्ञान, एवं उसके पालनजन्य फलको तथा शीलके सेवन से रहित मानवों के नरकनिगोदादिमें परिभ्रमणको गुरु से अथवा आगम से सुन कर इच्छादिकामसे रहित हो जाता है वह

आधारभूत त्रयु शुभितु पालन अने पात्र धन्द्रिय अने ओक भन्तुदमन कर्षु, कषायेनो निग्रह करयो ओ सधणी वातो शीलनी अन्तर्गत छे “मुनिजनने शीलनु पालन करु नोर्धञ्जे” आ प्रकारनी शीतोभा आ सधणी वातेतु अवश्य पालन करु नोर्धञ्जे आ अधातु पालन मुनिधर्म साथे सधध राजे छे छल्लु पल्लु छे—

“महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।

त्रिदण्ड-विरतित्वं च, कषायाणां च निग्रहः” ॥ १ ॥

अर्थात् महाव्रतादिकोतु आराधन शीलरूपथी कडेल छे, जेतु समष्टने तेना पालनभा ओक क्षणने पल्लु प्रमाद करयो नोर्धञ्जे नही

शीलवानना शुभने सूत्रकार कडे छे—‘श्रुत्वा’ इत्यादि

जे मुनि शीलना परिज्ञानने, अने तेना पालनजन्य ज्ञानने, तथा शीलना सेवनथी रहित मानवना नरकनिगोदादिभा परिभ्रमणने शुरु अने आगमथी साधणीने इच्छादि कामथी रहित गनी जय छे ते माथा, क्रोध अने दुष्कृथी



कामवर्जित, एवम् अमलक्या=अविषयमाना अमलक्या=माया क्रोपस्तृष्णा वाऽस्य सोऽमलक्यो मवेत् काममलक्यानिर्निपन्नेन मोहनीयादयोऽपि निरिष्यते; तन्निपेधा-  
देन श्रीलसम्पन्नो मवेन्नान्यपत्यभिप्राय, अयमत्र सार-धर्मभरणानन्तरं कामम-  
लक्यादिरहितो मवेदिति प्रतिपादनेनाचरगुणानां ग्रहणसुफलक्षणत्वेन मूलगुणग्रहणं च  
सिद्धम् । तद्वर्धमानादिमहाव्रतधारी मवेदिति ।

ननु चानिहृतयस्वीर्यस्य श्रीलक्ष्मिना मन्वदुपदञ्चानुष्ठापिनो मम साम्प्रतमपि  
न निस्त्रिभुवनापनया जाताऽस्तदुपायं मर्हं ब्रूहि यत्र श्रीं सकलकर्मसयो मवेत् ।

क्रोध, माया अथवा तृष्णा से भी रहित हो जाता है । काम और ईर्ष्या  
-माया, क्रोध, अथवा तृष्णाके निपेध से मोहनीयके उदयका  
भी बड़ा निपेध हुआ समझना चाहिये, क्यों कि उसके निपेधसे ही  
वह शीलसंपन्न होता है; अन्यथा नहीं ।

भावार्थ—धर्मभ्रषण के बाद “काम और ईर्ष्या से बह रहित होवे”  
इस प्रकार के प्रतिपादन से उत्तरगुणोंका ग्रहण मिट हो जाता है, साथ  
में उपलक्षण से मूल गुणोंका भी । इस से यह बात मिट होती है कि वह  
अहिंसादिक-महाव्रतधारी होवे । “अणेण चैव जुज्झादि किं ते जुज्झेण  
पन्नजो” इस श्लोक सूत्राश का सुलामा करने के लिये टीकाकार इमका  
मर्थ यों करते हैं—जिह्वय गुरुदेवसे अरज करता है—“मैं अपने पल और  
वीर्यको नहीं छिपा कर शीलके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होना हुआ आपके  
उपदेशानुसार प्रवृत्ति कर रहा हूँ, फिर भी मेरे ममत्त्व कर्मोंका विनाश  
मभी तक भी नहीं हुआ, अतः उमका उपाय आप कहें कि जिससे मेरे  
समस्त कर्म शीघ्र नष्ट हो जायें, मुझे आपके वचनों में पूर्ण विश्वास है,

पञ्च स्वीत यथं वायु उ वायु, माया क्रोध अने तृष्णाया निपेधभी मोहनीयता  
उदयने पञ्च त्वा निपेध कथे समन्वा नेधञ्जे, इत्यु के तेन निपेधभी  
ए श्रीलसम्पन्न अने उ जीवन्भी नर्हति, तात्पर्य के-धमना अथवा पञ्च “काम  
अने मायाधी पर अने अप्रकार्त्वा प्रतिपादनधी उत्तरगुणानु ग्रहण सिद्ध  
याव उ आये। माय उपलक्षणभी भूगुणने। पञ्च अदण् वाय उ आभी के  
एत सिद्ध वाय उ अहिंसादिक-महाव्रतधारी अने।

“अणेण चैव जुज्झादि किं ते जुज्झेण पन्नजो आ गेव सुवासने सुवासने  
इत्या भा? टीकाकार अने अथ अय प्रकारे करे उ—

शिव्य जुहने अरथ करे उ—“माई पोवानु अग अने वीचने नहि सुधावीने  
शीलना अनुष्ठानमा प्रवृत्ति इत्ये तु आपना उपदेश अनुसार प्रवृत्ति इईं पुं  
एतय भास समस्त कर्मिना विनाश दञ्च मुभी यथा नभी, भा? आप अने।  
उपाय अने अन्वये के लेगी भास समस्त कर्म शीघ्र नाश पथे, अने आपना

पररात्र=रात्रेः पूर्वापरौ भागौ पूर्वापररात्र, पूर्वरत्रस्य यामद्वयात्मकस्य मध्ये प्रथमो यामः, एवमपररात्रस्य पश्चिमो यामः, तत्र प्रहरद्वये जागरितः सन् यतमानः=प्रतिक्रमणस्वाध्यायध्यानादिक्रममुत्तिष्ठन्, उपलक्षणान्मध्यवर्तिन्या रात्रेर्यामद्वये यथाविधि ज्ञयानः, रात्रौ यत्नकथनेन दिनेऽपि तत्कथन स्पष्टमेव । शक्तिसत्त्वे स्थविरकल्पिका मध्यवर्तियाममध्येऽपि जाग्रति । जिनकल्पिकाश्चैकं प्रहर स्वपन्ति, सप्तसु प्रहरेषु जाग्रति । एवं निष्क्रमणप्रवेशादौ मुनिर्दिवसे चक्षुर्वि

पूर्वापररात्रं यतमानः—रात्रिके पूर्व और अपर भागों का नाम पूर्वापररात्र है । रात्रि के ४ प्रहर होते हैं । एक प्रहर रात्रि के चौथे हिस्से को कहते हैं । पूर्वरत्र के दो प्रहरों में से प्रथम प्रहर में, पश्चिमरात्र के दो प्रहरों में से अन्तिम प्रहर में ( अर्थात् रात्रिके ४ प्रहरों में से पहले चौथे प्रहरों में ) जाग्रत रह कर प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और ध्यानादिक करना । बाकी के दूसरे तीसरे प्रहरों में यथाविधि निद्रा लेना । “ यतमानः ” पदसे दिन में भी यथाविधि स्वाध्यायादिक का करना स्पष्ट सूचित होता है । जब रात्रि में भी प्रतिक्रमणादिककी विधि प्रकट की गई है तो दिन में भी यथावसर स्वाध्याय करना यह बात स्वतः स्पष्ट है । शक्ति के सद्भाव में स्थविरकल्पी मुनि रात्रिके मध्यवर्ती दो प्रहरों में भी जागरित रहते हैं । जिनकल्पी साधु एक प्रहर ही निद्रा लेते हैं । बाकी दिनरात के प्रहरों में जागते रहते हैं । इसीतरह निष्क्रमण-प्रवेशादिक में

कैाई पक्षु राग-द्वेष वगर आडार अडणु करीने तीर्थ कर लागवाननी आज्ञाना भाडक यनी मुनिधर्मात्ता साया आराधक अने छे

पूर्वापररात्रं यतमान—रात्रीना पूर्व अने अपर भागनु नाम पूर्वापर रात्र छे, रात्रीना अपर प्रहर छे, ओक प्रहरने रात्रीना चौथो भाग कडे छे पूर्व रात्रना जे प्रहरमाथी प्रथम प्रहरमा, पश्चिम रात्रना जे प्रहरमाथी अन्तिम प्रहरमा ( अर्थात्-रात्रीना अपर प्रहरमाथी पहिला चौथा प्रहरमा ) अगृत रखीने प्रतिक्रमण, स्वाध्याय तेमज ध्यानादिक करवु जाकीना भीज अने तीज प्रहरमा यथाविधि निद्रा लेवी “ यतमानः ” पदथी दिवसे पक्षु यथाविधि स्वाध्यायादिक करवु तेवु स्पष्ट सूचित थाय छे अथारे रात्रीमा पक्षु प्रतिक्रमणादिककी विधि आपेल छे, तो दिवसमा पक्षु यथावसर स्वाध्याय करवु, जे बात साव स्पष्ट छे शक्तिना सद्भावमा स्थविरकल्पी मुनि रात्रीना मध्यवर्ती जे प्रहरमा पक्षु अग्रत रहे छे, उनकडपी साधु ओक प्रहर जे निद्रा ले छे, जाकी दिनरातना प्रहरमा अग्रता रहे छे आ प्रमाणे निष्क्रमण-प्रवेशादिकमा मुनि दिवसे

पमेऽपि यत्नं विदधाति किं पुनरचभ्रुर्विपयराभावित्यालयः । एतदेव प्रकृत्यति-  
 'सदा शील'—मित्यादि, सदा=सर्वकाल शीलम्=महाद्वेषसहस्रशीलाद्वयं चारित्र्यं  
 वा, अथवा शीलं=पञ्चमहाव्रतसाधनभूतं गुप्तित्रयं सकलेन्द्रियदमनं कपायनिग्रहं वा  
 संमैस्य=शस्त्रा तमव यानञ्जीवमनुपालयत् । उक्तम्—

मुनि दिन में भी देव-भाल कर समितिपूर्वक प्रवृत्ति करता है । दिनमें  
 भी जब वह यमनापूर्वक अपनी प्रत्येक क्रियाओंको करता है तो रात्रि में  
 भी कि जिसमें अश्रुरिन्द्रिय का विषय कोई भी पदार्थ स्पष्ट रूपसे नहीं  
 होता है, उसे अपने प्रत्येक प्रवृत्ति में यमना रखनी ही चाहिये । अतः  
 रात्रि में बिहारादि नहीं करना यह बात भी स्वतः सिद्ध हो जाती है ।

“सदा शीलं संप्रेष्य भुत्वा मवेदकामोऽमृच्छन्” —सर्वकाल १८ हजार  
 शीलों के मेदों का, या चारित्र्य का अथवा पांच महाव्रतों के साधनभूत  
 गुप्तित्रय, सकलेन्द्रियोंका दमन और कपायों का निग्रहरूप शीलका अच्छी  
 तरह ज्ञाना धन उसका यावज्जीवन पालन कर । गुल्फके निकट शीलके  
 पासने का और उसके नहीं पालने का परिणाम जानकर वैपयिक इच्छाओं  
 से रहित होकर माया, तृष्णा अथवा क्रोध से रहित होवे ।

भावार्थ—१८ हजार शील क मेद जो आगमों में प्रकृत किये गये  
 हैं, मुनिका कर्मण्य है कि उनका भली प्रकार पालन करे । ७  
 महाव्रत, ७ समिति और ३ गुप्ति, इस १३ प्रकार के चारित्र्य की आरा-

पणु आत्मी भेदने समितिपूर्वक प्रवृत्ति करे छे द्विषसे पणु क्यारे ते यत्न  
 पूर्वक योतानी प्रत्येक क्रियाओं करे छे तासत्रीय पणु के जेभा अश्रुरिन्द्रियने  
 विषय केछ पणु पदाथ स्पष्ट रूपधी यत्न नहीं तेने योतानी प्रत्येक प्रवृत्तिभा  
 यत्न साधना भेदने। जेठे शरीरभा विहार आदि न करवा जे बात आधी  
 स्पष्ट रीते विद धाय छे

“सदा शीलं संप्रेष्य भुत्वा मवेदकामोऽमृच्छन्” —सदा ३६५२  
 शीलाना भेदने, अथवा चारित्र्या अने पांच महाव्रताना साधनभूत गुप्तित्रय, सकल  
 इन्द्रियेणु दमन अने कपायेना निग्रहरूप शीलना आरी रीते यत्न अनी तेनु  
 लक्षणी पदार्थ पालन करणु अर्थात् पासेधी शीलना पालनना अने नहि  
 पाणवाना परिणामने आत्मीने वैपयिक इच्छाओंधी रहित अनी माया, तृष्णा अने  
 क्रोधधी रहित पणु

भावार्थ — १८ हजार शीलना भेद जे आगमिभा प्रकृत कराया छे ते भा  
 मुनिनु कर्तव्य छे के तेनु आरी रीते पालन करे। पांच महाव्रत, पांच समिति,  
 अने पणु गुप्ति, जेवा तैर प्रकृतना चारित्र्या आराधना करे, पांच महाव्रताना

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કપાયાણા ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

તત્ત્વ શીલમિતિ ધ્રુવે” તત્ર ક્ષણમપિ નો પ્રમાદયેદિતિ ભાવઃ । શીલવતો ગુણમાહ—શ્રુત્વેત્યાદિ, યઃ શ્રુત્વા=શીલપરિજ્ઞાન તદનુપાલનફલં તદ્વિપરીત-કર્તૃણા નરકનિગોદાદિપરિભ્રમણં ચ ગુરુમકાગાદાગમાદ્વાઽઽકર્ણ્ય, અક્રામઃ=ઇચ્છાદિ-ધના કરે । ૫ મહાવ્રતોં કે માધનમૃત ૩ ગુસિકા પાલન ઓર પાંચ ઇન્દ્રિય ઓર ંક મનકા ઢમન કરના, કપાયોં કા નિગ્રહ કરના યે સવ વાતોં શીલ કે હી અન્તર્ગત હૈ । મુનિજન કો “ શીલ કા પાલન કરના વાહિયે ” ઇસ કી વક્તવ્યતામૈ ઇન સમસ્ત યાતોં કા અવઙ્ગ્ય પાલન ડચિત હૈ । ઇન સવકા પાલન મુનિધર્મ સે સવધ રગ્વતા હૈ । કહા ંધી હૈ—

“મહાવ્રતસમાધાન, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કપાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—મહાવ્રતાદિકોં કા આરાધન શીલરૂપ સે કહા ગયા હૈ, ંસા સમજ્ઞ કર ઇનકે પાલનેમૈ ંક ક્ષણ ંધી પ્રમાદ નહીં કરના વાહિયે । ‘શ્રુત્વા’—ઇત્યાદિ પદોંઘારા શીલવાનકે ગુણકો સૂત્રકાર કહતે હૈ— જો મુનિ શીલકે પરિજ્ઞાન, ંવ ડસકે પાલનજન્ય ફલકો તથા શીલકે સેવન સે રહિત માનવો કે નરકનિગોદાદિમૈ પરિભ્રમણ કો ગુરુ સે અથવા આગમ સે સુન કર ઇચ્છાદિકામસે રહિત હો જાતા હૈ વહ

આધારભૂત ત્રણુ ગુસિતુ પાલન અને પાંચ ઇન્દ્રિય અને એક મનતુ ઢમન કરવુ, કપાયોના નિગ્રહ કરવો એ સઘળી વાતો શીલની અન્તર્ગત છે “ મુનિજનને શીલતુ પાલન કરવુ જોઈએ ” આ પ્રકારની રીતોમા આ સઘળી વાતોતુ અવશ્ય પાલન કરવુ જોઈએ આ બધાતુ પાલન મુનિધર્મ માથે સઘધ ગણે છે કહુ પણ છે—

“મહાવ્રતસમાધાન, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડ—વિરતિત્વં ચ, કપાયાણા ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્ મહાવ્રતાદિકોતુ આરાધન શીલરૂપથી કહેલ છે, એવુ સમજને તેના પાલનમા એક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ કરવો જોઈએ નહીં

શીલવાનના ગુણને સૂત્રકાર કહે છે—‘શ્રુત્વા’ ઇત્યાદિ

જે મુનિ શીલના પરિજ્ઞાનને, અને તેના પાલનજન્ય ક્ષણને, તથા શીલના સેવનથી રહીત માનવના નરકનિગોદાદિમા પરિભ્રમણને ગુરુ અને આગમથી સાલળીને ઇચ્છાદિ ડામથી રહિત ંની જાય છે તે માથા, ક્રોધ અને તુલ્યથી

कामवर्जिताः, एषम् अमृतम्=अभिषमना मृच्छा=माया क्लोपस्तृष्णा चाऽस्य  
 सोऽमृतम्भो भवत् काममृच्छयोर्निषेधेन मोहनीयोदयोऽपि निषिष्यते; तन्निषेधा-  
 देव श्रीमत्सम्पत्तो भवन्मान्यवेत्यभिप्रायः, अयमत्र सार-धर्मभ्रमणानन्तरं कामस-  
 म्भ्रादिरहिता भवेदिति प्रतिपादनेनाक्षरगुणानां ग्रहणमुपलक्षणत्वेन मूलगुणग्रहणं च  
 सिद्धम् । तद्व्याहिसादिमहाव्रतधारी भवेदिति ।

ननु चानिद्वेषसर्वीर्यस्य श्रीमृच्छाभिन्ना मरुदुपदेशानुष्ठायिनो मम साम्प्रतमपि  
 न निस्त्रिभुक्त्यापनया जाताऽतस्तदुपायं मया ब्रूहि येन श्रीघ्न सकलकर्मसयो भवेत् ।

क्रोध, माया अथवा तृष्णा से भी रहित हो जाता है । काम और क्रोधा-  
 -माया, क्रोध, अथवा तृष्णाके निषेध से मोहनीय के उदयका  
 भी यहां निषेध हुआ समझना चाहिये, क्यों कि उसके निषेधसे ही  
 वह शीलसंपन्न होता है; अन्यथा नहीं ।

भाषार्थ—धर्मभ्रमण के बाद “काम और क्रोधा से यह रहित होवे”  
 इस प्रकार के प्रतिपादन से उत्तरगुणोंका ग्रहण सिद्ध हो जाता है, साथ  
 में उपलक्षण से मूल गुणोंका भी । इस से यह बात सिद्ध होती है कि वह  
 बहिःसादिक-महाव्रतधारी होवे । “अणेण चैव जुञ्जाहि किं ते जुञ्जेण  
 पञ्चभो” इस शेष सूत्राण का खुलासा करने के लिये टीकाकार इसका  
 अर्थ यों करते हैं—शिष्य गुरुदेवसे अरज करता है—“मैं अपने धर्म और  
 धीर्यको नहीं छिपा कर जीलके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता हूँवा आपके  
 उपदेशानुसार प्रवृत्ति कर रहा हूँ, फिर भी मेरे समस्त कर्मोंका बिनाश  
 अभी तक भी नहीं हुआ, अतः उसका उपाय आप कहें कि जिससे मेरे  
 समस्त कर्म जीघ्र नष्ट हो जायें, मुझे आपके धर्मनों में पूर्ण विश्वास है,

पञ्च श्लोक यह लक्ष्य है काम माया क्रोध अने तृष्णाया निषेधधी मोहनीयना  
 उदयने पञ्च त्वा निषेध धर्मो यम त्वा नेषिञ्जे, क्षरन् के तेना निषेधधी  
 च शीलसंपन्न अने छे जीलधी नहीं, तात्पर्य है—धर्मना अणु पक्षी “काम  
 अने मायाधी पर अने” आग्रहान्ना प्रतिपादनधी उत्तरगुणानु मरुदुप  
 सिद्ध भाष छे आधी साथ उपलक्षणधी मूलगुणने पञ्च अक्षु भाष छे आधी के  
 वत् सिद्ध भाष छे बहिःसादिक-महाव्रतधारी अने.

“अणेण चैव जुञ्जाहि किं ते जुञ्जेण पञ्चभो आ शेष सूत्राणने खुलासा  
 कर्त्ता भाटे टीकाकार अने अथ आ प्रहारे करे छे—

शिष्य गुरुने अरज करे छे—“माई पंतानु अण अने धीधने नदि छुपाधीने  
 शीलना अनुष्ठानमा प्रवृत्ति करेते तू आपना उपदेश अनुसार प्रवृत्ति करे छे  
 छत्ता भास समस्त धर्मना बिनाश दनु मुधी धर्मो नहीं भाटे आप अनेना  
 उपाय अने जन्तवे के गेरी भात समस्त धर्म शीघ्र नाश पाये, अने आपका

भवद्वाक्येन चाह सिंहेनापि योद्धुं समर्थोऽस्मि कर्मक्षयार्थनिष्क्रान्तस्य न किम-  
प्यक्षयमस्तीति तदुपायो वक्तव्यः? इति पृष्टवन्तं शिष्य गुरुराह—‘अनेने ’त्यादि,  
अनेन चैव=औदारिकशरीरद्वारा ज्ञानावरणीयादिकर्मशत्रुणा सह रत्नत्रयाराधनप-  
ताकाग्रहणाय मुक्तये वा प्राणपरित्यागेनापि त्वं युध्यस्व=कर्मरिपुं पराजयस्व, बाह्यत  
=आत्मनो बहिःस्थितेन सिंहादिना सह ते=तव युद्धेन=मग्न्यामेण किम्=वृथेत्यर्थः,  
कर्मशत्रुविजयादेव तव सकृत्कर्मपनयो भावीत्यवगार्यं तत्रैव यतस्वेति हृदयम्॥सू०३॥

मैं आपकी आज्ञा से सिंह के साथ भी युद्ध करनेमें समर्थ हूँ, हे गुरु-  
देव ! मैं तो कर्मों के नाश करने के लिये ही घरसे निकला हूँ, मेरे लिये  
अशक्य काम कुछ भी नहीं है, इसलिये कर्मक्षय जितना जल्दी से  
जल्दी हो सके आप ऐसा उपाय शीघ्र कहें ” इस प्रकार पूछनेवाले  
शिष्यजन के प्रति गुरुदेव कहते हैं—हे शिष्य ! तुम इस औदारिक  
शरीर से ही ज्ञानावरणीयादि कर्मशत्रुओं के साथ रत्नत्रय की आरा-  
धनारूप पताकाको ग्रहण करने के लिये, अथवा मुक्ति पाने के लिये प्राण-  
पण से ( प्राणों की परवाह किये बिना ) युद्ध करो, कर्मशत्रुओं पर  
विजय प्राप्त करो, अपने से बाह्य सिंहादिक के साथ युद्ध करने से तुम्हें  
क्या लाभ हो सकता है? मोहनीय कर्मके जीतने से ही तुम्हारे समस्त  
कर्मों का विनाश हो जायगा, ऐसा निश्चय कर उसके ही साथ युद्ध करने  
का प्रयत्न करो ॥सू०३॥

वयनेना स पूषु विधास छे आपनी आराधी हु सिंहनी साथे पषु युद्ध  
करवा समर्थ छु छे उद्देव । हु तो कर्मोना नाश करवा भाटे न घेरथी नीकथे  
छु भाटे भाटे अशक्य जेवु कोछ काम नथी आ भाटे भास कर्मोना जल्दीमा  
जल्दी क्षय धाय जेवो उपाय तात्कालिक भतावे ” आ प्रकारे उद्द पासे पूछनास  
शिष्यजनने उद्देव कहे छे के—हे शिष्य ! तु आ औदारिक शरीरधी न ज्ञाना-  
वरणीयादिक कर्मशत्रुओनी साथ रत्नत्रयनी आराधनारूप पताकाने ब्रह्मछु करवा  
भाटे अथवा मुक्ति भेजववा प्राण पषु (प्राणनी परवा कथी वगर ) युद्ध कर-कर्म  
शत्रुओ उपर विजय प्राप्त कर, आहरना-ताराधी हर जेवो सिंहादिकनी साथे युद्ध  
करवाधी तने कथे लाभ भजवाने छे ? मोहनीय कर्मने छतवाधी न तारा  
समस्त कर्मोना विनाश थरे, जेवो निश्चय करी जेनी साथे युद्ध करवाने प्रयत्न  
कर मोहनीयना विनाशधी तारा शेष कर्मोना तात्कालिक नाश थर्ष जशे ॥ सू० ३ ॥

दुष्पारससारपारावारे मरुजता जनस्य तर्दुमिदं सुसाधनमनेकमवेषु प्राप्तुमश्र  
 क्यमिति दर्शयति—' सुदारिद्रं ' इत्यादि ।

मूलम्—सुदारिद्रं स्वच्छ दुच्छह, जहित्य कुसलेहिं परिभ्रावि  
 वेगे भासिप, चुप ह्रु वाले गठमाइसु रज्जह, अस्सि चय पवुच्चह,  
 रूवसि वा छणासि वा, से ह्रु एगे सविद्धपहे मुणी अन्नहा लोगमुवे  
 हमाणे, इय कम्म परिण्णाय सव्वसो से न हिंसह, सजमह, नो पग  
 च्चह, उवेहमाणो पत्तेय साय, षण्णापसी नारभेकवण सठवलोप  
 पगप्पमुहे विदिसप्पइत्ते निविण्णचारी अरए पयासु ॥ सू० ४ ॥

छाया—सुदाईं स्वच्छ दुर्लभं, यथाऽत्र कुशैः परिभ्राविको भाषित, च्युता  
 इ वायो गमादिषु रव्यते; अस्मिभैतरप्रोच्यतं, रूप वा क्षणे वा, स इ सक्कि  
 पवा म्निः, अन्यथा शोकमृत्प्रेसमाशः, इति कर्म परिभ्राय सर्वतः म न द्विनस्ति,  
 संयमयति, नो मगन्मते, उभेसमाण प्रत्येक मातं, नपदिशी नारमते क्वन सर्व  
 शोक एकममूनो विदिनप्रतीणो निविण्णचारी अरत' मज्जासु ॥ सू० ४ ॥

टीका—' सुदारिद्रं '—मित्यादि, इदमौदारिकशरीर सुदारिद्रं—परीपदादिभि' सह  
 भाक्सवामपाग्यं स्वच्छ—अवधारण तस्य दुर्लभमित्यनेन सम्बन्धस्तत्र दुर्लभं स्वच्छ=

दुष्पार इम संसाररूपी समुद्र में परिभ्रमण करनेवाले प्राणी के लिये  
 यह सुसाधन अनेक नद्यों में भी दुर्लभ है—इस बात को सूत्रकार प्रदर्शित  
 करते हैं—“ सुदारिद्रं ” इत्यादि ।

मनुष्यों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। इस औदारिक  
 शरीर से ही समस्त कर्मों का नाश होता है। यद्यपि औदा  
 रिक शरीर तिर्यञ्च और मनुष्यों का होता है तो भी तिर्यञ्च के औदारिक  
 शरीर की यहाँ विषयता नहीं है। कर्मों के क्षय का कारण होने से मनुष्य  
 क ही औदारिक शरीर की विषयता है। इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि

इ चर आ ससाइधी ससुद्रमां पस्त्रिमवु इत्याचार्य प्राची मा? आ  
 सुसाधन अनेक नद्योमां पनु इव क उ—एव वातने सूत्रकार प्रदर्शित करे उ—  
 “ सुदारिद्रं ” इत्यादि

मनुष्यना शरीरने औदारिक शरीर कह छ आ औदारिक (मनुष्य शरीर)  
 भी क समस्त कर्मोना नाश थाव छ औदारिक शरीर निर्दिश अने मनुष्योनु  
 नाव छे परन्तु निवचनना औदारिक शरीरनी निवका अर्द्धि नभी. मनुष्यना क  
 औदारिक शरीर कर्मोना क्षयनु कारण दीवाभी कोनी विरज्ज छे सूत्रकार कर

दुर्लभमेव=दुःखेनैव लभ्यम् कर्मयुद्धार्यमनुष्यशरीरलाभेन तव सर्वकर्मक्षयोऽवश्यं शीघ्रमेव भावीति शिष्यकृतपूर्वप्रश्नस्योत्तरमभिहितम् । कश्चन मरुदेवीवत् तेनैव भवेन कर्मक्षयमासादयति, कश्चिच्च सुबाहुकुमारवत्सप्ताष्टमवैः, अपरः कश्चिद् देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तनेति, तेन किमायातमित्याह—‘यथे’—त्यादि, यथा=येन

यह मनुष्य का औदारिक शरीर परिषदादिकों के साथ भावयुद्ध के योग्य है, यह शरीर ही उनसे युद्ध कर सकता है, अन्य वैक्रियादिक नहीं। इस शरीर की प्राप्ति दुर्लभ है, बड़े पुण्यानुबंधी पुण्यसे ही यह मनुष्य तन मिलता है। इसलिये शिष्य को आश्वासन देते हुए गुरु महाराज कहते हैं कि “कर्मयुद्धार्यमनुष्यशरीरलाभेन तव सर्वकर्म-क्षयोऽवश्यं शीघ्रमेव भावीति” तुम घबराओ नहीं, यदि हमारे वचनानुसार तुम प्रवृत्तिशील रहोगे तो विश्वास रखो इस प्राप्त हुए शरीर से तुम कर्मों का शीघ्र विनाश कर सकोगे, कारण कि कर्मों के साथ युद्ध करने योग्य यह औदारिक शरीर तुम्हें प्राप्त हुआ है। इस प्रकार पहिले शिष्यद्वारा किये गये प्रश्न का यह उत्तररूप समाधान है। इस शरीरद्वारा कोई २ जीव मरुदेवी जैसे उसी भवसे कर्मक्षय कर देते हैं। कोई २ सुबाहुकुमार की तरह सात आठ भव में, और कोई २ देशोन अर्ध-पुद्गलपरावर्तन कालमें कर्मों के क्षयक होते हैं। इसलिये जिस प्रकारसे

छे—मनुष्यनु आ औदारिक शरीर परिषदादिकोनी साथे युद्ध करवा योग्य छे आ शरीर न ज्येनी साथे युद्ध करी शकै छे, अन्य वैक्रियादिक शरीर नहि । आ शरीरनी प्राप्ति दुर्लभ छे - महा पुण्यानुण धधी न आ महाभूय मनुष्य देह प्राप्त थाय छे

आ भाटे शिष्यने आश्वासन आपता सुइ महाराज कहे छे के—“कर्मयुद्धार्य मनुष्यशरीरलाभेन तव सर्वकर्मक्षयोऽवश्यं शीघ्रमेव भावीति” तमे गलशब्दो नहि अभास पथन अनुसात् तमे प्रवृत्तिशील रहेशो तो विश्वास राखो आ प्राप्त थयेल शरीरधी तमे कर्मोना शीघ्र विनाश करी शकेशो, कारण के कर्मोनी साथे युद्ध करवाने भाटे औदारिक शरीर तमेने प्राप्त थयेल छे आ प्रकारे पड़ेला शिष्यद्वारा कशब्दोला प्रश्नो आ उत्तररूप समाधान छे आ शरीरद्वारा कोइ कोइ जीव मरुदेवी जेवा आ लवमा न कर्मक्षय करी दे छे कोइ कोइ सुबाहुकुमारनी भाकक भात आठ लवमा, कोइ कोइ देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तनकालमा कर्मोना क्षयक थाय



वकारेण अप्र=अस्मिन् संसारे कुशलैः=भावकुशलैः=वीर्यकरगणपराविकैः परिज्ञा  
 विवेकः=परिज्ञायाः=प्रत्याख्यानमेवेन द्विविधाया विवेक=द्रव्यतो मावतश्च  
 विचारः मापितः=कथितः, तत्र द्रव्यतो विवेक कम्प्यपुत्रमिषाणां स्वशरीरस्य  
 आसारतया चिन्तनम् मापतो विवेका ममत्वपर्जनम्, तपःसंयमाभ्यां कर्मनिर्जरा मम-  
 चीति विवेको जायते । परिज्ञामदमयाह—यम पूर्वोत्थायी चारिभ्रान्तरायोदयात्  
 पश्चात्पितायी स प्युतः=धर्मोत् मनुष्यजन्मतो वा पतितः परिभ्रष्ट इत्यर्थ, हु=  
 वितर्कः; बालः=धमपतनननितनरकनिगोदादिभ्रमणप्रतीकाराज्ञानकल्याणिकस गमो

इम संसारमें कुशल मीर्थहारादि द्वारा परिज्ञाविवेक कहा गया है । उस  
 क अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि उसी मव से या परपरा रूप से कुछेक  
 मवों में कर्मों का विनाश कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है । परिज्ञा  
 दो प्रकार की कही है । १ उपरिज्ञा २ प्रत्याख्यानपरिज्ञा । परिज्ञा का  
 विवेक मी द्रव्य और भावसे दो प्रकारका है । स्त्री, पुत्र, मित्र और  
 अपने शरीर का असारताकूप से चिन्तन करना द्रव्यविवेक है । ममत्व  
 का त्याग करना यह भावविवेक है । अर्थात्—‘तप और संयम से कर्मोंकी  
 निर्जरा होती है’ इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होना भावविवेक है ।  
 “सुणु हु पाके गम्माइसु रज्जइ” यहाँ सूत्रकार—परिज्ञाके भेदों को कहते  
 हैं—जो पूर्वोत्थायी है, परन्तु चारिभ्रान्तराय के उदय से पश्चात्पितायी  
 है वह प्युत है—धर्म से अथवा मनुष्यजन्मसे पतित है—भ्रष्ट है । “हु”  
 वितर्कमें है । धर्मसे पतित होनेपर मेरा भ्रमण नरकनिगोदादिक गनियों

छे. न्य भागे के प्रकारकी न्य संसारमें कुशल तीर्थकलविद्याय परिज्ञाविवेक  
 कहेबायेछ छे ते अनुसार प्रवृत्ति करवाण्य मुनि ते न्य लपमा लमवा  
 परपरा रूपका बोधक लपेयमां कर्मिनी विनाश करी मुक्तिने लाभ भेणवे छे  
 परिज्ञा के प्रकारकी कही छे १ उप-परिज्ञा, २ प्रत्याख्यान-परिज्ञा परिज्ञाने  
 विवेक पणु द्रव्य अपने भावभी के प्रकारने छे स्त्री, पुत्र, मित्र अपने पौताना शरीरकी  
 लसास्ता रूपकी चिन्तन करणु द्रव्य-विवेक छे ममत्वने त्याग करवा भावविवेक छे  
 तप अपने संयमद्वारा कर्मिनी निर्जरा भाव छे—आ प्रकारने विवेक उत्पन्न कवा भाव  
 विवेक छे “सुणु हु पाके गम्माइसु रज्जइ” यहाँ सूत्रकार परिज्ञान के दो कहे छे  
 के पूर्वोत्थायी छे परन्तु चारिभ्रान्तराय अतशपधी पश्चात्पितायी छे ते प्युत छे—धर्मकी  
 अथवा मनुष्यजन्मकी पतित छे—भ्रष्ट छे हु” यम वितर्कमा छे धर्मकी  
 पतित कवाधी भाई भ्रमण नरक निगोदादिक अतिभयमां कथे, न्य प्रकारनु

दिषु=गर्भादिजन्यदुःखविशेषेषु, आदिपदेन जन्म-कुमार-यौवन-जरा-मरण-नरक-निगोदादिरूपदुःखेषु, यद्वा-गर्भादिषु=देहविकल्पेषु संसारविकल्पेषु वा रज्यते=आसक्तो भवति तत्रैव पच्यते दह्यते चेत्यर्थः । यद्वा 'रज्जइ' इत्यस्य 'रीयते'

में होगा—इस प्रकार के तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञान से जो रहित है वह बाल है । बाल जीव गर्भादिकों ( गर्भादिजन्य दुःखविशेषों ) में आसक्त होता है । वहीं पर पचता रहता है वहीं पर तडपता रहता है । “गर्भादि” के आदि पद से जन्म, कुमार, यौवन, जरा, मरण, नरक और निगोदादिक के दुःखों का ग्रहण हुआ है इन दुःखों में अथवा शरीरके विकल्पों या संसारविकल्पों में आसक्त बना है । यद्वा—“रज्जइ” इसकी छाया “रीयते” भी होती है । जिसका यह भाव है कि बालजीव गर्भादिकों में बारंबार जन्म मरण धारण करता रहता है ।

भावार्थ—परिज्ञा के भेदों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि जो चारित्र को ले कर भी पश्चात् चारित्रान्तराय के उदय से उससे पतित हो जाते हैं वे बालजीव हैं उनका छुटकारा इस संसार से नहीं होता—नरकनिगोदादिकके कष्टोंका और जन्म, बाल्यादिक अवस्था जन्य अनेक कष्टों का उन्हें समय २ पर सामना करना पड़ता है । चारित्र जैसी सुन्दर

तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञानधी के रहित छे ते भाल छे भाल लव गर्भादिक ( गर्भादिजन्य दुःख विशेषे ) मा आसक्त होय छे अर्थात् तडपतो रहे छे “गर्भादि”ना आदि पदधी जन्म, कुमार, यौवन, वृद्धावस्था, मरण, नरक अने निगोदादिकना दुःखोनु ग्रहण यथेस छे आ दुःखोमा अथवा शरीरना विकल्पोमा अथवा संसारविकल्पोमा ज वाण-लव आसक्त भनी रहे छे अथवा—“रज्जइ” जेनी छाया “रीयते” पणु भने छे जेनो आ अर्थ छे के-भाण-लव गर्भादिकमा बारवार जन्म मरणना देश करतो रहे छे

भावार्थ—परिज्ञाना लेहने प्रकट करवा माटे सूत्रकार कहे छे के—आरित्र ग्रहण करवा छता पणु आरित्रान्तरायना उदयधी के पतित भनी जय छे जे भाललव छे जेनो छुटकारो आ संसारधी धतो नधी नरक निगोदादिकना तेमज जन्म, बाल्यावस्था आदिना अनेक दुःखोना जेहे समय समय पर सामना करवे पडे छे आरित्र जेवी सुखर वस्तु छायमा आपवा छता जे तेने

इतिष्ठाया; तेन गर्मादिषु रीयते=गच्छति । कुप्रेति कथितमिति मभे गुल्गाह—  
 'अस्मि'मित्यादि, अस्मिन्=आर्हतप्रवचने, एतत्=पूर्वकथितं वक्ष्यमाणं च प्रोच्यते  
 =प्रकर्षेण कथ्यते तीर्थकरणधरे, वक्ष्यमाणमाह—'रूपे'—इत्यादि, रूप=रूप  
 वडिपय, वा—ग्रहणात् शब्दादौ पृष्ठ, 'क्षणे' क्षणन=क्षण =हिंसा तत्र, वा-दन्दा  
 इन्द्रसौयादौ, मङ्गधि सिद्धपाति । अत्र रूपग्रहणेन विषयपु रूपस्य प्रधानतया, एष  
 मास्रभेषु हिंसायाः प्राधान्यन च तयोर्ग्रहणादन्वेषामपि शब्दादीनामास्रवाणां च ग्रहणं  
 भवति । रूपवद्विषयत्वाभावात् पर्याप्तपरिभ्रष्टो गर्मादौ रज्यते । इदमत्र प्रोच्यते इत्य  
 नेन सम्बन्धः यथैतद्विपरीताचारधारी स कीदृशा भवतीत्याह—'स' इत्यादि,  
 अस्तु हायमें आ जाने पर जो उसे जो देता है वह मनुष्य जन्म के लाभसे  
 वंचित हो जाता है और उसे निर्यज्ञादि गतिमें परिभ्रमण करमा पड़ता है ।

इसलिये इस आर्हत प्रवचनमें जीवों को समझाने के लिये ही यह  
 पूर्वोक्त कथन तथा आगे कहा जानेवाला विषय प्रतिपादित किया है ।  
 वक्ष्यमाण विषयमें सूत्रकार यही कह रहे हैं कि भगवान् तीर्थकर गण  
 परादिक का यह आदेश है कि जो मनुष्य या मुनि रूपयुक्त विषयों में  
 और शब्दादिक पदार्थों में गूढ़ पना हुआ है वह, हिंसा में और शेष  
 झूठ, बोरी आदिकों में प्रवृत्तिशील है । यहाँ विषयों में रूप की प्रधानता  
 होने से रूप के ग्रहणसे शब्दादिकों का, आस्रयों में हिंसा की प्रधानता  
 होने से उसके ग्रहण से अन्य झूठ, बोरी आदि अन्य आस्रवों  
 का ग्रहण हो जाता है इस प्रकार "अस्मिन्नैतन् प्रोच्यते" यहाँ तक  
 इन पदों का संबंध है । जो पूर्वोक्त से विपरीत अपनी प्रवृत्ति रक्वता है

ज्येष्ठ जेसे छे ते मनुष्य न मना लाभधी वंचित न अनि नय छे अने तेजे  
 तिर्थ न आदि गतिमा परिभ्रमण कस्तु पठे छे

आ भागे आ आहत प्रवचनमां सुनोने सुमनपवा भागे आ पूर्वोक्त  
 इयन अने आजग इहेवाग आनार विषय प्रतिपादित क्यो छे वक्ष्यमाण  
 विषयमा सूत्रकार ज्येष्ठ इहे छे छे—मनवान तीर्थकर जलुधरादिने आ आदेश  
 छे छे, न मनुष्य अथवा मुनि रूपयुक्त विषयमा अने शब्दादिक पदार्थमा  
 लुब्ध जनेछ छे ते, हिंसा तेमन बोरी, गूढ आदिमां प्रवृत्तिशील छे आदि  
 विषयमां रूपी प्रधानता होवाधी रूपमा मनुष्यधी शब्दादिनेमा, आस्रवोमां  
 हिंसानी प्रधानता होवाधी हिंसाना प्रवृत्तधी अनि बोरी गूढ आदि  
 अन्य आस्रवोनु प्रवृत्त धरि नय छे आ प्रकार "अस्मिन्नैतन् प्रोच्यते" आदि  
 सुधी आ पदोने संबंध छे न पूर्वोक्तधी विपरीत पदानि प्रवृत्ति कये छे

सः=गर्भादिप्राप्तिनिदानविषयकपायाभिष्वङ्गज्ञानवान् धर्मादपतित आस्रवनिवृत्तः, हुरवधारणे, तेन स एव नान्यः मुनिः=सयतः, संकिद्वपथः=अभ्यस्तरत्नत्रयो मुनिर्भवेत्, अपि च अन्यथा भिन्नप्रकारेण लोक=विषयकपायमध्यमध्यासीनं हिंसा-दिपरायणमसयतलोकम्, उत्प्रेक्षमाणः=बुध्यमानः, ततः किमित्याह-“इती”-त्यादि,

वह कैसा होता है? इसके समाधानार्थ सूत्रकार “स ह्यु संविद्वपथो मुनिः” इस शेषांशका कथन करते हैं-गर्भादिककी प्राप्ति के कारणभूत जो विषयकपाय हैं उनमें जो अनभिलाषी है, जो यह समझ चुका है इस जीवका गर्भादिक में पतन विषयकषायों के सेवन से ही होता है वह धर्म से अपतित होता हुआ कर्मास्रवों से जुदा रहता है। यहाँ “हु” अवधारण अर्थ में है। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि जो विषया-दिकसे निवृत्त है वही धर्म से अपतित और आस्रवों से रहित है, अन्य नहीं; वही वास्तविक मुनि है, अन्य नहीं; वही संविद्वपथ है—अभ्यस्त रत्नत्रयवाला है और अभ्यस्त रत्नत्रयवाला ही सच्चा मुनि हो सकता है, अन्य नहीं; यही मुनिरत्न असंयत लोकको विषयकषायोंके मध्यमें पडा हुआ जानकर तथा हिंसादिक पापों से अनिवृत्त समझ कर उससे निवृत्त हो मन, वचन और काय से प्राणियों की हिंसा से निवृत्त हो जाता है, दूसरोको भी इस कार्य में प्रवृत्त नहीं करता है और न इस कार्य में लगे हुए व्यक्तियों की वह अनुमोदना ही करता है, क्यों

ये केवे। होय छे ? आना समाधानभा सूत्रकार “से ह्यु संविद्वपथो मुणी” आ शेषांशनु कथन करता उडे छे डे-गर्भादिकनी प्राप्तिना कारणरूप के विषय कपाय छे आना के अलिवाय वगरेना भनी आ समस्त युकेल छे डे आ एवतु विषयादिकना सेवनथी न गर्भादिकभा पतन थतु रहे छे आने ये धर्मथी पतित न भनता कर्मास्रवोथी लुहो रहे छे आदि “हु” शब्द अवधारण अर्थभा छे आथी ये अलिप्राय निकले छे डे के विषयादिकथी निवृत्त छे ये धर्मथी अपतित आने आस्रवोथी रहित छे, भीन नहिं ये न वास्तविक मुनि छे, भीन नहिं ये न साथा पथ उपर छे अभ्यस्त-रत्नत्रयवाणा छे अभ्यस्त-रत्नत्रयवाणा न साथा मुनि भनी राके छे, भीन नहिं आवा मुनिरत्न असयत लोकोने विषयकपायोना मध्यभा पडेला नेठ आने हिंसादिक पापोथी अनिवृत्त नेठने आनाथी निवृत्त वर्य मन, वचन आने जायाथी प्राणोआनी हिंसाथी निवृत्त भनी नय छे आने भीनआने आवा कार्योथी राके छे, केम डे ये लसे

इति=पूर्वोक्तकारणैः यद् पटं कर्म=ज्ञानावरणीयादिकं तत्कारणं च भावव्यापाररूपं सर्वज्ञ=सर्वप्रकारेण परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिदृश्य च सः=कर्मपरिष्ठाप्यी न दिनस्ति=मनोवाकाययोगैः प्राणिना न इन्ति, उपलक्षणाच्च घातयति, नानुमोदयतीत्यर्थोऽपि। अपि च किं करोतीत्याह-संयमयति-पचनपाचनादिनवकोटिभ्यः स्वात्मानं निर्वर्तयति। यद्वा-संयमयति=सप्तदशनिर्घं संयमं कराति, किन्तु नाप्रालम्भते=न बाह्ये विद्धाति-' किं संयमक्रियया प्रतिष्ठेम्बनादिक्रियया च' इत्यादि रूपमौदस्य नाचरति। उपलक्षणतया स न क्लृप्यति, नापि जातिकुल्यादिमानमावहति किं यह जानता है कि हिंसादिक पापों से अथवा पूर्वोक्त कारणों से जीवों के ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध होता है, इसलिये ज्ञानावरणीयादिक कर्मों को तथा उनके कारणरूप भावव्यापारों को यह नली प्रकार ज-परिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनका त्याग करता है। इस प्रकार वह कर्मपरिज्ञायी मुनि मन, वचन और वाय से तथा कृत कारित और अनुमोदनसे उन संपत्त परित्यागी होता है। तथा-पचनपाचनादिकसे अपने आपको नवकोटिसे विशुद्ध रक्त्वता है, अथवा १७ प्रकार के संयम का आचरण करता है, इतने पर भी उसके मन्त-करणमें मानकी मात्रा भी नहीं आती है, अथवा-संयम क्रिया या प्रतिष्ठेम्बनादि क्रिया के आचरण से क्या हो सकता है ? इस प्रकार की यह घृष्टता नहीं करता है। उपलक्षण से यह यह बात भी जानी जाती है कि यह मुनि इतना संय कृष्ट करता हुआ भी न कभी मोघ करता है और न कुलादिक का गर्व ही करता है, न कहीं लुभाना है और न किसी की

उ है-द्विआदिक पापेभी अथवा पूर्वोक्त कारणोंसे ज्ञानावरणीयादिक कर्मैः न च याव उ आ भाः ज्ञानावरणीयादिक कर्मैः तथा ज्ञेया कारणत्रय सावय व्यापारैः ज्ञेयारी रीते ज-परिज्ञाभी ज्ञानं प्रत्याख्यान-परिज्ञायां ज्ञेया त्याग करे उ आ प्रकारे अ कर्म परिष्ठाप्यी मुनि मन, वचन अने वाक्याभी तेमल ह्य, क्षरित अने अनुमोदनभी आ लक्षणे त्वात् इत्यार दीय उ तेमल पचन पाचनदिकेभी पातली जतने नव कोटिभी विशुद्ध शप्ते उ अथवा १७ अक्षर प्रकारता संयमनु व्याचरन् करे उ आभ उवा ज्ञेया दिवसा भानने वेशमात्र भाव जगते नही अथवा संयमदिक अथवा प्रतिष्ठपनादि क्लृप्य व्याचर ज्ञेयी गु ध शंके उ आपी पृथग पव तना ननभां जाली नरी उपलक्षणभी ज्ञेयान पव मानवामा ज्ञपी उ क पी मुनि आरजुं इत्य उवा पव न तो आरे क्षय करे उ है न ता जति अने इग अरिना अच करे उ न तो क्षय

न लुभ्यति, न प्रतारणा करोति, इत्याद्यपि ज्ञेयम्, असंयमपरायणोऽकर्तव्याचरणे मनागपि न त्रपत इत्याशयः । मुनिः किमवधार्यं प्रगल्भादिकं न विदधीतेत्याह— 'उत्प्रेक्षमाण' इत्यादि, प्रत्येकम्=एकैकस्य प्राणिनः सात=सुखमसातं च उत्प्रे-

प्रतारणा (ठगना) ही करता है। परन्तु जो असंयमसेवी है—असंयम में परायण है, वे इन अकर्तव्यों के करने में जरा भी मकोच नहीं करते हैं। मुनिजन धृष्टता आदि जो नहीं करते हैं उसका कारण यह है कि वे विचारते हैं कि इस ससारमें प्रत्येक प्राणी सुखाभिलाषी है।

भावार्थः—उद्धतता के करनेसे जीवों को संकलेश होता है, संकलेश दुःख का एक प्रकार है। मुनिजन ऐसा कोई सा भी व्यवहार नहीं कर सकते हैं जो अन्य जीवों को दुःखकारक हो। उनकी सदा यही धारणा होती है कि दुनियाँ के जितने भी जीव हैं वे सब मेरे तुल्य सुखाभिलाषी हैं। जिस प्रकार अप्रतिकूल आचरण से मुझे कष्ट का अनुभव होता है उसी प्रकार से मेरे भी अनिष्ट आचरण से इन्हें कष्ट का अनुभव होगा, अतः वह समस्त जीवों में आत्मोपमता (आत्मतुल्यता) मानता है। इसलिये वह किसी भी प्राणी का स्वप्न में भी घात करने का विचार तक नहीं करता है। जो अन्य जीवों के घात करने तक के विचार को निन्दित समझता है वह भला—दूसरों के लिये उस अनिष्ट

लोभाय છે, અથવા ન તો કોઈને કળે છે, પરંતુ જે અસંયમસેવી છે—અસંયમમાં પરાયણ છે તેવો આવા અકર્તવ્યો કરવામાં જરા પણ સકોચ કરતો નથી મુનિજન ધૃષ્ટતા આદિ નથી કરતા તેનું કારણ એ છે કે તેઓ એ વિચારતા હોય છે કે આ સંસારના પ્રત્યેક પ્રાણી સુખાભિલાષી છે

ભાવાર્થ — ઉદ્દતતા કરવાથી જીવોને સંકલેશ યાય છે, સંકલેશ એ દુઃખનો એક પ્રકાર છે, મુનિજન આવી કોઈ પણ વ્યવહાર કરી શકતા નથી કે જે અન્ય જીવોને દુઃખદારક હોય એવી સદા એક જ ધારણા રહે છે કે દુનિયાના જેટલા પણ જીવ છે એ બધા માંગ સંપાન સુખાભિલાષી છે જે પ્રકારે, અપ્રતિકૂલ આચરણથી મને દુઃખને અનુભવ થાય છે, આ જ પ્રકારે મારા અનિષ્ટ આચરણથી એમને પણ કષ્ટ લવાનું એટલે તે પમન્ત જીવોમાં આત્મોપમતા (આત્મતુલ્યતા) માનતા હોય છે આ કાળે તેઓ કોઈ પણ પ્રાણીનો સ્વપ્નમાં પણ ઘાત કરવાનો વિચાર સરખાંએ કરતા નથી જે અન્ય જીવોનો ઘાત કરવાના વિચારને નિન્દિત સમજે છે એવા પીત્તજીને આવી અનિષ્ટ ક્રિયા કરવામાં

क्रिया करनेमें प्रयत्न होने की प्रेरणा या उपदेश भी कैसे दे सकता है। जय यह बात है तो फिर जीवोंका घात करनेवाले प्राणियों के कृत्यों की यह अनुमोदना भी नहीं कर सकता है। इसीलिये यह हिंसादिक पापोंसे नयकोटि से निवृत्त होता है। यह बात "उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातम्" इस सूत्रांगसे प्वनिम होती है। अथवा इसका यह भी आशय निकलता है कि मुनि प्रत्येक मसारी जीवों के सुख और दुःख जानते हैं, अर्थात् जिन जीवों के जितना सुख और दुःख उदयमें होगा-उतना उन्हें भोगना ही पड़गा, उनके उसमें न तो कोई कमी करनेवाला है और न कोई वृद्धि करनेवाला है-इस प्रकार से ये समस्त जीवोंके सुख और दुःखके ज्ञाता हैं, तो भी वे केमा ममत्त कर अपनी प्रवृत्ति को स्पृच्छ नहीं बनाते। वे केमा विचार नहीं करते हैं कि मेरी अच्छी प्रवृत्तिसे किसी भी जीव के सुख वृत्तमें परिवर्तन तो हो नहीं सकता फिर क्या जरूरत है कि मैं अपनी प्रवृत्ति को सयमित रूँ, सुख दुःख का भोग प्रत्येक जीवों के कर्माधीन है, मैं अपनी शुभ प्रवृत्ति से किसी भी जीव के कर्मोदय को थोड़े ही गलत सकता हूँ। इस प्रकार का विचार करना मुनिजन के लिये योग्य नहीं है केमा वे जानते हैं। यद्यपि कोई भी जीव किसी भी जीवके कर्मोदय को गलत नहीं सकता है। जिस

प्रवृत्त बहानी प्रेरणा के उपदेश पक्ष है। रते इ शकं ? इत्यादि आत्मीयान्  
 उ तो पछी एवेनेन धान इत्यावाण्य प्राण्युष्मन्ना इत्येवमी ते अनुमोदना पक्ष  
 इति शक्यता तथा जेटवा भागे तथा दिग्गदिक पापायां नवहाणीषी निवृत्त  
 याप उ आ वात उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातम् आ सूत्राशयां प्वनिम याप उ  
 नयथा केना के पक्ष अथ निकषे उ क मुनि प्रत्येक मसासं एवान्ना मुष  
 अने दुःख वाप्य उ अथात् ए एवान्ना नेवा मुष अने दुःखने उरथ  
 आबशे जेटवुं जेवुं भोगवतुं / पछी तने न कार्य आपु इरी  
 शक उ न कार्य बधारी शक उ आ प्रदारेयां तयो ममत्त एवान्ना मुष अने  
 दुःखना वाप्यकार नोष उ तो पक्ष तेना के मनश्चने पाप्यमी प्रवृत्तिने  
 स्वच्छदी बन्धवत्त तथा तयो केवा पक्ष विचार इत्या नयीं क भासं भाषी  
 प्रवृत्तिषी क पक्ष एवान्ना मुष दुःखमा परिवर्तन कर्ष शकनुं तथा तो पछी दु  
 भाषी प्रवृत्तिने आवा इभाभा गुं इत्या तथा, ? मुष दुःखनुं आबधवतुं के प्र-म  
 एवाने इभाधीन उ दुं भाषी आ । प्रवृत्तिषी कर्ष पक्ष एवनेः केमा व वाप्यक  
 दागी शक्युं ? आ प्रदारेयो ति ॥२ इत्या मुनिजन भा / याप्य नधीनेनुं न वाप्य उ  
 के क वा पक्ष उव शकं ॥११ उवा इधारेवन दागी शकता नयीं ने एवनुं ने

क्षमाणः=जानानः, प्रगल्भादिकं न विदधीत । अत्र आत्मौपम्येन परं न हन्यात्  
घातयेच्चानुमोदयेदित्यर्थोऽपि व्यञ्जितः । क्वचिच्चान्यस्य मुखदुःखे अन्यस्यापि  
भवतः, यथा—पुत्रकलत्रादिसुखदुःखाभ्यां पितृ-पत्यादेः मुखदुःखे जायंते, परन्तु  
तत्र पुत्रकलत्रयोः शरीरे मानसे अपि मुखदुःखे, अपरस्य च मानसे एव मुखदुःखे  
इति विवेकः ।

जीव के जो होनहार है वह हो कर ही रहेगा, इसमें थोड़ा सा  
भी संदेह नहीं, हमारे उनके प्रति शुभ करने से उनका शुभ  
नहीं हो सकता है, यह निश्चित सिद्धान्त है । तो भी मुनिजन  
सब जीवों प्रति शुभ प्रवृत्ति ही करते हैं, किसी भी जीवमात्रके प्रति  
कष्टकारक प्रवृत्ति नहीं करते हैं । उसका कारण यही है कि वे समस्त  
जीवों को अपने समान देखते हैं, जानते हैं । वे यह अच्छी तरहसे अनु-  
भव करते हैं कि जिस प्रकार हमें दूसरों की अशुभ प्रवृत्ति से कष्ट  
होता है उसी प्रकार हमारी अशुभ प्रवृत्ति से भी दूसरे जीवों को कष्ट  
होगा । बस यही सोच समझ कर वे अपने आचार विचार को पवित्र  
और दूसरोंको हितकारी हो ऐसा ही करते हैं । यह माना कि वे दूसरों  
के कर्मोंको टाल नहीं सकते, परन्तु इतना तो कर सकते हैं कि उनके  
अशुभ में निमित्त न बन कर अशुभ कर्मोपार्जन से बच सकते हैं ।  
इसीलिये मुनि समस्त जीवों को अपने समान जान कर उनकी न स्वयं  
हिंसा करते हैं, न दूसरोंसे कराते हैं और न हिंसा करनेवाले की  
अनुमोदना ही करते हैं ।

थनार होय छे ते थरने न रहे छे, आमा थोडा पण सन्देह नथी भाग्य अना  
प्रत्ये शुल करवाना प्रयासथी पण अेतु शुल थर शकवानु नथी आ निश्चित  
सिद्धांत छे, तो पण मुनिजन आ गधा एवो तरक शुल प्रवृत्ति न करे छे  
डेहं पण एवमात्र तरक कष्टकारक प्रवृत्ति करता नथी अेतु कारण अे छे के  
तेअो समस्त एवोने पोतानी भाइक न जुअे छे—नह्ये छे, तेअो सारी रीते  
अनुभव करे छे के वे प्रकारे पीलअोनी अशुल प्रवृत्तिथी भने दु भ थाय छे  
अे न रीते भारी अशुल प्रवृत्तिथी पीलने दु भ थरे, आ ममल विचारै  
तेअो पोताना आचार-विचारै पवित्र तथा पीलअोने हितकारी भने तेम न  
करे छे अे माने छे के तेअो पीलना कर्मोने टाणी शकता नथी, परतु अेटलु  
तो करी शकै छे के तेना अशुल कर्मोपार्जनथी गची अके छे आ भाटे मुनि  
समस्त एवोने पोताना समान नह्ये अेनी न पोते हिंसा करे छे न पीलथी  
कश्ये छे के न तो हिंसा करवावाणाने अनुमोहन आपे छे



कषिणान्पय्य सुखदुःखे परण तद्विपरीतरूपमानुभूयते, यया शत्रुमदृतेः  
 मुखेनाऽपरो दुःखं, दुःखेन च सुखमनुभवति, तथापि वैकल्प्य शरीरे मानसे अपि,  
 परस्य मानसे एवति इत्यम् ।

मध्यस्यमावाप्यस्य परमाणिसुखेन सुख दुःखेन च दुःखं जायते "समः  
 शत्रौ च मित्रे च" इत्यत्रोक्तत्वादिति तत्त्वम्, तेन किं प्रकृते ? इत्याह—  
 'वर्णादेशी'—त्यादि, सर्वलोके=उर्ध्वादिभ्योके वर्णादेशी=वर्ण्यते=पश्यते येन  
 स वर्ण=साधुकारस्तमादप्यु शीर्षं यस्य स वर्णादेशी=यश्च कीर्ष्यमित्सापी, यदा

संमारी जीवों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अपने स्वजनको  
 इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होने में अपना को सुखी तथा अप्राप्ति होने में दुःखी  
 मानते हैं; जैसे पुत्र कलत्रादिकों के शारीरिक एवं मानसिक सुखदुःख  
 में सुखी दुःखी हुआ करते हैं। कहीं इससे विपरीत भी प्रवृत्ति देखी  
 जाती है; जैसे—शत्रुके सुखी होना पर किसी को मानसिक कष्ट होता है  
 और उसके दुःखित होने से उसे मानसिक सुख होता है। परन्तु जो  
 माध्यस्थप्रवृत्तिसंपन्न होते हैं उन्हें समस्त प्राणियोंको चाहे वह अपना  
 इष्ट हो चाहे वह शत्रु हो उसे—सुखी देख कर सुख होता है और उसके  
 दुःख से उन्हें दुःख होता है, उनमें पक्षपात की वृत्ति नहीं होती है।  
 क्यों कि "सम शत्रौ च मित्रे च" समभावी सदा शत्रु और मित्रमें  
 समभाव रखते हैं। इससे प्रस्तुत प्रकरणमें यह बात ध्याई कि मुनि  
 जन जो सदा समभावी होते हैं वे समस्त लोक-उर्ध्व, मध्य और  
 अधःलोक में वर्णादेशी होते हैं। यश्च कीर्त्ति, स्वपर-कल्प्याण तथा

स शरी लोकाभा आ प्रवृत्ति देखाए आवे छे छे तेन्ना पोताना स्वजनने  
 छे पदार्थोंनी प्राप्ति बवाभा पोताने सुधी तथा अप्राप्ति बवाभा दुःखी माने  
 छे जेभ के पुत्र कलत्रादिना शारीरिक जने मानसिक सुख दुःखमा सुधी दुःखी  
 पन्ना करे छे जेभ मध्ये जलनाभी विपरीत प्रवृत्ति पक्ष देखावामा आवे छे,  
 जेभके शत्रुना सुधी बवाभी कौछने मानसिक कष्ट बाब छे जने तेना दुःखी  
 बवाभी तेने मानसिक सुख बाब छे परन्तु जे माध्यस्थप्रवृत्तिसंपन्न छे तेने  
 समस्त प्राणीजने-बदे ते पोताने शत्रु होब के दितेन्नु होब जने-सुधी  
 देणी सुख बाब छे जने तेना दुःखी दुःख बाब छे तेनामा पक्षपातनी  
 छि छेती नही; कारणके "सम शत्रौ च मित्रे च" —समभावी सदा शत्रु जने  
 मित्रमा समभाव राखे छे जनाभी बाहु प्रकल्पना आ वात आपी के मुनिजन सदा सम  
 भावी होब छे ते समस्त लोक-उर्ध्व मध्य जने अधः लोकाभा वर्णादेशी होब छे यश्च,

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।  
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः स्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥  
आनन्दयन्ति रमयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।  
एताः प्रविश्य सद्य हृदयं नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥२॥इति ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतोः,  
विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।  
तस्मान्नरेण कुल-शीलसमन्वितेन,  
नार्यः स्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥  
आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,  
निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।  
एताः प्रविश्य सद्य हृदयं नराणां,  
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥

ये धनके लिये हसती और रोती रहती हैं । दूसरो को विश्वास करा देती हैं पर स्वयं दूसरों का विश्वास नहीं करतीं । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्तव्य है कि वे इनका स्मशानके घटके समान परिहार कर दें ।

ये पुरुषों के चित्तमें प्रवेश कर उसे कभी आनन्दित करती है तो कभी उसे मद्दोन्मत्त बना देती हैं । कभी उसकी नाना प्रकारसे विडम्बना करती हैं, तो कभी विचारे का अपमान करती हैं । कभी उससे रमती हैं तो कभी कभी उसे विषादयुक्त कर देती हैं । ऐसी कौनसी क्रियाएं बचती हैं जो ये न करती हों ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो, विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।  
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः स्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ” ॥ १ ॥  
“ आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।  
एताः प्रविश्य सद्य हृदयं नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥२॥

ये धनके लिये हसती और रोती रहते हैं । दूसरों को विश्वास करा देते हैं परंतु पीते विश्वास करती नहीं आ जाते कुलीन पुरुषों को ये कर्तव्य है कि वे इनको स्मशानकी घटीकी भाँझ परिहार करे । ये पुरुषों को चित्तमें प्रवेश करे क्यारेक आनन्दित बनावे है तो क्यारेक मद्दोन्मत्त बनावे है । क्यारेक अपनी नाना प्रकारे मस्करा करे है तो क्यारेक अपमान करे है क्यारेक आठे है तो क्यारेक भिन्न बनावे है । ये कभी कभी न करती हों ।

एतादृशः कंचन=कमपि प्राप्तातिपातादिसावधव्यापार नारमते=न कुर्वते, कर्णादेव्रीत्यादिसकम्बिश्लेषणैर्मुनेः सकलाचारपरिशीलनशीलम्भवगम्यत इति हृदयम् ॥ सू० ४ ॥

यः पुनरतादृशः स कीदृशो भवतीति दर्शयति—'से वसुमं' इत्यादि ।

मूळम्—से वसुम सव्य समन्नागयपन्नाणेण अप्पाणेण अकरणिज्ज पावकम्म त नो अझेसी, ज सम्मति पासह त मोणति पासह, ज मोणंति पासह तं सम्मति पासह, न इम सक सिडिलेहि अदिज्जमा णेहि गुणासापहिं वकसमायारेहिं पमत्तेहिं अगारमावसतेहिं, मुणी मोण समायाए धुणे कम्मसररिग, पत ल्हह सेवति वीरा सम्मत्त दंसिणो, एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिप प्तिवेमि ॥ सू० ५ ॥

आया—स वसुमान् सर्वसमन्नागतप्रदानेनात्मनाऽकरणीयं पापं कर्म तन्नो भवेपी, पत्सम्यक पश्यत तन्मीनमिति पश्यत, यन्मीनं पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत; नैत ज्ञानं श्रियैराद्रर्पमापैर्गुणाम्पदैर्वकसमाभारै प्रमत्तैरगारमानसद्भिः, मुनिर्मीनं समादाय धुनीयात् कर्मशरीरक, प्रान्तं स्वं सेवन्ते वीराः सम्यक्पदं चिन्त, एष भोपन्तरा मुनिः, तीणो मुक्ता निरतो व्याख्यात इति प्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन “नारमते कंचन” कोई भी सावध व्यापार नहीं करते हैं। इन कर्णादेव्री आदि समस्त विशेषणों से मुनिमें अपने सकल आचारों की परिशीलनशीलनता जामी जाती है ॥ सू० ४ ॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?—इस बात को कहते हैं ‘से वसुमं’ इत्यादि—

आ पूर्वेकत प्रकारनां समस्त विशेषणवाणो ज्ये मुनिजन “नारमते कंचन” शेषेषु सावध व्यापार इत्या नभी. वर्या देशी आदि समस्त विशेषणोभी मुनिजननी सकल व्याख्या परिशीलनता जाम्ही शक्यते

वे मुनि आवा कोष थे ते देवा कोष थे ? आ वावभा सुत्रकार कोषे थे — से वसुमे इत्यादि.

वर्णः=धुमं तदादेशी=स्वपरकल्याणाभिलाषी, प्रथवा-‘वर्णादेशी’ वर्णः शरीरकान्तिः, तदादेशी=तदभिलाषी, अपि च सः ‘एकप्रमुखः’ एकस्मिन् मोक्षे संयमे वा प्रगतं मुखं यस्य वा एकप्रमुखः=मोक्षे तत्कारणे च निवेशितान्तःकरण, एव विद्विक्प्रतीर्णः=मोक्ष-तत्साधनाभिमुखी प्रवृत्तिर्दिक्, तद्विपरीता विद्विक् सावद्याचरण-रूपा ससाराभिमुखी प्रवृत्तिः ता प्रतीर्णः प्र=प्रकर्षेण तीर्णः=रागद्वेषमलरूपाग-

शरीरकान्तिकी इच्छा रग्वनेवाले को वर्णादेशी कहते हैं। अर्थात्-समस्त जीवों को अपने समान संस्रजने की कामनावाला वर्णादेशी है। मुनिजन समस्त जीवों को आत्मसदृश जानते हैं। तथा मुनिजन-‘एगप्पमुहे’ एकप्रमुख होते हैं, एक केवल मोक्षमें या मोक्षके कारण समयमें उनका अन्तःकरण लगा हुआ रहता है। वे विद्विक्प्रतीर्ण होते हैं, मोक्ष अथवा उनके साधनों की ओर झुकी हुई प्रवृत्तिका नाम दिक् है उससे विपरीत प्रवृत्ति विद्विक् है, सावद्य आचरणरूप ससाराभिमुखी विद्विक्प्रवृत्ति को जिन्होंने अच्छी तरहसे पार कर दिया है, छोड़ दिया है, रागद्वेष जिसके मूल हैं ऐसे अगाध ससाररूपी पारावारसे जो पार हो चुके हैं वे विद्विक्प्रतीर्ण हैं। बाहिरी पदार्थ पुत्र-कलत्रादिकों में एवं आभ्यन्तर में क्रोधादिकों में उन्हें सदा निर्वेद (वैराग्य) होता है। मुनिजन ऐसा ही अपना आचार विचार रग्वते हैं कि जिससे समागवस्था के स्त्रीपुत्रादिकों में ममता न हो सके तथा क्रोधादिक के कारण उपस्थित होने पर

धीर्ति, स्वपर कल्याण तथा शरीर कान्तिनी इच्छा अभिवाधाने वर्णादेशी इहे छे, अर्थात्- समस्त जीवोंने पोताना समान संस्रजवानी कामनावाला वर्णादेशी छे मुनिजन समस्त जीवोंने ओक आत्माइय माने छे अने मुनिजन “एगप्पमुहे” ओकप्रमुख होय छे ओक उषण मोक्षमा अथवा मोक्षना कारण संयममा तेनु अत कण्ठ लाग्यु रहै छे, तेओ विद्विक्प्रतीर्ण होय छे मोक्ष अथवा तेना साधनेनी तरक दणेदी प्रवृत्तिनु नाम दिक् छे, ओनाथी विपरीत प्रवृत्ति विद्विक् छे सावद्य आचरणरूप ससाराभिमुखी विद्विक्प्रवृत्तिने लेने लसीभाति पोते पाउ करै छे-छोडी दीधी छे रागद्वेष लेना भूण छे ओवा अगाध ससाररूपी आगरने लेओ तरा बूझ्या छे तेओ विद्विक्प्रतीर्ण छे आह पदार्थ पुत्र कलत्रादिकमा तेमज आभ्यन्तरमा क्रोधादिकमा लेभने महा वैराग्य थाय छे मुनिजन ओवा न पोताना आचार विचार नजे छे वे लेनाथी ससार अवस्थाना स्त्री पुत्रादिकमा ममता न थइ शके तेम न क्रोधादिकना

संसारपाराधारतीर्ण, एवं 'निर्विण्णाधारी' निर्विण्णः निर्वेदा बाह्ये पुत्रक-  
 म्मात्रौ आम्यन्तर प्राधाशौ च तिरस्कार, परित्याग इत्यर्थ, तद्वान्=निर्विण्णः=  
 पश्चात्प्राप्तमिष्यदुरहित, तस्य चार=आशरणमनुष्ठानमिति याचन, सोऽस्याम्नीति  
 निर्विण्णाधारी=तीर्थकरणधरापुत्रादिपुत्रमार्गानुष्ठापी, किञ्च 'प्रजासु अरत'  
 प्रजायन्त इति प्रजाः=जीवास्तासु अरतः=अनासक्त समारम्भनिवृत्त इत्यर्थः, तत्र  
 ममत्वविरजिता वा, यद्वा-प्रकर्षेण जनयन्ति पुत्रादिकं यास्ता प्रजा याधितस्तासु  
 अरताः अनासक्त, स्त्रियो हि पुरुषं न्नामक्तं नानाप्रकारेण नर्तयन्ति, उक्तञ्च—

मी उन्हें को भी न होना पड़े। इस प्रकार बाह्य और अन्तरंग परिग्रहसे  
 रहित आशरण इनका होता है, इसीका नाम निर्विण्णाधारी है। अर्थात्  
 तीर्थदूर एवं गणधरादिकोनि जिस प्रकार से मुनिमार्गका उपदेश दिया  
 है उसीके अनुसार वे उस मार्गके अनुष्ठायक होते हैं। "प्रजासु अरत"  
 प्रजा शब्दका अर्थ जो पैदा होते हैं ऐसे जीव है। उनमें अरत-अनासक्त  
 मुनिजन होते हैं, ऐसा समारंभ वे नहीं करते कि जिससे जीवोंका  
 अकल्याण, या घानादिक हो। जीवोंमें ममत्वरहित होना भी प्रजामें  
 भरत होना है। अथवा पुत्रादिकोंको उत्पन्न करनेवासी स्त्रियोंका नाम  
 भी प्रजा है। मुनिजन स्त्रीधर्ममें आत्मक्तिसे रिक्त होते हैं, कारण कि  
 वे जानते हैं कि स्त्रिया अपनेमें आसक्त पुत्र्यको अनेक प्रकार के नाच  
 नचायी हैं, कहा भी है—

कारण उपस्थित बना पण तेने को भी न खु पडे. या प्रकारे बाह्य अने  
 अन्तरंग परिग्रहही रहित आशरण तेमनु काय छे ज्वनु व नाम निर्विण्णाधारी  
 छे अर्थात्—तीर्थदूर अने गणधरादिकोके ? प्रकारेही मुनिमार्गनि उपदेश  
 जाये छे के अनुसार ते नाच पर बाह्यनाश तेको काय छे "प्रजासु अरत"  
 प्रजा शब्दने अर्थ ? पैदा काय छे जेवा के लव ते छे जेमा अरत-अनासक्त  
 मुनिजन होय छे जेवा समारंभ के नहीं करता के जेनाभी लवोनु अकल्याण  
 या अथवा पात आदि होय. लवोगा ममत्वरहित रहेवु के पण प्रजामा अरत  
 यनु छे. अथवा पुत्रादिकोने उत्पन्न करवावणी आंकोनु नाम पण प्रजा छे  
 मुनिजन स्त्रीधर्मनी आत्मजिणी विरक्त काय छे. अरत के तेको अलुता होय  
 छे के स्त्रीको पातानामा आसक्त बनार पुत्रने अनेक प्रकारेना नाच नचावे छे  
 कहु पण छे.

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च विचहेतो—विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।  
 तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥  
 आनन्दयन्ति रमयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।  
 एताः प्रविश्य सदय हृदय नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥२॥इति ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च विचहेतोः,  
 विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।  
 तस्मान्नरेण कुल-शीलसमन्वितेन,  
 नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥  
 आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,  
 निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।  
 एताः प्रविश्य सदय हृदयं नराणां,  
 किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥

ये धनके लिये हसती और रोती रहती हैं । दूसरो को विश्वास करा देती हैं पर स्वयं दूसरो का विश्वास नहीं करतीं । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्तव्य है कि वे इनका श्मशानके घटके समान परिहार कर दें ।

ये पुरुषों के चित्तमें प्रवेश कर उसे कभी आनन्दित करती हैं तो कभी उसे मद्दोन्मत्त बना देती हैं । कभी उसकी नाना प्रकारसे विडम्बना करती हैं, तो कभी विचारे का अपमान करती हैं । कभी उससे रमती हैं तो कभी कभी उसे विपादयुक्त कर देती हैं । ऐसी कौनसी क्रियाएं बचती हैं जो ये न करती हों ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च विचहेतो , विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।  
 तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ” ॥ १ ॥

“ आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।

एताः प्रविश्य सदय हृदय नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥२॥

ये धनके भाटे हसती अने रोती रहे छे भीष्मने पोताने विश्वास करावी हे छे परंतु पोते भीष्मने विश्वास करती नथी आ भाटे कुलीन पुरुषोंतु ये कर्तव्य छे के तेओ अने श्मशाननी घटीनी भाइक परिहार करी हे ये पुरे पोना चित्तमा प्रवेश करी क्यारेक आनन्दित बनावे छे तो क्यारेक मद्दोन्मत्त बनावी हे छे क्यारेक अने नाना प्रकारे मस्करी करे छे तो क्यारेक भीष्मरातु अपमान करे छे क्यारेक रमाटे छे तो क्यारेक भिन्न बनावी हे छे अथी कोछ किथा नथी हे जे ये न करती होय.

एतादृशं कंचन—कमपि प्राप्तातिपातादिसावधन्यापार नारमते—न कुरुत,  
बर्णादेशीत्यादिसकलविशेषणैर्मुनेः सक्छाचारपरिशीलनशीलस्वमवगम्यत इति  
इत्यम् ॥ सू० ४ ॥

यः पुनरतादृशं स कीदृशा भवतीति वृश्चयति—‘से वसुमं’ स्यादि ।

मूखम्—से वसुम सन्ध समझागयपद्माणेण अप्याणण अकरणिज्ज  
पावकम्म त नो अझेसी, ज सम्मति पासह त मोणति पासह, ज  
मोणति पासह तं सम्मति पासह, न इम सक सिडिलेहि अडिज्जमा  
णेहि गुणासापहिं थकसमायारेहिं पमत्तेहिं अगारमावसत्तेहिं, मुणी  
मोणं समायाए धुणे कम्मसररिण, पंत वृह सेवति वीरा सम्मत्त  
दसिणो, एत ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए  
त्तिथेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—स वसुमान सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनात्मनाऽकरणीयं पापं कर्म तन्नो भन्वेपी,  
पसम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तस्सम्यगिति पश्यत; नैत-  
च्छक्यं शिविसैराद्रर्षमाणैर्गुणास्वादेर्वक्रममाचारैः प्रमत्तैरगारमावसद्भिः, मुनिभौनं  
समादाय धुनीयात् कर्मस्तीरकं, प्रान्तं रूपं सेवन्ते वीराः सम्यक्पदार्थिनः, एष  
भोक्तरो मुनिः, तीर्थो मुक्ता विरतो भ्याख्यात इति व्रथीभि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन “ नारमते  
कंचन ” कोई भी सावध व्यापार नहीं करते हैं । इन बर्णादेशी आदि  
समस्त विशेषणों से मुनि में अपने सकल आचारों की परिशीलन  
शीलता जामी जाती है ॥ सू० ४ ॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?—इस बात को कहते हैं  
‘ से वसुमं ’ इत्यादि—

अथ पूर्वोक्त प्रकारनां समस्त विशेषणवाणां ये मुनिजन “ नारमते कंचन ”  
शेषस्य सावध व्यापार इत्या नशी. बर्णादेशी आदि समस्त विशेषणोधी  
मुनिजननी सकल आचारना परिशीलनता आधी शक्यते

ये मुनि आवा बोधे ते देवा बोधे ॥ अथ पातना सूत्रकार बोधे ॥

— से वसुमं इत्यादि

ટીકા—‘સ વસુમાન્’—इत्यादि, वसु=द्रव्य भावतः सयमरूप, तदस्या-  
स्तीति वसुमान्=तपः सयमादिमान् निवृत्तपचनपाचनादिसावद्यव्यापार इत्यर्थः,  
स मुनिः सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन सम्=सम्यक् अनु=साम्यादागत=प्राप्त=समन्वागतं  
सर्वं च तत्समन्वागतं सर्वसमन्वागतं, तादृश प्रज्ञान पदार्थसार्थाधिर्भावकमाचार्य-  
परम्पराऽऽगतं यस्य स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानस्तेन सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन—तादृश-

वसु शब्दका अर्थ द्रव્ય है । द्रव्य दो प्रकार का है । १-द्रव्यद्रव्य  
( बाह्य द्रव्य ), २-भावद्रव्य । द्रव्यद्रव्य हिरण्य सुवर्ण धनादिक है । तप  
सयमादिरूप भावद्रव्य हैं । यह भावद्रव्य जिनके श्रोता है वे वसुमान कहे  
जाते है । मुनिजन भावद्रव्यवाले ही होते है । तप और सयमरूप ही  
द्रव्य इनके पास रहता है । इस द्रव्यका अस्तित्व ही पचनपाचनादिरूप  
सावद्यव्यापारकी निवृत्ति स्वरूप है—अर्थात् जहां ये द्रव्य है वहां पर  
सावद्यव्यापार नहीं होता है । ऐसा वह वसुमान मुनि सर्वसमन्वागत-  
विज्ञानयुक्त आत्मासे यह समझकर कि पापकर्म अकरणीय है उसे नहीं  
गवेषता है—अभिलाषा नहीं करता है । “सर्वसमन्वागत” इस पदमे सर्व,  
सम्, अनु, आगत ऐसे चार शब्द हैं । सम् शब्द का अर्थ—सम्यक्,  
अनु शब्दका अर्थ—साम्यभावसे, आगतका अर्थ है—प्राप्त हुआ, अर्थात्  
निर्दोष समताभावसे प्राप्त हुआ, सर्व पदके साथ समन्वागतका कर्म-  
धारय समास हुआ है । सर्व समस्त जो समन्वागत वह सर्वसमन्वागत  
है । सर्वसमन्वागत प्रज्ञान है जिसे वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है ।

વસુ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે દ્રવ્ય બે પ્રકારનું હોય છે ૧ બાહ્યદ્રવ્ય,  
૨ ભાવદ્રવ્ય બાહ્ય દ્રવ્ય હીરા, માતી, સુવર્ણ અને ધન આદિ છે, અને  
ભાવદ્રવ્ય તપ, સયમ આદિ હોય છે આ ભાવદ્રવ્ય બેની પાસે હોય  
છે તે વસુમાન્ કહેવાય છે મુનિજન ભાવ દ્રવ્યવાળા જ હોય છે, તપ અને  
સયમરૂપી દ્રવ્ય જ તેમની પાસે હોય છે આ દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ પચન-પાચ-  
નાદિરૂપ નાવધ વ્યાપારની નિવૃત્તિ સ્વરૂપ છે અર્થાત્—જ્યાં આ દ્રવ્ય છે ત્યાં  
નાવધ વ્યાપાર હોતો નથી એવા એ વસુમાન્ મુનિ સર્વસમન્વાગતવિજ્ઞાન  
યુક્ત આત્માથી એ સમજીને કે પાપકર્મ અકરણીય છે એને નથી ગવેષતો, એની  
અભિલાષા નથી કરતો “સર્વસમન્વાગત” આ પદમાં સર્વ, સમ્, અનુ, આગત  
એવા ચાર શબ્દો છે સમ્ શબ્દનો અર્થ—સમ્યક્ અનુ શબ્દનો અર્થ—  
સામ્યભાવ આગતનો અર્થ પ્રાપ્ત વસુ અર્થાત્ નિર્દોષ સમતા ભાવથી પ્રાપ્ત  
વસુ તે સમન્વાગત છે, સર્વ પદની સાથે સમન્વાગતનો કર્મધારય સમાસ  
થયો છે સર્વ સમસ્ત બે સમન્વાગત તે સર્વસમન્વાગત છે



रूपपरिगतन आत्मना अकरणीयं=विधातुमयोग्य यत् पापं=पापमनकं कर्म प्राप्तादि-  
पातादिकर्म तत् पापं कर्म नां अन्वेषी तत् अन्वेष्युं=गवेषयितुं शीम यस्य सोऽन्वेषी  
नां मवेत्, परिप्रातपरमार्थेनात्मना पापकर्म नां विधेयमित्याश्रयः । पापकर्मपरि-  
त्यागन सम्यग्ज्ञानं, तन च पापकर्मपरित्याग इति दर्शयति—

‘यन्मम्यगि’—स्यादि—हे शिष्या ! गुर्यं यत् सम्यक्=सम्यग्ज्ञानं सम्यक्च  
वा इति पश्यत ” तन्मौनं=मुनेः कर्म मौनं=सयमाचरणमस्ति; इति पश्यत, एवं

‘माचार्य—समतामाच से मुनिजन जितना श्री सम्यग्ज्ञान प्राप्त  
करते हैं वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है । अथवा गुरुपरपरा से जो ज्ञान  
प्राप्त होता आ रहा है वह श्री सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है । छठवें गुणस्था-  
नबर्ती मुनिको इस गुणस्थानमें जितना ज्ञान होना चाहिये उसकी  
अपेक्षा से ही उस ज्ञान में सर्व विशेषणकी न्यार्थकता समझनी चाहिये,  
पदार्थों के स्वरूपका आविभावक तथा आचार्यपरंपरा से आगत यह  
सर्वसमन्वागतज्ञान जिस आत्मा में होता है वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान  
आत्मा है ।

इस ज्ञानविशिष्ट आत्मा से मुनिजन यह जानते हैं कि पाप-पाप  
जनक प्राणानिपातादिरूप कर्म करनेके अयोग्य हैं । इसलिये वे उनके  
अन्वेषी-गवेषणा करनेके स्वभाववासे नहीं होते हैं—अर्थात् पापगवेषी  
नहीं होते हैं । तात्पर्य यह है कि मुनिजनों की आत्मा परमार्थकी ज्ञाता  
है; अतः वे उस आत्मा से पापकर्म विधेय (करने योग्य) नहीं है—  
ऐसा समझते हैं ।

“यन् सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तस्स

भाषा—समतामाच श्री मुनिजन नेटसु पञ्च सम्यक् ज्ञान प्राप्त करे  
छे ते सबसमन्वागतप्रज्ञान छे अथवा शुद्ध पदार्थी च ज्ञान प्राप्त भवुं  
आन्मु छे जे पञ्च नमसमन्वागतप्रज्ञान छे छसु अनुस्थानवर्ती मुनिने  
आ शुद्धस्थानमा नेटसु ज्ञान यत् जेछके जेनी अपेक्षाधी च जे ज्ञानमा  
सर्व विशेषणनी आसकता समझवी जेछके. परार्थेना स्वस्वपना अपिर्भावक  
तथा आचार्य परपदार्थी आगत ज्ञा सबसमन्वागत ज्ञान च आन्माभा प्रभटे  
छे ते सबसमन्वागतप्रज्ञान आत्मा छे आ ज्ञानविशिष्ट आत्माधी मुनिजन जे  
बुद्धि छे छे पाप-पापजनक प्राणानिपातादिरूप कर्म करवा जेना नशी आ  
भाटे ते जेना अ वेपी-गवेषणा करवाना स्वभाववाचक यता नशी अर्थात् पश्य  
गवेषी बनता नवा. मुनिजनना अप्रभा परमार्थेना ज्ञान छे आधी जे  
आत्मादास पापकर्म करवावेना नशी जेस अ समझे छे

यन्मौनमिति पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत, उभयोरैकत्वमित्यभिव्यञ्जनायोभयत्राप्युद्देश्यविधेययोर्विपर्यासेन कथनमिति बोध्यम्, ज्ञानस्य फलं विरतिः सम्यक्त्वाभिव्यञ्जनं च, कैरेतत्समाचरितुं न शक्यत इत्याह—‘नैतच्छक्य’—मित्यादि। शिथिलैः=मन्दपरिणामत्वाद् ईषद्वीर्यैः संयमे तपसि वा धृतिदृढतावर्जितैरवसन्नम्यगिति पश्यत” —पापकर्मके परित्याग से सम्यग्ज्ञान, उससे पापकर्म का परित्याग होता है, यह बात इस सूत्रांश से सूत्रकार प्रकट करते हुए कहते हैं—

हे शिष्यवृन्द ! तुम जिसे सम्यग्ज्ञान समझते हो वह मुनिका कर्म—संयमाचरणरूप है और जो मुनिका कर्म है वह सम्यग्ज्ञान है—ऐसा समझो। इन दोनों में एकता है इस बातको प्रकट करनेके लिये दोनों जगह इन दोनों उद्देश्य और विधेयोंका विपर्यास—हेरफेर से कथन किया गया है—ऐसा समझना चाहिये। ज्ञानका फल विरति और सम्यक्त्व का अभिव्यंजन—प्रकट करना—है।

भावार्थ—प्रथम कथनमें सम्यग्ज्ञान उद्देश्य और मौन—मुनिकर्म—संयमाचरण विधेय है, द्वितीय कथनमें मुनिकर्म उद्देश्य और सम्यग्ज्ञान विधेय है। चारित्र्यका निर्माण करना और सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव करना ये उस ज्ञानके फल हैं।

नैतच्छक्यमित्यादि—यह सम्यग्ज्ञानरूप मुनि—कर्म शिथिल आर्द्रधर्माण, गुणास्वादी, वक्रसमाचारवाले, प्रमत्त, गृहस्थ पुरुषों

“यत् सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत।”

पापकर्मना परित्यागधी सम्यग्ज्ञान, येनाधी पापकर्मनाः परित्याग धाय छे आ वात आ सूत्रांशधी सूत्रकार प्रकट करता कहे छे—

हे शिष्यवृन्द ! तमि जेने सम्यग्ज्ञान समझे छे ते मुनिना कर्म—संयमाचरणरूप छे अने जे मुनितु कर्म छे ते सम्यग्ज्ञान छे अने समझे आ अन्तेमा अकता छे आ वात प्रकट करवा माटे अन्ते स्थणे अन्ते उद्देश्य अने विधेयाना विपर्यास—हेरफेरधी कथन करेले छे—अने समझवतु जेई अने ज्ञानतु इण विरति अने सम्यक्त्वतु अभिव्यंजन—प्रकट करवतु ते छे

भावार्थ—प्रथम कथनमा सम्यग्ज्ञान उद्देश्य अने मौन—मुनिकर्म—संयमाचरण विधेय, पीन कथनमा मुनिकर्म उद्देश्य अने सम्यग्ज्ञान विधेय छे चारित्र्यतु निर्माण करवतु अने सम्यक्त्वतु प्रादुर्भाव करवतु ते अने ज्ञानतु इण छे

नैतच्छक्यमित्यादि—आ सम्यग्ज्ञानरूप मुनिकर्म शिथिल, आर्द्रधर्माण, गुणास्वादित, वक्र समाचारवाला, प्रमत्त, गृहस्थ पुरुषधी समाचरित अनी शकतु

पार्श्वस्यादिभिः आर्द्रार्धमाणैः=पुत्राद्यमित्यङ्गमेत्या अर्द्धीक्रियमाणैः; अथ च गुणास्वास्तैः  
 गुणेषु=शब्दादिषु आस्वाद=अभिरुचिर्येषां ते गुणान्वादास्तैः, एवं षष्ठसमाचारैः-  
 षष्ठ=कुटिलः समाचारः=अनुष्ठानं नर्तनमिति वा येषां ते षष्ठसमाचारास्तैः-  
 मायानिकृतिमङ्गि., किञ्च प्रमत्तैः=निद्रादिष्वनिधममादृशङ्गि 'अगारमावसङ्गि.,  
 आगारं=गृहम् 'आवसङ्गि' -आ=समन्तादतिगृह्यया वसङ्गि -गृहवासिभिः,  
 एतत्तद्वैः पुरुषैरेतत्सम्यग्ज्ञानरूपमौनानुष्ठानं विघातुं न शक्यं मथति । केनेदमौना  
 नुष्ठानं कर्तुं शक्यमित्याह-'मुनिः' इत्यादि । मुनिः=श्रियिष्ठादिपूर्वोक्तविशेष-  
 पथवर्णितः संयमी मौने-सर्वसाधयन्वापारपरित्यागरूपं मुनिमात्र समादाय=सम्य

से नहीं समाचारित हो सकता है। जो शिथिल हैं-मन्दपरिणामी  
 होनेसे कमजोर-संयम या तप आराधनमें धैर्य एवं दृढता से रहित हैं  
 ऐसे अथसत्र पार्श्वस्थ-आदिकों से, पुत्रादिकोंमें जिनके ममत्व परिणाम  
 जाग्रत है अतएव उससे जिनका अंतःकरण मौजा-अतिशय मुग्ध बना  
 हुआ है ऐसे आर्द्रीक्रियमाण-अत्यन्तमोही भानवोंसे, शब्दादिक विषयों  
 में जिनकी रुचि लवलीन है, वे गुणस्वादी हैं ऐसे गुणस्वादियों से, षष्ठ-  
 समाचारचारणों-जिनका अनुष्ठान अथवा कर्मन कुटिल है ऐसे मायावी  
 मनुष्यों से, निद्रादिक पञ्चप्रमाद सेवन करनेवालों से, और जो गृहमें  
 अत्यंत गृह्यता से रहते हैं ऐसे गृहवासी गृहस्थों से कमी भी यह मुनि-  
 कर्म सेवित नहीं हो सकता है। इस मौनको कौन आचर सकता है? इसके  
 लिये "मुनिर्मौनं समादाय पुनीयात् कर्मशरीरकर्म" सूत्रकार यह कहते  
 हैं अर्थात्-उपर्युक्त इन शिथिलादिक विशेषणोंसे जो रहित हैं ऐसे संयमी  
 मनुष्य ही सर्वसाधयन्वापार का परित्यागरूप मुनिमात्र-मौन का अच्छी

नहीं ने शिथिल थे-मन्दपरिणामी होनाथी कमजोर-संयम वा तप आराध  
 नाभा धैर्य तेमवर दृढताथी स्थित थे जेवा अथसत्र पार्श्वस्थ-आदिकोंथी पुत्र  
 दिकोंभा नेनु ममत्व परिष्काम जाग्रत थे भा? तेनाथी नेनु अन्तःकरण कर्तव्यकेसु-  
 अतिशय मुग्ध अनेसु थे जेवा आर्द्रीक्रियमाण-अत्यंत मोही भानवोंथी, शब्दादिक  
 विषयोंभा नेनी रुचि लवलीन थे ते अणुस्वादी थे जेवा अणुस्वादीआथी, वेके  
 समाचारचारणों-नेनु अनुष्ठान अने वगन कुटिल थे जेवा मायावी मनुष्योंथी  
 निद्रादिक पात्र प्रमाद सेवन करवाचारणों, अने ने घरभां भण्डी आसक्तिथी रहे  
 थे जेवा घरवासी गृहस्थोंथी अथरेव पक्ष आ मुनि-कर्म सेवित यथ शक्य  
 नहीं आ मौनने कोण आचरी यके थे? अथ भा? मुनिर्मौनं" सूत्रकार  
 सूत्रकार कहे थे अर्थात्-उपर्युक्त भा शिथिलादिक विशेषणोंथी ने स्थित थे  
 जेवा अथभी मनुष्य वर अथ आचर आचरना परित्यागइय मुनिमात्र-मौनने आरं

गृहीत्वा कर्मशरीरक=कर्मण शरीरमुपलक्षणादौदारिकमपि युनीयान्=कम्पयेत्  
 कर्माणि दूरीकुर्यादित्यर्थः, 'पुननप्रकारमेवाह—' प्रान्त ' मिन्यादि, सम्यक्त्वदर्शिनः  
 समन्वदशिनो वा वीराः=कर्मविदारणकुशलाः प्रान्तं=निम्सार पुराणकुलत्यादिक  
 पर्युपित बलचणकादिनिपन्न तक्रमिश्रितमन्नादिक वा रुक्षं=घृतादिकविकृतिवर्जि-  
 तम् अशन तदपि विगताङ्गारधर्मं सेवन्ते=शुद्धते, स कीदृशो भवती ? त्याह 'एषः=  
 प्रान्तरूक्षाहारी मुनिः=संयमी ओघन्तरो भवति, स एष तीर्णो विमुक्तो विरतो

तरह ग्रहण करके कर्मशरीर—कर्मणशरीर, एव उपलक्षण से इस औदा-  
 रिक शरीर का भी कम्पन—विनाश कर देते हैं। विनाशप्रकारको सूत्र-  
 कार—“ प्रान्त रुक्ष सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिनः ” इन सूत्रांश में प्रकट  
 करते हैं—सम्यक्त्व अथवा समन्व को देखनेका जिनका स्वभाव है वे  
 सम्यक्त्वदर्शी हैं, ऐसे मनुष्य ही कर्मों के विनाश करने में कुशल होते  
 हैं, इसलिये वे वीर कहलाते हैं। ये वीर प्रान्त—निःसार पुरानी कुलथी  
 आदिका, पर्युपित—शीतल बल्ल—बालचना आदिसे तैयार हुआ, अथवा  
 छाछ आदिसे मिश्रित बालचना आदिका, तथा रुक्ष—घृतादिक विकृतिसे  
 रहित ऐसे भोजनका अगार धूमादि दोषों से रहित होने पर ही सेवन  
 करते हैं आहाररूपमें ग्रहण करते हैं। प्रान्त एव रुक्ष आहार लेनेवाले ये  
 मुनिजन ओघन्तर होते हैं। भाव ओघरूप संसार से पार हो जाते हैं।  
 “ तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यानः ” इसलिये ये ओघन्तर मुनि तीर्ण  
 मुक्त और विरत तीर्थङ्कर प्रसुद्धारा कहे गये हैं।

रीते ब्रह्म ङी कर्मशरीर—कर्मणशरीर एव उपलक्षणार्थी या औदारिक शरीरने  
 पणु विनाश करी है उ विनाशना प्रकारने सूत्रकार “ प्रान्त रुक्ष ” इत्यादि  
 सूत्राशयी प्रकट करे छे सम्यक्त्व अथवा समन्व जेवानो जेना स्वभाव छे  
 तेजो सम्यक्त्वदर्शी छे जेवा मनुष्य व कर्मेना विनाश करवाभा दुशण होय  
 छे भाटे ते वीर उहेवाय छे जे वीर प्रान्त नि सां पुरानी कुलथी आदिना,  
 पर्युपित—शीतल बल्ल—बालचना आदिथी तैयार थयेल अथवा छास आदिथी  
 मिश्रित बालचना आदि, तथा रुक्ष—घृतादिक विकृतिथी रहित जेवा लोचनना  
 अगार धूमादिक दोषोयी रहित होवायी ते सेवन करे छे—आहाररूपमा ब्रह्म  
 करे छे इल आहार लेवावाणा या मुनिजन ओघन्तर जने छे, भाव ओघ  
 रूप सनारथी पां थं जय छे “ तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यान ” या भाटे  
 जे ओघन्तर मुनि तीर्थ, मुक्त जने विरत तीर्थकर प्रसुद्धारा उहेवाया छे

मन्थीति व्याख्याताः—तीर्थकृद्भिः कथितः, सकलसमारम्भमिति रागद्वेपरहितो  
 मुनिर्निवन्नपि मुक्त एव पातिकर्मसमुष्टयाभावादित्याश्रयः । इति प्रथमि—इत्य  
 स्यार्यस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समारंभों से रहित, राग और द्वेषसे वर्जित मुनि  
 पार पातिया कर्मों के अभाव से जीते हुए भी मुक्त ही है । “ इति  
 प्रथमि ” इन पदों का अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्यायनका तृतीय उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समारंभों से रहित राग अने द्वेषही रहित मुनि पार  
 पातिया कर्मों का अभाव ही उच्यता दोषाख्यां पक्ष तेमुक्त अ छे “ इति प्रथमि ”  
 का पहिले अर्थ आगण कहेवाछ अथो छे

पांचव्या अध्यायनको तीजे उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥



## अथ पञ्चमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ।

गतस्तृतीयोद्देश इदानीं तुरीयः प्रारभ्यते । पूर्वत्र परिग्रहवतो दोषमुद्घात्य तन्निरासेनैव विरत सयमी भवतीति वर्णितम् । अत्राव्यक्तव्यैक्यस्य मुनित्व प्रणश्यतीति प्रदर्शनाय तस्य प्रत्यवायाः प्रतिपादनीयाः सन्तीति सम्प्रति तस्य दोषोद्घातनायाह—‘ गामाणु ’ इत्यादि ।

मूलम्—गामाणुगामं दूडज्जमाणस्स दुज्जायं दुप्परक्कंते भवइ अवियत्तस्स भिक्खुणो ॥ सू० १ ॥

छाया—ग्रामानुग्रामं द्रवतो ( विहरतः ) दुर्यातं दुप्पराक्रान्त भवत्यव्यक्तस्य भिक्षोः ॥ सू० १ ॥

‘ ग्रामानुग्राम ’ मित्यादि, ‘ ग्रामानुग्रामं ’ ग्रसति बुद्ध्यादिगुण यः स

## ॥ पांचवें अध्ययनका चतुर्थ उद्देश ॥

तृतीय उद्देशका वर्णन किया अथ चतुर्थ उद्देशका सूत्रकार वर्णन करते हैं ।

पूर्व उद्देशमें परिग्रहीके दोषोंका कथन कर यह बतलाया गया है कि परिग्रहके त्यागसे ही त्रती सयमी होता है । इस उद्देशमें अव्यक्त-अनभिज्ञ एकलविहारी से मुनिपना नहीं सध सकता है—इस विषयको दिखानेके लिये उसके प्रत्यवाय-विघ्नसमूह प्रतिपादनीय-कथन करनेके योग्य हैं । इसलिये सूत्रकार सर्वप्रथम उसके दोषोंके प्रकट करनेके लिये कहते हैं “ गामाणु० ” इत्यादि—

बुद्धि आदि गुणोंका जो ग्रस करता है—अर्थात् बुद्ध्यादिक गुण

## पांचमा अध्ययनना शोथो उद्देश

त्रीण उद्देशानु वर्णन करुं, इवे सूत्रकार शोथो उद्देशानु वर्णन करे छे

पूर्व उद्देशमा परिग्रहीना दोषोनु वर्णन करी अये षताववामा आञ्जु छे के परिग्रहना त्यागशी न त्रती सयमी भवे छे आ उद्देशमा अव्यक्त-अन-भिज्ञ एकलविहारीथी मुनिपणुं सधाई शकतु नथी—आ विषय समजववा भाटे अेना प्रत्यवाय-विघ्नसमूह प्रतिपादनीय-कथन करवा योग्य छे आ भाटे सूत्रकार सर्व प्रथम तेना दोषोने प्रकट करवा भाटे कडे छे “ गामाणु० ” इत्यादि—

बुद्धि आदि गुणोना ने नाश करे छे अर्थात् बुद्धि आदिना गुण ल्या

ग्रामस्तस्माद्ग्रामाद् अनु=पश्चादितरो ग्रामो ग्रामानुग्राम', यथबलवि स ग्रामस्तन्निभो गम्यमानोऽनुग्रामस्त द्रवत =एकचर्यया विहरत'-अव्यक्तस्य=भुतेनावस्यया घोमयेन वा वास्तव्य मिक्षाः=मिक्षाशीलस्य मुने दुर्यातं-दुष्ट गमनं, तस्य विहारं निन्द्यमित्यर्थः, दुष्पराक्रान्तं=दुष्टं पराक्रान्तं=पराक्रमण तस्य पराक्रमणस्फोरकं निन्द्यं भवति, अव्यक्तस्यैकचर्यया चारिभान्तरायादयेन ब्रह्मचर्यस्वसनादख्यम्मावात् ।

जहा पर नियाम करने से प्रायः शिथिल होते हैं उसका नाम ग्राम है । उससे दूसरा गम्यमान ग्राम-जहां जाया जाता है-बह अनुग्राम है । एक चर्या से-एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करनेवाले, जो आगम से अव्यक्त अनभिज्ञ है, या वयसे अव्यक्त है, अथवा आगम वय दोनोंसे अव्यक्त है, उस मुनिका विहार निन्द्य है । एकाकी विहार करनेका उसका पराक्रम निन्दा योग्य है-प्रशंसनीय नहीं है-आगमानुकूल नहीं है । कारण कि इस प्रकारके मुनिको उस एकाकी विहारमें चारित्र अन्तरायके उदयसे ब्रह्मचर्यव्रतकी स्वसना अवश्यभाषी है ।

भाषार्थ-आगमादि से जो अव्यक्त है ऐसे मुनिका एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करना उचित नहीं है । जो मुनिजन एकाकी विहार करने के अपने पराक्रमकी प्रशंसा करते हैं । उनका इस प्रकारका कथन निन्द्य है । कारण कि श्रुतादि से अव्यक्त मुनिका वह एकाकी विहार उसके ब्रह्मचर्यव्रतकी क्षतिको कारण अवश्य बन जाता है ।

निवास करवाधी भरेभर शिथिल बने छे जेनु नाम ग्राम छे जेनाधी पीडु अभ्यमान ग्राम-अथ कथाय छे ते जनुग्राम छे जेकचर्याधी जेकाकी ग्रामानुग्राम विहार करवावाण्य के आगमधी अव्यक्त-अनभिज्ञ छे जववा उभरधी अव्यक्त छे जववा आगम बने वय बनेधी अव्यक्त छे जेवा मुनिने विहार निन्द छे जेकाकी विहार करवानु तेनु पराक्रम निन्दा योग्य छे-प्रशंसनीय नहीं-आगम अनुकूल नहीं कारण के का प्रकारना मुनिना तेवा जेकाकी विहारधी चारित्र अतशयना उदयधी ब्रह्मचर्य व्रतनी स्वसना निन्दित बनी छे छे

भाषार्थ-आगमधी के अव्यक्त छे जेवा मुनिने जेकाकी ग्रामानुग्राम विहार करवे उचित नहीं ? मुनिजन जेकाकी विहार करीने पिताना पराक्रमनी प्रशंसा करे छे तेनु जना प्रकारनु कथन निन्द छे कारण के श्रुतादिधी अव्यक्त मुनिने ते जेकाकी विहार तेना ब्रह्मचर्य व्रतनी क्षति (नाश)नु कारण बनी जाय छे

व्यक्ताव्यक्तभेदेन मुनिर्द्विविधः, तत्र चतुर्भङ्गी यथा—श्रुतेनाव्यक्तो वयसाप्यव्यक्तः (१) श्रुतेनाऽव्यक्तो वयसा व्यक्तः (२) श्रुतेन व्यक्तो वयसा चाव्यक्तः (३) श्रुतेन व्यक्तो वयसाऽपि व्यक्तः (४) ।

तत्र श्रुतेन वयसा चाव्यक्तः—श्रुतेनाव्यक्तः=आगमानभिज्ञः, वयसा चाऽव्यक्तोऽल्पवयस्कः अष्टवर्षादारभ्य पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तः, एवं चोभयथाऽप्यव्यक्तस्य संयमात्मविराधनयोः सम्भवान्नैकचर्या कल्पते, एष प्रथमो भङ्गः (१) ।

श्रुतेनाव्यक्तस्य वयसा च व्यक्तस्यापि सा न कल्पते, श्रुतस्यानवगमेनोभयविराधनासम्भवात् इति द्वितीयो भङ्गः (२) ।

व्यक्त और अव्यक्त के भेदसे मुनि दो प्रकारके हैं । यहां पर यह चतुर्भङ्गी बनती है, जैसे—(१) जो श्रुतसे भी अव्यक्त है और वयसे भी अव्यक्त है, (२) श्रुतसे अव्यक्त है, वयसे व्यक्त है, (३) श्रुतसे जो व्यक्त है, वयसे अव्यक्त है, (४) श्रुतसे भी व्यक्त है और वयसे भी व्यक्त है ।

इनमें “श्रुत और वयसे अव्यक्त है” इस प्रथम भंगका खुलासा अर्थ इस प्रकार है, श्रुतसे अव्यक्तका मतलब आगमानभिज्ञसे है—जो आगमका ज्ञाता नहीं है। वयसे अव्यक्तका अर्थ अल्पवयस्कसे है। आठ वर्षसे लेकर २५ वर्ष तकका साधु अल्पवयस्क माना गया है। इस तरह दोनों प्रकारसे जो अव्यक्त है उसके संयमकी और आत्माकी विराधना सभचित है। इससे एकाकी विहार इसका कल्पित नहीं है। यह प्रथम भंग है।

श्रुतसे अव्यक्त और वयसे व्यक्त मुनिकी भी एकचर्या कल्प्य नहीं

व्यक्त अने अव्यक्तता लेतधी मुनि के प्रकारना छे अछिया अे अतु-  
लैगी अने छे जेभ (१) जे श्रुतधी पणु अव्यक्त छे, अने वयधी पणु अव्यक्त  
छे (२) श्रुतधी अव्यक्त छे, वयधी व्यक्त छे, (३) श्रुतधी जे व्यक्त छे वयधी  
अव्यक्त छे, (४) श्रुतधी पणु व्यक्त छे अने वयधी पणु व्यक्त छे

आभा “श्रुत अने वयधी अव्यक्त छे” आ प्रथम लगने खुलासे आ  
प्रकारे छे. श्रुतधी अव्यक्तता जे मतलब जे आगमने ज्ञाता नहीं वयधी नानी  
उभरने छे आठ वर्षधी भाडी २५ वर्ष सुधीने साधु अल्प वयस्क मानवामा  
आवेला छे, आ रीते अने प्रकारधी जे अव्यक्त छे तेना संयमनी अने आत्मानी  
विराधना सभचित छे अेधी अेकाकी विहार तेना कल्प नहीं. आ प्रथम  
लग छे श्रुतधी अव्यक्त अने वयधी व्यक्त मुनिकी पणु अेकचर्या कल्पित



युतेन व्यक्तस्य वयसा धान्यक्तस्यापि सा न कल्पते; अन्यवयस्यस्य स्व  
मात्रापत्त्यादिना सकलजनतोपहास्याप्रस्थात् । परिपदोपसर्गादिसहनासम्भवाच्च ।  
एष तृतीयो भङ्गः (३) ।

उभयया व्यक्तानामष्टगुणसम्पन्नानां प्रतिमाप्रतिपमानां स्वविरक्तन्यिकानां  
वा कारणवशादकषर्या कल्पत । कारणामावे च तपामपि प्रतिपिद्वैकषर्या, अष्टगुणा -  
अद्धा-सत्य-मेघा-बहुभुतत्व-शक्त्य-कलेशित्व-श्रुति-वीर्यात्मका स्यानाङ्गाष्टमस्यानो  
है । कारण कि शास्त्र-आगमसे अनभिज्ञ होने के कारण उसके उभय-  
सयम और आत्माकी विराधना संभवित है । यह द्वितीय भंग है ।

भुतसे व्यक्त और वयसे अभ्यक्त मुनिकी भी एकषर्या कल्पित  
नहीं है । कारण कि अस्यवयस्क होनेसे यह मुनि स्वामाधिक्य अपलत्ता  
की वजहसे सकल जनता की हंसीका पात्र हो जाता है । तथा वह परी  
पह और उपसर्गादिकको भी सहन नहीं कर सकता है । यह तृतीय भंग है ।

जो मुनि दोनों प्रकारसे व्यक्त हैं और आठ गुणोंसे सपन्न हैं उनके  
लिये, और जो प्रतिमाओंके धारक हैं उनके लिये, तथा जो स्वविरक्तन्यी  
हैं कारणवशा उनके लिये एकषर्या कल्पित है, परन्तु कारण के अभावमें  
स्वविरक्तन्यीकी एकषर्या प्रतिपिद्ध है । अद्धा, सत्य, मेघा, बहुभुतत्व,  
शक्ति, अफ्लेशित्व, श्रुति और वीर्य य ८ आठ गुण स्यानाङ्गके आठवें  
स्थान में कहे हुए हैं । एकषर्या में शुक्ति समिति भावि जो सायु के गुण  
हैं उनमें दोषमाहृत्य की समावना रहती है, जैसे कि पूर्वोक्त परिस्थिति

नधी कारण के शास्त्र-आगमधी अनभिज्ञता दोषधी तेना जन्ने सयम जन्ने  
अभ्यानी विराधना संभवित छे आ जीजे भज छे

भुतधी व्यक्त जन्ने वयधी अभ्यक्त मुनिधी पक्ष ज्येष्ठषर्या कल्पित नधी  
कारण के नापी उभय दोषधी ते मुनि स्वामाधिक्य अपलत्ताना कारणे सकल  
जनतानी हंसीने पात्र जनी जाय छे तथा जे परिपिद्ध जन्ने उपसर्गादिकने पक्ष  
सहन करी शकते नधी आ जीजे भज छे

जे मुनि जन्ने प्रकारधी व्यक्त छे जन्ने आठ गुणधी सपन्न छे तेना आठे  
जन्ने जे प्रतिमाज्जेना धारक छे तेना आठे तथा जे स्वविरक्तन्यी छे कारणवशा तेना  
आठे ज्येष्ठषर्या कल्पित छे परन्तु कारणना अभावमां स्वविरक्तन्यीने ज्येष्ठषर्या  
प्रतिपिद्ध छे अद्धा, सत्य, मेघा, बहुभुतत्व, शक्ति, अफ्लेशित्व, श्रुति जन्ने  
वीर्य आठ गुण स्यानाङ्गना आठमा स्थानमां कहेल छे ज्येष्ठषर्यामा, शुक्ति समिति  
भावि जे सायुना शुक्ति छे तेमां दोष जन्ने व्यक्तनी संभावना रहे छे ते पक्ष

સન્તઃ કુપ્યન્તિ=ક્રુધ્યન્તિ, અત્ર ઘૃનિવાચકશબ્દં વિહાય માનવશબ્દેન કથનમેકાકિ-  
વિહારિણો નિન્દાસ્પદત્વસૂચનાર્થમ્; માપન્તે ચાહમનેન કથમપમાનિતઃ इत्यादि ।

યદ્દ્વૈવં કથયન્તિ-કિં પરેઽપ્યનુચિતાચારચારિણો ન સન્તિ યદસ્માનેવાધિશ્લિપ-  
ન્તિ ભવન્ત ઇત્યાદિ બ્રુવન્તઃ સંતપ્યન્તે । અથવા-વચસાઽપ્યુક્તા एते व्यर्थजीविनः  
कुक्षिम्भरा भवन्ति-इत्यादिवाक्यैरभिहिताः कुप्यन्ति, अपि-शब्दो भिन्नक्रमस्तेन  
कुप्यन्तीत्यनेनान्वयस्ततः अभिशपन्ति वा । कथं पुनरिमे नरकनिगोदादिपातजन-

में घृनि शब्दका प्रयोग न कर सामान्य मानव शब्दका प्रयोग किया  
है उससे यह सूचित होता है कि एकाकी विहार करनेवाला साधु निन्दा  
का पात्र है । एकाकी विहार करनेवाले साधुको जब कोई गृहस्थ-  
जन समझाता है तो उससे अपना अपमान समझते हैं और कहते हैं  
कि मैं इससे क्यों अपमानित किया जाता हूं, इस बातको विचार कर  
वे उस समझानेवाले पर क्रुपित हो उठते हैं । अथवा अपने को सम-  
झानेवाले गृहस्थजनसे वे यह कह दिया करते हैं कि इस प्रकार के अनु-  
चित आचारका आचरण करनेवाले क्या और दूसरे नहीं हैं जो आप  
हमारा ही तिरस्कार कर रहे हैं, हमें ही समझा रहे हैं, इस प्रकार से भी  
वे संतप्त हो उठते हैं । अथवा इनका जीवन ही व्यर्थ है ये तो अपने  
उदर निर्वाह के लिये ही साधु हुए हैं ” इस प्रकार के वचनमात्रसे कहे  
जाने पर भी ये उन पर क्रोधित हो उठते हैं । “अपि” शब्द भिन्न-  
क्रमवाला है “कुप्यन्ति” इस क्रियाके साथ उसका संबन्ध होने से  
कुप्यन्ति अपि ” क्रोध भी करते हैं और “अभिशापन्ति” शाप भी देते

સામાન્ય માનવશબ્દનો પ્રયોગ કરેલ છે એથી એ સૂચિત થાય છે કે એકાકી વિહાર  
કરવાવાળા સાધુ નિંદાને પાત્ર છે એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુને જો કોઈ  
ગૃહસ્થજનન સમજાવે છે તો તેનાથી તે પોતાનું અપમાન સમજે છે અને કહે છે  
કે આ શા માટે મારે અપમાન કરે છે આ વાતનો વિચાર કરીને તે સમજાવવા-  
વાળા ઉપર ક્રોધિત બને છે, અથવા તેને સમજાવનાર ગૃહસ્થજનને તે એવું સભ-  
ળાવે છે કે આવા પ્રકારના અનુચિત આચારનું આચરણ કરવાવાળા શુ કોઈ બીજા  
નથી ? જે આપ આમરે જ તિરસ્કાર કરતા રહી છે અમને જ સમજાવો છે  
આ પ્રકારથી પણ તે સતપ્ત બને છે અથવા ‘એમનું જીવન વ્યર્થ છે, એ  
તો પોતાના ઉદર નિર્વાહ માટે જ સાધુ થયેલ છે’-આ પ્રકારના વચન માત્ર  
કહેતા જ તે ક્રોધિત બની જાય છે ‘અપિ’ ગણ્ઠ ભિન્નક્રમવાળો છે  
“કુપ્યન્તિ” આ ક્રિયાની સાથે તેના સંબંધ હોવાથી “કુપ્યન્તિ અપિ” ક્રોધ  
પણ કરે છે અને “અભિશાપન્તિ” શાપ પણ દે છે નરકનિગોદાદિ ગતિયોગા

कण्डोपकारिणा भवन्तीत्याह—‘उन्नतमान’ इत्यादि ‘उन्नतमानश्च’ उन्नतो मानो गर्वो यस्य स उन्नतमानः जात्यादिमानसम्पन्नः नरः=मनुष्या महता मोहेन=प्रबल कपायसे कपायोदयेन मुह्यति=विवेकरहितो भवति ।

ततस्तस्य किं भवतीत्याह—‘संवापा’ इत्यादि। अज्ञानतः=एकपर्यायनित-कुगतिफलमबुध्यमानस्य, अपश्यत्=अज्ञानान्धत्वेन तपःसंपमारापनशिवसुखफल-मपेक्षमात्रस्य तस्य बह्वपः=अभिधा संवापा संवापयन्ति यास्ता संवापाः=वेदना परीपहोपसर्गजन्या भूयो भूय पुनः पुनः दुरतिक्रमाः=दुःखेन लङ्घनीयाः हैं। नरकनिगोदादि गतियोंमें जीषका पतन करानेवाले क्रोधके घशीभूत क्यों होते हैं ? इसक लिये सूत्रकार “ उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन मुह्यति ” कहते हैं अर्थात्—जिसे उन्नत मान होता है, जात्यादि मदसे जो संपन्न होता है, ऐसा मनुष्य बड़े भारी मोहसे—प्रबल कपायसे विवेकरहित हो जाता है। विवेकसे विहीन होने पर वह ‘साधुमानव एकपर्यासे कुगतिरूप फलकी प्राप्ति करता है’—इस सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हो जाता है और साधुमें उसे यह भी नहीं माकूम रहता है कि तप और संयम की आराधनासे शिव-सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है। इस अपनी मनमानी हावतमें उसे परीपह और उपसर्गजन्य अनेक वेदनाओंका पुन पुनः अर्यकर सामना करना पड़ता है। अर्थात् ऐसे एकलबिहारी परीपह उपसर्गजन्य ऐसी २ वेदनाओंके जालमें फँस जाते हैं कि जिनसे रक्षण पाना उन्हें बहुत भारी हो जाता है। इसलिये शिष्यजनों की इन वेद

एवमु पतन कर्त्तावाण्य ज्ञाने वशीभूत केम जने छे । ज्ञाने भाटे सूत्रकार ज्ञानव ”—इत्यादि कहे छे जेते के जेने उन्नत मान वाच छे अति आदिना महती के सपत्त होय छे जेवे मनुष्य बहुत भारी मोहधी-प्रबल कपायना उदयधी विवेकरहित जनी जाय छे विवेक बजरना जनवाधी ते साधु-मानव जेकपर्याधी कुगतिरूप इग्ली प्राप्ति करे छे—आ सिद्धांतधी अनभिज्ञ जनी जाय छे साधु-साधु तेने जे पक्ष माकूम नधी रहैतुं के तप जने सबमनी आराधनाधी शिव-सुखरूप इग्ली प्राप्ति वाच छे आ पेटानी मनमानी हावतमें पस्विक जने उपसर्गजन्य अनेक वेदनाज्येने तेखे बारबार जाय कर सामने करवो पडे छे अर्थात्—आवा जेकलबिहारी पस्विक उपसर्गजन्य जेवी जेवी वेदनाज्येनी जाणमां इस्ती जाय छे के जेनाधी रक्षय भोगवतुं बहुत जरूर जनी जाय छे आ कश्ये शिष्यज्येनी आ वेदनाज्येधी सदा रक्षय जनी रहै आ अभिप्रायधी

का विज्ञेयाः, एकचर्यायां समितिगुण्यादिसाधुगुणेषु दोषवाहुल्यसम्भवात्, तथाहि मुनेरेकाकिनो विहरतः स्त्री-कुक्कुर-परतीर्थिककृतपराभवाविशुद्धभिक्षाद्यन्नदोषनिकरो जागर्ति । रोगाद्यवस्थायां वैद्यावृत्त्याद्यसम्भवेनात्मसंयमविराधनायाश्च सम्भवः, राग-द्वेषादिवशेनैकाकी विचरन् सुखकामी मुनिः सागरतरङ्गव्याकुलो बहिर्निर्गतो मीन इव नश्यति ।

गच्छगतस्य मुनेर्वहुगुणाधिगमो जायते, तथाहि-सामाचार्याः सम्यक्पालन, श्रुताध्ययनादिना ज्ञानाद्युपार्जनं, तन्निश्रयाऽन्येषां गच्छगतवालवृद्धादीनां सम्यग्निर्वाहः, संयमे सीदता स्थिरीकरणादिना जिनप्रवचनप्रभावकत्वात्स्वपरतारकत्व च भवतीति भाव ॥ सू०१ ॥

पूर्वोक्तमेवार्थं प्रकटयति—' वयसा वि ' इत्यादि ।

संपन्न कोई मुनि एकाकी विहार करते समय स्त्री, कुक्कुर, परतीर्थिक-जनद्वारा पराभवित हो सकता है । तथा अविशुद्ध-अकल्पित भिक्षा-दिक से प्राप्त भोजनके ग्रहण करनेसे आहार संबंधी दोषोंसे भी वह नहीं बच सकता है । यदि कभी किसी रोगादिकका आक्रमण इसके ऊपर हो जाता है तो ऐसी दशा में उसकी कोई दूसरा सजातीय मुनि न होनेसे वैद्यावृत्ति भी ठीक न नहीं हो सकती है, ऐसी अवस्थामें वह अपनी आत्मा एवं संयमका विराधक भी हो सकता है । रागद्वेषादिके वशसे अकेला विहार करता हुआ सुखाभिलाषी मुनि समुद्रकी तरङ्गसे व्याकुल होकर उस बाहिर निकले हुए मत्स्यकी तरह नष्ट हो जाता है ।

अपने समुदाय-गच्छमे रहनेवाले मुनिके लिये अनेक गुणोंका लाम होता है, जैसे—मुनिसामाचारीका अच्छी तरहसे पालन होता है ।

कोई पूर्वोक्त परिस्थिति संपन्न मुनि ऐकाकी विहार करती वपते स्त्री, कृतरा, परतीर्थिक जन विगरे द्वारा पराभवित थक शके छे तथा अकल्पित-अविशुद्ध भिक्षा-दिकथी प्राप्त भोजननु ग्रहण करवाथी आहार-संबंधी दोषोथी पणु ते पथी शकतो नथी, जे कोठ वपत कोठ रोगादिकेनु आक्रमणु न्यारे तेना उपर थाय ते ओवी दशामा तेनी कोठ गीज सजातीय मुनि न होवाथी सारवार पणु ठीक ठीक पनी शकती नथी आवी अवस्थाभा ते पोताने आत्मा तेमज सय भने विराधक पणु पने छे रागद्वेष आदिना वशथी ओकला विहार करनार सुष्मभिलाषी मुनि समुद्रना तरगथी व्याकुण पनीने तेगाथी पडार नीकणेला भाछला भाइक विनाश पाये छे

पोताना समुदाय-गच्छमा रहेवापणा मुनि भाटे अनेक गुणोना लाभ थाय

मूल्म्—वयसा वि एग बुद्ध्या कुप्यति माणवा, उन्नयमाणे  
 य नरे महया मोहेण मुञ्जइ सघाहा वहवे भुज्जो भुज्जो वुरइ  
 क्कमा अजाणओ अपासओ, एय ते मा हाउ, एय कुसलस्स दसण,  
 तदिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे, तस्सङ्गी तन्नियेसणे, जय विहारी  
 विचिनिवाई पथनिउट्ठाई पलिघाहिरे पासिय पाणे गच्छिज्जासू०२।

छाया—वयसाऽप्येक उक्ता कुप्यन्ति मानवाः, उन्नतमानस्य नरो महता  
 मोहेन मुह्यति, संवापा बहवो भूयो भूयो दुरतिक्रमा अज्ञानतोऽपश्यत, एतत्ते मा  
 मयतु, एतत्कुशलस्य दर्शनम्, तद्बुद्ध्या तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारः, तस्सङ्गी यन्निवेशनः,  
 यत्तमानविहारी विचिनिपाती पथिनिर्घ्यायी पर्यवसाना इष्टा प्राप्तिनो गच्छेत् ॥ सू०२॥

टीका—‘वयसे’त्यादि, एके=केचन मानवाः तपःसयमाचरणविरताः  
 एकाक्षिविहारिणःमाधय, गृहस्थादिभिर्बचसाऽपि=शिक्षावचनेनापि उक्ताः=कथिता

शास्त्रादिकके अध्ययनसे ज्ञानादिकका उपार्जन होता है। उसकी निम्ना  
 से गच्छमें रहनेवाले अन्य पाठ बृद्ध मुनिजनोंका अच्छी रीतिसे निषाह  
 होता है। संयममें शिथिल होने हुए अन्य मुनिजनोंको उसमें स्थिर करने  
 आदिसे यह जिनप्रवचनका प्रभावक होता है, हमसे उसमें स्व और  
 परकी तारकता भी आती है ॥ सू०१॥

सूत्रकार “वयसा वि” इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थका ही  
 प्रदर्शन करते हैं।

मन्त्रे तप और संयमके आचरणसे रहित कितनेक एकाकी विहार  
 करनेवाले मानव-साधु गृहस्थजनों के ऊपर उनके द्वारा शिक्षावचनोंसे  
 समझाये जाने पर क्रोध करते हैं। यहाँ सूत्रकारने जो साधुजन के अर्थ

उ जेभ के मुनिसाम्राज्यरीनु सारी रीते पावन बाबु छे शास्त्रादिनिना अभ्यसनथी  
 ज्ञानादिकेनु उपाजन बाबु छे तेना अप्तारे जम्भमा स्वेवावाणा अन्य पाण बृद्ध  
 मुनिजनोने सारी रीते निर्वाह बाबु छे संयममा शिथिल वनेबा अन्य मुनि  
 जनोने तेमा स्थिर जनाववा आदिथी ते एनप्रवचनने प्रभावक वने छे  
 तेनाथी तेनाभा स्व जने परनी तारकता पखु आवे छे ॥ सू १ ॥

सूत्रकार वयसावि इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थनु प्रदर्शन करे छे  
 आत्रा तप वने संयमना अन्तरवृत्ती रहित डेटलाक ज्येठाकी विहार कस्वावाणा  
 मानव-साधु बृद्धजनोनी उपर तेजोना बास शिक्षावचनेथी समजखु अचार्ता  
 क्रोध करे छे आदि सूत्रकारे जे साधुजनना अर्थमा मुनि जणने प्रयोजन करी

सन्तः कुप्यन्ति=क्रुध्यन्ति, अत्र मुनिवाचकशब्दं विहाय मानवशब्देन कथनमेकाकि-  
विहारिणो निन्दास्पदत्वसूचनार्थम्; भाष्ये चाहमनेन कथमपमानितः इत्यादि ।

यद्वैव कथयन्ति-किं परेऽप्यनुचिताचारचारिणो न सन्ति यदस्मानेवाधिसिप-  
न्ति भवन्त इत्यादि ब्रुवन्तः संतप्यन्ते । अथवा-वचसाऽप्युक्ता एते व्यर्थजीविनः  
कुक्षिम्भरा भवन्ति-इत्यादिवाक्यैरभिहिताः कुप्यन्ति, अपि-शब्दो भिन्नक्रमस्तेन  
कुप्यन्तीत्यनेनान्वयस्ततः अभिशपन्ति वा । कथं पुनरिमे नरकनिगोदादिपातजन-

में मुनि शब्दका प्रयोग न कर सामान्य मानव शब्दका प्रयोग किया  
है उससे यह सूचित होता है कि एकाकी विहार करनेवाला साधु निन्दा  
का पात्र है । एकाकी विहार करनेवाले साधुको जब कोई गृहस्थ-  
जन समझता है तो उससे अपना अपमान समझते हैं और कहते हैं  
कि मैं इससे क्यों अपमानित किया जाता हूं, इस बातको विचार कर  
वे उस समझानेवाले पर क्रुपित हो उठते हैं । अथवा अपने को सम-  
झानेवाले गृहस्थजनसे वे यह कह दिया करते हैं कि इस प्रकार के अनु-  
चित आचारका आचरण करनेवाले क्या और दूसरे नहीं हैं जो आप  
हमारा ही तिरस्कार कर रहे हैं, हमें ही समझा रहे हैं, इस प्रकार से भी  
वे संतप्त हो उठते हैं । अथवा इनका जीवन ही व्यर्थ है ये तो अपने  
उदर निर्वाह के लिये ही साधु हुए हैं ” इस प्रकार के वचनमात्रसे कहे  
जाने पर भी ये उन पर क्रोधित हो उठते हैं । “अपि” शब्द भिन्न-  
क्रमवाला है “कुप्यन्ति” इस क्रियाके साथ उसका संबन्ध होनेसे  
कुप्यन्ति अपि ” क्रोध भी करते हैं और “अभिशापन्ति” शाप भी देते

सामान्य मानव शब्दने प्रयोग करेले छे ओधी ओ सूचित थाय छे हे ओकाकी विहार  
करवावाणा साधु निन्दाने पात्र छे ओकाकी विहार करवावाणा साधुने ले कोध  
गृहस्थजन समझवे छे तो तेनाधी ते पोतानु अपमान समझे छे अने कहे छे  
हे आ शा माटे माटे अपमान करे छे. आ वातनो विचार करीने ते समझववा-  
वाणा उपर क्रोधित अने छे, अथवा तेने समझवनार गृहस्थजनने ते ओवुं सल  
जावे छे हे आवा प्रकारना अनुचित आचारनु आचरण करवावाणा शुं कोध फील  
नधी ? ने आप अभासे व तिरस्कार करता रही छे अमने व समझवो छे  
आ प्रकारधी पक्षु ते सतप्त अने छे अथवा ‘ओमनु एवन व्यर्थ छे, ओ  
तो पोताना उदर निर्वाह माटे व साधु थयेले छे’-आ प्रकारना वचन मात्र  
कहेता व ते क्रोधित अनी अथ छे ‘अपि’ शब्द भिन्नक्रमवाणे छे  
“कुप्यन्ति” आ क्रियानी साथ तेना संबध डोवाधी “कुप्यन्तिअपि” कोध  
पक्षु करे छे अने “अभिशापन्ति” शाप पक्षु दे छे नरकनिगोदादि गतियोभा

क्रोधकारिणो भवन्तीत्याह—‘उन्नतमान’ इत्यादि ‘उन्नतमानश्च’ उन्नतो मानो गर्वो यस्य स उन्नतमानः जात्यादिमानसम्पन्नः नरः—मनुष्यो महता मोहेन—अवसरूपायोदयेन मुञ्चति—विवेकरहितो भवति ।

ततस्तस्य किं भवतीत्याह—‘संघापा’ इत्यादि। अज्ञानतः—एकपर्यामनित-  
कुगतिफलमनुभवमानस्य, अपश्यत—अज्ञानान्परत्वेन तपःसंयमारापनश्चिसुखफल-  
मपेक्षमावस्य तस्य बहयाः—अधिका संघापा संघापयन्ति यास्ताः संघापाः—  
वेदनाः परीषदोपसर्गजन्याः भूयो भूयो पुनः पुनः दुरतिक्रमाः—दुःखेन सहनीयाः  
हैं। नरकनिगोदादि गतियोंमें जीवका पतन करानेवाले क्रोधके बशीभूत  
क्यों होते हैं ? इसके लिये सूत्रकार “ उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन  
मुञ्चति ” कहते हैं अर्थात्—जिसे उन्नत मान होता है, जात्यादि मदसे  
जो संघन होता है, ऐसा मनुष्य बड़े भारी मोहसे—प्रयत्न कषायसे  
विवेकरहित हो जाता है। विवेकसे विहीन होने पर वह ‘साधुमानव  
एकपर्यासे कुगतिरूप फलकी प्राप्ति करता है’—इस सिद्धान्तसे अनभिज्ञ  
हो जाता है और साधुमें उसे यह भी नहीं मालूम रहता है कि तप  
और संयम की आराधनासे शिष्य—सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है। इस  
अपनी मनमानी हालतमें उसे परीषद् और उपसर्गजन्य अनेक वेदनाओंका  
पुनः पुनः भयंकर सामना करना पड़ता है। अर्थात् ऐसे एकलबिहारी  
परीषद् उपसर्गजन्य ऐसी २ वेदनाओंके जालमें फँस जाते हैं कि जिनसे  
रक्षण पाना उन्हें बहुत भारी हो जाता है। इसलिये शिष्यजनों की इन वेद

एतत् पतन इत्यावाग्य कथने बशीभूत केम जने छे ? जाने आटे सूत्रकार  
उन्नत—इत्यादि कहे छे जे/वे के जेने उन्नत मान बाध छे अति आदिना महती  
के सपत्त बाध छे जेवे मनुष्य बड़ा भारी मोहधी—प्रयत्न कषायना उन्नतधी  
विवेकरहित जनी अथ छे विवेक पजरना जनवाधी ते साधु—मानव जेकपर्याधी  
कुगतिरूप इजगी प्राप्ति करे छे—आ सिद्धांतधी अनभिज्ञ जनी अथ छे साधो-  
बाध तेने जे पद्य भाहुम नधी रहेतु के तप जने सवभनी आराधनाधी शिष्य-  
सुखरूप इजगी प्राप्ति बाध छे आ पेतानी मनमानी हालतमा परियक  
जने उपसर्ग जन्य अनेक वेदनाजोने तेवे बारबार अथ कर आभने करणे परे  
छे अर्थात्—आवा जेकलबिहारी परियक उपसर्ग जन्य जेवी जेवी वेद। जेनी  
अजभां इसी अथ छे के जेनाधी रक्षय भिजवतु यहुं अथरु जनी अथ छे आ  
हाखे शिष्यजनेनी आ वेदनाजोधी अथ रक्षय जनी रहे आ अभिप्रायधी

भवन्ति, सर्वस्युपपाद्य शिष्य प्राह—‘एत’दित्यादि । हे शिष्य ! ते=तव एकाकि-  
विहारपीडाय दुर्लङ्घनीयत्वमजानतोऽपश्यतो गुर्वाज्ञापरिज्ञापालकस्य च एतत्=पूर्वो-  
क्तवाधाया दुरतिक्रमणीयत्वं मा भवतु । त्वया कदाऽप्येकचर्याप्रतिपन्नेन न भवि-  
तव्यमित्युपदेशः । सुधर्मास्वामी प्राह—‘कुशलस्ये’त्यादि, कुशलस्य=भगवतो  
महावीरस्य एतत्=पूर्वकथित दर्शन गुरुसन्निहितमधिवसतो गुणा एकाकिविहारिणो  
दोषाश्च भवन्तीत्यादिरूपोऽभिप्रायोऽस्ति ।

नाओंसे सदा रक्षण बना रहे इस अभिप्रायसे सूत्रकार कहते हैं कि—“एतत्ते  
मा भवतु” हे शिष्य ! तुम कभी भी एकाकी विहार करनेवाले मत बनना,  
नहीं तो तुम्हें भी परीषद् और उपसर्गादिकोंसे उद्भूत अनेक प्राणान्तकारी  
कष्टोंका सामना करना पड़ेगा । तुम इन कष्टों से अनभिज्ञ हो, तुम क्या  
जानो कि एकाकी विहार करनेसे कैसे २ कष्टों और उपद्रवोंको झेलना  
पड़ता है, हे शिष्य ! तुम गुरुकी आज्ञाके पालक हो, इसलिये तुम  
से हमारा यही कहना है कि तुम कभी भी एकाकी विहारी न होना । ऐसे  
वर्तन से ही तुम पूर्वोक्त बाधाओंसे सदासुरक्षित रहोगे । श्रीसुधर्मा  
स्वामी कहते हैं, कुशल उपदेशक भगवान महावीरका यह पूर्वकथित दर्शन  
—अर्थात् सिद्धान्त है । इसका अभिप्राय यह है कि गुरुके निकट रहने-  
वाले शिष्योंको अनेक प्रकारसे लाभ होता है, तथा इससे विपरीत-  
एकाकी विहार करनेवालों में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

सूत्रकार कहे छे छे—“ एतत्ते मा भवतु ” छे शिष्य ! तमे कदापि पद्य ओकाकी  
विहार करवावाणा जनशो नहि, नहि तो तमारे पद्य परीषद् अने उपसर्गा  
दिकोथी उत्पन्न अनेक प्राणान्तकारी कष्टोना सामना करवो पडशे तमे आ  
कष्टना नाशुकार न होवाथी तमोने शु भयर पडे छे ओकाकी विहार करवाथी  
कथं कथं जतना दु.भो अने उपद्रवो भोगववा पडे छे छे शिष्य ! तमे  
गुरुनी आज्ञाना पालक छे आ कारण् तमने माइ ओ कहेवानु छे छे तमे कदि  
पद्य ओकलविहारी जनशो नहि आवा वर्तनथी न तमे पूर्वोक्त उपद्रवोथी  
सदा सुरक्षित रहेशो, श्री सुधर्मास्वामी कहे छे कुशल उपदेशक भगवान महावीरनु  
आ पूर्वकथित दर्शन ओटके सिद्धात छे आनो अभिप्राय ओ छे छे—गुरुनी पास  
रहेवावाणा शिष्योने अनेक प्रकारने लाभ थाय छे अने तेनाथी विपरीत ओकाकी  
विहार करवावाणा अनेक दोष उत्पन्न थाय छे



एकधरस्य दोषानभिधाय सम्पति गुरुनिष्ठस्य तस्य मुने' कर्तव्य दर्शयति—  
 'तद्दृष्टये' इत्यादि । 'तत्संज्ञी' सज्ञानं संज्ञा तस्य=गुरोः संज्ञा उत्संज्ञा, सा  
 अस्यास्तीति तत्संज्ञी गुरोरिच्छित-चेष्टितश्च, तन्निवेशनः=गुरुकुलनिवासी, 'तत्पुर  
 स्कार' तस्य=गुरो' पुरस्कारः=विनयवैयाहृत्स्यादिनिस्त्रिकार्यकरणेऽग्रेसरो मुनिः,  
 'तद्दृष्टया' तस्य=गुरोर्दृष्टिर्मिमांसयत्या ।

यद्वा—'तद्दृष्टया' तस्मिन्=निरवधानुष्ठाने दृष्टिस्तया । 'तन्मुक्त्या'  
 तेन=गुरुणा कथिता मुक्ति—सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिस्तया विचरेत् । सर्वथा गुरु

एकाकी विहार करनेवालों के दोषोंका कथन कर अब सूत्रकार गुरुके  
 निकट बसनेवाले मुनिक कर्तव्योंको बतलाते हैं —

तद्दृष्टया इत्यादि—गुरुकी संज्ञा जिनके है वह तत्संज्ञी है अर्थात्  
 गुरुके अभिप्रायों एवं चेष्टाओंको जो जाननेवाला है । जो तन्निवेशन—  
 गुरुका निवेशनवाला—गुरुकुलमें रहनेवाला है । तत्पुरस्कार—गुरुकी विनय  
 वैयापृप्ति आदि समस्त कार्यों के करनेमें जो अग्रेसर रहता है ऐसा मुनि  
 गुरुके अभिप्रायसे अथवा निरवध अनुष्ठानमें दृष्टिसे और तन्मुक्ति—  
 गुरुसे प्रतिपादित सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिसे विचरण करे ।

भाषार्थ—गुरुसमीप में वर्तमान शिष्य ही उनकी आज्ञानुसार  
 संयमकी आराधनाशील बन कर सम्यग्ज्ञानादिकके लाभसे युक्त होता  
 है; अन्य एकलविहारी नहीं । गुरुजनके निकट निवास करनेवाला शिष्य  
 फलमानविहारी—यतनाको करते हुए विहार करनेका स्वभाववाला होता  
 है । जिसनिपाती—गुरुकी रुचिसे बलमके स्वभाववाला—आचार्य महा

कोकली विहार कस्यावाणया बोधेन कथन करी कवे सुत्रकार शुद्धी निकट  
 बसवाणया मुनिना कतव्येने अतावे छे

तद्दृष्टया धर्मादि शुद्धी सज्ञा नेने छे ते उत्संज्ञी छे अर्थात् शुद्ध  
 अकिञ्चये अने क्षणाबोनेने अक्षुण्णवाण छे के तजिपथन-शुद्धिगमा रहेवाण छे  
 शुद्धीने विनय वैयापृप्ति आदि समस्त कथी कस्यामां के अग्रेसर रहे, छे बोवा  
 मुनि शुद्धी अकिञ्चयधी अथवा निस्वय अनुष्ठा रमां दृष्टिधी अने त मुक्ति-शुद्धी  
 प्रतिपादित सब विषयविरतिरूप मुक्तिधी विचरण करे

भाषार्थ—शुद्धसमीप रहनेपर शिष्य के तेनी आज्ञानुसार संयमने  
 आराधनाशील अनीने सम्यग्ज्ञानादिकका लाभकी मुक्त अने छे यह कोकली-  
 विहारी नहीं, शुद्धजनकी निकट निवास करनेपर शिष्य बलमको कस्ता करता  
 विहार कस्यामा स्वभाववाणो अने छे

पवेशनपार्श्वपरिवर्तनादिकमपि मुनीना यथाविधि करणीयत्वेन बोध्यम् । तत्रोपवेशनं गुरोरग्रे उत्कटासनादिनाऽवस्थानम्, चिरावस्थानात्प्रमत्त्वे पृथिवीप्रत्युपेक्षणपरिमार्जनपूर्वकं कुक्कुटाचरणोदाहरणेनावयवसंकोचप्रसारादिकं कुर्यात् मयूरवज्रीवोपमर्दनशङ्कित एकपार्श्वस्थायी सुप्तोऽपि जाग्रदिव प्रमार्जनपूर्वकपार्श्वपरिवर्तनविधायी विहरेत् । एवं च सदा सर्वथाऽप्रमत्तो मुनिः सकला क्रिया विदधीतेति

अपने आचार्य के आदेशका पालन करनेवाला हो, तथा यत्नपूर्वक प्रत्येक गमनागमनादिक एव हस्तप्रसारादिक क्रियाओंका कर्त्ता हो । यत्नसे प्रवृत्तिशील साधु सकल साव्यव्यापारोंसे रहित होता है ।

ये सूत्रस्थ विशेषण मुनियोंकी अन्य उपवेशन—वैठना, शयन—सोना तथा पार्श्वपरिवर्तन—करवट बदलना आदि क्रियाओंके उपलक्षक हैं । मुनिजनोंको ये क्रियाएं भी यथाविधि ही करना चाहिये—ऐसा समझना चाहिये । गुरुके आगे उत्कटादिक आसनसे वैठना उपवेशन है । इस आसनसे यदि वह बहुत समय तक न वैठ सके तो पृथिवीको—वैठनेके स्थानको देखभाल कर और रजोहरण से उसे परिमार्जित कर कुक्कुटाचरणके उदाहरणसे शारीरिक अवयवोंकी संकोच अथवा विस्तारप्रसारा आदि क्रियाको करता हुआ वह मयूरकी तरह जीवोंकी विराधनासे डरता हुआ एक करवटसे सोया हुआ होने पर भी जगे हुए की तरह दूसरी करवट लेनेके स्थान को रजोहरणादिकसे प्रमार्जन—पूँज कर फिर करवट लेवे । अप्रमत्त मुनि इसी प्रकार निरन्तर अपनी समस्त क्रियाओंको करे ।

वे पोताना आचार्यना आदेशनु पालन करना होय तथा यत्नपूर्वक प्रत्येक गमनागमनादिक अने हस्तप्रसारादि क्रियाओंना करवावाणा होय यत्नधी प्रवृत्तिशील साधु सकलसाव्य व्यापारी रहित होय छे

आ सूत्रमा मुनियोगी अन्य क्रियाओ के जे मनु ते मछे यथाविधि पालन करवानु होय छे ते गताववामा आवेल छे उपवेशन—जेसलु, शयन—सुषु तथा पार्श्वपरिवर्तन—पडधु गदलवु आ क्रियाओ मुनिजनेओ यथाविधि करवी नेधओ सुइनी सामे उकटू—आदि आसनधी जेसलु नेधओ ओ आसनधी जे ते वधारे समय जेसी न शके तो पृथ्वीपर—जेसवाना स्थानने इठी रीते नेध रनेहरणधी साइ करी शारीरिक अवयवोनी कुकडानी माइक संकोच अथवा विस्तार धर्यादि अर्थात् प्रसारा आदि क्रियाओ नियमसर करतो थके मारनी माइक एवोनी विराधनाधीरतो रहे ओक पडजे सुतेल होय अने पीणु पडधु इरवता सचेत गनी

मात्र । अप्रमादपूर्वक—सकलकार्यकारिणोऽन्तरायोदयात् यद्भवेत्तद्व्यति—‘एकदा’—  
 त्यादि, एकदा=कदाचित्, ‘गुणसमित्तस्य’ गुणेन=मुनिगुणेन अप्रमादादिना  
 समित्तः=सयुक्तो गुणसमित्तस्य, रीयमाणस्य=सम्यग्गच्छत पूर्वोक्ताभिन्नमप्यादि  
 विश्लेषणविशिष्टस्य मूनेः ‘कायसंस्पर्श’ कायस्य=शरीरस्य तस्पर्शः=कायस्य  
 संस्पर्शम् समन्वयीर्षाः=संपाप्ताः सम्पात्तिमाद्य एकै=केचन प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः  
 अपटावन्ति=म्रियन्ते । अप्र मरणरूपपश्चिमावस्थाया ग्रहणात् पूर्वावस्थाया अपि  
 ग्रहणं भवति; तथाहि—केचन इस्ताद्याघातेन संपात्यन्ते, अपरे म्लायन्ति, अन्ये  
 परितप्यन्ते । अत्र च कर्मबन्धस्य वैविध्यं वर्तते, तथाया शैलेक्षीघ्नपगतस्य पाण्याघ-

अप्रमादपूर्वक अपनी सकल क्रियाओंको करनेवाले मुनिजनके  
 अन्तरायके उदयसे जो हो जाता है उसे सूत्रकार “एकदा गुणसमि  
 त्तस्य” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं । मुनिगुण-अप्रमादसे युक्त वह  
 मुनिके कदाचित् चलते समयमें, अर्थात्-जाते उठते बैठते समयमें शा  
 रीरिक स्पर्शको प्राप्तकर द्वीन्द्रियादिक जीव विराचित हो जाते हैं अथवा  
 यहाँ पर मरणरूप पश्चिम-अन्तिम अवस्थाके ग्रहणसे उससे पूर्व अवस्था  
 का भी ग्रहण होता है, इससे यह बात इतनी और समझ सेना  
 चाहिये कि कोई २ कुन्ध्यादिक जीव उसके इस्तादिकके आघातसे  
 विराचित हो जाते हैं, कोई कोई म्लान हो जाते हैं और कोई कोई  
 संताप पाते हैं ।

यहाँ पर कर्मबन्धकी विविधता है, जैसे—शैलेक्षी अवस्थासंपन्नके

श्लेष्मिणादिकधी जे स्थान पुलने पठथु भइबे. आरीते मुनिजे निस्तर पीतानी  
 भधी क्रियाजो करनी जेधजे.

अप्रमादरहित पीतानी भधी क्रियाजो करनार मुनिजनने डोड डोड वषट  
 अन्तरायना उदयधी जे समय छे ते सूत्रकार “एकदा गुणसमित्तस्य” इत्यादि  
 सूत्रांशधी प्रकट करे छे—मुनिगुण अप्रमादधी युक्त जेवा मुनिने कदाच व्यासवा  
 समये अर्थात् जावतां-वतां उठतां विस्रताना समये शारीरिक स्पर्श प्राप्त  
 करी द्वीन्द्रियादिक जीव विराचित जनी अवय छे अथवा अर्द्ध पर मरणरूप  
 पश्चिम-अन्तिम अवस्थाना ग्रहणधी जेने जेनी पूव अवस्थानु पव ग्रहण पाव  
 छे. आधी जे वात समलु देवी जेधजे छे डोड डोड कुन्ध्यादिक लोनी तेना  
 कन्ध्यादिकना अठवाधी विश्रयना भध अवय छे डोड डोड लव ज्ञान भध अवय  
 छे डोड डोड संताप करे छे

अर्द्धिभां कर्मबन्धनी विविधता छे जेभ डे-शैलेक्षी-अवस्था-संपन्नना

સમીપે વર્તમાનસ્તદાજ્ઞાનુસારી સંયમી સમ્યગ્જ્ઞાનાદિક લભતે નૈકાક્રિવિહારીતિ  
 હૃદયમ્, સ ચ કીદૃશો ભવેદિત્યાહ—‘યતમાનવિહારી’—ત્યાદિ । યતમાનવિહારી  
 યતમાનઃ=યતના કુર્વાણ. સન્ વિદુર્શુ શીલં યસ્ય સ યતમાનવિહારી, અપિ ચ  
 ‘ચિત્તનિપાતી’ ચિત્ત ગુરોરભિરુચિસ્તેન નિપતિતું શીલ યસ્ય સ ચિત્તનિપાતી=  
 આચાર્યાભિપ્રયાનુગમનશીલઃ, एवं च ‘पथिनिर्ध्यायी’ कुत्रापि निर्गतस्य गुरोः  
 પન્થાને=માર્ગ નિર્ધ્યાતું શીલ યસ્ય સ પથિનિર્ધ્યાયી=ગુરુમાર્ગાનુગામી, ઉપલક્ષણ  
 શય્યાદિપ્રલોકી ચાહારગવેપીત્યાદેરપિ बोध्यम् । अन्यच्च—‘पर्यवाह्यः’ परि=सर्वत  
 આચાર્યસ્યાગ્રતઃ પૃષ્ઠતઃ સ્થિત્વા અવાહ્યઃ=અદૂરવર્તી ગુરોરવગ્રહાવસ્થાયી, પ્રાણાન=  
 એકેન્દ્રિયાદિજીવાન્ દૃષ્ટ્વા=વીક્ષ્ય તદુપમર્દનં પરિહરન્ ગન્હેત્=ગુર્વાજ્ઞાયાં વિચરેત્ ॥૨॥

રાજકે અભિપ્રાય અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ હોતા હૈ । પથિનિર્ધ્યાયી—કહી  
 ખી બાહર ગયે હુણ ગુરુ મહારાજ કે ધ્યાન—અવલોકન કરનેકે શીલવાલા—  
 અનેકે આગમનની પ્રતીક્ષાવાલા—ગુરુકે માર્ગપર ચલનેવાલા, ઉપલક્ષણસે  
 અનેકી શય્યા—આસન આદિકા નિરીક્ષણ કરનેવાલા, અનેકે લિયે આહાર  
 આદિકકી ગવેષણા કરનેવાલા ઇત્યાદિ વાતોંકા ખી સંગ્રહ કર લેના  
 ચાહિયે । તથા—પર્યવાહ્યઃ—આચાર્ય મહારાજકે આગે ઓર પીછે સ્થિત હો  
 કર ખી જો દૂરવર્તી ન હો—ગુરુપ્રદત્ત નિયમાદિકોંકા પાલક હો અર્થાત્  
 ગુરુદેવ જો ખી પચક્ષ્ણાણ દેવેં ઉસે પ્રસન્નચિત્તસે ગ્રહણ કરનેવાલા હો ।  
 એસા મુનિ હી એકેન્દ્રિયાદિક જીવોંકો આત્મૌપમ્યેન દેવકર—જાન કર  
 અનેકે ઉપમર્દનસે વિરક્ત હો ગુરુકી આજ્ઞામેં રહનેયોગ્ય હૈ । અનેકી  
 આજ્ઞાનુસાર અપની પ્રત્યેક ચર્ચા કરનેવાલા મુનિ હી અનેકે નિકટ  
 રહ સકતા હૈ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

શુરૂની રૂચિથી ચાલવાના સ્વભાવવાળા આચાર્ય મહારાજના અભિપ્રાય  
 અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ બને છે કેઈ પણ સ્થળે બહાર ગયેલા શુરૂના આગમનનું  
 ધ્યાન, અવલોકન કરવાની વૃત્તિવાળા તેના આગમનની પ્રતીક્ષાવાળા, શુરૂના માર્ગ  
 પર ચાલવાવાળા, ઉપલક્ષણથી તેની શૈયા—આસન આદિનું નિરીક્ષણ કરવાવાળા  
 શુરૂ માટે આહારાદિકની ગવેષણા કરવાવાળા ઇત્યાદિ વાતોનો પણ સબંધ કરી  
 લેવો જોઈએ. તથા પર્યવાહ્યઃ—આચાર્ય મહારાજની આગળ અને પાછળ સ્થિત  
 બનીને પણ દૂરવર્તી ન હોય અને શુરૂ-પ્રદત્ત-નિયમાદિકોના પાલક હોય અર્થાત્  
 શુરૂદેવ જે પણ પચ્ચક્ષ્ણાણ દે તેને પ્રસન્નચિત્તથી સબંધ કરવાવાળા હોય એવા મુનિ  
 જ એકેન્દ્રિયાદિક છુવોને આત્મૌપમ્યથી દેખીને—અર્થાત્ આત્મસમાન બાહીને તેના  
 ઉપમર્દનથી વિરક્ત હોય શુરૂની આજ્ઞામા રહેવાયોગ્ય હોય છે એમની આજ્ઞાનુસાર  
 પોતાની પ્રત્યેક ચર્ચા કરવાવાળા મુનિ જ તેમની સમીપ રહી શકે છે. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

अपि चान्यदपि दर्शयति—' स अभिक्रममाणे ' इत्यादि ।

मूलम्—से अभिक्रममाणे पडिक्रममाणे सकुचमाणे पसारमाणे विणिवहमाणे सपलितज्जमाणे, एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसफास समणुचिञ्जा एगतिया पाणा उहायति, इइलोगवे यणविज्जावट्टिय ज आउट्टीकय कम्म त परिञ्जाय विवेगमेइ, एव से अप्पमाएण विवेगं किट्टइ वेयधी ॥ सू० ३ ॥

छाया—सोऽभिक्रामन् प्रतिक्रामन् संकुचन् पसारयन् विनिवर्तमान संपरिभ्रमन्, एकदा शुभसमितस्य रीयमाणस्य कार्यसंस्पर्शमनुधीर्णा एके प्राणिनोऽप्यत्रान्ति, इहलोकवेदनवेद्यापवितं यद् आङ्गुलीकृतं कर्म तत्परिज्ञाय विवेकमेति, एवं तस्यापभादेन विवेकं कीर्तयति वेद्वित् ॥ सू० ३ ॥

टीका—' सोऽभिक्राम ' इत्यादि, सः=पूर्वोक्त आचार्यादेशकारी मुनिः, ' अभिक्रामन् =अभि=साम्मुख्येन क्रामन्=अगन्, प्रतिक्रामन्=वत्प्रागच्छन्, संकुचन्=पाणिपादहृदीनां संकोचं कुर्वन् पसारयन्=दानेव संकुचितानवपदान् पिस्तारयन्, विनिवर्तमानः=सकलसाधकक्रियाभ्यो वि=विशेष्ये निवर्तमानः=परावर्तमानः संपरिभ्रमन्=सं=सम्यक्तया परि=सर्वतःभ्रमन्=वाप्याद्यवयवान् वेदन्यासस्थान च रमोहरवादिना परिशोधयन् गुरुकुल संपत् ॥ एतेषां विशेषणानामुपलक्षणतयो

इसी विषयसे लगती हुई और भी बात कहते हैं " से अभिक्रममाणे " इत्यादि ।

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्यके आदेशका पालन करनेवाला मुनि जाते समय, आते समय, हस्त और पादादिकों के फैलाते एवं उनका संकोच करते समय सकल-साधक क्रियाओं से अच्छी तरह रहित होता हुआ तथा हस्त-पादादिक अवयवोंका एवं अपने उठने बैठने आदिके स्थानका रजोहरणादिकसे परिमार्जन करता हुआ गुरुकुलमें रहनेके लायक होता है । अर्थात्-गुरुकुलमें निवास यही मुनि कर सकता है जो

आ विषयने एतर्था वीछ यद् वाव कहे छे " से अभिक्रममाणे " इत्यादि.

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्यना आदेशनु पालन कस्वावण्य मुनि बनाना समये आववाना समये काय करने पर श्रेयवतां जाने जेने सकोच कस्वां समये सकल साधक क्रियाओंकी सारी रीते शकित जनी तेमके काय पर आदि अवयवोंनु जाने पीताना विसवा कडवाना स्थाननु रजोहरणादिकोंकी परिमार्जन कस्वां शुद्ध गुणभा श्रेयाने लायक जाने छे अर्थात्-शुद्धगर्भ निवास ते मुनि करी शके छे

पवेशनपार्श्वपरिवर्तनादिकमपि मुनीना यथाविधि करणीयत्वेन बोध्यम् । तत्रोपवेशनं गुरोरग्रे उत्कटासनादिनाऽवस्थानम्, चिरावस्थानाक्षमत्वे पृथिवीप्रत्युपेक्षणपरिमार्जनपूर्वकं कुक्कुटाचरणोदाहरणेनावयवसंकोचप्रसारादिकं कुर्वन् मयूरवजीवोपमदर्शनशङ्कित एकपार्श्वस्थायी मुत्तोऽपि जाग्रदिव प्रमार्जनपूर्वरूपापार्श्वपरिवर्तनविधायी विहरेत् । एव च सदा सर्वथाऽप्रमत्तो मुनिः सकलां क्रियां विदधीतेति

अपने आचार्य के आदेशका पालन करनेवाला हो, तथा यत्नपूर्वक प्रत्येक गमनागमनादिक एव हस्तप्रसारणादिक क्रियाओंका कर्ता हो । यत्नसे प्रवृत्तिशील साधु सकल सावद्यव्यापारोंसे रहित होता है ।

ये सूत्रस्थ विशेषण मुनियोंकी अन्य उपवेशन-वैठना, शयन-सोना तथा पार्श्वपरिवर्तन-करवट बदलना आदि क्रियाओंके उपलक्षक हैं । मुनिजनोंको ये क्रियाएं भी यथाविधि ही करना चाहिये-ऐसा समझना चाहिये । गुरुके आगे उत्कटादिक आसनसे बैठना उपवेशन है । इस आसनसे यदि वह बहुत समय तक न बैठ सके तो पृथिवीको-बैठनेके स्थानकी देखभाल कर और रजोहरण से उसे परिमार्जित कर कुक्कुटाचरणके उदाहरणसे शारीरिक अवयवोंकी संकोच अथवा विस्तार-प्रसारना आदि क्रियाको करता हुआ वह मयूरकी तरह जीवोंकी विराधनासे डरता हुआ एक करवटसे सोया हुआ होने पर भी जगे हुए की तरह दूसरी करवट लेनेके स्थान को रजोहरणादिकसे प्रमार्जन-पूँज कर फिर करवट लेवे । अप्रमत्त मुनि इसी प्रकार निरन्तर अपनी समस्त क्रियाओंको करे ।

वे भोताना आचार्यना आदेशनु पालन करनार होय तथा यत्नपूर्वक प्रत्येक गमनागमनादिक अने हस्तप्रसारणादि क्रियाओंना करवावाणा होय यत्नशी प्रवृत्तिशील साधु सकलसावद्य व्यापारशी रहित होय छे

आ सूत्रमा मुनिओंनी अन्य क्रियाओं के जेभनु तेमछे यथाविधि पालन करवानु होय छे ते भताववामा आवेल छे उपवेशन-जेसवु, शयन-सुषु तथा पार्श्वपरिवर्तन-पडथु गडलवु आ क्रियाओं मुनिजनेओं यथाविधि करवी जेधंजे शुङ्गी सामे उकटू-आदि आसनधी जेसवु जेधंजे जे आसनधी जे ते वधारे समय जेसी न शके तो पृथ्वीपर-जेसवाना स्थानने इडी रीते जेधं रजेडरवुथी साक्ष करी शारीरिक अवयवोंनी कुकडाणी साक्ष संकोच अथवा विस्तार छत्यादि अर्थात् प्रसारवा आदि क्रियाओं नियमसर करतो धके मोरनी साक्ष छवोनी विशधनाधीडरतो रहे. जेक पडजे सुतेल होय अने जीशु पडथु डेरवता सचेत गनी

भावः। अप्रमादपूर्वक—सकलकार्यकारिणोऽन्तरायोदयात् यद्भवत्तद्वर्षयति—‘एकदा’—  
 त्यादि, एकदा=कदाचित्, ‘गुणसमितस्य’ गुणेन=मुनिगुणेन अप्रमादादिना  
 समितः=संयुतो गुणसमितरहितस्य, रीयमानस्य=सम्यग्गच्छत पूर्वोक्ताभिक्रमप्यादि  
 विशयव्यविशिष्टस्य मुनेः ‘कायसंस्पर्श’ कायस्य=शरीरस्य संस्पर्श=कायसस्य  
 र्शस्तम् समनुशीर्षां=समाप्ताः सम्पातिमादय एके=केचन प्राणाः=श्रीन्द्रियादयः  
 व्यद्रावन्ति=घ्नियन्ते। अत्र मरणरूपपश्चिमानस्वाप्ना ग्रहणात् पूर्वायस्वाप्ना अपि  
 प्रारंभं भवति; तथाहि—केचन हस्ताघाघातेन संघात्यन्ते, अपरे म्सायन्ति, अन्ये  
 परितप्यन्ते। अत्र च कर्मबन्धस्य वैविध्यं वर्तते, तथाया शैलेःश्रीसुपगतस्य पाण्याघ-

अप्रमादपूर्वक अपनी सकल क्रियाओंको करनेवाले मुनिजनके  
 अन्तरायके उदयसे जो हो जाता है उसे सूत्रकार “एकदा गुणसमि  
 तस्य” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं। मुनिगुण-अप्रमादसे युक्त उस  
 मुनिके कदाचित् चलते समयमें, अर्थात्-जाते उठते बैठते समयमें शा-  
 रीरिक स्पर्शको प्राप्तकर शरीन्द्रियादिक जीव विराधित हो जाते हैं अथवा  
 यहाँ पर मरणरूप पश्चिम-अन्तिम अवस्थाके ग्रहणसे उमसे पूर्व अवस्था  
 का भी ग्रहण होता है, इससे यह बात इनकी और समझ लेना  
 चाहिये कि कोई र कुण्ड्यादिक जीव उसके हस्तादिकके आघातसे  
 विराधित हो जाते हैं, कोई कोई म्लान हो जाते हैं और कोई कोई  
 संताप पाते हैं।

यहाँ पर कर्मबन्धकी विविधता है, जैसे—शैलेःश्री अवस्थासंपन्नके

स्नेहश्लाघिकेयी के स्थान पुलने पठशु जइवे आ रीते मुनिके निरन्तर पीतानी  
 जधी क्रियाये इत्थी जेधजे.

प्रमादरहित पीतानी जधी क्रियाये इत्यार मुनिजनने ठोष ठोष वधत  
 अन्तश्चयना उदयधी के साथ से ते सूत्रकार “एकदा गुणसमितस्य” शब्दादि  
 सूत्रांशकी प्रकट करे से—मुनिगुण अप्रमादधी युक्त जेवा मुनिना इत्यथ आसत्ता  
 समये अर्थात् आवर्ता-ज्वां उठतां जेसत्ताना समये शारीरिक स्पर्श प्राप्त  
 करी शरीन्द्रियादिक एव विरहित जनी जय से अथवा अर्ध पर मरणरूप  
 पश्चिम-अन्तिम अवस्थाना ग्रहणधी जेने जेनी पूर्व अवस्थाना पञ्च शक्य साथ  
 से आधी जे वात समल तेवी जेधजे के ठोष ठोष कुण्ड्यादिक एवेनी तेना  
 वस्तादिकेना अठवाधी विराधना यध जय से ठोष ठोष एव म्लान यध जय  
 से ठोष ठोष संताप करे से

अर्थात् कर्मबन्धनी विविधता से जेम के-शैलेःश्री-अवस्था-संपन्नना

वयवस्पर्शजनिते मशकादिसत्त्वघातेऽपि बन्धहेतुभूतात्मनिपरिणामाभावान्नैव कर्मबन्धो भवितुमर्हति, उपशान्तक्षीणमोहसयोगिकेवलिनश्च सामयिकः कर्मबन्धो जायते, स्थितिहेतुककपायाभावात् । अत्रार्थं चिन्तकः—

प्रथमसमये बन्धो द्वितीयसमये वेदन तृतीये च निर्जरणं जायते, इति तृतीयसमयस्य निर्जरसामायिकत्वात् सामायिकत्वेन प्रतिपादनम् ।

अप्रमत्तसंयते कर्मबन्धो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तस्थितिकः, उत्कृष्टतश्चान्तःकोटिकोटिस्थितिकः । प्रमत्तसंयतेरप्यनाकुट्टिकया मवर्त्तमानस्य क्वचित्कदाचित् कत्त्वरहस्तादिक अवयवके स्पर्शसे मशकादिक प्राणियोंकी विराधना भी हो जाती है तो भी बन्धके कारणभूत आत्माके प्रमादादिरूप परिणामका अभाव होनेसे उनके कर्मबन्ध नहीं होता है । उपशान्त मोह, क्षीणमोह और सयोगी केवलीके योगका सद्भाव होनेसे एकसमयस्थितिक सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है; क्योंकि कि उनमें स्थितिका कारणभूत कषाय का अभाव है । यहाँ यह समझना चाहिये—

प्रथम समयमें बन्ध, द्वितीय समयमें वेदन, और तृतीयमें उस बंधे हुए कर्मकी निर्जरा होती है । इस प्रकार तृतीय समयकी निर्जरसामायिक होनेसे सामायिकरूपसे कहा है ।

अप्रमत्तसंयतिमुनिका कर्मबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तःकोटिकोटिस्थितिवाला होता है । अनाकुट्टिका (अजानपने)से प्रवृत्त प्रमत्तसंयति साधुके हाथ पैर आदिके संघटनसे कदाचित् कहीं किसी प्राणीकी विराधना हो जाय तो उससे उनका कर्मबन्ध जघन्य

हस्तादिक अवयवना स्पर्शथी मशकादिक प्राणीकी विराधना पक्ष यह बन्ध छे तो पक्ष बन्धना कारणभूत आत्माना प्रमादादिरूप परिणामना अभाव डोवाधी अने कर्मबन्ध धर्तुं नथी उपशान्तमोह, क्षीणमोह अने सयोगी केवलीने योगने सद्भाव डोवाधी एकसमयस्थितिक सातावेदनीय कर्मना बन्ध थाय छे केमके आमा स्थितिना कारणभूत कषायना अभाव छे अर्हि अने समज्जुनेर्ह अने—

प्रथम समये बन्ध, भीगे समये वेदन, अने त्रीगे समये अनेना पथा येला कर्मनी निर्जरा अने छे आ रीते त्रीव समये निर्जर सामयिक डोवाधी सामायिक रूपथी कह्यो छे

अप्रमत्त संयति मुनिना कर्मबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट अन्तःकोटिकोटिस्थितिवाले डोवा छे अण्णुपण्णुधी प्रवृत्त प्रमत्तसंयति साधुना हाथ पग आदिना अडवाधी कषाय कोर् स्थणे कोर् प्राणीनी विराधना थय



पाद्यवयवसंस्पृशत् प्राप्युपघातादी भयन्यत उत्कृष्टतम कर्मबन्धः पूर्वोक्त एव विशेषिततरः । अयं कर्मबन्धस्तस्मिन्नेव भवे लीयत इति सूत्रेण दर्शयति—'इह०'—इत्यादि—एतेषां यत् कर्म तदिहलोकवेदनवेद्यापतिम्—इह०=अस्मिन्नेव लोके=भवे वेदनं=मोगः इहलोकवेदनम्, तत्र-वेद्यम्-प्रकरणानुरोधात् प्रतिफलवेदनीयं दुःखम् =इहलोकवेदनवेद्यम् तत्र आपतितं=तत्कारणत्वेन समायातम्=इहलोकवेदनवेद्या पतितं वर्तमानमधीयमोगानुबन्धि भवतीत्यर्थः । आकुट्टीकृतकर्मणि यत्कर्त्तव्यं तद् दर्शयति—'जं' इत्यादि, मुनि यत्कर्म आकुट्टीकृतम् आकुट्ट्या=आमागेन इच्छये त्यर्थः, कृत=चिहितं कर्म आकुट्टीकृतम्, प्राणिघातन तदिच्छया कायसंघट्टनादिना च ज्ञातं यत्कर्म ज्ञानावरणीयादि तन्जनकं वा प्राणातिपातादिरूपकर्म तद् सर्वं परिश्रय=इपरिश्रया ज्ञाता मस्याम्भानपरिश्रया परिहृत्य च विवेकं=दक्षप्रकारप्रा यश्चिन्तान्यतमग्रहस्वरूपं यद्वा विवेकं पूयमाय पुनरकरणरूपम् एति=प्राप्नोति, आकुट्टीकृतकर्मणाऽपि तपसा छेदेन पुनर्वतारोपणेन तथा घोरतरतप संयमवैयाहृत्यादि समाराधनेन च तस्मिन्नेव भवे कर्मवशापनयन भवतीति माह । विवेकवान् मुनिस्तथा समाचरति येन कर्मबन्धो न भवतीति तत्पर्यम् ।

और उत्कृष्ट पूर्वोक्त स्थितिबाला होता है । परन्तु अग्रमत्त मुनिसे प्रमत्त मुनिके विशेषतर होता है । इस कर्मबन्धका इसी भयमें क्षय हो सकता है । इसीको सूत्रसे दिखलाते हैं—'इह०' इत्यादि—

इसका जो पूर्वोक्त कर्मबन्ध है, वह इहलोकवेदनवेद्यापतित है । अर्थात्—इसी भयमें भोगमें आकर नष्ट होनबाला होता है । आकुट्टिका से किये गये कर्ममें क्या करना चाहिये, यह 'जं' इत्यादिसे दिखलाते हैं । प्राणिघातसे, प्राणिघातकी इच्छासे तथा कायसंघट्टन आदिसे जो ज्ञानावरणीयादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म आचरित हुए, उनको इपरि

अथ तो जेथी जेना कमल म अग्रमत्त मुने उत्कृष्ट पूर्वोक्त स्थितिवाण जने छे परतु अग्रमत्त मुनि कर्ता प्रमत्त मुनिने विशेषतर कमल म अथ छे अथ कर्मबन्धने अथ अग्रमत्त अथ मर्छे छे जेने सुखी जतावेळ छे इह० इत्यादि

जानो जे पूर्वोक्त कर्मबन्ध छे ते छटलोकवेदनवेद्या-पतित छे अर्थात् अथ अग्रमत्त जोअववा जने नष्ट भवावाजो होय छे आकुट्टिकाथी कसयेला कर्ममा सु कर्तु जेछे अथ अग्रमत्त इत्यादिथी जतावेळ छे-प्राणिघातथी प्राणिघातनी इच्छाथी, तथा कायसंघट्टन जेरेथी जे ज्ञानावरणीयादि कर्म उत्पन्न

कर्मविवेकमाह—' एवमित्यादि, वेदवित् म्यगमयपरसमयजन्तीर्थकरो गणधर  
 शतुर्दशधरो वा एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण वक्ष्यमाणप्रकारेण वा अप्रमाटेन=प्रमादवर्जनेन  
 दशप्रकारप्रायश्चित्तेषु कस्यचन सम्यगाचरणेनेत्यर्थः, तस्य कर्मणो विवेक पृथग्भा-  
 वमभावं वा कीर्त्तयति=कथयति ॥ मु० ३ ॥

ज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे परिहार कर मुनि विवेकको  
 अर्थात् दशविध प्रायश्चित्तोंमें किसी एकको ग्रहण करके अथवा पूर्वोक्त  
 आचरण फिर कभी न करना, इस प्रकार विवेकको प्राप्त करता है।

जान बृह्ण कर जिन्होंने प्राणिघात आदि किया, ऐसे मुनिका भी  
 कर्मबन्ध तपसे, छेदसे, दुबारा दीक्षा देनेसे तथा घोरतर तप समय वेया-  
 वच्च आदिके समाराधनसे उसी भवमे नष्ट हो जाना है। सभीका तात्पर्य  
 यह है कि विवेकवान मुनिको वैसा आचरण करना चाहिये, जिससे  
 कर्मबन्ध न हो, प्राणियों की हिंसासे, इच्छासे और शारीरिक संवहन  
 आदिसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञानावरणीयादिक कर्म है, अथवा इस कर्मका  
 उत्पादक जो प्राणातिपातादिकरूप कर्म है, उन सबका जपरिज्ञासे जान  
 कर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे परित्याग कर दश प्रकारके प्रायश्चित्तोंमें  
 से एक प्रायश्चित्तरूप जो विवेक नामका प्रायश्चित्त है उसका जो पालन  
 करता है वह विवेकवान है। अथवा-विवेक शब्दका अर्थ-पृथग्भाव  
 भी है। पृथग्भावका अर्थ है-जिस कार्यका त्याग कर दिया है उसका

थाय तथा तेना जनक प्राण्वातिपातादि कर्म आचरित भने तेने ज-परिज्ञाधी  
 विचारी अने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी परिहाण करी मुनि विवेकने अर्थात् दशविध  
 प्रायश्चित्तमाना कोष्ठ ओठने अडणु करी अथवा पूर्वोक्त आचरण करी कठि न  
 करवानु आ प्रकारना विवेकने प्राप्त करे छे

समजवा छता जेणु प्राण्वात धत्यादि क्युं जेवा मुनिना कर्मबन्ध, तपधी,  
 छेदधी, पीण वधत दीक्षा देवाधी तथा घोरतर तप, सथम, वेयावच्च आदिना  
 समाराधनधी जे व लवमा नाश पावे छे आतु तात्पर्य जे छे के विवेकवान  
 मुनिजे जेवु आचरण करवु जेधजे जेधी कर्मबन्ध न थाय प्राण्वाज्यानी हिंसाधी,  
 प्राण्वातनी संवधधी अने शारीरिक संवहन आदिधी उत्पन्न थयेल जे ज्ञानावर-  
 ण्वायादिक कर्म छे अथवा आ कर्मना उत्पादक जे प्राण्वातिपातादिकरूप कर्म छे,  
 जे लघाने ज-परिज्ञाधी लण्ठी अने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी परित्याग करी इस  
 प्रकारना प्रायश्चित्तमाधी जेक प्रायश्चित्तरेष जे विवेक नामतु प्रायश्चित्त छे जेतु  
 जे पालन करे छे ते विवेकवान छे अथवा विवेक शब्दना अर्थ-पृथग्भाव पणु  
 छे "पृथग्भाव"ना अर्थ छे-जे कार्यना त्याग कर्यो छे ते इरीधी न करवु

कीदृश पुनरभमादी भवतीति दर्शयति 'से पमूयदसी' इत्यादि ।

मूय्—से पमूयदसी पमूयपरिभ्राणे उत्रसते समिप सहिए सयाजए ददृत्तु विप्पढिवेषइ अप्पाण—किमेस जणो करिस्सइ, एस से परमारामो जाओ लोगसि इरथीओ, मुणिणो हु षय प वेइयं, उव्वाहिजमाणे गामधम्मोहिं, अवि निव्यलासए, अवि ओमोयरिय कुज्जा, अवि उइड ठाण ठाइज्जा, अवि गामाणु गाम दूइज्जा, अवि आहारं वुळ्ळिदिज्जा, अवि चए इरथीसु मण, पुव्व दढा पच्छा फासा पुव्व फासा पच्छा दंढा, इच्चेए कळहासगकरा भवति, पडिलेहाए आगमिन्ता आणविज्जा अणा सेवणाए त्तिघेमि, से नो काहिए नो पासणिणए नो मामए णो कयकिरिय वइयुत्ते अज्झप्पसवुडे परिषज्जए सया पाष, एय मोण समणुवासिज्जासि—त्तिघेमि ॥ सू० ४ ॥

जाया—स प्रभूतदर्शी प्रभूतपरिभ्रान् उपश्रान्त समितः सहितः सदा यतः दृष्ट्वा वि पतिषेदपत्यारमानं—किमप जन करिष्यति, एष तस्य परमारामो जातो साके स्त्रियाः, मुनिना हु एतत्प्रवेदितम्, उव्वाध्यमानो ग्रामधर्मः, अपि निर्बलासकाः, अप्यवमौडयी ह्यपीत्, अप्युर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्, अपि ग्रामानुग्रामं द्रवत्, अप्याहारं व्यवच्छिन्द्यात्, अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, पूर्वं दण्डा पश्चात्स्पर्शाः पूर्वं स्पर्शाः पश्चाद्दण्डाः,

फिर नहीं करना । इस विषेक प्राप्त मुनि अपनी प्रवृत्ति इस प्रकारकी रखता है कि जिससे उसे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है । इस प्रकार स्व-पर सिद्धान्तवेदी तीर्थङ्कर, गणधर, अथवा अतुर्वशापूर्वके पाठी मुक्त केवली भगवान् पूर्वोक्त प्रकारसे अथवा बक्ष्यमाण प्रकारसे यही कहते हैं कि जो मुनि दश प्रकारके प्रायश्चित्तका भी सम्यक् रीतिसे सेवन करता है वह अपने कर्मोंके अभावकर—इन्हें अपनी आत्मासे मिला करने का कर्ता होता है ॥सू० ३॥

अप्य विवेक प्राप्त मुनि पोतानी प्रवृत्ति जेवा प्रकारणी सजे छे ते जेथी जेने नवीन कर्मनि अ ब बतो नथी. अ रीते स्व-पर सिद्धांतवेदी तीर्थंकर अथ धर अने अतुर्वशा पूर्वना पाठी सुवदेवली अजबान पूर्वोक्त प्रकारधी अने वक्ष्यमाण प्रकारधी जे ए इडे छे ते जे मुनि इध प्रकारना प्रायश्चित्तोभांभी केछि जेक प्रायश्चित्तनु पथ सम्यक् रीतिधी सेवन करे छे ते पोताना कर्मना अभावने जेटवे तेने पोताना अत्रभाधी बुधा स्थाने कर्ता अने छे. ॥ सू० ३ ॥

इत्येते कलहासङ्करा भवन्ति; प्रत्युपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनयेति ब्रवीमि,  
स नो क्रयकः नो भाशिकः नो कृतक्रियो वाग्गुप्तोऽध्यात्मसवृतः परिवर्जयेत् सदा  
पापम्, एतन्मौन समनुवासयेदिति ब्रवीमि ॥ मृ० ४ ॥

टीका—‘स प्रभूतदर्शी’ त्यादि, सः=संयमी ‘प्रभूतदर्शी’ प्रभूत=भूत-  
भविष्यवर्तमानकालीनं प्रमादविषयकं द्रष्टुं शीलं यस्य स प्रभूतदर्शी—उपार्जितकर्मणः  
कालत्रयेऽप्यवश्योपभोग्यत्वेन दर्शनशील इत्यर्थः, किंच ‘प्रभूतपरिज्ञानः’ प्रभूत=  
प्रचुरं परिज्ञानं प्राणिपरिपालनोपायस्य ससारापवर्गहेतोश्च सम्यग्ज्ञानं यस्य स  
प्रभूतपरिज्ञानः—हेयोपादेयपरिज्ञानकुशलः, किंच उपशान्तः=इन्द्रियनोऽन्द्रियोप-  
शमेन कषायोपशमेन च शान्तिमुपयातः, समितः=ईर्याद्विषयसमितिभिः संयुक्तः,  
यद्वा—‘समितः’ सम्=सम्यग् रत्नत्रयम्—इतः=प्राप्तः। सहितः=ज्ञानादि-

मुनि किस प्रकार अप्रमादी होता है, इस बातको कहते हैं “से  
पभूयदसी” इत्यादि—

भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल सम्बन्धी प्रमादके विषयको देखने  
का जिसका स्वभाव होता है वह प्रभूतदर्शी है—अर्थात्—उपार्जित कर्म  
कालत्रयमें भी अन्यथा नहीं होता है, उसका फल अवश्य भोगना पडता  
है—इस प्रकारकी निस्संदेह दृष्टिसे युक्त है, प्रभूतज्ञानी है—अर्थात्—प्राणि  
गणकी रक्षाके उपाय, ससार एव अपवर्गके कारणों का जिसे सम्यक्ज्ञान  
है, हेय और उपादेय तत्त्वका जिसे वास्तविक भान है, वह प्रभूतज्ञानी है।  
जो उपशान्त है, इन्द्रिय और नोइन्द्रिय—मनके उपशम तथा कषाय के  
उपशमसे जो शान्तिको प्राप्त हो चुका है, ईर्या आदिक पांच समितियों  
से जो युक्त है, अथवा—सम्—सम्यक् रत्नत्रयकी जिसे प्राप्ति है, सहित—

डेवा प्रकारने मुनि अप्रमादी डोय छे आ बातने ढडे छे “से पभूयदसी” इत्यादि

भूत भविष्यत् अने वर्तमानकाल सम्बन्धी प्रमादना विषयने हेयवानो जेने  
स्वभाव छे ते प्रभूतदर्शी छे अर्थात् उपार्जित कर्म कालत्रयना पणु निष्कण  
भनतु नथी तेथी तेनु इण अवश्य भोगवतु पडे छे आ प्रकारनी असहिंघ  
दृष्टिथी युक्त छे प्रभूतज्ञानी छे—प्राणिगणुनी रक्षानो उपाय, ससार अने भोक्षना  
कारणुनु जेने सम्यक् ज्ञान छे, हेय अने उपादेय तत्त्वनु जेने वास्तविक भान छे  
ते प्रभूतज्ञानी छे जे उपशान्त छे—इन्द्रिय अने नोइन्द्रिय—मनना उपशमथी  
तथा कषायना उपशमथी जे शान्तिने प्राप्त करी शकेल छे, धर्या आदिक पांच  
समितियोंथी जे युक्त छे, अथवा सम्—सम्यक् रत्नत्रयनी जेने प्राप्ति छे, ज्ञाना

पञ्चाचारैः संपन्न, एवं 'सदायत' सदा=सर्वदा यत.=यतनावान् प्रमादरहितः ।  
एतादृशा मुनिर्गुणसमीपस्थितः कर्मणोऽपनयनं करोति ।

तस्य योपिदादिपरीपहोपनिपाते यद्विधेयं तदर्थयति—'दृष्ट्वा'—इत्यादि,  
पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टः प्रमादवर्मिता मुनिः आत्मानं=स्वं दृष्ट्वा उपसर्गविधान-सत्परं  
स्त्रीजन विमतिवदयति=समालोचयति, किं समालोचयतीत्याह—'किमेव' इत्यादि,  
एव जन=स्त्रीजनः ममापकारं किं करिष्यति? न किमपीत्यर्थः, यद्वा—रोगामिम  
वादा एव स्त्रीजनो मम तस्यामवस्थायां न श्रापय वा श्रण्याय वा  
स्यादतः किं करिष्यति=न किमपीत्यर्थः । स्वीकृतपञ्चमहाप्रतस्य विमलकुलम्भाम

ज्ञानादिक पांच आचारों से जो संपन्न है, तथा सदा जो यतनावान् है,  
प्रमादरहित है, ऐसा मुनि गुरुके समीप रह कर कर्मोंका नाश करता है ।

इस मुनिके स्त्री भादि द्वारा परीपह तथा उपसर्ग उपस्थित किये  
जाने पर इसे जो विधेय है, वह 'सूत्रकार "दृष्ट्वा-इत्यादि" पदोंद्वारा  
स्पष्ट करते हैं—वे कहते हैं कि इन पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त एवं अग्र  
मायी वह मुनि जब इसके उपर स्त्री आदिकों के द्वारा उपसर्ग भादि  
किये जाते हैं—अथवा उपसर्ग करने में तत्पर यह जब उन्हें देखता है, तो  
विचारता है कि यह स्त्री मेरा क्या अपकार करेगी, कुछ भी नहीं ।  
अथवा जिस समय मेरे कोई रोग बगैरहका उपद्रव होगा उस अवस्था  
में भी यह उस रोगसे न मुझे बचा सकती है और न मुझे कोई सहारा  
ही दे सकती है । मैं पंचमहाप्रतों का धारी हूँ । मैं इस मुनिकुलका तिल-

दिक पांच आचारों से संपन्न है तथा जो यतनावान् है—प्रमादरहित है  
ऐसे मुनि गुरुना समीप स्थिति कियेना नाश करे है

स्त्री भादि द्वारा परीपह तथा उपसर्ग मत, आ मुनित्व ने कर्तव्य  
है तेने सूत्रकार दृष्ट्वा-इत्यादि पदोंद्वारा स्पष्ट करे है ते कहे  
है है—आया पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त होने परमायी ते मुनि क्या है तेना  
उपर स्त्री विजेरे भादि द्वारा उपसर्ग वजेरे इत्याया आवे है अथवा उपसर्ग  
इत्याया तत्पर ते क्या है तेने कहे है, तो ते विचार है है क्या स्त्रीजन भादि  
मु अपकार करे? कहां पक्क नहीं, अने ने समय मने राज वजेरेने उपद्रव  
बरे के अपकारमां पक्क ते स्त्री के राजनी लक्षणी शक्ये नकि अने मने  
साथ पक्क आपी शक्ये नकि, कुं पक्क—महाप्रतधारी कुं, कुं आ मुनिकुलने तिल-

भूतस्य तिरस्कृतविषयमुखस्पृहस्यावधूतजीवनमनोरथस्य मम किमेव स्त्रीजनः करिष्यतीति सततं समालोचयतीत्यर्थः । एषः=स्त्रीजनस्तु तस्य प्रमादिनः परमारामः परमानन्दस्थान जातोऽस्ति, किन्तु न ममाप्रमादिनः, यतो हि स्त्रियः=नार्यः लोके =विषयिलोके मोहोत्पादिन्यो भवन्ति, न संयतलोके ।

एतत्कथनं न स्वमतिकल्पितमिति दर्शयति—‘मुनिने’ इत्यादि, एतत्=सर्वं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणमुपदेशवचनं च ‘हु’ अवधारणे, मुनिना=तीर्थङ्करादिना प्रवेदितं =द्वादशविधपर्पदि प्ररूपितम् ।

कभूत हूं । वैषयिक स्पृहाका मैं अन्तकर चुका हूं, अपने जीवनके पहिले अत्रत अवस्थाके समस्त मनोरथों को त्याग चुका हूं, मैं जब इस परिस्थितिमें उपस्थित हूं तो अब इस स्त्रीद्वारा कृत उपसर्गोंकी मैं अपेक्षा ही क्या करू । इसमें क्या शक्ति है जो मुझे लाख उपसर्ग करने पर भी अपने पथसे विचलित कर सके ? हां ! यह तो उन्हें ही हर तरहसे अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट कर सकती है जो प्रमादमय आनंदके इच्छुक हैं—प्रमादी हैं, मुझ अप्रमादी को नहीं । क्योंकि स्त्रियोंका वश विषयीलोकमें कार्यकारी होता है, स्वामीलोकमें नहीं ।

इस कथनमें स्वमतिकी कल्पनाका निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं “मुनिना” इत्यादि । यह समस्त पूर्वोक्त कथन तथा आगे और भी जो कुछ कहा जानेवाला है वह सब तीर्थङ्कर गणधरादि द्वारा ही उपदिष्ट है । यहां “हु” शब्द अवधारणार्थमें है । उन्होंने यह सब

कृत छु, वैषयिक स्पृहानो मे त्याग करेले छे - पोताना एवनना पडेलाना अमत अवस्थाना समस्त मनोरथानो त्याग करी चुकचो छु, हुं न्यारे आ परिस्थितिमा उपस्थित छु तो हवे आ श्रीजनद्वारा अयाता उपसर्गोनी हुं अपेक्षा केम सपी शकु ? तेनामा शु शकित छे ने भने लाख उपसर्ग कवा छता पणु मारा पोताना पदधी विचलित करी शके ? हा ! ओ तो ओने न लक्ष्यी भ्रष्ट करी शके छे केने प्रमादमय आनन्दनो इच्छिनार - प्रमादी छे मारा नेवा अप्रमादीने नहो केम के श्रीजाने वश विषयी लोको न अनता होय छे स्वामी ओने वश अनता नधी

आ वातमा स्वमतिनी कल्पनातो निषेध करीने सूत्रकार कहे छे “मुनिना” इत्यादि आ आधुये पूर्वोक्त कथन अने हवे पछी कडेवाभा आवनार कथन आ अधु तीर्थङ्क गणधर आदि द्वारा न उपदिष्ट छे अर्हि “हु” शब्द

तमेव धन्यमात्रोपदेशमाह—‘उद्वाध्यमान’ इत्यादि, हे शिष्य ! यदि मुनि  
 ‘ग्रामधर्मैः’ ग्रामाभ्याम्=इन्द्रियसमूहानां धर्माः=स्वमानाः=ग्रामधर्मारतैर्ग्रामधर्मै  
 स्वस्त्रविषयसमासकस्यभावैः ‘उद्वाध्यमानः’ उद्=प्राबल्येन वाध्यमान=परिपी  
 ष्यमानो मधेचदा निर्बलाशक्त ‘निर्बलं=प्रणीतरसवस्त्ररहितपुराणकुस्त्यादिकम्  
 भस्मस्तकमिभितं बल्लक्षणकादिनिष्पादितपर्युषितकरपट्टिकादिकं ना अभाति=सुकृते  
 यः स निर्बलाशक्तः, नीरसाश्रमेन ग्रामधर्मस्यावश्योपश्रमसम्भवात्, ‘अपि’ शब्दः  
 सम्मादनायाम् । निर्बलाश्रमेऽपि यदि न मोहोपश्रमस्तत किं कुर्यादित्याह—‘अप्य  
 भमौर्दर्य’-मित्यादि, जीवनयात्रानिर्वाहाय केवम्भु भवमौर्दर्यम्=कनोदरिक्तपो

विषय १२ प्रकारकी परिषद् में प्रतिपादित किया है। धर्यमाण विषयको स्पष्ट करनके लिये सूत्रकार कहते हैं “उद्वाध्यमान” इत्यादि। हे शिष्य ! यदि कदाचित्त मुनि ग्रामधर्म-अपने २ विषयोंमें समासक्त स्वभाववाली इन्द्रियोंसे-मबलरूपसे वाधित किया जाय तो उस समय उसे चाहिये कि वह निर्बल-इन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करनेवाले रस वस्त्ररहित ऐसे पुरानी कुलपी आदि अन्नका तथा प्यहीछाछसे मिश्रित बालबणा आदिसे निष्पादित ऐसे पर्युषित (ठण्डाबासी) करपट्टिका (रोटी) आदिका भोजन करे। नीरस भोजनके करनेसे ग्राम धर्मका अवश्य ही उपशमन होता है। “अपि” शब्द संभाषनामें है। नीरस भोजन करने पर भी यदि ग्रामधर्मका उपशमन न हो-मोहकी शान्ति न हो तो क्या क्या करे ? इस प्रकारकी आशंकाका समाधान करनेके निमित्त सूत्रकार “अप्यभमौर्दर्य कुर्यात्” कहते हैं। जीवनयात्राके

अवधारण्य अक्ष मा छे. तेजोभ्ये आ उपधे विषय १२ प्रकारकी परिषद्मां प्रतिपादित करैत छे. उद्वाध्यमान विषयने रूप्य इत्या भाटे सूत्रकार बहे छे “उद्वाध्यमान” इत्यादि. हे शिष्य ! कदाचित्त मुनि ग्रामधर्म-पोतपोतान्य विषयमां समासकत स्वभाववाणी इन्द्रियोंकी प्रवण रति वाधित इत्याभ्य आवे तो जे उपधे जेजे, जेधं जे हे ते निर्बल इन्द्रियोंने उत्तेजित न करै इत्यावाण्य स्ववर्णरहित जेवा पुरातन कण्ठी आदि जन्तु तथा जाती छाशकी मिश्रित बालबणा वजरेकी निष्पादित जेवा कडी-वासी शेटकी आदिनु भोजन करे. नीरस भोजन इत्याधी जे ग्रामधर्मनु उपशम न वने-मोहकी शान्ति न थाय तो शु शु करे ? आ प्रकारकी शकानु समाधान इत्या निमित्ते सूत्रकार “अप्यभमौर्दर्य कुर्यात्” बहे छे अर्थात्-जीवनयात्रान्य निर्वाह भटे अपुजन जेवी बालतमां

इस्तजिहाच्छेदादिरूपा दण्डविशेषा जायन्ते । अन्यदत्वाह—'इत्येत' इत्यादि, इति=पूर्वोक्तदण्डस्पर्शादिप्राप्त्या एते=स्त्रीसङ्गसम्भवाः कामाः कलहाऽऽसङ्गकारा भवन्ति । स्त्रीहेतोर्वह्नां नृपादीना युद्धादिना विनाशस्य सर्वजनवेद्यत्वात् । यद्वा-स्त्रीनिमित्तं क्रोध-रागयोः सद्भावस्य सर्वजनप्रसिद्धत्वात् । उपलक्षणान्मान-मायादिकारकत्वमपि बोध्यम् । ततः किं विधेयमित्याह—प्रत्युपेक्ष्येत्यादि, प्रत्युपेक्ष्य=स्त्रीप्रसङ्गस्य सर्वथाऽत्र परत्र च दण्डस्पर्शादिकारकत्व कलहाऽऽसङ्गकार-कत्वमपि विचार्य्य भागम्य=तत्सर्वं बुद्ध्या अनासेवनया=तदासेवनपरिवर्जनेन स्वात्मानं परं वा आज्ञापयेत्=तत्त्यागे नियोजयेत् इति भगवद्वाक्यमनुसृत्य तदा-

इस लोकमें हाथ, जीभ आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-विशेष कामियों को सहना पड़ता है । इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसङ्गसे समुद्भूत ये काम कलहके आसङ्गके उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिड़े हैं और वे उनके विनाश के हेतु हुए हैं ।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सद्भाव भी प्राणियोंमें सर्व-जन प्रसिद्ध ही है । उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे स्त्रीसङ्गसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते हैं । इसलिये इस स्त्रीप्रसङ्गको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसङ्गका उत्पादक विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी आत्माको उसके सेवन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परकी

सङ्ग करवा पडे छे आ प्रकारे पूर्वोक्त दंड स्पर्श आदिनी प्राप्तिथी स्त्रीप्रसङ्गथी उत्पन्न आ काम, कलहना आसङ्गने उत्पन्न करणार अने छे आ बात सर्व जनने मालुम छे स्त्रीना निमित्तथी परस्पर अनेक राजाओमा युद्ध घथा छे अने तेओ ओना विनाशना हेतु भन्था छे अथवा स्त्री प्राप्ति भाटे क्रोध अने रागना सहसाय पक्षु प्राणीओमा सर्वजनप्रसिद्ध छे उपलक्षणथी आ बात पक्षु समल्ल लेवी नोथ्ये के स्त्रीसङ्गथी काम मान अने माया धत्यादि कषायो पक्षु उद्भव्ये छे आ भाटे आ स्त्रीप्रसङ्गने आ लोके अने परलोकमा सर्व प्रकारथी दंड अने स्पर्श आदिना करवावाणा तेमज्ज कलहना आसङ्गने उत्पादक छे ओयो विचार करी आ अध्याने आङ्गीने मुनिओ नोथ्ये के चेताना आत्माने तेना



સદ્વા દુ'લકરા' કસદ્વાસ્સકરાએવિ ઠપ્પરિહારં ચ સર્વં કયયામિ। અન્યદપિ પરિત્યાગસાપનમાહ 'સ' इत्यादि, सः=सोसङ्गनित्तरकनिगोदाविकदुक्कफसामि-इत्वेन छपरिहारी मुनिर्नो कयकः स्त्रीणां जातिकुम्भनेपध्यञ्जारादिकयाकारको न मभेद्रहसि ठस्यै धर्मादिकमपि न कथयेदिति भावः। एवं नो प्राभिकः मर्भं करोतीति प्राभिकः=स्त्रियं न किमपि पृच्छेत्, तथा हि-कीदृक्स्ते पतिः? त्वां सम्मानयति न वा? कथं त्वं सिन्व प्रविमासि? त्व का सन्ततिः पुत्रो वा पुत्री? परिणीता पुत्री न वा? कस्मै वचा? दास्यसि न वा? स कीदृशः? धार्मिको धनि-

भी उसके सेवनका सर्वथा त्याग करावे। इस प्रकार भगवानके बचन अनुसार स्त्रीप्रसंगको कुत्सप्रद एवं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये सब उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना चाहिये कि वह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके बेष-मूपाकी तथा शृङ्गार आविकी चर्चा नहीं करे और न उसके लिए एकान्तमें धर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके विषयकी कोई बात करे अर्थात्—“तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा वह भावर करता है या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों माकुम देती हो? तुम्हारे क्या संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रीका विवाह कर दिया है कि नहीं? यदि कर दिया है तो किसके साथ किया है? यदि नहीं किया है तो क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है—धर्मात्मा है? धनिक है? या नहीं?” इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चरित्रमें रूपण

सेवनથી સદ્વા દુ'લકરા એવે અને વીત્તબોને પણ બેના ત્યાગ ભાવે' કોઈ અને સર્વથા બેને ત્યાગ કરવે. આ પ્રકારે ભગવાનના વચન અનુસાર સ્ત્રી-પ્રસંગને દુષ્પ્રસંગ બેવે કરીને આસંગકારક બંધીને એ બાના પરિત્યાગને પ્રકાર કહેવ છે. મુનિએ કોટકુ બે પણ કશું બેઈએ કે તે ક્યારેય તેની બતિની, બેના કુળની તેમજ શૃંગારાસિકની ચર્ચા ન કરે અને તેને બેકા-તમા ઠી ધર્માધિક ઉપદેશ પણ ન આપે. તેમજ સ્ત્રી સાથે તેના વિષયની કોઈ વાત ન કરે. અર્થાત્— તમારો પતિ કેવો છે? તમારો બે ભાવર કરે છે કે નહિ? બાળે તમે ઉદાસ કેમ કેખાવ છે? તમારે શું સંતાન છે, પુત્ર છે કે પુત્રી? તમે પુત્રીના વિવાહ કરી રીધો છે કે નહિ? ક્યો છે તેા કેની સાથે ક્યો છે? નથી ક્યો તેા કેમ નથી ક્યો? તમારો જમાઈ અને તેનું કુટુંબ કેમ છે? ધર્માત્મા છે? ધનિક છે? કે કેમ. ઉત્પત્તિ રીતે પુછવાથી મુનિને પોતાના ચરિત્રમા રૂપણ આવે છે.

विशेषं कुर्यात्, ततोऽपीन्द्रियग्रामाणामनुपशमे ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्=वाहू ऊर्ध्वीकृत्य कायोत्सर्गेण शीतोष्णादिरूपाभातापनां कुर्यादित्यर्थः । रात्रौ दिवसेऽपि चैकद्वित्रिचतुर्यामक्रमेण तत्र तिष्ठेदित्याशयः, तेनाप्यनुपशमे 'ग्रामानुग्राम' ग्रामो यतो विहरति, अनुग्रामो यत्र विहरति तं=ग्रामानुग्राम ग्रामाद्ग्रामान्तरं द्रवेत्=विहरेत्-तदा न तत्र तिष्ठेत्, एवं करणेऽप्यनुपशमे आहारमपि व्युञ्जिन्ध्यात् । किञ्चिद्दुना येन केनोपायेन भरणमपि कुर्यात् किन्तु स्त्रीषु मनो न निदध्यात् । तदेवाह--"अवि चप इत्थीसु मणं" अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, स्त्रीविषये गतं मनो निवारयेत् । न तत्र मनो निदध्यादित्यर्थः । स्त्रीसङ्गिना यद् भवति तदाह--'पूर्वं' मित्यादि, पूर्व=

निर्वाह के लिये साधुजन ऐसी हालतमें ऊनोदरी-भूखसे कम अल्प आहार लेवे । यह बाह्यतप है । इतना करने पर भी यदि ग्रामधर्मकी शांति न हो तो ऐसी परिस्थितिमें "ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्" हाथोंको ऊंचा करके कायोत्सर्गपूर्वक शीत और उष्णादिरूप आतापनयोग धारण करे । रात्रिमें भी एक दो तीन और चार प्रहर क्रमसे कायोत्सर्ग करे । इतने पर भी ग्रामधर्म शान्त न हो तो ग्रामानुग्राम विचरण करे । जहाँ ठहरा हुआ है वह ग्राम, जहाँ जाना होता है वह अनुग्राम है । उस समय वहाँ न ठहरे । फिर भी ग्रामधर्म शान्त न हो तो ऐसी दशामें आहार का त्याग कर देवे ।

अधिक क्या कहा जाय, जिस उपायसे वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न न हो सके, मोहका उपशमन हो ऐसा ही उपाय करते रहना चाहिये । परन्तु स्त्रियों की ओर मनको नहीं लगाना चाहिये । स्त्रीसंग करनेवालों के

ऊनोदरी-भूखभी छोड़े अल्प आहार ले आ बाह्य तप छे आटलु करवा छता पशु जे आमधर्मनी शान्ति न थाय तो ओवी परिस्थितिमा "ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्" हाथोने उचा करी कायोत्सर्गपूर्वक शीतण अने गरमीरूप आतापन योग धारण करे रात्रिमा तथा दिवसना पशु ओक जे त्रय अने चार प्रहर क्रमधी कायोत्सर्ग करे आटलु करवा छता पशु जे आमधर्म शान्त न गने तो गाभेगाभ विचरता रहे न्या पोते रोकायेल छे ते आम छे न्या जवु छे ते अनुग्राम छे त्या ओ रोकाय नहि छता पशु जे आमधर्म शान्त न थाय तो ओवी दशामा आहारने त्याग करी दे वधु शु कडेवातु होय । जे उपायधी वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न न थाय-मोहतु उपशम गने ओयो ज उपाय करता गडेवु जे छे पशु ओओ तरक मनने लागवा हेवु न जे छे. स्त्रीसंग करवावाणा भाटे जे दु ओ ओगववा पडे छे सूत्रका

सद्भात्पूर्वं दण्डा'—दण्डासद्भात्स्य चिरसुपुष्पीकरणापार्यार्जनतत्परस्य कृप्यादिसामप-  
 ष्यापारपरस्य तिरस्कृतभुत्विपासादेरप्यत्र श्लोके दुःखविशपरूपा, पद्भात्=उप  
 भागानन्तरं स्वर्गाः=वद्रासयनजन्यकर्मविपाकेन नरकादियातनाकारका दुःखविशया  
 भवन्ति, यद्वा-पूर्वं तत्प्राप्तये दण्डाः=यष्टपादिमहारूपाः पद्भात्=तदनन्तरं राक्ष-  
 दण्डादिमनितावयवादिष्यद्वनसमुत्पन्नदुःखविशयाः, एवं पूष स्वर्गाः=आग्नेया  
 दिना स्वर्गाः=आपातसुम्बविशेषाः पद्भात् दण्डाः=परम नरकपातादिरूपा इह च  
 लिये जिन कर्णों को भोगना पड़ता है सूत्रकार उनका वर्णन "पूषदण्डा"  
 इत्यादि पदोंसे करते हैं—श्रीसगको चिरकाल तक पुरिपुष्ट करनेके  
 लिये कामीजन अर्थके उपार्जन करनेमें तत्पर होते हैं—अर्थ समझशील  
 होते हैं—कृपी आदि सायब्यव्यापारों में लगते हैं। मूम्ब प्याम आदिकी  
 पाषाण सद्भन करते हैं। मतलय-मायथ व्यापारजन्य और मूम्ब प्याम  
 आदि जन्य अनेक "दण्ड" दुःखविशेषोंको ये भोगते हैं। पद्भात्—श्री  
 सेवन से वद्रुमृत कर्मक विपाकसे नरकादिकों की यातनाप्रदायक दुःख  
 विशेषोंका उन्हें सामना करना पड़ता है।

अथवा—प्रथम श्रीप्राप्तिके लिये लकड़ी आदिके अनक प्रहाररूप  
 दण्डोंको और पीछे राजाकी तरफसे दण्डरूपमें प्राप्त भययय आदिका  
 जो छदन है उम जन्य अनेक कष्ट कामियोंको भोगना पड़ता है। इसी  
 प्रकार प्रथम श्री आदिके आलिङ्गनसे "स्वर्गा" आपानसुम्बविशेष-  
 काम्यनिक आनन्द, पद्भात् परमयमें नरकादि गतियोंमें गमनरूप एवं

जेतु वर्णन "पूषदण्डा" इत्यादि पदोंकी करे छे श्रीसजने लांछा अभय  
 सुधी परिपुष्ट इत्या भागे कामीजन धन भोगवयाभा तरपर रहे छे—अथ स लक्ष्मीत  
 भने छे जेती आदि आपय व्यापारोभा लाजे छे मूम्ब तरस आदिनी  
 विटलजुको सदन करे छे मतलय आपयव्यापाररूप्य भने मूम्ब तरस आदि  
 लम्ब भनेः "दण्ड" दुःख वर्णनेने ये भाजवे छे यही श्रीसेवनधी उद्भूत  
 कभन्य विषाक्या नरकादिउनेनी काननपण्य दुःखविशेषाने तेजे आभने इरने पडे  
 छे भने प्रथम श्रीप्राप्ति भागे लाक्ष्मीके तेमय तेन्य देवा नील प्रदारे तेमय  
 पाउजधी शम्भना तरसभा इ रूपमां भगनार ल धन कारागार इत्यादि अनेक  
 प्रकारन्य दुःख कामीकेके कोभवच पडे छे अथ प्रकारे प्रथम श्री आदिनां क्वति  
 मनधी "स्वर्गा" इत्यनिक आनन्द भने यही परमवच नरकादिगतिकेभा  
 गमनरूप ये कोकभा दाय, लभ वर्मेरेनु छेन देवा भनेः इह कामीकेय

विशेषं कुर्यात्, ततोऽपीन्द्रियग्रामाणामनुपशमे ऊर्ध्वं स्थान तिष्ठेत्=वाह ऊर्ध्वीकृत्य कायोत्सर्गेण शीतोष्णादिरूपामातापनां कुर्यादित्यर्थः । रात्रौ दिवसेऽपि वैकट्टित्रिचतुर्यामक्रमेण तत्र तिष्ठेदित्यागयः, तेनाप्यनुपशमे 'ग्रामानुग्राम' ग्रामो यतो विहरति, अनुग्रामो यत्र विहरति त=ग्रामानुग्राम ग्रामाद्ग्रामान्तरं द्रवेत्=विहरेत्-तदा न तत्र तिष्ठेत्, एवं करणेऽप्यनुपशमे आहारमपि व्युच्छिन्धात् । किंवहुना येन केनोपायेन भरणमपि कुर्यात् किन्तु स्त्रीषु मनो न निदध्यात् । तदेवाह—“अवि चण इत्थीसु मण ” अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, स्त्रीविषये गतं मनो निवारयेत् । न तत्र मनो निदध्यादित्यर्थः । स्त्रीसङ्गिनां यद् भवति तदाह—‘पूर्वं’मित्यादि, पूर्व=

निर्वाह के लिये साधुजन ऐसी हालतमें ऊनोदरी-भूखसे कम अल्प आहार लेवे । यह बाह्यतप है । इतना करने पर भी यदि ग्रामधर्मकी शांति न हो तो ऐसी परिस्थितिमें “ऊर्ध्वं स्थान तिष्ठेत्” हाथोंको ऊचा करके कायोत्सर्गपूर्वक शीत और उष्णादिरूप आनापनयोग धारण करे । रात्रिमें भी एक दो तीन और चार प्रहर क्रमसे कायोत्सर्ग करे । इतने पर भी ग्रामधर्म शान्त न हो तो ग्रामानुग्राम विचरण करे । जहाँ ठहरा हुआ है वह ग्राम, जहाँ जाना होता है वह अनुग्राम है । उस समय वहाँ न ठहरे । फिर भी ग्रामधर्म शान्त न हो तो ऐसी दंगामें आहार का त्याग कर देवे ।

अधिक क्या कहा जाय, जिस उपायसे वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न न हो सके, मोहका उपशमन हो ऐसा ही उपाय करते रहना चाहिये । परन्तु स्त्रियों की ओर मनको नहीं लगाना चाहिये । स्त्रीसंग करनेवालों के

ऊनोदरी-भूखसे ओछे अल्प आहार ले आ पाछा तप छे आटलु करवा छता पछु जे ग्रामधर्मनी शान्त न थाय तो ऐवी परिस्थितिमा “ऊर्ध्वं स्थान तिष्ठेत्” छथिने उआ करी जयोत्सर्गपूर्वक शीतण अने गरमीइय आतापन योग धारण करे रात्रिना तथा दिवसना पछु अेक जे त्रण अने बार प्रहर कभधी कायोत्सर्ग करे आटलु करवा छता पछु जे ग्रामधर्म शान्त न अने तो गावेगाम विचरता रहे न्या पोते शैकायेल छे तेआम छे न्या जलु छे ते अनुग्राम छे त्या अे शैकाय नहि छता पछु जे ग्रामधर्म शान्त न थाय तो ऐवी दशाभा आहारने त्याग करी दे पधु शु कडेवातु छोथ ! जे उपायथी वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न न थाय-मोडतु उपशम अने ऐवीज उपाय करता रहेवु जेईअे पत्तु स्त्रीओ तश्च मनने लागवा हेवु न जेईअे अंगम करवावाजा भाटे जे हु भो जोगववा पडे छे सूत्रकार

सद्वा दुःखप्रदा कर्महास्तद्वृत्तरोधेति तत्परिहारं च सर्वं कथयामि। अन्यदपि परित्यागसाधनमाह 'स' इत्यादि, सः=स्त्रीसङ्गजनितनरकनिगोदादिकदुःखकथामि इत्वेन तत्परिहारी मुनिर्नो कथयः स्त्रीषां जातिदुःखनेपथ्यवृत्तारादिकथाकारको न मधेद्रहसि तस्यै धर्मादिकमपि न कथयेदिति भावः। एवं नो प्राभिकः प्रश्नं करोतीति प्राभिकः=स्त्रियं न किमपि पृच्छेत्, तथा हि—कीदृशस्ते पतिः? त्वां सम्मानयति न वा? कथं त्वं खिनेन प्रतिमासि? तव का सन्तति? पुत्रो वा पुत्री? परिणीता पुत्री न वा? कस्मै वृथा? दास्यसि न वा? स कीदृशः? धार्मिको धनि-

मी उसके सेवनका सर्वथा त्याग कराये। इस प्रकार भगवानके बचन अनुसार स्त्रीप्रसंगको दुःखप्रद एवं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये मथ उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना चाहिये कि यह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके वेप-भूपाकी तथा शृङ्गार आदिकी चर्चा नहीं करे और न उमके लिए पकान्तमें धर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके विषयकी कोई बात करे अर्थात्—“तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा यह आदर करता है या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों मासूम देती हो? तुम्हारे क्या संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रोका विवाह कर दिया है कि नहीं? यदि कर दिया है तो किसके साथ किया है? यदि नहीं किया है तो क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है—धर्मात्मा है? धनिक है? या नहीं?” इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चारित्र्यमें दूषण

सेवनभी सदा दूर रखे। अने धीमज्जोने पक्ष जेना त्याग भाजे' होरे जने सर्वथा जेने त्याग करवे। अथ प्रकारे अत्रवानया बचन अनुसार स्त्री-प्रसंगने दुःखप्रद जेव करव आसजकारक बंधीने मे ज्ञान्य परिस्थानने प्रकार करेके छे। मुनिजे जे'शु जे पक्ष करवु जेध'जे के ते इधारेय तेनी जतिनी, जेना कुगनी तेमज शृंगारदिकनी चर्चा न करे जने तेने जेका-तमा करी धर्मादिक उपदेश पक्ष न आवे। तेमज स्त्री साथे तेना विषयनी केष' बात न करे अर्थात्—तमाधे पति केवे छे? तमाधे जे आदर करे छे के नकि? आजे तमे उदास केम जेनाव छे? तमाधे शु' संतान छे पुत्र छे के पुत्री? तमे पुत्रीने विवाह करी दीधे छे के नकि? कयो छे तो केनी साथे कयो छे? नधी कयो तो केम नधी कयो? तमाधे जमाई अने तेनु कुटुंब केम छे? धर्मात्मा छे? धनिक छे? के केम धनिकि दीते पुज्यधी मुनिने पीतान्य धार्मिकमा इपक्ष आवे छे

हस्तजिह्वाच्छेदादिरूपा दण्डविशेषा जायन्ते । अन्यदप्याह—‘इत्येत’ इत्यादि,  
इति=पूर्वोक्तदण्डस्पर्शादिप्राप्त्या एते=स्त्रीसङ्गसम्भवाः कामाः कलहाऽऽसङ्गकरा  
भवन्ति । स्त्रीहेतोर्वहूनां वृषादीनां युद्धादिना विनाशस्य सर्वजनवेद्यत्वात् । यद्वा-  
स्त्रीनिमित्तं क्रोध-रागयोः सद्भावस्य सर्वजनप्रसिद्धत्वात् । उपलक्षणान्मान-  
मायादिकारकत्वमपि बोध्यम् । ततः किं विधेयमित्याह-प्रत्युपेक्ष्येत्यादि,  
प्रत्युपेक्ष्य=स्त्रीप्रसङ्गस्य सर्वथाऽत्र परत्र च दण्डस्पर्शादिकारकत्व कलहाऽऽसङ्गकार-  
कत्वमपि विचार्य्य आगम्य=तत्सर्वं बुद्ध्वा अनासेवनया=तदासेवनपरिवर्जनेन  
स्वात्मानं परं वा आज्ञापयेत्=तत्त्यागे नियोजयेत् इति भगवद्वाक्यमनुसृत्य तदा-

इस लोकमें हाथ, जीभ आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-  
विशेष कामियों को सहना पड़ता है । इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और  
स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसङ्गसे समुद्भूत ये काम कलहके आसङ्गके  
उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके  
निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिड़े हैं और वे उनके विनाश  
के हेतु हुए हैं ।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सद्भाव भी प्राणियोंमें सर्व-  
जन प्रसिद्ध ही है । उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे  
स्त्रीसङ्गसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते  
हैं । इसलिये इस स्त्रीप्रसङ्गको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे  
दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसङ्गका उत्पादक  
विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी  
आत्माको उसके सेवन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परको

सङ्गन करना पड़े छे आ प्रकारे पूर्वोक्त दण्ड स्पर्श आदिनी प्राप्तिथी स्त्रीप्रसङ्गकी  
उत्पन्न आ काम, कलहना आसङ्गने उत्पन्न करनार गने छे आ बात सर्व  
जनने मालुम छे स्त्रीना निमित्तथी परस्पर अनेक राजाओमा युद्ध यथां छे अने  
तेओ अना विनाशना हेतु गन्था छे अथवा स्त्री प्राप्ति भाटे क्रोध अने रागने सद्भाव  
पद्यु प्राणीओमा सर्वजनप्रसिद्ध छे उपलक्षणथी आ बात पद्यु समलु वेवी जेधओ  
के स्त्रीसङ्गकी काम मान अने माया इत्यादि कषायो पद्यु उद्भववे छे  
आ भाटे आ स्त्रीप्रसङ्गने आ बोध अने परलोकमा सर्व प्रकारथी दण्ड अने  
स्पर्श आदिना करवावाणा तेमज कलहना आसङ्गने उत्पादक छे ओयो  
विचार करी आ यधाने ज्ञानीने मुनिओ जेधओ के पोताना आत्माने तेना

सद्वा दुःखता' कसदाऽऽसङ्कराभेति तत्परिहारं प सर्वं कथयामि। अन्यदपि  
परित्यागसाधनमाह 'स' इत्यादि, सः=सोसङ्गजनिवनस्करनिगोदादिकदुःखकामि  
इत्वेन उत्परिहारी मुनिर्नो कथ्यः स्त्रीणां मातिकुलमेपथ्यशृङ्गारादिकयाकारको न  
मवेद्रहसि तस्यै घर्मादिकमपि न कथयेदिति भावः। एवं नो प्राभिकः प्रभं  
करोतीति प्राभिकः=स्त्रिय न क्रिमपि पृच्छेत्, तथा हि—कीदृशस्ते पतिः? त्वां  
सम्मानयति न वा? कथं त्वं सिन्धेय प्रतिमासि? तव का सन्तति? पुत्रो वा पुत्री?  
परिणीता पुत्री न वा? कस्मै वत्सा? वत्स्यसि न वा? स कीदृशः? पार्मिको पनि

भी उसके सेवनका सर्वथा त्याग करावे। इस प्रकार भगवानके बचन  
अनुसार स्त्रीप्रसंगको दुःस्वप्नद पथं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये श्लेष  
उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना  
चाहिये कि वह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके  
बेप-भूपाकी तथा शृङ्गार आदिकी चर्चा नहीं करे और न उसके लिए  
पकान्तमें घर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके विषयकी कोई  
बात कर भर्षात्—“ तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा यह आदर करता है  
या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों मालूम देती हो? तुम्हारे क्या  
संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रीका विवाह कर दिया है कि नहीं?  
यदि कर दिया है तो किसके साथ किया है? यदि नहीं किया है तो  
क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है—घर्मात्सा है? पनिक  
है? या नहीं?” इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चारित्र्यमें रूपण

सेवनभी सदा दूर रखे। अने भीलज्योने पञ्च ज्येना त्याग भावे' दोरे अने  
सर्वथा ज्येने त्याग कसवे। आ प्रकारे भत्रवानना वचन अनुभार स्त्री-प्रसङ्गने  
इत्थप्रथ ज्येने कलहासंगकारक आधीने भि ज्येना परित्यागने प्रकार कहेल  
छे। मुनिके ज्येठछ ज्ये पञ्च कथुं ज्येठज्ये के ते कथारेय तेनी जतिनी ज्येना  
कुगनी तेमज्ये शृङ्गारादिकनी चर्चा न करे अने तेने ज्येना-वर्षां कही प्रभादिक  
उपदेश पञ्च न आये। तेमज्ये स्त्री साथे तेना विषयनी कथं बात न करे। अर्थात्—  
वर्षाये पति केवे छे? वर्षाये ज्ये आदर करे छे के नहिं? आने तभे उदास  
केम ज्येना छे? तभारे शुं संतान छे पुत्र छे के पुत्री? तभे पुत्रीना विवाह  
करी रीपे छे के नहिं? कथो छे तो कानी साथे कथो छे? नथी कथो तो केम  
नथी कथो? तभारे ज्येना अने तेनु कुटुंब केम छे? घर्मात्सा छे? पनिक  
छे? के केम प्रभावति रीते पुत्रपुत्री मुनिने पाठान्ना म्पत्रिभा इत्यु ज्येने छे

कश्चास्ति न वा ? इत्यादिवाक्यैः प्रश्नकरणे चारित्रदोषः सम्भवतीति नैवं कदाचि-  
दपि प्रश्नं कुर्यादिति भावः। अन्यच्च नो मामकः=संसारावस्थापरिणीतायामपि तस्यां  
न ममत्वं कुर्यात् किं पुनरन्यस्याम् । एवं नो कृतक्रियः - कृता=विहिता क्रिया=  
स्त्रीसङ्गप्राप्त्यर्थमद्गोपाद्गादिवेष्टारूपा येन स कृतक्रियो न भवेत् । अनेन काय-  
योगो निरुध्यते । एवं वाग्गुप्तः वाचा गुप्तो वाग्गुप्तः=वाचंयमः, स्त्रिया सह रहसि  
वार्तालापादिकं न कुर्यादित्यर्थः, किञ्च-अध्यात्मसंवृतः-आत्मनि=अन्तःकरणे  
इत्यध्यात्म तेन संवृतः=संवरयुक्त निवृत्त इत्यर्थः, अनेन मनोनिरोधो दर्शितः,  
आता है । इसलिये ऐसे प्रश्न मुनिजनको स्त्रियोंसे करनेका निषेध है ।

इसी तरह मुनिको चाहिये कि यह अपनी संसारदृशामें विवाही  
हुई स्त्रीमें भी ममत्व न रखे-करे । जब उसे निज स्त्रीमें भी ममत्व करने  
के त्यागका आदेश है तो फिर भला ! वह अन्य स्त्रीमें ममत्व भी कैसे  
कर सकता है, अर्थात्-नहीं कर सकता । मुनिको कृतक्रिय भी नहीं  
होना चाहिये-स्त्रीप्रसंगकी प्राप्तिके निमित्त उसे अंग और उपाद्गादिककी  
वेष्टाका सर्वथा त्यागी होना चाहिये । इस कथनसे उसे काययोगके  
निरोध करनेका आदेश दिया गया है । अर्थात् इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे  
काययोगका निरोध होता है । मुनिको वाग्गुप्त-वाचंयम होना चाहिये,  
एकान्तमें स्त्रीके साथ वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये । इससे वच-  
नयोगका निरोध होता है । इसी प्रकार मुनिको अध्यात्मसंवृत होना  
चाहिये-मनोयोगका निरोध करना चाहिये । इस प्रकारसे अपनी प्रवृत्ति

आ भाटे आवा प्रश्नो स्त्रीया साथे कश्चा मुनिजन भाटे निषेध छे जे न प्रकारे  
मुनिजने जेधजे के ते पोतानी संसारे दृशामा विवाहित थयेली  
स्त्रीमा पणु ममत्व न राणे. न्यारे तेने पोतानी स्त्रीथी पणु ममत्व न राण  
वानो आदेश छे त्तारे भील स्त्रीयामा ते ममत्व कथं रीते करी शके ?  
अर्थात् नहि करी शके मुनिजे कृतक्रिय पणु न जनवु जेधजे स्त्रीप्रसंगनी  
प्राप्तिना निमित्त तेने अंग तेमज उपागादिकनी जेष्टाना त्यागी जनवु जेधजे  
आ कथनथी तेने काययोगना निरोध करवानो आदेश अपायेल छे अर्थात् आ  
प्रकारनी प्रवृत्तिथी काययोगना निरोध थाय छे मुनिजे वाग्गुप्त-वाचंयम  
जनवु जेधजे. जेकालमा स्त्रीनी साथे वार्तालापादि नहि करवो जेधजे आनाथी  
वचनयोगना निरोध थाय छे आ रीते मुनिजे अध्यात्मसंवृत जनवु जेधजे,  
जेठले मनोयोगना निरोधक जनवु जेधजे आ प्रकारनी पोतानी प्रवृत्ति राखनार



पतारत्र सन मुनि सदा=मर्वकालं पापं=ग्रीसूजनिनं दुष्टत पापजननं कम वा  
 मैयूनादिकं पशियन्वत्, उपलभ्य प्राणानिपातादिपरिस्थागम्यापि। उपमंररमाट-  
 'पत' दिव्यादि-पतन्=उद्वारास्मृतो पदुक्तं सन् गर्व " मौनं =मुन-स्यंयतम्या 'य  
 मौनस्यं संपर्मं समनुनासयन्=परिषाययन् इति। प्रवीमीत्यस्यार्थमुक्त पय ॥५०४॥

॥ पद्ममाध्ययनस्य शत्रुर्षोदेश समाप्त ॥ ५-४ ॥

गम्नयाग मुनि सदा श्रीप्रमगजनित दुष्टत अथवा पापजननं मैयूना  
 दिक् कर्मस निवृत्ता होता है। प्राणानिपातादिष पापकर्मका भी यह  
 उपलब्ध है, इससे निवृत्ता होनसे मुनि हिंसादिष पापकर्मोंम भी  
 निवृत्ता हा जाता है ऐसा समझ लेना चाहिये ! इस प्रकारका उपमंहाग  
 कृत कृग सूत्रकार कहते हैं कि मुनि इस मौन-संयमका मग पालन  
 कर। " प्रवीमि " इस पदका अर्थ पहिले कह ही दिया गया है ॥

पाशये अण्ययनका शार्था उद्देश समाप्त ॥ ५-४ ॥

मुनि सदा श्रीप्रम मधी जनय दुष्टत जन पापजननं अयुन दिक् कर्मथा निवृत्त  
 याव उ प्रजातिपातदिक् पापकर्मना पय मे उपमंररमाट उ अन्वधी निवृत्त  
 यथथी मुनि हिंसादिष पापकर्मधी पय निवृत्त जनी जय उ अने मय  
 अमल एवो अर्थमे आ प्रकारे उपमंररमाट कृत सूत्रकार क' उ के मुनि म  
 मौन-संयमनु उदा पवन क' प्रवीमि " म पदने मय ममाट क' ही  
 देयमा म पय उ

पांशमा अण्ययनने शार्था उद्देश समाप्त ॥ ५-४ ॥



## पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

गतश्चतुर्थ उद्देशोऽधुना पञ्चम समाभ्यते । एष चानन्तरसम्बन्धः - पूर्वी-  
द्देशे च एकचरस्याव्यक्तस्य बहवोऽपाया जायन्ते तत्परिहाराय ज्ञानादिप्राप्तये च  
हृदसदृशस्य पञ्चाचारसेविन आचार्यस्य समीपे वसता कायवाङ्मनोगुप्तिमता स्त्र्यादि-  
सङ्गरहितेन शिष्येण विचरणीयमित्याचारः प्रदर्शित । स एवात्राचारो लोके सार

### पांचवे अध्ययनका पांचवां उद्देश ।

चतुर्थ उद्देश समाप्त हुआ, अब पंचम उद्देशका प्रारंभ होता है ।  
इस उद्देशका चतुर्थ उद्देशके साथ संबंध है और वह इस प्रकारसे है,  
चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने यह प्रदर्शित किया है कि जो एकचर्या करने-  
वाले अव्यक्त मुनि हैं उन्हें उस चर्यामें अनेक दोष लगते हैं, इसलिये  
उन दोषोंके परिहारके लिये तथा ज्ञानादिक गुणोंकी प्राप्तिके हेतु मुनिको  
चाहिये कि वह ब्रह्म तुल्य एवं पंच आचारोंमें निरत अपने आचार्य गुरु-  
देवकी निश्रामें ही रहें । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्तिका पालन  
करे । स्त्री आदिके प्रसंगसे सदा दूर रहें । आचार्य गुरुदेवकी छत्रच्छाया  
के सहारे ही विहार करे । ऐसा ही मुनिका आचार है । और यही  
लोकमें सारभूत-उत्तम माना गया है । इसी आचारका मोक्षके सारथी-  
भूत तीर्थङ्कर आदिकोंने सेवन किया है । अतः इसी आचारका सूत्र-

### पाथमा अध्ययननो पाथमो उद्देश

योथो उद्देश समाप्त थयो इवे पाथमा उद्देशनो प्रारंभ थाय छे । आ  
उद्देशनो योथा उद्देश साथे सम्बन्ध छे अने ते अये प्रकारे उ-योथा उद्देशमा  
सूत्रकारे आ रन्तु करेले छे जे अेकचर्या करवावाणा अव्यक्त मुनि छे, अने अे  
चर्यामा अनेक दोष लागे छे आथी आ दोषोना निवारणु माटे तेसज् ज्ञानादिक  
गुणोनी प्राप्तिना हेतुथी मुनिअे ब्रह्मतुल्य अेटले पाथ आचारोमा निरत  
पोताना आचार्य गुड्डेवनी छायामा ज रहैवु जेधअे मनोगुप्ति वचन  
-गुप्ति अने कायगुप्तिनु पालन करे, स्त्री आदिना प्रसंगथी सदा दूर रहै,  
आचार्य गुड्डेवनी छत्रछायाना नेसरथ विहार करे अेवो ज मुनिने आचार छे  
अने अे ज लोकमा सारभूत-उत्तम मानवामा आवेले छे आ आचारनु मोक्षना  
सारथी अेवा तीर्थंकरादिकोअे सेवन कथुं छे अेटले आ ज आचारनु सूत्र-

मृतो निर्वाणसारयिभिस्तीर्थकृद्भिः सेषित इति स एवात्र प्रतिपादयित्वाऽस्ति ।  
सम्प्रति दृष्टा तेनाऽऽचारस्य सारत्वप्रकृत्यायाह—‘से वेमि’ इत्यादि ।

मूल्म्—से वेमि सं जहा—अवि हरणपट्टिपुण्णे समसि भोमे  
चिद्वद् उवसतरण सारक्त्वमाणे, से चिद्वद् सोयमज्जगण से  
पास सठथओ गुत्ते, पास लोण महेसिणो जे ष पञ्चाणमता  
पबुद्धा अरमोवरया सम्ममेयति पासह, कालस्स कखाण परि  
ठ्वयति त्तिवेमि ॥ सू० १ ॥

छापा—तद् ब्रवीमि तद्यथा—अपि इदः प्रतिपूर्णाः समे मौमे स्थिति  
उपशान्तरभाः समारसन्, स विष्टति स्रोतोमध्यगतरतत् पश्य सर्पतो गुप्तः, पश्य  
श्लोके महर्षयो य ष मज्जानवन्तः मज्जुद्धा भारम्मोपरताः सम्यगेतदिति पश्यत,  
कास्स्य काङ्क्षया परिव्रजन्ति इति ब्रवीमि ॥ सू० १ ॥

टीका—‘तद् ब्रवीमि’ इत्यादि, अहं यादृशगुणगणसमृद्धित्वात् आचार्यो भवेत्तद्वत्  
तीर्थकृत्प्राज्ञया तत्सर्वं ब्रवीमि—स्वां कथयामि, तत्रेव प्रतिपादयितुमाह—‘तद्यथा’—  
इत्यादि, तद्यथा—वाक्यप्रतिपादनार्थम्, अपि शब्दो मन्त्रवस्तुष्टयसंग्राहकः । प्रतिपूर्णाः  
—स्वच्छत्रैः सार्वकालिकपुण्यादिभिरन्तर्भरणकृन्तुमिष्य समन्तात्पूर्णां शोभितो वा,  
कार तसे प्रतिपादन योग्य समस्तकर इत उद्देशार्थे प्रतिपादन करते हैं ।  
सर्वं प्रथम वे दृष्टान्तसे आचार्यमें सारमृतता प्रदर्शित करनेके लिये  
कहते हैं “से वेमि” इत्यादि—

शिष्यको लक्ष्यकर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य! आचार्य महा  
राज कैसे २ गुणोंसे युक्त होते हैं, मैं तुम्हें यह कहता हूँ । यहाँ आचार्य  
महाराजको जो जलाशयकी उपमा दी गई है उसका मतलब यह है—  
जिस प्रकार—सम भूमिभागमें स्थित जलाशय कभी शुष्क—पानीसे रिक्त  
नहीं होता है, न कभी वह बिकृतिको ही प्राप्त करता है, सदा पानीसे

धारे प्रतिपादन शेष्य समस्त आ उद्देशार्थं प्रतिपादन कर्तुं छे सद्दु प्रथम  
ध्यातवी आचार्यमां आकृत्या अर्द्धित करणतु कहे छे ‘से वेमि’ इत्यादि।

शिष्यने लक्ष्यवि ई जनावी सूत्रकार कहे छे के के शिष्य! आचार्य  
महाराज केवा केवा सुषोभी युक्त होय छे ते हूँ तमने समस्ततु हूँ आदि  
आचार्य महाराजने जलाशयनी उपमा आख्याया आवी छे जेने मतलब आ  
छे के के प्रकार—समभूमि भागमां स्थित जलाशय केई वजत पावुी बिनातु  
होतु नथी तेम न तो कही ते बिकृतिने प्राप्त करे छे। अहा सर्वथा ज्ञानीभी

‘ઉપશાન્તરજા:’=ઉપશાન્ત=નષ્ટં રજો ધૂલિર્યત્ર સ ઉપશાન્તરજાઃ, યતો વર્ષતો જલાદિપ્રપાતે જલં રજસઃ સમ્પર્કાત્પલુપ વર્ષાપિગમે ચ રજસોઽપગમાચ્છરદાદા-વતિનિર્મલં જાયતે । સમારક્ષન્=અન્તઃસ્થિતજલજન્તન સમ્યક્ પરિપાલયન ઋદઃ=અગાધજલાશયઃ, સમે=ઉચ્ચાવચરહિતે-મૌમે=ભૂમે:=પૃથિવ્યા અય મૌમો-ભૂભાગસ્તસ્મિન્ સમે ભૂભાગે યથા તિષ્ઠતિ કદાચિદપિ ન શુષ્યતિ નાપિ વૈકૃત્યમુ-પગચ્છતિ, તથૈવાચાર્યોઽપિ ઋદવત્ અનુપ્રદર્શ્યમાનમ્ન્રચતુષ્ટયાન્તર્ગતપ્રથમમ્ન્રાવસ્થિતો જ્ઞાનાદિસમન્વિતઃ પટત્રિંશદ્ગુણભૂષિતઃ પશ્ચાચાયુક્તોઽષ્ટવિંશસમ્પત્તિશાલી ભવેત્, તાશ્ચાષ્ટસપદો યથા—

જલચર ભરા રહતા હૈ, સમસ્ત ઋતુઓંકે પત્ર પુષ્પાદિકોં ઓર જલચર જન્તુઓંસે વહ ચારોં ઓરસે વ્યાસ-પૂર્ણ રહા કરતા હૈ, શોભિત રહતા હૈ, તથા ઉપશાન્તરજ હોતા હૈ-ધૂલિ આદિ જિસમે ઉપશાન્ત રહતી હૈ, યદ્યપિ વર્ષાઋતુમેં વૃષ્ટિકે હોને પર જલ ધૂલિકે સમ્પર્કસે કલુષિત હો જાતા હૈ તો ધી વર્ષાકે નષ્ટ હોને પર ધૂલિકે અપગમ હોનેસે શરદકાલ મેં વહી જલ અત્યંત નિર્મલ હો જાતા હૈ । તથા અપને ધીતર રહે હુઃ જલચર જીવોંકા વહ સદા પાલક હૈ । ઈસી પ્રકાર જ્ઞાનાદિ યુક્ત, છત્તીસ ગુણોંસે વિભૂષિત તથા પચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય ધી નીચે કહે ગયે-નિમ્નલિખિત ચાર ંગોંમેંસે ૧ પ્રથમ ંગમેં સમ્મિલિત હોનેસે જલાશય કે તુલ્ય માને ગયે હૈ । તથા આઠ પ્રકારકી સંપદાઓંસે ધી સુશોભિત હોતે હૈ । વે આઠ પ્રકાર કી સપદાયોં વે હૈ—

ભરેલુ રહે છે બધી ઋતુઓમા પુષ્પ પાદકા અને જળચર જ તુઓથી ચારે તરફ એ હર્થુ ભર્થુ રહે છે-શેલી રહે છે અને સદા શાન્તિ આપનાર રહે છે ધૂળ વગેરે તેનામા પડી શાન્ત બને છે વર્ષાઋતુમા વૃષ્ટિના કારણે જળ ધૂળના સ પર્કથી ડહોળુ બને છે પરતુ વર્ષાકાળ બાદ ધૂળ નીચે બેસી જવાથી શરદકાળમા એ જળ અત્યંત નિર્મળ બની જાય છે અને પોતાનામા રહેલા જળચર દુષ્ટોનુ સદા પાલન કરે છે એ પ્રકારે જ્ઞાનાદિયુક્ત, છત્તીસગુણુષિત અને પાચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય પશુ નીચે જણાવવામા આવેલ ચાર ભ ગોમાથી પહેલા ભ ગમા સમ્મિલિત હોવાથી જળાશય તુલ્ય માન્યા ગયા છે તેમજ આઠ પ્રકારની સ પદાઓથી પશુ એ સુશોભિત હોય છે તે આઠ પ્રકારની સ પદાઓ-આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ અને સશદ્ધ પરિજ્ઞા છે

“ आचार सुखसरीरे, वयणे वायण मई पओगमई ।

एस सुसंपया खलु, अहमिया संगहपरिभा ॥ ”

छाया—आचार श्रुत शरीर वचन वाचना मतिः प्रयोगमतिः । एताः सुसम्पदः खलु अहमी संग्रहपरिभा ॥ ” इति । निर्मलज्ञानादिभिः प्रति पूर्णः, उपशान्तरजा—उपशान्तमोहनीयः समारसन—पहजीवनिकाय चतुर्विध सङ्ग गच्छगस्तसाधून स्वात्मानं च सम्पद रसन समे मौमे—स्त्रीपशुपण्डकादिपरि परिंते शोभने स्थाने स्थिति । अत्र इदोपमानेन इदादेवचतुर्विधतयाऽऽचार्योऽपि तादृश एव भवति, तत्र चतुर्महती यथा—

(१) एकः सीतासीतोदाप्रवाहइदादित्परिगम्स्रोता पर्यागस्स्रोताश्च ।

“ आचार सुखसरीरे वयणे वायण मई पओगमई । एस सुसंपया खलु अहमिया संगहपरिभा ” ॥ आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति, और संग्रहपरिभा । (५ श्रु स्क अ ४)

निर्मल ज्ञानादिकोसे प्रतिपूर्ण होते हैं । मोहनीयकर्मके उपशमन से ये उपशान्तरज होते हैं । पहजीवनिकाय, चतुर्विधसंघ तथा गच्छमें रहनेवाछे साधुओंके एवं अपनी आत्माके अच्छी रीतिसे रक्षक होते हैं । स्त्री, पशु, पण्डक—नपुंसक आदिसे वर्जित स्थानमें ये रहते हैं; इसलिये जलाशयके समस्त विशेषण हममें घटित होते हैं । इद—जलाशयकी उपमा देनेसे यह बात ज्ञान होती है कि जिस प्रकार जलाशय चार प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार आचार्य भी चार तरहके होते हैं । यह श्रुतः—प्रकारता इस चतुर्महतीसे जानी जाती है । जैसे—

(१) कोई एक आचार्य, सीता सीतोदा नदीक प्रवाहका इव कि जिससे वृसरा प्रवाह निकलता है और बाहरसे वृसरा प्रवाह भी जिसमें आकर

निमज्ज ज्ञानादिकोषी त प्रतिपुञ्जु छे मोहनीय कर्मना उपशमनधी ते उपशान्तरज होय छे पहजीवनिकाय चतुर्विधसंघ तथा गच्छमां रहैवाणा साधुज्जाना अने पित्ताना आत्माना सारी रीते रक्षक होय छे स्त्री, पशु नपुंसक अदिधी वलैव स्थानमां जे रहे छे आमां अणशयन समस्त विशेषण तेमनामां ल भविसत्ता छे इद—जलाशयकी उपमा देवाधी अ वात बायी शशय छे के नेवी रीते जलाशय चार प्रकारतां होय छे जे ज रीते आचार्य पद्य चार प्रकारना होय छे ते चार प्रकार चार लजधी बायी शशय छे जेम (१) होय जेक आचार्य सीता सीतोदा नदीना प्रवाहनी तस्क—नेमाधी जीने प्रवाह कुटतो होय छे अने लक्ष-

(२) द्वितीयो हि पद्महृदादिवत्परिगलत्स्रोता नो पर्यागलत्स्रोताः ।

(३) तृतीयो लवणसमुद्रवद् नो परिगलत्स्रोता पर्यागलत्स्रोताः ।

(४) चतुर्थो मनुष्यलोकवायसमुद्रवन्नोपरिगलत्स्रोता नो पर्यागलत्स्रोताश्चेति ।

प्रथमभङ्गान्तर्गत आचार्यः शास्त्रमधीतेऽध्यापयति च जलस्य प्रवेश-निर्गम-  
वत् ज्ञानप्रदानादानयोः सम्भवाद्, स चायं स्थविरकल्पिकः । द्वितीयभङ्गस्थस्तीर्थङ्क-  
रादिस्तस्य निर्गमस्थानीयार्थागमसद्भावात्, कपायोदयासम्भवेन प्रवेशस्थानीय-  
मिलता है वैसे होते हैं ।

(२) दूसरे कोई एक आचार्य पद्महृद आदिके समान होते हैं कि जिससे प्रवाह तो निकलता है, परंतु दूसरा प्रवाह जिसमें आकर नहीं मिलता है।

(३) तृतीय कोई एक आचार्य लवणसमुद्रके तुल्य होते हैं कि जिससे और कोई दूसरा प्रवाह तो नहीं निकलता है परन्तु जिसमें दूसरा प्रवाह आकर मिलता है ।

(४) चतुर्थ-कोई २ ऐसे भी आचार्य होते हैं जो मनुष्यलोकसे बाहर रहे हुए समुद्रकी तरह न उससे दूसरा कोई प्रवाह निकलता है और न जिसमें और कोई प्रवाह ही आकर मिलता है ।

इनमेंसे प्रथम भंगके अन्तर्गत आचार्य शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यको पढ़ाते हैं । जलके आनेजानेकी तरह इनमें ज्ञानका आदान-प्रदान होता रहता है । इस भंगके अन्तर्गत आचार्य स्थविरकल्पी होते हैं । दूसरे भंग के अन्तर्गत तीर्थङ्करादि होते हैं । क्यों कि इनसे जलप्रवाहके निर्गमके

रही थीने प्रवाह पक्ष जेभा आवीने भणतो होय छे (२) भीन कोठ जेक आचार्य पद्महृद आदि समान-जेभाथी प्रवाह निकणे छे परंतु भीने प्रवाह आवी तेभा भणी शकतो नथी तेवा-होय छे, (३) कोठ जेक आचार्य भारा सागर जेवा जेभाथी कोठ प्रवाह तो नीकणतो नथी परंतु जेनाभा भीन प्रवाहो आवी भणे छे आवा होय छे (४) कोठ कोठ जेवा पक्ष आचार्य होय छे जे मनुष्य लोकधी अहार जेवा समुद्रनी चेठे न जेभाथी भीने कोठ प्रवाह निकणे छे अने न तो जेभा कोठ प्रवाह आवीने भणतो होय छे आभा प्रथम भगना अन्तर्गत आचार्य शास्त्र शीजे छे अने शीअदावे छे जणना आववा जवानी भाइके तेभनाभा ज्ञानतु आववु-जवु भनतु रहे छे आ लगना अन्तर्गत आचार्य स्थविरकल्पी होय छे भीन लगना अन्तर्गत तीर्थङ्करादि होय छे कारणे जे तेभनाथी जणप्रवाहना निर्गम समान अर्थइयधी आगभनु

भुताध्ययनादेरसञ्चात्, तपसंयमादिना कर्मक्षयणं सुतरां नायते तेनापि च निर्गमस्थानीयत्व सिद्धपति, घातिर्कर्मक्षयणं नूतनकर्मणांमागमनासम्भवेन प्रवेश-  
स्यामाप्नात् । तृतीयमङ्गपतिता लवणाद्विदुष्या यापालन्दिकः । तथा हि—उदका-  
ईकरेखा यावता कालेन शुष्यति तत आरभ्य पञ्चरात्रिन्दिषत्तणः कालो 'छन्द'  
शब्देनात्र गृह्यते, छन्दमनतिक्रम्य यथामन्दं, तेन धरतीषि यापालन्दिक उक्तपरिमि-  
तकालविशेषाचारीत्यर्थं, स चात्कृप्तः एकस्थाने पञ्चरात्रिन्दिषं यावत्पिष्टति,  
सामान अर्धरूपसे आगमका निर्गम होता है । कपायके उदयकी अमं  
भवता होनेसे इनमें अलप्रवाहके प्रवेश के तुल्य नृमरोसे भुतके अध्य-  
यन आदिके प्रवेशका संभव नहीं होता है । तप और संयमादिकद्वारा  
कर्मका अभाव स्वतः हो जाता है, इससे भी इनमें निर्गमस्थानीयता  
सिद्ध होती है । घातियाकर्मोंके क्षयसे नूतन कर्मोंके आगमनकी असंभ-  
वतासे वहाँ पर उनके प्रवेशका अभाव है । तृतीय मंगलर्तौ लपणोदधि  
के तुल्य यापालन्दिक साधु हैं । जितने समयमें गीले हाथकी रस्सा शुष्क  
होती है इतने समयसे लगाकर पाँच रात और दिनके समयका नाम यहाँ  
छन्द माना गया है । इस छन्दकालका उल्लंघन नहीं करना यपालन्द है ।  
इस कालके अनुसार जो चलता है—अपनी चर्चा करनेवाला है वह यापा-  
लन्दिक साधु है । यह साधु उत्कृष्ट रीतिसे एक अगह पाँच रातदिन तक  
ठहर सकता है । इस यपालन्दकल्पको पाँच मुनियोंका सद्गुदायरूप गण

निर्गम वायु है । आकाश उदयनी असंभवता होवारी तेमनामा अण प्रचक्रना  
प्रवेशतुल्य बीजज्योधी भुत अने अध्ययन आदिनो प्रवेशने संभव नहीं होवे।  
तप अने संयम आदि द्वारा कर्मने अभाव स्वतः जनी रहे है आधी तेम  
नामां निज भस्थानीयता सिद्ध अने है, घातिया कर्मिना क्षयधी तथा कर्मिना  
अत्रमननी असंभवताधी जेमनामां जेना प्रवेशने अभाव है । त्रीज अत्र  
सुखल अवयुसमुद्रतुल्य यापालन्दिक साधु है । केटला समयमां बीना हाथनी  
रेणा शुष्क होय है । केटला समयधी हाथी पाँच रात अने त्रिसन्त समयनु  
नाम आदि छन्द मान्यु है । आ छन्द हाणनु उल्लंघन नहिं करयु । ते यपालन्द है  
आ हाणने अनुसार के बाते है—पेटानी चर्चा करवावाणा है ते यापालन्दिक साधु  
है । आ साधु उत्कृष्ट रीते पाँच रात त्रिस सुधी जेक जाभमां रही रहे है । आ

पञ्चमुनिसख्यको गणो भवति, स एव गणोऽमु कल्पं प्रतिपद्यते, एते प्रायो जिन-  
कल्पिकल्पकल्प परिपालयन्ति, अयं चाचार्यादेः श्रुतादिक गृह्णाति किन्तु न रुस्मै-  
चित् प्रददाति, अत एव लवणोदधिसादृश्य प्रवेशमन्त्रेऽपि निर्गमासत्त्वात्। चतुर्थ-  
भङ्गस्थः प्रत्येकबुद्धः, स च न रुस्मै चिद् ददाति नापि प्रतिगृह्णाति मनुष्यक्षेत्र-  
द्विर्वृत्तिसमुद्रवत् प्रवेश-निर्गमोभयाभावात्।

तस्य प्रथमभङ्गस्थस्थविरकल्पिकस्य श्रुतदानग्रहणसम्भवेन स्वरूपमाह—‘स’  
इत्यादि, हे शिष्य । सोतोमध्यगतः प्रवेशनिर्गमप्रज्ञादान्तर्गती स ऋदो यथा चाक्षो-  
ही पालता है । ये मुनि जिनकल्पी के तुल्य आचारका पालन करते हैं ।  
यह गण आचार्य आदिसे श्रुत आदिका अध्ययन तो करता है, परन्तु  
अन्यके लिये वह उसे प्रदान नहीं करता है । इसीलिये उसको लवणोदधि  
के तुल्य कहा है । क्यों कि इसमें ज्ञानादिकका प्रवेश होनेपर भी फिर  
उससे उसका बाहिर निकलना-अन्यके लिये उसका प्रदान करना  
नहीं होता है ।

चतुर्थ भगके अन्तर्भूत प्रत्येक बुद्ध है । वे न किसीसे ज्ञानादिकको  
ग्रहण करते हैं और न किसीके लिये उसका प्रदान ही करते हैं । मनु-  
ष्यक्षेत्रके बाहर रहे हुए समुद्रकी तरह उनमें प्रवेश और निर्गम दोनोंका  
सर्वथा अभाव रहता है ।

प्रथम भगके अन्तर्गत स्थविरकल्पीके श्रुतके आदानप्रदानका सम्भव  
होनेसे सूत्रकार उसके स्वरूपको प्रकट करते हैं—“स” इत्यादि—वे शिष्य

यथा लवण कल्पने पाथ मुनिज्योना समुदायश्च गणु पाणे छे आ मुनि जिनकल्पीनी  
तुल्य आचारतु पालन करे छे आ गणु आचार्य आदिथी श्रुत आदितु अध्ययन तो  
करे छे, परतु पीबने भाटे ते तेनु प्रदान करता नथी आ भाटे तेमने लवणु-  
सागरनी तुल्य गणु छे कारणु के तेमा ज्ञानादिकने प्रवेश होवा छता पणु  
तेमाथी लहर नीकणतु - अन्यने भाटे तेनु प्रदान थतु नथी

यथा लवण अन्तर्भूत प्रत्येक बुद्ध छे अे न तो कोधनाथी ज्ञानादिक  
ग्रहणु करे छे न कोधने अे तेनु प्रदान करे छे मनुष्यक्षेत्रथी लहर रहेता  
समुद्रनी तरह जेनामा प्रवेश अने निर्गम जनेने सवथा अभाव रहे छे

प्रथम लवण अन्तर्गत स्थविरकल्पीमा श्रुतना आववा-जवाने स लव  
होवाथी सूत्रकार जेना स्वइपने प्रकट करे छे “स” इत्यादि अे शिष्यने



म्यस्तथैव स=आचार्यः सर्वतः=सर्वप्रकारम् इन्द्रियनोन्द्रियोपशमरूपया गुण्या  
 गुमस्तिष्ठतीति पश्यामाचार्य इवान्यऽपि मुनयस्तादृशगुणसम्पन्ना भवन्तीति निर्दिष्टति  
 -'पश्य' स्यादि, महर्षयः=महान्तश्च त ऋषया महर्षया महासयमिनः । किञ्च ते कं  
 इवोपमा महामुनयाः य च प्रज्ञानवन्तः-अकर्षेण ज्ञापते बुद्धपतेऽनेनेदं चेति प्रज्ञानं,  
 परस्य स्वस्य चामोकादिवदवमासकत्वात् प्रज्ञानम्=आगमस्तदेवामस्तीति प्रज्ञानवन्तः  
 =आगमतत्त्वपरिज्ञानकुशला ।

को सपोषित करते हुए कहते हैं कि हे शिष्य ! जिस प्रकार प्रवाहके  
 मध्यवर्ती-जिससे दूसरा प्रवाह निकलता है और जिसमें दूसरा प्रवाह  
 भाकर मिलता है ऐसा इदं अक्षोभ्य होता है उसी प्रकार यह आचार्य  
 भी सर्व प्रकारसे इन्द्रिय और नोन्द्रियोक्ति उपशमरूप गुणसे सदा  
 रक्षित रहा करते हैं । आचार्यके समान अन्य मुनिजन भी जो इसी  
 प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होते हैं उन्हें इसी संगके अन्तर्गत ही समझना  
 चाहिये । इसी बातको "पश्ये" स्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं-  
 विशिष्ट संयमका जो आराधन करते हैं वे महर्षि कहलाते हैं । ये महर्षि  
 इदंके तुल्य होते हैं । ये प्रज्ञानसंपन्न होते हैं । प्रज्ञान शब्दका अर्थ  
 यहाँ आगम है । क्योंकि प्रकाश आविर्की तरह इसीके द्वारा स्व और  
 परका पार्षी-रीतिसे बोध होता है । यह आगम जिनके होता है-अर्थात्  
 जो इस आगम तत्त्वके ज्ञाता होते हैं वे प्रज्ञानवान् हैं ।

अभिधान करीने हके छे ह-हे शिष्य ! जेभ प्रवाहनी वलभा रहेवे हके छे  
 जेभाधी नीजे प्रवाह नीकिये छे अने जेभा नीजे प्रवाह आवीने भजे छे अक्षोभ्य  
 होय छे जेव रीते जे आचार्य पश्य सव प्रकारधी इन्द्रिय अने नोन्द्रियवना उप  
 शमरूप अस्तिधी सदा रक्षित रह्य करे छे असायनी समान नीव्य मुनिजन  
 पश्य जे आ प्रज्ञान सुषधी स पन्न होय ते लभाभा बनना अ-तर्जतव समववा.  
 आ बातने "पश्य" स्यादि सूत्रांशधी प्रकट करे छे-विशिष्ट संयमतु जे  
 आराधन करे छे ते महर्षि कहोवय छे जे महर्षि हन्त समान होय छे.  
 जे प्रज्ञानस पन्न होय छे प्रज्ञान शब्दने अर्थ अर्द्धि आगम छे केम के प्रकाश  
 आदिनी माहके जेभना द्वारा स्व अने परने पदार्थ रीतधी बोध भाय छे  
 आ आगम जेनाभा होय छे अर्थात् जे आगम तत्त्वना अनुकार छे ते  
 प्रज्ञानवान छे

केचित्तादृशा अपि मुनयो बोध्यायस्य दुरवगाहित्वेन च क्वचिद् हेतुदाहरणादीना सम्यग्ज्ञानासम्भवात्सशेरते न सम्यक्प्रमाप्नुवन्तीति तन्निरासायाह- 'प्रबुद्धाः' इत्यादि, प्रबुद्धाः=प्रकर्षेण बुद्धाः=तीर्थङ्कराज्ञानुसारेण सम्यक्परिशीलिततत्त्वाः, तादृगा अपि कर्मणो गुरुत्वाद्यदि सावधाचरणान्नोपरमेरन् तद्व्युत्थासायाह

शङ्का—प्रज्ञानसम्पन्न मुनि भी बोध्य-समझने योग्य पदार्थ जब दुरवगाह होता है-बड़ी मुश्किलसे जाननेमें आता है, या कहीं २ पर हेतु उदाहरणादिकके स्वरूपका वास्तविक भान उन्हें नहीं होता है, उस पदार्थ के स्वरूपमें संदेहशील हो जाते हैं ऐसी हालतमें तो वे समकित के लाम से ही वंचित रहते होंगे ?

समाधान-यह बात नहीं है। इसीका स्पष्टीकरण सूत्रकारने "प्रबुद्धा" इस पदसे किया है। बोध्य अर्थ दुरवगाह होने पर भी या हेतु और उदाहरणादिक का सम्यग् परिज्ञान न होने पर भी वे उस पदार्थमें संदेहशील नहीं होते हैं। क्यों कि ये तीर्थङ्कर भगवान्की आज्ञाके अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति रखते हैं। जो बात समझमें नहीं आती है, उस पर ये अविश्वासी नहीं होते हैं। उनकी आज्ञाके माफिक ही ये तत्त्वोंका परिशीलन करते हैं। उन पर सदा दृढ विश्वास रखते हैं। इसीका नाम समकित है।

शङ्का—प्रज्ञानसम्पन्न मुनि पण्डु, बोध्य-समझने योग्य पदार्थ ज्यारे इत डोय छे अने धण्डी मुश्केलीधी लालुवामा आवे छे अथवा कथाक कथाक हेतु उदाहरणादिकना स्वरूपनु वास्तविक भान देने डोटुं नधी अे समथ अे पदार्थना स्वरूपमां संदेहशील अने छे, अेवी हालतमा तेजो समकितना लालुधी वञ्चित रहेता कुरे ?

उत्तर—आ बात नधी, आनु स्पष्टीकरण सूत्रकारे "प्रबुद्धा" आ पदधी करेल छे बोध्य अर्थ छेड डोवा छता पण्डु अथवा हेतु अने उदाहरणसं सम्यग् परिज्ञान न डोवधी पण्डु तेजो अे पदार्थमा न संदेहशील अनता नधी, कारणु के तेजो तीर्थङ्कर लगवानगी आज्ञा अनुसार न पोलानी प्रवृत्ति करे छे जे बात समझवामा नधी आवती अेना पर अे अविश्वासी नधी अनता तेमगी आज्ञानी भाङ्क न तेजो तत्त्वोनु परिशीलन करे छे अेना पर सदा दृढ विश्वास राखे छे, तेनु नाम न समकित छे

—‘आरम्भे’त्यादि, आरम्भोपरताः आरम्भेभ्यः=पचन-पाचनाविषयव्यापारेभ्यः  
 उपरता=विरताः स्पर्कारम्भा भवन्ति, एतत्=पत्पूर्वमुक्तं मया बक्ष्यमाणं वा एत  
 त्सर्वं सम्यक्=समीचीनमस्तीति यूयं पश्यथ । बक्ष्यमाणमेवाह—‘कालस्ये’त्यादि,  
 ये पूर्वोक्ता महर्षयः कालस्य=समाधिमरणस्य कालस्यया=स्पृहया परिव्रजन्ति=रत्न-  
 प्रयत्ने मोक्षमार्गे सर्षत उद्यमन्ति । आचार्या मुनयो वा निर्मया अभोभ्या इदोपमा  
 सन्तो विचरन्तीत्याशयः । ‘इति’—अधिकारसमाप्ती, प्रवीचीत्यस्यार्थस्तुक्त एवास्त्व १॥

शङ्क—ऐसे होने पर भी कर्मकी दुर्निवारतासे यदि ये सावध  
 व्यापारों के आचरणसे निवृत्त न हों तो इसका क्या उत्तर है ?

समाधान—यह शङ्क ठीक नहीं है, कारण कि ये पचनपाचनादिरूप  
 सावध व्यापारोंसे सदा विरक्त ही रहते हैं । माना कि कर्मोंका उदय  
 दुर्निवार है, तो भी ये पचनपाचनादिरूप सावध व्यापारोंमें कण्ठगत  
 प्राण होने पर भी प्रवृत्तिशील नहीं होते हैं—इस कथनपर आपको विश्वास  
 रखना चाहिये । ये पूर्वोक्त महर्षिजन समाधिमरणरूप कालकी चाहना  
 से तथा भागे भी जो विषय कहा जानेवाला है उस पर यह सत्य है,  
 ऐसा मान कर रत्नप्रयत्नरूप मुक्तिके मार्गमें मर्य प्रकारसे उद्यमशील  
 रहते हैं ।

भावार्थ—आचार्य अथवा मुनिजन मोक्षमार्गमें निर्भय और अ  
 लोभ्य हो कर विचरण करते हैं इसी लिये पूर्वोक्त प्रकारसे इन्हें इवकी  
 उपमा दी गई है । सूत्रस्थ इति शब्द अधिकारके समाप्ति क सूचनार्थ है ।

शङ्क.—आम छोटा छत्र पक्ष कभना दोनोने लर्ष कथाय सावधव्या  
 पारोना आचरणधी निवृत्त न थाय तो आने कथो उत्तर छे ?

उत्तर—आ शङ्क ठीक नहीं कारण छे जे पचनपाचन आदि सावध  
 व्यापारोधी सदा विरक्त रहे छे कर्मोना उदयनु कारण निवारी शङ्कानु नहीं  
 तो पक्ष जे पचन पाचनादिरूप सावध व्यापारोभा पक्ष कपानी छेत्री बही  
 सुधी पक्ष प्रवृत्तिशील यत्न नहीं आ कथन उपर विश्वास राखवे लेछंजे  
 आ पूर्वोक्त महर्षि जन समाधि मरणरूप कागती आदनायी तथा आत्रग पक्ष जे  
 विषय इदेवामा आवतार छे जे रीते आ मत्व छे जेभ मानी रत्नप्रयत्न मुक्ति  
 भाज भां मुख प्रकारे उपमशील रहे छे

भावार्थ—आचार्य अथवा मुनिजन मोक्षमार्गमें निर्भय अने अलभ्य  
 चरन्त पनी विचरण करे छे आधी न पूर्वोक्त प्रकारधी जेभने दृष्टी उपम

આચાર્યાધિકારમભિધાય શિષ્યકર્તવ્યમધુના દર્શયન્તિ—‘વિનિગિચ્છ’ ઇત્યાદિ  
 મૂલ્મ—વિતિગિચ્છસમાવન્નેણં અપ્પાણેણં નો લહ્ઙ્ઙ સમાહિં,  
 સિયા વેગે અણુગચ્છંતિ અસિયા વેગે અનુગચ્છંતિ,અણુગચ્છમાણેહિં  
 અણુગચ્છમાણે કહં ન નિવ્વિવ્વજ્જે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—વિચિકિત્સાસમાપન્નેનાઽઽત્મના ન લભને સમાધિ, સિતા વૈકેઽનુ-  
 ગચ્છન્ત્યસિતા વૈકેઽનુગચ્છન્તિ, અનુગચ્છઙ્ઙિરનનુગચ્છન્ કથં ન નિવિચ્ચેત ॥મ૦૨॥

ટીકા—‘વિચિકિત્સે’ત્યાદિ, ‘મુનિઃ’ વિચિકિત્સાસમાપન્નેન—વિચિકિત્સા  
 =શક્તા તા સમાપન્નઃ=સમ્=સમ્યગ્દેશતઃ સર્વતથાપન્નઃ=પ્રાપ્તઃ=વિચિકિત્સાસમાપન્નસ્તેન  
 આત્મના સમાધિમ્=અન્તઃકરણશાન્તિ ન લભતે=ન પ્રાપ્નોતિ, સંશયાત્માનો દિ મોહની-

“વ્રવીમિ” પદકા અર્થ પહેલે કહી ઉદ્દેશોમે પ્રકટ ક્રિયા જા સુકા છે ॥મ૦૧॥

આચાર્ય મહારાજ કા અધિકાર કહ કર અવ સૂત્રકાર શિષ્યજનકે  
 કર્તવ્યકા કથન કરતે હૈ—“વિતિગિચ્છ” ઇત્યાદિ ।

મુનિકો જિનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમેં શક્કાશીલ નહીં હોના ચાહિયે, ક્યોં  
 કિ શકાવૃત્તિ રાખનેસે ચિત્તમેં શાન્તિ નહીં આ સકતી હૈ । ઇસી વાતકો  
 સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ । વિચિકિત્સા શબ્દકા અર્થ સઝાય હૈ । યહ  
 સંશય મુનિકે ચિત્તમેં કિસીં ખી તત્ત્વમેં ચાહે દેઝારૂપસે હો ચાહે સર્વરૂપસે  
 હો તો વહ ઉસકે ચિત્તમેં કખી ચૈન નહીં લેને દેતા હૈ ।

ક્યોં કિ સઝાયકા સ્વભાવ ખી ઇસી પ્રકારકા હૈ, જો ઉદિત હોને  
 પર આત્માકો ઇતસ્તનઃ પરસ્પર વિન્દ્વ અનેક વિષયોંકી ઓર દૌઙ્ઙતા

આપવામા આવી છે સૂત્રસ્થ ઇતિ શબ્દ અધિકારની અમાપ્તિની સૂચનારૂપ છે

“વ્રવીમિ” પદનો અર્થ પહેલા ધણા ઉદ્દેશોમા પ્રગટ કરવામા આવી  
 ગએલ છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

આચાર્ય મહારાજના અધિકારને કહી સૂત્રકાર હવે શિષ્યજનના કર્તવ્યવુ  
 વર્ણન કરે છે “વિતિગિચ્છ” ઇત્યાદિ

મુનિએ જિનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમા શકાશીલ બનવુ ન જોઈએ કેમ કે  
 શકિતવૃત્તિ રાખવાથી ચિત્તમા શાન્તિ આવી શકતી નથી આજ વાત સૂત્રકાર  
 પ્રગટ કરે છે વિચિકિત્સા શબ્દનો અર્થ સઝાય છે આ સઝાય મુનિના ચિત્તમા  
 કોઈપણ તત્ત્વમા ચાહે દેશરૂપમા હોય ચાહે સર્વરૂપથી હોય સઝાય તેના ચિત્તને  
 ક્યારેય ચૈન લેવા દે નહિ કેમ કે સઝાયનો સ્વભાવ એ પ્રકારનો હોય છે કે તેનો  
 ઉદય થતા આત્માને—ઇતસ્તવ પરસ્પર વિન્દ્વ અનેક વિષયોની તરફ દોર્યા કરે



ક્લિષ્ઠાયા ન સમ્ભવઃ, સ એવ દેશકાલસામાવગ્યવદ્ધિતસ્તુ સશયવિપયો ભવતિ ।  
 દેશતો વિપ્રકૃષ્ટમેર્વાદિવિપયે, કાલતો વિપ્રકૃષ્ટેઋપભદેવાદૌ, સ્વભાવતો વિપ્રકૃષ્ટે  
 પરમાણ્વાદિવિપયે ચ સન્દેહો જાયતે । સશયાત્મા ગુરુણોપદિષ્ટોઽપિ સમ્યક્ત્વરૂપા  
 વોધિઃ ન કદાપિ પ્રાપ્નોતીત્યાલોચ્ય પૂર્વોક્તવિપયે મુનિઃ કદાચિદપિ સંશયઃ ન  
 કુર્યાદિત્યાશયઃ ।

જિસ પદાર્થકા વોધ અનાયાસસે હોતા હૈ, ઉસમેં બી સંદેહકે લિયે  
 જગહ નહીં હૈ; પરન્તુ યહી સુખાધિગમ પદાર્થ જવ સ્વભાવ, દેશ  
 ઓર કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ (દૂર) હો જાતા હૈ તવ ઇસમેં બી સંદેહશીલ  
 પ્રાણિયોંકો સંદેહ હોને લગતા હૈ । દેશસે વિપ્રકૃષ્ટ મેઠુ આદિ પદાર્થ હૈ,  
 કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ ઋપભદેવાદિ તીર્થકર હૈ । સ્વભાવ અપેક્ષા દૂરવર્તી પર-  
 માણુ આદિ પદાર્થ હૈ । ઇનમેં અજ-સંદેહશીલ વ્યક્તિયોંકો સદેહ હોનેમેં  
 કોઈ આશ્ચર્ય જૈસી વાત નહીં હૈ । સંશયાત્મા વ્યક્તિ ગુરુકે દ્વારા ઉપદિષ્ટ  
 હોનેપર બી સમ્યક્ત્વરૂપ વોધિકે લાભસે વંચિત વના રહતા હૈ । ગુરુદેવ ઉસે  
 હર તરહસે પ્રત્યેક પદાર્થકા સ્વરૂપ અચ્છી રીતિસે સમજાતે બી હૈ તો  
 બી ઉનકે ઉપર ઉસકી સન્ધી શ્રદ્ધા સજગ નહીં હોતી હૈ, ઇસ પ્રકાર  
 વિચાર કરકે મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ વીતરાગ પ્રમુ દ્વારા પ્રતિપાદિત  
 ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોં મેં તથા તપ ઓર સયમાદિક આત્મહિત સાધક  
 વિપયોંમેં સદેહ કમી બી ન કરે ।

પદાર્થનેા બોધ અનાયાસે થાય છે તેમા પણ સ દેહને માટે સ્થાન નથી, પરંતુ  
 આ સુખાધિગમ પદાર્થ જ્યારે સ્વભાવ, દેશ અને કાળથી દૂર થાય છે ત્યારે  
 આમા પણ સ દેહશીલ પ્રાણીઓને સ દેહ થવા લાગે છે દેશથી દૂર મેઠ  
 આદિ પદાર્થ છે અને કાળથી દૂર ઋષભાદિ તીર્થકર છે સ્વભાવ અપેક્ષા દૂર  
 વર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ છે આમા સ દેહશીલ વ્યક્તિઓને સ દેહ થવામા  
 કોઈ આશ્ચર્ય જેવી વાત નથી સશય આત્મા વ્યક્તિ કે જેને ગુરુદ્વારા ઉપદેશ  
 મળ્યો હોય છે છતા પણ સમ્યક્ત્વરૂપ બોધિના લાભથી વચિત રહે છે ગુરુ-  
 દેવ તેને હરેક પ્રકારે પ્રત્યેક પદાર્થનું સ્વરૂપ સારી રીતે સમજાવે છે તો પણ  
 તેના ઉપર સાચી શ્રદ્ધા જાગતી નથી આ પ્રકારે વિચાર કરીને મુનિતુ કર્તવ્ય  
 છે કે તે વીતરાગ પ્રમુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોમા તથા તપ અને  
 સયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોમા સદેહ કહી પણ ન કરે

કિત્સાયા ન સમ્ભવઃ, સ એવ દેશકાલસ્ત્વભાવવ્યવહિતસ્તુ સશયવિપયો ભવતિ ।  
 દેશતો વિપ્રકૃષ્ટમેર્વાદિવિપયે, કાલતો વિપ્રકૃષ્ટે ઋષભદેવાદૌ, સ્વભાવતો વિપ્રકૃષ્ટે  
 પરમાણ્વાદિવિષયે ચ સન્દેહો જાયતે । સશયાત્મા ગુરુણોપદિષ્ટોઽપિ સમ્યક્ત્વરૂપાં  
 વોધિં ન કદાપિ પ્રામોતીત્યાલોચ્ય પૂર્વોક્તવિપયે મુનિઃ કદાચિદપિ સંશયં ન  
 કુર્યાદિત્યાશયઃ ।

જિસ પદાર્થકા વોધ અનાયાસસે હોતા હૈ, ઉસમ્નેં ભી સદેહકે લિયે  
 જગહ નહીં હૈ; પરન્તુ યહી સુસ્વાધિગમ પદાર્થ જવ સ્વભાવ, દેશ  
 ઓર કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ (દૂર) હો જાતા હૈ તવ હસમ્નેં ભી સદેહશીલ  
 પ્રાણિયોંકો સંદેહ હોને લગતા હૈ । દેશસે વિપ્રકૃષ્ટ મેરુ આદિ પદાર્થ હૈં,  
 કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ ઋષભદેવાદિ તીર્થદૂર હૈં । સ્વભાવ અપેક્ષા દૂરવર્તી પર-  
 માણુ આદિ પદાર્થ હૈં । ઇનમ્નેં અજ્ઞ-સદેહશીલ વ્યક્તિયોંકો સદેહ હોનેમે  
 કોઈ આશ્ચર્ય જૈસી વાત નહીં હૈ । સશયાત્મા વ્યક્તિ ગુરુકે દ્વારા ઉપદિષ્ટ  
 હોનેપર ભી સમ્યક્ત્વરૂપ વોધિકે લાભસે વચિત વના રહતા હૈ । ગુરુદેવ ઉસે  
 હર તરહસે પ્રત્યેક પદાર્થકા સ્વરૂપ અચ્છી રીતિસે સમજાતે ભી હૈં તો  
 ભી ઉનકે ઉપર ઉસકી સચ્ચી શ્રદ્ધા સજગ નહીં હોતી હૈ, હસ પ્રકાર  
 વિચાર કરકે મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ વીતરાગ પ્રભુ દ્વારા પ્રતિપાદિત  
 ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોં મેં તથા તપ ઓર સંયમાદિક આત્મહિત સાધક  
 વિષયોંમ્નેં સદેહ કમી ભી ન કરે ।

પદાર્થનો વોધ અનાયાસે થાય છે તેમા પણ સ દેહને માટે સ્થાન નથી, પરતુ  
 આ સુખાધિગમ પદાર્થ ન્યારે સ્વભાવ, દેશ અને કાળથી દૂર થાય છે ત્યારે  
 આમા પણ સ દેહશીલ પ્રાણીઓને સ દેહ થવા લાગે છે દેશથી દૂર મેરુ  
 આદિ પદાર્થ છે અને કાળથી દૂર ઋષભાદિ તીર્થકર છે સ્વભાવ અપેક્ષા દૂર  
 વર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ છે આમા સ દેહશીલ વ્યક્તિઓને સ દેહ થવામા  
 કોઈ આશ્ચર્ય જેવી વાત નથી સશય આત્મા વ્યક્તિ કે જેને ગુરુદ્વારા ઉપદેશ  
 મળ્યો હોય છે છતા પણ સમ્યક્ત્વરૂપ વોધિના લાભથી વચિત રહે છે ગુરુ-  
 દેવ તેને હરેક પ્રકારે પ્રત્યેક પદાર્થનું સ્વરૂપ સારી રીતે સમજાવે છે તો પણ  
 તેના ઉપર સચ્ચી શ્રદ્ધા જાગતી નથી આ પ્રકારે વિચાર કરીને મુનિનું કર્તવ્ય  
 છે કે તે વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોમા તથા તપ અને  
 સંયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોમા સદેહ કહી પણ ન કરે

यथा—'चित्तिगिच्छ'स्यस्य 'चिद्वज्जुगुप्सा' इतिच्छाया । तत्र चिद्वज्जुगुप्सासमापन्नेन विदूषां=मुनीनां परिष्ठावसंसारसारभानानां जुगुप्सा=भनद्वरः चिद्वज्जुगुप्सा=स्नानायकरणेन गात्रस्य मसोपहतत्वदुर्गन्धत्वादिफणनेन सापूर्णा निन्दा वां समापन्नेन=संप्राप्तन=भनगारतिरस्कारपरायणेन आत्मना=प्रन्तःकरणेन परैर्षिः समाधि=रत्नप्रयस्य न समते ।

अथ समाधिं क्वमत ? इति प्रश्ने त द्दश्यति—'सिता' इत्यादि, एक=कथन लघुकर्माणां सिताः अत्रादिनिपयानुरागण पुत्रादिस्नान च पदा अपि संसारिणा, 'वा अत्रोऽप्राप्यर्थकः, अनुगच्छन्ति लघुकर्माणां चिद्वज्जुगुप्सापरार्थिप्ररूपि

अथवा—“ चित्तिगिच्छ ” इसकी संस्कृत छाया “ चिद्वज्जुगुप्सा ” ऐसी नी होती है । इसका यह अर्थ होता है कि चिदान् मुनि कि जिन्होंने मछे प्रकारस मासारिक प्रत्येक पदार्थका यास्तविक स्वरूप जान लिया है, जो संसारकी असागतासे अच्छी तरहसे परिचित हो चुके हैं ऐसे मुनिक निन्दा, घृणा आदि करनेवाछे अन्यमती जन नीच गोधादि कक पंचक होते हैं और रत्नप्रयस्य समाधिकी प्रासिक छामसे मदा वंचित पने रहते हैं ।

रत्नप्रयस्य समाधिके प्रापक ( प्राप्त करनवाछे ) कौन जीव होते हैं, इसे प्रकट करनके लिय टीकाकार “सिता” इत्यादि सूत्रांशकी व्याख्या करते हैं, कोई एक लघुकर्मी संसारी जीव यद्यपि शब्दादिक विषयोंके अनुरागसे अथवा पुत्रादिकोंके स्नेहसे उनमें मोहित पने रहते हैं—उनके ममत्वमें दसे रहते हैं, तो नी लघुकर्मी-कर्म अस्य होनेसे तार्थद्वर भार गणधरादि प्रवृत्ता उपदेशका अनुसरण करते हैं ।

अथवा—“ चित्तिगिच्छ —अनी संस्कृत छाया चिद्वज्जुगुप्सा एव साय छे. ऐने अर्थ अवे भाष छे के विद्वान् मुनिआके अवे असासनी जन्मसावाणी सारी रीते परिचित अनी बूझ्या छे, ऐअेअे आरी रीते सांसारिक प्रत्येक पदार्थन वास्तविक स्वरूप अझी बीधु छे तेअेअेअे निद्व मूवा क्सावाणा अन्यमती नीच गोधादिना ज मक भाष छे अने रत्नप्रयस्य समाधिनी प्राप्तिना लालषी ते सदा वंचित अनी रहे छे.

रत्नप्रयस्य समाधिने प्राप्त क्सावाणा देवा लय होय छे—अ प्रतर क्सावा मते टीकाकार “सिता” इत्यादि सूत्रांशनी व्याख्या करे छे कअ अेक लघुकर्मी संसारी लय अे के शब्दादिक विषयाना अनुसरणी अने पुत्रादिकेअे स्नेहकी तेभां मोहित अनी रहे छे तेअे ममत्वभां इली रहे छे ते पव लघुकर्मी-कर्म अाप-होवाधी ते तीर्थकर अने नयप्रयस्य अे क्सेल उपदेशन



તમુપદેશમનુસરન્તિ । एवं वा=अथवा एके=संशयवर्जिता असिताः=विषय-पुत्र-  
दाराद्यनुरागैरवद्वा अनगारा अनुगच्छन्ति, अत्र वा शब्दः पक्षान्तरद्योतकः ।

આચાર્યમાર્ગાનુગામિનઃ પુરુષસ્ય ભવતિ સમ્યક્તાધિગમ ઇત્યાહ-‘અનુગ-  
ચ્છદ્ધિ’રિત્યાદિ, અનુગચ્છદ્ધિઃ=આચાર્યપ્રતિપાદિતોપદેશાનુગામિભિઃ સિતૈરસિતૈર્વા  
પ્રેરિતઃ સઃ અનનુગચ્છન્=સાવધાચારચારિણમનનુસરન્ સાવધ્યવ્યાપારમકુર્વચ્ચિત્યર્થઃ,  
કથ ન નિર્વિદ્યેત=સર્વવિષયચિરતિરૂપવૈરાગ્ય કથં ન પ્રાપ્નુયાત્? અપિ તુ પ્રાપ્નુયાદેવ ।

इसी तरह जो कोई एक संशयविहीन होते हैं वे असित-पंचेन्द्रियों के  
विषयों एवं पुत्र पत्नीके अनुराग से विमुक्त हो कर अनगार अवस्था-  
संपन्न होते हैं और तीर्थङ्करादिप्रणीत उपदेशके अनुसार अपनी प्रवृत्ति  
चालू रखते हैं । यहां सूत्रस्थ “ वा ” शब्द दूसरे पक्षका द्योतक है ।

જો આચાર્યકે વતાયે હુણ માર્ગકે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં ઉન્હૈં  
સમ્યક્ત્વકા લાભ હોતા હૈ-ઇસ વાતકો “અનુગચ્છદ્ધિઃ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ  
દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં । યાહે સિત હૈં, યાહે અસિત હૈં, જો આચા-  
ર્યદ્વારા પ્રદત્ત ઉપદેશ કે અનુરૂપ ચલતે હૈં, ઉન્હૈં રત્નત્રયરૂપ સમાધિકા  
લાભ હોતા હૈં ઓર ઇનકે દ્વારા ડસ ઓર પ્રવૃત્તિ કરનેકે લિયે પ્રેરિત  
કિયા ગયા અન્ય-દૂસરા વ્યક્તિ ભી, જો સાવધ વ્યાપારમેં પ્રવૃત્તિશીલ  
વ્યક્તિયોં કા ન અનુસરણ કરતા હૈં ઓર ન ડસે સ્વયં ભી કરતા હૈં,  
સર્વ વિષયોંકી વિરતિરૂપ વૈરાગ્યકો ધારણ ક્યોં નહીં કર સકતા હૈં ?  
અર્થાત્ અવશ્ય ધારણ કર સકતા હૈં । આચાર્યપ્રદર્શિત માર્ગ પર ચલ-

અનુસરણ કરે છે, એ જ રીતે જે કોઈ એક સંશયવિહીન હોય છે તે પચેન્દ્રિ-  
યોના વિષયો અને પુત્ર અને પત્નિના અનુરાગથી વિમુખ બની અણુગાર  
અવસ્થા-સંપન્ન બને છે અને તીર્થંકરાદિપ્રણીત ઉપદેશ-અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ  
ચાલુ રાખે છે

આચાર્યે યતાવેલ માર્ગ અનુસાર જે પ્રવૃત્તિ કરે છે એને સમ્યક્ત્વનો  
લાભ થાય છે આ વાતને “અનુગચ્છદ્ધિ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સૂત્રકાર પ્રગટ  
કરે છે. આચાર્યદ્વારા અપાયેલા ઉપદેશને અનુરૂપ ચાલે છે તેને રત્નત્રયરૂપ  
સમાધિનો લાભ થાય છે અને તેના દ્વારા એ તરફ પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રેરિત  
કરાયેલ ણીશ વ્યક્તિ પણ જે સાવધ વ્યાપારમા પ્રવૃત્તિશીલ વ્યક્તિઓનુ અનુ-  
સરણ કરતા નથી અને પોતે પણ ડરતા નથી, તે સર્વ વિષયોની વિરતિરૂપ  
વૈરાગ્યને ધારણ કેમ કરી શકતા નથી? અર્થાત-અવશ્ય ધારણ કરી શકે છે.

भाष्यार्थमागौनुपायी श्रुताकाङ्क्षादिरूपमिष्यात्वं निहाय सम्यक्त्वं प्राप्नुयादेवत्यर्थः।

यद्वा—अनुगच्छन्निः—भाष्योक्तं ज्ञानेनैकैश्चित्तंयमरीतिपालनविषये चापदिष्टा मुनि, ज्ञानानुदयाद्बुद्धिमान्देन च अननुगच्छन् मनस्पनवधारयन् कथं न निर्दिष्टे; अपि तु निर्दिष्टे—पश्चात्पापं प्राप्नुयादेवेत्यर्थः। प्राप्तनिर्वेदश्च अतसि परिबिन्तयति यद्ब्रह्ममभ्यासस्मि, न सयमो म वर्तते। अत एव सम्यग्पदिष्टमपि कर्तुं न शक्यमित्यादि। एवंविधपश्चात्पापप्रतिपन्नं सिद्धमसिद्धं वाऽऽचार्यं आभा-  
मेवाला प्राणी शक्यं, काङ्क्षा आविरूप मिष्यात्य का वमन कर—उसे छोड़ कर सम्यक्स्थको प्राप्त कर ही लेता है।

अथवा—आचार्यप्रतिपादित सिद्धान्त को जाननेवाले कितनेक मनुष्यों या मुनियोंद्वारा संयमकी रीतिके पालनेके विषयमें उपदिष्ट मुनि ज्ञानके अनुदयसे अथवा बुद्धिकी मंदतासे आचार्य प्रतिपादित सिद्धान्तका पथावत पालक न होनेसे क्या स्थिर नहीं होता है? अर्थात् अवश्य स्थिर होता है।

आचार्य—प्रेरित होने पर भी जब यह यथावत् संयम अथवा तपका आराधक नहीं हो पाता है उस समय इसे एक प्रकारकी आत्मग्लानि होती है। उस अवस्थामें यह विचारता है कि मैं अभव्य हूँ, संयमका पाठक मैं नहीं हो सकता; यही कारण है कि यह विषय मुझे पार २ समझाया जाता है, आचार्य मुझे समझानेमें जरा सी भी करबसर नहीं रखते हैं फिर भी मैं यथावत् रीतिसे उनके कह अनुसार चलनमें अस-

आचार्ये सूत्रवेद्य भागं उपर आलवावाणा प्राली शका, अकाक्षा आविश्य मिष्या त्वने इर करी—जोने ऐसी सम्भ्रतत्वेने प्राप्त करी वे छे।

अथवा—आचार्य प्रतिपादित सिद्धान्तने बालुवावाणा डेटलाक मनुष्यो अने मुनियोगद्वारा कथमनी रीतना पालनना स्थियभां उपदिष्ट मुनि ज्ञानना अनुदयभी अने बुद्धिनी मंदताभी आचार्य प्रतिपादित सिद्धान्तने यथावत् पाठक न होवाभी धु भिन्न नहीं पते? अर्थात् अवश्य भिन्न थाय छे।

आचार्य—प्रेरित होना छत्वा पक्ष आचार्ये ते यथावत् संयम अने तपने आराधक अनी शक्ये नहीं त्पारे तेने जेक प्रकारनी आत्मग्लानि थाय छे आ अवस्थाभां जे विचार्ये छे के दुँ अवश्य धुँ अथमने पाठक दुँ अनी शक्ये नहीं, जे न करव्य छे के आ विषय अने बारवार अभव्यववाभां आवे छे, आचार्य अने अभव्यववाभां जरा पक्ष करे सभत्ता नहीं छत्वा पक्ष दुँ यथावत् रीतभी

સયતિ-મો ભવ્ય ! નિર્વેદ મા ગમઃ, સમ્યક્વપાપ્યા ભવ્યસ્ત્વં, તત્પ્રાપ્તિથ ગ્રન્થિભેદેન, ગ્રન્થિભેદશ્ચ ભવ્યસ્યૈવ જાયતે, અભવ્યસ્ય 'નાહં ભવ્ય' ઇત્યાદિવુદ્ધેરપ્યનુદયાત્-  
 ઇતિ વિચાર્ય ત્વં મા વિપીદેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

एष च विषयविरतिरूपो निर्वेदो द्वादशकपायक्षयोपशमाद्यन्यतमस्य सत्त्वे  
 जायते, स तयाऽधिगतस्तर्हि तत्र दर्शन-चारित्रमोहनीययोः क्षयोपशमप्राप्तौ साम्प्रतं

મર્થ હી ઘના રહતા હૂ । ઇસ પ્રકાર પશ્ચાત્તાપકો કરનેવાલે સિતજન  
 અથવા અસિત જનકો આચાર્ય આશ્વાસન દેતે હુણ કહેતે હૈં કિ “હે  
 ભવ્ય ! તૂ ઉદાસ ન વન-આત્મગ્લાનિ મત કર । તૂ ભવ્ય હૈં, તુજે સમ-  
 ક્ષિતકા લાભ હુઆ હૈં, સમક્ષિતકા લાભ ગ્રન્થિભેદસે હી હોતા હૈં,  
 ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યકો હી હોતા હૈં, અભવ્યકો નહી અભવ્યકે  
 તો “ મૈં અભવ્ય હૂ ” ણેસા રચાલ તક ભી નહી હોતા હૈં ” । ણેસા વિચાર  
 કર તુમ ખેદવિન્ન મત હો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

यह विषयोंसे विरतिरूप निर्वेद १२ कषायोंके क्षयोपशममेंसे  
 किसी एकके सत्त्व होने पर होता है । वह विषयविरतिरूप निर्वेद यदि  
 तुझे प्राप्त हो चुका है तो तुझे दर्शनमोहनीय एव चारित्रमोहनीयके क्ष-  
 योपशमकी प्राप्ति हो चुकने पर भी इस समय ज्ञानावरणीय कर्मका  
 सद्भाव होनेसे ही प्रतिपादित तत्त्वार्थमे सकल वस्तुके बोधक ज्ञानकी

તેમના કહેવા સુજબ ચાલવામા અસમર્થ જ બની રહુ છુ આ પ્રકારનો પશ્ચા-  
 તાપ કરવાવાળા સિતજન અને અસિતજનને આવ્યાર્ય આશ્વાસન આપીને કહે  
 છે કે “ હે ભવ્ય ! તુ ઉદાસ બની આત્મગ્લાનિ ન કર તુ ભવ્ય છે, તને સમક્ષિ-  
 તનો લાભ થયો છે, સમક્ષિતનો ગ્રન્થિભેદથી જ થાય છે, ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યને  
 જ થાય છે, અભવ્યને નહિ અભવ્યને તો “ હું અભવ્ય છુ ” એવો ખ્યાલ  
 પણ નથી આવતો ” એવો વિચાર કરી તમે નિરાશ ન બનો ॥ સૂ૦૨ ॥

આ વિષયોથી વિરતિરૂપ નિર્વેદ ૧૨ કષાયોના ક્ષયોપશમમાથી કેઈ  
 એકનો સત્ત્વ હોવાથી બને છે તે વિષયવિરતિરૂપ નિર્વેદ જે તને પ્રાપ્ત થઈ  
 ચૂક્યું છે તો તને દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ક્ષયોપશમની પ્રાપ્તિ  
 થઈ જવા છતાં પણ આ સમય જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી જ પ્રતિ-  
 પાદિત તત્ત્વાર્થમા સકલ વસ્તુના બોધક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થયેલ નથી માટે તમે

ज्ञानावरणीयसञ्चात्यतिपादितेऽपि तत्कार्ये सकलवस्तुनो न ज्ञानं भवति, तदधिगमायै  
जिनोक्तवचनभङ्गानकरूपं सम्यक्समाकलम्बनीयमिति दर्शयति—‘तमेव’ इत्यादि।

मूळम्—तमेव सञ्च नीसंकज जिणेहिं पवेइय ॥ सू० ३ ॥

छाया—तद्व सस्य निःशङ्कं यग्निनै प्रवेदितम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘तदेवे’ इत्यादि, यत् परमाधर्माकाश-काश-पुद्गलादिकं जिनैः  
धीतरागै प्रवेदित इत्यत्रपर्यदि प्ररूपितं, तदेष वस्तुनातं सत्त्वं वास्त्विकम्,  
एवकाराभास्यतैर्विकारविपरूपितम्, किञ्च निःशङ्कं भगवदभिहितेषु परममूळमप्यु  
प्राप्ति नहीं हुई है, सो तुम उस अधिगम-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये जिन  
प्रतिपादित वचनोंमें भङ्गानरूप सम्यक्सम्बन्धन करो। इसी  
वाक्यको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘तमेव’ इत्यादि।

जिस धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य  
का वर्णन धीतरागप्रसूते १२ प्रकारकी सभामें किया है, वही भगवत्-  
प्ररूपित द्रव्य वास्तविक-सत्य है। सूत्रमें ‘एव’ पद अन्यतीर्थिकप्ररू-  
पित तत्त्व वास्तविक नहीं है इस बातका बोधक है। निःशङ्क शब्द यह  
प्रकट करता है कि भगवानने जिन सूक्ष्म, अन्तरित तथा दूर रहे हुए  
पदार्थों की प्ररूपणा की है और जो केवल शास्त्रों से ही जाने जाते हैं ऐसे  
परमाणु भादि पदार्थोंमें “ये हैं या नहीं हैं” इस प्रकारके संदेहका नाम  
शङ्का है—ऐसी शङ्का जिनमें नहीं है व निःशङ्क है।

ते अधिगम-ज्ञानकी प्राप्ति भाटे अनप्रतिपादित वचनोभा भङ्गानरूप सम्यक्सत्त्वनु  
भवव्यवहार करो आ वातने सूत्रकार समझवे छे. “तमेव” इत्यादि.

धीतराग प्रसूते १२ प्रकारकी सभामें धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश  
द्रव्य, कालद्रव्य अने पुद्गलद्रव्यनु के वस्तुन करे छे ते भगवत्-प्ररूपित  
द्रव्य वास्तविक सत्य छे. सूत्रमा “एव” पद अन्य तीर्थिकप्ररूपित तत्त्व  
वास्तविक नहीं आ वातने बोधक छे. निःशङ्क शब्द के प्रकट करे छे के  
भगवानने के सूक्ष्म अन्तरित तथा दूर रहेवा पदार्थोनी प्ररूपणा करी छे अने  
के केवल शास्त्रोधी व वस्तु शङ्का छे कोवा परमाणु भादि पदार्थोमा “आ  
छे के नहीं आ प्रकलन संदेहनु नाम शङ्का छे कोवी शङ्का नेनामां नहीं  
के निःशङ्क छे

शास्त्रमात्रज्ञेयेषु परमाण्वादिषु चार्थेषु अस्ति वा नास्ति इत्येवमाकारः  
सन्देहः शङ्का सा निर्गता=अपगता यस्मात् तन्निःशङ्क=सशयरहितमस्ति स्वसमय-  
परसमयपरिज्ञाकुशलचार्याणामप्राप्त्या देश-काल-स्वभावविप्रकृष्टेषु सूक्ष्माती-  
न्द्रियपदार्थसार्थेषु तत्साप्रकृहेतुदृष्टान्ताद्यभावाच्च ज्ञानावरणीयोदयेन सम्यग्ज्ञाना-  
सत्त्वेऽपि जिनप्रवचने सशयादिरहितेन भाव्यमित्याशयः । अतस्तथ्यभूतार्थप्रति-  
पादके वीतरागवचने श्रद्धा कार्या । उक्तञ्च—

“ वीतरागा हि सर्वज्ञा, मिथ्या न ब्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्ब्रुवतेषां, तथ्य भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥ इति ॥

भावार्थ—स्वसमय और परसमयके ज्ञाता आचार्योंकी अप्राप्तिसे  
देश, काल और स्वभाव विप्रकृष्ट ऐसे सूक्ष्म, अतीन्द्रिय पदार्थों में उनके  
साधक हेतु दृष्टान्तोंके अभावसे तथा ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे सम्य-  
ग्ज्ञान छद्मस्थ जीवोंके नहीं हो सकता है तो भी मुनियोंको जिनप्रव-  
चनमें संशयरहित ही होना चाहिये । कभी उनके विषयमें सशय नहीं  
करें । कारण कि तथ्य ( सत्य ) और भूतार्थ ( विद्यमान ) प्रतिपादक  
ही वीतराग प्रभुके वचन होते हैं । इसलिये उनमें श्रद्धा ही करणीय  
है । कहा भी है—

वीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न ब्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्ब्रुवतेषां तथ्यं भूतार्थदर्शकम् ॥ १ ॥

वीतराग ही सर्वज्ञ होते हैं । वे कहीं पर भी किसी भी अवस्थामें

लावार्थ—स्व समय अने पर समयना ज्ञाता आचार्योंकी अप्राप्तिथी  
देशकाल अने स्वभाव विप्रकृष्ट अथवा सूक्ष्म, अतीन्द्रिय पदार्थोंमा अने साधक  
हेतु दृष्टान्तोंना अभावथी अने ज्ञानावरणीय कर्मना उदयथी सम्यग्ज्ञान छद्मस्थ  
जीवोंने थतो नहीं तो पण्य मुनियोंअने जिन प्रवचनमा सशय रहित रहेषु  
जोअने कही अथवा विषयमा सशय न करे कारणके सत्य अने विद्यमान  
प्रतिपादक अ वीतराग प्रभुना वचन अने छे आ भाटे अथवा श्रद्धा अ  
शायनी जोअने कहु पण्य छे—

वीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न ब्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद् ब्रुवतेषां तथ्यं भूतार्थदर्शकम् ॥ १ ॥

वीतराग अ सर्वज्ञ होथ छे, अने कहीं पण्य स्थाने कहीं पण्य अवस्थामा ।

किं गृहस्थस्यैव श्रद्धा भस्स्युत गृहीतचारित्रस्य मुनेरपीत्याश्रद्धायामिदमुचरत्—  
उमयोरपि श्रद्धा मोहनीयोदयमाश्रयेन भवति, तत्प्रायस्यस्योभयत्र संभवात् ॥ सू० ३ ॥

संश्रयो हि श्रमभित्तुमिच्छेर्भवति तत्र अद्विचारणीयं तदाह—‘सद्बुद्धिस्स’ इत्यादि।

मूष्य—सद्बुद्धिस्स ण समणुद्धस्स सपव्वयमाणस्स समियति

मद्भमाणस्स पगया समिया होइ (१), समियंति मद्भमाणस्स  
पगया असमिया होइ (२), असमियति मद्भमाणस्स पगया समिया  
होइ (३), असमियति मद्भमाणस्स पगया असमिया होइ (४),  
समियति मद्भमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ  
उवेहाए (५), असमियति मद्भमाणस्स समिया वा असमिया  
वा असमिया होइ उवेहाए (६), उवेहमाणो अणुवेहमाणं चूया  
उवेहाहि समियाए, इच्छेव तस्य सधीं ज्ञोसिओ भवइ, से  
उट्ठियस्स ठियस्स गइ समणुपासइ, परथवि षाळभावे अप्पाण  
नो उवदंसिज्जा ॥ सू० ४ ॥

छाया—भ्रंशिनं लख समनुद्धस्य संप्रव्रजतः सम्पगिति मन्यमानस्यैकदा  
सम्यग् भवति (१), सम्पगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति (२), असम्य-  
गिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति (३), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग्  
मिष्यामाषण नहीं करते हैं। इसलिये उनके वचन ही तथ्य और मृतार्थ  
—प्रतिपादक होते हैं।

शङ्का—क्या शङ्का गृहस्थोंके ही होती है अथवा संयमीजनोंके भी?

उत्तर—शङ्का दोनोंके होती है, कारण कि शङ्काका कारण मोहनीय  
कर्मके उदयकी प्रयत्नता है। यह कर्म दोनोंके सम्भूत है ॥ ३ ॥

जो दीक्षा ग्रहण करनेका अभिलाषी है उसके शङ्का होती है। इस  
विषयमें जो विचारणीय बात है वह सूत्रकार कहते हैं “सद्बुद्धिस्स” इत्यादि।

मिथ्या धारण करता नहीं, अथवा तेमनु वचन अ सत्य जने विद्यमान-  
प्रतिपादक जने छे

शङ्का—शङ्का शु शुद्धस्थाने अ धार छे के सधमी जनेने पञ्च धार छे।

उत्तर—शङ्का जनेने धार छे, शङ्कानु अरुषु मोहनीय कर्मना उदयनी  
प्रयत्नता छे अ कर्म जनेनेमां सम्भूत छे

जे शिक्षा अरुषु करवाना अभिलाषी छे तेने शङ्का धार छे अ विषयमां  
जे विचारवानी बात छे ते सूत्रकार कहे छे— सद्बुद्धिस्स” इत्यादि,

भवति (४), सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग् भवत्युत्प्रेक्षया (५), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् वा असम्यग् भवत्युत्प्रेक्षया (६) । उत्प्रेक्षमाणोऽनुत्प्रेक्षणं ब्रूयादुत्प्रेक्षस्व सम्यक्तया, इत्येवं तत्र सन्धिर्ज्ञोपितो भवति, तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत, अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत् ॥मू०४॥

टीका—‘श्रद्धिन’ इत्यादि—श्रद्धिनः=श्रद्धावतः, श्रद्धा-हि वीतरागस्य गुरोश्च वचने विश्वासः मा यस्यास्ति स श्रद्धी तस्य श्रद्धिनः=आर्हतमार्गोऽऽस्थावतः समनुज्ञस्य मोक्षमार्गविहारिभिर्मुनिभिर्भावितस्य सयमार्हस्य सप्रव्रजतः=वैराग्येण प्रव्रज्यां स्वीकुर्वाणस्य जीवादिस्वरूपे संशयो यदि भवेत्तदा तदेव सत्यं निःशङ्क यज्जिनैः प्रवेदितम् इत्यादि सम्यगुपदेशेन तत्र प्रवृत्तस्य प्रवृद्धकण्ठकस्योत्तरसमये सम्यक्तवस्याधिक्य साम्य न्यूनत्वमभावो वा जायेतेत्याशयः । तादृशीमेव विचित्रा-

વીતરાગ વચનોંમેં વિશ્વાસકા હોના શ્રદ્ધા હૈ । હસ શ્રદ્ધાવિશિષ્ટ વ્યક્તિકા નામ શ્રદ્ધી હૈ । મોક્ષમાર્ગમેં વિચરણ કરનેવાલે મુનિયોંકે દ્વારા સંયમકે યોગ્ય બનાયે ગયે-સંયમ ધારણ કરનેકી ઓર પ્રવૃત્ત કિયે કા નામ સમનુજ્ઞ હૈ । સંયમકો ધારણ જિસને કર લિયા હૈ-અર્થાત્ વૈરાગ્ય-પૂર્વક ભાગવતી દીક્ષા જિસને સ્વીકૃત કર લી હૈ વહ સંપ્રવ્રજત્ હૈ । એસે વ્યક્તિકો યદિ કદાચિત્ જીવાદિક તત્ત્વોંકે સ્વરૂપમેં સંદેહ હો જાતા હૈ તો વહ હસ અટલ શ્રદ્ધા પર કિ “ જિનેન્દ્રદેવને જો કુછ કહા હૈ વહી સત્ય નિઃશંક તત્ત્વ હૈ ” અપની સંદેહશીલ પ્રવૃત્તિકા ઉન્મૂલન કર દેતા હૈ । હસસે વહ ઉત્તરકાલમેં સમકિતકે લાભકી અધિકતા કી પ્રાપ્તિ કર લેતા હૈ । અથવા જીવાદિક તત્ત્વોં મેં સંદેહશીલ હોને પર મિથ્યાત્વ

વીતરાગ વચનોમા વિશ્વાસ હોયો એ જ શ્રદ્ધા છે આ શ્રદ્ધાવિશિષ્ટ વ્યક્તિનું નામ શ્રદ્ધી છે મોક્ષમાર્ગમા વિચરણ કરવાવાળા મુનિયોદ્વારા સંયમને યોગ્ય બનાવેલા-સંયમ ધારણ કરવાની તરફ પ્રવૃત્ત બનેલનું નામ સમનુજ્ઞ છે સંયમ જેણે ધારણ કરી લીધેલ છે અર્થાત્ વૈરાગ્યપૂર્વક ભાગવતી દીક્ષા જેણે સ્વીકારી છે તે સંપ્રવ્રજત છે આવી વ્યક્તિને કદાચિત્ જીવાદિક તત્ત્વોના સ્વરૂપમા સંદેહ થઈ જાય છે તો તે આ અટલ શ્રદ્ધાપર કે “ જિનેન્દ્રદેવે જે કાઈ કહ્યું છે એ નિઃશંક સત્ય તત્ત્વ છે ” પોતાની સંદેહશીલ પ્રવૃત્તિને દૂર કરે છે, આથી તે ઉત્તરકાળમા સમકિતના લાભને અધિકતાથી પ્રાપ્ત કરી લે છે અને

सम्परिवर्ति दृश्यति 'सम्यगि'त्यादि-तस्य शङ्कारहितस्य=पूर्वोक्तशरणविधिद्वयस्य  
सम्यगिति-मिनमपेदिततत्त्वमेव सम्यग् इति=एवं मन्यमानस्य=अपबुध्यमानस्य एक  
दा=पदात्समये सम्यग् भवति सशयामापेन विनोयते शङ्कापुत्सादासम्भवात् ॥१॥

तस्य रोमप्रनत ध्वजारात् पूर्वं सम्यगिति मन्यमानस्य एकदा=उदुघरकाळे  
पारतीर्थिकुञ्जाग्रपरिशीलनेन षष्ठस्यविनिर्मितैकान्तनिधयनयप्रतिपादाग्रन्यायलो  
प्रकृतिके उदयमें पद समफित लाभसे यचित हो जाता है । यदि उत्तर  
फालमें समफित प्रासिकी अधिकता उसे न हो तो समफितफा लाभ जितने  
रूपमें उसे पूर्ण अयस्थामें हुआ है उसी रूपमें पना रहता है, अपवा  
उसकी अपेक्षा न्यून भी हो जाता है ।

भाषार्थ—आत्मा उपशम समफितको पा कर अन्तर्मुहूर्तकालके पाद  
नियमसे या तो समफितके अभावसे मिथ्यात्वदशासम्भल हो जायगा  
या क्षायोपशमिक समफितपाला हो जायेगा । क्षायोपशमिकसे वृद्धि कर  
यही आगे क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो जाता है । इस प्रकारकी विविध  
आत्मपरिणतिका प्रदर्शन कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जिनयथनमें  
शंकारहित हो कर प्रवृत्तिशील उस प्राणीको उस समय "जिनोक्त तस्य  
ही सत्य है" इस प्रकारके चिन्त्याससे समफितफा लाभ होता है; कारण  
कि समफितको नहीं होने देनेपासे जो शङ्कादिक दोष है वे उस समय  
उस आत्मासे दूषण हो जाते हैं । "सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा अस  
म्यग् भवति" जिनप्रयथनमें अज्ञासम्भल उसी मानयका ज्ञान जो पक्षिसे

एवमिति तत्त्वोभा सन्देहशील दोषाधी मिथ्यात्वप्रवृत्तिना वदन्ना ते समहित-  
वागधी वचित जने उ कथ्य उत्तरकालमा समहित प्राप्तिनी अधिकता जेने  
न भये तो समहित वाग केदव्य रूपमा जेने पूर्व अनस्थाभा मन्यो उ जे  
रूपमा जने उ अपवा जेनी अपेक्षा जेही यत् नय उ

भाषार्थ—आत्मा उपशम-समहितना शरजे अन्तरमुहूर्त पक्षि नियमाधी  
अपवा समहितना जलापधी मिथ्यात्वदशासपत जनी जये अपवा क्षायोपशमिक  
समहितवाग यत् जये क्षायोपशमिकधी अजय वधी ते क्षयिकसम्यग्दृष्टि यत् नय  
उ अय प्रकाशनी विविध आत्मपरिणतितु प्रदर्शन करवत्वा सूत्रकार उडे उ के  
अनयनभां शंकारहित रक्षी प्रवृत्तिशील जे प्राणीने जे समभ "जिनोक्त तस्य  
ही सत्य है" अय प्रकाशना विन्यासधी समहितने वाग यय उ शरण के  
समहितने शोकावाग्य के शंकारित वाग उ ते जे समये जेना आत्माधी दूर  
यत् नय उ (१) "सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति" अन  
प्रयथनभां अज्ञासपत जे अनयन ज्ञान के पदेव्य समहित रूपमा जनुं



કનેન ચ વ્યામોહિતમતેર્મિધ્યાત્વપરિગૃહીતતયા હેત્વાભાસદૃષ્ટાન્તાભાસાદીન્ રાગ-  
દ્વેષાદિના હેતુદૃષ્ટાન્તાનભિજ્ઞાનતઃ સમ્યક્તયચ્ચિતાન્તઃકરણમ્ય વિપરીતશ્રદ્ધાસમુત્પા-  
નાનન્તરમ્ અસમ્યગ્ ભવતિ, જિનોક્તં યત્ સમ્યક્ તત્તસ્યાઽસમ્યગિતિ ચેતસિપ્રતિ-  
ભાતિ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તરહસ્યવિસ્મૃતત્વાત્ । આક્ષિપતિ ચાનેકાન્તવાદમ્, તયા દિ  
યત્સત્ ન તદસત્ યચ્ચાસત્તત્કથમપિ ન સદ્ મત્તિતુમર્હતિ, એવ યન્નિત્યં ન તદનિત્યં

સમકિતરૂપમેં થા ઉત્તરકાલમેં પરતીર્થિક શાસ્ત્રોકે પરિશીલનસે અથવા  
છદ્મસ્થજનોને જિન ગ્રન્થોમેં એકાન્તરૂપસે નિશ્ચયનયકા વર્ણન કિયા હૈ  
ઉન ગ્રન્થોકે અવલોકન સે મતિમેં વ્યામોહ ઉત્પન્ન હો જાનેકે કારણ  
હેત્વાભાસ એવં દૃષ્ટાન્તાભાસોકો ખી સચ્ચે હેતુ ઓર સચ્ચે દૃષ્ટાન્તરૂપ  
માન લેતા હૈ । જિસસે વહ મિધ્યાત્વસે યુક્ત હો જાનેકે કારણ સમકિત  
સે વચિત અન્તઃકરણવાલા હો જાતા હૈ । કયો કિ ડસકે હૃદયમે વિપરીત  
શ્રદ્ધાકા નિવાસ હોતા હૈ । ઇસ કારણ યહ સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તકે રહસ્યકો  
મૂલ જાનેસે ફિર જિનોક્ત સમ્યક્ તત્ત્વોકો ખી અસમ્યક્રૂપસે માનને  
લગ જાતા હૈ, અનેકાન્તવાદકા ફિર તો વહ સ્વડન કરને લગ જાતા હૈ,  
અચનાક હી કહ ઉઠતા હૈ કિ વાહરે ! સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્ત ! તૂ તો એક  
વિલક્ષણ હી સિદ્ધાન્ત હૈ સત્ અસત્, નિત્ય અનિત્ય આદિ અનેક પર-  
સ્પરવિરોધી ધર્મોકો જો તૂ એક હી જગહ સ્વીકાર કરતા હૈ, ભલા !  
યહ ખી કોઈ વાત હૈ । અરે ! જો સત્ હોગા વહ અસત્ નહી હોગા ઓર

ઉત્તર કાળમા બીજા ધર્મના શાસ્ત્રોના સાબળવાથી અથવા તેા ધુતારા  
માણસો કે જેણે જીન ગ્રંથોમા એકાન્ત રૂપથી નિશ્ચયનયનુ વર્ણન કર્યું છે  
એવા ગ્રંથોના અવલોકનથી મતિમા ભ્રમણા ઉત્પન્ન થઈ જવાના કારણે હેત્વા-  
ભાસ અને દૃષ્ટાન્તાભાસોને પણ સાચા હેતુરૂપ અને સાચા દૃષ્ટાન્તરૂપ માની  
લે છે, આથી તે મિધ્યાત્વથી યુક્ત બની જવાના કારણે સમકિતથી વચિત  
અત કરણવાળો બની જાય છે કેમકે એના હૃદયમા વિપરીત શ્રદ્ધાનો નિવાસ  
થવા પામ્યો હોય છે આ કારણે એ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાતના રહસ્યને ભૂલી જવાથી  
જિનોક્ત સમ્યક્તત્ત્વોને પણ અસમ્યક્રૂપથી માનવા લાગી જાય છે અનેકા-  
ન્તવાદને પછી તેા એ ખડન કરવા માટે છે, અચાનક જ કહી ઉઠે છે કે વાહરે !  
સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાત ! તુ તો એક વિલક્ષણ જ સિદ્ધાત છે સત્ અસત્, નિત્ય  
અનિત્ય આદિ અનેક પરસ્પર વિરોધી ધર્મોનો જે તુ એક જ સાથે સ્વીકાર  
કરે છે, ભલા આ પણ કોઈ વાત છે, અરે ! જે સત્ છે તે અસત્ ન થઈ શકે

यच्चानित्यं न तच्चित्तं मधितुमर्हति, विरुद्धयार्थमैयोरकप्रानस्थानं न गति विरोध एव चित्तं गच्छेत्, तत्र न युक्तोऽयमनेकान्तवादः, एकस्मिन् बहुधर्मसाधकत्वो-  
स्तादृशदान्तस्य चासम्भवात् ॥ २ ॥

कस्य चिन्मैतद्वैपरीत्यमाह—' असम्यगिति 'त्यादि—मिथ्यात्वानुषन्धिना कस्य चित् असम्यक्—' पौत्रिकः शब्द ' इत्यादि वीतरागोक्तं तत्त्वं न साधीय इति जो असत् होगा—यह सत् नहीं होगा। इसी प्रकार जो वस्तु नित्य है वह अनित्य कैसे हो सकती है और जो अनित्य होगी वह नित्य कैसे हो सकती है। यदि परस्पर विरुद्ध धर्मोंका भी एकत्र अभिस्थान माना जायगा तो फिर जगतमें विरोध नामक कोई वस्तु ही नहीं रहेगी, समस्त वस्तुओं में परस्पर सकरता ही हो जायगी, परन्तु ऐसा तो है नहीं; अतः अनेकान्तवाद सिद्धान्त युक्तियुक्त सिद्धान्त नहीं है तथा ऐसा कोई हेतु या दृष्टान्त भी नहीं है कि जिसके पलपर एकही वस्तुमें परस्पर विरोधी धर्मोंकी सत्ता साधी जा सके २। " असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति " मिथ्यात्वका अनुषन्धि जिसकी आत्माने लगा हुआ है ऐसा मनुष्य वीतरागप्रतिपादित तत्त्वको पहिले असम्यक् समझता है, मिथ्यात्व के आदेशमें वह विचारता है कि जैनसिद्धान्तमें शब्द को जो पुद्गल की पर्याय माना गया है वह ठीक नहीं है, इसी प्रकार आत्माको क्या एक न मानकर उसे जो स्वदेह प्रमाण माना है सो यह भी मान्यता

जने असत् सत् धर्म शक्ये नहि. आ प्रकारे के वस्तु नित्य छे ते अनित्य धर्म रीते धर्म शक्ये जने के अनित्य होय ते नित्य केम धर्म शक्ये के परस्पर विरुद्ध धर्मोनि पञ्च जेकर अवस्थान मानवामा आवे तो पछी जगतमा विशेष नामनी कौन वस्तु न नही रह्ये—समस्त वस्तुजोमा परस्पर जेकरवा न जनी जवानी; परतु आवु तो नथी आवी जे जनेकान्तवाद युक्तियुक्त सिद्धांत नथी तेम जेवा कौन हेतु के दृष्टाव पञ्च नथी के जेना जेर उपर जेकर वस्तुमा परस्पर विरोधी धर्मोनी सत्ता जेकरूप जनी शक्ये (२) असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति " मिथ्यात्वने अनुषन्धि जेमा आत्मानां जावे छे जेवा मनुष्य वीतराग प्रतिपादित तत्त्वने असम्यक् समझे छे. मिथ्यात्वना आवेशमां जे विचार छे के जैन सिद्धांतमा शब्दने के पुद्गलनी पर्याय मानवामा आवे छे ते आवु नथी " आव प्रकारे आत्माने अपेक न मानी जेने स्वदेह प्रमाण माने छे जे मान्यता पञ्च उचित नथी, धृत्यादि रूपधी

एवं मन्यमानस्य मिथ्यात्वोदयप्रावल्यानाऽनर्थकं बहु विप्रलपतस्तस्य एकदा= कदाचित् परिणामवैचित्र्यान्मिथ्यात्वोपशमनेन आचार्योपदेशात्सम्यक्त्वनिश्चयेन च संशयादिके दूरीभूते सति यज्जिनोक्तं तत्त्वं तत्सम्यगिति भवति। संशयापनयस्तस्य कथमिति चेच्छृणु, एवं यदि शब्दो न पौद्गलिको भवेत्तर्हि तद्विद्वितावनुग्रहोपघातो

उचित नहीं है—इत्यादिरूपमें वह आत्मा वीतराग प्रतिपादित तत्त्वमें असम्यक्पना देखता है। इस प्रकार उसकी मान्यताका कारण प्रबल मिथ्यात्वका उदय है। इसकी प्रबलतामें वह और भी अनेक अनर्थक मान्यताओंकी कल्पनाको सम्यक् माना करता है, जगत्को ईश्वरकर्तृक माननेका भी यही कारण है। इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी वासनासे प्रभुकथित मार्ग—उलटा—अर्थार्थ प्रतिभासित होता है। परन्तु जब उसकी निष्पक्ष आचार्यादिक के सम्यग् उपदेशसे अथवा परिणामकी विचित्रता से या मिथ्यात्वके उपशमसे आखे खुलती हैं, तत्त्वका वास्तविक भान-निश्चय उसे होता है तो उसकी पूर्वमान्यता में सहसा परिवर्तन हो जाता है, सशय दूर होते ही फिर उसे यही निश्चय होता है कि जो वीतरागने तत्त्वके स्वरूपका प्रतिपादन किया है वही वास्तविक है। शब्द आकाश का गुण न होकर पुद्गलकी ही एक पर्याय है, यदि वह पौद्गलिक न होता तो उसके द्वारा जो कर्ण-इन्द्रियका उपघात देखनेमें आता है वह आकाशके अभूर्तिक होने पर उसके गुण को भी अभूर्तिक होनेसे कैसे हो

ते आत्मा वीतराग प्रतिपादित तत्त्वमा असम्यक्पणु लुभ्ये छे आ प्रकार्णी  
 ज्येनी मान्यतानु कारणु प्रबल मिथ्यात्वने उदय छे ज्येनी प्रणजतामा ज्येणीलु  
 पणु अनेक अनर्थक मान्यताज्येनी कल्पनाने सम्यक् मान्या करे छे जगतने  
 ईश्वर कर्तृक भानवानु पणु आ कारणु छे आ प्रकारे ज्येने मिथ्यात्वनी वास-  
 नार्थी प्रभु कथित मार्ग उल्टो-अर्थार्थ प्रतिभासित जने छे परन्तु न्यारे  
 ज्येनी निष्पक्ष आचार्यादिकना सम्यग् उपदेशार्थी अथवा परिणामनी विचित्रताथी  
 अथवा मिथ्यात्वना उपशमथी आणो भुले छे-तत्त्वनु वास्तविके बान ज्येने थवा  
 यामे छे त्यारे ज्येनी पूर्व मान्यतामा सहसा परिवर्तन थछे नथ छे सशय  
 दूर थता ज इरी ज्येने जे निश्चय ज धार्थ नथ छे के वीतरागे तत्वोना स्वइ  
 पने जे रीते कहेल छे ते ज वास्तविके छे शब्द आकाशना शुषु नथी पणु  
 पुद्गलनी ज जोक पर्याय छे कदाच जे पौद्गलिक न होत तो ज्येना द्वारा कर्ण  
 इन्द्रियने जे उपघात जेवामा आवे छे ते आकाश अभूर्तिके होवार्थी ज्येना

कर्मोन्द्रियस्य न स्याताम्, भ्रमूर्त्तत्वाद् गगनचद्, न चायं तपेत्यादि न्यायावतारेण तस्य बाधकतर्कापनयो जायते ॥ ३ ॥

मिथ्यात्ववासनारासितान्तःकरणस्यार्तशासनापरिशोक्तस्य कस्य चिद् असम्यक्—स्याद्वादतत्त्वं न बोधनं कथमेकैव समयन परमाणुः सप्तमपृषिवीतस्त समुत्पाय श्लोकान्तं यान्द्रभ्यति ? इति—एवं मन्यमानस्य कुतर्कव्यवहिसस्य एकदा= कुतर्कनिकरमसरत्वर असम्यग् भवति । इत्थं हि कुतर्कोन्नाक्रिस्तार्पास्त विषदन्ते—कतु सक्तता है? इसी प्रकार अनुग्रह भी जो शब्दसे उसका होता है वह भी नहीं हो सकता । भला ! भ्रमूर्तिक आकाशसे भी कहीं अनुग्रह और उपघात होते हैं । अतः अनुग्रह और उपघातकारक होनेसे शब्द मूर्तिक ही है । इस प्रकारसे वह युक्तिबादके चलपर अपने पूर्वबाधक तत्कका अपनयन कर (छोड़) देता है, इसलिये उसका वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान हो जाता है ३ ।

“असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वकी वासनासे जिसका अन्तःकरण वासित हो जाता है तथा जिनेन्द्र प्रति पादित सिद्धान्तका जिसने परिशीलन भी नहीं किया है उसे मनुष्यके चित्तमें “स्याद्वादतत्त्व सुन्दर नहीं है” इस प्रकारका असम्यक् उद्भूत होता है । उस कारणसे वह स्याद्वाद-सिद्धान्त-प्रतिपादित कथन को असम्यक् मानता है और कहता है कि जो जिनशास्त्रमें यह लिखा है कि एक पुत्रलका परमाणु एक समयमें १४ राज् प्रमाण गमन करता

पुत्रने पञ्च अभूर्तिक बोवाधी कथं शीते कथं शके ? के प्रकारे अनुग्रहं पञ्च के शब्दधी जेने बाध छे जे पञ्च न कथं शके भला । अभूर्तिक आकाशधी पञ्च कधी अनुग्रहं जेने उपघात कथं शके ? अनुग्रहं जेने उपघातकारक बोवाधी शब्द भूर्तिक क छे आ प्रकारधी ते बुद्धिवाक्य जे उपर पोताना पूर्वबाधक वहने छेरी दे छे आधी जेनु जे ज्ञान सम्यक् जनी जाय छे (३)

असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति ” मिथ्यात्वकी वासनाधी जेनु अन्तःकरण वासनावागु जेने छे तथा जेनेन्द्र प्रतिपादित सिद्धान्त जेने परिशीलन पञ्च कथुं नहीं, जेवा मनुष्यता चित्तमां स्याद्वाद तत्त्व जेकर नहीं ” आ प्रकारने असम्यक् उद्भूत बाध छे जे कारणधी जे स्याद्वाद सिद्धान्त प्रतिपादित कथनने असम्यक् भवने छे जेने कहे छे के एन शास्त्रमां जेनु वपु छे के जेके पुत्रगवना परमाणु जेके समथमां

દેશરજ્જુસ્વરૂપલોકસ્ય પ્રથમચરમાકાશપ્રદેશયોર્યાગપદ્યસમ્બન્ધાત્ પરમાણોસ્તાવ-  
ત્પ્રમાણટં દુર્વારમેવ જાયેત, લોકાન્તદ્વયગતપ્રદેશયોર્ચક્રમમાપદ્યેત ઇત્યાદિયુક્તિભિ-  
સ્તસ્યાસમ્યક્ત્વમિતિ, પરન્તુ તે દેવાના પ્રિયા અનવગાહિતવીતરાગાગમા ન જાનન્તિ  
યથા વિસ્ત્રસાપરિણામેન પરમાણોરાશુગતિકતત્તૈક્રમમયેનાસદ્વ્યયપ્રદેશાતિક્રમણ  
ભવતીતિ ॥ ૪ ॥

હૈં સૌ યહ વાત સમજમે નહીં આતી હૈં, કારણ કિ એક સમયમેં હીં  
સસમ નરકસે ડઠ કર કૈસે લોકકે અન્તતક વહ જા સકતા હૈં । ડસ  
પ્રકારકી માન્યતાવાલેકા જ્ઞાન કુતર્કસે યુક્ત હોતા હૈં, ઓર ડસ હીં  
કુતર્કકે બલપર ડસ પૂર્વોક્ત માન્યતાકા નિપેધ કરતા હૈં । નિપેધમેં વહ  
યહ કુયુક્તિ દેના હૈં કિ એક હીં સમયમે જય પરમાણુ ચૌદહ રાજૂ ગમન  
કરતા હૈં તો ડસકા લોકકે આદિ ઓર અંતકે પ્રદેશકે સાથ યુગપત્  
સબધ હોને પર પરમાણુમેં ભીં ચૌદહ-રાજૂ-પ્રમાણતા આ જાયગી । અન્યથા  
યુગપત્ આદિ અંતકે પ્રદેશકે સાથ ડસકા સબધ નહીં હો સકતા હૈં;  
તથા ડસકા યુગપત્ સબંધ માનને પર લોકકે આદિ અંત પ્રદેશોંકી ભીં  
એકતા આવેગી । એસા કહનેવાલે અજ્ઞાની વીતરાગોપદિષ્ટ આગમકે જ્ઞાતા  
ન હોનેસે ડસ વાતકો નહીં સમજતે હૈં કિ સ્વાભાવિક પરિણામસે એક  
પરમાણુ શીઘ્ર ગતિવાલા હોનેસે એક સમયમે અસહ્યાન પ્રદેશોકા ડહ્લં-  
ધન કર જાતા હૈં ૪।

૧૪ રાજૂપ્રમાણુ ગમન કરે છે તેથી આ વાત સમજના બેસતી નથી કારણ કે  
એક સમયમા જ સસમ નરકથી ઉઠી કઈ રીતે લોકના અન્ત સુધી એ પહોંચી  
શકે આ પ્રકારની માન્યતાવાળા જ્ઞાન કુતર્કથી ભરેલા હોય છે, અને એ જ  
કુતર્કના બળ ઉપર તેઓ આ પૂર્વોક્ત માન્યતાનો નિપેધ કરે છે નિપેધમા તે  
એવી કુયુક્તિ રજૂ કરે છે કે એક જ સમયમા બન્યારે પરમાણુ ૧૪ રાજૂ કરી  
શકે છે તો તેનો લોકના આદિ અને અન્તના પ્રદેશની સાથે યુગપત્ સબધ  
હોવાથી પરમાણુમા પણ ૧૪ રાજૂ પ્રમાણુતા આવી બન્ય આ સિવાય યુગપત્  
આદિ અન્તના પ્રદેશની સાથે એનો સબધ હોઈ શકે નહીં અને જો એનો  
યુગપત્ સબધ માનવામા આવે તો લોકના આદિ અત પ્રદેશોની પણ એકતા  
આવવાની, આલુ કહેવાવાળા અજ્ઞાની વીતરાગના ઉપદેશલ આગમથી બાણકાર  
ન હોવાથી આ વાતને સમજી શકતા નથી કે સ્વાભાવિક પરિણામથી એક પરમાણુ  
ત્વરિત ગતિવાળા હોવાથી એક સમયમા અસહ્ય પ્રદેશોનુ ઉલ્લંધન કરી શકે છે (૪)

परमार्थप्रकटनपूर्वकं महानुपसंहरमाह—'सम्यगित्यादि, सम्यगित्येष मन्यमानस्य सद्भाविषमिन्वस्य सम्यग् उपादेयं वस्तुपादेयत्वेनैव आन्तः, यत् सर्वज्ञोपदिष्टत्वेन सम्यक् यथासर्वज्ञोपदिष्टरत्नेनासम्यक् तद्वद्वयमपि तस्य उत्प्रेक्षया न्ययाभिप्रायसमालोचनया सम्यक्त्वपरिगृहीतया सम्यग् भवति ॥ ५ ॥

पूर्ववैपरीत्येनाह—'असम्यगित्यादि असम्यगिति मन्यमानस्य स्याद्वादनयोक्तृमीषानीवादितश्च यद्यपि सम्यगेव तथाऽप्यसम्यगिति ज्ञानतत्त्वस्यस्पर्धा

“सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यक् वा असम्यक् वा सम्यक् भवति उत्प्रेक्षया” उपादेय वस्तुको उपादेयरूपसे और हेय वस्तुको हेयरूपसे माननेवाले तथा ज्ञात विषयको निःशंकरूपसे मानने और जाननेवाले सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यक् होता है। “सर्वज्ञके द्वारा कथित विषय सम्यक् और असर्वज्ञद्वारा प्रतिपादित विषय असम्यक् है” इस प्रकार इन दोनों बातोंका सम्यक्नयकी अपेक्षासे विचार करनेवाले सम्यग्दृष्टि मनुष्यका ज्ञान सच्चा ही माना गया है। “असम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग् भवति उत्प्रेक्षया” स्याद्वादनयकी अपेक्षा से ही जीव और अजीवादि तत्त्वोंका स्वरूप कहा गया है, इसलिये वस्तुस्वरूप विविष्ट वे जीवादिक तत्त्व सम्यक् ही हैं, परन्तु छद्मस्वोंकी दृष्टिमें यह नयविचारणा ठीक १ समझमें नहीं आ सकनेके कारण और ऊपरी रूपसे ही वस्तुको जाननेके कारणसे उनका ज्ञान अधूरा रहता है, अतः

“सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यक् वा असम्यक् वा सम्यक् भवति उत्प्रेक्षया” उपादेय वस्तुने उपदेय रूपमी अने हेय वस्तुने हेयपद्वामी मानवाचणया तथा ज्ञात विषयने निःशंकरूपमी मानवा अने अद्यवाचणया सम्यग्दृष्टितु ज्ञान सम्यक् हेतु छे सर्वज्ञ तरङ्गमी कहेवागं आवेल विषय सम्यक् अने असर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित विषय असम्यक् छे आ प्रकारे आ अने वातोने सम्यक्नयनी अपेक्षामी विचार करवाचणया सम्यग्दृष्टि मनुष्यतु ज्ञान सत्यु व मानु अने छे (५) “असम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग् भवति उत्प्रेक्षया” स्याद्वादनयनी अपेक्षामी व लय अने अलयादि तत्त्वोतु स्वरूप कहेवागं आवेल छे आ भाटे जे स्वर्गपविशिष्ट वे लयादिक तत्व सम्यक् व छे परतु छद्मस्वोनी दृष्टिगं आ तथ्य विचारणा ठीक ठीक समझवामा नहि आवचणया कारणे तेषु ज्ञान सम्यक् रहे छे ओरवे ते वस्तुना वास्तविक स्वरूपमी अज्ञानि जनी

દર્શિત્વેન યત્ સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સત્ત્વં તસ્ય ઉત્પ્રેક્ષયા=અસમ્યક્પર્યાલોચનયાઽ-  
પરિશુદ્ધાધ્યવસાયત્વેન ચ મિથ્યાત્વપરિગૃહીતતયા અસમ્યગ્ ભવતિ, યથૈવ સંશયાદિઃ  
પૂર્વમહ્નુરિતસ્તયૈવ ફલિત ઇત્યર્થઃ ॥ ૬ ॥

ઇત્યં સમ્યગુત્પ્રેક્ષાપરઃ પરોપદેશદાને સમર્થો ભવતીત્યાહ—‘ ઉત્પ્રેક્ષમાણ ’  
ઇત્યાદિ—ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ=જિનશાસનપરિઠ્ઠિતવુદ્ધિતયા સકલદેયોપાદેયપદાર્થસાર્યા-  
ચગતિપૂર્વકં સમ્યગસમ્યક્ ચ સતત સમાલોચન્ અનુત્પ્રેક્ષમાણં લોકાનુગમનશીલં  
વે વસ્તુકે વાસ્તવિક સ્વરૂપસે અનભિજ્ઞ ચન ઇકાન્ત-મત-પ્રતિપાદિત  
વસ્તુકે અચથાર્થ સ્વરૂપકો યથાર્થ-સમ્યક્ ઔર યથાર્થ સ્વરૂપકો અસમ્યક્  
માન વૈઠતે હૈં । ઇસલિયે યથાર્થ સ્વરૂપ જાનનેવાલો કી દૃષ્ટિમૈં યહ ઉનકી  
માન્યતા અચથાર્થરૂપ હી હૈં; ક્યોં કિ જૈસી પ્રતીતિ હોતી હૈં વૈસા હી જ્ઞાન  
હનૈં હોતા હૈં । અસમ્યક્ પ્રતીતિકા કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના યા અપ-  
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય હૈં । ઇસકા હી કારણ નિશકરૂપસે ભાનકા અભાવ  
હૈં । ઇસલિયે જિસ રૂપસે સશયાદિક હનૈં વસ્તુકે વિષયમૈં ઉત્પન્ન હોતે  
હૈં ડસી રૂપસે વે વહાં ફલિત હી હોતે હૈં ૬ ।

હસ પ્રકાર વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમૈં યથાર્થ અચાર્થપનેકા કારણ સમજ  
કર જો ઇસ વિષયકા વિચાર કરનેમૈં ચતુર હૈં વે પરકો ઇસ વિષયકી  
દૃઢતા સંપાદનાર્થ સમજાતે હૈં કિ હૈં ભવ્ય ! ‘ ઉત્પ્રેક્ષમાણોઽનુત્પ્રેક્ષમાણં  
બ્રૂયાદુત્પ્રેક્ષસ્વ સમ્યક્તયા ’ મૈંને ઇસ પદાર્થકી અચ્છી તરહસે પર્યાલોચના  
કર લી હૈં—જિનશાસનમૈં જિસ તત્ત્વકા વર્ણન જિસરૂપસે કિયા ગયા હૈં

એકાન્તમત-પ્રતિપાદિત વસ્તુના અચથાર્થ સ્વરૂપને યથાર્થ-સમ્યક્ અને યથાર્થ  
સ્વરૂપને અસમ્યક્ માની ગેઠા છે આ માટે યથાર્થ સ્વરૂપનજીવાવાણાની દૃષ્ટિમા  
આ તેની માન્યતા અચથાર્થ રૂપ જ છે કેમ કે જેવી પ્રતીતિ થાય છે તેણુ  
જ્ઞાન તેને થાય છે અસમ્યક્ પ્રતીતિનુ કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના અને અપ  
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય છે આનુ પણ કારણ નિશકરૂપથી જાનનેા અભાવ છે  
આ માટે જે રૂપથી તેને સશયાદિક વિષય વસ્તુમા ઉત્પન્ન થાય છે, એવા રૂપમા  
તેનુ જ્ઞ મળે છે (૬)

આ પ્રકારે વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમા યથાર્થ અચથાર્થનુ કારણ સમજાને જે  
આ વિષયનેા વિચાર કરવામા ચતુર છે તે બીજાને આ વિષયની દૃઢતા સંપાદન  
માટે સમજાવે છે કે હે ભવ્ય ! ‘ ઉત્પ્રેક્ષમાણો ’—ઇત્યાદિ

મે આ પૂજાર્થની સારી રીતે પર્યાલોચના કરેલ છે જીનશાસનમા જે તત્ત્વનું

सम्यगसम्यगादिसमालोचनारहितं सञ्चयितमर्तिं जनं ध्रुवात्=क्ययत् हे-मभ्य ।  
सम्यक्कया=भारितशासनोक्तरीत्या समभावनया ऊपेक्षस्व=समालोच्य पक्षपातरा-  
हित्येन जीवानीनादिवत्समाहितशासनात् साधीयाज्य वा परतैर्पिकाम्नाचितमिति  
नेमे निमीत्य स्वान्तःकरणे तत्त्वं विभावयत्पर्यः ।

यद्वा 'उत्प्रेक्षमाण' -उत्=मात्रव्येन प्रेक्षमाण' संप्रमे समुपोगपरः, अनु

बह असदिग्ध है, उसमें सन्देहके लिये थोड़ासा भी स्थान नहीं है ।  
इतने तत्त्व हेय हैं, इतने उपादेय हैं, इतने श्रेय हैं । बीतराग प्रतिपादित  
वस्तुस्वरूप ही यथार्थ है; अन्य छद्मस्थ कथित नहीं । इस प्रकार जिन  
शासनसे परिकर्मित बुद्धि, होनसे हेय और उपादेय पदार्थोंकी भवगति  
पूर्वक उनमें सम्यक् असम्यकरूपनेकी समालोचना करनेवाला विद्वान् मुनि  
जन, लोकानुगमनशील एवं सम्यक् असम्यक्की आलोचनासे रहित  
पेसे संचायित मतिवाले जनके प्रति संपोचनार्थ कहते हैं कि हे भग्य ।  
कम से कम मूं आँसोंको मीचकर अपने चित्तमें पक्षपातसे रहित होकर  
इतना सो विचार कर कि जिस प्रकारसे वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन जिन  
भगवान्ने किया है वह ठीक है या परतीर्षिकज्जने जिस वस्तुतत्त्वका  
प्रतिपादन किया है वह ठीक है ।

अथवा—जो संयमके परिपासन करनेमें पूर्ण बधोगशील हैं वे  
उसमें अनुत्साहित हुए अथवा संदेहशील हुए मनुष्यको समझावे कि

पक्षन जेवा रूपमा अपेक्ष छ ते असदिग्ध छ, तेमां स देह करवातु अरु  
पक्ष स्थान नहीं आटहुं तत्र जेव छ आटवां उपादेव छ आटवां जेव छ  
वीवशज प्रतिपादित वस्तुस्वरूप अ यथाय छ, भीज छद्मस्थधी प्रतिपादित  
वस्तुस्वरूप यथायं नहीं आ प्रकारे लनशासनपर परिकर्मित बुद्धि होवाधी  
जेव जने उपादेय पदार्थोनी अवमतिपूर्वक तेमां सम्मद्-असम्मद्पक्षानी समा  
लोचना इत्यावाण्या विद्वान् मुनिजन, लोकानुगमनशील जने सम्मद् असम्मद्नी  
आलोचनाधी स्मित जेवा सशय मतिवाज्य भावसने सञ्चयन करी छे छे  
छे लभ्य । तु वारी आजेने लभ करीने पक्षपातछित्त बध मनमा  
थोडे ते विचार कर छे के प्रकारे वस्तुस्वरूपतु प्रतिपादन लन जनवाने  
करे छे ते ठीक छे के परधर्मोन्मोले के वस्तुतत्त्वतु प्रतिपादन करे छे ते ठीक छे ?

अथवा—जे अथमनु परिचक्षण करवाभां पूज्य उद्योगशील छ तेजो  
आनाधी उत्साहक वररूप जनेवा अथवा स देह वृत्तिवाण्या जन्मा होव जेवा



लोकमाण=तत्रोद्यमरहितं संशयालूढं जनं ब्रूयात्, सम्पत्त्वे=सयमे उत्प्रेक्षस्व=समु-  
घोगं विधेहि-तत्र पराक्रमस्वेत्यर्थः, किमाश्रित्येदमुक्तमित्याह-' इत्येव 'मित्यादि,  
इत्येव=पूर्ववर्णितरूपेण तत्र=संयमे सन्धिः=ज्ञानावरणीयादिकर्मणां परम्परा  
ज्ञोपितः=क्षपितः-दूरीकृतो भवति ।

तादृशोत्प्रेक्षणशीलस्य यद्भवति तदाह-' तस्ये 'त्यादि, हे शिष्याः ! तस्य=  
श्रद्धावतः उत्थितस्य प्रव्रजितमुद्यतस्य सम्पत्त्वे संशयरहितस्य स्थितस्य=आचार्य-  
स्यादेशे तदन्तिके च वर्तमानस्य गतिं=तदाचरणरूपां पद्वतिं यूयं समनुपश्यत  
=सम्यक् प्रेक्षध्वम्, पूर्वोक्तस्य श्रद्धावतः सर्वजनप्रशंसापात्रत्वं ज्ञाने दर्शने च दृढत्वं  
हे भव्य ! तु इस सयमकी परिपालनानिमित्त पूर्ण प्रयत्नशील रह ।  
क्यों कि इस सयमकी आराधनामे ही ज्ञानावरणीयादिक द्रव्य-भाव-  
कर्मोंकी परपरा के नाश करनेकी शक्ति रही हुई है । इस प्रकार प्रयत्न-  
शील व्यक्तिके लाभ को प्रकट करनेके लिये सूत्रकार " तस्योत्थितस्य  
गतिं समनुपश्यत " कहते हैं । उस श्रद्धासम्पन्न एव भागवती दीक्षा ग्रहण  
करनेके लिये उद्यमशील मनुष्यको यह एक बड़ा भारी लाभ होता है  
कि जब वह शङ्कररहित होकर आचार्यके निकट बसता या उनकी आज्ञा  
में रहता हुआ संयमकी आराधना करनेमें तल्लीन होता है तब उसे सम्प-  
त्त्वके परिज्ञानपूर्वक रत्नत्रयकी आराधनासे मुक्तिका लाभ होता है । इस  
प्रकार शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि देखो; श्रद्धा-  
सम्पन्न व्यक्ति सर्वजनकी प्रशंसाका पात्र बन कर, ज्ञान और दर्शनमें  
दृढ़ताकी प्राप्तिसे चारित्र्यमें निश्चलता धारण करता हुआ रत्नत्रयकी

मनुष्यने समजवे डे डे लव्य । तु आ सयमने पाणवाभा पूर्णपणे प्रयत्न-  
शील रहे, केम के आ सयमनी आराधनामा ज्ञानावरणीयादिक द्रव्यलाव  
कर्मोंनी परपराने नाश करवानी शक्ति छे आवा प्रयत्नशील व्यक्तितना  
लाभने प्रकट करता सूत्रकार " तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत " कडे छे-आवा  
श्रद्धास पन्न अने भागवती दीक्षा अडवु करवामा उद्यमशील मनुष्यने आ ओक  
मोटो लाभ थाय छे डे आरे ते शंकारहित भनी आचार्यनी पासे रही अथवा  
अभनी आज्ञामा रही सयमनी आराधना करवामा तल्लीन अने छे आरे तेने  
सम्यक्त्वना परिज्ञानपूर्वक रत्नत्रयनी आराधनाथी मुक्तिने लाभ थाय छे, आ  
प्रकारे शिष्योने सम्बोधन करता सूत्रकार कडे छे डे लुओ श्रद्धास पन्न व्यक्तित  
सर्वजननी प्रशंसाने पात्र भनी ज्ञान अने दर्शनमा दृढतानी प्राप्तिथी चारित्र्यमा

धारिणे निभस्तं सम्यक्परिद्वानपूर्वकरत्नयाराधनन मासाधिगमभ मवतीति  
सम्यक् पश्यतेति तात्पर्यम् ।

यद्वा-तस्य=संयमोद्योगवत् अस्थितस्य तदुद्योग सततं जाग्रत गति=मोक्ष-  
मास्त्रिणां तस्साधिकं रत्नमयसमाराधनरूपां वा तथा स्थितस्य समयसमुद्योग  
वैपरीत्यन वर्तमानस्य सावधव्यापारनिरतस्य दण्डिशास्त्र्यादे गति=तदाधरणरूपां  
पद्वति सर्वजननिन्दारूपां नरक-निगादादिगमनं च समनुपश्यत=सम्यग् विचारय  
न्वम्, उभयोर्गतिं समवधार्य संयम तपसि च पराक्रममितिपर्यः । संयमसमुद्योग  
वर्नितस्याधमा गतिर्भवतीति किं तेन प्रकृते समापातमित्याह- 'अत्रापीति ।  
अत्र समयानुद्योगरूप बालमावे-बालस्य-अपिदित-संयमानाधरणजनितनरक-

आराधनासे मोक्षका पात्र बन जाता है । जो समयमें उद्योगशाली है,  
पक्ष उस उद्योगमें जो निरन्तर जागृतिसम्पन्न है ऐसे मनुष्यको मुक्तिका  
लाभ या मोक्षप्राप्तिके कारणभूत रत्नत्रयकी आराधनाकी प्राप्ति होती है;  
परन्तु जो इससे विपरीत-दशासंपन्न है ऐसे दण्डिशास्त्र्यादिकोंकी इस  
लोकमें निंदा होती है और परलोकमें उन्हें नरकनिगोदादिककी गति प्राप्त  
होती है । इस प्रकार विचारकर हे शिष्यो ! तुम संयम तपमें सदा प्रयत्न  
शील रहो ! इस कथनसे यह प्रकृतमें बात सिद्ध होती है कि जो समयमें  
समीचीन उद्योगसे रिक्त है उनकी अधम गति होती है, और जो उसमें  
उद्योगवाले हैं उनकी उर्ध्वगति-उत्तम गति होती है । इसलिये "अत्रापि  
बालमावे आत्मानं मोपदर्शयेत्" इस संयमके अनुद्योगरूप बालमावमें कि  
जिसमें संयमके अनाधरणजन्य नरकनिगोदादिक गतियोंके कटुक फलका

निर्णयता धारण करी रत्नत्रयकी आराधनाधी मोक्षने पात्र लनी अथ छे ने  
सबभं उद्योगशाली छे अने छे उद्योगभं के निरन्तर जागृतिसंपन्न छे जेवा  
मनुष्यने मुक्तिवने लास अथवा मोक्षप्राप्तिये कारणभूत रत्नत्रयकी आराधनाकी  
प्राप्ति बाध छे परंतु ने जेनाधी विपरीतदशासंपन्न छे-सावध व्यापारभं  
सुबेद छे जेवा दण्डिशास्त्र्यादिकोंनी आ लोकाभ निंदा बाध छे अने  
परलोकभं तेने नरकनिगोदादिकोंनी अति अज्ञ बाध छे, आ शीने जन्नेनी  
अतिने विचार करी के शिष्यो ! तपे सबभ अने तपभं सदा प्रयत्नशील रहो,  
आ कथनधी जे वात सिद्ध बाध छे के ने संयमना पावनभं शिष्यत्वा जवावे  
छे तेनी अधम अति बाध छे अने ने जेना पावनभं उद्योगशील रहो छे ते  
उर्ध्व (उत्तम) अति अज्ञ करे छे, आ भाटे "अत्रापि बालमावे आत्मानं मो-  
पदर्शयेत्" आ संयमना अनुद्योगरूप बालमावभं के जेना संयम आनाधरणजन्य

નિગોદાદિકદુરુફલસ્ય ભાવઃ=અભિપ્રાયઃ આચરણમિત્યર્થઃ શાલભાવસ્તસ્મિન્  
 કુમાર્ગપ્રવૃત્તલોકાચરિત્ત્વમિત્યર્થઃ । આત્માન=સર્વશ્રેયઃસ્થાન નિજ નોપદર્શયેત્=  
 નોપસ્થાપયેત્—ન તત્ર સ્વાત્માન પાતયેદિત્યર્થઃ । યથા કેચિત્ ' નિત્યત્વાદમૂ-  
 ર્ત્વવાચ નાસ્ત્યાત્મનઃ પ્રાણાતિપાતઃદિર્ગગનસ્યેવેતિ પ્રતિપાદયન્તિ શાલભાવમાચરન્તિ  
 ચ તથા મુનયો ન કુર્યુરિત્યાશયઃ । અપિશબ્દોઽત્ર ભિન્નક્રમસ્તેન અશાલભાવે  
 સ્વાત્માનમુપદર્શયેદિત્યર્થઃ ॥ મૂ० ૪ ॥

આત્મનો હનન ન ભવતીતિ મત્વા પ્રાણિહનનાદો પ્રવૃત્તં પુલ્પ તસ્માન્નિવર્તયિતુ  
 હન્યમાનસ્ય હન્તુશ્ચૈક્યમાપાદયન્નાહ—' તુમસિ ' इत्यादि ।

મૂલમ્—તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં હંતવ્વંતિ મન્નસિ, તુમંસિ  
 નામ સચ્ચેવ જં અજ્જાવેયવ્વંતિ મન્નસિ, તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં  
 પરિયાવેયવ્વંતિ મન્નસિ, એવં જં પરિવિત્તવ્વંતિ મન્નસિ, જં ઉદ્ધ-

માન નહીં હોતા હૈ, કુમાર્ગપ્રવૃત્ત લોકોકે દ્વારા સેવિત એસે આચરણમેં સર્વ  
 કલ્યાણકે પાત્રસ્વરૂપ અપની આત્માકો સંલગ્ન ન કરો, ડસ આચારમેં  
 અપની આત્માકા પતન ન કરો । સારાંશ ડસકા યહ હૈ કિ જૈસે કોઈ  
 અન્યમતિ—' આકાશકી તરહ નિત્ય ઓર અમૂર્ત્ત હોનેસે જીવકા ઘાત  
 નહીં હોતા હૈ ' ડસ પ્રકાર માનતે હૈ ઓર શાલભાવકા આચરણ કરતે હૈ,  
 ડસ પ્રકાર સાધુકો નહીં કરના ચાહિયે ॥ સૂ० ૪ ॥

આત્માકા હનન નહીં હોતા હૈ એસા સમજકર જો પ્રાણિયોકે હિંસા-  
 દિક કાર્યમેં પ્રવૃત્ત હૈ ડન પુરુષોકી ડસ કાર્યસે નિવૃત્તિ કરાનેકે લિયે  
 તથા હન્યમાન ઓર હન્તામેં એકતા હૈ ડસ વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે  
 સૂત્રકાર કહતે હૈ—' તુમસિ ' इत्यादि ।

નરકનિગોદાદિ ગતિઓના કડવા ડ્ગનુ ભાન હોતુ નથી, કુમાર્ગ પ્રવૃત્ત લોકોથી  
 સેવિત એવા આચરણમા સર્વકલ્યાણના પાત્રસ્વરૂપ પોતાના આત્માને ન જવા  
 દે—એ આચારથી પોતાના આત્માનુ પતન ન કરો સારાશ આને એ છે કે—

એમ કોઈ અન્ય મતિ ' આકાશની માફક નિત્ય અને અમૂર્ત્ત હોવાથી  
 આત્મા (જીવ)ની ઘાત થતી નથી ' આ પ્રકારે માને છે, અને બાળભાવનુ આચરણ  
 કરે છે, આ રીતે મુનિએ કરવુ જોઈ એ નહિ ॥ સૂ० ૪ ॥

આત્મા હણાઈ શકતો નથી, એવુ સમજને એ પ્રાણીઓના હિંસાદિક કાર્યમા  
 પ્રવૃત્ત છે એવા પુરુષોની એ કાર્યથી નિવૃત્તિ કરાવવા માટે ' હન્યમાન અને હન્તામા  
 એકતા છે, આ વાત પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે—' તુમસિ ' इत्यादि ।

वेयञ्चति मद्भसि, अजु श्वेय पडिबुद्धजीवी, तम्हान हन्ता नवि  
घायय, अणुसवेयणमप्याणेण ज हतञ्च नाभिपरयय ॥ सू० ५॥

छाया—स्वमसि नाम स एष यं हन्तव्यमिति मन्यसे, स्वमसि नाम स एव  
यमाहापयितव्यमिति मन्यसे, त्वमसि नाम स एष यं परितापयितव्यमिति मन्यसे,  
एष यं परिग्रहीतव्यमिति मन्यसे, यम् अप्प्रावयितव्यमिति मन्यसे, अजुसैतत्पति-  
बुद्धजीवी, तस्मात् हन्ता नापि घाययत्, अणुसवदनमात्मना यद् हन्तव्यं  
नाभिप्रायेयत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘स्वमसी’ स्याद्दि-स्वं यं प्राणिन इन्तव्यं=दण्डकक्षा-दद्यादिति हिं  
सनीयम् इति-एवं मन्यसं-मानासि स एव प्राणी स्वमसि सक्कलमनशेत्तनादि  
समानलक्षणत्वात्, नामेति सम्भावनायाम्; इवमप सत्त्वम्-इनमेन मगनकर्मस्य  
त्मनो हिंसा न भवति किन्तु शरीरस्यैष, तच्च शरीरं जीवस्याभययूतमतीतप्रिय

सूत्रकार इसरोका घात करनेवालोंको उपदेश देते हुए कहते हैं  
कि तुम जिनको मारनेयोग्य-दण्ड-घायुक शास्त्र आदिकोसे यह मारने  
लायक है, ऐसा समझते हो वही तुम हो; क्योंकि जिसमें और तुममें  
कोई अंतर नहीं है। शास्त्रकारोंने जीवका लक्षण चेतना बतलाया है।  
यह लक्षण ऐसा कोईसा भी जीव नहीं है कि जिसमें न पाया जाता  
हो। अतः इस जीवके सामान्य लक्षणसे युक्त होनेसे समस्त जीव लक्ष-  
णकी अपेक्षासे एक हैं।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा अमूर्त है, जो अमूर्त होता है उसका  
आकाशकी तरह इनन-विनाश-घात नहीं हो सकता है, घात मूर्त  
शरीरका ही होता है। परन्तु फिर भी जो हिंसा मानी जाती है उसका  
कारण यह है कि हिंसकद्वारा जीव उसका आभयमूर्त शरीरसे वियुक्त कर

सूत्रकार जीवकी घात करनेवालोंके उपदेश आदि ५ श्लोक के तमि लेने  
मारणा शोभ-इष्ट, घायुक शास्त्र वजैरथी के मारणावाक्य के जेवु समझे के  
जे तमि के, केम के जेनामा जने तमाशमां कोर्क अन्तर नथी, शास्त्रकारोके  
एवमु वक्षय चेतना नवावेले के आ वक्षय जेवो कोर्क पय एव नथी के  
जेनामा न कोव जेथी आ एवना सामान्य वक्षयुथी नथी के के समस्त एव  
वक्षयुनी अपेक्षाथी जेके के

भावार्थ—आत्मा अमूर्त के के अमूर्त कोय के तेना आकाशकी भाँके  
कनन-विनाश-घात नथी कर्क शकते। घात मूर्त शरीरने के घाय के,  
एवम पय तेना हिंसा मानवामा आवे के तेवु धरय के के के हिंसा कनन

મતસ્તચ્છરીરાત્તસ્ય વિયોજનમેવ હિંસા, તથાહિ—

“પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં વલં ચ,  
ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ગ્રિહ્સ્કતા,—

સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥

इति वचनात् । किञ्च जीवस्य सर्वथा नामूर्तत्वादिसमधिगमो यतो गगनस्येव हननादिरूपविकारो नापद्येत किन्तु स कथञ्चिन्मूर्तोऽपि शरीराधिष्ठितत्वादिति तस्य दिया जाता है । इस क्रियाका नाम हिंसा है । क्यों कि जीवका आश्रयभूत होनेसे वह शरीर उसे अत्यन्त प्रिय था, हिंसक उसे अपने हिंसारूप कर्मद्वारा विनष्ट कर दिया । हिंसाका लक्षण भी यही किया है । श्लोक—पच्येन्द्रियाणि त्रिविधं वलं च, उच्छ्वास-निःश्वासमथान्यदायुः ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ગ્રિહ્સ્કતા,—સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥૧॥

अर्थ—पांच इन्द्रिय, तीन बल, उच्छ्वास निश्वास और आयु इन १० प्राणोंका वियोग करना हिंसा है ।

दूसरी बात यह है—कि आत्मा सर्वथा अमूर्त भी नहीं है, क्यों कि कर्मबन्धकी अपेक्षा वह कथंचित् मूर्त माना गया है । सर्वथा अमूर्त मानने पर ही गगनादिककी तरह उसमें हननादिरूप विकार

દ્રારા આશ્રયભૂત શરીરથી છુવને વિચુકત કરી દેવામા આવે છે આ ક્રિયાતુ નામ હિંસા છે, કેમ કે છુવના આશ્રયભૂત હોવાથી જે શરીર તેને અત્યંત પ્રિય હતુ, હિંસક પોતાના હિંસાક્રમ કર્મદ્વારા તેના નાશ કરી નાખ્યો હિંસાતુ લક્ષણ પણ આમ કહેલ છે

“પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં વલં ચ,

ઉચ્છ્વાસનિશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ગ્રિહ્સ્કતા,—

સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥ ”

अर्थ—पांच इन्द्रिय, त्रय बल, उच्छ्वास, निश्वास અને आयुष्य આ હસ પ્રાણોનો વિયોગ કરવો તે હિંસા છે બીજી વાત એ છે કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત પણ નથી, કેમ કે કર્મબંધની અપેક્ષા તે કથંચિત્ મૂર્ત માનાયોલ છે સહ અમૂર્ત માનવાથી ગગનાદિકની માફક તેમા હનનાદિકરૂપ વિકાર થઈ શકતો નથી, પરંતુ એવી માન્યતા એકાન્ત રૂપથી જૈન ધર્મની નથી, ત્યાંદે

इननादिकमुपपद्यत एव । एवं सर्वैर्वात्सोपम्यं विभाक्नीयमिति दर्शयति—‘स्वमसी’  
 स्यादि—त्वं यं=जीवन् आह्लापयितव्यं=बुष्करानमिमत्कार्यै नियोचनीयमिति मन्यसे  
 त्वं स एवास्ति । एवमपरेष्वपि योज्यम् । तत्र परितापयितव्यं=शारीर—मानस—  
 पीडया उपतापयितव्यं परिग्रहीतव्यं=स्वायत्तीकरणीयम् । अ्यद्रानयितव्यं प्राणैर्भ्य-  
 नहीं हो सकता है । परंतु ऐसी मान्यता एकान्तरूपसे जैनधर्मकी नहीं  
 है । जब वह शरीरमें अभिष्टित प्रत्यक्षरूपसे प्रतीत होता है तो फिर  
 उसके बिघात होने पर उसका भी बिघात माना जाता है । इसी प्रकार  
 आत्मोपमता सर्वत्र—वक्ष्यमाण पदोंके अर्थके साथ भी समन्वित कर  
 लेनी चाहिये; यही बात “ स्वमसि नाम स एव यमाह्लापयितव्यमिति  
 मन्यसे ” इत्यादि पदोंमें प्रकट की गई है—तुम जिस बुष्कर एवं अन-  
 मित्त कार्यमें अन्य जीवोंको “ ये वहां नियुक्त करनेयोग्य हैं ” ऐसा  
 समझकर नियुक्त करते हो सो ऐसा व्यवहार तुम्हारा उन जीवोंके  
 साथ नहीं है, किन्तु यह व्यवहार तुम स्वयं अपने ही साथ करते हो  
 ऐसा समझना चाहिये; क्यों कि उनमें और तुममें जीवके सामान्य लक्षण  
 की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है । इसी प्रकार जिन जीवोंको तुम शारी-  
 रिक एवं मानसिक पीडा पहुंचाने योग्य मानकर उन्हें उस तरहकी पीडा  
 पहुंचाते हो, प्राणोंसे उन्हें नियुक्त करते हो, परिग्रहण योग्य मानकर  
 तुम जिन जीवोंका दास—दासी आदिरूपमें परिग्रह करते हो, यह सब

जो शरीरमें अभिष्टित प्रत्यक्ष रूपसे प्रतीत पाया है तो पक्षी जेने बिघात  
 क्वाभी तेने पक्ष बिघात मानी बेवाय छे आ प्रकार आत्मोपमता सर्वत्र—वक्ष्यमाण  
 पदोना अर्थनी साथे पक्ष समन्वित करी बेवी बेधजे आ बात “ तुमसि ”  
 इत्यादि । पदोनां प्रकट करेछ छे तमे ने बुष्कर जेवां अनमित्त कार्यमां  
 अन्य एवोने “ आ त्वा नियुक्त करवा योग्य छे ” जेवुं समझने नियुक्त करे  
 छे, जेवे व्यवहार तभाणे जे एवोनी साथे नथी; परंतु आ व्यवहार तमे इठत  
 पीडानी अ साथे करे छे, जेम समजवुं बेधजे केभके जेनमां जने तभा  
 तभा एवसामान्यलक्षणनी अपेक्षा बेध अंतर नथी । आ शीते ने एवोने  
 तमे शारीरिक जने मानसिक पीडा पहुंचावाकवा योग्य मानीने जेने जेवी जतनी  
 पीडा पहुंचावाके छे, प्रकृतोभी तेने छुटा पाकवा योग्य मानीने तमे तेने प्रकृतोभी  
 नियुक्त करे छे परिग्रहण योग्य मानीने तमे ने एवोनु दास—दासी आदि  
 रूपमां परिग्रह करे छे आ सबजो व्यवहार तभाणे ते एवो साथेने बिधित

परोपयितव्यमिति, एतानि च वाक्यानि हिंसाविशेषप्रतिपादकान्येव सन्ति । स्वस्य हननाज्ञापनपरितापनपरिग्रहापद्रावणादिकार्यकारिण कंचिद्विलोक्य यथा दुःखं जायते तथैवापरस्यापि; हननादिकारी चेत्त्वं भवेत्तदाऽऽत्मोपम्येन तत्तत्कार्यादौ दुःखानि भवन्तीत्यालोच्य कस्य चिन्न हननादौ प्रवर्तितव्यमित्याशयः । एतदा-

व्यवहार तुम्हारा उन जीवोंके साथ उचित नहीं है; क्यों कि जिस प्रकार अपनी हिंसा करनेवालेको देखकर तुम्हें दुःख होता है, अपनेको अनुचित एवं दुष्कर कार्यमें नियुक्त करानेवालेको जानकर जैसे तुम्हें कष्ट का अनुभव होता है, अपनेको परिताप पहुँचाने योग्य जाननेवाले व्यक्ति को देखकर जैसे स्वयंको संताप होता है, अपनेको दास-दासीरूपमें समझनेवालेके प्रति जैसे तुम्हें तिरस्कार जाग्रत होता है और जैसे अपने को प्राणोंसे वियुक्त करनेयोग्य माननेवालोंके ऊपर तुम्हें क्रोध होता है उसी प्रकार यदि तुम भी इस प्रकारका व्यवहार दूसरोंके प्रति करते हो तो तुम्हारा यह व्यवहार आत्मोपमतासे तुम्हें स्वयं दुःखप्रद होगा । कारण कि हिंसनीय, आज्ञापनीय, परितापनीय, परिग्रहणीय और अपद्रावणीय तुम स्वयं हो जाते हो । अतः अन्यको उस २ व्यवहार के योग्य मानना ही स्वयं अपनेको उस २ व्यवहारके योग्य मानना है । ये पूर्वोक्त समस्त वाक्य हिंसाके प्रकारोंके ही प्रतिपादक हैं ऐसा समझना चाहिये । अतः आत्मज्ञानी मुनिका कर्तव्य है कि वह कभी भी किसी भी जीवके हिंसादिक कार्यमें

नहीं, जो शीते तमारी हिंसा करवावाणाने जोधने जोडु इ भ तमने थाय छे, पोताने अनुचित ओवा दुष्कर कार्यमा नियुक्त करनारने सामे जोध जोम तमने इ भने अनुभव थाय छे, तमने परिताप पडोयाडनार व्यक्तितने जाधुी जो शीते तमोने संताप थाय छे, तमने दास-दासी रूपे समजतार तरइ ओवो तमने तिरस्कार जगृत थाय छे अने जोम तमने प्राणुथी वियुक्त करवा योज्य मानवावाणा ऊपर तमने क्रोध थाय छे, आज शीते तमे पणु आवा प्रकारने व्यवहारणीज्जोना तरइ करे तो तमारे आ व्यवहार आत्मोपमताथी तमने इ भदायक थरे, कारणु के हिंसनीय, आज्ञापनीय, परितापनीय, परिग्रहणीय, अने अपद्रावणीय तमे स्वयं जनी जव छे । माटे जीवने तेने व्यवहारने योज्य मानवु ते स्वयं पोताने जो ते ते व्यवहारने योज्य मानवा जशेजर छे आ पूर्वोक्त समस्त वाक्य हिंसाणा प्रकारेनु जो प्रतिपादक छे, ओवु समजवु जोधओ ओथी आत्मज्ञानी मुनितु कर्तव्य

अथेनैव स एव त्वमसीति सर्वभैक्ष्यमतिपादनमिति तथानिष्टप्राप्तौ यथा दुःखं  
 नायते तथैवान्यस्यति सम्पत्सु समालोचयति मायः । उपलक्ष्यमसन्ध्यात्वादादीना-  
 मपि । इन्द्र-इत्यमानयोरैक्ष्यकथनन किमायातमित्याह- 'अजु' रित्यादि-एत-  
 त्मतिषुदधीवी-एतस्य-इन्द्र-इतनीयैक्यस्य यत्प्रतिषुदध्वतिबोधः परिद्वाने तद्  
 एतत्प्रतिषुदधम् तेन जीवितुं शीलं यस्य स एतत्प्रतिषुदधीवी इतनादिभ्यापारनि-  
 हतश्च अजुः-सरसः-प्रणयः आत्मसमसक्त्याभिगन्तुं सदशी मयति । ततः किमि

प्रवृत्ति न करे । इसी आशयसे सूत्रकारने "स एव त्वमसि" इस वाक्यसे  
 सर्वत्र इत्यमान-इन्द्रा आदिमें एकता का कथन किया है । जिस प्रकार  
 अनिष्टकी प्राप्तिमें तुम्हें दुःख होता है उसी प्रकार मन्यक साथ कृत्न यह  
 अनिष्ट व्यवहार इन्हें भी दुःखप्रद होता है, इस प्रकार मोक्षामिलायी  
 मुनिको सदा विचार करते रहना चाहिये, यही सूत्रकारका आशय है ।  
 "त्वमसि नाम स एव य इत्यभ्यमिति मन्यसे" यह सूत्रांश सृष्टावाद्  
 आदिका उपलक्षक है । इन्द्रा और इत्यमानमें जो एकताका कथन किया  
 है उसका यह अभिप्राय है-जो एतत्प्रतिषुदधीवी है-इन्द्रा और इत्य  
 मानमें एकताका प्रतिबोधसे ही जिसका जीनेका स्वभाव है, अर्थात् वृत्त  
 रंकि घातादिक व्यापारसे निवृत्त जिसका जीवन है ऐसा अजु जीव अपने  
 तुल्य समस्त जीवोंको मानकर उनका दुःखका दर्शो होता है । इससे उसे  
 इस बातका बोध होता रहता है कि जिस प्रकार मेरी हिंसा होने पर मुझे

उ के ते इति पक्षे शोभयितुं एवानी द्विसान्ना कर्मणा प्रवृत्ति न करे. अथ अथयधी  
 सूत्रकारे " स एव त्वमसि " अथ वाक्यधी सर्वत्र इत्यमान-इन्द्रा आदिभिः कोकृत्यानु  
 कथन करेत् उ के प्रकारे अनिष्टानी प्राप्तिधी तमोने दुःख भाव उ के ए  
 प्रकारे अन्वनी तादे अनिष्ट व्यवहार जेने पक्षे दुःखप्रद बले होय उ. अथ  
 वातनो मीक्षामिलायी मुनिके सदा विचार करेत्वा रवेतु कोकले, अथो सूत्रकारने  
 अथय उ. त्वमसि नाम स एव य इत्यभ्यमिति मन्यसे " अथ सूत्रांश सृष्टावाद् आदिनु  
 उपलक्षक उ इत्या अने इत्यमानना के कोकृत्यानु कथन करेत् उ जेने अथ अभि  
 प्राय उ के के अतत्प्रतिषुदधीवी उ-इत्या अने इत्यमानना कोकृत्यानु प्रति  
 बोधधी ए जेने एववाने स्वभाव उ अर्थात् पीक्याना पातयिक व्यापारधी  
 निवृत्त केअतु एव उ अथ इत्यावान एव पीक्यानी तुल्य समस्त एवेने  
 मानी जेना दुःखमां सक्त्यानी जने उ. अथी जेने जे वातनु ग्रान यतु रडे  
 उ के के प्रकारे भारी द्विसा यवाधी अने दुःख भाव जे ए प्रकारे अन्व



त्याह—<sup>१</sup> तस्मा 'दित्यादि-यस्माद् हन्यमानस्य दुःख स्वात्मन इव जायते तस्मात् कारणात् स्वौपम्येन न हन्ता परप्राणिप्राणविराधकोन भवेत्, तथैव नापि घातयेत्, अपि शब्दाद् घ्नन्तं नानुमोदयेदिति। अपि च आत्मना यदितरस्य अनु=पश्चात् संवेदनम्=अनुभावनम्-मोहनीयोदयेन यद् हननादिना दुःखमुत्पादितं तत्पाश्चादात्मनाऽनुभवनीयं भवति, इत्यवधार्य यं कंचिद् हन्तव्यमिति मन्यमानस्तं नाभिप्रार्थयेत्=कदाचिदपि हन्तव्यतया नेच्छेत्, कस्यचिदपि घात मनसाऽपि नो कामयेत, किंपुनः कायेन वचसेति हृदयम् ॥ सू० ५ ॥

दुःख होता है उसी प्रकार अन्य प्राणीको भी हिंसा होते समय दुःख होता है। इसलिये स्वात्मोपमताके ध्यानसे परप्राणीके प्राणोंका विराधक कभी भी मुनिजनको नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार यह स्वयं हिंसासे विरक्त होता है, उसी प्रकार उससे वह अन्य जनको भी निवृत्त कराता है। “अपि” शब्दसे हिंसामें प्रवृत्त अन्यजन की वह अनुमोदना भी नहीं करता है यह बोध होता है। “अनुसंवेदनमात्मना यद् हन्तव्य प्रार्थयेत्” अनु शब्दका अर्थ पश्चात् और संवेदन शब्दका अर्थ अनुभावन है। मोहनीय कर्मके उदयसे जो हननादिक व्यापारोंद्वारा अन्य जीवोंको दुःख पहुँचाया जाता है वह दुःख पश्चात्-पीछे मारनेवालोंके द्वारा भोगनेयोग्य होता है, ऐसा विचार कर-निश्चय कर “यह हन्तव्य है” इस प्रकारकी परिणतिसे कभी भी किसी भी जीवको मारनेयोग्य नहीं समझना चाहिये। जब मनसे भी इस प्रकारकी घात करनेरूप परिणतिके चिन्तन

प्राणीजाने पक्षु डि सा थते समये दुःख थाय छे आ भाटे स्व आत्माना प्रभाषुना ध्यानधी भीन प्राणीना प्राणुना नाशकर्ता मुनिजने कही पक्षु न अनपु नेधये ने शीते ने पोताना मनधी न डि साधी विरक्त थाय छे, तेवी न शीते भीनने पक्षु डि साधी निवृत्त अनावे छे

“अपि” शब्दधी डि साभा प्रवृत्त भीन भाषुसने पक्षु ये अनुमोहन आथता नधी, येवो अर्थ थाय छे “अनुसंवेदन” धत्यादि। अनु शब्दने अर्थ पश्चात् अने संवेदन शब्दने अर्थ अनुभावन छे मोहनीय कर्मना उदयधी ने एव डि सादिक व्यापारोद्वारा भीन एवने नेवुं दुःख पहुँचाये छे तेवु दुःख पाछुगधी मारनाराओ पोते न लोगवे छे, येवो विचार करी-निश्चय करी “आ हन्तव्य छे” आ प्रकारनी परिणतिधी कही पक्षु एवने मारवा योग्य समजवु न नेधये. न्यारे मनभा पक्षु आ प्रकारने घात करवाइय विचारतु

आत्मनाऽनुसंवेदनं कृत्वमित्यभिहितं, तत्र संवेदनस्य सुप्त-दुःस्वरूपतया कम्पाद्-  
-गौतमानुयायिनेवात्मनो गुणभूतेन विशेषगुणेन ज्ञानन भवोऽयथा वामद् एवात्र  
शिव्यमभे सुषर्मास्वामी प्रा- 'जे आया' इत्यादि ।

पृथ्म्-जे आया से विघ्नाया, जे विण्णाया से आया जेण  
धियाणइ से आया, त पढुच्च पडिसत्खाए, एस आयावाई  
समियाए परियाए धियाहिये चियेमि ॥ सू० ६॥

तकका विचार मुनिजन या सामान्य जनक लिय निषिद्ध है तो काय  
भौर बचनसे तो इस प्रकारकी परिणतिका निषेध स्पष्ट ही हो जाता  
है । मुनिजनके लिये सर्वथा मन, बचन और कायसे परजीवोंकी हिंसा  
आदिका सर्वथा त्याग करना चाहिये यही इसका भाषार्थ है ॥सू०-॥

“आत्माको दूसरे जीवोंकी हिंसा आदि नहीं करना चाहिये; क्योंकि  
कि हिंसाजन्य पापकर्मका फल उसे भोगना पड़ता है ऐसा निश्चय कर  
वह सर्वथा हिंसा आदिका त्याग करे” ऐसा जो आपने कहा है सो इस  
प्रकारका निश्चय आत्मा ज्ञानसे ही करता है । तब हम पूछते हैं कि जिस  
प्रकार कणाद और गौतमके अनुयायियोंनि आत्मासे ज्ञानगुणको सर्वथा  
भिन्न माना है, उसी प्रकार क्या आत्मासे ज्ञान गुणका सर्वथा भेद या  
अभेद आप भी मानते हैं? इस प्रकार जम्बूस्वामीक प्रश्नका उत्तर देते  
हुए श्रीसुषर्मास्वामी महाराज कहते हैं—“जे आया” इत्यादि—

चित्तन इत्यु मुनिजन अने सामान्य जनने माटे निषिद्ध छे ते  
हावा अने वचनधी ते आ प्रकारनी परिशुक्तिने निषेध स्वता न जनी बाध  
छे मुनिजनने माटे सदा मन वचन अने हावाधा परल्लोनी दिवा आदिना  
सर्वथा त्याग छे-जे आने भाषार्थ छे ॥ सू० ५ ॥

“अप्रभाये जीवा लुपानी हिंसा आदि न करवुं चेत्तजे; केम के हिंसा  
जन्य पापकर्मत इय जेजे सोभववु पडे छे जेवा निश्चय करी ते हिंसा  
आदिना त्याग करे” जेनुं आपे इत्यु छे पद्यु आ प्रकारना निश्चय ते अप्रभा  
ज्ञानधी न करे छे त्तारे अने आपने आ पूछिये धीमे के के प्रकारे इत्यु  
अने जीवभवा अनुयाय्यांभाके अप्रभाभी सान शुक्ले सर्वथा भिन्न मानेड छे  
जे प्रकारे आप पद्यु शु आत्माधी सान सुक्ले नवथा सेड वा असेड माने  
छे? आ प्रकारना जम्बूस्वामीना प्रश्नने उत्तर देवा श्री सुषर्मास्वामी  
महाराज इडे छे— ‘जे आया’ इत्यादि.

છાયા—ય આત્મા સ વિજ્ઞાતા, યો વિજ્ઞાતા સ આત્મા, યેન વિજ્ઞાનાતિ સ આત્મા, ત પ્રતીત્ય પ્રતિસંખ્યાયતે, એવ આત્મવાદી સમ્યક્પર્યાયો વ્યાહત્ત ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ટીકા—‘ય આત્મે’ત્યાદિ—ય આત્મા=નિત્ય ઉપયોગલક્ષણો જીવઃ સ વિજ્ઞાતા=વિજ્ઞાનકર્તાઽપિ સ એવ પ્રખ્યાતઃ, ન પુનરાત્મનઃ પદાર્થસાર્થબોધક જ્ઞાન પૃથક્કઃ; યો વિજ્ઞાતા=પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગઃ સ એવ આત્મા=જીવ ઉપયોગલક્ષણઃ, ઉપયોગસ્ય ચ જ્ઞાનસ્વરૂપત્વેન જ્ઞાનાત્મનોરભેદસિદ્ધિરિત્યર્થઃ ।

નિત્ય ઔર ઉપયોગલક્ષણવાલા જીવ હી આત્મા હૈ ઔર વહી વિજ્ઞાન ક્રિયાકા કર્તા હૈ । ઇસ આત્માસે પદાર્થોકા બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નહીં હૈ । ઇસી પ્રકાર જો પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગ હૈ વહી આત્મા હૈ, ક્યોં કિ આત્મા સ્વય ઉપયોગલક્ષણવાલા હૈ । યહ ઉપયોગ હી-જ્ઞાનસ્વરૂપ હૈ । ઇસલિયે જ્ઞાન ઔર આત્મામે અભેદ હૈ ।

ભાવાર્થ—શિષ્યને જો યહ પ્રશ્ન કિયા થા કિ આત્માસે જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન હૈ ક્યા ? ઇસકા ઉત્તર સૂત્રકારને યહાં દિયા હૈ, બે કહતે હૈં કિ આત્મા ઔર જ્ઞાનગુણમેં પરસ્પરમેં સર્વથા ભેદ નહીં હૈ, ક્યોં કિ આત્મા કા લક્ષણ ઉપયોગ હૈ, ઔર યહ ઉપયોગ ત્રિકાલમેં ભી આત્માસે સર્વથા ભિન્ન નહીં હોતા હૈ, ઇસી પ્રકાર ઉપયોગ સ્વરૂપસે પરિણત હી આત્મા હૈ । ઉપયોગ દો પ્રકારકા હૈ—૧ જ્ઞાનોપયોગ, ઔર દૂસરા દર્શનોપયોગ । દર્શનોપયોગમેં પદાર્થકા સામાન્ય પ્રતિભાસ હોતા હૈ, જ્ઞાનોપયોગમેં પદાર્થ

નિત્ય અને ઉપયોગલક્ષણવાળા એવ જ આત્મા છે અને એ જ વિજ્ઞાન ક્રિયાના કર્તા છે આ આત્માથી પદાર્થોનું બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નથી, આમ જો પદાર્થ-પરિચ્છેદક ઉપયોગ છે એ જ આત્મા છે, કેમકે આત્મા સ્વય ઉપયોગલક્ષણવાળો છે આ ઉપયોગ જ જ્ઞાનસ્વરૂપ છે આ માટે જ્ઞાન અને આત્મામા અભેદ છે

ભાવાર્થ—શિષ્યે જે એવો પ્રશ્ન કર્યો હતો કે આત્માથી જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે અહિ આપેલ છે, એ કહે છે કે આત્મા અને જ્ઞાનગુણમા પરસ્પરમા સર્વથા ભેદ નથી, કેમ કે આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને એ ઉપયોગ ત્રણ કાળમા પણ આત્માથી સર્વથા ભિન્ન થઈ શકતો નથી આ રીતે ઉપયોગસ્વરૂપથી પરિણત જ આત્મા છે ઉપયોગ બે પ્રકારનો છે, (૧) જ્ઞાનોપયોગ, (૨) દર્શનોપયોગ દર્શનોપયોગમા પદાર્થનો સામાન્ય પ્રતિભાસ થાય

नन्वत्रामेशप्रतिपादनेन सौगतमतप्रवञ्चस्त हि—ज्ञानात्मनो रैक्यं प्रतिपाद्यन्वीति चेन्न, अमेदो हि—यथा—'नीलो घट' इत्यादौ नीलघटयोरेक्य स्थिता यपि न तयो रैक्यमपि तु नीलघटयोरभेद एव। अन्यथा—नीलगुणनाशे घटनाश-प्रसङ्गस्य दुर्नारत्वं समापद्येत। तयैव प्रकृते ज्ञानात्मनोरभेदेन तद्वर्त्ययोरेक्य स्थिता यपि तयोर्ज्ञानात्मनोरैक्यमपि त्वभेद एवेत्यदोपात्।

का मित्र २ रूपसे विशेष बोध होता है। ऐसा कोई सा भी क्षण नहीं है जब आत्मा अपने इस स्वभावसे रहित हो तथा यह स्वभाव आत्माको छोड़ कर निराधार कहीं प्रतीत होता हो। आत्मा ही तत्सबुप योगस्वरूप परिणमित होता रहता है। इससे यह बात प्रतीतिकोटिमें स्थिर होती है कि आत्मासे ज्ञानगुण और ज्ञानगुणसे आत्मा स्वतन्त्र-मिन्न नहीं है।

शङ्क—ज्ञान और आत्माका अमेद माननेपर अपसिद्धान्त नामक निग्रहस्थान आता है; क्यों कि यह मान्यता जैन सिद्धान्तकी मान्यता पुष्ट न कर उसी सौगत ( बौद्ध ) मान्यताका ही समर्थन करती है। यह ज्ञान और आत्माका अमेद बाद बौद्धोंका है न कि जैनियोंका।

उत्तर—जिस प्रकार "नीलो घटः" "नीला घट" इस वाक्यमें नील और घट इन दोनोंकी एकत्र स्थिति होने पर भी इन दोनों में एकता नहीं मानी जाती है, किन्तु अमेद ही माना जाता है। अन्यथा दोनोंमें एकता मानने पर नीलगुणके नाश होने पर घटके नाशका भी

उ ज्ञानोपभोगमा पदाधना भित्ति भिन्न इपथी विशेष बोध भाव उ. जेवी के। पञ्च पञ्च नथी ढावी के आत्मा पिताना आ स्वभावधी स्थित जने आ स्वभाव आत्माने छेडी शकते नथी आत्माधी सप्तगुण जने ज्ञानगुणधी आत्मा स्वतन्त्र-बुद्ध नथी.

शङ्क—ज्ञान जने आत्माने अमेद मानवाधी अपसिद्धान्त नामक निग्रह स्थान आवे उ, केम के आ मान्यता जैन सिद्धान्तकी मान्यताधी विरुद्ध बौद्ध मान्यतानु समर्थन करे उ ज्ञान जने आत्माने अमेदवाद जौदोने उ, जेनोने नथी.

उत्तर—जे प्रकारे "नीलो घटः" "नीला घटः" आ वाक्यमा नील जने प आ जनेनी जेकर स्थिति बोधा उता पञ्च आ जनेमा जेकता मन्वती नथी; पञ्च अमेद आ मानवाभा आवे उ अन्यथा-जनेमा जेकता मानवाधी

પ્રસંગ હોગા ઉસી પ્રકાર પ્રકૃતમ્મ જ્ઞાન ઓર આત્મામે ધી એકતા નહીં હૈ કિન્તુ અભેદ હી હૈ, ઇસ પ્રકાર પૂર્વોક્ત દોષ નહીં આતા હૈ ।

ભાવાર્થ—શઙ્કાકારને જો જ્ઞાન ઓર આત્માકે અભેદમે ધૌદ્ધવાદકા સમર્થન કરના પ્રકટ કિયા હૈ ઉસકા યહાં પર પ્રત્યુત્તર દિયા ગયા હૈ—એકનામે ઓર અભેદમે અન્તર હૈ । ધૌદ્ધ સિદ્ધાન્ત આત્મામે અભેદ નહીં માનતા હૈ કિન્તુ વહ દોનોમે એકતા માનતા હૈ । ઇસસે જ્ઞાનકી અથવા આત્માકી સ્વતન્ત્ર સત્તા સિદ્ધ નહીં હોતી હૈ, કિન્તુ દોનોમે એકતા હી સિદ્ધ હોતી હૈ । ઇસ એકનામે યા તો આત્માહીકા અસ્તિત્વ સિદ્ધ હોતા હૈ યા જ્ઞાનકા । દોનોકા નહીં । અભેદ પક્ષમે એસા નહીં હૈ । વહાં પર “નીલો ઘટઃ” કી તરહ અભેદ હોને પર ધી દોનોકી સત્તાકા વિલોપ નહીં હોતા હૈ । ગુણ ઓર ગુણી મેં એકતા માનને પર ગુણ ગુણીકા સ્વતન્ત્ર અસ્તિત્વ નહીં ઘનતા હૈ । ગુણ ગુણીરૂપ ઓર ગુણી ગુણરૂપમે પરિવર્તિત હો જાતે હૈ । પરન્તુ અભેદ પક્ષમે યહ વાત નહીં આતી, દોનોકી સ્વતન્ત્ર સ્વરૂપસે સત્તા રહતી હૈ—ઇસ પક્ષમે ઇતના હોતા હૈ કિ ગુણ ગુણીકો છોડકર ઓર ગુણી ગુણકો છોડ કર પરસ્પર નિરપેક્ષરૂપમે નહીં રહતે હૈ; કિન્તુ પરસ્પર સાપેક્ષરૂપમે હી ઇનકી ઘૃત્તિ બની રહતી હૈ। નીલ ઓર ઘટ

નીલગુણનો નાશ થવાથી ઘટના નાશનો પણ પ્રસંગ અને આ જ રીતે પ્રકૃતમા જ્ઞાન અને આત્મામા પણ એકતા નથી છતાં અભેદ છે, આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દોષ આવતો નથી

ભાવાર્થ—શઙ્કાકારે જે જ્ઞાન અને આત્માના અભેદમા ધૌદ્ધવાદનું સમર્થન પ્રગટ કરેલ છે તેનો આ સ્થળે પ્રત્યુત્તર અપાયેલ છે એકતામા અને અભેદમા અતર છે ધૌદ્ધ સિદ્ધાન્ત જ્ઞાન અને આત્મામા અભેદ નથી માનતો, પરંતુ તે બન્નેમા એકતા માને છે એનાથી જ્ઞાનની અને આત્માની સ્વતન્ત્ર સત્તા સિદ્ધ થતી નથી પરંતુ બન્નેમા એકતા જ સિદ્ધ થાય છે આ એકતામા યા તો આત્માનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે યા તો જ્ઞાનનું બન્નેનું નહિ અભેદ પક્ષમા એવું નથી, ત્યાં “નીલો ઘટ”ની માફક અભેદ હોવા છતાં પણ બન્નેની સત્તાનો વિલોપ થતો નથી, ગુણ અને ગુણીમા એકતા માનવાથી ગુણ ગુણીનું સ્વતન્ત્ર અસ્તિત્વ બનતું નથી ગુણ ગુણીરૂપ અને ગુણી ગુણરૂપમા પરિવર્તિત બને છે, પરંતુ અભેદ પક્ષમા આ વાત આવતી નથી, બન્નેની સ્વતન્ત્ર સ્વરૂપથી સત્તા રહે છે આ પક્ષમા એટલું હોય છે કે ગુણ ગુણીને છોડીને અને ગુણી ગુણને છોડીને પરસ્પર નિરપેક્ષ રૂપમા રહેતા નથી, પરંતુ પરસ્પર—સાપેક્ષ—

न च नीलनाशे घटोऽपि नीलात्मना नष्ट एवेति दृष्टान्तासिद्धिरिति वाच्यम् ;

इन दोनोंमें परस्परमें एकता नहीं है किन्तु अमेव सम्बन्ध ही है। ऐसा नहीं है कि नीलस्वरूप घट और घट स्वरूप नील है। किन्तु घटको छोड़ कर नीलकी और नीलको छोड़कर घटकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यदि इन दोनोंकी एकता मानी जावे तो नीलके नाश होने पर घटका नाश होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता है।

शङ्का—नीलके नाश होने पर नीलात्मना घटका भी तो नाश हो जाता है—इसलिये दृष्टान्तकी असिद्धि है।

माध्याय—यह जो अभी कहा गया है कि नील और घटकी एकता मानने पर नीलस्वरूप कं नष्ट होने पर घटका भी नाश होना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता—अतः दोनोंमें एकता न मान कर अमेव ही मानना चाहिये, इस पर प्रतिवादीका यह आक्षेप है कि नीलके नाश होने पर नीलस्वरूपसे घटका भी नाश हो जाता है इसलिये यह दृष्टान्त सिद्ध नहीं है; किन्तु असिद्ध ही है। दृष्टान्त वादी और प्रतिवादी दोनों को सिद्ध हुआ करता है; इसीलिये दृष्टान्तके बलसे वादी अपने साध्यकी सिद्धि करता है। असिद्ध दृष्टान्तसे नहीं।

इपमा ज्ञेयनी प्रवृत्ति जनी स्वे छ नील जने घट का जन्नेमं परस्परमं ज्ञेकता नधी, परतु ज्ञेवेद स जंघ क छ जेवु नधी के नील स्वरूप घट जने घट स्वरूप नील छ परतु घटने छेधीने नीलनी जने नीलने छेधीने घटनी स्वरूप सत्ता नधी. जे का जन्नेनी ज्ञेकता मानवामां ज्यवे तो नीलना नाशभी घटने पक्ष नाश बवे ज्ञेधजे, परतु जेवु जगतु नधी.

शङ्का—नीलने नाश बवाधी नीलात्मना घटने पक्ष नाश बध् ज्य छ का भाटे दृष्टान्तनी असिद्धि छे.

आध्याय—जकि के कडेवास्तु छ के नील जने घटनी ज्ञेकता मानवामी नील स्वरूपने नाश बवाधी घटने पक्ष नाश बवे ज्ञेधजे परतु जेवु जगतु नधी भाटे जन्नेमा ज्ञेकता न मानने ज्ञेवेद क मानवा ज्ञेधजे का उपर प्रतिवादीने जे आक्षेप छे के नीलने नाश बवाधी नील स्वरूपभी घटने पक्ष नाश बध् छे का कारणे का दृष्टान्त सिद्ध नधी; परतु असिद्ध क छे. सिद्ध दृष्टान्तक वादी जने प्रतिवादी जन्नेने मान्य होय छे; भाटे क दृष्टान्तना जगधी वादी पिताना साध्यनी सिद्धि करे छे. असिद्ध दृष्टान्तधी नहीं।

अनेकान्तवादिनामस्माकं मतेन पदार्थस्यानन्तधर्मात्मकतयैकधर्मविनाशोऽप्यन्यधर्म-  
सत्त्वानष्ट इति व्यवहारासम्भवेन दृष्टान्तस्य सिद्धेः । तथैव दार्ष्टान्तिकेऽपि  
ज्ञानविशेषस्य नाशोऽपि नात्मनो नाशस्तस्यापरामूर्तत्वासंख्येयप्रादेशिकत्वाऽगुरुल-  
घुत्वादिधर्माणां सत्त्वेन नष्ट आत्मेति व्यवहारासम्भवात्कुत्राप्यनुपपत्तिर्नास्ति  
किमधिकेनेत्यलम् ।

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये । क्यों कि दृष्टान्त सिद्ध ही है  
असिद्ध नहीं है । हम अनेकान्तवादी जैन स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार प्रत्येक  
पदार्थको अनन्त धर्मात्मक मानते हैं । इसलिये किसी एक विवक्षित धर्म  
का विनाश होने पर भी उसमें अन्य धर्मोंका सद्भाव होनेसे विवक्षित  
रूपके नष्ट होने पर भी वह सर्वथा नष्ट हो गया ऐसी मान्यता घटित  
नहीं हो सकती है । अतः दृष्टान्त सिद्ध ही है असिद्ध नहीं । इसी प्रकार  
दार्ष्टान्तिक (आत्मा और ज्ञान)में भी ज्ञान विशेष (विवक्षित घट आदि  
ज्ञान)के नाश-परिवर्तन होनेपर भी आत्मा का नाश नहीं होता है; क्यों  
कि आत्मामें अन्य अमूर्तत्व, असंख्यात प्रदेशित्व और अगुरुलघुत्व आदि  
अनेक धर्मोंका अस्तित्व रहता है । इसलिये विवक्षित धर्मके अभावमें  
आत्मा नष्ट हो गई ऐसा व्यवहार वहां संभवित नहीं हो सकता । अतः  
इस कथनमें कोई भी विरोध नहीं है । अधिक क्या कहा जाय ।

उत्तर—जैवुं न कडेवु जेधं जे, केम के दृष्टान्त सिद्ध जे छे असिद्ध नहीं  
अमे अनेकान्तवादी जैनो स्याद्वाद-सिद्धांत अनुसार प्रत्येक पदार्थने अनन्त धर्मा-  
त्मक भानीजे छीजे आ कारजे कोधं जेक विवक्षित धर्मने विनाश थवा छता  
पणु जेनामा अन्य धर्मोना सद्भाव डोवाधी विवक्षित रूपधी नष्ट थवा छता  
पणु जेना सर्वथा नाश थर्द गयो जे मान्यता अशेषर नहीं आधी दृष्टान्त  
सिद्ध जे छे असिद्ध नहीं आ रीते दार्ष्टान्तिक-आत्मा अने ज्ञान-मा पणु ज्ञान विशेष  
घट आदि ज्ञान-मा नाश-परिवर्तन थवा छता पणु आत्मानो नाश थतो नहीं, केम  
के आत्माना भीज अमूर्तत्व, असंख्यात प्रदेशित्व अने अगुरुलघुत्व आदि अनेक  
धर्मोनु अस्तित्व रहे छे. आधी विवक्षित धर्मना अभावधी आत्मानो नाश थर्द  
गयो जे कडेवु संभवित नहीं, जेटले आ कथनमा कोधं पणु विरोध नहीं.  
वधु शुं कलु जय.

ज्ञानात्मनोरभेदसुपपाद्य करणभूतेन ज्ञानेनाभेदप्रतिपादनायाह—‘येन’त्यादि,  
 यन=मस्यादिना ज्ञानेन करणभूतंन क्रियारूपेण वा पदार्थं विजानाति=किंविशे-  
 षेण सामान्यविशेषादिरूपेणेत्यर्थः, जानाति=ज्ञानप्रिययीकरोति सः=कारणभूतः  
 क्रियाभूतो वा आत्मा, आत्मनः परिभामित्वात्, अत एव ‘स्व आत्मानमात्मना  
 जानातीत्यादावक्षस्यापि कथञ्चिदभेदनादाय तथा प्रतीतिः कर्तृ-कर्म-करण-  
 क्रियादीनामैक्यादुपपद्यते ।

ज्ञान और आत्माका अभेद कह कर करणभूत ज्ञानके साथ भी  
 आत्माका अभेद है—इस बातको प्रतिपादन करनेके मिश्रित सूत्रकार कहते  
 हैं—“येन विजानाति स आत्मा” कि जिस मति आदि करणभूत  
 अथवा क्रियारूप ज्ञानसे आत्मा पदार्थोंको सामान्य और विशेष आदि  
 रूपसे जानता है उस करणरूप या क्रियारूपमें वह आत्मा ही परिणत  
 हुआ है । क्यों कि आत्माका स्वभाव परिणमनशील है, कूटस्थ नित्य  
 नहीं । अतः आत्मा ही उस करणज्ञान अथवा जाननेरूप क्रियासे परिणत  
 हुआ है । “स्व आत्मानम् आत्मना जानाति”—आत्मा आत्माको आत्मासे  
 जानता है—इस वाक्यप्रयोगमें एक आत्मा ही कर्षणित् मेदृष्टिकी  
 अपेक्षासे कर्ता, कर्म, क्रिया और करणरूपसे परिणत होता है, आत्मा  
 कर्ता, आत्मानं कर्म, आत्मना करण और जानाति यह क्रिया है । यहाँ  
 आत्मा ही एक पदार्थ कर्षणित् मेदृष्टिकी अपेक्षासे जानाकारक रूपमें परि-  
 णत होता हुआ प्रकट किया गया है । ऐसा होने पर भी आत्मारूप  
 पदार्थमें अनेकता-परस्परमें कर्ता कर्म आदिमें भिन्नता सिद्ध नहीं होती है ।

ज्ञान अने आत्माने असेद इही करणभूत ज्ञाननी साथे आत्माने असेद  
 उ अ यतने प्रतिपादन कर्तां सूत्रकार कहे छे के “ येन विजानाति स आत्मा ”  
 के मति आदि करणभूत अथवा क्रियारूप ज्ञाननी आत्म पदार्थने सामान्य अने  
 विशेष आदि रूपनी आवे छे ते करणरूप अथवा क्रियारूपमा ते आत्मा व परिणत  
 कथे छे. के मते आत्माने स्वभाव परिणमनशील छे, कूटस्थ नित्य नहीं भाडे आत्मा  
 के व करण ज्ञान अने वाक्यवाक्य क्रियाधी परिणत कथे छे “ स्व आत्मानम्  
 आत्मना जानाति ” आत्मा आत्माने आत्माधी आवे छे, ज्य वाक्यप्रयोगमा  
 ओके आत्मा व कहेवा सेदृष्टिकी अपेक्षाधी कर्ता, कर्म क्रिया अने करणरूपधी  
 परिणत अने उ आत्मा कर्ता आत्मानम् कर्म आत्मना करण अने जानाति  
 ज्य क्रिया छे आदि आत्मा व ओके पदार्थ कहेवायेवा सेदनी अपेक्षाधी नान्य



નનુ મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતીત્યાદૌ કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણાં ભેદસ્યાઽઽપા-  
મરસાધારણતયા કથમૈક્યાભિધાનમિતિ ચેન્ન—આત્મનસ્તુ પરિણામિત્વેન કર્મ-  
કરણ-ક્રિયારૂપેણાપિ પરિણામાદેકત્વસ્ય સૌલભ્યાત્, કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણા-

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ” ઇસ વાક્યમેં કર્તા, કર્મ, કરણ  
ઔર ક્રિયામેં પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણ સે સાધારણ પ્રાણી તકકો ખી  
પ્રતીત હોતી હૈ? ફિર આપ કર્તા, કર્મ આદિ કારકો મેં પરસ્પરમેં અભિ-  
ન્નતા કૈસે કહતે હૈ, સો ઇસા નહીં કહના ચાહિયે, ક્યોં કિ હમારા તો  
સિર્ફ ઇતના હી કહના હૈ કિ પરિણામી હોનેસે ઇક હી આત્મ પદાર્થ  
કર્તા, કર્મ, કરણ ઔર ક્રિયારૂપમેં પરિણત હોતા દેખા જાતા  
હૈ, હમ યહ તો કહતે મહીં હૈં કિ અભેદમેં હી કર્તા-કરણાદિ રૂપકી  
પ્રતીતિ હોતી હૈ ! યહ પ્રતીતિ તો અભેદમેં ખી હોતી હૈ ઔર ભેદમેં ખી  
હોતી હૈ. “આત્મા જ્ઞાનસે આત્માકો જાનતા હૈ “ યહાં પર અભેદ હૈ  
હસમેં ખી કર્તાદિ રૂપકી પ્રતીતિ હોતી હૈ. “મુનિ તપસે કર્મકો નષ્ટ  
કરતા હૈ” યહાં પર ભેદમેં કર્તા કર્મ આદિકી પ્રતીતિ હોતી હૈ, ઔર  
કરણરૂપ જ્ઞાનસે આત્માકા અભેદ સંવંધ હૈ ઇસા માનના ચાહિયે !  
કર્તા, કર્મ, કરણ ઔર ક્રિયાઓંકી પ્રતીતિ અભેદમેં ખી કથંચિત્ ભેદ  
વિવક્ષાકે વશસે વન જાતી હૈ. ઇસ વ્યવહારમેં કોઈ વિરોધ નહીં હૈ

પ્રકારના રૂપમા પરિણુત થતો બતાવવામા આવેલ છે આબુ હોવા છતા પણ  
આત્મારૂપ પદાર્થમા અનેકતા-પરસ્પરમા કર્તા કર્મ આદિમા ભિન્નતા-સિદ્ધ થતી નથી

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ” આ વાક્યમા કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયામા  
પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણમા સાધારણ પ્રાણીને પણ પ્રતીત થાય છે તે આ  
કર્તા કર્મ આદિમા પરસ્પર અભિન્નતા કેમ કહો છે, તેમ કહેવુ ન જોઈએ.  
કેમ કે આમારૂ તો ફક્ત એટલુ જ કહેવુ છે કે પરિણામી હોવાથી એકજ આત્મા  
પદાર્થ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયારૂપથી પરિણુત થતો જોવામા આવે છે.  
અમે તો એમ કહેતા નથી કે અભેદમા જ કર્તા કરણાદિરૂપની પ્રતીતિ થાય  
છે આ પ્રતીતિ અભેદમા પણ થાય છે અને ભેદમા પણ થાય છે આત્મા જ્ઞાનથી  
આત્માને જાણે છે” આ સ્થળે અભેદ છે, એમા પણ કર્તા આદિ રૂપની પ્રતીતિ થાય  
છે “મુનિ તપથી કર્મને નષ્ટ કરે છે” અહિં ભેદમા કર્તા કર્મ આદિની પ્રતીતિ  
થાય છે, અને કરણરૂપ જ્ઞાનથી આત્માનો અભેદ સંબંધ છે એવુ માનવુ  
જોઈએ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયાઓની પ્રતીતિ અભેદમા પણ કોઈ રીતે  
ભેદ વિવક્ષાના વશથી બની રહે છે આ વ્યવહારમા કોઈ વિરોધ નથી, અને એથી

मैत्रयेजि कथं विवृन्दमात्राय तथा व्यवहारः । उक्तञ्च—

“ भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव बोध्यते । ” इति ।

मङ्गले ज्ञानात्मनोरेकत्वे किमात्मावमित्याह—‘ तमित्यादि ’—तं ज्ञानस्वरूप

और इसलिये इस प्रकारका व्यवहार होता है । कहा भी है ।

“ भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव बोध्यते । ” इति ।

शङ्क—यद्युक्तमें ज्ञान और आत्माका अमेद् संबंध मानने से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

उत्तर—तमित्यादि—ज्ञान स्वरूप आत्माकी प्रतीतिसे उसी स्वरूपसे आत्माका कथन किया जाता है ।

भाषार्थ—ज्ञान और आत्माका अमेद् मानने पर यह लाभ होता है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध होता है । अन्यथा आत्मामें जडत्वका प्रसंग होगा; क्योंकि कि मेद् संबंधमें आत्मा अज्ञस्यभाव टहरता है । समवायादि संबंध से आत्मामें ज्ञानका संबंध मान लेने पर भी उसमें जडत्व धर्म नहीं आ सकता; कारण कि समवाय एक और निश्च होमेसे ज्ञानका संबंध आत्मासे ही करायेगा, अन्य आकाशादिकक साथ नहीं; इसमें कोई नियामक तर्क नहीं है । अतः अमेद् पक्षमें आत्मामें तत्स्वरूपताकी सिद्धि होती है यह एक पक्का भारी लाभ है । दूसरे—ज्ञान और

आत्मा के अन्तर्गत व्यवहार बोध है । अर्थात् पक्ष है— भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव बोध्यते ” इत्यादि

शङ्का—यद्युक्तमें ज्ञान और आत्मामें अमेद् संबंध मानना भी आप सु सिद्ध करना चाहते हैं ?

उत्तर—तमित्यादि—ज्ञानस्वरूप आत्मामें प्रतीतिसे जो स्वरूपमा आत्मामें कथन कहेवाला आवे है ।

भाषार्थ—ज्ञान और आत्मामें अमेद् संबंध मानना भी आ लाभ काय है । आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध काय है जो सिवाय आत्मामें अज्ञस्यभाव प्रसंग होने, केम के लिये संबंधमा आत्मा अज्ञस्यभाव है । समवायादि संबंधमा आत्मामें ज्ञानमा संबंध मानने से भी तद्वत्त्व पक्ष धर्म आनी शक्यता नहीं । अतः के समवाय जोड़ने निश्च बोधमा ज्ञानमा संबंध आत्मामें करे । अन्य आकाशादिकनी साथ नहीं । अतः कोई नियामक तर्क नहीं । अतः अमेद् पक्षमा आत्मामें तत्स्वरूपताकी सिद्धि काय है । अतः जोड़ पक्षमा शक्यता काय है ।

નનુ મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતીત્યાદૌ કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણાં ભેદસ્યાઽઽપા-  
મરસાધારણતયા કથમૈક્યાભિધાનમિતિ ચેન્ન—આત્મનસ્તુ પરિણામિત્વેન કર્મ-  
કરણ-ક્રિયારૂપેણાપિ પરિણામાદેકત્વસ્ય સૌભ્યાત્, કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણા-

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ” ઇસ વાક્યમેં કર્તા, કર્મ, કરણ  
ઔર ક્રિયામેં પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણ સે સાધારણ પ્રાણી તકકો ખી  
પ્રતીત હોતી હૈ? ફિર આપ કર્તા, કર્મ આદિ કારકોં મેં પરસ્પરમેં અભિ-  
ન્નતા કૈસે કહતે હૈં, સો ઇસા નહીં કહના ચાહિયે, ક્યોં કિ હમારા તો  
સિર્ફ ઇતના હી કહના હૈ કિ પરિણામી હોનેસે ઇક હી આત્મ પદાર્થ  
કર્તા, કર્મ, કરણ ઔર ક્રિયારૂપમેં પરિણત હોતા દેખા જાતા  
હૈ, હમ યહ તો કહતે મહીં હૈં કિ અભેદમેં હી કર્તા-કરણાદિ રૂપકી  
પ્રતીતિ હોતી હૈ ! યહ પ્રતીતિ તો અભેદમેં ખી હોતી હૈ ઔર ભેદમેં ખી  
હોતી હૈ । “આત્મા જ્ઞાનસે આત્માકો જાનતા હૈ” યહાં પર અભેદ હૈ  
ઇસમેં ખી કર્તાદિ રૂપકી પ્રતીતિ હોતી હૈ । “મુનિ તપસે કર્મકો નષ્ટ  
કરતા હૈ” યહાં પર ભેદમેં કર્તા કર્મ આદિકી પ્રતીતિ હોતી હૈ, ઔર  
કરણરૂપ જ્ઞાનસે આત્માકા અભેદ સવધ હૈ ઇસા માનના ચાહિયે ।  
કર્તા, કર્મ, કરણ ઔર ક્રિયાઓંકી પ્રતીતિ અભેદમેં ખી કયંચિત્ ભેદ  
વિવક્ષાકે વશસે બન જાતી હૈ । ઇસ વ્યવહારમેં કોઈ વિરોધ નહીં હૈ

પ્રકારના રૂપમા પરિણુત થતો બતાવવામા આવેલ છે આલુ હોવા છતા પણ  
આત્મારૂપ પદાર્થમા અનેકતા-પરસ્પરમા કર્તા કર્મ આદિમા ભિન્નતા-સિદ્ધ થતી નથી.

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ” આ વાક્યમા કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયામા  
પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણમા સાધારણ પ્રાણીને પણ પ્રતીત થાય છે તો આ  
કર્તા કર્મ આદિમા પરસ્પર અભિન્નતા કેમ કહેો છો, તેમ કહેવુ ન જોઈએ.  
કેમ કે અમારૂ તો ફકત એટલું જ કહેવુ છે કે પરિણામી હોવાથી એકજ આત્મા  
પદાર્થ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયારૂપથી પરિણુત થતો જોવામા આવે છે.  
અમે તો એમ કહેતા નથી કે અભેદમા જ કર્તા કરણાદિરૂપની પ્રતીતિ થાય  
છે આ પ્રતીતિ અભેદમા પણ થાય છે અને ભેદમા પણ થાય છે આત્મા જ્ઞાનથી  
આત્માને જાણે છે” આ સ્થળે અભેદ છે, એમા પણ કર્તા આદિ રૂપની પ્રતીતિ થાય  
છે “મુનિ તપથી કર્મને નષ્ટ કરે છે” આદિ ભેદમા કર્તા કર્મ આદિની પ્રતીતિ  
થાય છે, અને કરણરૂપ જ્ઞાનથી આત્માનો અભેદ સબધ છે એવુ માનવુ  
જોઈએ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયાઓની પ્રતીતિ અભેદમા પણ કોઈ રીતે  
ભેદ વિવક્ષાના વશથી બની રહે છે આ વ્યવહારમા કોઈ વિરોધ નથી, અને એથી

आत्माके अमेद सम्बन्धमें यह शमितापर्यायबाला-उपशान्तकपाय बाला होता है। ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुने कहा है।

भाषार्थ—ज्ञान और आत्माका अमेद सम्बन्ध है जब इस प्रकारकी प्रतीति होगी तभी तो जाकर मनुष्य उस अपनी निर्मल ज्ञान अवस्था को, जो कपायोनि मलिन कर रखी है; प्राप्त करनेके लिये, उन कपायोंको दमन करनेके लिये या उन्हें उपशमित करनेके लिये प्रयत्नशील बनेगा। नहीं तो मूलमें अज्ञ होनेसे उन कपायोंको दमन करने या उपशमित करनेका उपायोंका पोष उसे कैसे ही सकेगा। इसलिये आत्मा और ज्ञानमें अमेद ही मानना अयस्कर है। मेद नहीं। “इति ब्रवीमि” इन पदोंका अर्थ पहिले ही कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्यायमका पंचम उद्देश समाप्त ॥ ५-५ ॥

आत्माना अमेद स सम्बन्ध आ शमितापर्यायबाला-उपशान्तकपायबाला अने छे अने तु तीर्थङ्कर प्रभुके कण्ठ छे.

भाषार्थ—ज्ञान अने आत्माने अमेद स सम्बन्ध छे अन्वारे आ प्रकारकी प्रतीति बरी त्वारे मनुष्य पीताना निर्मल ज्ञानकी अवस्थाअने, कपायके के मलिन करी रखी छे, प्राप्त करवा भाटे ते ते कपायेंतु दमन करवा भाटे अथवा तेअने उपशमित करवा भाटे प्रयत्नशील बनये नकि ते मूलमा अज्ञ होवाची अने कपायेंतु दमन अने उपशमित करवाना उपशाने पोष अने देवी रीते बरी आ भाटे आत्मा अने ज्ञानमा अमेद मानवे। अयस्कर छे अने नकि “इति ब्रवीमि” आ पदने अर्थ अगाठ कहेवायेल छे.

पांचम अध्यायमने पंचम उद्देश समाप्त ॥ ५-५ ॥

मात्मान प्रतीत्य=अवलम्ब्य प्रतिसंख्यायते=ते नैवात्मना कथ्यते। ज्ञानात्मनोरेकत्व-  
स्वीकर्ता क गुणभासादयतीत्याह 'एष' इत्यादि-एषः=आत्मवादी ज्ञानात्मैकत्व-  
वादी 'सम्यक्पर्यायः' समीचा=सम्यग्भावेन पर्यायः संयमाचरणं यस्येति स  
सम्यक्पर्यायः-सम्यग्गनगाराचारचारी,

यद्वा—'शमितापर्याय' इतिच्छाया। शमितापर्यायः=शमोऽस्यास्तीति  
शमी तस्य भावः शमिता तथा पर्यायो यस्य स शमितापर्यायः=उपशान्तकपायः  
व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः ॥ मु० ६ ॥ इति ब्रवीमि '—इत्यस्यार्थस्तूक्त एव।

॥ पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ५-५ ॥



आत्माका अभेद संबन्ध माननेवाला आत्मवादी सम्यग्भावसे संयम-  
मुनियोंके आचारका आचरण करनेवाला होता है। इस कथनमें सांख्य-  
मतका खण्डन किया है। सांख्यसिद्धान्तमें ज्ञान प्रकृतिका धर्म माना  
गया है, आत्माको कमलपत्रकी तरह निर्लेप बतलाया है, अतः मुनियों  
के सम्यक् आचारके आचरण करनेका बोध प्रकृतिको ही होगा, आत्माको  
नहीं। फिर आत्माको इस प्रकार के कष्टोंमें पड़नेसे लाभ ही क्या है ?  
प्रकृतिके संबन्ध विच्छेद होते ही ज्ञानके अभावमें आत्मा अज्ञ बन जाने  
से जडस्वरूप हो जायगा। परन्तु ऐसा तो है नहीं; क्यों कि स्वानुभवसे  
आत्मा स्वरूपसे चेतन है और इसीलिये वह अपनी मलिन परिणतिको  
छोड़नेके लिये मुनियोंके निर्मल आचारका पालनके लिये प्रयत्नशील  
होता है। अथवा "समिधाए परिधाए"की संस्कृत छाया "शमितापर्यायः"  
भी होती है, तब इस प्रकारसे अर्थकी सगति होती है कि ज्ञान और

ज्ञान अने आत्मानो अल्लेद सण्ध मानवावाणा आत्मवादी सम्यग्भावधी  
संयम-मुनियोना आचारनु आचरणु करवावाणा अने छे, आ वातमा सांख्य-  
मतनु भंडन करेद छे सांख्य-सिद्धांतमा ज्ञान प्रकृतिना धर्म मानेद छे  
आत्माने तो कमलपत्रनी भाइक निर्लेप पतावेद छे आधी मुनियोना सम्यक्  
आचारनु आचरणु करवाने बोध प्रकृतिने न छे आत्माने नही। पछी आत्माने  
आ प्रकारना दु जोमा पडवाधी लाभ शु छे प्रकृतिना सण्ध विच्छेद धवाधी  
ज्ञानना अभावमा आत्मा अज्ञ धर्ष नवाधी नडस्वरूप अनी नथे परतु  
अनु तो छे नडि, डेम डे स्वानुभवधी आत्मा स्वरूपधी चेतन छे अने अे भाटे  
अे पौतानी मलिन परिणतिने छोडवा भाटे मुनिओना निर्मल आचारनु पालन  
करवा भाटे प्रयत्नशील अने छे अथवा "समिधाए परिधाए"नी संस्कृत छाया  
शमितापर्याय पद्यु छे, तो आ प्रकारे अर्थनी सगति थाथ छे डे ज्ञान अने

आत्माके अमेद सम्बन्धमें यह शमितापर्यायवाद्या-उपशान्तकपाय-  
वाद्या होता है । ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुने कहा है ।

भावार्थ—ज्ञान और आत्माका अमेद सम्बन्ध है जब इस प्रकारकी  
प्रतीति होगी तभी तो जाकर मनुष्य उस अपनी निर्मल ज्ञान अवस्था  
को, जो कपायोनि मलिन कर रखी है; प्राप्त करनेके लिये, उन कपायो को  
दमन करनेके लिये या उन्हें उपशमित करनेके लिये प्रयत्नशील बनेगा ।  
नहीं तो मूलमें अज्ञ होनेसे उन कपायोको दमन करने या उपशमित  
करनेका उपायोका बोध उसे कैसे ही सकेगा । इसलिये आत्मा और  
ज्ञानमें अमेद ही मानना अयेस्कर है । मेद नहीं । “ इति श्रवीमि ” इन  
पदोंका अर्थ पहिले ही कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्यायनका पंचम उद्देश समाप्त ॥ ५-५ ॥

आत्माना अमेद सम्बन्धमा आ शमितापर्यायवाद्या-उपशान्तकपायवाद्या अने छे  
अनु तीर्थङ्कर प्रभुजे कहु छे ।

भावार्थ—ज्ञान अने आत्माने अमेद सम्बन्ध छे अन्धारे आ प्रकाशनी  
प्रतीति बरो त्वारे मनुष्य पेटाना निर्मल ज्ञाननी अवस्थाअने, कपायोअने  
ले मलिन करी रखी छे, प्राप्त करना भाटे ते ते कपायेनु दमन करना भाटे  
अवस्था तेअने उपशमित करना भाटे प्रयत्नशील बनरो नहि तो  
मूलमा अज्ञ होबाबी अने कपायेनु दमन अने उपशमित करवाना उपशाने  
बोध अने केवी रीते बरो आ भाटे आत्मा अने ज्ञानमा अमेद मानवो अस्वीकर  
छे सेइ नहि । “ इति श्रवीमि ” आ पदने अर्थ अजाठ कहेबायेस छे ।

पंचिमा अध्यायनने पंचिमे उद्देश समाप्त ॥ ५-५ ॥

## । अथ पञ्चमाध्ययनस्य षष्ठ उद्देशः ।

गतः पञ्चमोद्देश इदानीं षष्ठः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिसम्बन्धः । पूर्वत्र हृदसदृश आचार्यो भवेदिति कथितम् । अत्रोद्देशे—‘ तादृशाचार्यसंसर्गत आचार्यशुश्रूषणरतेन मुनिना त्रिषष्ट्यधिकत्रिंशत्पाण्डिकमतानां गृहस्थानां

### ॥ पांचवें अध्ययनका छट्टा उद्देश ॥

पंचम उद्देशका व्याख्यान हो चुका, अब इस समय छठे उद्देशका व्याख्यान प्रारंभ होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध है और वह इस प्रकार है—पूर्व पंचम उद्देशमें आचार्य महाराजको हृद (द्रह) की उपमा दी है । उस हृद उपमित आचार्यके पास शिष्यको रहना चाहिये, यह भी अच्छी तरह खुलासा किया जा चुका है । उनके निकट निवास करनेसे शिष्य किस २ संसर्गसे परे रहता है इस बातका इस उद्देशमें प्रदर्शन करना सूत्रकारको अभीष्ट है; अतः सर्व प्रथम यहां इस विषयका विवेचन करनेके लिये सूत्रकार, इस अभिप्रायसे प्रेरित हो कि हृदोपमित आचार्यके संसर्गसे उनकी सेवा वैयावृत्ति करनेमें रत चित्तवाला साधु ३६३ पाण्डिकोंके मतके संसर्गसे, गृहस्थोंके अधिक सम्पर्कसे एवं परतीर्थिकोंके संगसे पृथक् हो जाता है, “अणाणाए एगे” इत्यादि सूत्र

### पांचमा अध्ययनना छट्टो उद्देश

पांचमो उद्देश कहेवाछी सूत्रयो छे, हवे छट्टा उद्देशना प्रारंभ याथ छे आ उद्देशना पूर्व उद्देश साथे सम्बन्ध छे, अने ते अे प्रकारे छे उ—पूर्व पांचमा उद्देशमा शुद्ध महाराजने हृदनी उपमा देवामा आवी छे हृद उपमित आचार्य महाराजनी पासे शिष्ये रहेबुं नैछी अे अेनो पणु सारी रीते खुलासा करवामा आव्यो छे अेमनी पासे रहेवाथी शिष्य कया कया संसर्गथी दूर रहे छे अे वातनु स्पष्टीकरणु आ उद्देशमा सूत्रकारने करबुं छिट छे, माटे सहु प्रथम अर्द्धी आ विषयनु विवेचन करवा माटे सूत्रकार हृदोपमित आचार्यना संसर्गथी तेनी सेवा वैयावृत्ति करवामा रतचित्तवाणासाधु उ६३ पाण्डिकीना मतना संसर्गथी अने परतीर्थीना संगथी निराजो अने छे आ अभिप्रायथी प्रेरित अनी “अणाणाए एगे” इत्यादि सूत्रना प्रारंभ करे छे. आमा अे सर्व प्रथम

परतीर्थिकानां च संसर्गपरित्यागो विधेयः' इति प्रतिपादयिष्यते । तथाही पाप  
शुद्धिकर्मार्गपरित्यागमेष दृश्यति—'अमाणाए' इत्यादि—

मूष्म्—अणाणाए एगे सोवहाणा आणाए एगे निरुवहाणा,  
एय ते मा ह्येउ, एय कुसलस्स दसण, तद्धिटीए तम्मुत्तीए  
तप्पुरकारे तस्सन्नी तस्सिवेसणे ॥ सू० १ ॥

छाया—अनाज्ञायामेके सोपस्याना आज्ञायामेके निरुपस्यानाः, एतच्चे मा  
मथदु, एतत्तुष्मस्य दर्शनम्, तदृष्टया तन्मुक्त्या तत्पुस्कारस्तत्सङ्गी शक्तिवेषनः॥सू०१॥

टीका— अनाज्ञाया 'मित्यादि—एके=कचन सद्सद्विवेकविकल्पा इन्द्रिय  
विपयस्वाशब्दाः, अनाज्ञायां=तीर्थिकुरानुपदिष्ट स्वच्छन्दमार्गे 'सोपस्यानाः' स  
उपस्यानेन=संयमामासोद्योगेन ये स्थितास्ते सापस्यानाः=सावधानपरिषद्भाः  
बीतरागापदिष्टधर्मरहिताः सन्ति, ते हि—'वयमपि संयमिन' इति सगर्वं वदन्तो  
शोकान् पश्यन्तीत्यर्थः॥ किञ्च एके=केचन निन्दितमार्गानुगामितया कृपितान्तः—

का मारन्म करते हैं। इसमें वे सर्व प्रथम ३६३ पासण्डियोंके मार्गके  
परित्याग करनेका उपदेश देते हैं—

कोई एक सत् और असत्के भिवेकसे विकल हुए प्राणी इन्द्रियोंके  
विषयस्वी पाशसे बद्ध हो कर तीर्थिकुरद्वारा अनुपदिष्ट स्वच्छन्दमार्गमें  
प्रवृत्ति कर संयमामासके आराधनके प्रयत्नमें उद्यमशील रहते हैं। स्व-  
च्छन्द-प्रवृत्ति-विशिष्ट होनेसे ऐसे जीव सावधान भावारी होते हैं और  
इसीलिये वे बीतरागद्वारा उपदिष्ट मार्गसे यहिर्मुक्त माने जाते हैं। ये  
संयमामासी जीव "हम भी संयमी हैं" इस प्रकार गर्व करके संयमी  
होनेका लोकोके समझ भाव प्रगट करते हैं और मोखेभाखे माणियोंको  
अपने जात्रमें फनाते रहते हैं। कोई एक ऐसे भी हैं जो तीर्थिकुर प्रभुकी

३६३ पाप शोकाणां मार्गानां परित्याग कस्याना उपदेश आप्ते उ

श्लोक अत्र अने असत्तया विवेकशी निकल जनेल प्राणी इन्द्रियोंना  
विषयस्वी चसुधी अधार्मिने तीर्थिकुरद्वारा प्रतिपादित कथेका रस्ते प्रवृत्ति करी  
सयमामासना आराधनना प्रयत्न कस्यामां उद्यमशील रहे उ स्वच्छन्द-प्रवृत्ति-  
विशिष्ट होवाधी जेवे एव सावध आचारी जने उ अने जेधी जे एव नीत  
राजकास उपदिष्ट मार्गशी हर रहे उ जेवा, सयमामासी (इन्द्रियिणी)  
एव "अमे पद्य संयमी छीये" आ प्रकारेना जर्व करीने सयमी  
होवाने लोको समझ भाव प्रगट करे उ, अने लोकाभाषा भाष्योने पतन्नी  
व्यजमां इत्यापत्त रहे उ, श्लोक जेवा पद्य दीय छेके जे तीर्थिकुर प्रभुनी आसातुं



કરણાઃ પ્રમાદિનઃ, આઘ્યાયાં=ભગવદુક્તમોક્ષમાર્ગે નિરુપસ્થાનાઃ=નિર્ગતમુપસ્થાનમુ-  
દ્યોગોયેષાં તે નિરુપસ્થાના વીતરાગપ્રરુપિતાચારચરણવર્જિતાઃ સન્તિ। एतत्=पूर्वोक्तं  
આજ્ઞાકી આરાધના કરનેકે ઉદ્યોગસે હી રહિત હૈં । એસે જીવ નિન્દિત  
માર્ગકે અનુસરણ કરનેવાલે હોનેકી વજહસે દૂષિત અન્તઃકરણવાલે એવં  
પ્રમાદશીલ રહ્યા કરતે હૈં । યે ભગવલ્કથિત મોક્ષમાર્ગમૈં નિરુદ્યમી હોતે  
હૈં । ભગવાને જેસ આચારકે પાલન કરનેકા ઉપદેશ દિયા હૈ વે ઇસ  
આચારકે પાલન કરનેમૈં વે વિમુલ્લ રહ્યા કરતે હૈં ।

ભાવાર્થ—સંસારમૈં કિતનેક એસે મનુષ્ય હૈં જો તીર્થઙ્કર અપ્રતિપા-  
દિત માર્ગમૈં ઉદ્યોગ કરતે રહતે હૈં । સ્વેચ્છાનુસાર અપની નિર્ગલ પ્રવૃત્તિ  
વનાયે હુણ હૈં । સમજ્ઞાયે જાને પર મી એસે જીવ આત્મકલ્યાણકે માર્ગ  
કી તરફ ઋજુ નહીં હોતે । કુદ્ધ એસે મી જીવ હૈં જો પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમૈં  
ઉદ્યમસે વર્જિત હૈં ।

પ્રથમ કોટિકે જીવ લોકોકો પ્રતારણા કરને (ઠગને)કે નિમિત્ત  
દ્રવ્યલિહ્વી સાધુકા વેષ પહિનકર અપનેકો વાસ્તવિક સંયમી ઘોષિત કરતે  
હૈં, તવ દૂસરી કોટિકે મનુષ્ય મૂલમૈં હી તીર્થઙ્કર ભગવાનકી આજ્ઞાકે  
આરાધક નહીં હોતે હૈં । યદિ ઉન્હેં સમજ્ઞાયા જાય તો યે સમજ્ઞ સકતે  
હૈં ઓર યથાર્થ આચારકી ઓર ઋજુ હો સકતે હૈં, શિષ્યકો સંવોધિત  
કરતે હુણ સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમૈં ડસસે કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય !

આરાધન કરવામા ઉદ્યોગરહિત છે આવા મનુષ્ય નિન્દિતમાર્ગનુ અનુસરણ કર-  
વાવાળા હોવાને કારણે દૂષિત અતઃકરણવાળા અને પ્રમાદશીલ રહ્યા કરે છે. એવા  
જીવે ભગવલ્કથિત મોક્ષમાર્ગમા નિરુદ્યમી હોય છે ભગવાને જે આચારનુ પાલન  
કરવાને ઉપદેશ આપ્યો છે એ આચારનુ પાલન કરવાથી વિરુપ્પ રહ્યા કરે છે

ભાવાર્થ—સંસારમા કેટલાક એવા મનુષ્ય છે જે તીર્થકર અપ્રતિપાદિત  
માર્ગમા ઉદ્યોગશીલ રહે છે અને સ્વેચ્છાનુસાર પોતાની લિપ્ત પ્રવૃત્તિ કાર્યે  
જાય છે, અને સમજ્ઞવવાઈતા પણ આવા મનુષ્યે આત્મકલ્યાણના માર્ગ તરફ  
વળતા નથી. કોઈ એવા પણ જીવ છે જે પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમા ઉદ્યમથી દૂર છે  
પ્રથમ કોટિના જીવ લોકોને ઠગવા નિમિત્તે દ્રવ્યલિહ્વી સાધુનો વેશ પહેરી  
પોતાને સાચા સચમી જાહેર કરે છે એનાથી ખીજ કોટિના જીવ મૂળમા જે  
તીર્થકર ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક નથી હોતા, એમને જે સમજ્ઞવવામા  
આવે તો સમજ્ઞ શકે છે અને યથાર્થ આચારની તરફ એ વળી શકે છે શિષ્યને  
સંબોધન કરતા સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમા એમને કહે છે કે હે શિષ્ય !

નિન્દિતમાર્ગાંશરણં શ્રેયોમાર્ગાનાશરણં ચૈતદ્વયં તે=તવ ગુરુચાક્યાનુપાપિનાઃ, મા મમતુ । તામ્યાં નરક-નિગોદાદિદુર્ગતિરવશ્મન્માત્રિનીસ્વભાર્ય તતો નિવર્તિત-વ્યમિત્યાશ્રયઃ । પતસ્ય સ્વમતિકલ્પિતત્ત્વં પરિહર્ષુમાહ-‘પત’ દિસ્વાદિ-પતત્= વૌક્ષ ક્ષમાર્ગાંશરણં સન્નાગસ્ત્વત્તનં ચ દુર્ગવિન્દિદાનમિતિ ક્ષુશ્ચલસ્ય=સર્વશ્ચસ્ય વર્ષનમ્=અમિમતમ્ આશ્રય इत्यર્થઃ ।

યજ્ઞા—પૂર્વોક્તવૈપરીત્યન પતત્ અનાજ્ઞાર્યા નિરુપસ્થાનત્વમાજ્ઞાર્યા ચ સોપસ્થા-નત્વમિત્યુભય ક્ષુશ્ચલસ્ય વર્ષનમસ્તિ ।

“પતસે મા મમતુ” એ પૂર્વોક્ત પ્રથમ કોટિવાલેકા નિન્દિત આશરણ ઓર દ્વિતીય કોટિવાલેકા શ્રેયોમાર્ગકા અનાશરણ યહ્ દોનો પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ ગુરુચાક્યકે અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ તુજ્ઞમે નહીં હોવે । ક્યોં કિ હસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિસે જીય નરક નિગોદાદિકક કુ'શ્લોકા અવશ્ય 'મો ગનેલાલા હોતા હૈ, હસ પ્રકાર અપની આત્મામેં હહ વિશ્વાસસમ્પન્ન યન હસ વુષ્પ્રવૃત્તિસે સવા અપની રક્ષા કર-ઉસ ઓરસે અપને કો સદા યજ્ઞાતા રહ ! હૈ જન્મ્ ! સર્વશ્ચ અગયાન્ કી યહી આજ્ઞા હૈ । યહ્મેં અપની બુદ્ધિસે નહીં કહતા હુ । “પતત્ક્ષુશ્ચલસ્ય વર્ષનમ્” હસ સૂત્રાંશકા યહ્ મી ભાષ હોતા હૈ કિ પૂર્વે મેં જો યહ્ કહા હૈ કિ અનાજ્ઞામેં સોપસ્થાનતા ઓર આજ્ઞામેં નિરુપસ્થાનતા તુજ્ઞમેં નહીં હોવે-સો જન દોનોસે વિપરીત તુ અપની પ્રવૃત્તિ યના, અર્થાત્-અનાજ્ઞામેં નિરુપમી ઓર આજ્ઞામેં સોષમી યન-યહી સર્વશ્ચકી આજ્ઞા હૈ, અર્થવા-અનાજ્ઞામેં સોપસ્થાનતા ઓર આજ્ઞા

પતસે મા મમતુ આ પૂર્વોક્ત પ્રથમ કોટિવાળાતુ નિન્દિત આશરણ અને બીજી કોટિવાળાતુ શ્રેયમાર્ગમાં અનાશરણ આ અને પ્રકાશની પ્રવૃત્તિ બુદ્ધિ યજ્ઞના અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ વાચના ન અને, કેમ કે આ પ્રકાશની પ્રવૃત્તિથી એવ નરકનિગોદાદિકના દુઃખોને ઓત્રવનાર અવશ્ય અને છે. આ પ્રકારે પોતાના આત્મામાં દહિશ્વાસસમ્પન્ન બની ખસણ પ્રવૃત્તિથી સદા તારી રક્ષા કર. એ વરક્ષથી સદા પોતાની બાતને ભલાવ હે જન્મ્ ! સવ સ અગવાનની આ આજ્ઞા છે. આ હું મારી બુદ્ધિથી કહેવા નથી. “પતત્ક્ષુશ્ચલસ્ય વર્ષનમ્” આ સૂત્રાંશને એ પણ ભાવાર્થ થાય છે કે પૂર્વે જે કહેવામાં આવ્યું છે કે અનાજ્ઞામાં સોપસ્થાનતા અને આજ્ઞામાં નિરુપસ્થાનતા વાચમાં ન થાય, માટે આવા રોપથી વિપરીત તુ તારી પ્રવૃત્તિ બનાવ. અર્થાત્ અનાજ્ઞામાં નિરુપમી અને આજ્ઞામાં સોષમી યન. એવી સવ સની આજ્ઞા છે. અર્થવા-અનાજ્ઞામાં

अथवा—पूर्वोक्तमेतद्वयं विधाय निरन्तरं गुरुकुलनिवासीना त्वया भाव्यम्, एतत्=शिष्यं प्रत्युपदेशचन कुशलस्य दर्शनम् । एतत्स्यैवार्थस्य प्रकटनायाह— 'तद्वृष्ट्ये 'त्यादि—'तद्वृष्ट्या तन्मुक्त्वा तत्पुरस्कारस्तत्सङ्गी तन्निवेशनः' इत्यादेर्व्याख्याऽत्राध्ययने चतुर्विंशेशे प्रोक्ता । आचार्यदृष्ट्या वर्तमानस्तदुक्ताचारचरणशीलस्तदिङ्गिताकारपरित्तस्तज्ज्ञानोपयुक्तो मुनिर्नित्य गुरुकुलवासी भवेदित्यर्थः । कुमार्गाऽऽसेवन सन्मार्गाऽसेवन च कल्याणमार्गविधातक भवतीति तयोर्गुरुसमीपान्में निरुपस्थानताको छोड़ कर हे शिष्य ! तू निरन्तर गुरुकुलका निवासी बन-इस प्रकार शिष्यको समझानेके लिये सूत्रकारने सर्वज्ञके आज्ञावचन का यह प्रदर्शन किया है—“ तद्वृष्ट्या तन्मुक्त्वा तत्पुरस्कारस्तत्सङ्गी तन्निवेशनः ” । इसी अर्थको पुष्ट या प्रकटन करनेके लिये सूत्रकारके इन पदों का व्याख्यान टीकाकारने पहिले इसी अध्ययनके चतुर्व उद्देशके दूसरे सूत्रमें कर दिया है । इसका भावार्थ यही है कि आचार्यकी निश्रामें रहनेवाला, उनके कहे अनुसार अपनी दैनिक चर्चाका आचरण करनेवाला और उनके इंगित-आकारका ज्ञाता ऐसा शिष्य ज्ञान, ध्यान और अध्ययनमें निरत रहता हुआ गुरुकुलमें निवासके योग्य होता है । कुमार्गाका आसेवन और सन्मार्गाका अनासेवन करना ये दोनों बातें कल्याणमार्गकी निरोधक या विधातक मानी गई हैं, इसलिये जो शिष्य गुरुकुलमें निवास करेगा-गुरुकी निश्रामें या उनके समीप रहेगा उसके पास इस प्रकारकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती ! इसलिये शिष्यको गुरुकुलनिवासी बननेकी

सोपस्थानता अने आज्ञाभा निरुपस्थानताने छोडीने छे शिष्य ! तू निरन्तर शुद्धकुणने निवासी बन आ प्रकारे शिष्यने समभाववा भाटे सूत्रकारे सर्वज्ञनी आज्ञाना पचनने प्रदर्शित करेले छे—“ तद्वृष्ट्या ” इत्यादि । अथ अर्थनी पुष्टि अने प्रगट करवा भाटे सूत्रकारना आ पढेतु व्याख्यान टीकाकारे पढेला आ अ अध्ययनना योथा उद्देशना भीण सूत्रभा करेले छे अने भावार्थ अ छे के आचार्यनी निश्रामा रहेवावाणा अभना कक्षा अनुसार पोतानी दैनिक चर्चातु आचरण करवावाणा अने अभना भावने लक्ष्यवावाणा अथवा शिष्य ज्ञान, ध्यान अने अध्ययनमा निरत रहींने शुद्धकुणमा निवासने योग्य अने छे कुमार्गातु आसेवन अने सन्मार्गातु अनासेवन करतु अने अन्ने वातो कल्याण मार्गनी निरोधक अने विधातक मानी गई छे आ कारणे जे शिष्य शुद्धकुणमा निवास करे, शुद्धनी निश्रामा अने तेनी समीप रहेसे अने पास आवा प्रकारनी प्रवृत्ति अणती नथी. आ कारणे शिष्यने शुद्धकुण निवासी अनाववा तरइ सूत्र-

स्वानेन न कदाऽप्यन्तरसम्मान इति भावः ॥ सू० १ ॥

वाच्यः कं गुणमासादप्यतीत्याह— 'अभिमूय' इत्यादि—

सूत्रम्—अभिमूय अदक्त्वु अणमिमूय पम् निरालयणयाप  
जे सह अबहिमणे, पवाएण पवाय जाणिज्जा, सह समइयाप  
परवागरणेण अझेसिं वा अतिप सुच्चा ॥ सू० २ ॥

छाया—अभिमूयाऽप्राप्तीदनमिमूयः प्रभुर्निरास्म्बनवाया यो महान् अवहि  
मनाः, प्रवादेन प्रवादं जानीयात्, सह सम्मत्या परप्याकरणेनान्वेषां वाऽन्तिके  
भुत्वा ॥ सू० २ ॥

टीका—'अभिमूये' इत्यादि—य 'तदृष्ट्या'—इत्यादि—विशेषणविशिष्टो  
मुनिः, अभिमूय=परीपहोपसर्गो घातिर्मन्त्रचतुष्टयं वा पराधित्य, अनिमूयः=अनु-  
कूल-प्रतिश्लोपसर्गोण परतीर्थिकैर्वा न पराभूतः सन् अध्याप्तीत्=भिनोक्तत्वमीप्सित-  
वान्, स निरास्म्बनवायाः=पूर्व-पश्चात्संयोगस्यागेन निराधारतायां प्रभुः=समर्थः,

और सूत्रकारका म्वास प्रेरणात्मक यह भावदेश है ॥ सू० २ ॥

इस प्रकारका शिष्य कौनसे गुणका भाजन होता है, इस बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं "अभिमूय" इत्यादि ।

जो मुनि "तदृष्ट्या तन्मुक्त्या" इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रांश प्रतिपादित विशेषणों से युक्त होता है तथा परिपह और उपसर्गों को या कर्मचतुष्टयको जीतकर जो उनसे अप्याहस पराक्रमवाला होता है, अनुकूल प्रतिश्लोपसर्गों अथवा परतीर्थिकोंसे अजेय होता हुआ जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूपका जो विचारक होता है, वह पूर्वसंयोग और पश्चात्संयोगका परित्यागी हो कर किसीके भी अवलम्बन-सहायकी अपेक्षा नहीं रखता है । इस संसारमें माता, पिता, पुत्र, स्त्री और मित्र

करने का मुख्य प्रेरणात्मक भावदेश है.

आ प्रकारने शिष्य केवा अजुने धारक होय छे आ वातने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे "अभिमूय" इत्यादि ।

जे मुनि "तदृष्ट्या तन्मुक्त्या" इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रांश प्रतिपादित विशेषणों से युक्त होता है तथा परिपह और उपसर्गोंसे अथवा चार घातिका कर्मने लतीने जे तेनामी अन्याहस पराक्रमवाला भाव छे अनुकूल प्रतिश्लोपसर्गों अने परतीर्थिकोंकी विजयी वनीने जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूपका जे विचारक होय छे ते पूर्वसंयोगना परित्यागी वनीने होईना पज्ज् जोशीबाण्य रहेवानी अपेक्षा रखते नथी.

આલમ્બનનપેક્ષી ભવતીત્યર્થ । અથ સસારે માતા-પિતૃ-પુત્ર-કલત્ર-મિત્રાદય આલમ્બનભૂતાઃ સન્તીતિ યદાપાતતઃ પ્રતિભાતિ ન તુ વાસ્તવિક, તૈસ્લાળ-ગ્રણાસ-મ્ભવાત્તે નાઽઽલમ્બનભૂતાઃ, તત્સમ્બન્ધસ્ય મોહાદિજનનકત્વેન કુગતિદેતુત્વાત્ । એવ યો વિભાવયતિ સ સંયમાદૃતે ન કિમપ્યાલમ્બનમભિલપતીતિ ભાવઃ । ક<sup>૧</sup>તાદૃશ-? ઇતિ પ્રશ્ને પ્રાહ-‘યો મહા’-નિત્યાદિ-ય-રત્નત્રયસમારાધકઃ મહાન્-મહાપુરુષો લઘુકર્મા અવહિર્મનાઃ=વહિઃ=તીર્થઙ્કરોપદેશાદન્યત્ર ન વિદ્યતે મનઃ=ચિત્તં યસ્ય સોઽવહિર્મનાઃ=વીતરાગાજ્ઞાનુયાયી પરિહૃતપરતૈર્થિકમતો ભવતિ । સ એવ ચ પ્રવાદેન-પ્રકૃષ્ટેન વાદેન=પૂર્વાચાર્યપારમ્પરિકોપદેશેન પ્રવાદં=વીતરાગવચન જાનીયાત્=જ્ઞાનવિપયીકુર્યાત્-સમાલોચયેદિત્યર્થઃ ।

આદિ અલમ્બનભૂત પદાર્થ ઝપરસે હી મોહી જીવકો માલૂમ પડતે હૈ, વિવેકદષ્ટિસે દેખને પર તો યે વિલકુલ નિઃસ્તાર હી હૈ, ઇનસે કિસી મી પ્રકારસે કિસી મી જીવકી ન તો રક્ષા હી હો સકતી હૈ ઓર ન યે કિસીકે લિયે ત્રાણશરણરૂપ હી હૈ । ઇનકે સાથ જનનીજનકત્વાદિરૂપ સંબંધ મોહકા જનક હોનેસે ઇસ જીવકો કુગતિમૈં હી પહુંચાનેકા એક માત્ર કારણ બનતા હૈ ” ઇસ પ્રકાર જો વિચારતા હૈ વહ સંયમકે સિવાય કિસી મી વસ્તુકો અપના અલમ્બનભૂત નહી સમજતા હૈ ।

એસા કૌન મનુષ્ય હો સકતા હૈ ? ઇસ પ્રશ્નકા ઉત્તરરૂપ સમાધાન કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ “યો મહાન્ અવહિર્મનાઃ પ્રવાદેન પ્રવાદં જાનીયાત્” જો રત્નત્રયકી આરાધનાસે મહાન્-લઘુકર્મી બના હૈ તથા તીર્થઙ્કરકે ઉપદેશકે સિવાય જિસકા ચિત્ત અન્યતીર્થિકોંકે ઉપદેશમૈં

આ સસારમા માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી અને મિત્ર આદિ અલબનભૂત પદાર્થ ઝપરથીજ મોહ પમાડનાશ ઇવને માલૂમ પડે છે, વિવેક દષ્ટિથી જોવાથી તો આ બધા તફત નિસ્તાર જ છે એએથી કોઈ પણ પ્રકારે કોઈ પણ ઇવની ન તો રક્ષા થઈ શકે છે કે ન તો તે કોઈ ને માટે ત્રાણ શરણરૂપ છે એમની સાથે જનની-જનક ઇત્યાદિ રૂપ સબંધ મોહના કારણ હોવાથી આ ઇવને કુગતિમા પહોંચાડવાના કારણભૂત બને છે આ પ્રકારે જે વિચારે છે તે સયમના સિવાય કોઈ પણ વસ્તુને પોતાને અલબનભૂત માનતા નથી

એવો કયો મનુષ્ય કોઈ શકે છે ? આવા પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપ સમાધાન કરતા સૂત્રકાર કહે છે “યો મહાન્ અવહિર્મના ” ઇત્યાદિ જે રત્નત્રયની આરાધનાથી મહાન્-લઘુકર્મી બન્યા છે તથા તીર્થકરના ઉપદેશ સિવાય જેણે ચિત્ત

यद्वा—'अवहिर्माना' नानाविधलौकिकसिद्धिदर्शनेनापि सर्वज्ञोपदेशात् बहिः=  
 पृथग्भूते परमत्वे न विद्यते मनो यस्य स तथा। ताव सिद्धय इन्द्रमालकसदृश्य एवेति  
 सल्लन नहीं होता है ऐसा वीतरागके मतका पथिक एवं अन्य एकत्रन्त  
 षादियोकिसिद्धान्तकी ओर नहीं हुक्नेवाला मनुष्य पूर्व आचार्य परम्परा  
 से आगत उपदेशद्वारा वीतरागके बचनका, संशय-विपर्यय आदि दोषों  
 से रहित ही विचार करनेवाला हो सकता है।

भाषार्थ—ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है? इस प्रश्नका समाधान  
 यहां पर सूत्रकारने किया है। वे कहते हैं कि ऐसा वही मनुष्य हो सकता  
 है कि जिसने सम्पद्दर्शनादिककी आराधनासे अपने जीवनको कर्मके  
 भारसे लघु बना लिया है, अधोत्—जो आसन्नससारी है, तथा जिसके  
 चित्तमें वीतराग धर्मके सिषाय अन्य धर्मके प्रति धार्मिक भावनासे थोड़ी  
 सी भी भद्रा नहीं है; क्यों कि वीतराग धर्मको ही वह अपना सय कुछ  
 समझता है तथा पूर्व आचार्य परंपराके अनुसार प्रवाहरूपसे चले आये  
 उपदेशसे ही जो वीतरागके बचनका भद्रालु बना है, जो यह अच्छी  
 तरहसे समझ चुका है कि वीतरागबचन संशय विपर्यय एवं अनध्य-  
 यसाय आदि दोषोंसे रहित हैं, वही उत्कृष्टसयमी है।

अथवा—“अवहिर्माना” इस पदका अर्थ इस प्रकारसे भी होता

वीथ धमवाणाना उपदेशभां वाजतु नधी जेवा वीतरागनो अनुजामी अने  
 जेठान्तवादीअना सिद्धान्तनी तरह नहिं जुक्वावाण मनुष्य पूर्व-आचार्य  
 परधरभी आवेव उपदेशद्वारा वीतरागना वचनभां, संशय-विपर्यय आदि दोषोभी  
 रहित विचार इस्वाण भर् शके छे

भाषार्थ—जैवो ज्यो मनुष्य होश शके छे? अ प्रश्न समाधान अदि  
 सूत्रकारे करेव छे जे करे छे के जेवो जे व मनुष्य होश शके छे के ७७  
 लभ्यदर्शनादिकनी आसन्नससारी पोवाना लवनने धर्मना कारणे लघु बनावी दीपेव  
 छे अधोत् जे आसन्नससारी-इहधर्मो छे तथा जेना चित्तमा वीतराग धर्म सिषाय  
 अन्य धर्म तरह धार्मिक भावनाभी थोड़ी मात्र पळ भद्रा नही केम के वीत  
 राग धर्मने व जे पोवाना सर्वस्व अमजे छे तथा पूर्व-आचार्य-परंपराअनु-  
 सार प्रवाहरूपभी आस्था आचल उपदेशभी ७ वीतरागना वचनोना भद्रालु अनेव  
 छे अने जे सारी शीते समल शकेव छे के वीतराग वचन संशय विपर्यय अने  
 अनध्ययसाय आदि दोषोभी रहित छे जे व उत्कृष्ट सयमी छे

अथवा—“अवहिर्माना” अ पदको अर्थ अ प्रकारधी पञ्च थाप छे के

વિચાર્ય પ્રવાદેન=ભગવદ્વચનેન પ્રવાદ=ત્રિપષ્ટઘટિકત્રિશતપરતૈર્થિકમતં જાનીયાત્=  
અનાસેવ્યતયા બુદ્ધચેત, મિથ્યાત્વવિલસિતતયા જ્ઞાત્વા પરીક્ષ્ય ચ તેષા મત સ્વષ્ટયે-  
દિત્યર્થઃ । તે ચ પરતૈર્થિકપ્રવાદાઃ પરસ્પરવિરુદ્ધાર્થા નૈકૃત પર્યવસિતાર્થાસ્તઘથા-

હૈં કિ પૂર્વોક્ત વહ જીવ અન્ય મતમેં અનેક પ્રકાર કી સિદ્ધિયોં કો દેખતા  
હૈ, તો ખી ઉસકા ચિત્ત ઉસ ઓર નહીં ઝુકતા હૈ । કારણ કિ વહ  
સમજતા હૈ કિ અનેક પ્રકારકી ઉન ૨ સિદ્ધિયોં સે વિશિષ્ટ વે સિદ્ધ  
ઇન્દ્રજાલિયોં જૈસે હી હૈં । હિસ પ્રકાર વિચાર કર વહ વીતરાગ પ્રભુકે  
વચનોંકે સહારેસે ૩૬૩ પાલ્કડિયોંકે મતકો અનાસેવ્ય-સેવન કરનેકે  
અયોગ્ય હી માનતા હૈ-ઘે સવ મિથ્યાત્વકે હી વિલાસ હૈં, ઇનસે આત્મિક  
શાંતિલાભ નહીં હો સકતા હૈ એસા જાનકર ઓર ઉન્હેં અપની બુદ્ધિ-  
રૂપી તર્કણાકી કસૌટી પર કસ કર ગ્રાહ્યકોડિમેં પરિગણિત નહીં કરતા  
હૈ । ઇનસે અન્ય ખોલેખાલે જીવોંકા ભવિષ્યમેં અહિત ન હો જાય હિસ  
વિચારસે ઉનમેં વહ પ્રમાણતા કા ખી સ્વષ્ટન કરતા હૈ । વહ જાનતા હૈ  
કિ ઇન મતોંમેં પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમેં વિરુદ્ધ અર્થકી પ્રરૂપણા કરતા  
હૈ, જો કુછ વિષય ઇનમેં લિખા ગયા હૈ વહ ઠીક નહીં હૈ, કારણ કિ  
જિસ વિષયકો એક સ્થાન પર હેય બતાયા હૈ ઉસી વિષયકો દૂસરી જગહ  
ઉપાદેય બતલાયા ગયા હૈ । હમ દેખતે હૈં કિ વેદ જો એક સનાતન સિદ્ધાંત  
કા ઉનકી માન્યતાનુસાર સવસે પુરાના ઓર પ્રમાણિક ગ્રન્થ હૈ ઉસમેં

પૂર્વોક્ત તે જીવ અન્ય મતમા અનેક પ્રકારની સિદ્ધિઓને દેખે છે તે પછુ તેનું  
ચિત્ત તે તરફ લાગતું નથી કારણ કે તે સમજે છે કે અનેક પ્રકારની તેવી  
તેવી સિદ્ધિઓથી યુક્ત તે સિદ્ધ ઇન્દ્રજાલિક માફક છે આ પ્રકારનો વિચાર  
કરી એ વીતરાગ પ્રભુના વચનોના આધારથી ઉદ્ભવ પામી શકેના મતને સેવન  
કરવાને અયોગ્ય માને છે આ યજુ મિથ્યાત્વને જ વિલાસ છે એનાથી આત્મિક  
શાંતિને લાભ મળી શકતો નથી, એલુ બહુ અને એને પોતાની બુદ્ધિથી  
તર્કની કસૌટી પર કસીને ગ્રહણ કરવા લાયક માનતો નથી એનાથી બીજા  
બોળાબાળા માણસોનુ અહિત ભવિષ્યમા ન થને એ વિચારથી આવા માણસો  
સમક્ષ તેના વિચારોનુ એ ખડન કરતો રહે છે એ બહુ છે કે આવા મતમા  
પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમા વિરુદ્ધ અર્થની પ્રરૂપણા કરે છે જે કોઈ વિષય  
એમા લખેલ છે તે ધરાબર નથી કારણ કે જે વિષયને એક સ્થળે હેય બતા-  
વેલ છે ત્યારે એ જ વિષયને બીજે સ્થળે ઉપાદેય બતાવેલ છે વેદ જે સનાતન  
સિદ્ધાંતમા એમની માન્યતા અનુસાર સહુથી પુરાતન અને પ્રમાણિત ગ્રંથ છે

प्रथम तावदेव एव "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" इत्येकप्रामिपायाऽऽपरत्र च "अग्निषोमीयं पशुमालमेत" इति विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वाद्ममाजम् ।

एष संसारस्येश्वरो निमित्तकारणं भवतीति वैशेषिकास्तेषामपि समानमाह-  
पितृधातयो पुंसोर्माग्यवैपम्यञ्च सुखदुःखादेर्वैशिष्ट्यदर्शनाच्चेऽप्यन्ततः प्राक्तन्यमा  
भूमकर्मफलरूपमदृष्टं स्वीकृषीणाः प्रष्टव्याः, यदि च भवद्गिरीश्वरस्य निमित्तकारणता

पहिष्ठे 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इस वाक्यसे हिंसा करनेका निषेध किया है, फिर दूसरी जगह "अग्नीषोमीयं पशुमालमेत" इस मन्त्रपदसे अग्नीषोम यज्ञ करनेके लिये पशुके मारनेका विधान किया है, इस प्रकारसे परस्परमें विरुद्ध अर्थकी प्रतिपादकता उसमें भरी पड़ी है। जिसमें इस प्रकारके परस्पर विरोधी कथन देखनेमें आता है, और जहाँ युक्तिसे भी विरोधी तथ्योंका प्ररूपण हुआ है, भला! यह वेद प्रमाणता की कोठिमें कैसे आ सकता है? इसी प्रकार वैशेषिक सिद्धान्तकार इस जगतका कर्ता "एक ईश्वर है" ऐसा मानते हैं। परन्तु जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि एक ही माता पितासे उत्पन्न हुए पुत्रोंमें सुख दुःख आदिकी विभिन्नता क्यों देखी जाती है? परमात्माके द्वारा उत्पन्न किये गये इन जीवोंमें यह विषमता क्यों? इसका वे समाधान करते हुए कहते हैं कि इस विषमताका कारण उनके भाग्यकी

ज्येष्ठा प्रथम "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" का वाक्यकी हिंसा करनेका निषेध करवाया जावेक छे इसी ओने रखे "अग्नीषोमीयं पशुमालमेत" का मन्त्र पढ़नी अग्नीषोम यज्ञ करवा आटे पशुने मारवानु विधान करेक छे. का रीते अनेक स्थितिमा का प्रकारकी परस्पर विरुद्ध अर्थकी प्रतिपादकता ज्येष्ठा भरी पड़ी छे ज्येष्ठा का प्रकारका परस्परका विरोधी कथन ज्येष्ठाना जावे छे अने युक्तिकी पक्ष विरोधी तरानु प्ररूपण करावेक छे ते वेक प्रमाणत्वानी कोटीमा कथ रीते अनी रहे? ज्येष्ठा रीते वैशेषिक सिद्धान्तकार का अजतना कर्ता "ज्येष्ठा ईश्वर छे" ज्येष्ठा माने छे परन्तु ज्येष्ठाने ज्येष्ठा प्रश्न करवाया जावे के ज्येष्ठा माताका उत्पन्न कियेक पुत्रोंमा सुख दुःख उत्पन्निकी विभिन्नता केम होजाय छे? परमात्माके क उत्पन्न करेक का लोवाका ज्येष्ठा विषमता केम? ज्येष्ठा समाधान करवा ज्येष्ठा छे के का विषमत्वानु कारण ज्येष्ठा काज्येष्ठा विषमता छे तेवे के रीतना सुख अने अशुख कर्मों कर्मों छे ज्येष्ठा अनुसार तेने सुख



બ્રુવદ્વિરન્તેऽપિ ચાઽદૃષ્ટવિશેષઃ સ્વીક્રિયત एव, તર્હિ ईश्वरस्य कारणता विनैवाऽदृष्टे-  
नैव सर्वं सेत्स्यति, अदृष्ट तु शुभाशुभकर्मफलरूपमेव किमीश्वरस्य कर्तृत्वदुराग्र-  
हेणेत्यलम् ।

કાપિલાસ્તુ—‘પ્રકૃતિરેવ કર્ત્રી પુરુષસ્તુ પ્રતિક્ષેત્ર [ શરીર ] વર્તી નિર્ગુણો-  
વિષમતા હૈં, उन्होंने जैसा कुछ शुभ और अशुभरूप अदृष्ट कमाया है  
उसीके अनुसार वे सुखदुःख आदिको भोगा करते हैं । इससे ईश्वरकी  
क्या अपेक्षा है ? जब वे इस प्रकारका उत्तर देते हैं तब हम उनसे पूछते  
हैं कि जब तुम इस जगतका निमित्तकारण ईश्वरको कल्पित करते हो  
तो फिर सुखदुःखादिककी विचित्रताका कारण अदृष्टकी कल्पना क्यों  
करते हो । क्यों अदृष्टको सुखदुःखादिकका कारण मानते हो ? इस  
प्रकारकी मान्यतामें ईश्वरमें सर्वशक्तिमत्ताका अभाव आता है, क्यों कि  
ईश्वरकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली पदार्थ एक अदृष्ट आपके कथना-  
नुसार सिद्ध होता है, इसलिये जब अदृष्ट ही सबके भाग्यका विधाता  
है तो फिर ईश्वरको बीचमें डालकर क्यों उसकी ईश्वरता पर कलंक लगाते  
हो । जिसे अदृष्ट माना गया है, उसे ही जैन सिद्धान्तकी परिभाषा  
में कर्मका फल सुख दुःख कहा गया है, इसलिये इस दुरा-  
ग्रहको छोडकर वास्तविक वस्तुस्थितिका विचारक बनो । इस पूर्वोक्त  
कथनसे वैशेषिक सिद्धान्तमें परस्पर विरुद्धार्थप्ररूपकता प्रकट की गई है ।

દુ.ખ આદિ ભોગવવા પડે છે આમા ઈશ્વરની શી અપેક્ષા છે, જ્યારે તે આ  
પ્રકારનો ઉત્તર દે છે ત્યારે અમે તેને પૂછીએ છીએ કે જ્યારે તમે આ જગ-  
તનુ નિમિત્ત કારણ ઈશ્વરને માને છે તો પછી સુખ દુ ખ ઈત્યાદિની વિચિ-  
ત્રતાનુ કારણ અદૃષ્ટની કલ્પના કેમ કરો છો ? અદૃષ્ટને કેમ સુખ દુ ખનુ કારણ  
માને છે ? આ પ્રકારની માન્યતામા ઈશ્વરમા સર્વશક્તિમત્તાનો અભાવ આવે છે,  
કેમકે ઈશ્વરની અપેક્ષા અધિક શક્તિવાળા પદાર્થ એક અદૃષ્ટ આપતા કથનાનુ  
નુસાર સિદ્ધ હોય છે, આ માટે જ્યારે અદૃષ્ટ જ સહુના ભાગ્યનો વિધાતા છે તો  
પછી ઈશ્વરને વચમા નાખીને એની ઈશ્વરતા ઉપર કલક કેમ લગાડો છો જેને  
અદૃષ્ટ માનવામા આવેલ છે એને જ જૈન સિદ્ધાંતની પરિભાષામા કર્મનુ ફળ  
સુખ દુ.ખ કહેવાયેલ છે, આ માટે એ દુરાગ્રહને છોડી વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિના  
વિચારક બનો આ પૂર્વોક્ત કથનથી વૈશેષિક સિદ્ધાંતમા પરસ્પર-વિરુદ્ધાર્થ-પ્રરૂપકતા  
પ્રકટ કરવામા આવેલ છે

સાખ્ય સિદ્ધાંતની પણ આવી જ દશા છે, એમણે પ્રકૃતિ અને પુરૂષ આ

निष्क्रियो नि 'सद्' पुष्करपलाशप्रक्षिप्य उपमोक्षा न तु कर्ता तदुपमोकार्थमचेत-  
ना प्रकृति' सर्वस्य फलपयति' इति कथयन्ति, असमीचीनं तदर्थनम्—अचेतनस्य लोक  
प्रवर्तकत्वादर्शनेन दृष्टान्तात्मन्मवादप्रमाणम् । एकस्मिन् च प्रपञ्चस्य जगतो

सांख्यसिद्धान्तकी भी यही दशा है, उन्होंने प्रकृति और पुरुष इस प्रकारसे दो मौलिक तत्त्व माने हैं। उनका कहना है जो कुछ करती-धरती है वह सब प्रकृति ही करती है, पुरुष-आत्मा नहीं। वह तो अकर्ता है, भिन्न २ शरीरवर्ती है, निर्गुण निष्क्रिय एवं नि सग ही जिस प्रकार जलमें रहता हूमा भी कमलका पत्र उससे अलिप्त रहता है, ठीक इसी तरहसे आत्मा भी है। प्रकृति-प्रदत्त समस्त सुखदुःखादिकोंका भोग करना ही उसका काम है, स्वयं यह किसी भी पातका कर्ता नहीं है। अचेतन प्रकृति जो भी कुछ करती है वह सब इस आत्माके उपभोगके लिये ही करती है, स्वयंके लिये नहीं। प्रकृति जब और पुरुष चेतन है। इस प्रकारका यह सांख्यका कथन ठीक नहीं है क्यों कि लोकमें ऐसा कोई सा भी दृष्टान्त नहीं मिलता है कि जिसके पलपर अचेतनमें जो प्रवर्तकता मानी जा सके। प्रकृति जय स्वयं अचेतन है तो क्योँ वह कर्तव्य कैसे हो सकती है ? बिना किसीकी प्रेरणा पाये वह पुरुषके चेतनके लिये प्रवृत्ति कैसे कर सकेगी ! हाँ यदि इस विषयमें यह दृष्टान्त मिलता तो उसके बलपर सांख्योका यह कथन मान्य भी हो सके। यदि

प्रकारकी जो मौलिक (मुष्क) तत्व मानेक उ जेभनु दे, उर के कर्ष  
करे उ ते प्रकृति व करे उ पुरुष-प्रमाण नहि. जे वा उर, निरहित  
शरीरपूर्वी उ निर्गुण, निष्क्रिय जने निश्चय उ जेन कन् देय छत्ता  
कमणपत्र तदन अलिप्त रहे उ आ व प्रभावे प्रकृति न ह नृत्तिप्रवृत्त  
समस्त सुख दुःखादिना भोग करेवे जे व जेनु प्रवृत्त (चेते) जे  
होष पञ्च पादनी कर्ता नही. अचेतन प्रकृति जे सुख उ जे अचु-  
आत्मना उपभोग भाटे व करे उ पातने भाटे उ जे अचु-  
चेतन उ आ प्रकारनु सांख्यनु कथन ही नही. उर न जने पुर  
पञ्च धात नही भणते के जेना कण कण करेवे उ जेना जेवे उ  
आवे. प्रकृति जेना चेतने व अचेतन उ ताँ जेना उर नृत्तिप्रवृत्त  
शके ? होष प्रेरणा भण्य पञ्च जे पुरुष किये उर नृत्तिप्रवृत्त  
करी शके ? आ विषयमा कर्ष छत्ता ही उर नृत्तिप्रवृत्त  
कथन मान्य पञ्च कर्ष शक्य कथन नही करेवे उर नृत्तिप्रवृत्त

યહાં પર યહ શઙ્કા કી જાવે કિ જૈનસિદ્ધાન્તકારોને જિનહં કર્મ માના હૈ વે ભી તો અચેતન હૈ, ડન અચેતનો મેં સુખદુઃખાદિરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તકતા દેહી જાની હૈ, ડસી પ્રકાર પ્રકૃતિમે ભી પ્રવર્તકતા માનનેમે ક્યા હાનિ હૈ? ડમ પ્રકાર દૃષ્ટાન્તકી અસંભવના વતલાકર જો ડસ કથન કો અપ્રમાણ વતલાયા ગયા હૈ વહ ઠીક નહો હૈ; સો સાંખ્યોકા ગેસા કહના જૈનસિદ્ધાન્તકે પ્રતિકૂલ હૈ। જૈનસિદ્ધાન્તકારોને કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમેં જીવકી રાગાદિક પરિણતિકે નિમિત્તકો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન માના હૈ, કાર્મણવર્ગણાઓ કા પરિણમન ( કર્મરૂપ હોના ) વિના નિમિત્ત કે નહી હોતા। અતઃ જવ ડનમે અશુદ્ધજીવકે વિભાવભાવોં કો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન હોતા હૈ તમી યે સુખદુઃખાદિકરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તક માને ગયે હૈ। સાંખ્યસિદ્ધાન્તકે અન્દર પ્રકૃતિમેં ડસ તરહસે પ્રવર્તકતા નહીં માની ગઈ હૈ, ક્યોં કિ આત્મા સ્વય નિર્ગુણ ઇવ અકર્તા માના ગયા હૈ। પ્રકૃતિકો ડસ પ્રકાર વિભાવપરિણતિસે અધિષ્ઠિત હો કર યદિ કાર્યકી કરનેવાલી માના જાવે તો ફિર ડસે જો “મૂલપ્રકૃતિ-રવિકૃતિઃ” કારણરૂપ હી માના ગયા હૈ સો યહ માન્યતા ઠીક નહીં માની જા સકતી, કારણ કિ ડસ પ્રકારકી માન્યતામેં ડસમેં વિકૃતિ આનેસે વહ કાર્યરૂપ કિસી અપેક્ષાસે માની જાવેગી। વિશેષ જિજ્ઞાસુઓંકો યહ વિષય ન્યાયગ્રન્થોસે દેહ લેના ચાહિયે।

સિદ્ધાન્તકારોએ જેને કર્મ માનેલ છે એ પણ અચેતન જ છે, એ અચેતનમા સુખ દુઃખાદિ ક્ષણ તરફ પ્રવર્તકતા જોવામા આવે છે, એ જ રીતે પ્રકૃતિમા પણ માનવામા કયુ નુકશાન છે? આ રીતે દષ્ટાન્તની અસંભવતા ખતાવીને આ કથનને અપ્રમાણિત કહેલ છે તે ખરાબર નથી, આમ સાખ્યોતુ કહેવુ જૈન સિદ્ધાન્તથી વિરુદ્ધનુ છે જૈન સિદ્ધાન્તકારોએ કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમા જીવની રાગાદિક પરિણતિનુ નિમિત્તને લઈને કર્મરૂપથી પરિણમન માનેલ છે કાર્મણવર્ગણાઓતુ પરિણમન ( કર્મરૂપ થવુ ) કોઈ નિમિત્ત સિવાય થતુ નથી આવી ન્યારે આમા અશુદ્ધ જીવના વિભાવભાવોને લઈ કર્મરૂપથી પરિણમન થાય છે ત્યારે એ સુખ દુઃખના ક્ષણ તરફ પ્રવર્તક માનવામા આવેલ છે સાખ્ય સિદ્ધાન્તમા પ્રકૃતિમા આ પ્રકારથી પ્રવર્તકતા માનવામા આવી નથી, કેમ કે આત્મા સ્વય નિર્ગુણ અકર્તા માનવામા આવેલ છે પ્રકૃતિને આ રીતે વિભાવપરિણતિથી અધિષ્ઠિત થઈ કામ કરવાવાળી માનવામા આવે તો પછી એને જે “મૂલપ્રકૃતિરવિકૃતિ” કારણરૂપજ માનવામા આવેલ છે આ માન્યતા ખરાબર થઈ શકે નહિ કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાથી એનામા વિકૃતિ આવવાથી કોઈ અપેક્ષાર્થી એને પણ કાર્યરૂપ માનવામા આવશે વધુ જાણસા ધરાવનારે આ વિષય ન્યાયગ્રન્થોમા જોઈ લેવો જોઈએ

निमित्तकारणं समवायि [ उपादान ] कारणं चास्तीत्यङ्गीकुर्वन्ताऽविद्याविभ्रमं सक्त  
 प्रपञ्चमातं शुक्तौ रनतयध् ब्रह्मणि जगद्रूप्यस्तम् [ आगपितम् ] नदं रजतमिति  
 विशापदर्शनादधिष्ठानमात्रावज्ञपा यथा, तयैव 'नह नानाऽस्ति किञ्चने'त्यादि विस्त-  
 पदर्शनादधिष्ठानमात्रावज्ञपमद्वैत ब्रह्म सिध्यति इत्यादि मुक्तो वदान्तिनः प्रष्टव्या

इसी प्रकार वेदान्तियोंका कथन भी परस्परविरुद्धार्थ प्ररूपक है। यह  
 इस प्रकारसे है—“य इस जगतस्वरूप प्रपञ्चका निमित्तकारण एव सम  
 वायि ( उपादान ) कारण एक ईश्वर को मानते हैं। घट-पट-मट-शाक  
 और कट ( चट्टाई ) आदि जो अनेक वस्तुरूप प्रपञ्च प्रतिभासित होता है  
 वह सब अविद्या-मायारूप विभ्रमसे मालूम पड़ता है, जैसे-शुक्ति  
 ( सीप )में रजतका ज्ञान होता है। शुक्तिमें जिस प्रकार रजतका आरोप  
 होता है, उसी प्रकार एक ब्रह्ममें इस जगतका आरोप होता है। उत्तर  
 कालमें जिस प्रकार “यह रजत नहीं है” इस प्रकार बाधक प्रत्यय  
 होता है और इससे सिर्फ अधिष्ठानमात्र-शक्ति अवशिष्ट बची रहती  
 है, उसी प्रकार इस संसारमें प्रत्यक्ष इदयमान य नाना पदार्थ कुछ नहीं  
 हैं, किन्तु अविद्या-माया विभ्रमसे अनकरूप प्रतिभासित होते हैं, वास्त-  
 यिक नहीं हैं। वास्तविक तो एक ब्रह्म ही है। इस प्रकार उत्तरकालीन  
 बाधक प्रत्ययसे एक अधिष्ठानमात्ररूप अद्वैत ब्रह्मकी ही सिद्धि होती  
 है” इस प्रकारका यह वदान्तियोंका कथन भी ठीक नहीं है। कारण कि

आ रीते वेदान्तवादीभ्योनु कथन पञ्च उत्तरपर विशेष अतापनार उ ते  
 न्य प्रकारे उ तेजो आ व्रजतत्प प्रपञ्चनु निमित्तकारणु नन उ गदानास्व  
 जेक उभरने माने उ घट-पट-मट सक्त जने कट ( चाट्टाई ) धल्लादि ले  
 जनेक वस्तुइव प्रपञ्च प्रतिभासित जेव उ आ जमु अविद्या-मायारूप विभ्र  
 मधी देभाय उ जेम सीपमा रजतनु ज्ञान जेव उ सीपमा जेम रजतने  
 न्याशय भाव उ आ व्र प्रकारे जेक ब्रह्ममा आ व्रजतने आशय भाव उ  
 उत्तर कालमा ले रीते आ रजत नधी आ प्रकारे बाधक प्रत्यय ( ज्ञान )  
 भाव उ जने ज्यधी इहा अधिष्ठान मात्र सीप अवशिष्ट जनी रहे उ आ  
 रीते आस साशमा प्रत्यक्ष देभावा विविध पदार्थो काल नधी पञ्च अविद्या-मायाना  
 विभ्रमधा जनेक रूप इभाय उ वास्तविकभा नधी; वास्तविक तो जेक ब्रह्म व्र उ.  
 आ रीते उत्तरकालीन बाधक प्रत्ययधी ( ज्ञानधा ) जेक अधिष्ठानरूप अद्वैत ब्रह्मनी व्र  
 सिद्धि जेव उ.” आ प्रकारनु वेदान्तियोंनु जे कथन पञ्च ठीक नधी; कारण उ जेक

यद् एरुस्य समवायि [ उपादान ] कारण-निमित्तकारणयोर्लोके क्वाप्यदर्शनेन दृष्टान्तासम्भवात् प्रत्यक्षदृष्टस्य जगतः सामान्येन शब्दप्रमाणेन वा सासम्भवाच्च न युक्तियुक्त भवन्मतमिति ।

तथा सौमताः—‘ यत् सन्तत् क्षणिकसर्गस्य च निरन्वय एव नाश इति कथयन्ति। यस्मादुपादानकारणाद् यदुपादेय जायते तस्योपादेयस्य तथैवोपादाने नाशो भवति, यथा—घट प्रत्युपादानकारण मृत्पिण्डः, अतो घटस्य तत्रैव नाशो भवति, तेन घट-एक ही ब्रह्म निमित्त और उपादान कारण नहीं बन सकता है। हां—यदि कोई ऐसा दृष्टान्त मिलता कि जो निमित्त और उपादान कारण होता तो यह मान्यता ठीक मानी जा सकती, परन्तु ऐसा कोई दृष्टान्त ही नहीं दिखता । अतः यह एक कल्पना मात्र है, वास्तविक नहीं । दृग्मे प्रत्यक्ष से स्पष्ट प्रतिभासित होनेवाले जगतमे सामान्य शब्द प्रमाण ( आगम-प्रमाण ) से बाधा भी कल्पित नहीं हो सकती है । इसलिये वेदान्तमत युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता ।

बौद्धसिद्धान्त भी युक्तियुक्त नहीं है, क्यों कि वे ‘ यत्सत् तत्सर्व क्षणिक ’ कहते हैं। अर्थात्—जो सत् ( पदार्थ ) हैं वे सब क्षणिक निरन्वय नाशशील हैं। परन्तु इस क्षणिकवादमे उपादान-उपादेय-भाव सिद्ध नहीं होनेसे कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं हो सकती है । जिस उपादान कारण से जो उपादेयरूप कार्य होता है उस कार्यका उसी उपादानरूप कारणमें नाश होता है। जैसे घटके प्रति उपादानकारण मृत्पिण्ड है और उस घटका उसीमें ही विनाश होता है । इस अपेक्षा घट और मृत्पिण्ड

अथ निमित्त अने उपादान कारण यथ शक्ते नहि कदाच कोर्ध एवु दृष्टात् अपात् के ने निमित्त अने उपादान कारण डीत तो आ मान्यता ठीक मानी मत परतु एवु कोर्ध दृष्टात् देष्वातु नथी आथी ए कल्पना मात्र छे, वास्तविक नथी भीवु प्रत्यक्षधी स्पष्ट देष्वात् आ जगतमा सामान्य शब्द प्रमाणधी कल्पना पणु यथ शक्ती नथी आ कारणे वेदान्त मत मानवायोज्य भनातो नथी बौद्ध सिद्धात पणु मानवा योज्य नथी, केम के ते “ यत्सत् तत्सर्व क्षणिक ” के ने पदार्थ छे ते गधा क्षणिक निरन्वय नाशशील छे एम कडे छे, परन्तु आ क्षणिकवादमा उपादानउपादेयभाव सिद्ध नहि हांवाधी कार्यकारण लावनी सिद्धि यथ शक्ती नथी के उपादानरूप कारणधी के उपादेयरूप कार्य थाय छे आ कार्यने ए उपादानरूप कारणमा नाश थाय छे, एम घडा प्रति उपादानकारण माटीनो पिंड छे अने ए घडानो एम न विनाश थाय छे आ रीते घडानो अने माटीपिंडनो

यत्प्रियं योर्नियतः कार्यकारणभावः सिद्धयति । निरन्वयनाशङ्कीकारे घटस्य कुप्र  
नाशः स्याद् यत्र नाशप्रथम उपादानं स्यादिति नियतकार्यकारणभावासिद्ध्या न  
मीचीनं तन्मतमिति-इत्यादियुक्तिभिः परवाहं निरस्य मुनिना सर्वज्ञोपदेशे  
वर्तितव्यमिति हृदयम् ।

कथं प्रवादं जानीयादित्याह- 'सहै' इत्यादि-सहसम्मत्या-सहात्मना या संगता  
मतिः सा सहसम्मति-परोपदेश-निरपेक्षा जातिस्मरणप्रतिमादिकरूपा मतिस्तया  
जानीयात् । यद्येवं नाशान्छत् तदा परभ्याकरणेन-परस्य=तीर्थहृदयभ्यांकरणं  
पदार्थसार्थस्य यथार्थस्वरूपप्रकरणं तत्परभ्याकरणेन तेन परभ्याकरणेन आर्हातामनेन  
जानीयात्, तेनाप्यनभिगम अन्येषामाचार्यादीनाम् अन्तिके=समीपे भ्रुत्वा=  
तदुपदेशमाकर्ष्य वस्तुतत्त्वं जानीयात् ॥ म० २ ॥

क्य परस्परमे-कार्य कारणभाव नियत सिद्ध होता है । परन्तु जब पदार्थका  
निरन्वय विनाश मान लिया जायगा तब घटका कहां पर नाश होगा ।  
नाश निराश्रय होगा, उपादानके आश्रय नहीं । इस प्रकार उपादान  
और उपादेयभाव न बननेसे परस्परमे नियमित कार्यकारण भावकी  
सिद्धि नहीं हो सकती है । अतः यह मत भी ठीक नहीं है ।

कहनेका अभिप्राय केवल इतना ही है कि इत्यादि युक्तियोंसे पर  
मतका निराकरण कर विद्वान् मुनिको सर्वज्ञ प्रभुके उपदेशमे ही मदा  
निरत-भ्रद्वाह्य रहना चाहिये ।

“सहसंमत्या परभ्याकरणेन अन्येषां बाधितिके भ्रुत्वा” इस प्रकार  
अपनी जातिस्मरण-प्रतिमादिकरूप बुद्धि या तीर्थहृदय-प्रभुके अग  
मसे मुनि इन परमतोंका सम्यक् ज्ञाता बने । यदि कदाचित् ऐसा

परस्पर कार्यकारणकी भेद सिद्ध भाव है परन्तु जो पदार्थने निरन्वय विनाश जानी  
देवाभा आवे तो प्रज्जा नाश क्या भाव ? आरीते उपादान अने उपादेय भाव  
न बनवाधी परस्परमां नियमित कार्यकारण भावनी सिद्धि नहीं भई सकती  
जाधी आ मत पक्ष अशक्य नहीं ।

इहेवातु तात्पर्य मात्र अेटवुं ए उ के अनेक बुद्धिजोधी जीव मतनु  
निसकशु करी विद्वान् मुनिमे सर्वेण प्रभुना उपदेशमां ए अदा भ्रद्वाह्य  
रहेतुं अेटवुं ।

“सहसंमत्या परभ्याकरणेन अन्येषां बाधितिके भ्रुत्वा” आ प्रकारे चोदान्नी  
जातिस्मरण-प्रतिमादिकरूप बुद्धिधी अने तीर्थहृदय प्रभुमे इहेत अत्रमधी मुनि

જ્ઞાત્વા કિં કર્તવ્યમિતિ દર્શયતિ-નિદેશ ' ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—નિદેશં નાદૃવદ્દેજ્જા મેહાવી સુપડિલેહિયા સવ્વઓ સવ્વયાણ સમ્મમેવ સમભિજાણિયા, ઇહ આરામં પરિણાય અહ્લીણગુત્તે પરિવ્વણ, નિટ્ટિયટ્ટી વીરે આગમેણ સયા પરક્કમે-  
જ્જાસિ ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—નિદેશ નાતિવર્તેત મેધાવી સુપ્રત્યુપેક્ષ્ય સર્વતઃ સર્વાત્મના સમ્યગેવ સમભિજ્ઞાય, ડહાSSરામ પરિજ્ઞાયાSSલીનગુત્તઃ પરિવ્રજેત્, નિષ્ઠિતાર્થી વીર આગમેન સદા પરાક્રમેથા ઇતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—' નિદેશ 'મિત્યાદિ—મેધાવી=આચાર્યમર્યાદાનુગમનશીલો નિદેશં= વીતરાગોપદેશ સર્વાત્મના=ઉત્સર્ગપ્રવાદરૂપેણ, યદ્વા—આમ્યન્તરવાદ્યરૂપેણ સર્વતઃ =સર્વપ્રકારેણ દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવરૂપેણેત્યર્થઃ, મુપ્રત્યુપેક્ષ્ય=મિત્યાદૃષ્ટિવાદ ભગવ-  
દ્વાદં ચ હેયોપાદેયત્વેન સમ્યક્ સમાલોચ્ય સમ્યગેવ=સમ્યક્તયા યથાવસ્થિતરૂપેણ સ્વમત પરમત ચ સમભિજ્ઞાય પ્રમાણનયૈર્જ્ઞાત્વા નાતિવર્તેત-ભગવદાજ્ઞા નાતિક્રમેત-  
નોહ્લહ્વેદિત્યર્થઃ, ઉપલક્ષણાત્ પ્રવાદ ચ નિરાકુર્યાદિતિ । અપિ ચ ઇહ=અત્ર જિન-  
યોગ ન મિલે તો આચાર્યાદિક ગુરુઓંકે નિકટ વસ કર અનેકે ઉપદેશ શ્રવણસે વાસ્તવિક વસ્તુ-તત્ત્વકા જાણ્યક યને ।

વસ્તુ તત્ત્વ યા પરપ્રવાદકો જાન કર ફિર કયા કરના ચાહિયે? ઇસ કે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર કહતે હૈં “ નિદેશ ” ઇત્યાદિ ।

જો મુનિજન વુદ્ધિશાલી હૈં, અર્થાત્ અપને ધર્મગુરુઓંકી મર્યાદાકે રક્ષક હૈં, અનેકે નિર્દિષ્ટ માર્ગાનુસાર અપની પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં, સ્વમનઃ-  
કલ્પિત પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે । વે વીતરાગ પ્રભુકે ઉપદેશકા અનેક માર્ગસે વિચાર કર કમી ખી ડસસે ઘિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ, યા ડસકા ડલ્લંઘન નહીં કરતે। વીતરાગ પ્રભુકા ઉપદેશ અનેક નર્થોંકી અપેક્ષાસે પ્રવર્તિત હુઆ હૈં ઇસા

આ પરમતોનો સ પૂર્ણ જ્ઞાતા યને. પર તુ કદાચ એવો યોગ ન મળે તો આચાર્ય આદિ ગુરુઓની પાસે રહી એમના ઉપદેશ શ્રવણથી વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વના બહુકાર યને વસ્તુતત્ત્વ અને પરમતને બહુ પછી શુ કરવુ બેઠએ ? એના સમા-  
ધાનમા સૂત્રકાર કહે છે “ નિદેશ ” ઇત્યાદિ ।

વે મુનિજન બુદ્ધિશાળી છે એટલે પોતાના ધર્મગુરુઓની મર્યાદાના રક્ષક છે-એમણે ઉપદેશલ માર્ગ અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે, સ્વમન કલ્પિત પ્રવૃત્તિ કરતા નથી તે વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશને અનેક માર્ગથી વિચાર કરી કદી પણ એનાથી વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ અથવા એતુ ઉલ્લંઘન નથી કરતા વીતરાગ પ્રભુને ઉપદેશ સિદ્ધ છે એવો વિચાર કરી તે કદી પણ એના આગમમા શકા

विचार कर वे भी उनके आगममें शंकाशील नहीं होते हैं—उसमें परस्पर विरुद्धार्थप्ररूपकताकी शंका नहीं करते हैं। वे यह अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि भगवान् वीतराग प्रभुके वचन ही निर्दोष होनेसे उपादेय हैं और सदोष होनेसे मिथ्यादृष्टियोंके वचन हेय हैं। क्यों कि पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वह वीतरागप्रभु प्रतिपादित आगमसे साक्षात् ज्ञात होता है; कारण कि उसमें ही पदार्थोंका यथार्थस्वरूप प्रतिपादित हुआ है अन्य मिथ्यादृष्टियोंके आगममें नहीं, कारण कि उसमें उनका यथावस्थित स्वरूप प्रतिपादित नहीं हुआ है, इनमें एकान्तवादकी ही प्ररूपणा है, जो प्रत्यक्ष और अनुमानसे पापित है। पदार्थोंका स्वरूप अनेकान्तकी प्ररूपणा से ही वास्तविक ज्ञान होता है, और वही अनकान्तता पदार्थोंमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञान होती है। इस अनेकान्तताका परिज्ञान पदार्थों में प्रमाण और नयोंसे होता है। वस्तुके अंदर रहे हुए अनंत धर्मोंमें से किमी एक धर्मको मुख्यकर शेष धर्मोंकी अधिवक्षासे उन्हें गौणकर वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करना नय है। अनंतधर्मोंमें एक वस्तुका कथन प्रमाण ही इस प्रकार पदार्थोंमें अनेकान्तता ही सिद्ध होती है।

शङ्का—नयवाक्यसे जो पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है वह भी तो एकान्तवाक्य है; फिर इसमें प्रमाणरूपता कैसे मानी जा सकती है ?

शील जनता नहीं—जोमां परस्पर विरोधीपक्षानी शंका नहीं करता जो सारी रीते समझे थे कि भगवान् वीतराग प्रभुनां वचन निर्दोष तेमकर आव्यस्वा-  
 योध्य दोषाधी मिथ्यादृष्टियोंना वचन नष्टमां थे; केम के पदार्थोंनु नेतुं  
 स्वरूप थे ते वीतराग प्रभुजे समजवेक आगमधी लक्ष्मी शंकाय थे कारण  
 के जोमां व पदार्थोंनु यथार्थ स्वरूप समजवेक थे वीक मिथ्यादृष्टियोंना  
 आगममां नहीं कारण के जोमां जेनुं साभु स्वरूप सिद्ध स्वीकारतुं नहीं  
 जोमां जोकान्तवादी व प्ररूपणां थे जे प्रत्यक्ष अने अनुमानधी पापित थे  
 पदार्थोंनु स्वरूप अनेकान्तनी प्ररूपणायां व वास्तविक लक्ष्मी शंकाय थे अने जो व  
 अनेकान्तता पदार्थोंमां प्रत्यक्षादि प्रमाणोंधी नय पाय थे आ अनेकान्ततानु  
 परिज्ञान पदार्थोंमां प्रमाण अने नयोंधी पाय थे वस्तुनी अंदर रहेक अनंत  
 धर्मोंमांही केछं जेक धर्मने मुख्य गणी वीक धर्मोंनी अधिवक्षा हरी जेने  
 गौण समज वस्तुस्वरूपनु प्रतिपादन करतुं नय थे अनंत धर्मोंमेंक वस्तुनु  
 कथन प्रमाण थे आ प्रभरे पदार्थोंमां अनेकान्तता व सिद्ध पाय थे

शङ्का—नयवाक्यधी > पदार्थोंमां स्वरूपनु प्रतिपादन करमां आवे थे  
 आ पण जेकान्तवाक्यं थे, पछी अने प्रमाणरूपता हरी रीते मानी शंकाय ?



उत्तर—यह आशंका ठीक नहीं है, क्यों कि जहां पर विवक्षित धर्मकी ही प्रधानता की जावे और बाकी अन्य धर्मोंका तिरस्कार कर दिया जावे वहां पर ही एकान्तता आती है। नयवाक्यमें सर्वथा एकान्त-प्रतिपादकता नहीं है। यद्यपि नय अपने द्वारा गृहीत धर्मका ही प्रतिपादन करता है, परन्तु वह वस्तुगत अनेक धर्मोंका तिरस्कार नहीं करता है, किन्तु उनकी ओर वह गजनिमीलिका धारण कर लेता है। इस प्रकार नयवाक्यमें दुर्नयतारूप सर्वथा एकान्तप्रतिपादकता नहीं आती है।

शंका—इस प्रकारके कथनसे नयवाक्यमें जब प्रमाणता आती है तो उसे प्रमाणवाक्यसे भिन्न क्यों मानना चाहिये? उसका समावेश प्रमाणवाक्यमें क्यों नहीं कर लिया जावे?

उत्तर—शंका ठीक नहीं है, क्यों कि जिस प्रकार समुद्रका एक बिन्दु असमुद्र एवं समुद्र नहीं हो सकता है; किन्तु समुद्रका एक देश कहा जाता है, उसी प्रकार नय वाक्य भी प्रमाणका एक देश माना गया है, वह न प्रमाण है और न अप्रमाण। इस प्रकार वह जीवादिक पदार्थों में या वीतरागप्रतिपादित आगममें उत्सर्ग और अपवाद मार्गसे प्रमाण नयोंके द्वारा यथार्थप्रतिपादकता जानकर उसे उपादेयकोटिमें

उत्तर—आ आशंका व्याजणी नहीं, केम के न्या विवक्षित धर्मनी न प्रधानता मानवामा आवे अने जाकीना जीव धर्मोना तिरस्कार करवामा आवे त्या न एकान्तता आवे छे नयवाक्यमा सपुण्यं एकान्तप्रतिपादकता नहीं, यद्यपि नय पोताद्वारा गृहीत धर्मने न प्रतिपादित करे छे, परन्तु ये वस्तुगत अनेक धर्मोना तिरस्कार करतो नहीं, परन्तु येनी तरक ते नभभाव धारण करे छे, आ रीते नयवाक्यमा दुर्नयता-सर्वथा-एकान्त-प्रतिपादकता आवती नहीं.

शंका—आ प्रकारना कथननी नयवाक्यमा न्यारे प्रमाण्यता आवे छे तो येने प्रमाण्य वाक्यथी किन्न केम मानवु जेछये? येने समावेश प्रमाण्यवाक्योमा केम नहीं करतो?

उत्तर—शंका भरोभर नहीं, केम के न्ये रीते समुद्रतु एक टीपु असमुद्र अने समुद्र भनी शकतुं नहीं, परन्तु समुद्रनेो एक देश कडेवाय छे, ये न रीते नयवाक्य पणु प्रमाण्यनेो एक देश मानवामा आवेल छे ये प्रमाण्य पणु नहीं तेम अप्रमाण्य पणु नहीं आ रीते लयादिक पदार्थोमा अने वीतराग प्रतिपादित आगममा उत्सर्ग अने अपवाद मार्गवी प्रमाण्य नयो द्वारा यथार्थ-प्रतिपादकता जणु तेने उपादेयकोटिमा अने मिथ्यादृष्टियोना सिद्धातोने छेय

शक्तने लोके भास्वीनशुभः-भास्वीनः-भा-सर्वतस्तपसि संयम गुरुपदश परस-  
मयनिराकरणे च स्त्रीनः-तत्परः गुप्त-कर्मक्षु सपतेन्द्रियनोइन्द्रियम सन् 'निष्ठि  
वार्थी' निष्ठिव-सकलकर्मक्षयपरदान्योक्त सांख्य-प्रयोजनमस्यास्तीति  
स निष्ठिवार्थी-मोक्षामिषापी वीरः-कर्मविदारणनिष्ठुण 'आरामम्' आ-  
और मिथ्यादृष्टियेके सिद्धान्तको हेयकोटिमें स्थापित कर वीतराग के  
मार्गमें निःशंक वन भाषार्यके निर्दिष्ट मार्गमें यथार्थ प्रवृत्तिशील होता है।

"सर्वतः सर्वात्मना" इन दो पदोंका यह भी अर्थ होता है कि  
आम्यन्तर एवं बाह्यरूपसे तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और नाशको लेकर  
वह मेवाकी मुनि वीतरागकथित उपदेशरूप आगमका विचार करनवाला  
होता है। इसलिये जो वस्तु जिस द्रव्य क्षेत्रादिक की अपेक्षासे हेय होती  
है वही वस्तु अन्य द्रव्य क्षेत्रादिककी अपेक्षासे उपादेय भी हो जाती है।

इस प्रकार इस जिनशामनरूपी लोक, तप, मयम, गुरुके उपदेशके  
पालन करने और परसमयक निराकरण करनेमें सर्व प्रकारसे कटिबद्ध  
वह मुनि कच्छपकी तरह अपनी इन्द्रियो एव नोइन्द्रिय (मन)का  
संवरण करता हुआ समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप-मोक्ष-प्रयोजनवाला  
होता है। इस प्रयोजनका साधन जो संयम है उसमें फिर इसकी निर-  
बन्ध प्रवृत्ति होती है; कारण कि मूर्च्छिका लाभ विना कर्मोंके क्षय हुए  
नहीं होता है। कर्मोंका क्षय भी बिना संयमकी आराधना किये होता

कोटिमां जह्नी वीतरागना भाषमा निशक जनी आचार्य मुनयवे ते भाजमां  
ते बधार्थं प्रवृत्तिशील बने थे।

"सर्वतः सर्वात्मना" आ जे परोन्ये के पक्ष अर्थ धाय छे के आम्यन्तर बने  
जाय द्रव्य भी तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल बने भावने छे के मेवाकी मुनि वीतराग के बने छे  
उपदेशरूप आचरनयो निवार करनवाला होब छे. ज्य भाटे के वस्तु के द्रव्य-क्षेत्र  
दिक्की अपेक्षाभी देखे छे जे ए वस्तु बीच द्रव्य-क्षेत्रादिककी अपेक्षाभी  
उपादेय पक्ष जनी अव छे.

ज्य प्रकारे ज्य शमशासनरूपी लोक तप संयम, गुरुना उपदेशनु पालन  
बने परसमयनु निराकरण करनमा मुनं प्रकारे कटिबद्ध जेवा मुनि कथनानी  
भाषके पितानी इन्द्रियो बने भगनु संवरण करीने समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप-मोक्ष  
प्रयोजनवाला बने छे. ज्य प्रयोजननु साधन के संयम छे तेमांतेनी निरबन्ध प्रवृत्ति  
बने छे कारण के मुक्तिनो लाभ कर्मोंका क्षय भयो नहीं. कर्मोंका क्षय पक्ष संयमनी  
आसधन्य बन्ध भयो नहीं. संयमनो बल धवाधी ज्य आभा पितान्य निज

સમન્તાદ્ રમયત્યાત્માન સ્વસ્વરૂપે યઃ સ આરામઃ સંયમસ્ત પરિજ્ઞાય=જ્ઞપરિજ્ઞયા જ્ઞાત્વા આસેવનપરિજ્ઞયાઽઽસેવ્ય ચ પરિવ્રજેત્=નિરવધાચરણે વિહરેત્ । હે શિષ્ય! ત્વ સદા=સર્વસ્મિન્ કાલે આગમેન=વીતરાગોપદેશેન આચાર્યોપદેશેન ચ પરાક્રમેથાઃ= સયમે પરાક્રમ કુરુ । ‘ ઇતિ ’ ઇત્યધિકારસમાપ્તૌ ‘ વ્રવીમિ ’ ઇતિ પૂર્વવત્ ॥૨૦૩॥

કથ મુહુર્મુહુરુપદિશ્યત ઇત્યાહ—‘ ઉદ્ઘ ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—ઉદ્ઘં સોયા અહો સોયા, તિરિયં સોયા વિયાહિયા ।  
 ણ્ સોયા વિઅઘ્વાયા, જેહિં સંગંતિ પાસહ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

હાયા—ઊર્ધ્વં સ્ત્રોતાસિ અધઃ સ્ત્રોતાસિ, તિર્યક્ સ્ત્રોતાસિ વ્યાહૃતાનિ । ણ્તાનિ સ્ત્રોતાસ્યપ્યાહ્યાતાનિ, યૈઃ સન્નમિતિ પદ્યત ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકા—‘ ઊર્ધ્વ ’મિત્યાદિ—ઊર્ધ્વમ્=ઊર્ધ્વલોકે સ્વર્ગાદૌ સ્ત્રોતાસિ=આસ્રવ- દ્વારાણિ મિથ્યાત્વાવિરત્યાદીનિ વર્તન્તે તત્રાપિ દેવસમ્બન્ધિ કામભોગસેવનાત્, નહીં હૈ । સંયમકે લાભ હોને પર હી આત્મા અપને નિજ સ્વસ્વરૂપમેં રમણ કરતા હૈ, સ્વસ્વરૂપમેં રમણતા હી તો સયમ હૈ ।

ઇસ પ્રકારસે વહ જ્ઞ પરિજ્ઞાસે જાન કર ઓર આસેવન પરિજ્ઞાસે ડસકા સેવન કરતા હૈ, નિરવધ આચરણ કરનેમેં પ્રવૃત્તિશીલ બન સદા ડસી ઓર મગ્ન રહતા હૈ । ડમ પ્રકારકે ડપદેશસે સૂત્રકાર શિષ્યજનકો સમજાતે હુગ કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! તુમ ડી સદા—સર્વકાલ વીતરાગ પ્રભુકે ડપદેશ યા આચાર્ય મહારાજકે ડપદેશસે સયમ પાલનેકી ઓર પરાક્રમશાલી બનો । સૂત્રસ્થ ‘ ઇતિ ’ શબ્દ અધિકારકી સમાપ્તિકા સૂચક હૈ । ‘ વ્રવીમિ ’ પદકા વ્યાખ્યાન પહિલે કઈ સ્થાનોંપર લિખા જા ચુકા હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ધારંધાર સંયમમેં પ્રવૃત્તિ કરનેકા ડપદેશ ક્યોં દિયા જાતા હૈ ? ડસ કા સમાધાન કરને નિમિત્ત સૂત્રકાર કહતે હૈં—‘ ઉદ્ઘં સોયા ’ ઇત્યાદિ ।

સ્વરૂપમા રમણુ કરે છે સ્વસ્વરૂપમા રમણુતા ઓ જ સયમ છે આ પ્રકારે તે જ પરિજ્ઞાથી બહીને અને આસેવન પરિજ્ઞાથી તેનુ સેવન કરે છે, અને નિરવધ આચરણુ કરવામા પ્રવૃત્તિશીલ બની સદા તે તરફ મગ્ન રહે છે આ પ્રકારના ડપદેશથી સૂત્રકાર શિષ્યજનને સમબલવતા કહે છે કે હે શિષ્ય ! તમે પણુ સદા સર્વકાળ વીતરાગ પ્રભુના ડપદેશ અને આચાર્ય મહારાજના ડપદેશથી સયમ પાલનની તરફ પરાક્રમશાળી બનો સૂત્રસ્થ હિતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિના સૂચક છે “ વ્રવીમિ ” આ પદનુ વ્યાખ્યાન આગળ કેટલાક સ્થાનોમા કહેવાઈ ગયા છે ( સૂ૦ ૩ )

ધારવાર સયમમા પ્રવૃત્તિ કરવાનો ડપદેશ કેમ આપવામા આવે છે આનુ સમાધાન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે “ ઉદ્ઘં સોયા ” ઇત્યાદિ ।

अथ—अधोसोक स्रोतांसि—भास्त्रवद्वाराणि मधनपतिसुम्नासंभनात्, तिर्यग्लोकेषु मनुष्यलोके स्रोतांसि तिर्यग्मनुष्यम्यन्तरविषयमृत्संज्ञानात् व्याहृतानि कथितानि।

उर्ध्व, अध और तिर्यग ( मध्य ) इन तीनों लोकोंमें कर्मोंक आने क अनक द्वार—कारण शास्त्रोंमें प्रतिपादित किये गये हैं । सामान्यतया—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योग ये कर्मपदके कारण होते हैं । प्रत्येक गतिमें अथवा इन तीन लोकमें ऐसा कोई ना भी स्थान नहीं है कि जहां पर जीव कर्मोंक पदसे रहित हो । पद विना आस्रकके नहीं होता है, अत जो कारण पदके हैं वे ही आस्रकके समझना चाहिये । स्वर्ग आदि में इन कारणोंक अतिरिक्त नी कर्मास्रकके और भी कई कारण हैं । यद्यपि इन कारणकलापोंका समावेश पूर्वोक्त कारणकलापोंमें ही हो जाता है, फिर भी यहां पर जो वृत्तगति मधंधी विषय सुखोंका सेवन उनके आस्रकका कारण मतलाया गया है वह टिप्प्य जनोंको विदोष रीतिसे समझानक लिये ही कहा गया है । इसी प्रकार अधोसोक पद तिर्यग्लोकमें भी यही पाल समझना चाहिये । अधोसोक में नरकगतिमें नपुंसकलिङ्गका उदय होनेसे वहां पर जीवों—नार कियोंको वैषयिक सुखोंका आसेवनजन्य कर्मोंका आस्रक कैसे हो सकता है ? यह आशका यद्यपि हो सकती है, तो भी इस आशकाका समाधान यही है कि नपुंसक वेदके उदयमें पादरूप में वैषयिक सुखों—रतिसम्बन्धी

उर्ध्व अध नने तिर्यग् आ त्रये लोकानां कर्मोनि आवधाना अनेक द्वार—कारण शास्त्रोंका लक्षावेष्ट है सामान्य रीते—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय प्रमाद अने योग आ कर्मोपभवा कारण अने है प्रत्येक गतिमें अथवा आ त्रय लोकोंमें जेवुं कर्म पद स्थान नहीं के न्या लय कर्मोना ल पधी स्थित होय. ल प आव्रव विना जनता नहीं, माटे के कारण ल प माटे है ते व कारण आव्रवतु समलपु. स्वग आदिमें आ अस्त्रोका अतिरिक्त पद कर्मोपभवा लीन पद केट लोके अस्त्रो है; अथी आ कारण—कलापोना समावेश पूर्वोक्त कारण—कलापिनां व कर्म लय है छता पद अदि के देववतिसलभी विषयमुपेनां सेवन, जेना आव्रवतु कारण लतावेष्ट है ते शिम्बनेनेने विशेषरीतिषां समलपववा माटे व कहेल है आ व प्रकारे लपिलोक अने तिर्यग्लोकमें पद आ वत समलपवी जेसके लपिलोकमें नरक विमां नपुंसक लिजनेने उदय दीवधी ते लयाने लवे—नरकविषेना वैषयिक सुखानु आसेवनजन्य कर्मोना आव्रव कर्म रीते कर्म शके ? आ आशका जे के कर्म शके है तो पद आ आशकातु समा पान जे है के नपुंसक वेदना उदयमा लक्ष्यपमा वैषयिक सुखो—रति सलभी

यद्वा-प्रज्ञापकापेक्षया ऊर्ध्वं स्रोतांसि-गिरिशिखरमाग्भारनितम्बप्रपातोदकादीनि, अबोऽपि-गर्तनदीतटकन्दरादीनि, तिर्यगपि उद्यानपरिपत्प्रासादादीनि स्रोतांसि जन्तूना विषयोपभोगास्पदानि व्याहृतानि=व्याख्यातानि । एतानि=लोकत्रयवर्तीनि कर्मास्रवद्वाराणि नदीस्रोतासीव स्रोतांसि आख्यातानि=कथितानि, आनदोका अनुभव भले ही न हो, परन्तु इस वेदके उदयमें बहुत भयकर मानसिक कामपीडा होती है, उसीसे जीव कर्मोंका आस्रव किया करता है, तथा मिथ्यात्व आदि कारण तो वहां स्पष्ट है ही ।

दूसरे-इस अधोलोकमें भवनपतियोंका निवासस्थान है, वहां विषयोंका सेवन भवनपति आदि किया करते हैं । इस अपेक्षासे अधोलोक भी कर्मास्रवके कारणसे रहित नहीं है । तिर्यग्लोक-मध्यलोकमें भी यही अवस्था है, यहां पर भी मनुष्यगति संबन्धी, तिर्यञ्चगति सम्बन्धी और व्यन्तरदेव सम्बन्धी विषय सुखोंका सेवन कर्मोंके आस्रवका कारण स्पष्ट रूप है ।

अथवा प्रज्ञापकी अपेक्षासे-उर्ध्वस्रोत, गिरिशिखर आदि स्थित प्रपातजल हैं, अधःस्रोत-गङ्गा, नदीतट, कन्दरा आदि हैं, तिर्यक्स्रोत-उद्यान परिषत् प्रासाद आदि हैं । ये सब वैषयिक सुखोंके स्थानभूत हैं, जीव इन स्थानोंमें वैषयिक सुख सेवन करते हैं तो जिस प्रकार नदी

आनदोना अनुभव भले न होय परन्तु आ वेदना उदयमा भूषण लय कर मानसिक कामपीडा थाय छे आधी लव कर्मोना आस्रव कर्मा करे छे तथा मिथ्यात्व आदि कारण तो त्या स्पष्ट छे न

प्राञ्च आ अधोलोकमा भवनपतियोनु निवासस्थान छे त्या विषयोनु सेवन भवनपति आदि करे छे, आ अपेक्षाधी अधोलोक पण कर्मास्रवना कारणधी रहित नथी तिर्यग्लोक-मध्यलोकमा पण ज्योती न अवस्था छे त्या पण मनुष्य गति सम्बन्धी, तिर्यञ्चगति सम्बन्धी अने व्यन्तरदेव सम्बन्धी विषयसुखोना सेवन कर्मोना आस्रवनु कारण स्पष्ट रूपधी छे

अने प्रज्ञापकी अपेक्षाधी-उर्ध्वस्रोत-गिरिशिखर आदि स्थित प्रपातजल आदि छे, अधःस्रोत-गङ्गा, नदीतट, कन्दरा आदि छे, अने तिर्यक्स्रोत-उद्यान, परिषत्, प्रासाद आदि छे आ सधणा वैषयिक सुखोना स्थान छे लव आ स्थानोना वैषयिक सुख सेवन करे छे जे प्रकारे नरी आदि जणा

पापापावानकारणैस्त्रिषिषध्मोक्षनैस्तेर्यं पूर्वोक्ते' सङ्ग-भूतानां समासक्ति कर्मा  
मिष्वङ्गं वा पश्यत-युष प्रेक्षन्तम् इति हेतार्यस्मात्प्रमिष्वङ्गात् स्रोतांसि मन्वन्ति तस्मा  
दागमोक्तसंयममार्गे सर्वतः-सर्वात्मना पराक्रमया इति पूर्वेण सम्बन्धा ॥ सू० ४ ॥

आदि जसाशायोमें अलके आनेके कारणमूल ज्योत पुमा करते हैं उसी  
प्रकार ये सब भी कर्मोंके आनेके ज्योत-द्वार हैं ।

इन तीन प्रकारके द्वारोंसे कि जिनसे उन २ लोकोंमें रहे हुए जीवों  
को नबीन कर्मोंका प्रतिसमय आस्रव होता रहता है-इस जीवकी आसक्ति  
होती रहती है, अथवा इन तीन प्रकारके कर्मोंके आस्रवके कारणोंद्वारा  
आगत कर्मोंसे इस जीवका सम्पर्क होता रहता है; इसलिये शिष्योंको  
समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जब यह बात स्पष्ट है तो हे शिष्य !  
तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम्हारा इन स्थानोंसे सम्पर्क न हो ।  
इनसे सम्पर्क छुड़ानेका एक मात्र कारण आगममें प्रतिपादित संयममार्ग  
का आराधन ही है; इसलिये उस संयमकी आराधना करनेके लिये तुम  
सदा सर्वप्रकारसे कृषिद्ध रहो ।

भाषार्थ—' वारवार संयममें प्रवृत्ति करानेका उपदेश क्यों दिया  
जाता है ? ' इस प्रकारके प्रश्नका समाधान इस सूत्रद्वारा किया गया है  
और यह संक्षिप्तमें यही फललाया गया है कि संयम ही कर्मोंके आस्रव  
का निरोधक है, अतः उसमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये; इसीलिये ही

शेषोर्मा पश्यन्ते आपवनां कारुण्यं उरुषु बन्धा इरे ते ज्ञानी रीते जे सप्रजा  
पयु कर्मने आपवनां द्वार छे

आथा वरु प्रकास्यां द्वारोर्मा के जेनाथी त ते दोहोर्मा स्तेषा एवेने  
तपीन कर्मोने प्रतिसमय आस्रव बतो स्ते छे-ते एवनी आस्रवित बती स्ते  
छे, अथवा आ वरु प्रकास्यां कर्मोना आस्रवना कारुण्यकास न्यगत कर्मोर्मा आ  
एवने सलभ कर्ष श्वा छे आ कारुण्ये शिष्योने समलभतां सूत्रकार स्ते छे के  
अथरे आ वात स्पष्ट छे तो हे शिष्य ! तमे जेवे प्रबल करी के र्मा तमाथे  
आथा स्थानेमा सपक न थाय, ज्ञानधी सपक प्रेक्षयानु जेक मात्र कारुण्य  
आजममा प्रतिपादित-सममनु आराधन व छे आ आटे सममनी आराधना  
करवा साइ तमे सदा कर्ष प्रकाशधी कटिलक रडो।

भाषार्थ — वारवार संयममें प्रवृत्ति करवानेके उपदेश के म आपवना  
आवे छे " आ प्रकास्यां प्रमनु समाधान आ सूत्रद्वारा करैस छे, जने त  
संक्षिप्तमा जे व आपवनामा आभ्यु छे के संयम व कर्मोना आस्रवने निरो

અન્યમપ્યુપદેશમાહ—‘ આવટ્ટ ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—આવટ્ટં તુ પેહાણ્ એત્થ વિરમિજ્જ વેયવી, વિણહત્તુ સોયં નિક્કલમ્મ એસમહં અકમ્મા જાણહ પાસહ પહિલેહાણ નાવ-કંઘહ્ ઇહ આગહં ગહં પગિન્નાય અચ્ચેહ જાહમરણસ્સ વટ્ટમગ્ગં વક્ખાયરણ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—આવર્તં તુ પ્રેક્ષ્યાત્ર વિરમેદ્વેદવિત્, વિનેતુ સ્તોતો નિક્કમ્ય એપ મહાન અકુર્મા જાનાતિ પશ્યતિ પ્રત્યુપેક્ષ્ય નાવકાઠ્ઠતીઠાઽઽગતિં ગતિં પરિજ્ઞાય અત્યેતિ જાતિમરણસ્ય વર્તમાર્ગં વ્યાખ્યાતરતઃ ॥ મ૦ ૫ ॥

ટીકા—‘ આવર્ત ’મિત્યાદિ—અત્ર=ઇહ જિનશાસને લોકે વા, વેદવિત્= વીતરાગપ્રણીતાઽઽગમજ્ઞઃ, આવર્ત=મિથ્યાત્વાવિરત્યાદિરૂપ ભાવાવર્ત, તુ-શબ્દને

ઉસમેં પ્રવૃત્તિ કરનેકા ચાર ચાર ઉપદેશ દિયા જાતા હૈ । લોકમેં એસા કોઈ સા ખી સ્થાન નહીં હૈ કિ જહાં રહ કર જીવ કર્મેંકે આશ્રવસે રહિત હો સકે । ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક ઓર અધોલોક યે સવ હી સ્થાન કર્મેંકે આશ્રવકે કારણોસે ભરે પડે હૈ । અતઃ એક સચમરૂપ હી માર્ગ એસા હૈ જો કર્મેંકે આશ્રવકો રોકતા હૈ । ઇસલિયે ઉસીમેં પ્રવૃત્તિ કરની ચાહિયે ।

ઇસી વિષય સે લગતી હુઈ ઓર ખી વાત સૂત્રકાર કહતે હૈ—  
“ આવટ્ટ ” ઇત્યાદિ ।

જો મનુષ્ય ઇસ લોકમે અથવા ઇસ પર્યાય મેં વીતરાગપ્રણીત આગમ કા જ્ઞાના હૈ ઉસકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જો ભાવ આવર્ત હૈ ઉનસે, તથા “ તુ ” ઇસ શબ્દસે ગૃહીત શબ્દાદિક વિષ-

યક ઇ માટે તેમા જ પ્રવૃત્તિ કરવી બેઈએ આ માટે જ એવી પ્રવૃત્તિ કરવાને ઉપદેશ ચાર ચાર આપવામા આવે છે લોકમા એવુ કોઈ પણ સ્થાન નથી કે ત્યા રહીને જીવ કર્મેના આશ્રવથી રહિત બની શકે ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને અધોલોકમા સઘળા સ્થાન કર્મેના આશ્રવના કારણથી ભરેલા છે આથી એક સચમરૂપ માર્ગ એવો છે જે કર્મેના આશ્રવને રોકે છે આ માટે એમા પ્રવૃત્તિ કરવી બેઈએ

આ વિષયને લગતી ખીજ એક વાત પણ સૂત્રકાર કહે છે “ આવટ્ટ ” ઇત્યાદિ જે મનુષ્ય આ લોકમા અથવા આ પર્યાયમા વીતરાગ પ્રણીત આગમને જ્ઞાતા છે, તેતુ કર્તવ્ય છે કે તે મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જે ભાવ આવર્ત છે તેનાથી, તથા “ તુ ” આ શબ્દથી ગૃહીત શબ્દાદિક વિષયથી આવર્તથી, અથવા

द्वन्द्वाविधिपयावर्तं कर्मणः पावर्तं वा प्रेत्य=पर्यालोच्य विरमतु=आत्मद्वारेभ्यो  
निर्गतेषु, तेषां प्रतिरोधं कुर्यादित्यर्थः। किं तेन प्रतिरोधेनेत्याह- ' विनेतु ' मित्यादि।  
यः स्रोतः=कर्मणामात्मद्वारं विनेतुम्=अपनेतुम्=वृत्तिकर्तुं निष्कम्य=पश्य पया=अर्थ  
प्रत्यक्षभूतः, महान्=उदारचरिता महापुरुषः ' अकर्मा ' न विद्यते कर्म पातिकर्म  
यस्य स्रोतकर्म क्षीणपातिकर्मा अत एव जानाति सामान्यरूपेण सतः पश्यति=

यस्योपाधिसौख्ये, अथवा कर्मणः चरूप आत्मसौख्ये विचारपूर्वक अवश्य २  
विरक्त मन । संसारमें मिथ्यात्व अचिरति आवि ये सब कर्मों के आत्म  
के कारण फलसाये गये हैं । इनके द्वारा ही जीव नवीन २ कर्मोंका  
आत्म और पंच किया करता है । इन आत्मों के कारणोंको रोकनेके  
लिये सबसे मुख्य कर्तव्य है कि बीतरागप्रणीत आगमका ज्ञाना मन ।  
इस प्रकारके ज्ञातृत्वभावसे जीव यह भतीभाति समझ सकता है कि  
इस संसारमें रहानेका अथवा दाम्बादिक विषयकपापोंमें फंसानेका प्रधान  
कारण मिथ्यात्व और अचिरति परिणाम हैं । इस प्रकार जब वह इन  
आत्मोंका प्रतिरोध करनेका दृढसंकल्पी हो जाता है तब वह नियमसे  
इस आत्मोंकी निरोधिका जिनकीक्षाको अंगीकार कर अपने मार्गको  
प्रशस्त बनाता हुआ आगे २ के गुणस्थानों पर बढ़ कर उदारचरित  
महत्त्वा पुरुषोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगता है । एक समय ऐसा  
भी आता है कि वह परिणामोंकी अत्यन्त निर्मलताके प्रभावसे घातिपा  
कर्मोंका विनाशक मन अनन्त दर्शन और अमन्त ज्ञानका धारक केवलि-

कर्मणः चरूपी आत्मोपाधौ चित्वात्पूर्वक अवश्य अवश्य विरक्त मन । संसारमा मिथ्यात्व  
अचिरति आवि ये सबकां कर्मोना आत्मनया कश्चि जतावेव छ जेना द्वारा क  
एव नवीन नवीन कर्मोना आत्मव जने जव कर्मा करे छ आ आत्मोना  
कारणोने शक्या नादे पडेहुं जे कर्तव्य छे के वीतरागप्रणीत आगमनो जव  
कर जने आ प्रकारना ज्ञानना आवधी एव सारी पैठे जे समल शके छे  
के आ संसारमा करभाववातु जने शब्दादिक विषय कर्माभा इत्याववातु प्रकन  
कारण मिथ्यात्व जने अचिरति परिणाम छे आ प्रकारे ज्यारे जे जया  
आत्मजोना प्रतिरोध करवाने दृढसंकल्पी जने छे तयारे ते निश्चयी जे  
आत्मजोना निरोधक अनदीक्षानो अजीकार करी पावने मात्र शक्यो जनावी  
आत्मन ने आत्मन नभवा सुखस्थानो पर रही उदारचरित महात्मा पुरुषोनी  
श्रेणीमा परिगणित जने छे जेके समग्र जेवो पञ्च आवे छे के परिणामोनी  
अत्यन्त निर्मलतया प्रधानी ते पाटीया कर्मोना विनाशक जनी अनन्त ज्ञान



વિશેષરૂપેણાવબુધ્યતે, સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વકમેવ વિશેષજ્ઞાનં જાયતે, ન હિ સામાન્યરૂપેણા-  
જ્ઞાતો ઘટો નીલાદિઘટસ્વરૂપં યુક્તિસહસ્રેણાપિ યોધ્યતિ શક્નોતિ । एतेन चोप-  
योगक्रमो दर्शितः । स एषोऽकर्मा किं विदध्यादित्याह-‘प्रत्युपेक्ष्ये’त्यादि-स  
विदितपरमार्थः सम्यग् विचार्य नावकाङ्क्षति=वीतरागत्वान्न किमपीच्छति ।

પરમાત્માકે પદસે વિભૂષિત હો જાતા હૈ । સૂત્રસ્થ-“ જાનાતિ પદ્યતિ ”  
યે દો ક્રિયાપદ ઇસ વાતકી સૂચનાપરક હૈં કિ પરમાત્મા પહિલે, પદાર્થોંકા  
સામાન્યરૂપસે અવલોકન કરતે હૈં પશ્ચાત્ ઉન્હોં પદાર્થોં કો વિશેષરૂપસે  
જાનતે હૈં । યહ માની હુઈ વાત હૈ કિ સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક હી વિશેષ જ્ઞાન  
હુઆ કરતા હૈ । એસા નહીં હૈ કિ સામાન્ય જ્ઞાનકે અભાવમેં વિશેષ જ્ઞાન  
હો જાય । જવ તક પદાર્થોંકા સામાન્ય જ્ઞાન નહીં હોગા તવ તક વિશેષ  
જ્ઞાન નહીં હો સકતા, ઘટ જવ તક સામાન્ય રૂપસે અજ્ઞાત વના રહેગા  
તવ તક ઉસકા નીલાદિ ઘટ ઇસ પ્રકારકે વિશેષરૂપ સે જ્ઞાન હો નહીં  
સકતા । એસી કોઈં મી યુક્તિ નહીં હૈં જો સામાન્યરૂપસે અજ્ઞાત પદાર્થકા  
વિશેષરૂપસે મી જ્ઞાન હો જાનેકી સાધિકા હો । ઇસ કથનસે પરમાત્માકે  
મી દર્શનઉપયોગ ઓર જ્ઞાનઉપયોગ યે દોનોં ક્રમિક હૈં યહ વાત પ્રદ-  
ર્શિત હોતી હૈ । પરમાત્મા વિદિતપરમાર્થ હોને સે તથા કૃતકૃત્ય હોનેસે  
નિસ્પૃહ પ્રવૃત્તિશાલી રહતે હૈં । ઉનેકે કિસી મી વસ્તુકી ચાહના નહીં હોતી ।  
ચાહના-ઈચ્છા યહ મોહકા એક ભેદ હૈ, મોહકે સર્વથા અભાવ હો જાનેસે

અને અનન્ત દર્શનના ધારક કેવલી પરમાત્માના પન્થી વિભૂષિત બની બ્ય છે  
સૂત્રસ્થ “ જાનાતિ પદ્યતિ ” આ બે ક્રિયાપદ આ વાતની સૂચના કરે છે  
કે પરમાત્મા પ્રથમ પદાર્થોને સામાન્ય રૂપથી અવલોકન કરે છે પછી તે પદાર્થોને  
વિશેષ રૂપથી બહુ છે આ માનેલી વાત છે કે સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક જ  
વિશેષજ્ઞાન થતુ રહે છે એમ નથી કે સામાન્ય જ્ઞાનના અભાવમા વિશેષ જ્ઞાન  
પ્રાપ્ત થાય બ્યા સુધી પદાર્થોંતુ સામાન્ય જ્ઞાન થશે નહીં ત્યા સુધી વિશેષ  
જ્ઞાન થઈ શકવાતુ નથી ઘટ બ્યા સુધી સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત બની રહેશે  
ત્યા સુધી નીલ આદિ ઘટ આ પ્રકારતુ વિશેષ રૂપતુ જ્ઞાન થઈ શકતુ નથી  
એવી કોઈં પણ યુક્તિ નથી જે સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત પદાર્થોના વિશેષરૂપથી  
પણ જ્ઞાન થઈ જવામા સાધક બને આ કથનથી પરમાત્માના દર્શનનો ઉપયોગ  
અને જ્ઞાનનો ઉપયોગ આ બન્ને ક્રમિક છે આ વાત પ્રદર્શિત થાય છે પરમાત્મા  
વિદિતપરમાર્થ થવાથી તથા કૃતકૃત્ય થવાથી નિસ્પૃહ-પ્રવૃત્તિશાળી રહે છે એને  
કોઈં પણ વસ્તુની આહના થતી નથી, આહના-ઈચ્છા એ મોહનો એક ભેદ છે.

अपि च स एव 'न्यास्यात्तरतः' किं=विषिषमकारेण प्रधानपुरुषार्थत्वेनारम्भ  
 मन्त्रार्थतदुभयस्येन तप संयमाचरणेन च भास्यातः=कथिता म्यास्यातो मोक्षस्तप्र  
 रतः=उदधिगम्यतत्पर, भास्यन्तिरैकान्तिकाभ्यावाधिरसुखधायिकज्ञानदर्शनादि  
 युक्त इत्यर्थ, इह मनुष्यलाके स्थित सन् मन्तूनाम् आगतिं चतुर्विधां गतिं पञ्च-  
 विधा तत्त्वायोग्यकम् वा परिज्ञाय-द्विविधपरिग्रया ज्ञात्वा परिहृत्य च 'जातिमरणस्य'  
 इच्छाका भी बहूँ पर अभाव हो जाता है। अत नीतराग होने से वे  
 इच्छासे सर्वथा परे ही रहा करते हैं। ये न्यास्यात्तरत होते हैं। न्यास्यात्  
 शब्दका अर्थ मोक्ष है। क्यों कि यही प्रधान पुरुषार्थरूपसे कहा गया है।  
 उसी मोक्ष पुरुषार्थको प्रतिपादन करने एव उसकी प्राप्तिके निमित्त ही  
 प्रसूने सूत्र, अर्थ और मन्त्रार्थ इस रूपसे आगमकी प्ररूपणा की है, तथा  
 इसीके निमित्त तप और संयमके आचरण करनेका उपदेश है। उसमें  
 ये रम रहते हैं।

भाषार्थ—कर्मोंके सर्वथा अभावसे होनेवाली, परमशुद्ध दशाका  
 नाम ही मुक्ति है और यह अवस्था पापारहितसुखविशिष्ट है, क्षायिक  
 ज्ञान और क्षायिक दर्शनका सदा इसमें प्रकाश रहता है, ऐसी मुक्त  
 अवस्थासे परमात्मा मुक्त होते हैं। परमात्मदशा ही मुक्तिदशा है, उनसे  
 भिन्न वह अवस्था नहीं है ये परमात्मा जीबन्मुक्त अवस्थामें संसारमें  
 रहते हुए भी समस्त ससारी जीवोंकी चतुर्विध आगति और पांच प्रकारकी  
 गति अथवा उसके उपार्जन योग्य कर्मोंको विविध परिज्ञासे जानकर और

शुद्धने सर्वथा अभाव भवाधी उन्मजने पञ्च त्वां अभाव यर्ध अथ छ आधी  
 वीतस्रज होवाधी ते उन्मजनी सर्वथा दूरव रहता करे छ जे न्यास्यात्तरत (मोक्षभामी)  
 जाने छ न्यास्यात् शब्दने अथ मोक्ष छ हेम के जे प्रधान-पुरुषार्थ-इपधी  
 बडेवायेल छ जे मोक्ष पुरुषार्थने प्रतिपादन करवा अने तेनी प्राप्ति निमित्त  
 प्रसूने सूत्र, अर्थ अने सत्राथ जे इपधी आगमनी प्ररूपणा करेल छ अने आने  
 निमित्त तप अने संयमत्त आचरण करवाने उपदेश छ आभां जे रत रहे छ

भाषार्थ—दर्शना सत्राथ अभावधी भवावाणी परमशुद्ध दशात्तु नाम  
 मुक्ति छ, अने ना अवस्था पापारहित-सुख-विशिष्ट छ, क्षायिक ज्ञान अने  
 क्षायिक दर्शनने सदा आभां प्रकाश रहे छ परमात्मा आधी मुक्त अवस्थाधी मुक्त  
 जाने छ परमात्मदशा व मुक्तदशा छ जेनाधी क्षित जे अवस्था नहीं, अ  
 परमात्मा एव मुक्त अवस्थाभा संसारभां रहेवा छतां पञ्च समस्त ससारी  
 जीवानी चतुर्विध आगति अने पांच प्रकारनी गति अवस्था जेना उपार्जनयोग्य

જાતિશ્વ=જન્મ ચ મરણ ચ-જાતિમરણ તસ્ય, વર્તમાર્ગે ગત્યાગતિરૂપપરિભ્રમણમાર્ગે  
વિકલ્પિતસંસારેષ્ટવિયોગાનિષ્ટસયોગ-દારિદ્ર્ય - દૌર્ભાગ્ય-શારીર-માનસાઘનેક-  
દુઃખાત્મક સસારસ્રોતસ્તન્નિદાન કર્મ વા અત્યેતિ=અતિક્રામતિ ઉલ્લઙ્ઘયતીત્યર્થઃ,  
બાહ્યમનસયોરવિષયો લોકાગ્રે શાશ્વતઃ સિદ્ધો મવતીતિ ભાષઃ ॥ ૪૦ ૫ ॥

તસ્ય સ્વરૂપં દર્શયતિ-‘ સઁવે ’ ઇત્યાદિ—

અને છોડકર ઇસ સંસારસ્રોતસે કિ જો જન્મ ઓર મરણકા સ્થાન હૈ, તથા  
જિસમેં ઇષ્ટવિયોગ ઓર અનિષ્ટ યોગ બના રહતા હૈ, દરિદ્રતાકા જહાં  
નિવાસ રહતા હૈ, દુર્ભાગ્ય પાપ જહાં પર અપના પ્રભાવ જમાણ હુણ પડ્ડા  
હૈ, શારીરિક ણ્ય માનસિક આદિ દુઃખોંકી પરમ્પરા ઇસ જીવનકો જહાં  
પીસતી રહતી હૈ, ઇન સર્વ સે પરે હો જાતે હૈં। જવ તક અઘાતિયા  
કર્મોંકા ઉદય ડનકે રહતા હૈ તવ તક યદ્યપિ વે સસારમેં રહતે  
હૈં; પરન્તુ ફિર ખી વે ડસ સંસારકી પરપરાવર્ધક કર્મોંકે ડપાર્જન  
સે રહિત હી રહતે હૈં। ઘાતિયા કર્મોંકે સર્વથા પ્રક્ષય હો જાને સે વે ફિર  
સે સંસારકી પ્રાપ્તિ કરાને વાલે કર્મોંકે ચક્કરમેં નહીં પડ્ડતે હૈં। અઘા-  
તિયા કર્મોંકે વિનષ્ટ હોતે હી મુક્તિસ્થાનમેં જા વિરાજતે હૈં। યહ સ્થાન  
લોકકે અગ્રભાગમેં સ્થિત હૈ ડસસે આગે ધર્માસ્કિાય કા અભાવ હોને સે  
વે વહીંપર ઠહર જાતે હૈં। ઇસી અવસ્થાકા નામ સિદ્ધ દશા હૈ। યહ સંસારી  
જીવોંકે વચનકે અગોચર ઓર મનસે ખી વિચારમેં નહીં આ  
સકે ઇસી હૈ ॥ સૂ.૦૫ ॥

ઇસી અવસ્થાકે સ્વરૂપકો સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ સઁવે સરા ” ઇત્યાદિ।

કર્મોંને વિવિધ પરિણાથી બંધી અને એને પ્રત્યાખ્યાન પરિણાથી છેડી આ સસાર-  
સ્રોતથી કે બે જન્મ અને મરણતુ સ્થાન છે, અને એમા ઇષ્ટવિયોગ અને અનિષ્ટ  
સયોગ થતો રહે છે, દરિદ્રતાનો બધા નિવાસ રહે છે, દુર્ભાગ્ય પાપ બધા પોતાનો  
પ્રભાવ જમાવી બેઠા છે, શારીરિક અને માનસિક આદિ દુઃખોંની પર પરા બધા આ  
છવનને પીસતી રહે છે, આ સર્વથી ડૂર થઈ બધ છે બધા મુધી અઘાતિયા કર્મોંનો  
ઉદય એને રહે છે ત્યા મુધી ક્રમ્પાય તે સસારમા રહે છતા પશુ તે સસારના પર-  
પરાવર્ધક કર્મોંના ઉપાર્જનથી રહિત જ રહે છે ઘાતિયા કર્મોંના સર્વથા ક્ષય થઈ  
જવાથી એ ડૂર સસારની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળા કર્મોંના અક્ષરમા પડતા નથી  
અઘાતિયા કર્મોંના વિનષ્ટ થવાથી મુક્તિ સ્થાનમા જઈ વિરાજમાન બને છે આ  
સ્થાન લોકના અગ્ર ભાગમા સ્થિત છે એથી આગળ ધર્માસ્તિકાઇનો અભાવ હોવાથી  
તે ત્યા રોકાઈ બધ છે આ અવસ્થાતુ નામ સિદ્ધદશા છે આ સસારી છવેના  
વચનથી અગોચર અને મનથી પશુ વિચારમા ન આવી શકે એવી છે (સૂ. ૫)  
આ અવસ્થાના સ્વરૂપને સૂત્રકાર કહે છે—“ સઁવે સરા ” ઇત્યાદિ।

मूष्म—सर्वे सरा नियहति, तर्का तस्थ न विज्जइ, मई तस्थ न गाहिवा, ओए अप्पइहाणस्स खेयन्ने । से न दीहे, न इस्स, न वहे, न तंसे, न चउरसे, न पडिमडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिप, न हालिहे, न सुक्किहे, न सुरभिगधे, न दुरभिगधे, न सित्ते, न कहुप, न कसाप, न अघिले, न कक्खहे, न मउप, न गरुप, न लहुप, न सीप, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रुहे, न सगे, न इस्थी, न पुरिसे, न अल्लहा, परिन्ने, सन्ने, उवमा न विज्जप, अरूथी सत्ता । अपयस्स पय नरिथि ॥ सू० ६॥

छाया—सर्वे स्वरा नियतन्ते, तर्को यत्र न विद्यते, मतिस्तत्र न ग्राहिका भोज्य अप्रतिष्ठानस्य खेदइ ॥ स न दीर्घो, न इस्पो, न वृधो, न श्यस्रो, न चतुरस्रो, न परिमन्वत्ता, न कृष्णो, न नीम्मा, न लोहिता, न शखिरो, न शुक्लो, न सुरभिगन्धा, न दुरभिगन्धो, न तिक्तो, न कडुका, न कपायो, नाम्भो, न मधुरो, न कर्कशा, न सुदुः, न गुदुः, न सधुः, न शीतो, नोष्णो न स्निग्धो, न क्त्वा, न कापोठा, न लो, न सङ्गो, न स्त्री, न पुष्पा, नान्यथा, परित्रा, संज्ञा, उपमा न विद्यते, अरूपिणी सत्ता । अपइस्य पदे नास्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘सर्व’ इत्यादि—यत्र सिद्धावस्थायां सर्वे=निरवस्थायाः स्वराः=ध्वनयो निवर्तन्ते=मतिपाद्य प्रतिपाद्यकसम्बन्धा न घटन्ते, अन्दादिष्वियामिधय सति बाध्य-बाधकमाद्यसम्बन्धविषयस्यावश्यम्भवात् । न च तस्यामवस्थायां अन्दाद्य प्रवृत्ति-निमित्ततामुपलभन्त इत्याद्ययः । न तत्र सर्वस्यावसरोऽपीत्याह—‘सर्व’ इत्यादि—

सिद्धदशाका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि इस सिद्ध दशामें समस्त स्वर-ध्वनियों प्रतिपाद्य प्रतिपाद्यकरूप संयंघसे पर रहती हैं । अर्थात्—इस सिद्ध अवस्थाका पूर्ण-स्वरूप-वर्णन किसी भी शब्दद्वारा नहीं हो सकता है । जो पदार्थ शब्दादिक का विषयभूत हुआ करता है वही पर बाध्यबाधकमाद्य संयंघकी घटना घटित होती है, सिद्धदशा जो शब्दके अगोचर है उसमें फिर बाध्यबाधकमाद्य संयंघ घटित भी

सिद्धदशामुं पद्ये न इत्या सूत्रकार कहे छे के अ सिद्धदशामें समस्त स्वरो-ध्वनीयो प्रतिपाद्य प्रतिपाद्यकरूप संयंघकी पर रहे छे अर्थात् अ सिद्ध अवस्थाना पूर्ण रूपरूपानु वर्णन के लिये पद्य शब्दको असा संघ शक्तुं नहीं. के पद्यस्य शब्दादिकाना विषयभूत पद्य कहे छे त्यां बाध्यबाधक-माद्य-संयंघकी घटना घटित होय छे सिद्धदशा के शब्दकी अगोचर छे अर्थात् पद्यी बाध्यबाधकमाद्यसंयंघ घटित पद्य के न अर्थ शब्द पर अर्थमें घट शब्दकी प्रवृत्तिनिमित्त घटनरूप क्रिया छे अर्थात् घट

अपि च तर्कः=ऊहापोहः पदार्थविशेषाध्यवसाय इत्यर्थः 'एव चेद् एव भवेद्' इत्याकारकः कल्पनाविशेषो न विद्यते, शब्दादिविषयस्यावसर एव तर्कस्यावसरो भवति तदभावे कुतस्तर्कसम्भवः, एव चेद् एवं स्यादित्युभयत्रापि शब्दविषयस्यै-  
 कैसे ही सकता है। घट अर्थमें घट शब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त घटनरूप क्रिया है, अतः घट शब्द घट अर्थका प्रतिपादक होनेसे उनमें परस्पर वाच्यवाचकसंबंध सुघटित हो जाता है। इस प्रकार इस दशमें प्रवृत्ति के निमित्तभूत शब्दादिक उपलब्ध नहीं होते; कारण कि जो भी शब्द वहां पर प्रवृत्त होंगे वे उससे संपूर्ण धर्मका-स्वरूपका युगपत् प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। ध्वनियां क्रमिक होती हैं, और क्रम २ से ही वस्तु के स्वरूपका प्रतिपादन करती हैं। जिस स्वरूपका प्रतिपादन उनके द्वारा होता है वही स्वरूप उसका नहीं है, वह तो उसका प्रतिपाद्य विषय एकदेश पड़ता है, उतने स्वरूपमात्र तो वह वस्तु है नहीं, अतः अनंत-धर्मात्मक होनेसे उसका एकधर्ममुखेन सम्पूर्ण रूपसे कथन शब्दादि द्वारा हो नहीं सकता। प्रमाणसे हो जावेगा? तो इस प्रकारकी आशङ्का उत्तर यही है कि प्रमाण स्वानुभवगम्य है, वह वचनसे नहीं कहा जा सकता है, जो वचनसे कहा जाता है वह नयका विषय पड़ता है। इस अपेक्षासे यहां पर सिद्धदशाको अवाच्य कहा है। वैसे तो सिद्ध अवस्थाके स्वरूपका वर्णन शास्त्रकारोंने जितना भी हो सका है किया ही है; परन्तु यहां पर जो उसे अवक्तव्य कहा है उसका भाव सिर्फ

शब्द घट अर्थना प्रतिपादक होवाधी जेनाभा परस्पर वाच्यवाचक सभ ध सुघटित जने छे आ प्रकारे आ दशमा प्रवृत्तिना निमित्तभूत शब्दादिके उप-लब्ध नहीं जनता कारण के जे पञ्च शब्द त्या प्रवृत्त होय ते जेना संपूर्ण धर्मना स्वरूपनु युगपत् (जेकीसाधे) प्रतिपादन करी शकता नहीं ध्वनीयो कम वार थाय छे जेने कम कमथी वस्तुना स्वरूपनु प्रतिपादन करे छे जे स्वरूपनु प्रतिपादन जेना द्वारा थाय छे जे न आ स्वरूप जेतु नहीं होतु, जे तो जेना प्रतिपाद्य विषय जेकदेश पडे छे तावत्स्वरूप मात्र तो जे वस्तु नहीं, आधी अनंत धर्मात्मक होवाधी जेतु संपूर्ण रूपथी कथन जेक धर्मवडे शब्दादिद्वारा थय शकतु नहीं प्रमाणथी थय जेथे?—आ प्रकारनी आशङ्काना उत्तर आ छे जे प्रमाणनु कथन स्वानुभवगम्य छे, जे वचनथी कहेवाधी शकतु नहीं जे वचनथी कहु जाय छे ते नय रूप जने छे आ अपेक्षाथी अर्द्ध सिद्धदशाने अवाच्य कहेल छे जेभ तो सिद्ध अवस्थाना स्वरूपनु वर्णन शास्त्रकारोथी जेटलु पञ्च जन्तु छे, ते करेल छे परतु अर्द्धी तेने अव्यक्त

इतना ही है कि पदार्थका वास्तविक समस्त स्वरूप शब्दोंद्वारा प्रतिपा-  
 वित हो ही नहीं सकता! जितना स्वरूप केषलियोंने अपने केषलज्ञानसे  
 पदार्थका जाना है उससे अनन्तबेँ भागकी उन्होंने अपनी ध्वनि  
 द्वारा परीपदाके बीचमें प्रस्पणना की है जितन अंशकी प्रस्पणना की है  
 उससे अनन्तबेँ भागकी धारणा गणधरोके ज्ञानमें हुई है। जितनी धा-  
 रणा हुई है उससे भी अनन्तबेँ भागकी उन्होंने रचना की है। इस  
 अपेक्षासे भी सिद्ध अवस्थाके समस्त स्वरूपका वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं  
 हो सकता! इसीलिये उस सिद्ध दशामें तर्कको भी स्थान नहीं है।  
 तर्क शब्दका अर्थ ऊहापोह है। ऊहापोह उसीमें होता है जो शब्दका  
 विषय होता है। शब्दके अविषयमूलमें तर्क नहीं होता। इसी स्याल से  
 टीकाकारका यह कथन कि “ पदार्थविशेषाध्यवसायः ” पदार्थविशेषका  
 अध्यवसाय स्वरूप तर्क वहाँ नहीं होता सर्वथा मत्स्य है। यदि यह विषय  
 ऐसा है तो पसा होगा ” इस प्रकारका कल्पनाविशेष यहीं पर होता है  
 जो शब्दका विषयमूल होता है। यह “ एवं चेत् एवं भवेत् ” कल्पना-  
 विशेष स्वयं शब्दमय है, और यही तर्कका आकार है, अतः इस प्रकार  
 के तर्ककी प्रवृत्ति उस अवस्थामें नहीं होती कारण कि “ एवं चेत् एवं  
 स्यात् ” इन दोनों जगहों में शब्दविषय-पदार्थका ही अवलम्बन होता

इति च जेने भाव इति जेटवैर उके पदार्थना वास्तविक समस्त स्वरूप  
 शब्दोंद्वारा प्रतिपादित यद्यपि न शक्ये तेषलियोंने पदाना केषलज्ञानभी  
 पदार्थनु के स्वरूप लक्षणे च जेना अनन्तभा भागनी जेमले पदाना विषयध्वनि  
 द्वारा तथा वच्ये प्रस्पणना करी छे जेटवैर अशानी प्रस्पणना करी छे जेनाभी अनन्तभा  
 भागनी धारणा जणधरोना ज्ञानभा यद्यपि छे जेटवैर धारणा यद्यपि छे जेभी अनन्तभा  
 भागनी जेमले रचना करी छे आ अपेक्षाभी पञ्ज सिद्ध अवस्थानु समस्त  
 स्वरूप वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं शक्ये आ शब्दों के सिद्धदशामें तर्कने  
 स्थान नहीं तर्क शब्दने अर्थ ऊहापोह याम छे ऊहापोह जेमां दोष छे  
 के शब्दना विषय दास छे शब्दना अविषय मूलभा तर्क नहीं होतो आ शब्दोंके  
 टीकाकारनु जे कथन छे के पदार्थविशेषोऽध्यवसायाः पदार्थविशेषना अध्य-  
 वसाय स्वरूप तर्क तथा कतो नहीं जे सर्वथा मत्स्य छे आ विषय जेवो छे तो  
 जेम लये, आ प्रकारने कल्पनाविशेष जे कल्पने याम छे के शब्दने विषय  
 मूल होय छे आ “ एवं चेत् एवं भवेत् ” कल्पनाविशेष स्वयं शब्दमय छे  
 जने जे व तर्कने आकार छे आभी आ प्रकारना तर्कनी प्रवृत्ति जे अनवस्थामें  
 नहीं भवती शब्दों के— एवं चेत् एवं स्यात् आ जने वच्योने शब्दविषय-

વાવલમ્બનાત્, મૂલે 'તકા' ડત્યત્ર પ્રાકૃતત્વાત્ સ્ત્રીત્વમ્ । તર્કાભાવે હેતુમાહ  
 -'મતિ' રિત્યાદિ-તત્ર સિદ્ધાવસ્થાયા 'મતિઃ' મનનં મતિઃ=મનોવ્યાપારઃ  
 પદાર્થચિન્તનરૂપા, સા ચૌત્પત્તિક્યાદિભેદાચ્ચતુર્વિધા; ન ગ્રાહિકા=નાનુભાવયિત્રી,

હૈ । ઇસી વિષયકો વિશેષ રીતિસે સ્પષ્ટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર-“મતિ-  
 સ્તત્ર ન ગ્રાહિકા” કહતે હૈં । મતિઃ-મનનં મતિ-વિચાર કરનેકા નામ  
 મતિ હૈ । યદ્ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર ક્રિ જિસમૈં પદાર્થોકે ચિન્તનનેકે  
 પ્રતિ માનસિક ધારા દૌડતી રહતી હૈ તથા જિસકે ઔત્પત્તિકી આદિ  
 ૪ ચાર ભેદ હૈં, ઊસ સિદ્ધ દશાકા અનુભવ કરનેવાલા નહીં હો સકતા ।  
 ક્યોં કિ ઊસ દશામૈં સંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રકે લિયે અવસર  
 હી નહીં હૈ । જો કર્મોસે યુક્ત-લિપ્ત હૈં, ઈસી આત્માઓંકો મુક્તિકાલામ  
 નહીં હોતા-ઇસ વાતકો વતાનેકે નિમિત્ત સૂત્રકાર “ઓજ અપ્રતિષ્ઠા-  
 નસ્ય યેદક્ષઃ” કહતે હૈ । જો સકલ કર્મોંકે મલસે રહિત હો ચુકે હૈં  
 વે હી આત્મા મોક્ષસુખકા અનુભવ કરનેવાલે હોતે હૈં, અર્થાત્ કર્મ-  
 મલીમસ આત્મા, ઊસ મુખસે સદા વંચિત હી રહા કરતે હૈં । અપ્રતિ-  
 ષ્ઠાન શબ્દકા અર્થ મોક્ષ હૈ । ક્યોં કિ ઔદારિક આદિ શરીરોંકા અથવા  
 કર્મોંકા સદ્ભાવ ઇસ અવસ્થામૈં નહીં રહતા હૈ । ઇસ મોક્ષકા કિ જો  
 અવ્યાબાધસુખસ્વરૂપ હૈ કર્મોંસે મલિન આત્મા અનુભવ મી

પદાર્થનુ જ અવલમ્બન થાય છે આ વિષયને વિશેષ રીતથી સ્પષ્ટ કરવા માટે  
 સૂત્રકાર-“મતિસ્તત્ર ન ગ્રાહિકા” કહે છે મતિઃ-મનન મતિઃ-વિચાર કરવાનું  
 નામ મતિ છે-આ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર કે જેમા પદાર્થોના ચિન્તન  
 તરફ માનસિક ધારા દોડતી રહે છે તથા જેના ઔત્પત્તિકી આદિ ચાર  
 ભેદ છે એ નિદ્ધદશાનો અનુભવ કરવાવાળી બની શકતી નથી, કેમ કે તેવી  
 દશામા સંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રનો પણ અવસર નથી જે કર્મોથી યુક્ત  
 છે તેવા આત્માઓને મુક્તિનો લાભ થતો નથી-આ વાત બતાવવા નિમિત્ત  
 સૂત્રકાર “ઓજ” ઈત્યાદિ કહે છે જે સકલ કર્મના મળથી રહિત બનેલ  
 છે એવા આત્માઓ મોક્ષ સુખનો અનુભવ કરનાર હોય છે અર્થાત્-કર્મના  
 મળથી બધાએલ આત્માઓ એ સુખથી સદા વંચિત જ રહ્યા કરે છે અપ્રતિ-  
 ષ્ઠાન શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે કેમ કે ઔદારિક આદિ શરીરોના અને કર્મોનો  
 સદ્ભાવ એ અવસ્થામા રહેતો નથી આ મોક્ષ કે જે અવ્યાબાધ-સુખ-સ્વરૂપ  
 છે તેનો અનુભવ કર્મોથી મલિન આત્માઓ કઈ રીતે કરી શકે, અવ્યાબાધ-

तत्र संकल्प - विकल्प - कल्पनामात्रस्यानवसरात् । कर्मसमन्वितस्य मोक्षगमनं न भवतीति दर्शयति—'ओज' इति । ओजः=ओजोरूपः सकलकर्मसंहरितत्वेन ज्योतिःस्वरूपः, अपि च अपतिष्ठानस्य न विद्यते प्रतिष्ठानमौदारि कादिशरीरस्य कर्मणां वा अवस्थितिर्यत्र साऽप्रतिष्ठानो योसस्त्वस्य मोक्षसुख स्येत्यर्थः, खेदः=अनुमायुका, एतन्मिमसज्ज्ञानसम्प्रायात् । अत्र खेदसन्वेनाऽनुम- यरूपाऽर्था युज्यते । किञ्च तदा स दीर्घो=लम्बा न, इस्वो=धामना न, वृधः=वर्तु साकारो न, अस्त्रः=त्रिकोणो न, चतुस्रः=चतुष्कोणो न, परिमण्डलः=संस्थानविशेष- पदान् न, उपलक्षणान् सकलसंस्थानवर्णितः ; एतच्च परिमाणमपलम्ब्य प्रोक्तम्, अथ वर्णमाभित्य कथयति—'न कृष्ण' इत्यादि—कृष्णो न, नीलो न, सोहितः=रक्तो न, शरिद्रः=पीतो न, शुक्लः=श्वतो न; गन्धमाभित्योच्यते 'न घुरमी' त्यादि- कैसे कर सकते हैं । अव्यापार सुखरूप मोक्षका अनुभव विना निर्मल ज्ञानके नहीं हो सकता । संसारी आत्माओं—मलिन जीवोंके इस निर्मल बोधकी प्रकटता है ही नहीं । इसकी प्रकटता तो वन्हींके होती है जो कर्म- मल-कलंकसे निर्मुक्त हो चुके हैं । खेद-शब्द घटक खेदका अर्थ यहाँपर प्रकरणसे अनुभव रूप ग्रहण किया गया है । उस मुक्ति अवस्थामें रहने वाला आत्मा न दीर्घ-विस्तृत होता है, न लम्बा होता है, न इस्व- छोटा होना है, न गोल होता है, न त्रिकोण होता है—न चतुष्कोण होता है न परिमण्डल-गोल आकारवाला होता है, उपलक्षणसे और भी जितने आकार होते हैं उन आकारवाला भी नहीं होता है । यह आकार विषयके अभावका कथन परिमाणको छे कर किया है । अथ वर्णको छेकर कथन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—कि मुक्तिमें रहा हुआ आत्मा न काळा होता है, न नीला होता है, न छाल होता है, न

सुखरूप मोक्षको अनुभव निमज्ज गान विना भवते नही, संसारी आत्माओं- मलिन ज्योते आ निर्मल ज्योतनी प्रकटता छे न नकि, आनी प्रकटता तो जेने न भवत छे ते कर्ममज्जकल कर्षी निर्मुक्त भया छे जेइत शब्दमां स्थित जेइ शब्दको अर्थ अदि प्रकरवृथी अनुभववृत्त अरुपु करैव छे जेवी मुक्ति अवस्थामां रहेवावाज्ज अस्मा न दीर्घ-विस्तृत होव छे न लम्बा होव छे न नाना होव छे, न ओज होव छे न त्रिकोण होव छे न चतुष्कोण होव छे न परिमण्डल जेटके जोगाहास्वात्रा होव छे उपलक्षणवृथी नेटवा पणु नील आकार होव छे ते आहास्वाज्ज पणु नही आ आहास्-विषयना अभावतु कथन परियुभने लक्ष कहेल छे इने पणु आभये सूत्रकार कहे छे के मुक्तिमां रहेल आ भा न कथ्य होय छे न लीला होव छे न छाल होव छे न पीला होव छे जने न ता अदि होव छे त्यां विमुद अस्मा



સુરભિગન્ધઃ=મુગન્ધવાન્ ન, દુરભિગન્ધઃ=દુર્ગન્ધવાન્ ન; રસમાશ્રિત્ય કથ્યતે ' ન તિક્ત ' ઇત્યાદિ-તિક્તઃ=મરીચાદિવત્ ન, કટુકો નિમ્બાદિવદ્ ન, કપાયઃ-હરીત-  
 ક્યાદિવદ્ ન, આમ્લઃ=અમ્લિકાવદ્ ન, મધુરો ન; સ્પર્શી નિષેધયતિ-ન કર્કશ ' ઇત્યાદિ-કર્કશઃ=કઠિનો ન, મૃદુઃ=કોમલો ન, લઘુર્ન. ગુરુર્ન, શીતો ન, ઉષ્ણો ન, સ્નિગ્ધઃ=ચિક્કળો ન, રુક્ષઃ=રસરહિતોઽપિ ન, કાપોતઃ=કાપોતલેશ્યાયુક્તો ન, મધ્યગ્રહણાદાઘન્તગ્રહણમ્, તેન સકલલેશ્યારહિત ઇત્યર્થ, યદ્વા-કાયઃ=કાયવાન્ ન, ન પીલા હોતા હૈ, ઓર ન સપેદ હી હોતા હૈ । વહાં પર વિશુદ્ધ આત્મા ન અચ્છી ગધવાલા હોતા હૈ, ન દુર્ગંધવાલા હોતા હૈ, ન મિર્ચ આદિકી તરહ તિક્ત રસવાલા હોતા હૈ, નિમ્બ-નીમ આદિકી તરહ ન કટુક રસ વાલા હોતા હૈ, હરડ આદિકી તરહ ન કપાય રસવાલા હોતા હૈ, ઇમલી આદિકી તરહ ન આમ્લ રસવાલા હોતા હૈ ઓર ન શકરકી તરહ મીઠે રસવાલા હી હોતા હૈ, । ઇસી તરહ વહાં ન કઠોર સ્પર્શ હોતા હૈ, ન કોમલ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન લઘુ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ભારી સ્પર્શ હોતા હૈ, ન શીત સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ચિકના સ્પર્શ હોતા હૈ ઓર ન રુક્ષ સ્પર્શ હોતા હૈ । કાપોતલેશ્યા ઓ વહાં નહીં હોતી હૈ । લેશ્યાઓંમેં કાપોતલેશ્યા યહ મધ્યમેં આઈ હૈ, ઇસ કે ગ્રહણ સે આદિ ઓર અન્તકી લેશ્યાઓંકા ઓ ગ્રહણ હો જાતા હૈ । ઇસલિયે યહ સમજના ચાહિયે કિ વહાંપર છઓં લેશ્યાઓંકા સદ્ભાવ નહીં હૈ । વહાં ઓદારિક આદિ પાંચ શરીરોંમેં સે કિસી ઓ શરીરકા સદ્ભાવ ન

ન સારી સુગંધવાળા હોય છે, ન દુર્ગંધવાળા હોય છે, મરચા ઇત્યાદિની માફક ન તીખા રસવાળા હોય છે, લીમડા વિ ની માફક ન કડવા રસવાળા હોય છે, હરડે ઇત્યાદિની માફક ન કપાયરસવાળા હોય છે, આમલી ઇત્યાદિની માફક ન ખાટા રસવાળા હોય છે અને સાકરની માફક ન તો મીઠા રસવાળા હોય છે આજ રીતે ત્યા ન કઠોર સ્પર્શ હોય છે, ન કોમળ સ્પર્શ હોય છે, ન લઘુ સ્પર્શ હોય છે, ન ભારી સ્પર્શ હોય છે, ન શીતળ સ્પર્શ હોય છે, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય છે, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોય છે, ન ચીકણા સ્પર્શ હોય છે, અને ન તો લુપ્તો સ્પર્શ હોય છે કાપોતલેશ્યા પણ ત્યા નથી થતી લેશ્યાઓમા કાપોતલેશ્યા મધ્યમા આવેલ હોવાથી એના અહલથી આદિ અને અન્તની લેશ્યાઓતુ પણ અહલ થાય છે જેથી એ સમજતું બોધ્યે કે એ સ્થળે છએ લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ નથી એ ઓદારિક આદિ પાંચ શરીરમાથી કોઈ પણ શરીરનો સદ્ભાવ ન હોવાથી તેઓ અકાય અને છે કર્મરૂપી બીજનો સર્વાથ પ્રસય થઈ

न इह, रोहति-पुनः-पुनः प्रादुर्भवतीति इहः=उत्पत्तिमान् न, कर्मबीनाङ्कुरस्य सर्वथा दग्धत्वात्, अत एव न 'सङ्गः'=सङ्गोऽस्यास्तीति सङ्गः=सयागवान् न, सर्वसङ्गरहित इत्यर्थः । न स्त्री, न पुरुष', नान्यथा-स्त्रीपुरुषत्वामावाप्तपुसकोऽपि नेत्यर्थः । निषेधवाक्यैरत्र वाङ्मनसयोरगाचरतया केनापि रूपम् वस्तुमशक्य इति प्रतिपादितम् ।

होन से बे अफाय होते हैं । कर्मरूपी बीजके सर्वथा प्रक्षय हो जानेसे बे फिर मृत्तिसे इस संसारमें पीछ लौट कर नहीं आते हैं । जब उन्हें पुनः संसार दशा ही नहीं होती है तो इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध है कि बे किसी भी प्रकारके संयोगसे क्लिप्त भी नहीं होते हैं । उस अवस्थामें समस्त संयोगका वनके अभाव रहता है । उनके न स्त्रीलिंगका, न पुरुषलिंगका, और न स्त्री पुरुषके अभावस्वरूप नपुंसक लिंगका ही सद्भाव होता है, बे अलिङ्ग होते हैं । यहां पर रूपादिक पौत्रलिक धर्मोंके निषेध से यह बात जानी जाती है कि बे किस रूपमें हैं यह हम छद्मस्य न वचन से कह सकते हैं और न मनसे ही विचार सकते हैं । उनका स्वरूप छद्मस्य जीबेकि मन और वचनके अगोचर है । जब यह बात है तो हम किसी भी स्वरूपसे उन्हें नहीं कह सकते हैं । बाणी और मन ये दोनों ही वस्तुएँ पौत्रलिक हैं, पौत्रलिकोंसे अपौत्रलिकका न पूर्णरूपसे वर्णन ही हो सकता है और न स्पष्टरूपसे विचार ही हो सकता है । शुद्ध स्वरूपको

अप्याभी ते मुञ्चिषी आ ससारमा इरी पात्र आवता नधी अथरे तेज्येने इरी ससारमा नधी मती ते ज्येभी जे रूप उ के ज्येओ डे।। पञ्च प्रथमस्य सधेजधी क्षिप्त मता नथा ते अवस्थाभां समस्त सधेजने विधेज स्ते उ तेने न स्त्रीलिंगने, न पुरुषलिंगने, अने न स्त्री पुरुषनाजलान स्वरूप नपुंसक लिंगने सद्भाव अने उे तेज्ये अलिंग होय उे आ स्वये इपादिक पौत्रलिक धर्मोना निषेधधी जे बात बजाय उे के तेज्ये इया रूपभां उे ते, अग्नि छद्मस्य छीजे भाटे वचनधी न कही शकीजे अने न ते मनधी विचारी शकीजे ज्येनां स्वरूप छद्मस्य लोवना मन अने वचनका अगोचर उे अथरे आ बात उे ते अग्नि के।। पञ्च स्वरूपधी ज्येने ज्येजधी शकता नधी वाणी अने मन अने वस्तुज्ये पौत्रलिक उे पौत्रलिकधी अपौत्रलिकोतु पूज्य इषधी वस्तुन बध शकतुं नधी अने न ते स्पष्टरूपधी विचार पञ्च धर्म शके उे शुद्ध स्वरूपने बजुबा भाटे शुद्ध अतुलन व डाम अथरे उे अेरते नेतु वाणीधी वर्णन अने

મુરભિગન્ધઃ=મુગન્ધવાન્ ન, દુરભિગન્ધઃ=દુર્ગન્ધવાન્ ન; રસમાશ્રિત્ય કથ્યતે ' ન તિક્ત ' ઇત્યાદિ-તિક્તઃ=મરીચાદિવત્ ન, કટુકો નિમ્બાદિવદ્ ન, કષાયઃ=હરીત-ક્યાદિવદ્ ન, આમ્લઃ=અમ્લિકાવદ્ ન, મધુરો ન; સ્પર્શ નિષેધયતિ-ન કર્કશ ' ઇત્યાદિ-કર્કશઃ=કઠિનો ન, મૃદુઃ=કોમલો ન, લઘુર્ન. ગુરુર્ન, શીતો ન, ઉષ્ણો ન, સ્નિગ્ધઃ=ચિક્કણો ન, રુક્ષઃ=રસરહિતોઽપિ ન, કાપોતઃ=કાપોતલેશ્યાયુક્તો ન, મધ્યગ્રહણાદાયન્તગ્રહણમ્, તેન સકલલેશ્યારહિત ઇત્યર્થઃ, યદ્વા-કાયઃ=કાયવાન્ ન,

ન પીલા હોતા હૈ, ઓર ન સફેદ હી હોતા હૈ । વહાં પર વિશુદ્ધ આત્મા ન અચ્છી ગંધવાલા હોતા હૈ, ન દુર્ગંધવાલા હોતા હૈ, ન મિર્ચ આદિકી તરહ તિક્ત રસવાલા હોતા હૈ, નિમ્બ-નીમ આદિકી તરહ ન કટુક રસ વાલા હોતા હૈ, હરડ આદિકી તરહ ન કષાય રસવાલા હોતા હૈ, હમલી આદિકી તરહ ન આમ્લ રસવાલા હોતા હૈ ઓર ન શક્કરકી તરહ મીઠે રસવાલા હી હોતા હૈ । ઇસી તરહ વહાં ન કઠોર સ્પર્શ હોતા હૈ, ન કોમલ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન લઘુ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ભારી સ્પર્શ હોતા હૈ, ન શીત સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ચિક્કના સ્પર્શ હોતા હૈ ઓર ન રુક્ષ સ્પર્શ હોતા હૈ । કાપોતલેશ્યા ખી વહાં નહીં હોતી હૈ । લેશ્યાઓંમેં કાપોતલેશ્યા યહ મધ્યમેં આઈ હૈ, ઇસ કે ગ્રહણ સે આદિ ઓર અન્તકી લેશ્યાઓંકા ખી ગ્રહણ હો જાતા હૈ । ઇસલિયે યહ સમજ્ઞના ચાહિયે કિ વહાંપર છઓં લેશ્યાઓંકા સદ્ભાવ નહીં હૈ વહાં ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોંમેં સે કિસી ખી શરીરકા સદ્ભાવ ન

ન સારી સુગંધવાળા હોય છે, ન દુર્ગંધવાળા હોય છે, મન્યા ઇત્યાદિની માફક ન તીખા રસવાળા હોય છે, લીમડા વિ ની માફક ન કડવા રસવાળા હોય છે, હરડે ઇત્યાદિની માફક ન કષાયરસવાળા હોય છે, આમલી ઇત્યાદિની માફક ન ખાટા રસવાળા હોય છે અને સાકરની માફક ન તો મીઠા રસવાળા હોય છે આજ રીતે ત્યા ન કઠોર સ્પર્શ હોય છે, ન કોમળ સ્પર્શ હોય છે, ન લઘુ સ્પર્શ હોય છે, ન ભારી સ્પર્શ હોય છે, ન શીતળ સ્પર્શ હોય છે, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય છે, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોય છે, ન ચીકણો સ્પર્શ હોય છે, અને ન તો લુખો સ્પર્શ હોય છે કાપોતલેશ્યા પણ ત્યા નથી થતી લેશ્યાઓમા કાપોતલેશ્યા મધ્યમા આવેલ હોવાથી એના પ્રહણથી આદિ અને અન્તની લેશ્યાઓલુ પણ પ્રહણ થાય છે જેથી એ સમજલુ જેઈએ કે એ સ્થળે છએ લેશ્યાઓને સદ્ભાવ નથી. એ ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોમાથી કેઈ પણ શરીરને સદ્ભાવ ન હોવાથી તેઓ અકાય બને છે કર્મરૂપી બીજનો સર્વાથા પ્રક્ષય થઈ

विषयो सिद्धस्वरूपं न कनाप्युपमातुं शक्यत । तस्य कीदृशी सचेत्याह—‘अरूपिणी’-त्यादि-तस्य युक्तात्मन सत्ता=सम्भाव सा अरूपिणी=कनापि रूपेण वस्तुम-

उत्तर—कहना तो ठीक है, परन्तु उनके आगे यदि हमें कोई उपमा द्विपथ होती तो हम उसके द्वारा उनका वर्णन भी कर देते । परन्तु उनके आगे तो उपमा ही अस्त है, उनकी उपमा उनमें ही है । अतः ‘उपमा तत्र न विद्यते ’ किसी भी पदार्थकी उपमासे हम उनके स्वरूपका कथन नहीं कर सकते हैं । व अनुपमेय है ।

शङ्का—उनकी सत्ता कैसी है—उनका अस्तित्वका किसी भी रूपसे वर्णन हो सकता है ?

उत्तर—“अरूपिणी सत्ता” उनकी सत्ता अरूपिणी है, अतः उनके अस्तित्वका वर्णन किसी भी रूपसे नहीं हो सकता है । किसी भी रूप से जिसका कथन न हो सके उसका नाम “अरूपिणी ” है । पहिले यह प्रकृत ही किया जा चुका है कि सिद्धदशा रूप, रस, गंध और स्पर्शादिके रहित है । तथा द्रव्य, धीर्घत्वादिक धर्म उन्ममें सम्भवित नहीं होते हैं । ये सब पुद्गलके धर्म हैं । पुद्गल ही मूर्त्तिक है, पाकी द्रव्य अमूर्त्तिक ही भास्वा भी कर्मवचकी दशामें यद्यपि मूर्त्तिक माना गया है, परन्तु अपने निजस्वरूप अथवा मिट अवस्थाकी अपेक्षा से यह अमूर्त्तिक ही

उत्तर—इदं तु ते शीघ्रं च; परंतु जेनी आगण इवाण नमने कोष्ठ उपमा द्विपथ भात ता अगे जेनु पणु न पणु करुं देत, पणु जेनी आगण ते उपमानो व अभाव उ जेमनी उपमा जेमनाभा व उ जेटवे उपमा तत्र न विद्यते ” कोष्ठ पणु पदाधनी उपमाधी अगे तेमभा स्वरूपतु कथन करी शकता नही. जे उपमाधी पर उ

शङ्का—जेमनी सत्ता कैसी है—जेमना अस्तित्वका कोष्ठ रूपकी वर्णन यह शक है ?

उत्तर—“अरूपिणी सत्ता ” जेमना सत्ता अरूपी उ जेमना अस्तित्वतु पणु न कोष्ठ पणु रूपकी वर्ण शकै नकि कोष्ठ पणु मक्षरे ७तु वर्णन न वर्ण शकै तेतु नाम नमूर्त्तिकी ” उ पदेवां अ कर्तुं उ क—सिद्ध दशा रूप, रस, गंध नने स्पर्शादिधी स्तित उ तथा द्रव्य धीर्घत्वादिधे धर्म जेमा सम्भवित शकते नधी. आ तथा पुद्गलवना धम उ पुद्गल व मूर्त्तिक उ गीज द्रव्य नमूर्त्तिक उ अत्रभा पणु कर्मवचनी दशामें मूर्त्तिक मानवाना आवे उ परंतु पोटाना निजस्वरूप अथवा सिद्ध अवस्थाकी अपेक्षाधी अमूर्त्तिक व उ. जेटवे अमूर्त्तिक आत्मानु द्रव्यत्व आदि

किन्तु परिज्ञः=सकलआत्मप्रदेशैः सकलवस्तुतत्त्वस्य ज्ञाता, एवं 'सज्ञः' सं=सम्यग् जानाति=पश्यतीति सज्ञः=अनन्तज्ञान-दर्शनादितमन्वित इत्यर्थः, तत्स्वरूप-मुपमयाऽपि ज्ञातुमशक्यमित्याह—'उपमे'त्यादि-उपमानम्=उपमा=सादृश्य न तत्र जाननेके लिये शुद्ध अनुभव ही काम देता है। अतः जिसका वाणीसे वर्णन और मनसे विचार तक भी नहीं हो सकता है उसका कथन भी कैसे किया जा सकता है यह स्वयं एक अनुभवगम्य बात है।

वे सिद्ध भगवान् केवलज्ञानके आचारक (ढकन) ज्ञानावरणीय कर्मके सर्वथा विनाश हो जानेसे विशुद्ध समस्त आत्मप्रदेशों के द्वारा सकल वस्तुतत्त्वके ज्ञाता है, इससे उनका ज्ञान अनन्त है यह बात स्पष्ट हो जाती है। क्यों कि अनन्त पदार्थोंको विषय करनेवाला ज्ञान अनन्त हुए बिना नहीं रह सकता, तथा अनन्तज्ञानके हुए बिना उन अनन्त पदार्थोंका हस्तामलकवत् साक्षात्कार भी नहीं हो सकता। ज्ञानके पहिले दर्शन होता है, बिना दर्शनके ज्ञानका सद्भाव नहीं माना गया है, इस लिये जब उनके ज्ञानमे अनन्तता है तो इससे यह भी युक्तियुक्त है कि उनका दर्शन भी अनन्त है। इसी बातका बोधन "संज्ञ" इस पदसे सूत्रकारने किया है।

शङ्का—जिस प्रकार सांसारिक पदार्थोंका वर्णन किसी पदार्थकी उपमा देकर करनेमें आता है, उसी प्रकारसे सिद्धोंका वर्णन भी आप हमें उपमा दे कर समझा दीजिये ?

मनधी विचार पशु थतो नधी ज्येत्तु कथन पशु केम करी शक्य, आ स्वयं ज्येत्तु अनुभवगम्य बात छे

आ सिद्ध भगवान् केवलज्ञानना ढाकणुइप ज्ञानावरणीय कर्मना सदा विनाश यवार्थी विशुद्ध समस्त आत्मप्रदेशों द्वारा सकल वस्तुतत्त्वना ज्ञाता छे, आर्थी तेत्तु ज्ञान अनन्त छे, आ बात स्पष्ट छे केमके अनन्त पदार्थोंना विषय करवावाणा ज्ञान अनन्त थथा वगर रहैत्तु नधी, अने अनन्त ज्ञान थथा बिना ज्ये अनन्त पदार्थोंना हस्तामलकवत् साक्षात्कार पशु थर्थ शकतो नधी ज्ञानना पहिला दर्शन थाय छे, दर्शन वगर ज्ञानना सद्भाव मानवामा आवतो नधी आ माटे ब्यापरे ज्येना ज्ञानमा अनन्तता छे तो आर्थी ज्ये पशु युक्तियुक्त छे के तेत्तु दर्शन पशु अनन्त छे आ बातनु बोधन "संज्ञ" आ पदधी सूत्रकारे करैल छे

शङ्का—जे प्रकारे सांसारिक पदार्थोंनु वणुन कोरि पदार्थनी उपमा आधीने करवामा आवे छे, ज्ये प्रकारधी सिद्धोंनु वणुन पशु अमेने उपमा आधी समजवो ?

तदेष प्रकृत्यन्नुपसहारति—‘स न’ इत्यादि—

यद्वा—‘न दीर्घ’ इत्यादिना शब्दादिविशेषो निराकृत पुनस्तत्सामान्य निराकरणाय—‘से न’ इत्यादि।

मूळम्—से न सहे न रूपे न गधे न रसे न फासे इत्येव  
चित्तेमि ॥ सू० ७ ॥

छाया—स न सव्यो न रूपं न गन्धो न रसो न स्पृशे इत्येवमिति व्रथीमि । सू० ७।

टीका—‘स न’ इत्यादि—स मुक्तात्मा न शब्दस्वरूपः, न रूपात्मकः, न

पदान्त रूपसे नहीं समझना चाहिये । अन्यथा वे सर्वथा अवक्तव्य होने से अवक्तव्य इस शब्दके द्वारा भी नहीं कहे जा सकेंगे, तथा रूप रस गन्धादिका निषेध भी यहाँ नहीं हो सकता । तथा इनके अभावात्मक—“रूपादि रहित हैं” इत्याकारक-बोधके वे ग्राह्य भी नहीं होंगे । इस लिये यह सब कथन सिद्ध स्वस्वरूपकी पूर्ण वशाकर बाधक कोई शब्द नहीं है इतने ही में चरितार्थ समझना चाहिये ॥ सू० ६ ॥

इसी पूर्वोक्त विषयको पुनः प्रकट करते हुए सूत्रकार उसका “से न” इत्यादि सूत्रद्वारा उपसहार करत हैं अथवा—“न दीर्घः” इत्यादि पदों द्वारा उस अवस्थामें दीर्घत्वादि-विशेष-धर्मवाचक विशेष शब्दोंकी विषयताका ही निषेध किया गया है, सामान्य रूपसे शब्दात्मकतादिका निषेध नहीं किया है; सो “से न” इत्यादि सूत्रद्वारा सामान्यरूपसे शब्दात्मकतादिका यहाँ निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

यद्वा मुक्ता आत्मा न शब्दस्वरूप है, न रूपस्वरूप है, न गन्धस्वरूप

आ कथन को अन्त इपरी समस्तु न बोधके अन्यथा के तर्था अवक्तव्य बोधकी अवक्तव्य आ शब्दधी पञ्च कही शक्य नहि तेम रूप रस, गन्ध इत्यादिने निषेध पञ्च त्यां यत् शक्ये नहि तथा जेना अभावप्रमक— इत्यादि स्थिति छे जेवा गन्धधी पञ्च जे बाधा नहि बाध आ भाटे सिद्धस्वरूपनी पूर्ण इशाने वाचक बोध शब्द नही—जे-लाभां ए आ अथा कथन चरितार्थ चार्थक समस्तु बोधके (सू ६)

जे पूर्वोक्त विषयने पुनः प्रकट कर्त्या सूत्रकार जेना “से न” इत्यादि सूत्र द्वारा उपसहार करे छे अथवा—“न दीर्घः” इत्यादि पदोंकी जे अवस्थाभा दीर्घत्वादि-विशेष-धर्मवाचक विशेषशब्दोंनी विषयताने ए निषेध कर्त्यामां आये छे, सामान्यरूपकी शब्दात्मकता अदिने निषेध नही कर्ता, भाटे “स न” इत्यादि सूत्रधी सामान्य रूपकी शब्दात्मकता अदिनी त्यां निषेध कर्त्या सूत्रकार कहे छे—

जे मुक्ता आत्मा न शब्दस्वरूप छे न तो रूपस्वरूप छे, न गन्धस्वरूप

શક્યા, તત્ત્વ દોષત્વાદિ સમઙ્ગવિપયાઽપ્રતિપાદનાત્; અપિ ચ-અપદસ્ય=ન વિદ્યતે પદ સ્થાનમવસ્થાનવિશેષો યસ્ય સોઽપદસ્તસ્ય, પદ-પદ્યતે=વુદ્ધ્યતે યેનાર્થસ્તત્પદં =તદ્વાચકઃ શબ્દઃ, તન્નાસ્તિ । યઃ કશ્ચિદમિધાતું યોગ્યો ભવતિ સ સર્થ એવ શબ્દાદિવિપયયાભિધાનેન વક્તુ શક્યો, ન ચાય તથેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ મૂ.૬ ॥

હૈ અતઃ અમૂલ્લિકા આત્માકા હ્રસ્વત્વાદિક રૂપ ન હોનેસે અનેક દ્વારા અનેક અસ્તિત્વકા વર્ણન હો ભી કૈસે સકતા હૈ? અથવા “અરૂપિણી” હસ શબ્દકે દ્વારા મુક્ત આત્માકી સત્તા રૂપરહિત હી વર્ણિત હુઈ હૈ, તો ભી તદવિનાભાવી રસ, ગદ્ય ઓર સ્પર્શકા ભી રૂપકે નિષેધ સે નિષેધ હુઆ હી સમજના ચાહિયે ।

“અપદસ્ય પદં નાસ્તિ” જિસકા કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નહીં હૈ વહ અપદ હૈ । જિસકે દ્વારા અર્થકા વોધ હોતા હૈ વહ પદ હૈ । અપદકા વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નહીં હોતા હૈ । જો કહનેકે યોગ્ય હોતા હૈ વહી કહા જા સકતા હૈ । ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દદ્વારા હસ લિયે પ્રતિપાદિત હોતે હૈ કિ વે અને શબ્દોદ્વારા કહે જાને યોગ્ય હોતે હૈ । વાચ્યવાચકભાવ યા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવસંબંધ અપને યોગ્ય પદાર્થોમે હી હુઆ કરતા હૈ, અન્યત્ર નહીં । સિદ્ધદશા અપદ હૈ, અતઃ હસકા વર્ણન કરનેવાલા કોઈ ભી પદ નહીં હૈ । વિશેષ-યહ સવ કથન આત્માકે શુદ્ધ સ્વરૂપકી દૃષ્ટિસે નિશ્ચયનયકે અભિપ્રાયકો લેકર હી કિયા ગયા સમજના ચાહિયે । અનેકા વાચક કોઈ શબ્દ નહીં હૈ ઇત્યાદિ કથન સર્વથા

રૂપ ન હોવાથી એની ભારક્ત એના અસ્તિત્વનુ વર્ણન પણ કઈ રીતે થઈ શકે? અથવા “અરૂપિણી” આ શબ્દ દ્વારા મુક્ત આત્માની સત્તા, રૂપરહિત જ કહેવામાં આવી છે, તો પણ તેની સાથે જ રહેનાર રસ, ગદ્ય અને સ્પર્શનો પણ રૂપના નિષેધથી નિષેધ થયો જ સમજવો જોઈએ

“અપદસ્ય પદ નાસ્તિ” જેનું કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નથી એ અપદ છે જેના દ્વારા અર્થનો યોગ્ય થાય છે એ પદ છે અપદનો વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નથી જે કહેવા યોગ્ય હોય છે એ જ કહેવાય છે ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દથી આ માટે પ્રતિપાદિત હોય છે કે તે એ શબ્દો દ્વારા કહેવાને યોગ્ય હોય છે વાચ્યવાચકભાવ અથવા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવ સમઙ્ગ પોતાના યોગ્ય પદાર્થોમા જ હોય છે, અન્યમા નહિ સિદ્ધ દશા અપદ છે, આથી એનું વર્ણન કરનાર કોઈ પદ નથી વિશેષ-આ અધુ આત્માના વિશુદ્ધ રૂપની દૃષ્ટિથી નિશ્ચય નયનો અભિપ્રાય લઈને કહેવાયુ છે, એમ સમજવું જોઈએ. એનો વાચક કોઈ શબ્દ નથી

इस अध्ययनका उपसंहार पद्यसे करते हैं—'अस्मिन्नध्ययने' इत्यादि।

(१) पहले उद्देशमें—प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला, विषयोक्ति लिये सावध क्रियाओंमें प्रवृत्ति करनेवाला मुनि नहीं है। तथा विषयोक्ति लिये ही विचरण करनेवाला और उनमें लक्ष्मीन चित्त बना हुआ भी मुनि धर्मसे रहित है। (२) द्वितीय उद्देशमें—हिंसादि पापस्थानों से निवृत्त ही मुनि होता है। (३) तृतीय उद्देशमें—जो परिग्रहसे विरत है और काम भोगोंसे रहित है वही विरक्त मुनि है। (४) चतुर्थ उद्देशमें—अगीतार्थ मुनिको एकाकी होकर विहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकारके विहारमें उसे अनेक बिघ्नपाषाण आती है। (५) पंचम उद्देशमें—मुनिको ब्रह्मके समान होना चाहिये। मन, बचन और कायगुणोंसे युक्त होना चाहिये। स्त्री आदिके संगसे रहित होना चाहिये। सम्यग्दर्शन और पारिव्रजके धारक होना चाहिये—संशयादिक दोषवर्जित होना चाहिये। (६) छठे उद्देशमें—उन्मार्गमें ज्ञानका और राग एवं द्वेषका साधुको त्याग कर देना चाहिये।

यह आचारारङ्गसूत्रके लोकोत्सार नामके पाँचवें अध्ययनकी आधार चिन्तामणि-टीकाका द्विन्वीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ७ ॥

आ अध्ययनने उपसंहार पद्यधी कश्वाभा आवे छे अस्मिन्नध्ययने इत्यादि

(१) पहले उद्देशमें—प्राणियोंकी हिंसा कश्वावाणाने विषयोक्ते भाटे सावध क्रियाओंमें प्रवृत्ति कश्वावाणाने मुनि न कश्वावा. तेमए विषयोक्ते भाटेए विषयव्यु कश्वावाणाने अने अने लक्ष्मीन चित्त कश्वावा पद्य मुनि धर्मधी रहित छे.  
 (२) भीम उद्देशमें—हिंसादि पापस्थानोंकी निवृत्त ए मुनि कश्वा छे  
 (३) त्रीम उद्देशमें—जे परिग्रहधी विरत छे अने कामयोग्यधी रहित छे अने विरक्त मुनि छे (४) चोथ उद्देशमें—अगीतार्थ मुनिअे अकेकडी वध विहार कश्वा न अकेकडे, कम ठे आ प्रकारता विहारधी अने अनेक बिघ्नो आवे छे (५) पांचम उद्देशमें—मुनिअे ब्रह्म (सशवर)नी समान कश्वा अनेकडे. मन, बचन अने कायाधी विरक्त जन्तु अकेकडे स्त्री आदिना संगधी हर रडेवु अकेकडे सम्यग्दर्शन ज्ञान अने पारिव्रज धारक जन्तु अकेकडे संशय आदि दोषधी रहित कश्वा अकेकडे (६) छठे उद्देशमें—उन्मार्गअमन, संग अने द्वेषने त्याग करी देवो अकेकडे

आ आचारारङ्गसूत्रना लोकोत्सार नामना पांचम अध्ययननी आधार-चिन्तामणि-टीकाने अनुवाद सम्पूर्ण ॥ ५ ॥



गन्धात्मकः, न रसस्वरूपः, न स्पर्शस्वरूप, इत्येवं पूर्वोक्तस्वरूपेण स न शब्दादि-  
सामान्यरूपो नापि तद्विशेषरूपः, शब्दादिप्रवृत्तिनिमित्ताभावादेव केनापि प्रकारेण  
वक्तुं न शक्य इति भावः । 'इति ब्रवीमि'त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तरीत्याऽ-  
वगन्तव्यः ॥ सू० ७ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन् अध्ययने च भोगविषयासक्त्यै ब्रजन्नो मुनिः,

हिंसादित्यजको निवृत्तविषयासज्जो मुनिः सम्मतः ।

निर्विण्णोऽप्यपरिग्रहो मुनिरभावेकाकिनो दुष्कृत-

माचार्या हृदसन्निभाश्च परमत्यागश्च संवर्णितः ॥ १ ॥

॥ इति श्री-विश्वविरुपात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-"जैनशास्त्राचार्य"-पद्मपूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर  
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां लोकसाराख्ये पञ्चम-  
मध्ययन सङ्पूर्णम् ॥ ५ ॥

है, न रसस्वरूप है और न स्पर्शस्वरूप है । इस प्रकार वह न शब्द  
सामान्यस्वरूप है और न रूप, रस और गंध आदि सामान्य स्वरूप है ।  
जहां सामान्य धर्मका ही अभाव है वहां तद्विशेष इस्वआदि विशेष-  
शब्दविषयता तथा नील, शुक्ल आदि विशेषरूपता कैसे आ सकती  
है? अर्थात् नहीं आ सकती । इसलिये सामान्य और विशेष रूपसे  
शब्द आदि की प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव होनेसे ही वह मुक्तदशा  
किसी भी प्रकारसे कथन करनेमें नहीं आती है । "इति ब्रवीमि" इन  
पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें उक्त रीतिके अनुसार जान लेना चाहिये। सू० ७

छे, न रसस्वरूप छे, अने न तो स्पर्श स्वरूप छे आ प्रकारे न शब्द सामान्य  
स्वरूप छे, अने न रूप, रस तथा गंध आदि सामान्य स्वरूप छे अथा सामान्य  
धर्मने न अभाव छे त्या आजगण इस्व आदि विशेषशब्दविषयता तथा नील,  
शुक्ल आदि विशेषरूपता कथं रीते आवी शके ? अर्थात् आवी शकती नथी आ  
माटे सामान्य अने विशेष रूपथी शब्द आदिनी प्रवृत्तिना निमित्तने अभाव  
होवाथी न अने मुक्तदशा कथं पणु प्रकारे कही शकती नथी "इति ब्रवीमि"  
आने अर्थ प्रथम अध्ययनना अने उहा प्रभावे जेही लेवेजे (सू० ७)

धृतं त्रिविधं द्रव्यमाशमदात् । तत्र द्रव्यपूर्वं नक्षत्राणादि, माषधृतमष्टविधं कर्म । उक्तञ्च—

“ जह मलमलिणं कल्पं, स्वारद्रव्येण निम्मलं भवह ।

तह सजमण तवसा, कम्ममलं भवह मावधुयं ” ॥ १ ॥

छाया—यथा मम्मन्निं बह्णं, स्वारद्रव्येण निर्मलं भवति ।

तथा संजमन तपसा, कर्ममलं भवति मानधृतम् ॥ १ ॥

अत्र माषधूननाधिकारः । अस्मिन्मध्ययन पञ्चादेशाः सन्ति, तत्र प्रथमोद्देशे स्वजनसङ्घस्य, द्वितीय कर्मणां, तृतीय—उपकरणशरीरममत्त्वस्य, चतुर्थे गौरवप्रयस्य, पञ्चमं शोषसंमानापमानानां विधूनन प्रतिपादयिष्यत । तत्र स्वजनसङ्घपरित्याग-

धृत, द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । पञ्च और पात्रादिक द्रव्य धृत है । अष्टविधकर्म भाव धृत है । कहा भी है—

‘ जह मलमलिणं कल्पं ’ इत्यादि—

जैसे मलसे मलिन पुआ बह्ण, क्षार द्रव्य—सोडा साबुन आदिसे साफ किया जाता है उसी प्रकार भावस्वरूप कर्मरूपी मैल भी आत्मासे संयम और तपद्वारा धोया—साफ किया जाता है ।

यहाँ पर भाषधृतका अधिकार है । इसके ५ उद्देश हैं—१ प्रथम उद्देश में स्वजनके संगका, द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका, तृतीय उद्देशमें उपकरण और शरीरके ममत्वका, चतुर्थ उद्देशमें तीन गौरवोंका, और पञ्चम उद्देशमें उपसर्गों एव मान और अपमानका धूनन प्रतिपादित किया है । इनमें सर्व प्रथम सूत्रकार स्वजनके साथ संगके परित्यागका बोधक प्रथम

धृत इत्येव अने भावना बोधकी वि प्रकारानुं छे पञ्च अने पात्रादिक इत्येव धृत छे अष्टविध कर्म भावधृत छे कहुं पणु छे— जह मलमलिणं कल्पं ” इत्यादि, जेग मलभी अहुं जनेल पञ्च क्षारद्रव्य—सोडा साबुन पनेइकी साथे छे पणु भावे छे जे जे शीते भावस्वरूप कर्मरूपी मैलने पणु आत्माकी संयम अने तप द्वारा धोवा—साह इत्याभा भावे छे ।

अहाँ भावधृतने अधिकार छे आना पांच उद्देश छे प्रथम उद्देशमें स्वजनना संगत जीव उद्देशमें कर्मोतु त्रीव उद्देशमें उपकरण अने शरीरका ममत्वतु बोधा उद्देशमें तेषु जीवतु अने पांचभा उद्देशमें उपसर्गो अने मान तथा अपमानतु धूनन प्रतिपादन करैल छे अर्थां संय प्रथम सूत्रकार स्वजनना संगती परित्याग करी बोधके आ समभावना भाउ प्रथम उद्देशने भाउ क करै छे, आर्थां सहुं प्रथम सूत्रकार के अर्थावे छे के के पदार्थ के स्वधूपकी अर्थावे छे ।

## ॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः॥

उक्त पञ्चमाध्ययन, तत्र लोकासाररूपसयमस्य मोक्षस्य च स्वरूप निगदितं, तयोः प्राप्तिर्हि मातापित्रादिसगपरित्यागेन कर्मभूतनेन च विना न भवतीत्युभय बोधयितुमिदं धृताख्यमध्ययनं प्रोच्यते—

धूयते—अपनीयत इति धृत-मातापित्रादिसगः अष्टविध कर्म च । तद् धून-नार्हत्वा प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तदपि धृतं निगद्यते ।

### छठा अध्ययनका प्रथम उद्देश ।

पाँचवाँ अध्ययन कहा जा चुका है । उसके अन्दर लोकमें सारभूत संयम और मोक्षका स्वरूप कहा गया है । संयम और मुक्तिकी प्राप्ति माता पिता आदि स्वजनोके साथ ममत्वका त्याग और कर्मोंका विनाश किये विना नहीं होती है, इस कारण इन दोनों विषयोंको समझानेके लिये इस धृताख्यान का प्रारंभ किया जाता है ।

सुमुक्षुजनो द्वारा जो दूर-परिवर्जित किया जाय वह धृत है । वह धृत माता पिता आदिका सग और अष्टविधकर्मस्वरूप है । क्यों कि सुमुक्षुओं द्वारा इनका ही परित्याग किया जाता है । इस अध्ययनमें इन दोनों विषयोंको धूनन-परित्यागके योग्य प्रतिपादित किया गया है । इसलिये इस अध्ययनका नाम भी “ धृत ” हो गया है ।

### छठा अध्ययनको प्रथम उद्देश.

पाचव्यां अध्ययन कडेवाच गये छे, ये अध्ययनमा लोकमा सारभूत संयम अने मोक्षतु स्वरूप कडेवाच आवेल छे संयम अने मुक्तिनी प्राप्ति, माता पिता आदि स्वजनोना ममत्वने त्याग, कर्मोना विनाश कर्था वगर थर्ध शकतो नर्धी आ कारखे आ जन्ने विषयो समजववा भाटे आ धृताख्यान अध्ययनने प्रारंभ करवाभा आवे छे.

सुमुक्षुजने द्वारा जे दूर-परिवर्जित करवाभा आवे ते धृत छे अने धृत माता पिता इत्यादिनी सग अने अष्टविधकर्मस्वरूप छे, कर्म के सुमुक्षुओ द्वारा जेने परित्याग करवाभा आवे छे आ अध्ययनमा आ जन्ने विषयोने धूनन-परित्यागने योग्य प्रतिपादित करवाभा आवेल छे, आ भाटे आ अध्ययनतु नाम पञ्च “ धृत ” थर्ध गयु छे

धर्मं वदन्तीति शक्याः, यद्यवैशपिका उलूकभावः पदार्यानामाविर्भावः मन्यते, तत्र समीधानम्, धर्मनिरूपणं मनुष्यमन्तरेण न संभवति, सोऽपि यदि पातिकर्म क्षये सति निरावर्णानाऽऽश्चिर्भावेन सर्वज्ञताप्युपलभत । एवंभूत सर्वज्ञ स्वयं तार्योऽपि प्राणिनां हिताय द्वादशभिन्न्यर्पदि धर्मं निरूपयतीत्युपपद्यते । क्य नु नाम तीर्थङ्करके सिवाय धर्मका उपदेश अन्य छद्मस्थजन नहीं कर सकते हैं क्योंकि कि वे आत्मा और संसारके स्वरूपक वास्तविक ज्ञाता नहीं होते हैं।

भावार्थ— तीर्थङ्कर ही धर्मोपदेशक होते हैं, क्योंकि कि वे सर्वज्ञ हैं। अतः तीर्थङ्करप्रणीत सुतचारित्र्यरूप धर्म ही सच्चा है; अन्य छद्मस्थजन प्रणीत नहीं ! शाक्य लोग जो यह कहते हैं कि कुडपाविक धर्मका निरूपण करते हैं । तथा अज्ञानी वैशेषिक जो यह कहते हैं कि पदार्थोक्ता आविर्भावन उलूकभावसे ही होता है, सो उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है; क्योंकि कि धर्मका निरूपण उम मनुष्यके बिना संभवित नहीं होता है कि जिसने घातिया कर्मोंक अभावसे केवलज्ञानकी प्राप्ति से सर्वज्ञता प्राप्त न कर ली हो । घातिया कर्मोंके बिनाप्राप्ति से केवलज्ञानकी सम्भूति होती है और इसीकी उपलब्धिका नाम सर्वज्ञता है । जो सर्वज्ञ होते हैं वे कृतार्थ होते हैं, उनकी प्रत्येक इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं होता है जिसकी उन्हें व्याहना हो । कृतकृत्य होने पर भी वे भक्त्य जीवोंके पुण्यके उदय एवं योगोंके सञ्चार

उपदेश भी छद्मस्थजन करी शक्य नहीं, केम के जे आत्मा तथा संसारका स्वरूपका वास्तविक व्यवहार नहीं होता

भावार्थ— तीर्थङ्कर धर्मोपदेशक होय छे; केम के जे सर्वज्ञ छे ओटवे तीर्थङ्कर प्रणीत सुत-चारित्र्यरूप धर्म का सच्चा छे; भील छद्मस्थजन प्रणीत नहीं शक्यहोय के जेवु कहे छे के कुडपाविक धर्मनु निरूपण करे छे तथा अज्ञानी वैशेषिक के जेवु कहे छे के पदार्थोक्ता आविर्भावत उलूकभावधी व धाम छे जेभनी का मान्यता जराजर नहीं, केम के धर्मनु निरूपण जेवा मनुष्यका पत्र संभवित भवतु नहीं के जेवे घातिया कर्मोका जन्मावधी केवलज्ञानकी प्राप्तिभी सर्वज्ञता प्राप्त करी न होय। घातिया कर्मोका विनाशधी केवलज्ञानकी सम्भूति धाम छे जेने जेनी उपलब्धिनु नाम सर्वज्ञता छे के सर्वज्ञ जेने छे ते कृतार्थ होय छे। जेभनी प्रत्येक इच्छाजो नष्ट एवं जष्ट होय छे संसारमां होय पवु जेवो पदार्थ नहीं जेभाते जेनी जेभने व्याहना होय कृतकृत्य होय छे। पवु तेका जन्म लोवने पुण्यका उदय जेने योगोका सम्भवावधी

बोधकः प्रथमोद्देशः प्रारम्भ्यते । तत्रादीं यथाऽप्रस्थितसकलपदार्थतत्त्वज्ञाना नरा एवा-  
नुपमं धर्ममुपदेष्टुमर्हन्तीति बोधयितुमाह—‘ओबुज्जमाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—ओबुज्जमाणे इह माणवेसु अक्खाति से णरे जस्सि-  
माओ जातीओ सब्बओ सुपडिलेहियाओ भवन्ति, अक्खाइ से  
णाणमणेलिसं ॥ सू० १ ॥

छाया—अवबुध्यमानः इह मानवेषु आख्याति स नरः । यस्येमा जातयः  
सर्वतः सुप्रतिलेखिता भवन्ति, आख्याति स ज्ञानमनीदृशम् ॥ सू० १ ॥

टीका—इह=अस्मिन् लोके मानवेषु=मनुष्येषु यः अवबुध्यमानः=निरावरण-  
ज्ञानसद्भावादात्मनः ससारस्य च यथार्थस्वरूप सम्यग्ज्ञानम् अस्ति, स नरः=  
अघातिरुर्मचतुष्टयसद्भावाद् मनुष्यदेहाप्रस्थितः सन् अनीदृशम्=अनुपमम्-प्रशस्य-  
तम्-सम्यगिति यावत्, ज्ञानम्=श्रुतचारित्रधर्मम्, अत्र ज्ञानमित्यनेन ज्ञानं ज्ञान-  
कार्यं च उपलक्ष्यते; आख्याति=मनुष्येभ्यो वदतीत्यर्थः । तीर्थङ्करा एव सर्वज्ञाः  
भवन्ति, अतस्तदुक्तः श्रुतचारित्रधर्म एव सम्यगिति भावः । यत्तु कुड्यादयोऽपि  
उद्देशका प्रारम्भ करते हैं । उनमें सबसे पहिले सूत्रकार यह बतलाते हैं  
कि जो पदार्थ जिस स्वरूपसे अवस्थित हैं उन सकल पदार्थों को उसी  
स्वरूपसे जाननेवाले मनुष्य ही अनुपम धर्मके कथन करनेके योग्य हो  
सकते हैं । इसी बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—  
“ओबुज्जमाणे” इत्यादि ।

इस चराचर संसारमें जिन मनुष्योंको निरावरणज्ञानकी प्राप्ति हो  
चुकी है और इसीसे जो आत्मा एवं ससारके वास्तविक स्वरूपके ज्ञाना  
हुए हैं, वे मनुष्य अघातिया कर्मोंके सद्भावसे मनुष्य शरीरमें स्थित हो  
कर ही सम्यक् ज्ञान और उपलक्षणसे उसके कार्यस्वरूप अनुपम सच्चे  
श्रुतचारित्ररूप धर्मके उपदेष्टा अन्य संसारी जीवोंके लिये होते हैं ।

छे ते सकल पदार्थोने ते स्वरूपथी ज्ञाणुवावाणा मनुष्ये जे अनुपम धर्मनु  
कथन करवा योग्य नी शके छे आ वात समभववा भाटे सूत्रकार कहे छे—  
“ओबुज्जमाणे” इत्यादि

आ अराचर ससारमा जे मनुष्योने निरावरणु ज्ञाननी प्राप्ति थछे थुकी  
छे अने जेनाथी जे आत्मा तथा ससारना वास्तविक स्वरूपना ज्ञाणुकार अनेल  
छे ते मनुष्य अघातिया कर्मोना सद्भावथी मनुष्यशरीरमा स्थित थवा छता  
सम्यग्ज्ञान अने उपलक्षणुथी जेना कार्यस्वरूप अनुपम-साथा श्रुतचारित्ररूप  
धर्मना उपदेशक अन्य संसारी लोको भाटे थाथ छे तीर्थकरना सिवाय धर्मनी

केबली भुतकेबली च भनीइधम्=अनुपमं-सम्यक् प्रवस्त, ज्ञानं=भुतचारिप्रम्  
 भास्यति । तीर्थङ्करादन्यत्तुर्वधपूर्वधरोऽपि सर्वोत्तमं धर्ममुपदिशतीत्यर्थः । सू० १ ॥  
 स तीर्थङ्कर कर्मभूतान् मनुष्यानुपदिशतीति मिथ्यासायामाह-‘से किइइ’  
 इत्यादि ।

मूम्म-से किट्टइ तेसिं समुट्टियाण निखित्तदडाण समा  
 हियाण पत्ताणमताण इह मुत्तिमग्ग, एवमधि एगे महावीरा  
 विप्परिकमति, पासह एगे विसायमाणे अणत्तपन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया-स कीर्तयति तपां समुत्थितानां निमित्तदण्डानां समाहितानां प्रदान-  
 वताम् इह मुक्तिमार्गम्, एवमपि एके महावीरा विपराक्रमन्ते, पश्यत एषान्  
 विपीदतः अन्यप्रमदान् ॥ सू० २ ॥

गीका-स तीर्थङ्करगणधरादिः, इह=अस्मिन् मनुष्यलोक समुत्थितानां-  
 पर्माचरणार्थमुपगतानां, निमित्तदण्डानां=याणिर्षिसानिदण्डानां, समाहितानाम्=अन्य

भाषार्थ-यह पहिले जो कहा है कि तीर्थङ्कर प्रभु धर्मका उपदेश  
 देते हैं? या कोई अन्य भी?; सो इस शिष्यकी आशाका यह उत्तर है।  
 इसमें यह पतलाया गया है कि तीर्थङ्करके अतिरिक्त केबली और भुत  
 केबली-चतुर्वेदा पूर्वधर भी सर्वोत्तम इस भुतचारिप्ररूप धर्मका मुख्य  
 जीवोंको उपदेश देते हैं ॥ सू० १ ॥

वे तीर्थङ्कर किस प्रकारके मनुष्योंको धर्मका उपदेश देते हैं-इस  
 प्रकारकी जिहासाके होने पर सूत्रकार कहते हैं-“से किइइ” इत्यादि।

वे तीर्थङ्कर भगवान् भयवा गणधरादि इस मनुष्य लोकमें ऐसे जीवों  
 को सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्यरूप मुक्तिके मार्ग  
 (धर्म)का उपदेश देते हैं जो धर्मके आचरण करनेके लिये उद्यत हैं,

भाषार्थ-आ पहलेवां के कहुं के तीर्थङ्कर प्रभु धर्मका उपदेश आप  
 से? अथवा जीव पक्ष? आ पूर्वोक्त शिष्यकी आशा होने आ उत्तर के आशा के  
 जवाबायु के के तीर्थङ्कर शिष्याय केवली अने भुतकेवली-चतुर्वेदापूर्वधर पक्ष उपदेश  
 देते भुतचारिप्ररूप धर्मका अन्य लोकोने उपदेश आपसे के

के-तीर्थङ्कर मनुष्योने क्या प्रकारना धर्मका उपदेश आपसे के, आ प्रक  
 र्णनी लज्जासा होवासी सूत्रकार कहे के-‘से किइइ’ इत्यादि

के तीर्थङ्कर भगवान् भयवा जलधरादि देव आ मनुष्य लोकमें केवा  
 लोकोने सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान अने सम्यक् चारित्र्यरूप मुक्तिमार्ग (धर्म)  
 का उपदेश आपसे के के धर्मको आचरण करवा माटे उत्सुक होय के आशी

जडस्वरूपः कुड्यादिः ज्ञानाभरणियाद्यष्टविधकर्मपाशवद्दस्तिर्यक् प्राणी च सर्वज्ञरीत-  
रागसमरक्षता प्राप्तुमर्हति, योग्यधर्मनिरूपणं कर्तुं प्रभवति ? ।

ननु किं तीर्थङ्कर एव धर्ममाख्याति ? किमुतान्योऽपि ? इति शिष्यजिज्ञासा-  
यामाह—‘यस्येमा’ इत्यादि । यस्य=केवलिनः श्रुतकेवलिनश्च इमा प्रत्यक्षभूताः  
जातय एकेन्द्रियादिजातयः सर्वतः=सर्वप्रकारः सूक्ष्मादरपर्याप्तापर्याप्तरूपैः सुप्र-  
तिलेखिताः=अज्ञानसशयविपर्यासनिराकरणेन यथार्थतो ज्ञाता भवन्ति, स नरः  
से समवसरण मे प्राणिभोको हितावह उपदेश देते है—धर्मकी प्ररूपणा  
करते है । जब धर्मकी प्ररूपणा करना सर्वज्ञके आधीन है तब यह कौन  
सचेतन प्राणी मान सकता है कि जड स्वभाव—अचेतन कुड्यादिक  
( भित्ति आदि ) तथा अष्टविध कर्मरूपी पाशसे जकड़ा हुआ तिर्यञ्च  
प्राणी सर्वज्ञकी समकक्षताको पानेके लायक हो सकता है ? अर्थात्—  
उससे योग्य धर्मकी प्ररूपणा हो सकती है ? या वह योग्य धर्मकी प्ररूपणा  
करनेके लिये शक्तिशाली हो सकता है ? कदापि नहीं ।

तीर्थङ्कर प्रभु ही धर्मकी देशना देते है या और भी कोई देता है ?  
इस प्रकार शिष्यकी शङ्काके निवारणार्थ “यस्येमाः” इत्यादि सूत्रांशकी  
प्ररूपणा करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि केवली और श्रुतकेवली भी  
धर्मकी प्ररूपणा करते हैं । क्यों कि उनके निर्दोष—सशय, विपर्यय और  
अनध्यवसायरहित ज्ञानसे वे प्रत्यक्षभूत एकेन्द्रियादिक जातियां सूक्ष्म,  
वादर, पर्याप्त और अपर्याप्तरूपसे भलीभांति जाने हुए होते हैं ।

समवसरणमा प्राण्येने डितावह उपदेश आपे छे—धर्मनी प्ररूपणा करे छे  
न्यारे धर्मनी प्ररूपणा करवी सर्वज्ञने आधीन छे त्यारे जेयो क्यो सचेतन  
प्राणी मानी शके छे के नरस्वभाव अचेतन कुड्यादिक ( लीत आदि ) तथा  
अष्टविधकर्मरूपी पाशधी नरकायेला तिर्यञ्च प्राणी सर्वज्ञनी समकक्षातने भेग-  
ववा लायक अनो शके छे ? अर्थात्—जेनायी योग्य धर्मनी प्ररूपणा बर्ध शके छे ?  
अथवा ते योग्य धर्मनी प्ररूपणा करवा माटे शक्तिशाली अनो शके छे ?  
कदापि नहि ( कोर्ध काये नहि )

तीर्थङ्कर प्रभु न धर्मनी देशना आपे छे—अथवा भीन पणु कोर्ध आपे  
छे ? आ प्रकारनी शिष्यनी शकाना निवारणार्थ “यस्येमा” इत्यादि सूत्रांशनी  
प्ररूपणा करता सूत्रकार कहे छे के केवली अने श्रुतकेवली पणु धर्मनी प्ररूपणा  
करे छे, केम के निर्दोष—सशय, विपर्यय अने अनध्यवसाय रहित ज्ञानधी जे  
प्रत्यक्षभूत एकेन्द्रियादिक जातीज्योने सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त अने अपर्याप्तरूपधी  
सारी रीते नञ्जता होय छे

प्राप्तयितुममत्रुचान् पश्यतः=अवलोक्यतेत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

किञ्च—' से बमि ' इत्यादि ।

मूल्म्—से वेमि, से जहानामय कुम्मे हरय विणिविष्टचित्ते पच्छन्नपलासे उम्मग्ग से नो लहइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—स प्रवीमि, तद्व्यानामकः कूर्मो इवे विनिविष्टचित्तः पलाशमच्छमः उन्मार्गी स न समत ॥ सू० ३ ॥

टीका—स' = मग्वन्मुखाद्वपगतस्त्वः अहं प्रवीमि = अनात्मप्रज्ञस्य घटान्तं कथयामि । तद्यथा नामक' = कश्चित् कूर्मः = कच्छप', इवे = जलाशय विनिविष्टचित्तः = समासक्तमनाः, अपि च पलाशमच्छमः = मूलशैवालमस्मिनीपत्रैराच्छादितः । सूत्रे तु प्राकृतत्वात् मच्छमच्छमस्य व्यत्ययन पूर्णनिपात । उन्मार्गम् = ऊर्ध्वमार्गं = जलाद् बहिर्विधेयं न समते, तथा सः = अनात्मप्रज्ञः उन्मार्गम् = ऊर्ध्वमार्गं = मोक्षमार्गं न समत इत्यर्थः । यथा जलाशयसमासक्तताञ्जलशैवालकमस्मिनीपत्राच्छादितत्वात्प कच्छपो इव एव विष्टवि न जलाद्बहिर्विधेयं मानोति, तथा जनात्मप्रज्ञः संसारमहाहृदे

जो शिपिल है—उस तरफ जिनकी प्रवृत्ति नहीं है, ऐसे वेसे जाते हैं। सू० २।

तथा—“ से बमि ” इत्यादि ।

सूत्रकार कहते हैं कि मैं अनात्मप्रज्ञका दृष्टान्त कहता हूँ । जिस प्रकार महाहृद ( ब्रह् ) भादि जलाशयमें रहता हुआ कच्छप उसमें रहे हुए जल दौबाल और कमलपत्रोंसे ढका रहने पर जलसे बाहर होकर-तट नहीं पाता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ है वह भी जय तक संसार से बाहर नहीं होता तब तक मुक्तिके मार्गको प्राप्त नहीं करता है ।

भावार्थ—जैसे जलाशयमें रहा हुआ कच्छप कि जिसकी भावना उससे बाहर निकलनकी नहीं है, प्रत्युत उसीमें रहनेके लिये जिसका

नधी, जेवा देभाव छे ( सू २ )

तथा—“ से बमि ' इत्यादि ।

सूत्रकार बड़े छे के के कुं जनात्मप्रज्ञतु ल्यात कर्तुं कुं जे शीते महाहृद ( ब्रह् ) भादि जलाशयमां श्चेत्वार हावयेतेमां श्चेत्वा जण, सेवान् जने भरणपत्रेभां हांकेल श्चेवाधी पदार नीकणी किनरो भेजवी शकतो नधी जेव प्रक्षरे जे जनात्मप्रज्ञ छे जे पवु जयां सुधी सत्वारधी पदार नधी बतो त्यां सुधी मुञ्जितना भाजने भेजवी शकतो नधी ।

भावार्थ—जेवी शीते जलाशयमां श्चेत्वा हावयेते के जेनी भावना पदार निकलवानी नधी पवु तेमां श्चेवाने भाटे जेतु मन आसउव छे जने तेमां



मनसा प्रज्ञानवता=हेयोपादेयबुद्धिमता मनुष्याणां मुक्तिमार्ग=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप कीर्तयति=कथयति । एवं भगवता गणधरादिना वा मोक्षमार्गं प्रतिबोधिते सति एके केचिद् महावीराः कर्मरिपून् विनाशयितुं सयमरणाद्गणे विपराक्रमन्ते=विशेषेणात्मनः शक्तिं प्रकटीकुर्वन्ति । एकान्=काश्चित् मोहविवशान् कातरान् अन्यत्रप्रज्ञान्=भगवद्देशनेतरविषयसलम्बोपयोगान् अतएव-विपीदतः=प्रियवियोगा-प्रियसंयोगेप्सितानवाप्तिप्रभृतिभिः पीड्यमानान् पश्यत, यद्वा-‘अणत्तपन्ने’ इत्यस्य -‘अनात्मप्रज्ञान्’ इतिच्छाया । आत्मने हिता प्रज्ञा-आत्मप्रज्ञा अविद्यमानाऽऽत्म-प्रज्ञा येषां ते अनात्मप्रज्ञा, तान् विपीदतः=सयमाराधने श्लथीभवतः-सयमं प्राणियोंकी हिंसाका जिन्होंने परित्याग कर दिया है, अपने धर्मकर्मके आचरणमें ही जिनका मन तल्लीन रहता है, और जो हेय और उपादेयकी बुद्धिसे समन्वित है । इस प्रकार भगवान् वा गणधरादिकोंके द्वारा मुक्तिका मार्ग समझाये जाने पर भी कोई एक मनुष्य कर्मरूपी शत्रुओंको परास्त करनेके लिये संयमरूपी युद्धांगणमें विशेषरूपसे अपनी शक्ति प्रगट करते हैं, कोई एक मोहसे कातर बने हुए अन्यत्र-छी पुत्र आदि सांसारिक पर पदार्थोंमें-जो भगवान्की देशनासे बाह्य-भिन्न विषय हैं उनमें-फँसे रहते हैं और निरन्तर इष्ट-प्रिय-वियोग और अनिष्ट-सयोग तथा अभिलषितकी अप्राप्ति आदिसे पीडित होते देखे जाते हैं । “अणत्तपन्ने” इसकी संस्कृत छाया “अनात्मप्रज्ञान्” भी है । इसका अर्थ होता है, कि जो आत्मप्रज्ञावाले नहीं है-अर्थात् आत्माकी हितकारक बुद्धिसे जो शून्य है, अतएव सयमके पालनके लिये

એની હિંસાને જેમણે પરિત્યાગ કરેલ છે, પોતાના ધર્મકર્મના આચરણમાં જેનું મન તલ્લીન રહે છે, અને જે હેય અને ઉપાદેયની બુદ્ધિથી સમન્વિત (યુક્ત) છે આ પ્રકારે ભગવાન અથવા ગણધરાદિકોદ્વારા મુક્તિનો માર્ગ સમજાવવામાં આવ્યા છતાં પણ કોઈ એક મનુષ્ય કર્મરૂપી શત્રુઓને પરાસ્ત કરવામાં સયમરૂપી યુદ્ધભૂમિમાં વિશેષરૂપથી પોતાની શક્તિ પ્રગટ કરે છે કોઈ એક મોહપાસમાં બંધાઈને સીં પુત્ર આદિ સાંસારિક પદાર્થો કે જે ભગવાનની દેશનાથી બાહ્ય-ભિન્ન વિષય છે એમાં ફસાઈ રહે છે અને નિરંતર ઇષ્ટ-પ્રિય-વિયોગ તથા અનિષ્ટ સયોગ અને અભિલષિત અપ્રાપ્તિરૂપ પીડાઓથી પીડિત થતા દેખાય છે “અણત્તપન્ને” આની સંસ્કૃત છાયા “અનાત્મપ્રજ્ઞાન્” પણ છે આનો અર્થ એ થાય છે કે જે આત્મપ્રજ્ઞાવાળા નથી અર્થાત્ આત્માની હિતકારક બુદ્ધિથી જે શૂન્ય છે, અતઃ સયમના પાળવામાં જે શિથિલ છે-એ તરફ જેની પ્રવૃત્તિ

कीयथीवां प्रवेश्योर्ध्वमदशे बभूवन्चारं चक्रे । ततोऽसौ शरषन्त्रिकया शुक्लीकृते  
 बहुतरतारकासमलंकृते गगनतल विद्योत्थमानं पूर्णचन्द्रमलाकयत् । तदपलोक्-  
 मन पाठीव ममूदितस्य तस्य मनसि निचारः समुद्रपथत, यदि मदीयबान्धवा एषत्  
 स्पर्सासदृशमदृष्टपूर्वं पश्यन्ति ततः शोभनं भवदित्येतदवधार्य चन्पूनाम वेपणार्थमितभे  
 तव बध्नाम । संमाप्य च निजान् परिवारान् पुनरपि त्वं पिबं मर्त्यायितुं सर्वत  
 पर्यटति स्म । नलाश्रमस्य तस्य निस्तीर्णतया तद्दृक्प्रमाप्नुयाच्च पुनरसौ त्वं पिबं  
 न छेमे । तद्वत् संसाररुदे जीक्कच्छपः कर्मत्रैवालविषादिह मनुष्यार्थक्षेप्रसुक-

एक कण्ठवा भूमता २ वहाँ पर आ निकला । उसने उस शैवालके विषरमें  
 अपनी ग्रीवाको निकाल कर ऊपरको देखना प्रारंभ किया तो क्या  
 देखता है कि शरदकालीन चन्द्रिका-ज्योत्स्नासे शुभ्र एवं अनेक तारोंसे  
 प्रकाशित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमण्डल बसक रहा है । उसे देखकर वह  
 बिसमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ और विचारने लगा-कि अहा ! यह कितना  
 सुरम्य दृश्य है । यदि मेरे समस्त चन्पुजन इस अदृष्ट पूर्व स्वर्ग जैसे  
 सुन्दर प्रदेशको देखे तो बहुत भण्डा हो । ऐसा निश्चय कर वह अपने  
 चन्पुओंकी म्बोजमें वहाँसे निकला और इधर उधर घूम २ कर उनकी  
 तपास करन लगा । जब वे सब उसे मिल गये तो वह उन्हें साय छे  
 कर उस विषरकी ओर चला, परन्तु यह जलाशय अधिक विस्तृत  
 और अधिक पानीसे पूर्ण बरा हुआ था, इसलिए उसे वह विषर फिर  
 न मिल सका । इसी प्रकार यह अनात्मप्रज्ञ जीवरूपी कण्ठवा भी इस  
 संसाररूप्य इदमें पडा हुआ है और कर्मरूपी शैवालक विषरसे

शरीर उपर लेवा मांडपु तो मुं लुमे छे के शरदकालीने अदनी ज्योत्स्नाधी  
 शुभ्र अने अनेक तारकोशी प्रकाशित आकाश के जेभा पूव अद्रमडग बभूवी  
 रसु छे ते जेध भतभा अचत पुथी उपल अने विषरत्वा वाग्नेके अड्ड ।  
 डेटल्लु सुरम्भ इत्य छे जे भाश समस्त वपुज्जन्म्य अछत्पूव स्वर्ग ७वा  
 मुंर प्रदेशने लुमे तो पल्लु साईं भाव जेवा निश्चय करी ते पीवान्य वमु  
 वपनी शेषभा नीकलो अने आये अजणो करी जेनी तपास इत्य मांडपु,  
 अघारे वभा तेने भगी अथा त्वारे ते जे वधाने साधमां लथ छिद्रनी  
 वरक आग्ने, परत वज्जशय पून भोटुं अतुं अने वज्जधी पूरेपूईं सरैव वतुं  
 आधी जेने जे छिद्र करी भगी राडपु नही आ अ रीते अन्धमप्रस लवइपी  
 क्षयवे पवु सचाइपी इडभा पडेव छे अने इभइपी देवान्य विषरधी

विषयनिविष्टचित्तत्वात् कर्मपटलाच्छादितत्वाच्च तत्रैव निमज्जन् अवतिष्ठते, न तु मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ।

यद्वा-उन्मार्गम्-ऊर्ध्वमार्गं विवररूपं न लभते । अयं भावः-कश्चिन्महाह्रदः शैवालाच्छादितो विविधजलचराश्रय आसीत् । तत्रैकदा तत्तटस्थजम्बूवृक्षस्य सुपक्व फलमेकं शैवालोपरि निपपात, येन शैवालमध्ये कच्छपग्रीवामात्रप्रमाणं विवरं सजातम् । अथ निजयूथपरिभ्रष्टः कश्चित् कच्छपो भ्राम्यन् शैवालमध्यगते विवरे स्व-

चित्त आसक्त है और जो उसमें रहनेसे ही जल, शैवाल, कमलिनीके पत्रोंसे लिपटा रहता है, कभी भी वह ह्रद (द्रह)से बाहर नहीं होता, प्रत्युत उसीमें मग्न रहता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ हैं वे ससाररूपी महाह्रदमें विषयोंमें आसक्त तथा कर्मपटलसे आवृत होनेके कारण डूबते उतराते रहते हैं और मुक्तिके मार्गसे सदा वंचित बने रहते हैं ।

अथवा-उन्मार्गं शब्दका अर्थ विवर (छिद्र) रूप ऊर्ध्वमार्ग है । महाह्रदके कच्छपकी तरह अनात्मप्रज्ञ जीव इस मार्गको नहीं पाते हैं । जैसे कोई एक महाह्रद था । उसमें बहुत ज्यादा शैवाल-काई छाई हुई थी । उसमें अनेक जलजन्तु रहते थे । उसके तट पर एक जामुनका वृक्ष भी था, जो पके हुए फलोंसे लदालद भरा हुआ था । उसमेंसे एक जामुन टूट कर उस महाह्रदकी शैवाल पर जा गिरा । उसके गिरनेसे उस शैवालपटलमें कच्छपकी गरदन प्रमाण जितना एक छिद्र हो गया । इसके कुछ समय बाद अपने समुदाय-साथियोंसे वियुक्त हुआ कोई

रहेवासी ने जल, सेवाज, कर्मजपत्रोथी लपटाई रहे छे, क्यारेय ते जणाशयथी अहार नथी नीकणतो, पक्षु तेमाज मज्ज रहे छे अे न रीते ने अनात्मप्रज्ञ छे, ते ससाररूपी भडाह्रदमा विषयोमा आसक्त तथा कर्मथी वेशयेल डोवाने कारखे दुणतो-अथडतो रहे छे अने मुकितना मार्गथी सदा वचित अने छे

अथवा-उन्मार्गं शब्दको अर्थ विवर (छिद्र) रूप ऊर्ध्वमार्ग छे भडाह्रदमा कायजानी माइक अनात्मप्रज्ञ लुव अे मार्गने भेजवी शकता नथी नेम डोई अेक मोटु जणाशय डंतु अेमा धबो न सेवाज-डीयड नमेव डतो अेमा अनेक जल-न तुअो रहेता डता अेना किनारे अेक नलुतु आड डंतु ने पाकेला इणोथी लय्यु पय्यु डंतु तेमाथी अेक नलु जणाशयमा सेवाज उपर नई पडयु अेना पडवाथी नमेवला सेवाजमा कायजानी डोक आवी शके अेवु छिद्र पडयु आना थोडा समय आइ पोताना साथी समुदायथी छुटो पडेल अेक कायजो त्या आवी पडोअ्यो तेबे ते सेवाजना छिद्रनी अहर पोतानी डोक

टीका=इय=यया मञ्जकाः=वृक्षाः सन्निवेशे=स्वकीय स्थानं न स्यन्ति=कर्म परतन्त्रतया स्यात्परत्वमासाद्य नापसरन्ति। परम्=अनेन प्रकारेण परके=अनात्मप्रज्ञाः, अनेकरूपपु=उच्चावचेषु कुलपु=उग्रभोगादिषु श्वाकादिषु च नाताः, रूपेषु=रूपादि विषयषु सक्ताः=वृद्धिमापन्नाः कर्म=सदुःखं स्तनन्ति=विलपन्ति, तथाहि-  
 “ क्षिमिदमचिन्तितमसहस्रमनिष्टमतिकष्टमनुपमं दुःखम् । सहसैवोपनतं मे, नैरपि कस्येव सत्त्वस्य ” ॥ १ ॥ इति ।

जैसे वृक्ष स्थावरनामकर्मके उदयकी परतन्त्रतासे स्थावरपर्यायकी प्राप्तिसे अपने स्थानको नहीं छोड़ते हैं इसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ जीव हैं वे भी उग्रभोगादि उच्च एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें उत्पन्न होकर रूपादिक पंच इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त गूढ़ हो बुरी तरह चिह्नाते हैं—कहते हैं कि जिस प्रकार नारकी अभिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट और अतिकष्टप्रद दुःखोंको महसा भोगते रहते हैं उसी प्रकार मेरी भी यही हालत है । इस प्रकारके ये दुःख मेरे ऊपर कहाँसे आ कर दूट पड़े ।

दुःखोंको भोगते हुए भी वे अनात्मप्रज्ञ जीव इनके मूलकारण कर्मोंसे बियुक्त नहीं होते हैं। यदि ऐसा ही होता कि जिन कर्मोंके उदय में जिनका फल भोग लिया जाय वैसे कर्म यदि नष्ट हो जाते या उनसे उनका छुटकारा हो जाता तो यह बात मानी जा सकती थी कि उन

केम वृक्ष स्थावरनामकमना उदयनी परतन्त्रतया स्थावरपर्याय के केमं केड स्थानभी जीव स्थानमां अवर अवस्थी क्रिया यती नभी अथवा ते पोते न्वां छे ते स्थगेशी इस्थामा पोतातु स्थान छेडी शकतु नभी, अ प्रकारे के अनात्मप्रज्ञ एव छे जे पक्ष कुलभोगादि क्वां अने न दाह आदि नीच कुलोंमां उत्पन्न भईने रूपादिक पाच इन्द्रियेना विषयोमा अत्यत सुख जनी अलग रीते दुखते रहे छे कहे छे के के प्रकारे नारकी अभिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट अतिकष्टप्रद इत्येने भोगव्या करे छे, जे न सीते भारी पक्ष जे न दाहत छे आ प्रकारनां जे दुख भारा उपर क्वांनी आवीतुटी पञ्चां

इत्येने भोगवता पक्ष जे अनात्मप्रज्ञ एव जेनां भूगकारण कर्मोभी छुटते नभी, कदाच जेवु छेत् के के कर्मोना उदयमां जेनु इण भोगनी देवामां आवे जेवां कर्मं कदाच नारा पामे अथवा जेनाभी तेना छुटकारे भई नव ते जे वात मानी शकत के जे कर्मोभी तेनी मुक्ति भई नही, परतु जेवु

लोत्पत्तिसम्यक्त्वपर्यन्तरूप व्योमतलं प्राप्य मोहपशात् स्वजनचिन्तया भोगचिन्तया वा ततः परावृत्तः सन् पुनः ससारमहाहृद एव पर्यटति न तु मोक्षमार्गं लभते । तस्माद् भवशतसहस्रदुर्लभं कर्मविवरभूत सम्यक्त्वं लब्ध्वा नैव तत्र प्रमादः कार्य इति ॥ सू० ३ ॥

अनात्मप्रज्ञानामन्यमपि दृष्टान्तमाह—‘भंजगा’ इत्यादि ।

मूलम्—भंजगा इव संनिवेशं णो चयंति, एवं एगे अणेग-रूवेहिं कुलेहिं जाया, रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, णिदाणतो ते ण लभंति मोक्खं ॥ सू०४ ॥

छाया—भञ्जका इव सन्निवेश नो त्यजन्ति, एवमेकेऽनेकरूपेषु जाताः, रूपेषु सक्ताः करुणं स्तनन्ति, निदानतस्ते न लभन्ते मोक्षम् ॥ सू० ४ ॥

मनुष्यपर्याय, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म और सम्यक्त्वका लाभरूप व्योमतल ( आकाश ) की प्राप्ति कर मोहके वशसे अपने सगे सम्बन्धियों की एव भोगोंकी चिन्तामें फँस कर उन सब प्राप्त हुए शुभ अवसरोंको व्यर्थ गवां देता है, और संसाररूपी महाहृदमें ही परिभ्रमण करता रहता है । वहाँसे वह अपने उद्धारके मार्गकी ओर नहीं बढ़ता है—मोक्षके मार्गको नहीं पाता है । इसलिये सूत्रकार शिक्षा देते हैं कि—हे शिष्यजन ! सम्यक्त्वको कि जिसकी प्राप्ति इस जीवको हजारों भवोंमें भी दुर्लभ है और जो कर्मोंका विवरभूत है, उसे प्राप्त कर फिर उसकी रक्षा करने में प्रमाद करना उचित नहीं है ॥ सू०३॥

अनात्मप्रज्ञाके ऊपर और भी दृष्टान्त सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘भंजगा इव’ इत्यादि—

मनुष्यपर्याय, आर्यक्षेत्र, सुकुलमा जन्म अने सम्यक्त्वना लाभरूप व्योमतल ( आकाश ) की प्राप्ति करी मोहना वश थर्थ पोताना सगा—सभधीओनी अने ओगोनी चिन्तामा इसाध अने प्राप्त थयेवा जधा सुअवसरने व्यर्थ शुभावी दे छे अने ससाररूपी महाहृदमा ज परिभ्रमणु करतो रहे छे ओभाधी अने पोताना उद्धारना मार्गनी तरङ्ग वधी शकतो नधी, मोक्षना मार्गने भेणवी शकतो नधी माटे सूत्रकार शिक्षा दे छे के छे शिष्यजन ! सम्यक्त्व के गेनी प्राप्ति हलदरे भवमा पणु आ लवने दुर्लभ छे अने जे कर्मना विवरभूत छे, अने प्राप्त करी तेनी रक्षा करवाभा प्रमाद करवेा उचित नधी ( सू०३ )

अनात्मप्रज्ञा अगेपीणु दृष्टान्त सूत्रकार प्रकट करे छे—‘भंजगा इव’ इत्यादि ।

अनात्मप्रज्ञानां तेषु तेषु कुलेषु जन्म कस्मै प्रयोजनाय भवती ? ति जिज्ञासायामाह—'अहं' इत्यादि ।

मूढम्—अहं पास तेहिं कुलेहिं आयत्ताय जाया ॥सू०५॥

जाया—अथ पश्य तेषु कुलेषु आत्मत्वाय जाताः ॥ सू० ५ ॥

टीका—मूढ हे शिष्य ! त्व पश्य, अनात्ममज्ञानेपु=उषाबधेषु कुलेषु आत्मत्वाय=आत्मकृतकर्मविपाकानुभवाय जाता =जन्म प्राप्ताः नानाविधदुर्दशापका भवन्ति, अतः श्रुतपारिधर्माराधनमथ भयस्करमिति ॥ सू०५ ॥

वियुक्त होते हुए भी, मधुपिन्दुकी प्राप्ति करनेके लिये लोलुपी मन हुए मनुष्यकी तरह, अल्प सुख और दुरन्त दुःखोंसे परिपूर्ण गृहस्थमायको नहीं छोड़ते हैं और दुःखोंसे दुःखित होते रहते हैं तो भी समस्त दुःखोंकी परम्पराका प्रधान कारण जो कर्मपन्थ है उससे वियुक्त नहीं होते हैं ॥ सू० ४ ॥

अनात्मप्रज्ञोका एन २ कुलोंमें जन्म किस प्रयोजनके लिये होता है इस प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं—“अहं पास” इत्यादि ।

सूत्रकार पूर्वोक्त जिज्ञासाका समाधान करने निमित्त शिष्यजनसे कहते हैं कि हे शिष्य ! अनात्मप्रज्ञोका जो उष्य मीथ कुलोंमें जन्म होता है वह उनके द्वारा पूर्वमें किये गये कर्मोंके विपाकके अनुभव करने के लिये होता है । कर्मोंके वे कठिनतर विपाकोंको भोगते हुए अनेक प्रकारकी दुर्दशाओंसे गृहीत होत रहते हैं । इसलिये इन दुःखोंसे छुटकारा पानका इलाज एक यही है कि श्रुतपारिधर्मक आराधन

परी क्या छटा पक्ष, मधुपिन्दुकी प्राप्ति करवा लेखुस अनेका मनुष्यकी माकक अक्षय भुभ अने अत्रचित्त दुःखोधी परिपूछुं वृक्षस्थभावने छठते नभी अने दुःखोधी दुःखित भते रहें छे तो पक्ष अमस्त दुःखोधी परम्परांनु करव के कर्मोप छे अनाधी छूरो यक्ष शकते नभी. ( सू ४ )

अनात्मप्रज्ञाने ते ते दुर्गोमां जन्म क्या प्रयोजनाय भवती १ म्मा प्रकारनी लक्षणायां सूत्रकार कहे छे. “अहं पास” इत्यादि ।

सूत्रकार पूर्वोक्त लक्षणायां समाधान करवा निमित्त शिष्यजनकी कहे छे हे हे शिष्य ! अनात्मप्रज्ञाने के उष्य नीथ दुर्गोमां जन्म क्या छे ते अनादाय पूर्वनां कहेवां कर्मोना विपाकना अनुभव करवा भाटे क्या छे कर्मोना के कठिनतर विपाकने भोजवतां के अनेक प्रकारनी दुर्दशाओंकी विपाक क्या छे म्मा भाटे के दुर्गोधी छुटकारा भेजक्याना कहेवा के कहेवा छे हे

किन्तु ते=अनात्मप्रज्ञाः निदानतः=दुःखस्य मूढकारणतः-कर्मत इत्यर्थः, मोक्षम्=वियोग न लभन्ते, तपःसयमानासेपनेन कर्मवन्मापगम न प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

अयं भावः—यथा वृक्षाः शीतवातातपच्छेदनभेदनशरणाकर्षणमोटनभङ्गनादि-  
नानाविधोपद्रवान् सहमाना अपि स्थावरनामकर्मोदयात्स्वस्थानतो विपुक्ता न  
न भवन्ति, तथा—अनात्मप्रज्ञास्तनयनिताभिस्तिरस्कृता अपि त्रिविधाधिव्याधिप-  
रिग्रस्ता अपि, राजपुरुषतस्करादिभिः सर्वस्नापहरणपुरस्सर लुण्ठिता अपि,  
मातापितृपुत्रकलत्रादिभिर्विपुक्ता अपि, 'मधुविन्दु' न्यायेनाल्पसुखदुरन्तदुःखपरि-  
पूरितगृहस्थभावमपरित्यजन्तः सरुहण गिलपन्ति, किन्तु सरुहदु खानुपङ्गनिव-  
न्धनकर्मवन्धतो विपुक्ता नैव भवन्तीति ॥ सु० ४ ॥

कर्मोंसे उसकी मुक्ति हो चुकी, परन्तु ऐसा तो होता नहीं है; क्यों कि फल भोगनेसे कर्मोंका सर्वथा विनाश नहीं होता है, प्रत्युत तप और सयम की आराधनासे ही जीव कर्मोंसे छुटकारा-मुक्ति पाता है। अनात्मप्रज्ञ मुक्तिके कारणोंसे परे रहते हैं। मोक्षके साधनोंका सेवन-आचरण नहीं करते, अतः कर्मवन्धसे रहित भी नहीं हो सकते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार वृक्ष, शीत, वायु, धूप, छेदन, भेदन, शाखा का खेचना, उसका मोड़ना और काटना आदि अनेक प्रकारके उपद्रवों को सहते रहते हैं, तो भी स्थावरनामकर्मके उदयसे वे अपने गृहीत स्थान से जुदा नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार अनात्मप्रज्ञ जीव भी पुत्र-स्त्री आदिकोंसे तिरस्कृत होते हुए भी अनेक प्रकारकी आधिव्याधियोंको झेलते हुए भी राजपुरुष एवं चौर आदिके द्वारा सर्वस्वहरणपूर्वक लूटे गये होने पर भी, और तो क्या, माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदिकोंसे

तो अननु नहीं, डेम डे इण लोगवयाथी कर्मोंने सर्वथा विनाश यतो नहीं, तप अने सयमनी आराधनाथी न एव कर्मोंथी मुक्ति भोगये छे अनात्मप्रज्ञ मुक्तिना कारणथी इर रहे छे मोक्षना साधनोंनु सेवन-आचरण करता नहीं माटे कर्मवन्धथी रहित पणु यता नहीं

भावार्थ—ये प्रकारे वृक्ष, शीत, वायु, धूप, छेदन, भेदन, अणने जे अणु डे तेने तोडवी, भरडवी आदि प्रकारना उपद्रवोंने सक्षा करे छे, तो पणु स्थावर नामकर्मना उदयथी योताना स्थान उपरथी डूरी शकतु नहीं आ न रीते अनात्मप्रज्ञ एव पणु पुत्र-स्त्री धत्यादिथी तिरस्कृत यतो डोवा छता, अनेक प्रकारनी आधि-व्याधिओमा रीणातो, राजपुरुष अने चौर वगेरथी सर्वस्व लुंटाई नवा छता पणु, माता, पिता, पुत्र अने स्त्री धत्यादिथी अलग

स्या मनुभवन्ति प्राणिनः । तद् यथा-कर्मविपाकोदयात् कश्चित् गण्डी=गण्डमा  
 सारोगयुक्तः, अथवा-कश्चित् कुष्ठी=कुष्ठरोगी, तथा-कश्चित्-राजासी=राजयक्ष्म  
 शान्=सपरागाकान्तः, तथा कश्चित् अपस्मारिकः=अपस्मारोगयुक्तः-सृगीरोगी,  
 तथा कस्यचित्-काण्डत्वम्=अक्षिरोगः, तथा-कस्यचित्-स्निग्धम्=जडता, तथा  
 कस्यचित्-कुम्भित्क=गर्भाभान्दोषात् एकधरणे इत्यत्र एकपाणौ न्यूनता वा-  
 हीनाइत्वम्, तथा कस्यचित् कुञ्जत्वम्=मातापितृशोभितयुद्धोपेय गर्भस्थावस्थाया  
 इत्यथमानः कुञ्जरोगः । तथा-हे शिष्य ! त्वं कश्चित्-उदरिण=उदररोगिण पश्य ।  
 तथा-कश्चित्-शूनिक=शोफरोगयुक्तं पश्य,  
 तथा-त्रासिन्=मस्मरोगिण पश्य । तथा-बेपर्क=कम्परोगयुक्तं पश्य । तथा-  
 पीठसर्पिणं=पीठसर्पेणं-इत्युद्गीतकाष्ठन संसरणशीलं पद्मगुणिवेषं पश्य ।  
 तथा-हृषीपदिनं=इतिपदरोगयुक्तं पश्य, तथा-मधुमदिनं=मधुमेहरोगयुक्तं पश्य ।

इन पूर्वोक्त गाथाओंमें सूत्रकारन प्रकट किया है । वे कहते हैं-कोई जाय कर्म  
 के विपाकसे १ गण्डमासा रोगसे पीडित रहता है, कोई २ कुष्ठी होता  
 है, कोई ३ राजयक्ष्मासे-क्षयरोगसे दुग्धी होता है कोई ४ अपस्मार-  
 सृगीरोगसे अक्रान्त रहता है, कोई ५ काणा होता है, किसीमें ६ जडता होती  
 है । किसीके ७ कुण्ठिता-हीनाहता होती है-गर्भाभानके दोषसे एक पैरमें या  
 एक हाथमें न्यूनताका नाम हीनाहता है । कोई ८ कुपडा होता है । माता  
 पिताके शोणित शुक्र दोषसे गर्भकी अवस्थामें यह रोग उत्पन्न होता है ।  
 कोई पेटके ९ रोगी है, कोई १० गुंगे है, किसीके ११ सृजमरोग है, किसी  
 को मस्मक १२ व्याधि है, किसीको १३ कम्परोग है, कोईके १४ पीठ  
 सर्पिका रोग है, इस रोगके रोगी काष्ठकी धिरेया बनवा कर उनके सहारे  
 से बसा करते हैं, ये एक तरफके पंगु कहलाते हैं । किसीके १५ हृषीपद  
 रोग होता है । इस रोगमें रोगीका पैर हाथीके पैर जैसा स्पूल हो

करे अत्र ३६६ उ कोष्ठ एव इमं विपाकमा जगत्मासा रोगाधी पीडित स्ते  
 उ कोष्ठ कोठने कोज अने उ कोष्ठ सन्ध्या-क्षयरोगाधी दुग्धी शान् उ  
 कोष्ठ अपस्मार-सृगी रोगाधी अक्रान्त ३६ उ कोष्ठ काणा अने उ कोष्ठमा जडता  
 दोष उ कोष्ठमा अत्र उपायोमा आनी दोष उ कोष्ठ कुण्ठिता दोष उ कोष्ठ  
 पेटने रोगी दोष उ कोष्ठ गुंगे दोष उ कोष्ठने शोक्र ( सोजने ) शान् दोष  
 उ कोष्ठने मस्मक व्याधि दोष उ कोष्ठने कम्परोग दोष उ कोष्ठने पीठसर्पिण  
 शान् दोष उ कोष्ठने रोगाधी हाडानी बोधीना आभारे भाते उ कोष्ठने मधु  
 मधुमेहरोगाधी दोष उ कोष्ठने हृषीपजाने शान् माथ उ कोष्ठने मधु



स्वकृतकर्मोदयाद् विविधरोगादिकं प्राप्नुवन्तीत्याह—‘ गंडी ’ इत्यादि ।

मूलम्—गंडी अहवा कुट्टा, रायंसी अवमारियं ।

काणियं झिमियं चैव, कुणियं खुजियं तथा ॥ १ ॥

उदरिं च पास मूयं च, सूणियं च गिलासिणिं ।

वेवयं पीढसर्पिं च, सिलिवयं महुमेहणिं ॥ २ ॥

सोलस एए रोगा, अक्खाया अणुपुठ्वसो ।

अह णं फुसंति आयंका, फासा य असमंजसा ॥ ३ ॥

मरणं तेसिं संपेहाए, उववायं चवणं च नच्चा ।

परिपागं च संपेहाए, तं सुणेहजहा तथा ॥४॥सू०६॥

छाया—गण्डी अथवा कुष्ठो, राजासी अपस्मारिकः ।

काणत्वं झिमियं चैव, कुणित्वं कुञ्जत्वं तथा ॥ १ ॥

उदारिणं च पश्य मूकं च, शूनिकं च ग्रासिनम् ।

वेपकं पीढसर्पिणं च, श्लीपदिनं मधुमेहिनम् ॥ २ ॥

पोडशैते रोगा आख्याता अनुपूर्वशः ।

अथ तं स्पृशन्ति आतङ्काः, स्पर्शाश्वासमञ्जसाः ॥ ३ ॥

मरणं तेषां संपेक्ष्य, उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा ।

परिपाकं च संपेक्ष्य, तच्छृणुत यथा तथा ॥ ४ ॥ सू० ६ ॥

टीका—सकलदुःखनिदानस्य कर्मणः सद्भावे कर्मणो वैचित्र्यादनेकरूपा अव-

किया जाय; कारण कि जगतमे जीवोंका कल्याण करनेवाली यही

एक वस्तु है ॥ सू० ५ ॥

अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे जीव अनेक प्रकारके रोगादिकोंको भोगते हैं, इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“गण्डी” इत्यादि।

कर्म सकल दुःखके कारण हैं। इसीलिये उनके विचित्र उदयमें जीव अनेक प्रकारकी अवस्थाओंका अनुभव करते हैं। इसी विषयको

श्रुतधारित्रूप धर्मन्तु आराधनं करे, कारणं के जगतमा एवेतु इत्याद्यु  
करनार आ ओकं व वस्तु छे ( सू० ५ )

पैताना करेवा कर्मोना उदयथी एव अनेक प्रकारना रोगादिने भोगवे  
छे आने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे “ गंडी ” इत्यादि ।

कर्म सकल दुःखनु कारण छे आ भाटे ऐना विचित्र उदयमा एव अनेक  
प्रकारनी अवस्थाओने अनुभव करे छे आ विषयने पूर्वोक्त गाथाओमा सूत्र

न्ति, तेषां=गृहाऽऽसक्तमनसामसमञ्जसरोगैः क्लेशितानां मरणं स्प्रेक्ष्य=पर्यालोच्य  
 उपपातं व्यर्जनं च दवानां ज्ञात्वा, तथा परिपाकं=मिथ्यात्वाभिरत्यादिजनितानाम  
 बाधोघरकाण्युदयावलिकाप्रविटानां कर्मणां शारीरमानसदुःस्वरूपं फलं स्प्रेक्ष्य=  
 विचार्य सकलदुःखमूलं कर्म समुच्छ्रयुं तपः समयमे प्रयतितव्यमित्यर्थः । मोः शिष्याः!  
 तद्=कर्मणां फलं यथा भवति तथा मया वक्ष्यमाणं शृणुत ॥ सू० ६ ॥

संसारिणो विविधं कर्मविपाकमनुभवन्तीति दर्शयितुमाह—‘सति पाणा’ इत्यादि।

से ही निमित्तका कपन समझना चाहिये। कर्मोंका उदय आस्यन्तर  
 निमित्त है और यह निमित्त तो प्रत्यक रोगोंमें साधारण कारण पड़ता  
 ही है। उन असमंजस रोगोंसे गृहस्थाश्रममें मग्न हुए जीवों—गृहस्थोंका  
 मरण देख कर तथा देवोंका भी उपपात—जन्म और व्ययम—मरण जान  
 कर, एवं मिथ्यात्व, अधिरति आदि कारणकलापसे उत्पन्न—बन्धवशाको  
 प्राप्त और अथाथा कालको छोड़कर उदयावलिमें प्रविष्ट ऐसे कर्मोंका  
 शारीरिक एवं मानसिक दुःस्वरूप फल अच्छी तरह विचार कर सकल  
 दुःखोंके मूल कारण इन कर्मोंको नाश करनेके लिये तप और संयममें  
 प्रयत्न करना चाहिये। शिष्योंको संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं  
 कि हे शिष्यजन ! इन कर्मोंका फल जिस प्रकार होता है उस प्रकार मैं  
 और कहता हूँ, सो तुम सुनो ॥ सू० ६ ॥

ससारी जन कर्मोंके विपाकको भोगते हैं—इसी बातको समझानेके  
 लिये सूत्रकार कहते हैं—“सति पाणा” इत्यादि।

४ निमित्त अने अनिमित्ततु कपन समञ्जसु लोभको इतिनि उदय आस्यन्तर  
 निमित्तते, ते निमित्त तेषां शरीरमां साधारणु मरुषु उच्यन्ते अथान्मसमंजस  
 शरीरमां सुदृक्काश्रममा मञ्ज रूहेवा लये—गृहस्थीतु मरुषु देवी तथा देवीना पञ्च  
 उपपात—जन्म अने व्ययन—मरुषु कर्माणि, मिथ्यात्व अधिरति आदि मरुषु कलापधी  
 रूपेण व पदस्थाने प्राप्त अने अथाथाकालने छेदने उदयावलीमा प्रविष्ट कोना  
 कर्मोना, शारीरिक अने मानसिक दुःखरूप इण सारी सीते विचार करी सकल  
 दुःखोना मूल कारण अ इतिने नाश करवा माटे, तप अने संयममां प्रयत्न  
 करवे लोभको शिष्योने संबोधन इत्य सूत्रकार कहे छे छे छे शिष्यजन ! अ  
 कर्मोनां इण ने प्रकारधी पाव छे को प्रकार हरीधी पनु तयोने कहुं छुं, ते  
 तमे संकथे ( सू० १ )

ससारी जन कर्मोना विपाकने बोधवे छे अ पात समञ्जववा सूत्रकार  
 कहे छे सति पाणा” इत्यादि—

एते षोडश रोगाः अनुपूर्वशः=अनुक्रमेण आख्याताः=रूयिताः । अथ=अनन्तरम् आतङ्काः=शीघ्र जीवितहारिणः शूलादयो व्याधिविशेषाः, स्पर्शाश्च गाढप्रहारदि-  
जनिताः दुःखविशेषाः असमञ्जसाः=क्रम-यौगपद्य-निमित्ता-निमित्तोत्पन्नाः स्पृश-  
जाता है, किसीके १६ मधुमेह हो जाता है, इस रोगके रोगीकी पेशाब  
शहद जैसे रगकी होती है और उसमें कीडियां लगने लगती हैं। ये १६  
रोग जो यहां यथाक्रमसे बतलाये गये हैं, ये सब अशुभ कर्मोंके उदयके  
फल विशेष हैं। कर्मोंके उदयमें जीवोंकी और भी क्या २ अवस्थाएँ  
होती हैं इन्हें “अथ ते स्पृशन्ति” इत्यादि श्लोकसे प्रकट करते हैं। कोई  
२ ऐसे भी रोग होते हैं कि जिनमें जीवनका शीघ्र ही अन्त हो जाता  
है; जैसे उदरशूल वगैरह। गाढ प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए दुःखोंका नाम  
स्पर्शा है। जिन रोगोंमें निमित्त चाहे क्रमसे मिलें चाहे अक्रम-एकसाथ  
मिलें, अथवा क्रम और अक्रमसे वे न भी मिलें; ऐसे क्रमिक और अक्र-  
मिक निमित्त और अनिमित्तोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनका नाम  
असमंजस है। ये भी अशुभोदयसे ही जीवोंके होते हैं।

शङ्का—अशुभोदय ही उन रोगोंकी उत्पत्तिका निमित्त है, फिर  
अनिमित्तसे भी असमजस रोगोंकी उत्पत्तिका कथन आपका ग्राह्य  
कैसे माना जा सकता है ?

उत्तर—यहां बाह्य कारणोंकी उपस्थिति और अनुपस्थितिकी अपेक्षा

પ્રમેહ થઈ બંધ છે, આ સોળ રોગ જે યથાક્રમથી અહીં બતાવ્યા છે આ બધા  
અશુભ કર્મોના ઉદયના ફળ છે કર્મોના ઉદયમા છવોની બીજી પછુ શુ શુ  
અવસ્થાઓ બને છે એને “અથ તે સ્પૃશન્તિ” ઇત્યાદિ શ્લોકથી પ્રગટ કરે છે  
કોઈ કોઈ એવો રોગ હોય છે કે જેનાથી છવનનો તરત જ અન્ત આવી  
બંધ છે, જેમકે ઉદરશૂળ વગેરે ગાઢ પ્રહાર આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ હુ ખોલું  
નામ સ્પર્શ છે જે રોગોમા નિમિત્ત આહે ક્રમથી મળે અથવા અક્રમથી. એ  
ન પછુ મળે એવા ક્રમિક અને અક્રમિક નિમિત્ત અને અનિમિત્તથી જે રોગ  
ઉત્પન્ન થાય છે તેનુ નામ અસમજસ છે આ પછુ અશુભ ઉદયથી જ  
છવોને થાય છે

શકા—અશુભોદય જ તે રોગોની ઉત્પત્તિનુ નિમિત્ત છે પછી અનિમિત્તથી  
પછુ અસમજસ રોગોની ઉત્પત્તિનુ આપનુ કથન ગ્રાહ્ય કેમ માનવામા આવે ?

ઉત્તર—અહીં બાહ્ય કારણોની ઉપસ્થિતિ અને અનુપસ્થિતિની અપેક્ષાથી

किञ्च—'सति पाणा' इत्यादि ।

मूक्य—सति पाणा वासगा, रसगा, उदक, उदयचरा, आ  
गासगामिणो पाणा पाणे किलसति ॥ सू० ८ ॥

श्या—सन्ति प्राणा वासगाः, रसगाः, उदके, उदकचराः, आकाशगामिन  
प्राणा प्राणिन ऋषेयन्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—वासगाः=शुभ्रकरणसमर्था द्वीन्द्रियादयः तथा रसगाः=तिक्तकटुकादि  
रसवेदकाः सतिष्ठन् इत्यर्थः, तथा-उदके=अप्याय स्थिता अप्कापिका इत्यर्थः, तथा  
-उदकचराः=जलचरा मत्स्यकण्ड्यादयः, अत्र स्वलक्षराः सर्पादयः पश्चिमभाषि  
केचन जलाभित्थाजलचरा उच्यन्ते । तथा-आकाशगामिनः=पक्षिणः, इत्येते  
प्राणाः=प्राणिनः सन्ति । ते सर्वेऽपि प्राणाः=प्राणिनः, प्राणान्=भ्यरान् जीधान्  
ऋषेयन्ति-आहारापर्यं श्रेयावेद्याद्वा पीडयन्ति ॥ सू० ८ ॥

रसना-इन्द्रियके सद्भावसे शब्द करनेमें समर्थ ऐसे द्वीन्द्रियादिक  
जीव, तथा तिक्त-कटुकादिक रसोंका अनुभवन करनेवाले संज्ञी जीव,  
पानी भादि फायमें स्थित अप्कायिक जीव-मछली कछुवा भादि जल-  
चर जीव, सर्प पक्षी बगैरह स्थलचर जीव और आकाशमें उड़नेवाले  
पक्षी भादि नभचर जीव ये सब प्राणी आहारादिकके निमित्त, वृत्तरे  
जीवोंको फलेशित करते हैं तथा श्रेयके आवेद्यासे उन्हें पीडा भी  
पहुँचाने हैं ।

भाषार्थ—द्वीन्द्रियसे लेकर संज्ञी असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त समस्त  
जलचरादिक जीव परस्परमें एक वृत्तरेके आहारादिकके निमित्तसे

पितानी कल्पना नहीं; परंतु आ शब्द ज्ञान वचन छ जेवु अमल भाश वचने  
पर तमे निश्चास सपे ( सू ७ )

रसना छन्द्रियना सद्भावधी शब्द कल्पनां समस्त जेवा द्वीन्द्रियादिक  
एव तथा तिक्त कटुका आदि रसेनो अनुभव कल्पनावाण सज्ञी एव पाण्डुमां  
रसेनारा अप्कायिक एव-मछला कछुवा वजेरे जलचर एव, सर्प पक्षी  
वजेरे स्थलचर एव जने आकाशमां उडनासं पक्षी आदि नभचर एव आ  
अथ प्राण्णी आकाशदिकना निमित्तधी पीडा एवोने कलेशित करे छ तथा श्रेयना  
अवेद्याधी जेभने पीडा पण फलेशिते छ

भाषार्थ—द्वीन्द्रियधी जगती सज्ञी असज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यंत समस्त  
जलचरादिक एव परस्परमां जेके पीडने आहारादिकना निमित्तधी अथवा श्रेयादिकना

मूलम्—सन्ति पाणा अंधा तमसि वियाहिया, तमेव सइं असइं अइअच्च उच्चावयफासे पडिसंवेणइ, बुद्धेहिं एयं पवेइयं ॥७॥

छाया—सन्ति प्राणा अन्धास्तमसि व्याख्याता, तामेव सकृत् असकृत् अतिगत्य उच्चावचान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयन्ति, बुद्धैरेतत्प्रवेदितम् ॥ सू० ७ ॥

टीका—ये प्राणाः=प्राणिनः तमसि=द्रव्यान्यकारे नस्कादौ भावान्यकारे मिथ्यात्वादौ वा सन्ति=विद्यन्ते ते अन्धाः=हेयोपादेयविवेकरहिताः व्याख्याता=कथितास्तीर्थङ्करैः । किंच—तामेवावस्था गण्डकुष्ठादिरोगजनितामेकेन्द्रियादिजातिप्राप्तिरूपां वा, सकृद्=एकवारम् असकृत्=अनेकवारं वा अतिगत्य=अनुभूय तत्र उच्चावचान्=तीव्रमन्दान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् प्रतिसंवेदयन्ति=अनुभवन्ति, उक्तं वक्ष्यमाणे च विषये श्रद्धोत्पादनाय सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिन प्रत्याह—बुद्धैरित्यादि । एतद् बुद्धैः=सर्वज्ञैस्तीर्थङ्करैः प्रवेदितम्=प्रवोधितं तस्मादेतन्मम वचनं श्रद्धेयमिति भावः ॥ सू० ७ ॥

जो प्राणी द्रव्य अन्धकाररूप नरकादि गतियोंमें एव भाव-अन्धकाररूप मिथ्यात्व आदिमें वर्तमान हैं वे द्रव्यरूपसे सूक्ष्मते होते हुए भी हेय और उपादेयके विवेकसे रहित होनेसे भावरूपसे अंधे ही हैं ऐसा तीर्थङ्करोंका कहना है । ऐसे ही जीव गण्डकुष्ठादि रोगोंसे विशिष्ट अवस्था एवं एकेन्द्रियादिक जातिकी प्राप्तिरूप पर्यायको बारबार या एक बार भोगकर तीव्र और मन्द दुःखविशेषोंको भोगा करते हैं । कहे गये अथवा आगे कहे जानेवाले विषयमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीके प्रति कहते हैं कि ये जो कुछ मैंने कहा है, अथवा आगे भी जो कुछ कहा जायगा वह मेरी निजी कल्पना नहीं है, किन्तु यह सर्वज्ञके वचन है, ऐसा समझकर मेरे वचनों पर तुम विश्वास रखो ॥ सू० ७ ॥

ये प्राणी द्रव्य अन्धकाररूप नरकादि गतियोंमें, भाव अन्धकाररूप मिथ्यात्व आदिमें वर्तमान हैं ते द्रव्यरूपकी हेयता होवा छता पशु डेय अने उपादेयता विवेकशी रहित होवाशी भावरूपकी आधारणा है, ऐसे तीर्थङ्करोंके कहेहुं छे अथवा एव गण्ड, कुष्ठादि रोगोंना भोग अनी अने एकेन्द्रियादिक जातिनी प्राप्तिरूप पर्यायने अथवा बारबार भोगवी तीव्र अने मन्द दुःख धिया छिने भोगवे छे कहेवाछे गये ल अथवा आगण कहेवाभा आवनार विषयमें विश्वास उत्पन्न करवा भाटे श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीने कहे छे के आगे कहे मे कहु छे अने आगण पशु ने काँ कहेवाभा आवशे अे मारी

संसारिणां क्यमीदृशी दशा मन्वीति जिज्ञासायामाह 'सत्ता कामेहि' इत्यादि ।

मूळम्—सत्ता कामेहि माणवा अवलेण वह्ण गच्छति सरीरेण पमसुरेण ॥ सू० १० ॥

छाया—सत्ताः कामेषु मानवाः अवलाय पपं गच्छन्ति शरीराय पमसुराय । १० ।

टीका—मानवाः=मनुष्याः कामेषु=विषयमोगेषु सत्ताः=अनुरक्ता सन्ति, अतः पमसुराय=क्षणमसुराय क्षमाक्षमपरिणामितया स्वत एव प्रतिक्षणविनाशने अवलाय=निःसाराय शरीराय=भौदारिकशरीराय-शरीरपुष्ट्यर्थमिति भावः । बन्ध=

कभी मनुष्यगतिके दुःखोंसे । इन कर्मोंके सदासे भाभीन रहनेबाछे मेरी क्या दशा होगी ? ऐसा बिनारूप महाभय प्रत्येक सचेतन प्राणीके हृदयमें बना ही रहता है; अतः अनेक प्रकारके दुरन्त नर्योंसे घिरे हुए ये अनन्त संसारी जीव हैं, और इसी कर्मोदयके बंधसे ये बिषारे रात दिन अनन्त फट्टोंका भी सामना करते रहते हैं ॥ सू० ॥

संसारी जीवोंकी ऐसी दशा क्यों होगी ? इस प्रकारकी जिज्ञासाके समाधाननिमित्त सूत्रकार कहते हैं—“सत्ता कामेहि” इत्यादि ।

अवतरणरूप शङ्कतक समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि काममोगोंमें मग्न होनेसे मनुष्यको थोड़ा भी अवकाश प्राप्त नहीं है, अतः उन काममोगोंका साधनभूत इस भौदारिक शरीरकी पुष्टिके निमित्त वे अनुचित उपायोंका भी आचरण करते रहते हैं । नरकमिगो शक्तिके अनन्त दुःखोंकी कारणभूत अन्य प्राणियोंकी हिंसा करते हुए भी ये अवकाश नहीं हैं । इन्हें स्वप्नमें भी यह बिषार नहीं आता कि जय

आवा इतिने सदा भाभीन रहनेनार भाशी शु दशा कठी ? जेवो बिन्तारुपी महा भय प्रत्येक सचेतन प्राणीना हृदयमां मन्यो रहे छे आवा अनेक प्रकारना निकट कथोधी बेशयेव अनन्त संसारी एव छे इमोदयना बंधभी आ जिवाश रात दिन अनन्त कछोने खातनेो कस्ता रहे छे (सू ६)

संसारी लोकेनी जावी दशा डेम भाष छे आ प्रकारनी लुखासाना सभा धननिमित्त सूत्रकार कहे छे. 'सत्ता कामेहि' इत्यादि—

अवतरणरूप शङ्कतक समाधान करता सूत्रकार कहे छे छे काममोगेमां भय कथोधी मनुष्यने भाये पक्ष अवकाश भणतो नधी. काममोगेना साधनभूत आ भौदारिक शरीरनी पुष्टिना कारणे जे अनुचित उपायेनु पक्ष आचरण कस्ता रहे छे नरकनिवाहिकनां अनन्त दुःखोना कारणे अन्य प्राणीजोनी बिधा करतामां पक्ष जे अवकाश नधी. जेभने स्वप्नमां

पुनरपि संसारिणा दशां दर्शयितुमाह—‘ पास लोए ’ इत्यादि ।

मूलम्—पास लोए महबभये, बहुदुःखा हु जंतवो ॥सू०९॥

छाया—पश्य लोके महद्भयं, बहुदुःखा हु जन्तव ॥ सू० ९ ॥

टोका—हे शिष्य ! लोके=चतुर्दशरज्ज्वात्मके जगति महद्भयं=ज्ञानावरणीयादि-कर्मोदयवशात् प्राणिनामनादिकालतो विविधं दुरन्तं भयं पश्य । हु=यतः जन्तवः प्राणिनः, बहुदुःखाः=कर्मोदयवशाद् विविधानन्तदुःखाः सन्ति ॥ सू०९ ॥

अथवा द्वेषादिकके आवेशसे पीडित किया करते हैं । कोई २ पक्षी भी जो जलके ही आश्रित रहते हैं जलचर माने गये हैं ॥सू०८॥

पुनरपि संसारी जीवोंकी दशाको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“ पास लोए ” इत्यादि ।

शिष्यको संबोधन करते हुए सूत्रकार कह रहे है कि हे शिष्य ! तुम देखो, इस संसारमें जीवोंको थोड़ी सी भी शांति नहीं है । उनके पीछे अनेक प्रकारके भय लगे हुए हैं । अनेक शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंसे वे रातदिन व्यथित हो रहे हैं ।

यह लोक १४ राजू प्रमाण है । इसमें जितने भी जीव हैं वे अनादि कालसे ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके उदयके वशमें पड़े हुए हैं । इस कारण वे भयसहित हैं । क्यों कि परतन्त्रतामें स्वतन्त्रताका अभाव होने से सदा भय ही भय बना रहता है । कभी ये नरकनिगोदादिककी कथाओं को सुन कर उससे भयभीत होते हैं, कभी तिर्यग्गतिके दुःखोंसे, तो

आवेशथी पीडित कर्था करे छे केछ केछ पक्षी पक्षु ने जगता न आश्रित छे अने जलचर मानवामा आवेश छे ( सू० ८ )

ससारी लुवोनी दशाने प्रकट करवा भाटे इरीथी सूत्रकार कहे छे—  
“ पास लोए ” इत्यादि—

शिष्यने संबोधन करता सूत्रकार कहे छे के हे शिष्य ! तुमो, आ ससा-रमा लुवोने थोडी पक्षु शानि नथी अनी पाछण अनेक प्रकारना लय लाग्या रहे छे शारीरिक अने मानसिक कष्टोथी अने रातदिवस अकणता रहे छे

आ लोक १४ राजूप्रमाण छे, आमा नेटला पक्षु लुव छे अने अनादि-कालथी ज्ञानावरणीय आदिउभोना उदयना वशमा पक्षु छे आ कारखे अने लयमा छे कारखे के परतत्रतामा स्वतत्रताने अभाव होवाथी सदा काल लयन लय अन्या रहे छे, क्यारेक अने नरकनिगोदादिकनी कथाओ सामणी अनाथी लयलीत अने छे, क्यारेक तिर्यग्गतिना दुःखोथी, तो क्यारेक मन्यगतितना दुःखोथी

भाषार्थ—शरीरमें जब कोई विद्येय व्याधि हो जाती है, और उपाय करते हुए भी जब उसकी शांति नहीं होती है तो रोगीके चित्तमें अनेकों प्रकारके संकल्प-विकल्प उठने लगते हैं। इन संकल्पविकल्पोंके मध्यमें पड़ा हुआ वह रोगी कभी अपने अपाय की चिन्तासे ग्रसित होता है, कभी इन इष्ट पदार्थोंका वियोग मुझसे हो जायेगा इस प्रकार की दुर्भावनासे व्याकुल होता है, हाय! अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ये बातें अब नहीं सहे जाते, मर जाऊँ तो बहुत अच्छा-इत्यादि रूपसे सोलता हुआ आर्तरौद्र ध्यानको ध्याता है। इस स्थितिमें पड़े हुए उस जीवको जो भी कोई उपाय बताता है वह उन उपायोंको भी करनेके लिये कटिबद्ध हो जाता है। वेइसे जीवका अत्यन्त ममत्व होनेसे वह की पीडासे यह रोगीको मिटानेके लिये अनेकानेक हिंसाजन्य कार्य करता है। कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है इस प्रकारकी निर्णय बुद्धि गुमा बैठता है। इस हालतमें यदि कोई उससे यह कह देता है कि अमुक पशुकी बलि देनेसे यह रोग शान्त हो जाता है तो वह उस जीवकी भी हिंसा करनेसे नहीं बूझता है। शरीरकी पुष्टिके निमित्त भी इसी प्रकारसे अज्ञानी मनुष्य अन्य जीवोंकी हिंसा करनेमें चूणा नहीं करता ॥सू०११॥

भाषार्थ—शरीरमा आरि कौं विद्येय व्याधि कौं जय छे जने उपाय करवा छव्वां पद्य आरि जेनी शांति कती नथी त्पारि शरीरमा चित्तमा अनेक प्रकारमा संकल्प-विकल्प उठवा छवे छे आ संकल्प-विकल्पेना दुर्भावनामा परेवे छे शरीर आरि कौं योताना अपायनी चिन्ताथी ऐसकँ जय छे आरि कौं जय जेने छे छेने आरि बहुत पद्ये-ज्य प्रकारनी दुर्भावनाथी व्याकुल जने छे कय। कवे शु कर्? कयां जेनी ज्य दुर्ज कवे सहेवातुं नथी मरी जेठं तो पद्युं साईं आ रीते बिलतवा आर्त रौद्र ध्यानमा परी जय छे आ स्थितिमा परेवे छे छेने जे कौं पद्य उपाय बताववामां आवे तो ते जे उपायेना करवामां कटिबद्ध जने छे देकथी छवतु अत्यंत ममत्व छेवाथी देकनी पीडाथी जे शयने मटा वर अनेकानेक हिंसाजन्य कार्य करे छे कर्तव्य शु छे? जने कर्तव्य शु? जेने निर्णय करवानी विवेकबुद्धि शुभावी जेसे छे आ बिलतमा कौं जेने जेवु कवे के अमुक पशुनुं बलिदान देवाथी ज्य शत्रु मदी जय तो ते जे छेने पद्य हिंसा करवानुं मुहता नथी। शरीरनी पुष्टिके निमित्त अज्ञानी छेव ज्य प्रकारे जेने छेवेनी हिंसा करवामां मूषा करवा नथी।(स०११)



नरकनिगोदाद्यनन्ददुःखहेतुभूतां प्राणिहिंसां तज्जनितकर्मबन्धं च गच्छन्ति=प्राप्नु-  
वन्ति-कुर्वन्तीत्यर्थः । सूत्रे चतुर्थ्यर्थे तृतीयाऽऽर्पत्वात् ॥ सू० १० ॥

किञ्च—‘ अष्टे ’ इत्यादि ।

मूलम्—अष्टे से बहुदुःखे, इति वाले प्रकृष्यति ।

एते रोगे बहू णच्चा, आउरा परितावए ॥ सू० ११ ॥

छाया—आर्तः स बहुदुःख, इति बालः प्रकुरुते ।

एतान् रोगान् बहून् ज्ञात्वा आतुराः परितापयन्ति ॥ सू० ११ ॥

टीका—आर्तः=आर्तरौद्रघ्यानवर्ती, अत एव बहुदुःखः=शरीरमानसविविध-  
दुःखाक्रान्तः स बालः=अज्ञानी-कर्तव्याकर्तव्यमूढः इति=एतादृशं कर्म इति=एवम्  
उक्तविधं प्राणिवध वा प्रकुरुते । एतान्=उक्तरूपान् बहून्=बहुविधान् षोडशप्रकारान्  
रोगान्=ज्ञात्वा प्राप्य आतुराः=रोगपीडिताः परितापयन्ति=व्याधिप्रशमनार्थं शरीर-  
पुष्ट्यर्थं च एकेन्द्रियादिप्राणिगणसुपमर्दयन्ति ॥ सू० ११ ॥

सांसारिक प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील हैं तो यह मेरा शरीर भी उसी  
प्रकारका होनेसे क्षण २ में स्वतः गल रहा है । यह स्वयं तो निःसार है,  
पर इससे सार प्राप्त किया जा सकता है ॥सू० १०॥

शारीरिक एव मानसिक अनेक रोगोंसे आक्रान्त वह अज्ञानी प्राणी  
कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे विमूढ हुआ आर्त और रौद्रघ्यानके वशवर्ती  
बन प्राणिहिंसा जैसे अनर्थोंके करनेमें कुछ भी आगे पीछे का विचार  
नहीं करता । कण्ठमाल, कुष्ठ आदि १६ प्रकारके रोगोंसे जब ऐसे प्राणी  
अत्यन्त पीडित होते हैं तब वे अपनी उस २ व्याधिके प्रशमनार्थ अथवा  
शरीरकी पुष्ट्यर्थ एकेन्द्रियादि प्राणियोंकी हिंसा करने लग जाते हैं ।

पशु के विचार नहीं आते। के न्यारे स सारी प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील  
छे तो भाइ आ शरीर पशु केवाज प्रकारनु छोवाथी क्षण क्षणमा पोते गणी रह्यु  
छे आ पोते तो निःसार छे छता येनाथी पशु सार प्राप्त करी शक्य छे (सू० १०)  
शारीरिक अने मानसिक अनेक रोगाथी अकणातो के अज्ञानी प्राणी  
कर्तव्याकर्तव्यना ज्ञानथी विमूढ बनी आर्त अने रौद्र घ्यानने वशवर्ती बनी  
प्राणिहिंसा केवा अनर्थी करवाभा कर्त पशु आगण-पाछणने विचार करते  
नथी कष्टभाण, डोढ, धत्यादि १६ प्रकारना रोगाथी न्यारे के अत्यन्त पीडित  
अने छे त्यारे के पोतानी के व्याधिना प्रशमन भाटे अथवा शरीरनी  
पुष्टि अर्थे केकेन्द्रियादि प्राणीकेहिंसा करवा लागी नथ छे

प्राण्युपमर्दनं महाभय-जन्ममरणादिमहाभयहेतुत्वात् । अतः कञ्चन=कम्प्येकेन्द्रि  
यादिकं प्राणिनं नातिपाठयत्=न प्राणेश्या व्यपरोपयत् । एकस्मिन्नपि प्राणिनि  
इत्यमाने ज्ञानावरणीयादिकं कर्म वक्ष्यते, तच्चानन्तसंसाराय सम्पद्यत । तस्मा-  
त्प्राण्युपमर्दनं महाभयम् ॥ १२ ॥

मरणविरूप महाभयके देनेमें कारणरूप होता है । अथवा कारणमें कार्यके  
उपचारसे महाभयका कारण होनेसे यह हिंसाकर्म स्वयं महाभयरूप है ।  
इसलिये आत्महितैषीका कर्मव्य है कि यह किसी भी एकेन्द्रिय जीव  
तकफी भी हिंसा न करे-उन्हें अपने प्यारे प्राणोंसे बियुक्त न करे । क्यों  
कि एक भी प्राणीका किया गया उपमर्दन कत्ताको ज्ञानावरणीयादिक  
आठ कर्मोंका बन्ध करानेवाला होता है । कर्मबंधसे जीव अनंत संसारी  
बनता है । इसलिये यह कर्म महाभयस्वरूप है ।

भाषार्थ—अशुभोदयसे जीवोंको व्याधियां होती हैं । जीवहिंसायुक्त  
चिकित्साविधिसे भी उन व्याधियोंका विनाश नहीं होता है ।  
अशुभोदयकी शांतिसे व्याधियोंका विनाश स्वयमेव हो जाता है ।  
चिकित्सा जबमूलसे रोगका नाश नहीं करती है, किंतु उस रोगको दया  
दती है यह यात आजकलक विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं । फिर  
हिंसामय चिकित्सासे व्याधियोंका विनाश मानना याजुका-रतसे तेल  
निकालनेकी घात मानने जैसी है । इस विधिसे जीव नवीन कर्मोंका  
पच करता है आठ रातदिन नीरोग अवस्था प्राप्तिके स्थानमें मरकर

के आ कर्मोंका करनार एव न म अने भरणरूप नकावधने शोचनवार अने  
छे. अन्तर्हितेऽशुभ के कर्म अ छे के ते केअं पवु ओकेन्द्रिय एवनी पवु हिंसा  
न करे-अने पिताना प्रवृथी नियुक्त न करे; केम के अक पवु प्राणीनु करवामा  
आवेश उपमर्दन, इत्यने ज्ञानावरणीय अदि कर्मोंने ए व करनार अने छे कर्म  
अधधी एव अनत संसारी अने छे आ भाटे आ हिंसाकर्म नकावधस्वरूप छे.

भाषार्थ—अशुभना उदयधी एवेने प्राणियों वायु पडे छे चिकित्सा  
विधि के जेमां अन्य एवेनु उपमर्दन इत्यभा आवे छत्वा आधी चिकित्सा  
शोचने नाश करी सकती नथी. अशुभोदयनी शांतिधी प्राणियोंने विनाश अप-  
भेजे धर्य अप छे शोचने समन भाटे इयनी उपपेयनिय स्वीकार्य छे एव  
हिंसा नहीं हिंसायगी चिकित्साधी प्राणियोंने विनाश मानवे अे रतीमांधी  
तेल इत्ये जेनी वात छे आ विधिधी एव नवीन कर्मोंना न प अपे छे अने  
निश्चयी अरस्था प्राप्त करवने मडवे अप कर असाध्य शोचनेने शोचनवार अने

આચાર્યઃ શિષ્યમુપદિશતિ—‘ નાલં ’ इत्यादि ।

मूलम्—नालं पास अलं तवेऽहिं, एयं पास मुणी ।

महब्भयं नाइवाइज कंचणं ॥ सू० १२ ॥

छाया—नालं पश्य, अलं तव एतैः । एतत्पश्य मुने ! महद्भयं नातिपत-  
येत्कञ्चन ॥ १२ ॥

टीका—हे मुने !, पश्य=विमलधियाऽवलोकय यथा नालं=कर्मोदयजनित-  
रोगान् निवर्त्तयितुं चिकित्साविधयो न समर्थाः सन्ति, तस्मात् तव=हेयोपादेय-  
विवेकवतः एभिः=कर्मबन्धकारणैश्चिकित्साविधिभिः अलं=पर्याप्तम् । किञ्च=एतत्=

“ नाल ” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यको उपदेश  
देते हुए कहते हैं—

मुनिकો લક્ષ્યકર સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ હે મુને ! નિર્મલ બુદ્ધિસે તુમ  
इस बातका विचार अवश्य २ करो कि जो भी रोग होते है वे सब इस  
जीवके अशुभ कर्मोदयसे होते है, उन्हें दूर करनेकी सामर्थ्य किसीमें  
नहीं है, जब तक अशुभका उदय बना रहेगा तब तक चिकित्सा होने  
पर भी उनकी शांति नहीं होगी, इसलिये कर्मोदयसे उत्पन्न हुए इन  
देहाश्रित रोगोंको हटानेके लिये कोई भी चिकित्साविधि समर्थ नहीं  
है। जब यह बात सिद्धान्तसिद्ध है, तो फिर चिकित्सानिमित्त  
अन्य प्राणियोंकी हिंसा करने जैसी चिकित्साविधि, जो केवल कर्म-  
बन्धका ही कारण है; क्यों किया जाय ! तथा अन्य प्राणियोंकी की गई  
हिंसा स्वप्नमें भी शांति नहीं दे सकती है, किन्तु यह महाभयप्रद ही  
होती है। कारण कि इस कर्मके कर्त्ता जीवको यह कर्म जन्म और

“नाल” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यને ઉપદેશ આપતા કહે છે—

मुनिनी साभे लक्ष राभी सूत्रकार कहे छे छे छे मुनि ! निर्मल बुद्धिथी  
તમે આ વાતનો અવશ્ય વિચાર કરો કે જે પણ રોગ થાય છે એ બધા જીવના  
અશુભકર્મોદયથી જ થાય છે, એને દૂર કરવાનું સામર્થ્ય કોઈનામાં નથી બધા  
સુધી અશુભનો ઉદય રહે છે ત્યા સુધી સારવાર છતા પણ એને શાંતિ થતી  
નથી એટલે કર્મોદયથી ઉત્પન્ન થયેલ આ દેહાશ્રિત રોગોને દૂર કરવામાં  
કોઈ પણ ચિકિત્સાવિધિ સમર્થ બનતી નથી બન્યારે આ વાત સિદ્ધાંતથી દઢ  
સાબીત થયેલ છે તો પછી ચિકિત્સાનિમિત્ત બીજા પ્રાણીઓની હિંસા કરવામાં  
આવે તો તે કર્મબંધનું જ કારણ છે આ રીતે કરવામાં આવતી પ્રાણિહિંસા  
સ્વપ્નમાં પણ શાંતિ લેવા દેતી નથી, અને તે મહાભયપ્રદ પણ બને છે કારણ

प्रतिज्ञात्मवर्माह—'इह खलु' इत्यादि । इह=अस्मिन् मनुष्यलोके प्राणिनाः मातृप्रतया  
 अनादिकास्तो भीरुकर्मणोः सम्बन्धादात्मकृतकर्मपरिणत्या तेषु तेषु=विभिधेषु  
 स्वस्वकर्मोदयमापितेषु उग्रमोगादिब्रूचमेषु श्वाकादियु नीचेषु च कुलेषु अभिषेकेन  
 अशुक्रशोणितसंयोगादिक्रमेण अभिसंभूताः=जननीगर्भे कस्मान्स्यां प्राप्ताः, अभिसं-

जो विषय आगे कहा जानेवाला है यह बड़ी मुश्किलसे समझनेमें आवे  
 ऐसा है; इसलिये शिष्योंके धित्तको उस विषयकी ओर सावधान करते  
 हुए वे शिष्यजनोसे कहते हैं कि हे शिष्यो! तुम सावधानधित्त हो  
 कर ही इस विषयको सुनना; अन्यथा—ध्यायधित्त होओगे तो कुछ भी  
 समझमें नहीं आवेगा । यहाँसे बड़ी प्रस्तुत विषय कहा जाता है—

इस मनुष्यलोकेमें समस्त प्राणी कर्मोंके सम्बन्धसे परतन्त्र हो रहे  
 हैं । यह जीव और कर्मोंका सम्बन्ध आजका नहीं है किन्तु अनादिकाल  
 का है । इस सम्बन्धके कारण ही जीव कर्मोंके विपाकोदयसे उन २  
 गतियोंकी प्राप्तिके कारणमूल कर्मोंके उदय आने पर उग्रमोगादि विषिष्ट  
 उत्तम कुलोंमें एवं शण्डाल आदि नीच कुलोंमें मातापिताके शोणित  
 शुक्र आदिके संयोगक्रमसे उत्पन्न होते हैं । संक्षेपसे उत्पत्तिका क्रम इस  
 प्रकार है—सर्वप्रथम जीव माताके गर्भमें "कल्ल" अवस्थामें रहता  
 है । इसके बाद क्रमसे अनेक अवस्थाओंको धारण कर फिर वह पेशी  
 अवस्थासम्पन्न होता है । अंग-उपांगोंकी तथा स्नायु एवं शिरके पालोंकी

इहेवामां आवनार छ ते पूज सुरकेलीषी सभन्वामां आवे तेवे छे आ माटे  
 शिष्योना धित्तने के विषय तर्क सावधान इत्या सूत्रकार शिष्यजनोने इहे छे  
 हे हे शिष्ये । तमे सावधानधित्तयी आ विषयने सावधाने के व्यक्तधित्त  
 पनरीया तो आज्ञा छे संछि पलु सभन्वामां नहि आवे । अहिंषी के विषय इहेवो  
 यक् वाच छे

आ मनुष्यलोकेमा पथा प्राणी कर्मोना सपथधी परतत्र यत् इत्या छे  
 आ एव जने कर्मोना सपथ अकर्मो नधी; परतु अन्तदि काणने छे आ सप  
 पना शरवधी एव कर्मोना विपाजना उदयधी के के जतिथोनी प्राप्तिना शरव  
 भूत कर्मोना उदय आववाधी उत्र सोज अदि विधिष्ट उत्तम कुलोमां अथवा  
 असाव विजेरे नीच कुलोमा माता पिताना शोणितशुक्र वजेरेण सवोउकमधी  
 कल्पेण वाच छे कुकमां उत्पत्तिने कर्म आ प्रकारने छे सर्वप्रथम एव  
 माताना जर्भमां "कल्ल" अवस्थामा रहे छे के पथी कर्मधी अनेक अवस्थामे  
 धरवु करी इरी ते पेशी अवस्था प्राप्त करे छे अत्र उपांगे तथा स्नायु

मूलम्—आयाण भो! सस्सूत भो! धूतवायं पवेयइस्सामि,  
इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूया  
अभिसंजाया अभिनिव्वुडा अभिसंबुद्धा अभिसंबुद्धा अभिणि-  
क्खंता अणुपुव्वेण महामुणी ॥ सू० १३ ॥

छाया—आजानीहि भोः! शृश्रूपस्व भो! धूतवादं प्रवेदयिष्यामि, इह खलु  
आत्मतया तेषु तेषु कुलेषु अभिपेकेण अभिसंभूताः, अभिसंजाताः, अभिनिर्वृताः,  
अभिसंबुद्धा, अभिसंबुद्धाः अभिनिष्क्रान्ताः, अनुपूर्वेण महामुनयः ॥ १३ ॥

टीका—भोः शिष्य! यदहं धूतवादं=धूतम्=अष्टविधकर्मधूननं तस्य वादो धूत-  
वादस्तं प्रवेदयिष्यामि तद् आजानीहि=अवधारय, तथा भोः! शृश्रूपस्व=श्रोतुमि-  
च्छां कुरु। 'भोः' इत्यस्य पुनरुच्चारणं वक्ष्यमाणार्थस्य दुरधिगमत्वेन शिष्याऽव-  
धानार्थं, तथा च—'सावधानेन भवता भाव्यम्' इत्यभिप्रायोऽवगम्यते।

असाध्य रोगोंका आधार बन जाता है। इसलिये जो व्याधियोंके आधार  
बनना नहीं चाहते हैं वे तप और संयमद्वारा इनके मूल कारणोंका  
विनाश करनेके लिये अग्रेसर बनें। किसी जीवकी देवी देवताको बलि  
देनेसे या किसीके मांस आदिके खानेसे व्याधियोंकी क्षीणता होगी इस  
अन्धश्रद्धारूप पापका परित्याग करें ॥ सू० १२ ॥

वक्ष्यमाण धूतवादको हृदयमें धारण—श्रवण आदि करनेके निमित्त  
शिष्यको प्रेरित करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“आयाण भो”! इत्यादि।

हे शिष्य! मैं जिस अष्टविध कर्मोंके नाशके वाद—कथनको कहूंगा  
तुम उसे हृदयमें धारण करो। यदि धारण न हो सके तो उसे सदा  
सुननेकी इच्छा करते रहो। सूत्रमें दो बार जो “भो भो” शब्दका  
प्रयोग हुआ है, उससे सूत्रकारका यह अभिप्राय मालूम होता है कि

छे आ भाटे ने आया बय कर रोगोधी भयवा तप अने सयमना पद्ये वणे  
छे अने केअ देवी देवताने केअ एवसु अविद्वान देवाभा पाप समने छे  
आये एव असाध्य व्याधिधी भये छे (सू० १२)

वक्ष्यमाण धूतवादाने हृदयमा धारण श्रवण आदि करना भाटे शिष्यने प्रेरित  
करता सूत्रकार कहे छे “आयाण भो” इत्यादि।

हे शिष्य! तुं ने आठ प्रकारना कर्मोना नाश पछीनी वात तमोने कहुं  
धु तमे अने हृदयमा धारण करे ने धारण न थरुं शकै तो अने सावण  
वानी धरुं छे उमेशा करता रहे। सूत्रमा ये वपत ने “भो भो” शब्दने।  
प्रयोग थये छे, आधी सूत्रकारने अे अलिप्राय थाय छे के ने विषय आजाण

मूषम—स परिक्रमत् परिदेवमाणा मा णे चयहि इय ते  
 वयति । छदोवणीया अउझाववझा अकदकारी जणगा रुषति ।  
 अ सारिसे मुणी नो आह तरप, जणगा जेण विप्पजढा । सू०१४।

छाया—स पराक्रमन्त परिदेवमानाः ' मा यस्मान् त्यज ' इति ते वदन्ति ।  
 छन्दोपनीता अध्युपपन्ना भास्त्रन्दकारिणो जनका इवन्ति । य तादृशो मृनिर्ना भोषं  
 वरति जनका येन विमत्यक्ता ॥ सू०१४ ॥

साधु पद्यतकी अवस्थाओंका धारक बनता हुआ महामुनि हो जाता है ।

भाषा—कपाय सहित होनेसे जीव कर्मोंके योग्य पुद्गल परमाणुओं  
 का जो ग्रहण करता है इसीका नाम बंध है । इस बंधदशासे समस्त  
 ससारी जीव परतन्त्र हो रहे हैं और तत्तादृशतिप्रापक कर्मोदयसे वे उच्च  
 नीचादि कुलोंमें माता पिताके रज और वीर्यके सम्पर्कसे गर्भावस्था-  
 सम्पन्न बन कर क्रम २ से अपने २ समयानुसार उत्पन्न होते रहते हैं ।  
 भ्रूणवादि अवस्था बाद धर्मग्रहण योग्य अवस्थावाले जय वे होते हैं तब  
 धर्मकपाके ग्रहणसे पुण्यपापक स्वरूपके ज्ञाता होकर बोधियीजकी  
 प्राप्तिसे गृहीत धर्मकी सफलता निमित्त जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर  
 आचारांग आदि मूर्खोंका अभ्यास करते हुए अपने पारित्रिकी उज्ज्वलता  
 की वृद्धि करनेमें सावधान रहते हैं । जिनकल्पी साधुकी अवस्थापयन्त  
 मध्यकी जितनी भी साधुओंकी अवस्थाएँ हैं उन सबका आराधन करते  
 हुए वे महामुनियोंकी कोटिमें आ विराजते हैं ॥ सू०१३ ॥

गीतार्थ—परिहारादिशुद्धि के श्रेयसीविहारी, प्रतिभाधारी जने लनकस्त्री साधु  
 सुधीनी अवस्थाने धारक जनी महामुनि धर्म बंध के

भावार्थ—कपायसहित केवधो लव कर्मोने योग्य पुद्गल परमाणुओंको  
 ग्रहण करे के आनु नाम बंध के आ बंधराधी समस्त ससारी लव पर-  
 तत्र बंध रहता है जने ते ते जतिने आफनार कर्मोदयशी त उच्च नीच आदि कुलोभा  
 भावा पितामा २ / जने वीर्यमा सलधधी जर्भावस्थान परत जनी, करे करे  
 पीतपीताना समजानुसार वन्म ले के जात्यआदि अवस्था वाद धर्मग्रहण योग्य  
 अवस्थावाले बंधारे ते धार के त्पारे धर्मकथाना मवलधी पुण्य पापना स्वइ  
 पने लव २ जनी बोधिजीजनी प्राप्तिशी शरीत धर्मनी सहेणताइप  
 जेनेश्वरी दीक्षा धारण करी आचारांग आदि सुयोग्य अभ्यास कस्त पीताना  
 चरित्रनी उज्ज्वलतानी वृद्धि कस्तभा सावधान रहते है लनकस्त्री साधुनी अवस्था  
 परन्त बन्धोनी नेटली पव साधुओंनी अवस्थाओं के जे सदुतु अवधन  
 कस्त कस्त ते महामुनिजोनी कथाके पदेथे के (सू १३)

જ્ઞાતાઃ=કલ્પાનન્તર યાત્રસ્પેદ્યવસ્થાં પ્રાપ્તાઃ, અભિનિર્મૂતાઃ=તતઃ સાક્ષોપાક્ષનાયુ-  
શિરોરોમાદીના ક્રમેણાભિનિર્વર્તનેન ગર્ભપૂર્ણાવસ્થા પ્રાપ્તા, તતો ગર્ભાન્નિઃસૃતાઃસન્ત  
અભિસવુદ્ધાઃ=શૈશવાદિક્રમેણ વૃદ્ધિપ્રાપ્ય ઝર્મશ્રવણયોગ્યાવસ્થા સમાપન્નાઃ, તતઃ  
અભિસવુદ્ધાઃ=ધર્મકથાદિકં નિમિત્તમાસાદ્યોપલઙ્ચપુણ્યપાપસ્વરૂપાદિતયા વોધિવીજ  
પ્રાપ્તાઃ, તતઃ અભિનિષ્ક્રાન્તાઃ=ગૃહસ્થભાવાન્નિર્ગતાઃ-પ્રવ્રજ્યા પ્રાપ્તા ઇત્યર્થઃ, અનુ-  
પૂર્વેણ=અનુક્રમેણ આચારાદ્વાદિદ્વાદશાક્ષગણિપિટકાભ્યાસતદર્થભાવનોપવૃંદિતચરણ-  
કરણપરિણામતયોપાધ્યાયગીતાર્થ-પરિહારવિશુદ્ધિકૈકાકિવિહારિ-પ્રતિમાધારિ-  
જિનકલ્પિકાવસ્થાપર્યવસાનક્રમેણ મહામુનયો ભવન્તિ ॥ સુ૦ ૧૩ ॥

ક્રમ ૨ સે જવ પૂર્ણ રચના હો જાતી હૈ, તવ ગર્ભકી વહ પૂર્ણ અવસ્થા  
કહલાતી હૈ। ઇસ પૂર્ણ અવસ્થા કે વ્યતીન હોતે હી જીવ વહાંસે વાહર  
નિકલતા હૈ। શૈશવ-બાલપન આદિકે ક્રમસે જવ ઉસકી વૃદ્ધિ હોને  
લગતી હૈ તો ઇક સમય ઇસા ખી આ જાતા હૈ કિ જવ વહ ધર્મશ્રવણ  
કે યોગ્ય અવસ્થાકો પ્રાપ્ત હોતા હૈ। ધર્મકથાકે સુનનેસે પુણ્ય ઓર પાપકે  
સ્વરૂપસે વહ ખલીખાંતિ પરિચિત હો જાતા હૈ ઓર વોધિવીજકો પાતા  
હૈ। વોધિવીજકી પ્રાપ્તિ હોનેસે વહ ગૃહસ્થભાવસે નિર્ગત હો જાતા  
હૈ-જૈનેશ્વરી દીક્ષાકો અંગીકાર કરતા હૈ, ક્રમ ૨ સે આચારાંગ આદિ  
દ્વાદશાંગ ગણિપિટકકા અભ્યાસ કરતા હૈ, અથવા ઉનકે અભ્યાસ કરને  
કી ભાવના રખતા હૈ। ઇસ ભાવનાસે વહ અપને કરગસતરી ઓર ચર-  
ણસતરીકે પરિણામોંકી વૃદ્ધિ કરતા રહતા હૈ। ઇસસે ક્રમશઃ ઉપાધ્યાય,  
ગીતાર્થ, પરિહારવિશુદ્ધિક, ઇકાકીવિહારી, પ્રતિમાધારી ઓર જિનકલ્પી

અને માથાના વાળની કંમે કંમે ન્યારે પૂર્ણ રચના થઈ નય છે ત્યારે ગર્ભની  
પૂર્ણ અવસ્થા પછી છવ ત્યાથી બહાર નીકળે છે શૈશવ-બાળપણ ઇત્યાદિ  
ક્રમથી ન્યારે એની વૃદ્ધિ થવા લાગે છે, આમા એક સમય એવો પણ આવી  
નય છે કે ન્યારે તે ધર્મશ્રવણને યોગ્ય અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે ધર્મકથા  
સાલગવાથી થનાર પુણ્ય અને પાપના સ્વરૂપથી એ સારી રીતે પરિચિત થઈ નય  
છે, અને વોધિવીજને પામે છે વોધિવીજની પ્રાપ્તિ થવાથી એ ગૃહસ્થસ્વભા-  
વથી નિર્ગત બની નય છે, જૈનેશ્વરી દીક્ષાને અંગીકાર કરે છે કંમે કંમે  
આચારાંગ ઇત્યાદિ દ્વાદશાંગ ગણિપિટકને અભ્યાસ કરે છે, અથવા એને અભ્યાસ  
કરવાની ભાવના રાખે છે આ ભાવનાથી એ પોતાના કરણસતરી અને ચરણ  
સતરીના પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતો રહે છે અને આગળ વધતા ઉપાધ્યાય,

ममिसम्मुद्धस्य कर्तव्यमाह—'सरणं' इत्यादि ।

मूत्रम—सरण तस्य नो समेद्, कह नु नाम से तस्य रमद् ?  
 पयं नाणं सया समणुवासिञ्चासि—त्तिवेमि ॥ सू० १५ ॥

छाया—शरणं तस्य नो समेति, कय नु नाम स तत्र रमते ? एतद् ज्ञानं सदा  
 सम्नुवासये, इति प्रवीमि । सू० १५ ॥

टीका—तत्र—तस्मिन्मसर दीक्षाप्रवर्णकाले सः—ममिसम्मुद्धः प्रकृष्यां प्रवीढ  
 कामो वैराग्यवान् बिलपन्तमपि मातापिप्रादिकं शरणं नो समेति नापगच्छति ।  
 संसारस्वरूपसमधिगमसञ्जाततीव्रशरैराग्यमाननाभावितात्मतया मातापिप्रादि  
 कृपाञ्जन्दनमवगात्राय्य संपममार्गमारोडु मद्दृष्यां भवतीति भाषा । एतद्वच स्पष्ट

गृहवाससे विमुक्त जनके कर्तव्योंको सूत्रकार कहते हैं—“सरणं”  
 इत्यादि ।

इस सूत्रमें सूत्रकार यह कह रहे हैं कि जब मनुष्य मुनिवीक्षा  
 धारण करनेके सन्मुख होता है, वैराग्यसे उसका हृदय भरा हुआ होता  
 है तब उस समय वह पूर्वोक्तरूपसे विहाय करते हुए माता पिता आदि  
 की बातों में जरा भी नहीं ललचाता; कारण कि उसे यह बात मली  
 भांति ज्ञात हो चुकी है कि मुझे मृत्युसे मुक्तानेमें ये समर्थ नहीं हो सकते  
 हैं, क्यों कि ये स्वयं ही उसके आधीन पने हुए हैं । कर्मोंके फलको  
 भोगते समय कौन ऐसा संसारमें है जो मुझे सहारा दे सके ?  
 यहाँ धर्मके सिवाय मेरा रक्षक कोई नहीं है । संसारी स्वयं  
 अपने २ कर्मोंके उदयसे घस्त हो रह है, इनमें कौन किसका रक्षक  
 हो सकता है । सपको अपने कर्म भोगने पड़ते हैं । यदि कोई निष्कारण

गृहवाससे विमुक्त जननास्ता कर्तव्येन सूत्रकार कहे छे 'सरणं' इत्यादि.  
 या सूत्रभा सूत्रकार जे कहे छे के ज्यारे मनुष्य मुनिवीक्षा धारण  
 करवा भोज्य अने छे वैराग्यशी भेनु हृदय बराज्येहुं जेय छे त्यारे जे समर्थ  
 ते पूर्वोक्तरीपशी विहाय करवा माता पिता वीरिनी पातेमा जय पयु बर  
 श्यते नथी; कारण के जे यत सारि रीते जे बली कृत्ये होय छे के मने  
 मनुष्य मुभभांशी छेदाववाभा या अधा असमर्थ छे; केम के तेभा पते ज  
 जेने आधीन अनेछ छे कर्मना हुजने बोत्रवती वपते संसारमा जेनुं होय  
 छे के मने आधाररूप अने धर्मना सिवाय भाई केछ रक्षक नथी.  
 संसारी पते ज पतपोताना कर्मना उदयशी हुभी जे स्वयं छे  
 जयमा होय होय रक्षक अनी शके ? अधाने पोताना कर्मना हुज सात्रववा  
 ३५



टीका=तम्=अभिसंबुद्धं गृहवासप्रमुखं, पराक्रममाणं=महामुनिनिपेक्षितं प-  
न्यानमारोहन्त, ते=मातापितृतनयभार्यादयः वदन्ति-‘अस्मान् मा त्यज’ इति।  
किञ्च-छन्दोपनीताः त्वदभिप्रायानुवर्तिनः, अद्युपपन्नाः=त्वदनुगामिनः वयं स्मः,  
तस्मादेवभूतानस्मान् परित्यज्य किं व्रजसि ?, इत्येवमाक्रन्दकारिणः=सशोक  
विलपन्तः जनकाः मातापित्रादयो वदन्ति ।

किं चैव ते वदन्ति-अ तादृशो मुनिरित्यादि ।

येन पापण्डिवश्चितेन मुग्धेन जनकाः=मातापित्रादयः विप्रत्यक्ताः=सर्वथा  
परित्यक्ताः तादृशः अ=न मुनिर्भवति । अत्र-‘अ’ इति स्वरप्रतिरूपकमव्यय  
निषेधार्थं वर्तते । नो=न च औघं=ससारसागरप्रवाह तरति ॥ सू० १४ ॥

जिसने संसार, शरीर, और भोगोंका वास्तविक स्वरूप जानकर  
गृहवाससे विरक्ति धारण की है, और जो महामुनियोंद्वारा सेवित मार्गका  
अवलम्बन करनेके लिये उद्यत हो रहा है ऐसे मुमुक्षुजनको देखकर उसके  
माता पिता, पुत्र स्त्री वगैरह स्वजन उससे कहते हैं कि “मा अस्मान्-  
त्यज” तुम हमें मत छोड़ो; कारण कि हम सब तुम्हारी इच्छानुसार  
प्रवृत्ति करनेवाले एवं तुम्हारे पीछे २ चलनेवाले हैं, तो फिर इस प्रकार  
से वर्तन करनेवाले हम सबको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो? इस प्रकार  
सशोक विलाप करते हुए माता पिता आदि सम्वन्धिजन रोते हैं और  
कहते हैं कि यह वास्तविक मुनि नहीं है, पाण्डियों से ठगाये गये इस  
भोलेभालेने अपने मातापितादिकको सर्वथा व्यर्थ ही छोड़ दिये हैं,  
तथा यह संसाररूपी समुद्रके प्रवाहको भी नहीं तैर सकता है ॥सू० १४॥

जेजे संसार, शरीर अने भोगोतु वास्तविक स्वरूप जान्वा लई गृहवासही  
विरक्ति धारण करी छे, अने जे महामुनियोद्वारा सेवित मार्गतु अवलम्बन  
करवाभा उद्यमशील रहे छे जेवा भोक्षाजिवापी जनने जेछ जेना माता पिता,  
पुत्र स्त्री वगेरे स्वजन अने कहे छे के “मा अस्मान् त्यज” तने अभोने छोडा  
नहीं, कारण के अभो अधा तमारी इच्छा अनुसार प्रवृत्ति करनाश अने तमारी  
पाछण पाछण ब्यालवावाणा छीये छता पण तने अभो अधाने छोडी केम बर्ध  
रहा छे ? आ प्रकारने शोक विलाप करता माता पिता इत्यादि सभ धीजनो  
इये छे अने कहे छे के जे वास्तविक मुनि नही, पाण्डियोधी छेतराजेल  
आ लोणाबाणाजे पोताना माता पिता वगेरेने समन्था वगर सर्वथा छोडी  
हीधा छे, अने आ संसाररूपी समुद्रना प्रवाहने पण तरी शकतो नही (सू० १४)

स्यादिति माव' । उपसहराह—'एतद्वृत्तान्'-मित्यादि । एतत्—अष्टविधकर्मभूतन  
 विषयकफूतमादाक द्वानं=जीवकर्मकारनादिसम्बन्धात्स्वकृतकर्मपरिणत्या पृथिव्या  
 विपद्द्रीषणिकास्य पुन पुनरन्तानन्तजन्ममरणदु सौधमनुभूय प्रबलपुण्योदयन  
 मनुष्यमधार्पणमुकुलमन्मादिकमुपलभ्य धर्मभ्रवणयोग्यास्वापां वचमान कयञ्चिद्  
 धर्मकथादिकं निमित्तमासाधाभिगतजीवाजीवस्वरूप उपलम्भपुण्यपापः आत्सस्तक-  
 मोगोके वास्तविक स्वरूपके ज्ञाता है उन्हें यह स्थिति भी प्रिय  
 नहीं होता है ।

“एतद्वृत्तानं सदा समनुवासयेः-इति प्रवीमि” ।—

इस प्रकारका उपसंहार करते हुए सूत्रकार शिष्यसे कहते हैं कि  
 इस घृतवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करनेका जो विषय आया है  
 और साथमें जा यह बतलाया गया है कि जीव और कर्मोंका संबंध  
 अनादिकालका है, तथा तत्तद्गतिप्रापक कृतकर्मके उदयसे जीव पृथिवीका-  
 यिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, एवं वहाँ बारबार अनन्तानंत जन्म  
 मरणके दु च्चोके मारको बहन करता हुआ वह कोई प्रपल पुण्यक उदय  
 से मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे धर्मके  
 भ्रवणकरनयोग्य अवस्थासम्पन्न बन, कर्षचित् धर्मकथा आदिके निमित्त  
 को पाकर, जीव और अजीवादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाता बन पुण्य और  
 पापके यथार्थस्वरूपसे परिचित हो, आसन्न, वंश, संवर और निर्जराके  
 कारणोंमें कुशलमति होता हुआ मोक्षमार्ग पर आसन्न हो कर क्रमसे महा  
 मुनि होता है, इस प्रकार यह सब विषय प्रतिपादित हुआ है; सो ह शिष्य!

“एतद्वृत्तानं सदा समनुवासयेः-इति प्रवीमि । ”

आ प्रकारके उपसंहार केत्या सूत्रकार शिष्यने कहे थे के आ घृतवादमें  
 आष्टविध कर्मोंने विनाश केत्याने ने विषय आवेक थे जने आने ने जेभ  
 लवाववाभां आञ्जु थे के एव जने कर्मोंने सुख भन्नादिकाजने थे जने  
 ते ते जतिआपवावाग कश्च कर्मना उदयधी एव पृथिवीकायिक आदि पर्यायोभा  
 उत्पन्न थाप थे जने त्या बारबार अनन्तानंत जन्ममरणका दुःखोंने बार  
 सदन केत्यां केष प्रतग पुण्यना उदयधी मनुष्यभव आर्यक्षेत्र, सुकुलभा जन्म  
 आदि सामग्रीनी प्राप्तिधी धर्मने भ्रवण करवा योग्य अवस्थासंपन्न जनी,  
 कर्षचित् धर्मकथा आदिना निमित्तने पाभने, एव जने अलुवादि पदार्थोंना  
 स्वरूपने ज्ञाता जनी पुण्य जने पापने यथार्थ स्वरूपधी परिचित जनी आसन्न,  
 वंश, संवर आ निर्जराके कारणेना कुशल मति, मोक्षमार्गभा आसन्न धर्मने,

यति—'कथं नु नाम' इत्यादि । स=तीव्रवैराग्यवान् तत्र=तस्मिन् गृहवासे नररूपे मोक्षद्वारगंलाभ्यते कथं नु नाम रमते=अनुरागं कुर्यात् ? किन्तु न स तत्रासक्तो भवितुमर्हति । यतः कारागारवासरूपोऽयं गृहवासो न कस्याप्यभिसंबुद्धस्य प्रियः बंधु है—रक्षक है—तो वह एक आराधित धर्म ही है; अतः उसका ही सहारा लेना मुझे उत्तम है । इस प्रकार ससारके स्वरूपके विचारसे उसके हृदयमें तीव्रतर वैराग्यभावकी जागृति होती है । इसका ही यह परिणाम होता है कि जो वह स्वार्थवशा रोते चिह्लाते दृष्ट भी अपने माता पिताकी तरफ थोड़ीसी भी ममत्वदृष्टिसे नहीं निहारता है और सहसा उनसे विरक्त बन संयम मार्गपर आरूढ़ होनेके लिये कटिबद्ध हो जाता है । इसी बातको "कथं नु नाम तत्र रमते" इस पक्तिमें खुलासा किया है । ठीक ही है, अरे ! जिसकी आत्मामें तीव्रतर वैराग्यका वास हो चुका है, जो इस संसारको अशरण और असार समझ चुका है, भला ! वह संसारके पथिकोंको शरण और साररूप मान भी कैसे सकता है । उसे तो गृहवास नरकतुल्य और मोक्षद्वारका अगंलास्वरूप ही प्रतिभासित होता है । यही कारण है जो वह उसमें आसक्त नहीं होता ।

भावार्थ—कोई भी प्रतिबुद्ध-समझदार मनुष्य जैसे कारागारमें रहना पसंद नहीं करता है, ठीक इसी प्रकारसे जो ससार, शरीर और

पडे છે આમા કોઈ નિષ્કારણ બન્ધુ હોય—રક્ષક હોય તો તે એક આરાધિત ધર્મ જ છે આથી એના જ આશ્રય લેવો મારા માટે ઉત્તમ છે આ પ્રકારે સસારના સ્વરૂપના વિચારથી એના હૃદયમા વૈરાગ્યભાવની તીવ્રતર બાબતિ થાય છે એના પરિણામરૂપે શતા ચિલ્લાતા પોતાના માતા પિતા વગેરેની સ્વાર્થવશતા તરફ એ જરાસરખી પણ મમત્વદૃષ્ટિથી જોતો નથી, અને એનાથી તદ્દન વિરક્ત બની સયમ માર્ગ ઉપર આરૂઢ થવા એ મહત્તમ બની બન્ય છે આ વાતનો "કથં નુ નામ તત્ર રમતે" આ પક્ષિમા ખુલાસો કરેલ છે ઠીક છે અરે ! એના આત્મામા વૈરાગ્યનો તીવ્રતર વાસ થઈ ચુક્યો છે, આ સસારને જે અશરણ અને અસાર સમજી ચુકેલ છે એવો વિરક્ત જન સ્વજનોના સ્વાર્થવશ આકેદને કેમ વશ બની શકે ? એને તો ગૃહવાસ નરકતુલ્ય અને મોક્ષદ્વારમા બાધકજ બધુતુ હોય છે, આથી તે એનામા આસક્ત નથી બનતો

ભાવાર્થ—કોઈ પણ પ્રતિબુદ્ધ—સમજૂ મનુષ્ય જેમ જેલખાનામા રહેવાનું પસંદ કરતો નથી આ જ રીતે જે સસાર, શરીર અને લોગોના સાચા સ્વરૂપને બાણી ગયેલ છે એને ગૃહસ્થવાસ પ્રિય લાગતો નથી.

स्यादिति साव' । उपसहरमाह—'एतद्वृत्तान्'—मित्यादि । एतत्=अष्टविधकर्मपूजन विषयकधृतवाचोक्त ज्ञान=जीवकर्मभोरनादिसम्बन्धास्त्वनकृतकर्मपरिणत्या पृथिव्या दिपहवीषनिकायपु पुनः पुनस्तन्तानन्तजन्ममरणदुःखोपमनुभूय प्रयत्नपुण्योदयेन मनुष्यमर्चार्यक्षुल्लजन्मादिकक्षुपलम्ब धर्मभक्षणयोग्यावस्थायां बधमानः कयञ्चिद् पमफयादिकं निमित्तमासायाभिगतजीवाजीयस्वरूप उपलम्बपुण्यपाप आस्रवसंब-  
मोर्गोक चास्त्रविक स्वरूपके ज्ञाता है उन्हें गृहस्थवास भी प्रिय नहीं होता है ।

“एतद्वृत्तानं सदा समनुवासयेः—इति श्रवीमि” ।—

इस प्रकारका उपसंहार करते हुए सूत्रकार शिष्यसे कहते हैं कि इस घृतवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करनेका जो विषय आया है और साथमें जा यह यतलाया गया है कि जीव और कर्मोंका संबंध अनाविकालका है, तथा तत्त्ववृत्तिप्रापक कृतकर्मके उदयसे जीव पृथिवीका-यिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, एव वहां पारवार अनन्तानंत जन्म मरणके दु स्त्रोके भारको वहन करता हुआ यह कोई प्रबल पुण्यक उदय से मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे धर्मके अक्षण करनेयोग्य अवस्थासम्पन्न धन, कर्षस्त्रि धर्मकथा आदिके निमित्त को पाकर, जीव और अजीवादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाना धन पुण्य और पापक यधार्थस्वरूपसे परिचित हो, आस्रव, बंध, संघर और निर्जराके कारणोंमें कुशलमति होता हुआ मोक्षमार्ग पर आस्रव हो कर क्लमसं महा मुनि होता है, इस प्रकार यह सय विषय प्रतिपादित हुआ है; सो इ शिष्य!

“एतद्वृत्तानं सदा समनुवासयेः—इति श्रवीमि ।”

आ प्रकारके उपसंहार कत्या सूत्रकार शिष्यने कहे थे के आ घृतवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करवाने के विषय आवेले थे अने साथे के जेभ अत्यावधानमें आबु थे के एव अने कर्मोंने सजब अनाविकालने थे अने ते ते ततिआपवावागा करेस कर्मना उदयधी एव पृथिवीकायिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न भाय थे अने त्या पारवार अनन्तानंत जन्ममरणना दु जेने भार सहन कत्या के। प्रमग पुण्यना उदयधी मनुष्यभव आरक्षित, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीनी प्राप्तिभी धर्मने अवलु कत्या भोग्य अवस्थासंपन्न अनी, कर्षस्त्रि धर्मकथा आदिना निमित्तने पार्थने, एव अने अष्टविध पदार्थना स्वरूपने ज्ञाता अनी पुण्य अने पापने यधार्थ स्वरूपधी परिचित अनी आस्रव, बंध, संघर आ निर्जरा आस्रवामा प्रयग अनीने, मोक्षमार्गमा आस्रव यतिने,



। अथ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरादेशके मातापित्रादिस्वजनसङ्गविधूननं निगदितं, तस्य कर्मविधूननं विना न सफलं स्यात्, अतस्तदर्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्रादौ यं गृहीतया रिभाः पश्चात् प्रवस्मोहोदयात् आचारं परित्यजन्ति तेषां संसारपरिभ्रमणाद् विभ्रामा न भवतीति तान् वापयितुमार—आउर' इत्यादि ।

मूम्म—आउर लोगमायाप् अइत्ता पुव्वसजोग हिञ्चा उवसम वसित्ता धंभचेरसि, वसु अणुवसु वा जाणित्तु धम्म जहा तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला, वसथ पडिग्गह कवल पायपुछण विउसिज, अणुपुव्वेण अणहियासमाणा परीसह दुरहियासए।

॥ छट्टा अध्ययनका दूसरा उद्देशः ॥

इस अध्ययनके प्रथम उद्देशमें माता, पिता आदि स्वजनोके संबन्ध का परित्याग प्रकट किया गया है । परन्तु यह परित्याग कर्मोंके विनाश के बिना सफल नहीं हो सकता है । इसलिये उन कर्मोंके विनाशके निमित्त इस द्वितीय उद्देशका कथन सूत्रकार प्रारम्भ करते हैं । उसमें सर्वप्रथम वे इस बातका निरूपण करते हैं कि जिसने चारित्रकी प्राप्ति तो कर ली है, परन्तु प्रबल चारित्रभोदनीयके उदयसे उस गृहीत चारित्रका परित्याग भी कर दिया है, तो इससे उसका संसारके परिभ्रमणसे विभ्राम हो जाता होगा, सो यह बात नहीं है; इसी विषयको उसे समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“आउर” इत्यादि ।

छट्टा अध्ययनने पीजे उद्देश

आ अध्ययनना प्रथम उद्देशमा माता-पिता वजरे स्वजनाना साधेना संबन्धने परित्याग प्रकट करके छे परन्तु जे परित्याग कर्मोना विनाश पजर सङ्ग जनी सकते नथी आ माटे कर्मोना विनाशने माटे आ पीजे उद्देशना कथनने सूत्रकार प्रारम्भ करे छे जेभा सङ्ग प्रथम ते जे वस्तुनिह पञ्च करे छे ते जेके चारित्रिनी प्राप्ति तो करी बीभी छे; परन्तु प्रबल चारित्रभोदनीयना उदयसे जे गृहीत चारित्रने परित्याग पञ्च करी दीये छे तो आभी जेना संसारना परित्यागने विभ्राम भणी व्यव छे आ बात नथी! आ विषयने समझवना माटे सूत्रकार कहे छे “आउर” इत्यादि.

કામે મમાયમાણસ્સ ડ્યાણિં વા મુહુત્તેણ વા અપરિમાણાણ્ભેણ  
 ઇવંસે અંતરાયણ્હિં કામેહિં આકેવલિણ્હિં અવતિન્ના ચેણાસૂ૦૧॥

છાયા—આતુરં લોકમાદાય ત્યક્ત્વા પૂર્વસયોગં હિત્વા ઉપશમં ઉપિત્વા બ્રહ્મ-  
 ચર્યે, વસવઃ અનુવસવો વા જ્ઞાત્વા ધર્મં યથા તથા, અથૈકે તમ્ અશક્તુવન્તિ કુશીલાઃ,  
 વત્તં પતદ્ગ્રહં કમ્બલં પાદપોચ્છન વ્યુત્સૃજ્ય અનુપૂર્વેણ અનધિસહમાના પરીપહાન  
 દુરધિસહાન કામાન્ મમાયમાનસ્ય ડ્વાનીં મુહુતેન વા અપરિમાણાય ભેદઃ । ઇવ  
 સ આન્તરાયિકૈઃ કામૈઃ આકેવલિકૈઃ અવતીર્ણાઃ ચૈતે ॥ ૧ ॥

ટીકા—લોકં=પૃથ્વીજીવનિકાયમ્, આતુર=ક્લેશિતમ્, આદાય=બુદ્ધ્યા શુ-  
 હોત્વા અવબુધ્યેતિયાવત્, તથા=પૂર્વસયોગ=માતાપિતૃપુત્રકલત્રાદિસમ્બન્ધં ત્યક્ત્વા,  
 તથા=ઉપશમ=વિરતિં, હિત્વા=પ્રાપ્ય, તથા બ્રહ્મચર્યે ઉપિત્વા=સ્થિત્વાઽપિ વસવઃ=  
 સાવધઃ, અનુવસવઃ=ષષ્ટ્યાઃ પ્રતિમાયા આરભ્ય યાવદેકાદશપ્રતિમાધારિણઃ શ્રાવ-  
 કા વા યથા તથાઽવસ્થિત ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાણ્ય જ્ઞાત્વાઽપિ, અથ=અનન્તરમ્, ઇકે=  
 કેચિત્ મોહોદયાત્ કુશીલાઃ સાવધાનુષ્ઠાનપ્રવૃત્તાઃ સન્તઃ, ત=ધર્મ પાલયિતું અ-  
 ન શક્તુવન્તિ, અતસ્તૈ દુરધિસહાન અનધિસહમાનાઃ વત્તં પતદ્ગ્રહં=પાત્ર કમ્બલં પાદ-

પૃથ્વીજીવનિકાયસ્વરૂપ ઇસ લોકકો ક્લેશિત અપની બુદ્ધિસે જાન-  
 કર, તથા માતા, પિતા, પુત્ર, કલત્ર આદિ રૂપ પૂર્વસંયોગકા પરિત્યાગ  
 કર, ઉપશમરૂપ વિરતિકો પ્રાપ્ત કર, ઔર બ્રહ્મચર્યવ્રતકા પાલન કર સાધુ  
 જન, અથવા શ્રાવકકી છટ્ટી પ્રતિમાસે લે કર ૧૧ વીં પ્રતિમા તકકા આચાર  
 પાલન કરનેવાલે ગૃહસ્થજન, જિસ સ્વરૂપસે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી સ્થિતિ  
 હૈ ઉસ રૂપસે ઉસે જાન કર ખી મોહકે ઉદયસે બાદમ્નેં કઈં ઇક કુશીલ-  
 સાવધ અનુષ્ઠાનમ્નેં પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હો જાતે હૈં, ઔર ઉસ શ્રુતચારિત્રરૂપ  
 ધર્મકે પાલન કરનેમ્નેં સર્વથા અક્ષમ બન ઉસસે બ્રષ્ટ હો જાતે હૈં । પરિ-

પૃથ્વીજીવનિકાયસ્વરૂપ આ લોકને પોતાની બુદ્ધિથી ક્લેશિત બહી, માતા,  
 પિતા, પુત્ર અને કુટુંબીજનોના પૂર્વસયોગનો પરિત્યાગ કરી, ઉપશમરૂપ વિર-  
 તિને પ્રાપ્ત કરી, બ્રહ્મચર્યવ્રતનું પાલન કરવા ઉપરાત સાધુજન અથવા શ્રાવકની  
 છટ્ટી પ્રતિમાથી લઈ ૧૧ની પ્રતિમા સુધીનું આચાર પાલન કરવાવાળા ગૃહસ્થ  
 જન ને સ્વરૂપની શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની સ્થિતિ છે એ રૂપથી એને બહીને પણ,  
 મોહના ઉદયથી કોઈએક સાવધાનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બની બધ છે અને  
 શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું પાલન કરવામા સર્વથા અક્ષમ થઈ બ્રષ્ટ થઈ બધ  
 છે. પરિષદોના સહેવામા અસમર્થ બનીને વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપોચ્છન

मोचनं=रजोहरणं च व्युत्सृज्य=ममरुध्यमावाप्यक्त्वा अनुपूर्वेण=अनुक्रमेण चारिषं परित्यजन्ति । ' अनुक्रमेण ' इत्यनेनेदद्युक्त मपति-कुशीलेषु केचित् देशभिरति, क्वचित् सम्यक्त्वमाश्रमाभित्य तिष्ठन्ति, केचिच्च ततोऽपि परिभ्रम्यमिष्यात्वमुपगच्छन्तीति । विषयभोगाय धर्मं त्यक्तवतां पापोदयफलमाह—' कामान् ' इत्यादि कामान्=शब्दादिविषयान् ममापमानस्य=ममत्वनिपपीडनांभस्य इदानीं=प्रकृत्या परित्यागानन्तरमेव-भोगप्राप्तिसमनन्तरमेव वा मुहुर्तेन वा=अन्तमुहुर्तेन वा, इदमुपलक्षणं तन-कम्बरीकषदहोरात्रं ततोऽप्यधिकेन कालेन वा क्षणमवगुरादस्माच्छरो पहेकि सहनेमें असमय बने ह्य वे बह्य, पात्र, कम्पल और पादप्रोच्छन -रजोहरणका, धर्मकी ओर रुचिके अभावसे, परित्याग कर क्रमशा चारित्रका पालन करना छोड़ देते हैं । " अनुक्रम " पदसे यह बात माळूम होती है-कि कुशीलों में कोई २ देशभिरतिका और कोईएक चतुर्थ गुणस्थानका पालन करते हैं और कोई ऐसे भी होते हैं जो उस चतुर्थ गुणस्थान तकका भी परित्याग कर प्रथम मिष्यात्व गुणस्थानधर्ती हो जाते हैं ।

विषयभोगोकि निमित्त धर्मका परित्याग करनेवालोंके पापोके उदय फलको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार " कामान् " इत्यादि सूत्रांश कहते हैं । वे इसमें प्रकट करते हैं कि शब्दादिक विषयोंको ममत्वका विषय करनेवाले उस परित्यक्तचारिष्रबाछे मनुष्यका, प्रकृत्याके त्यागके अनन्तर अथवा भोगप्राप्तिके बाद, या एक अन्तर्मुहूर्तकालमें, उपलक्षण से कम्बरीककी तरह अहोरात्र-एकदिनरातमें, अथवा इससे भी अधिक

-रजोहरणने धर्मना तरह ३वींना अभावने कारणे त्याग करी चारित्रनु पालन करवानु छेडी दे छे " अनुक्रम पदधी जे वात भाषुम पडे छे हे कुशीलोमां हेछ हेछ देशभिरतिनु जने हेछ शिष्या शुद्धस्थाननु पालन करे छे जने हेछ जेवा पदु हीय छे हे ले शिष्या शुद्धस्थानने पदु परित्याग करीने मिष्यात्व शुद्धस्थान धर्ती जनी अर्थ छे

विषयभोगोने निमित्त धर्मना परित्याग करवावाणना पापना उदयना ह्य प्रकट करवा भाटे सूत्रकार " कामान् " इत्यादि सूत्रांश कहे छे तेको जेमां प्रकट करे छे हे शब्दादिक विषयोंमां अशक्ति करवावाणना चारित्र छेछार ते प्रमुष्यने, प्रकृत्याना त्याग वाद, अथवा भोग प्राप्ति पधी, अथवा जेके अन्तमुहुर्त' क्षणमां, उपलक्षणधी कम्बरीकनी भादके जेके दिनरातमं, अथवा तेनाधी पदु अधिक



કામે મમાયમાણસ્સ ઇયાણિં વા મુહુત્તેણ વા અપરિમાણાએભેણ  
 એવંસે અંતરાયએહિં કામેહિં આકેવલિએહિં અવતિન્ના એણાસૂ૦૧॥

છાયા—આતુર લોકમાદાય ત્યક્ત્વા પૂર્વસયોગં હિત્વા ઉપશમ ઉપિત્વા બ્રહ્મ-  
 ચર્યે, વસવઃ અનુવસવો વા જ્ઞાત્વા ધર્મં યથા તથા, અયૈકે તમ્ અશક્નુવન્તિ કુશીલાઃ,  
 વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં કમ્બલં પાદપ્રોચ્છન વ્યુત્સૃજ્ય અનુપૂર્વેણ અનધિસહમાના પરીપઠાન  
 દુરધિસહાન કામાન્ મમાયમાનસ્ય ઇદાની મુહુર્તેન વા અપરિમાણાય ભેદઃ । એવં  
 સ આન્તરાયિકૈઃ કામૈઃ આકેવલિકૈઃ અવતીર્ણાઃ ચૈત્તે ॥ ૧ ॥

ટીકા—લોકં=પૃથ્વીજીવનિકાયમ્, આતુર=વલેશિતમ્, આદાય=બુદ્ધ્યા ગૃ-  
 હીત્વા અવબુધ્યેતિયાત્રત્, તથા—પૂર્વસયોગ=માતાપિતૃપુત્રકલત્રાદિસમ્બન્ધ ત્યક્ત્વા,  
 તથા—ઉપશમ=વિરતિં, હિત્વા=પ્રાપ્ય, તથા બ્રહ્મચર્યે ઉપિત્વા=સ્થિત્વાઽપિ વસવઃ=  
 સાધવઃ, અનુવસવઃ=પૃથ્વાઃ પ્રતિમાયા આરમ્બ યાવદેકાદશપ્રતિમાધારિણઃ શ્રાવ-  
 કા વા યથા તથાઽસ્થિત ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાણ્ય જ્ઞાતાઽપિ, અથ=અનન્તરમ્, એકે=  
 કેચિત્ મોહોદયાત્ કુશીલાઃ સાવધાનુષ્ઠાનપૃથ્વાઃ સન્તઃ, ત=ધર્મં પાલયિતુ અ-  
 ન શક્નુવન્તિ, અતસ્તે દુરધિસહાન અનધિસહમાનાઃ વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં=પાત્રં કમ્બલ પાદ-

પૃથ્વીજીવનિકાયસ્વરૂપ ઇસ લોકકો વલેશિત અપની બુદ્ધિસે જાન-  
 કર, તથા માતા, પિતા, પુત્ર, કલત્ર આદિ રૂપ પૂર્વસયોગકા પરિત્યાગ  
 કર, ઉપશમરૂપ વિરતિકો પ્રાપ્ત કર, ઔર બ્રહ્મચર્યવ્રતકા પાલન કર સાધુ  
 જન, અથવા શ્રાવકકી છઠ્ઠી પ્રતિમાસે લે કર ૧૧ વી પ્રતિમા તકકા આચાર  
 પાલન કરનેવાલે ગૃહસ્થજન, જિસ સ્વરૂપસે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી સ્થિતિ  
 હૈ ઉસ રૂપસે ઉસે જાન કર મોહકે ઉદયસે વાદમે કઈ એક કુશીલ-  
 સાવધ અનુષ્ઠાનમે પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હો જાતે હૈ, ઔર ઉસ શ્રુતચારિત્રરૂપ  
 ધર્મકે પાલન કરનેમે સર્વથા અક્ષમ બન ઉસસે બ્રહ્મ હો જાતે હૈ । પરિ-

પૃથ્વીજીવનિકાયસ્વરૂપ આ લોકને પોતાની બુદ્ધિથી કલેશિત બહુ, માતા,  
 પિતા, પુત્ર અને કુટુંબીજનોના પૂર્વસયોગનો પરિત્યાગ કરી, ઉપશમરૂપ વિર-  
 તિને પ્રાપ્ત કરી, બ્રહ્મચર્યવ્રતનું પાલન કરવા ઉપરાત સાધુજન અથવા શ્રાવકની  
 છઠ્ઠી પ્રતિમાથી લઈ ૧૧મી પ્રતિમા સુધીનું આચાર પાલન કરવાવાળા ગૃહસ્થ  
 જન ને સ્વરૂપની શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની સ્થિતિ છે એ રૂપથી એને બહુને પણ,  
 મોહના ઉદયથી કોઈએક સાવધાનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બની બન્ય છે અને  
 શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું પાલન કરવામા સર્વથા અક્ષમ થઈ બ્રહ્મ થઈ બન્ય  
 છે. પરિપઠોના સહેવામા અસમર્થ બનીને વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપ્રોચ્છન

मोच्छन=रजोहरणं च व्युत्सृज्य=ममरुध्यभाषायक्त्वा अनुपूर्वेण=अनुक्रमेण चारिषं परिस्पृशन्ति । 'अनुक्रमेण' इत्यनेनेदमुक्तं भवति-कुशीलेषु केचित् वेद्यविरतिं, केचित् सम्यक्त्वमाप्स्यन्ति तिष्ठन्ति, केचिच्च ततोऽपि परिश्रम्यमिध्यात्स्वगण्यन्तीति । विषयभोगाय धर्मं त्यक्तवतां पापोदयफलमाह—'कामान्' इत्यादि कामान्=शब्दादिविषयात् ममापमानस्य=ममत्वविषयीकुर्वाणस्य इदानीं=प्रकृत्या परित्यागानन्तरमेव-भोगप्राप्तिसमनन्तरमेष वा सुहृत्त्वेन वा=अन्तःसुहृत्त्वेन वा, इदमुपलक्षणं तेन-कम्हरीकवद्वहोरात्रं ततोऽप्यधिकेन कालेन वा क्षणभङ्गुरादस्माच्छरीरं पहेकि सहनेमें असमय धने हुए बे बरु, पात्र, कम्बल और पादमोच्छन -रजोहरणका, धमकी ओर रुचिके अभावसे, परित्याग कर क्रमशा चारित्रका पालन करना छोड़ देते हैं । "अनुक्रम" पदसे यह बात मालूम होती है-कि कुशीलों में कोई २ वेद्यविरतिका और कोई एक चतुर्थ गुणस्थानका पालन करते हैं और कोई ऐसे भी होते हैं जो उस चतुर्थ गुणस्थान तकका भी परित्याग कर प्रथम मिध्यात्स्व गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं ।

विषयभोगोकि निमित्त धमका परित्याग करनेवालोंके पापोंके उदय फलको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार "कामान्" इत्यादि सूत्रांश कहते हैं । वे इसमें प्रकट करते हैं कि शब्दादिक विषयोंको ममत्वका विषय करनेवाले उस परित्यक्तचारित्रबाधे मनुष्यका, प्रव्रज्याके त्यागके अनन्तर अथवा भोगप्राप्तिके बाद, या एक अन्तर्मुहूर्तकालमें, उपलक्षण से कम्हरीककी तरह अहोरात्र-पकदिनरत्नमें, अथवा इससे भी अधिक

-स्नेहद्वेषेण, धर्मिणा तस्मै इन्दीना अभावने इत्ये त्वाज इरी चास्त्रित्तु पावन इत्यानु छेत्ति इति "अनुक्रम" पदस्यो ज्ञे वात माह्वम पठे छे के कुशीलेषां देव्य देव्य देसविरतित्तु अने देव्य शिवा सुखस्थानत्तु पावन करे छे, अने देव्य ज्ञेवा पयु बोध छे के ज्ञे शिवा सुखस्थानत्तु पयु पक्षिमाज इरीने मिध्यात्स्व सुखस्थान वर्ती जनी बन्ध छे

विषयभोगोने निमित्त धर्मिणा परित्याग इत्यावाधानां पापना उदयना इत्य प्रकट इत्या भाटे सूत्रकार "कामान्" इत्यादि सूत्रांश कहें छे तेजो ज्ञेर्मा प्रकट करे छे के शुल्बादिक विषयोंमां अपसक्ति इत्यावाधना चास्त्रि फलान्तर ते मनुष्यते, प्रव्रज्याना त्वाज वाइ, अथवा भोग प्राप्ति पही, अथवा जोके अन्तःसुहृत्त्वं इत्यर्था उपलक्षणस्यो इ इरीकनी भाइके जोके दिनशतमां, अथवा तेनाभी पयु अधिक

રાત્પૃથગ્મૃતસ્ય તસ્ય પશ્ચાત્કૃતસ્ય—‘પછાકઢા’ ઇતિ પ્રસિદ્ધસ્ય અપરિમાણ્ય  
=અપરિમિતકાલ યાવત્ ભેદઃ=મનુષ્યશરીરસ્યાન્તર-વ્યવધાન ભવતિ, ધર્માત્પરિભ્રમ્ય  
મૃતસ્ય નરકક્રિગોદાઘનન્તદ્વાઃસ્વમનુભવતોઽનન્તકાલેનાપિ પુનર્મનુષ્યશરીર દુર્લભં  
ભવતિ, વથં પુન્સ્તરયાર્યક્ષેત્રસુકુલજન્મયોધિવીજાદિસામઘ્યાઃ સમ્ભવ ? ઇતિ ભાવઃ।

एतदेवोपसंहरन्नाह--‘एव’ मित्यादि । एवम्=अनया रीत्या सः=भोगार्थी  
पश्चात्कृतः एते=तदितरे ये भोगाभिलाषिणो वर्तन्ते एतेऽपि च, आन्तरायिकैः=

સમયમેં ઇસ ક્ષણભગુર શરીરસે જવ વિયોગ હોતા હૈ, તો ફિર પીછે  
ઉસકે લિયે ઇસ દુર્લભ મનુષ્ય જન્મકી પ્રાપ્તિ હોનેમેં સમયકા કોઈ પ્રમાણ  
નિશ્ચિત નહીં હૈ । છોડી હુડં ઉસ પર્યાયકી પુનરપિ પ્રાપ્તિ હોનેકે લિયે  
વિરહકાલ અપરિમિત હૈ-ફિરસે મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્તિ હોનેકે લિયે ભવોંકી  
કોઈ ગણના નહીં હૈ-ઉસકી પુનઃ પ્રાપ્તિકે લિયે અપરિમિત અન્તર-વ્યવધાન-  
પડ જાતા હૈ । ગૃહીતચારિત્રધર્મસે ભ્રષ્ટ વનકર મરે હુણ ઉસ અધમ મનુષ્યકી  
ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિકોમેં હોતી હૈ ઓર વહ વહાંકી અપાર-અનત  
દુઃખરાશિકા અનુભવ કરતા રહતા હૈ । અનન્તકાલ તક મી ઉસકે  
લિયે મનુષ્યભવકી પુનઃ પ્રાપ્તિ હોનાં દુર્લભ હો જાતી હૈ । જવ યહ વાત  
હૈ તો ફિર યહ તો સિદ્ધ હી હૈ કિ ઉસકે લિયે આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમેં જન્મ,  
યોધિવીજકા લાભ ઇત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રિયોંકી પ્રાપ્તિકી સંભવતા કૈસે  
હો સકતી હૈ !

इसीका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-इस रीतिसे वह  
भोगार्थी तथा इससे अतिरिक्त और भी जो भोगाभिलाषी हं ये सब,

સમયમા આ ક્ષણભ ગુર શરીરથી ન્યારે વિયોગ થાય છે ત્યાર પછી એના માટે  
આ દુર્લભ મનુષ્ય જીવનની પ્રાપ્તિ હોવામા સમયનુ કોઈ પ્રમાણ નિશ્ચિત નથી  
છાડેલ એ પર્યાયની ફરીથી પ્રાપ્તિ થવા માટે વિરહકાળ અપરિમિત છે-ફરીથી  
મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્ત કરવા માટે ભવોની કોઈ ગણના નથી-એની ફરી પ્રાપ્તિ  
માટે અપરિમિત અન્તર (વ્યવધાન) થઈ બન્ય છે ગૃહીત ચારિત્રધર્મથી ભ્રષ્ટ બની  
મરનાર એ અધમ મનુષ્યની ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિમા થાય છે અને એ ત્યાની  
અપાર-અનન્ત દુઃખરાશિનો અનુભવ કરતો રહે છે અનન્તકાળ સુધી પણ એને  
માટે મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની બન્ય છે ન્યારે આ વાત છે તો પછી  
એ તો સિદ્ધ જ છે કે તેને માટે આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમા જન્મ, યોધિવીજનો લાભ  
ઈત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રીઓની પ્રાપ્તિની સભવતા પણ કેમ થઈ શકે ? કોઈ  
કાળે થઈ શકે નહિ આનો ઉપસંહાર કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે આ રીતથી  
તે ભોગાર્થી તથા આનાથી અતિરિક્ત એવા પણ જે ભોગાભિલાષી છે

अन्तरायवहुस्तदाद्दुःखसमयैः आकेवलिकैः, केषुम्=असम्पन्नं सम्पूर्णमिति यावत्, न केवलमकेवलं तत्र तथा आकेवलिका=असंपूर्णास्तैः=मोगेषु पूर्णस्त्वित्तमसमैः कामैः =शब्दादिष्विषये। अन्तः सन्तः मनुष्यशरीरव्यवधानं प्राप्नुवन्ति ॥ १०१ ॥

अन्तरायपक्षुल होनेसे दुःखसमय पर असंपूर्ण इन शब्दादिष्विषयरूप कामोंसे अतृप्त होते हुए मनुष्य शरीरकी पुनः प्राप्तिके कालको व्यवधान (अन्तर) सहित कर देते हैं, आकेवलिक शब्दका अर्थ असंपूर्ण है और यह इस प्रकारसे कि अस्व-संपूर्णका नाम केवल है, जो केवल नहीं यह अकेवल है। उसमें जो हो यह आकेवलिक है। कामोंको असंपूर्ण इसलिये कलसाया गया है कि ये मोगोंकी इच्छाकी पूर्ति करतमें असमर्थ हैं। ज्यों ज्यों इनका लाभ होता है त्यों त्यों जीवकी इच्छाएँ इन्हें अधिकविकल्पसे मोगनेके लिये बढ़ती जाती हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य इस पञ्चजीवनिष्कारूप लोकको पछेछात समझकर उसका परित्याग कर देता है, तथा माता पिता आदि संयत्तीजनों से भी विमुख बन कर चारित्रधर्मकी आराधना करनेमें लक्ष्मीन हो जाते हैं—चारित्रके पालनसे सम्बन्ध रम्बनेपाली जितनी भी ब्रह्मचर्य आदिक पालने जैसी अन्य क्रियाएँ हैं उन सबका भी वे अच्छी तरहसे पालन करते हैं, परन्तु फिर भी मोहकी प्रयत्नासे वे उस गृहीत चारित्र से भ्रष्ट बनकर मिथ्यात्मी तक हो जाते हैं और मुनिविन्दोंका सर्वथा

को तथा अन्तरायवहुस्तदाद्दुःखसमयैः आकेवलिकैः केषुम् आ सम्पूर्णमिति यावत्-अत्रैव शब्दोपे अन्तः सन्तः मनुष्य शरीरकी पुनः प्राप्तिना कारणे व्यवधान (अन्तर) सहित करी देते आकेवलिक शब्दने अर्थ असंपूर्ण है अने ते आ प्रकार के अस्व-संपूर्ण नाम केवल है जो केवल नहीं वे अकेवल है, जोमा जो होय ते आकेवलिक है अने अने असंपूर्ण को नये अलावेव है ते सोअने ही सम्पत्ती तृप्ति इत्यामां असम्पन्नं है नेम नेम सो अने लाल शब्द है तेमतेम लक्ष्मी सम्पत्ती अने अधिकविकल्प तृप्ति भोजववा भाटे वधती अर्थ है

भावार्थ—जो मनुष्य पञ्चजीवनिष्कारूप लोकने लक्ष्मीरूप समझने तेने परित्याग करी देते तथा माता पिता अने पोताना संयत्तीजनोंकी पक्ष विमुख जतीने चारित्रधर्मकी आराधना करवामां लक्ष्मीन पर्यन्त है, चारित्रिक पालनकी संयत्ती सम्बन्धववापी नेटली पक्ष ब्रह्मचर्य आदि पालना तेनी अन्य क्रियाएँ है जो अध्यात पक्ष ते सारी रीते पालन करेते अने पक्ष मोहकी प्रयत्नाती को अक्षय करेवा चारित्रकी भ्रष्ट जनी मिथ्यात्मी जनी अर्थ है अने मुनिविन्दोंको सर्वथा परित्याग करी विषयकीजनोंकी आकांक्षा

યસ્તુ આસન્નમોક્ષતયા કથચિત્ કુતચિત્ ચારિત્ર માપ્ય લઘુકર્મતયા પ્રવર્ધમાન-  
પરિણામો ભવતિ, સ સિદ્ધિપદં પ્રાપ્નોતીતિ વૌધયિતુમાહ—‘અહેગે’ इत्यादि ।

મૂલ્મ્—અહેગે ધર્મમાયાય આયાણપ્પભિઙ્ગ સુપણિહિય ચરે  
અપ્પલીયમાણે દહેસઠ્ઠવં ગિદ્ધિં પરિણાય, ઇસ પણ્ણમહામુણી॥સૂ૦૨

છાયા—અથૈકો ધર્મમાદાય આદાનપ્રભૃતિ સુપ્રણિહિતચરેત્ અપ્રલીયમાનઃ દઃઃ  
સર્વા ગૃદ્ધિં પરિજ્ઞાય, ઇપ પ્રણતો મહામુનિઃ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકા—અથ=અનન્તરમ્, ઇકઃ=કશ્ચિદાત્માર્થી ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાલ્પ્યમ્,  
પરિત્યાગ કર, વિષયભોગોંકી ચાહનામૈં ફેસ, ઉનકા સેવન કરતે હુપ  
અપને અતિદુર્લભ મનુષ્યજન્મકો વ્યર્થ નષ્ટ કર, નરકનિગોદાદિક  
ગતિયોંકે અનન્ત કષ્ટોંકો ભોગતે રહતે હૈં । ઇસે જીવોંકો ફિરસે માનવ  
જન્મ કવ કૈસે પ્રાસ્ટ હોગા ॥ સૂ૦ ૧ ॥

આસન્નમધ્ય હોનેસે મોક્ષકી પ્રાપ્તિ જિન્હૈં નિકટ સમયમૈં હોનેવાલી  
હૈ વે કિસી મી તરહસે કહીંસે મી ચારિત્રધર્મકી પ્રાપ્તિ કર લઘુકર્મવાલે  
હોનેકી વજહસે ચારિત્રધર્મકી પાલનામૈં વર્ધિતપરિણામવાલે હોતે હૈં  
ઔર સિદ્ધિપદકો પ્રાસ્ટ કર લેતે હૈં—ઇસ વાતકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકાર  
કહતે હૈં “અહેગે” इत्यादि ।

‘અથ’ શબ્દકો અર્થ અનન્તર હૈ । જિસકા તાત્પર્ય હૈ કિ જો ચારિત્ર-  
ધર્મકો પ્રાસ્ટ કર કિસી કારણવશ ઉસકા પરિત્યાગ કર દેતે હૈં ઉનકી  
વધા દુર્દશા હોતી હૈ સો તો પ્રકટ કર દી ગઈ હૈ । અથ જો ચારિત્રકો  
યાવજજીવન પાલતે હૈં ઉનકે વિષયમૈં યહાં કહા જાતા હૈ—

इसी तेनु सेवन करे छे, अने पोताना अतिदुर्लभ जेवा मनुष्य जन्मने व्यर्थ  
नष्ट करी नरकनिगोदादि गतिज्येना अनन्त कष्टोने भोगवतो रहे छे जेवा ज्येने  
इरीथी मानव जन्म क्यारे केम प्राप्त थरी (सू०१)

આસન્નમધ્ય હોવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ જેને નિકટ સમયમા થવાવાળી છે,  
એ કેઈ પણ રીતથી કયાયથી પણ ચારિત્રધર્મની પ્રાપ્તિ કરી, લઘુકર્મવાળા હોવાને  
કારણે ચારિત્રધર્મને પાળવામા વર્ધિતપરિણામવાળા હોય છે, અને સિદ્ધિપદને  
પ્રાપ્ત કરી લે છે આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “અહેગે” इत्यादि

अथ शब्दने अर्थ अनन्तर छे, जेतु तात्पर्य जे छे કે जे चारि-  
धर्मने प्राप्त करी केछे कारणवश तेना परित्याग करी दे छे, जेनी शु दुर्दशा  
थाय छै, जे तो प्रकट करी देवामा आवी छे हवे जे चारिने यावज्जीवन  
पाणे छे तेना विषयमा अर्द्धि कहेवामा आवे छे.

आदाय=गृहीत्वा, आदानप्रभृति=भुक्तचारित्र्यमग्रहणकालादारभ्य, सुप्रथितः=सावधानः परीपहसहनशीलः अपलीयमानः=कामभोगेषु न प्रलीयमानः-अनासक्तः, अतपः-इहः=गृहीततपःसंपमानुष्ठानप्रतिज्ञायामविचलितचित्तः सर्वां गृद्धि=विषयभोगेच्छां परिज्ञाप=अपरिज्ञापानन्तदुःखकारणत्वेन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया तां दूरत एव परिहृत्य परतः=मगत्रदुपदिष्टं धर्मं समाचरेदित्यर्थः । एषः=चारित्र्यमादाय सर्वगृद्धिभावपरित्यागी महाशुनिः=महापुरुष एव प्रकृतः=धर्मपूने सम्यक् प्रवृत्ता भवति न तु लदन्यः काष्ठ इति ॥ सू० २ ॥

अपरं च—'अइअच्छ' इत्यादि ।

जो कोई आत्मार्थी भुक्तचारित्र्यरूप धर्मको प्राप्त कर उसकी प्राप्तिके समयसे लेकर जीवनपर्यन्त परीपह और उपसर्गोंके सहन करने में सावधान रहते हैं—परीपह उपसर्ग आने पर चारित्र्यसे विचलितचित्त नहीं होते हैं तथा कामभोगोंमें जो सदा बाँधरहित होते हैं, एवं जो इह गृहीत तप और सपमके अनुष्ठान करनेकी प्रतिज्ञामें अविचलितचित्त होते हैं, ऐसे धर्मीय मुनि समस्त विषयभोगोंकी इच्छाओंको अनन्त दुःखोंका कारणरूप अपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उनका दूर ही से परित्याग कर, भीतरागकथित निर्मल चारित्र्यकी आराधना करते हैं । चारित्र्यको प्राप्त कर समस्त विषयमें गृद्धिभावके परित्यागी वे ही महा मुनि हैं, और वे ही कर्मोंकी रज हटाने-उखानेमें अच्छी तरह प्रवृत्त होते हैं; इनके सिवाय अन्य-दूसरे कायर नहीं । ॥ सू० २ ॥

तथा 'अइअच्छ' इत्यादि—

वे कोई आत्मार्थी भुक्तचारित्र्यरूप धर्मको प्राप्त करी तभी प्राप्तिना काम धर्मों मंथने जीवनपर्यन्त परित्यक्त करने उपसर्ग सहन करवायां सावधान रहे थे परित्यक्त उपसर्ग आववाली चारित्र्यकी विचलितचित्त नहीं भया, तथा कामभोगोंकी वे सदा बाँध-रहित पने थे जेवा के अतपस्य प्रकृत करके तप करने तपमत्त अनुष्ठान करवाणी प्रतिज्ञामें अविचलितचित्त होवाली जेवा धर्मीय मुनि जने के समस्त विषयभोगोंने तथा इच्छाओंने अनन्त दुःखोंना कारणरूप अपरिज्ञाधी बन्धी जने जने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी तेना छोधी के परित्याग करी वीतरागकथित निर्मल चारित्र्यकी आराधना करे थे चारित्र्य प्राप्त करी समस्त विषयोंमें गृद्धिभावको परित्यागी के थे जे के मुनि थे जने जे के धर्मोंनी रज दूर करवायां उखानेमें चारी शीते प्रवृत्त होथे थे जेवा सिवाय अन्य-भीना कायर नहीं । (सू० २)

तथा 'अइअच्छ' इत्यादि ।

यस्तु आसनमौक्षतया कश्चित् कुतश्चित् चारित्र प्राप्य लघुकर्मतया प्रवर्धमान-  
परिणामो भवति, स सिद्धिपदं प्राप्नोतीति बोधयितुमाह—‘अहेगे’ इत्यादि ।

मूलम्—अहेगे धम्ममायाय आयाणप्पभिइ सुपणिहिण् चरे  
अप्पलीयमाणे द्दहेसद्वं गिद्धिं परिणाय, एस पणए महामुणी।सू० १

छाया—अथैको धर्ममादाय आदानप्रभृति सुप्रणिहितश्चरेत् अपलीयमानः इह ।  
सर्वां गृद्धिं परिज्ञाय, एष प्रणतो महामुनिः ॥ सू० २ ॥

टीका—अथ=अनन्तरम्, एकः=कश्चिदात्मार्थी धर्म=श्रुतचारित्राख्यम्  
परित्याग कर, विषयभोगोंकी चाहनामें फँस, उनका सेवन करते  
अपने अतिदुर्लभ मनुष्यजन्मको व्यर्थ नष्ट कर, नरकनिगोदादि  
गतियोंके अनन्त कष्टोंको भोगते रहते हैं । ऐसे जीवोंको फिरसे जन्म  
जन्म कब कैसे प्राप्त होगा ॥ सू० १ ॥

आसन्नभव्य होनेसे मोक्षकी प्राप्ति जिन्हें निकट समयमें होने  
है वे किसी भी तरहसे कहींसे भी चारित्रधर्मकी प्राप्ति कर लघुक  
होनेकी वजहसे चारित्रधर्मकी पालनामें वर्धितपरिणामवाले  
और सिद्धिपदको प्राप्त कर लेते हैं—इस बातको समझानेके लिये  
कहते हैं “अहेगे” इत्यादि ।

‘अथ’ शब्दका अर्थ अनन्तर है जिसका तात्पर्य है कि जो  
धर्मको प्राप्त कर किसी कारणवश उसका परित्याग कर देते  
वया दुर्दशा होती है सो तो प्रकट कर दी गई है । अब जो  
यावज्जीवन पालते हैं उनके विषयमें यहाँ कहा जाता है—

इसी तेनु सेवन करे छे, अने पोताना अतिदुर्लभ जेवा मनुष्य जन्  
नष्ट करी नरकनिगोदादि गतिओना अनन्त कष्टोने बोगवतो रहै छे  
इरीथी मानव जन्म क्यारे केन प्राप्त थये. (सू० १)

आसन्नभव्य होवारी मोक्षनी प्राप्ति जेने निकट समयमा थो  
जे केअ पणु रीतथी कथायथी पणु आरित्रधर्मनी प्राप्ति करी, लघुकर्म  
कारणु आरित्रधर्मने पाणवामा वर्धितपरिणामवाणा होय छे, अने  
प्राप्त करी ले छे आवात समजववा माटे सूत्रकार कहे छे “अहे

अथ शब्दको अर्थ अनन्तर छे, जेनु तात्पर्य जे छे के  
धर्मने प्राप्त करी केअ कारणवश तेना परित्याग करी दे छे, जे  
थाय छै, जे तो प्रकट करी देवामा आवी छे, हुवे जे आरित्र  
पाणे छे तेना विषयमा अहि कहेवामा आवे छे.

अवमादरिकाया वर्षमानस्य परीपहसनमाह—' से आकुट्टे ' इत्यादि।

मूलम्—से आकुट्टे वा हृष वा लुचिष्वा पलिय पकत्थ अनुवा पकत्थ असहेहिं सहफासेहिं, इय सखाप पगयरे अन्नयरे अभिज्ञाय तितिसखमाणे परिठवप् । जे य हिरिजे य अहिरिमाणा ॥ सू० ४ ॥

छाया—स आकुट्टा वा हतो वा लुचितो वा पलितं प्रकथ्य अपवा प्रकथ्य अतथ्यैः शब्दस्पर्शैः, इति संख्याय पक्षतरान् अन्यतरान् अभिज्ञाय तितिस्रमाणः परिव्रजेत् । ये च द्वीरूपाः ये च अहीमनसः ॥ म० ४ ॥

टीका—स=अवमादरिक' यदा केनचिद्दमानमिज्ञेन पलितं=पूर्वकृतं जुगुप्सितं कर्म प्रकथ्य=' मो प्रव्रजित ! पूर्व काण्डादारादिर्म कृत्वा प्रव्रनितवेप किमिदानीं माहृपदप्टु प्रवृत्तः' इत्यादिवाक्यैर्विनिय, अथवा अतथ्यैः=अज्ञाने अस्तगतैः=अनुचितैः शब्दस्पर्शैः=' त्वं चौरः पारदारिक.' इत्यादिशब्दैः, तथा ही मानना चाहिय । अर्थात् पर्युपित आहार भी ऊनोदररूपसे ही लेता है, भरपट नहीं ॥ सू ३ ॥

अत्य-आहारी-अवस्थामें भी परीपह और उपसर्गों को वसे सहन करना चाहिय, इसे सूत्रकार कहते हैं—“ से आकुट्टे इत्यादि ।

यह अवमादरिकाव्रती साधु यदि किसी धर्मानभिन्न व्यक्तिके द्वारा इस प्रकारसे कहा जाय कि हे प्रव्रजित ! तुम तो पहिले लकड़ियां बन्ना करते थे, अब कबसे साधु बन गये हो ? साधुका वेप पहिन कर क्या इस समय हमें उपदेश दे रहे हो ? हम तुम्हारे जैसे हीनकुलका उपदेश नहीं सुनना चाहते ! अथवा इस प्रकारके अनुचित वाक्योंसे यदि कोई उसकी निंदा करे कि तुम तो परदारलंपट हो, चोर हो; या

वासी ) आहार दे छे अथवा उनाहर-अल्प-आहारी वाय छे पशुपित आका रने पशु अल्प आहार च मानये जेधजे, अर्थात् आहार पशु उनाहरपथी च दे छे; पेट खरीने नहीं (सू ३)

अल्प-आहारी अवस्थामें पशु परिषद जने उपसर्गों जेहे सदन कस्या जेधजे आने सूत्रकार कहे छे से आकुट्टे इत्यादि ।

जे अवमादरिकाव्रती साधुने कही कौछ धर्मानभिन्न व्यक्तिनी मारहत या प्रकारथी कहेवाच के छे प्रव्रजित ! तमे तो पहिले लकड़ियां बन्ना करते थे, अब कबसे साधु बनी अथ छे ? साधुने वेश पहिरी शु या समथ मनने उप देश आथी कहा छे ? अमे तमान जेवा कलका कुणया भाजुयने उपदेश बालगया नहीं छेकत। अथवा या प्रकारनां अनुचित वाक्योंकी कौछ जेभनी निंदा करे के तमे तो व्यक्तिआरी छे, चोर छे, अथवा कौछ “ जेना दास अथे, पत्र अथे,



મૂલમ્—અહ અચ્ચ સવ્વઓ સંગં ણ મહં અતિથિત્તિ ઇય ઇગો  
અહં, અર્હિસ જયમાણે ઇત્થ વિરણ્ અણગારે, સવ્વઓ મુંહે રીયંતે,  
જે અચેલે પરિવુસિણ સંચિક્કચ્છઙ્ગ ઓમોયરિયાણ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—અતિગત્ય સર્વતઃ સદ્ગં ન મમ અસ્તિ, ઇતિ ઇકોઽહમસ્મિન્ યતમાનઃ  
અત્ર વિરતઃ અનગારઃ, સર્વતો મુણ્ઢઃ રીયમાણઃ, યઃ અચેલઃ પર્યુપિતઃ સંતિષ્ઠતે  
અવમોદરિકાયામ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—મમ નાસ્તિ કિંચિત્, ઇતિ=અતઃ અહમેક ઇવાસીતિ ભાવનામાવિતઃ  
સર્વતઃ=સર્વથા સદ્ગં=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધમ્ અતિગત્ય=અતિક્રમ્ય અસ્મિન્ આચારે  
યતમાનઃ—યતના કુર્વન્, અત્ર=વિષયભોગે વિરતઃ—સર્વથા નિવૃત્તઃ, અતઃપ્રવ અનગારઃ=  
પ્રવ્રજિતઃ, સર્વતોમુણ્ઢઃ=દ્રવ્યત' કેશલુચ્ચનેન ભાવતો રાગદ્વેપરાહિયેન મુણ્ઢ,  
રીયમાણઃ—સયમાનુષ્ઠાને વિહરન્ યઃ અચેલ =અલ્પચેલઃ—જિનકલ્પિકો વા, પર્યુપિતઃ  
=પર્યુપિતાહારી, અવમોદરિકાયા=ન્યૂનોદરતાયાં સંતિષ્ઠતે=વર્તતે, તદપિ પર્યુપિતાશ-  
નં નોદરપૂરણેન કિંતવમોદરિકયેતિ ભાવઃ। સ મહામુનિરિતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધઃ ॥સૂ૦૩॥

“એગોહં” મેં એક હુ, મેરા સસારમેં કોઈ નહોં હૈ, મેં અકિશ્ચન હુ—  
ઇસ પ્રકારકી ભાવનાસે જિસકા મન વશમેં કિયા હુઆ હૈ, ઓર ઇસી  
ભાવનાસે ઓતપ્રોત બન જો માતાપિતા—આદિકે સમ્બન્ધસે રહિત બના  
હુઆ હૈ, એસા વહ મહામુનિ અપને ગૃહીતચારિત્રકી આરાધનામેં સમ્હાલ  
રખતા હુઆ, વિષયભોગોસે સર્વથા વિરક્ત હોતા હૈ। મુનિદીક્ષાસે સુશો-  
ભિત વહ મુનિરત્ન સર્વ પ્રકારસે મુણ્ઢ—દ્રવ્યસે કેશોંકે લુચ્ચન કરનેસે  
એવં ભાવસે રાગ—દ્વેષસે રહિત હોનેસે—હોતા હૈ। સયમકે અનુષ્ઠાનમેં  
વિચરણ કરતા હુઆ વહ અચેલ—અલ્પવચ્ચવાલા હોતા હૈ, અથવા જિન-  
કલ્પી બનતા હૈ। પર્યુપિત ( ઠણ્ઢા—વાસી ) આહાર મી અલ્પ આહારમેં

“એગોહં” હું એક છું, મારું સસારમા કોઈ નથી હું અકિશ્ચન છું.  
આ પ્રકારની ભાવનાથી જોણે પોતાનું મન વશ કરેલ છે, અને એવી ભાવ-  
નાથી ઓતપ્રોત બની જે માતા, પિતા આદિના સબધથી રહિત બનેલ છે, એવા  
એ મહામુનિ પોતે ગ્રહણ કરેલ ચારિત્રની આરાધનામા સલાખ સખતા વિષય-  
ભોગોથી સર્વથા વિગ્રહ અને છે, મુનિદીક્ષાથી સુશોભિત એ મુનિરત્ન સર્વ  
પ્રકારથી મુણ્ઢ, દ્રવ્યથી કેશલોચન તરવાથી ( વાણનુ એ સવાથી ) અને ભાવથી  
રાગ—દ્વેષથી રહિત થવાથી બને છે સયમના અનુષ્ઠાનમા વિચરણ કરનાર એ  
અચેલ—અલ્પ વચ્ચવાળા બને છે, અથવા ઇનકલ્પી થાય છે પર્યુપિત ( ઠણ

रूपाः—वीतोप्याह्वयस्तान् द्विविधानपि परीपहान् सममात्रेण विविक्तमात्रः परित्र  
वेदिति सम्बन्धः ॥ सू० ४ ॥

मूस्म्—चिन्धा सख्यं विसुचित्य फासे समियदसणे ॥ सू० ५ ॥

छाया—त्यक्त्वा सर्वां विस्रोतसिक्तां स्पृशत् समितदर्शनः ॥ सू० ५ ॥

टीका—किञ्च—'चिन्धा' इत्यादि । समितदर्शनः—सम्यग् इतं-गतं प्राप्तं  
दर्शनं यस्य स समितदर्शनं—सम्यग्दृष्टिरित्यर्थः । सर्वा विस्रोतसिक्ता—परीपह-  
मयुक्तं दुम्भितनं त्यक्त्वा स्पृशत्—सर्वां परीपहान् अभिसरोत् ॥ सू० ५ ॥

मूस्म्—एए भो ! णगिणा वुत्ता जे लोगसि अणागमण-  
धम्मिणो ॥ सू० ६ ॥

छाया—एते भो ! नन्वा उक्ता ये लोकेऽनागमनधर्मिणः ॥ सू० ६ ॥

टीका—'एए भो' इत्यादि । भो' शिष्याः । ये अनागमनधर्मिणः—अम-  
त्यामनशीला—भाइतप्रतिज्ञाभारधारणशीलत्वात् पुनर्गृहं प्रत्यागन्तुं नेच्छन्तीत्यर्थः,

रूप परीपहों छडजारूप है और जो शीत उष्ण आदि अलजजारूप है, इन  
दोनों परीपहों को भी उसे सममात्रसे युक्त होकर ही सहन करना चाहिये,  
तभी कमीका नाश होगा ॥ सू० ४ ॥

—अच्छी तरह अथवा अच्छा प्राप्त है दर्शन जिसे उसका  
नाम समितदर्शन—सम्यग्दृष्टि है । वह परीपहमयुक्त दुम्भितनका त्याग  
कर समस्त परीपहोंको सहै । परीपहोंको सहते समय कमी भी आर्त्त  
रौरूप परिणाम नहीं करना चाहिये, शांति और समतासे उन्हें  
सहन चाहिये ॥ सू० ५ ॥

शिष्योंको सम्बोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो !  
जो अनागमनधर्मी हैं—शरीरतनुनिवृत्तधारणरूप प्रतिज्ञाके भारको  
बहन करनेके स्वभाववाले होनेकी वजहसे जो पीछे छोट कर घर नहीं

परिपहोने पर्युत्तमानशी युक्त बर्ध जेव्हे सहन करवा जेठजे त्पारे न भयेनि।  
नम्य बरो (सू ४)

शास्त्रे शीते प्राप्त छे इत्थं न वेने तेनु नाम समितदर्शनं जेटवे अम्यच्छि  
छे ते परिपहप्रयुक्त अशाप चित्तनेन त्पान कथे सवण्य परिपहोने सहते ते  
परिपहोने सहन करवा अमय कथे पर्युत्त तेने आत्त रौरूप परिपहम नदि  
करुं जेठजे, शांति जने समताशी तेने सहवु जेठजे (सू ५)

शिष्योने संबोधन करवा सूत्रकार कहे छे हे हे शिष्यो ! जे अनागमन-  
धर्मी छे—धारण करैल मुनिवृत्तप्र प्रतिज्ञावा करने सहन करवाने स्वभाववाण्य

કરચરણચ્છેદન—ખેદન—મોટનાદિરૂપે: સર્વૈશ્વ પ્રકૃત્ય—કર્ધીકૃત્ય આકૃષ્ટ:—આક્ષિપ્ત: વા=અથવા હત:—યદ્દિમુષ્ટ્યાદિભિસ્તાહિત: હુચ્ચિતો વા=કેશ:કર્ષણેન નસ્વાઘાતેન ચ વ્યાકુલીકૃત: સન્ ઇતિ=‘મમ પૂર્વકૃતકર્મફલમેતત્’ ઇત્યેવ સંખ્યાય=પર્યાલોચ્ય એકતરાન્=ઉક્તરૂપાન્ પ્રતિકૂલપરીપહાન્ અથવા અન્યતરાન્=તદ્વિન્નાનનુકૂલ પરિપહાન્=સત્કારપુરસ્કારાદિરૂપાનપિ અભિજ્ઞાય=મોક્ષમાર્ગપ્રતિબન્ધકા એતે ઇતિ ત્રિવાર્ય તિતિભ્રમાણ:—ઉભયાનપિ પરીપહાન્ સમભાવેન સહમાન: પરિવ્રજેત્=વિહરેત્ । પ્રકારાન્તરેણાપિ પરીપહદ્વૈવિધ્ય દર્શયતિ—‘યે ચે ’ત્યાદિ । યે ચ પરીપહા: હી-રૂપા:—લજ્જારૂપા:—અચેલરૂપા યાચનાદિરૂપા વા, તથા યે ચ અહ્રોમનસ:—અલજ્જા-

કોઈ “ઉસકા હાથ કાટે, પૈર છેદે, ગર્દન પકડ કર મરોડ દેવે”—હસ પ્રકારસે ઉસે દુ:ખિત કરે, લકડી, મૂંઠ આદિસે કોઈ યદિ ઉસે તાહિત કરે, વાલોંકો પકડ કર યદિ કોઈ ઉસે ઘસીટે, અથવા લોંચે, તો ખી ઉસ સાધુકો યહી વિચારના ચાહિયે કિ “મમ પૂર્વકૃત કર્મફલમેતત્” યે સવ ઉપસર્ગ મેરે પૂર્વકૃત કર્મેંકિ હી ફલ હૈ । ઇનમેં ઇનકા કુછ ખી અપરાધ નહીં । હસ પ્રકારસે જય ઉસકે ઉપર યે પૂર્વોક્ત યાતેં પ્રતિકૂલ-પરીપહકે રૂપમેં આતી હૈ, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂલ પરી-પહરૂપમેં આતી હૈ તો ઉસ સમય ઉસે યહી વિચારકર કિ યે સવ “મોક્ષ માર્ગકી પ્રતિબન્ધકા હૈ” ડનહેં ખુશીસે સહના ચાહિયે । ચાહે અનુકૂલ પરીપહ હોં, ચાહે પ્રતિકૂલ પરીપહ હોં, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે, અથવા સત્કાર કરે, સવ અવસ્થાઓંમેં મુનિયોં કો સમભાવ રાખના ચાહિયે । હસી પ્રકાર જો અચેલરૂપ—(અલ્પ વચ્ચ—સામાન્ય વચ્ચ)—અથવા યાચનાદિ,

ગરબન પકડી મરડી નાખે” આ પ્રકારે એને દુ ખિત કરે, લાકડી કે હાથથી માર મારે, વાળ પકડીને કોઈ ઢસરડે, અથવા લોચે, તો પણ સાધુએ વિચારવુ જોઈ એ કે “મમ પૂર્વકૃતકર્મફલમે તત્”—આ ઉપસર્ગ મારા પૂર્વકૃત કર્મેંના ફલ સ્વરૂપ છે આમાં તેને કોઈ અપરાધ નથી આ રીતે બ્યારે એના ઉપર એ પૂર્વોક્ત યાતો પ્રતિકૂળ પરિપહના રૂપમાં આવે છે, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂળ પરિપહરૂપમાં આવે છે તો એ સમય એણે એ વિચાર કરીને કે આ બધી યાતો “મોક્ષમાર્ગની પ્રતિબન્ધકા છે” તેને ખુશીથી સહી લેવુ જોઈ એ જલે અનુકૂળ પરિપહ હોય, ચાહે પ્રતિકૂળ પરિપહ હોય, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે કે સત્કાર કરે બધી અવસ્થાઓમાં મુનિઓએ સમભાવ રાખવો જોઈ એ આ રીતે જે અચેલરૂપ (અલ્પ વચ્ચ—સામાન્ય વચ્ચ) અથવા યાચનાદિરૂપ પરિપહ જે લજ્જારૂપ છે અને શીત, ઉષ્ણ આદિ અલજ્જારૂપ છે આ બંને

मूमू—इस्थोवरणं तद्दोसमाणे आयाणिज्जपरिज्ञायपरिया  
पण विंगिचइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—धर्मोपरतः तद्दोसोपयन् आदानीयं परिज्ञायपर्यायेषु विवेचयति ॥८॥

टीका—‘ इस्थोवरणं ’ इत्यादि । अत्र=अस्मिन् कर्मधूननोपाये संयमे, उप  
रतः=उप=सामीप्येन रतः सल्लभः सन्, तद्=अप्यर्थिषु कर्म धोपयन्=सपयन्  
धर्मं चरोदित्यर्थः । अत आदानीयं=कर्म परिज्ञाय मूमोघरसकृतिमेवेन ज्ञात्वा पर्या  
येषु=अमणधर्मांराधनेन विवचयति=पृथक् करोति—सपयतीत्यर्थः ॥ सू०८ ॥

सकसकर्मधूननधर्मं यद्वाहं तपस्तदधिकृत्याह—‘ इह एगेसि ’ इत्यादि ।

यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही कहा गया है ।

भावार्थ—यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही है ऐसा  
जो कहा जाता है, उसका कारण मनुष्योंमें ही सम्पूर्ण रूपसे धर्मांराधन  
करनेकी योग्यता रही हुई है, अन्योमें नहीं । अत उन्हींके निमित्त  
धर्मका उपदेश है, अन्य प्राणी भी इससे आत्महित कर सकते हैं ॥सू०७॥

कर्मके विनाश करनेमें उपायस्वरूप इस संयममें छवलीन हुआ  
मुनि अष्टविध कर्मका विनाश करता हुआ धर्मकी आराधना करे; क्यों  
कि मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे कर्मका परिज्ञान कर अमणधर्मकी  
आराधना करनेसे मनुष्य उन कर्मोंका क्षय करता है ॥सू०८॥

समस्त कर्मोंके विनाश करनेमें समर्थ जो वाद्य तप है उसकी  
अपेक्षासे सूत्रकार कहते हैं—‘ इह एगेसि ’ इत्यादि ।

वाद्यो भास इति अजीवित धमनु स्यारी सीते पावन करे; हेमके आ उत्कृष्ट-धर्मनि  
उपदेश मनुष्योंके भाटे ७ ३

भावार्थ—‘ आ उत्कृष्ट धर्मनि उपदेश मनुष्यों भाटे ७ ३ ’ जेम ७  
हेमभा आवे ३ जेनु इत्ये मनुष्योंका ७ तपुर्ण रूपकी धर्मांराधन करवानी  
येआवा रहेली ३ अन्यभा नहीं । आधी जेमना निमित्त धर्मनि उपदेश ३, अन्य  
प्राणी पण आनाधी आत्महित करी शके ३ (सू० ७)

धर्मनि विनाश करवना उपायस्वरूप जे उचमभा छवलीन अनेत मुनि,  
अष्टविध धर्मनि विनाश करवा धर्मनी आराधना करे. हेम हे मूल अने उत्तर  
प्रकृतिना भेदधी धर्मनु परिज्ञान करी अमणधर्मनी आराधना करवाधी मनुष्य  
जेम धर्मनि क्षय करे ३. (सू० ८)

समस्त धर्मनि विनाश करवामा समर्थ जे वाद्यतप ३ जेनी अपेक्षाधी  
सूत्रकार कहे ३ ‘ इह एगेसि ’ इत्यादि.

एते=परीषदसहिष्णवः नग्ना =भावनग्ना-अकिंचनाः निर्ग्रन्थाः उक्ताः=तीर्थङ्करैः  
कथिताः ॥ सू० ६ ॥

मूलम्-आणाए मामगं धम्मं, एस उत्तरवाए इह माणवाणं  
वियाहिण ॥ सू० ७ ॥

छाया-आज्ञया मामकं धर्मम्, एप उत्तरवादः इह मानवेभ्यो व्याख्यातः । ७।  
टीका—‘आणाए’ इत्यादि । आज्ञया=ममोपदेशेन मामकं=मदीय मयाऽङ्गी-  
कृतं धर्मं सम्यगनुपालयेत् इत्येवमुक्तं भगवता । एप उत्तरवादः=उत्कृष्टोपदेशः  
इह=मनुष्यलोके मानवेभ्यो व्याख्यातः, इह मनुष्यार्थमेतद्वचनमुक्तं तेषामेव  
सम्पूर्णधर्माधनयोग्यतासद्भावात् ॥ सू० ७ ॥

आते हैं वे ये परीषदोंको सहन करनेके स्वभाववाले भावनग्न-अकिंचन  
निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करों द्वारा कहे गये हैं ।

भावार्थ—परीषदोंके जीतनेमें जो अपनी शक्तिका पराक्रम प्रकट  
करते हैं और उनसे अनुद्विग्न बन कर जो “कार्य वा साधयामि  
शरीरं वा पातयामि”—अपने गृहीत मुनिव्रतरूप कार्यकी सफलतायें सर्व  
प्रकारके सुखों को सर्वथा त्याग चुके हैं और अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाहार्थ  
परीषदोंसे अडोल बन कर उनका सामना करते हैं—कभी भी घर नहीं  
आते हैं, वे ही सच्चे भावसाधु हैं; ऐसा तीर्थङ्करोंका आदेश है ॥ सू० ६ ॥

मनुष्यों में ही सपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्मके आराधन करनेकी योग्यता  
का सद्भाव है, इसलिये मैंने उनके लिये ही यह वचन कहा है कि वे मेरे  
कहनेसे मेरे द्वारा अङ्गीकृत धर्मका अच्छी तरह पालन करे, क्यों कि

होवाना कारणों के घर पाछा नहीं करता, ते अने परिषदोंने सहन करवाना स्वभाव  
वाणा भावनग्न-अकिंचन निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करोंकी कहेवाया छे.

भावार्थ—परिषदोंने लुतवाना के पोतानी शक्तिनु पराक्रम प्रकट करे  
छे अने अथी अनुद्विग्न अपनी के “कार्य वा साधयामि शरीर वा पातयामि”—  
पोते धारण करेवा मुनिव्रतरूप कार्यनी सङ्गता भाटे सर्व प्रकारना सुखोंको  
सर्वथा त्याग करी चुक्या छे, अने पोतानी प्रतिज्ञा पूर्ण करवा परिषदोंकी अडोल  
अनी तेना के सामना करे छे—कही पण घर तरङ् नगर सरणीअे करता  
नथी, अने साथ-साथसाधु छे—अथी तीर्थङ्करोंना आदेश छे (सू० ६)

भाष्यसोभा के संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्मनु आराधन करवानी योग्यतानो  
सद्भाव छे, आ भाटे मे अनेभाटे के आ वचन कहेले छे के तेअो भास कहे-

मूम्—इस्थोवरप तज्ञोसमाणे आयाणिज्जपरिज्ञायपरिया  
पण विंगिचइ ॥ सू० ८ ॥

छाया-अधोपरतः सवृक्षोपयन् आदानीयं परिज्ञायपर्यायम् विवेषयति ॥८॥

टीका—' इस्थोवरप ' इत्यादि । अत्र=अस्मिन् कर्मफून्नोपाये सयमे, उप  
रत=उप=सामीप्येन रत संसन्नः सन्, तवृ=अष्टविधं कर्म क्षोपयन्=सपयन्  
परमं चरेदित्यर्थः । अतः आदानीयं=कर्म परिज्ञाय मूलोत्तरमकृतिमदनं ज्ञात्वा पर्या  
येष=अमणधर्मांराधनेन विवषयति=पृथक् क्त्रोति=सपयतीत्यर्थः ॥ सू०८ ॥

सकसकर्मधूननसमं यद्वाद्य तपस्तदधिकृत्याह—' इह पगेसि ' इत्यादि ।

यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही कहा गया है ।

भावार्थ—यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही है ऐसा  
जो कहा जाता है, उसका कारण मनुष्योंमें ही सम्पूर्ण रूपसे धर्माराधन  
करनेकी योग्यता रही हुई है अन्योमें नहीं । अतः उन्हींके निमित्त  
धर्मका उपदेश है, अन्य प्राणी भी इससे आत्महित कर सकते हैं ॥सू०७॥

कर्मके विनाश करनेमें उपायस्वरूप इस संयममें छवलीन हुआ  
मुनि अष्टविध कर्मका विनाश करता हुआ धर्मकी आराधना करे; क्योंकि  
कि मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे कर्मका परिज्ञान कर अमणधर्मकी  
आराधना करनेसे मनुष्य उन कर्मोंका क्षय करता है ॥सू०८॥

समस्त कर्मोंके विनाश करनेमें समर्थ जो पाद्य तप है उसकी  
अपेक्षासे सूत्रकार कहते हैं—'इह पगेसि' इत्यादि ।

पाथी भास द्वारा अजीकृत धमनु सारी सीते पावन करे, केभके आ उत्कृष्ट-धर्मने  
उपदेश मनुष्योने भाटे ७ ७

भावार्थ— आ उत्कृष्ट धर्मने उपदेश मनुष्यो भाटे ७ ७ ' ज्येभ ने  
कहेवाभा आवे छे जेनु कस्य मनुष्योभा ७ सपूर्व इपथी धर्मांराधन करवाणी  
येव्यता रहेही छे अन्यभा नई आधी ज्येभना निमित्त धमने उपदेश छे, अन्य  
प्राणी पण आनाथी आत्महित करी सके छे ( सू० ७ )

कर्मने विनाश करवाना उपायस्वरूप जे सधमभा छवलीन जनेव मुनि,  
अष्टविध धर्मने विनाश करता धर्मनी आराधना करे केभ के मूल जने उत्तर  
प्रकृतिना वेदधी कर्मनु परिज्ञान करी अमणधर्मनी आराधना करवाणी मनुष्य  
ज्येभ धर्मने क्षय करे छे. ( सू ८ )

समस्त धर्मने विनाश करवाभा समर्थ जे पाद्यतप छे जेनी अपेक्षाधी  
सूत्रकार कहे छे इह पगेसि इत्यादि

मूलम्—इह षगेसिं षगचारिया होइ, तत्थियरा इयरोहिं कुलोहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए से मेहावी परिव्वए। सुब्भिअदुवा दुब्भिअदुवा तत्थ भेरवा पाणा पाणे किलेसंति, ते फासे पुट्ठा धीरे अहियासिज्जासि त्तिवेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया—इह एकेषामेकचर्या भवति, तत्रेतरादितरेषु कुलेषु शुद्धैषणया सर्वैषणया समेधावी परिव्रजेत् । सुरभि अथवा दुरभि अथवा तत्र भैरवाः प्राणाः प्राणान् क्लेशयन्ति, तान् स्पर्शान् स्पृष्टो धीरः अधिसहस्व इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका—इह=अस्मिन् जिनशासने, एकेषां=केषांचित् शिथिलीकृतकर्मवन्धानां एकचर्या=एकाकिविहरणमतिमा भवति । तत्र चानेकरूपा अभिग्रहविशेषाः भवन्ति, अतः प्राभृतिकादोषमधिकृत्याह—तत्रेत्यादि । तत्र तस्मिन् एकाकिविहारे स=कर्मधूननार्थमुद्यतः, मेधावी=साधुमर्यादाव्यवस्थितः, इतरादितरेषु=अज्ञातेषु अन्तप्रान्तेषु वा कुलेषु शुद्धैषणया—शुद्धादिदशैषणादोपरहितेनाशनादिना सर्वैषणया=आहाराद्युद्गमोत्पादनग्रासैषणारूपा या सर्वैषणा तथा, परिशुद्धेन विधिना कर्म धूननोपाये संयमे परिव्रजेत्=विहरेत्, तथा सुरभि=सिंहकेशरमोदकादिक दुरभि=

जिनके कर्मोका बन्ध शिथिल हो गया है ऐसे मुनिराजोंकी एकचर्या होती है, इस चर्यामें उनके अनेक प्रकारके अभिग्रहविशेष होते हैं । प्राभृतिका दोषको लेकर सूत्रकार कहते हैं कि उस एकाकिविहारमें कर्मोंके विनाश करनेमें उद्यत एवं साधुमर्यादामें व्यवस्थित वह मेधावी मुनि अज्ञात अथवा अन्तप्रान्त कुलोंमें शुद्ध-एषणा-शुद्धादिक दश एषणा के दोषोंसे रहित आहारादिकसे और सर्वैषणा-आहारादिकके उद्गम, उत्पादन एवं ग्रास एषणासे परिशुद्ध विधिसे कर्मोंके विनाशक संयम में लवलीन रहता हुआ विहार करे, और सुरभि-सिंहकेशरमोदक वगैरह, और दुरभि-घल्लचणा आदिसे निष्पन्न पर्युषित अम्ल-

जेमना कर्मनो षध शिथिल थई गयेल छे	जेवा मुनिराजोनी	जेकचर्या
थाय छे आ चर्यामा जे	नेक प्रकारने	अहविशेष होय छे
दोष लधने कडे छे के	रमा क	नाश करवामा तत्पर, अने
साधुमर्यादाभा व्यवस्थि	मुनि	थवा अन्तप्रान्त पुणोमा
शुद्ध	दोषो	राहित्थी अने सर्व अेषणा
-आ	उद्ग	परिशुद्ध
विना	थम	कर्मोना
वगेरे	विह	सुरभि
	रथी	पशुपि
		रमोदक
		छाय

सुगंधकादिनिष्पन्नं पर्युषितमभ्रमस्तृणाविमिथितं वा प्राप्य परिममेत्-रागक्षेप  
रहितो विहरेत् । आकाशविमनतिक्रम्य यथात्मर्षं प्रवृत्तामवस्तगन्धयुक्तमाहारादि  
कमङ्गारभूमादिमण्डलदापपरिधनैर्नपूर्वकं सुजीवेति भावः, तथा श्लोकम्—

“पश्चिमाहं संलिहिस्ताणं छेवमायाह संजप ।

सुगंधं वा दुर्गंधं वा, सम्ब मुजे न छडुप ॥ १ ॥ (दश वै० अ० ५ उ० २)

अथवा—सोऽश्वि ! एकाकिविहारे श्मशानादीं भैरवाः=मयंकरा प्राणाः  
पिशाचादयः प्राणान्=मन्यान् प्राणिनाः, यथा प्राणान्=तव प्राणान् स्लेषयन्ति-उप

तक (स्वामी छ) आविसे मिथित अमको राग-क्षेप रहित भोगे ।  
शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जो भी निर्दोष आहार उसे प्राप्त हो चाहे  
वह प्रशास्तगन्धयुक्त हो, चाहे अप्रशास्त गन्धवाला हो, उस आहारको  
वह अङ्गार भूमादिमण्डल दोषसे परिचर्जित भोगे । कहा भी है—

“पश्चिमाहं संलिहिस्ताणं, छेवमायाह संजप ।

सुगंधं वा दुर्गंधं वा, सम्ब मुजे न छडुप ॥” (वश अ ५ उ २ गा १)

अथवा—एकाकीविहार करनेवाले शिष्यको शिक्षा देते हुए सप्रकार  
कहते हैं कि हे शिष्य ! जन्म तुम्हें एकाकिविहारमें हो, और कदाचित्  
श्मशान आदिमें ध्याननिमित्त रहना पड़े, तो उस वृत्तामें यदि वहाँ  
रहनेवाले भयङ्कर पिशाचादिक प्राणी कि जिनका स्वभाव ही दूसर प्राणियों  
को कष्ट पहुँचानेका होता है तुम्हें भी क्लेशित करें-कष्ट-उपसर्ग  
पहुँचावें तो तुम उन कष्टोंसे घबराना नहीं, प्रस्युत धीरधीरकी तरह

आदिभी मिथित चलने, राज-द्वय रहित भोजने शस्त्रोक्तविधि अनुसार न  
पञ्च निर्दिष्ट आहार तेने प्राप्त भव्य, अच्छे ते प्रशास्त अथवा गन्ध दोष, अच्छे अम  
सस्त अथवा गन्ध दोष ते आहारने ते आहार भूमादिमण्डल दोषोधी रहित  
भोजने कष्ट पञ्च छे—

‘ पश्चिमाहं संलिहिस्ताणं, छेवमायाह संजप ।

सुगंधं वा दुर्गंधं वा, सम्ब मुजे न छडुप ॥” (दश वै० अ० ५ उ० २ गा० १)

अथवा—एकाकिविहार इत्यादयः शिष्यने समभवत्वं सूत्रकार हठे छे हं  
छे शिष्य । अथरे तमे एकाकीविहारमां को, अने कदाचित् श्मशान आदिमां  
ध्यान निमित्त रहने पड़े तो तेवी वृत्तामां कदाच ते अथवा स्लेषवाणा अथ  
हरे पिशाच आदि प्राणी के अने स्वभाव जीव प्राणीजीने हट पड़ेवाला  
बाने छे, तमने पञ्च क्लेश आपे-उपसर्ग पड़ेवाले तो तमे तेच हटोधी



तापयन्ति । त्वं तु तैः क्लेशैः स्पृष्टः, धीरः=अक्षोभ्यः सन् तान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अधिसहस्व-इति ब्रवीमि, अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ९ ॥

॥ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-२ ॥

उन कष्टोंको अश्रुब्धचित्त बन शांतिभावसे सहन करना । “इति ब्रवीमि” इन पदोंकी पहिले जैसी ही व्याख्या समझ लेनी चाहिये ।

भावार्थ—एकाकिविहार करनेवाले साधु वे ही हो सकते हैं जो जितेन्द्रिय होते हैं और उपसर्ग एव परीषहोंसे जो कभी भी विचलितचित्त नहीं होते हैं । इनके अनेक प्रकारके नियम होते हैं । ये ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करते कि जिससे साधुमर्यादाका भङ्ग हो । आहार के लिये जब ये निकलते हैं तब चाहे अन्तप्रान्त हो, कैसा भी क्यों न हो, जहां भी इन्हें शङ्कादिक दश एषणाके दोषोंसे रहित आहार मिल जायगा अथवा सर्वेषणासे जो परिशुद्ध होगा, कल्प समझ कर ये उसे ले लेंगे । वह चाहे सिंहकेशरमोदकादिक हो चाहे, यल्लचणकादिक से बना और अम्लतक्रादिकसे मिश्रित हो, उसमें इन्हें कोई भी जातका पक्षपात नहीं होता है । आहारके विषयमें इनकी यही शुद्धदृष्टि रहती है कि कुछ भी मिलेपर उसे शास्त्रविधिके अनुसार ही ग्रहण करेंगे ।

गलराता नहीं, पशु धीर वीरनी रीते तेवा कष्टोंने क्षोभविना शांतिभावधी सहन करो “इति ब्रवीमि” आ पढोगी पढेलानी माइकळ व्याख्या समजवी जेईजे

भावार्थ—एकाकीविहार करवावाणा साधु जे न डोय छे जे लतेन्द्रिय डोय छे, उपसर्ग अने परिषहोधी जे कठि पशु विचलितचित्त थता नहीं. जेमना अनेक प्रकारना नियमो डोय छे, तेज्जे जेवी कौई पशु प्रवृत्ति नहीं करता के जेनाथी साधुमर्यादानो भंग थाय आहारने माटे ज्यारे ते नीकणे छे त्यारे जेले अन्तप्रान्त डोय, गमे तेज्जे केम न डोय, ज्या पशु तेने शङ्कादिक एषणांना दोषोधी रहित आहार मणी जय अथवा सर्वेषणाधी जे परिशुद्ध डोय तेने कल्प समझने ते लथ वे जे जेले सिंहकेशरमोदकादिक डोय थोडे जलचणकादिकधी अनेज अने पाटी छाश आदिधी मिश्रित डोय तेमा तेने कौई पशु जतनेो पक्षपात थतो नहीं, आहारना विषयमा तेनी आवी शुद्ध नजर रहे छे के कौई पशु मणे, पशु तेने शास्त्रविधि अनुसारे न अडथु करीश.

शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार अन्तमें कहते हैं कि इस एकाक्षिविहारमें साधुको अनेक प्रकारकी आपत्तिविपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। कमी २ तो यहां तक भी मौका आ जाता है कि दमशान आदिमें पहुँचने पर साधुके उपर भयंकर पिशाचादि प्राणियों का उपसर्ग होता है; परन्तु वह धीरवीर साधु उनसे कमी भी घबरता नहीं है और सहर्ष उन परीपह-उपसर्गोंको जीतकर अपने संयमकी रक्षा करता है ॥सू०१॥

छद्म अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥

शिष्योंने सम्बोधन कर्त्वा सूत्रकार कहे थे के आ ज्येकाक्षिविहारमां साधुने अनेक प्रकारकी आपत्ति-विपत्तिने सामना करवे पडे छे. क्यारेक क्यारेक तो ज्येवे पञ्च प्रसन्न आवे छे के स्मशान आदिमा फेडासवा साधुना उपरभव कर पिशाचादि प्राणीज्येना उपसन्न बाव छे. परन्तु ते धीरवीर साधु ज्येनाधी डेड वभव मभशता नथी, जने सकथं ज्येवा पस्विड उपसर्जने छुटीने चेताना सम्भनी रक्षा करे छे

छद्म अध्ययनको जीव्ये उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥



। अथ षष्ठाध्ययनेस्य तृतीय उद्देशः ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके कर्मधूननं सोपाय प्रदर्शितम् । तच्चोपकरणशरीरम-  
मत्वविधूननं विना न संभवतीत्यतस्तद्व्योधयितुं तृतीयमुद्देशकं कथयति, तत्रादौ  
मुनिमर्यादामाह—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

मूलम्—एयं खु मुणी आयाणं सयासुअक्खायधम्ममे विहूयकप्पे  
णिज्झोसइत्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—एतत्खलु मुनिरादानं सदा स्वाख्यातधर्मः विधूतकल्पः  
निर्ज्ञोष्य ॥ सू० १ ॥

टीका—सदा=सर्वदा स्वाख्यातधर्मः—सु=सुष्ठु—सम्यक्प्रकारेण आख्यातः=  
भगवता प्ररूपितः ममत्वत्यागरूपो धर्म एव धर्म यस्य स स्वाख्यातधर्मः, तथा—

छटा अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका क्षय उपायसहित प्रदर्शित  
किया जा चुका है । कर्मोंका क्षय भी जब तक उपकरण और शरीरमें  
ममत्वका अभाव नहीं होगा तब तक नहीं हो सकता है, इसलिये उसे  
समझानेके लिये इस तृतीय उद्देशका सूत्रकार कथन करते हैं । उसमें  
सर्वप्रथम वे मुनिकी मर्यादा कहते हैं—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

सर्वदा जिसके हृदयमें भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्य-  
मान है, जो यह समझता है कि ममत्वत्याग ही सच्चा धर्म है, अर्थात्-  
जिनप्रवचनमें कथित प्रतिज्ञाके भारको वहन करनेमें जो शक्तिसम्पन्न

छट्टा अध्ययनना त्रीन्ने उद्देश

आ अध्ययना पीन्ने उद्देशमा कर्मोना क्षय उपायसहित प्रदर्शित करवाना  
आवेस छे कर्मोना क्षय पण्यु न्या सुधी उपकरण्ये अने शरीरमा ममत्वने  
अभाव नहि थाय त्या सुधी थर्ध शकतो नथी आ भाटे ये समभववा आ  
त्रीन्ने उद्देश सूत्रकार कहे छे आमा सर्वप्रथम ये मुनिनी मर्यादा कहे छे  
“ एयं खु ” इत्यादि

सहाय केना हृदयमा भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्यमान छे  
जे आ समजे छे के ममत्वत्यागण साचो धर्म छे, अर्थात्—जिनप्रवचनमा कहेस  
प्रतिज्ञाना भारने वहन करवाना जे शक्तिसंपन्न छे, तथा विधूतकल्प—सारी

विभूतकल्पः—विभूतः=सम्यक् सृष्टः कल्पः=भाषारो पन स विभूतकल्पः=ज्ञाना-  
 चारादिपरिपासको मुनिः एतत्=पूर्वोक्त वक्ष्यमाणं वा भादानं=कर्मोपादानं  
 धर्मोपकरणविरिक्तं पञ्चादिकं निष्प्रोक्त्यन्वर्तयित्वा—अस्वीकृत्येत्यर्थः,  
 विहरति ॥ सू० १ ॥

किञ्च—‘जे अचेले’ इत्यादि ।

मूम्—जे अचेले परिवृत्तिषु, तस्स ण भिष्खुस्स नो एवं  
 भवद्द—परिजुण्णे मे वरथे, वरथ जाइस्सामि, सुत्त जाइस्सामि,  
 सुइं जाइस्सामि, सधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि,  
 दुक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि, पाउणिस्सामि ॥ सू० २ ॥

छाया—योऽचेसः पर्युपितस्तस्य लक्ष्म मिश्रोर्नो एवं भवति—परिनीर्यं मे  
 वरं, वरं याचिष्ये, सुत्रं याचिष्ये, मूर्ध्नि याचिष्ये, सभास्यामि, सेविष्यामि,  
 दत्तर्षयिष्यामि, व्युत्कर्षयिष्यामि, परिषाष्यामि, मानरिष्यामि ॥ सू० २ ॥

है, तथा विभूतकल्प—अच्छी तरहसे जिसने कल्पका स्पर्श किया है—  
 ज्ञानाचार आदि आचारका जो पालक है, ऐसा मुनि पूर्वोक्त तथा आगे  
 कहे जानेवाले धर्मोपकरणके सिधाय अन्य वस्त्रादिकका त्याग कर मुनि  
 धर्ममें विचरण करता है ।

भाषार्थ—जो यह समझता है कि ममत्वत्यागरूप धर्म ही कि जिस  
 की प्ररूपणा और पाठना तीर्थंजुरादि देवोंने की है यही धर्म है, तथा जो  
 ज्ञानाचारादिकका भलीभांति पालन करनेमें सावधान रहता है और  
 धर्मोपकरणके सिधाय अन्य वस्त्रादिक परिग्रहरूप होनेसे कर्मोंके  
 उपार्जन करानेवाले हैं ऐसा विचार कर जो उनका त्याग करता है, वही  
 सच्चा मुनि है ॥ सू० १ ॥

रीते लेखे कल्पने स्पष्टं करेत्तु एतन्—आदि आचारना ले पाठते जेवा  
 मुनि पूर्वोक्त तथा उवे पछी कहेवामां आचनार धर्मोपकरणना सिधाय अन्य  
 वस्त्रादिकने त्याग करी मुनिधर्ममां विचरत्यु करता होय छे ।

भाषार्थ—जे जे समझे छे हे ममत्वत्यागरूप धर्म के जेनी प्ररु-  
 पणा अने पालना तीर्थंजुरादि देवोंने करी छे जे के धर्म छे तथा जे  
 ज्ञानाचारादिकनुसारी रीते पालन करवाया सावधान रहे छे ते जे समझने के धर्मो-  
 पकरणना सिधाय अन्य वस्त्रादिक परिग्रहरूप होवामां धर्मोपकरण करवावण-  
 छे जेवो विचार करी जे तेने त्याग करे छे, जे के ज्ञाना मुनि छे । ( सू १ )

ટીકા—યઃ સાધુઃ, અચેલઃ=અલ્પવસ્ત્રઃ, અત્રાલપાર્યે નચ્ચ, યથાઽયમજ્ઞ ઇત્ય. સ્વલ્પજ્ઞાનવાનિત્યર્થો ભવતિ; તથા-પર્યુપિતઃ=સયમે કર્મધૂનનોપાયે વ્યવસ્થિતઃ, તસ્ય મિક્ષોઃ ઇવ=વક્ષ્યમાણ ન ભવતિ=ન કલ્પતે, યથા પરિજીર્ણે મે વસ્ત્રમ્, ઇદં મમ શરીરત્રાણાય ન ભવિષ્યતીતિ વસ્ત્રં યાચિષ્ય ઇતિ, પૂર્વગૃહીતવસ્ત્રસ્ય જીર્ણતયા સ્ફાટિતતયા ચ શીતપીઢિતસ્ય મમાનેન શરીરત્રાણાસંભવાત્ નવીન વસ્ત્રં યાચિષ્ય

તથા—‘જે અચેલે’ ઇત્યાદિ ।

‘અચેલે’-ચહાંપર અલ્પ-અર્થવાચક નચ્ચકા પ્રયોગ હુઆ હૈ; જૈસે ‘અજ્ઞ’ ઇસમેં હોતા હૈ । યહ અજ્ઞ શબ્દકા જિસ પ્રકાર સર્વથા જ્ઞાનકા અભાવ પ્રતિ-પાદિત નહીં કરતા હૈ; કિન્તુ જ્ઞાનમેં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરતા હૈ, ઠીક ઇસી પ્રકારસે ‘અચેલ’ યહ શબ્દ મી વસ્ત્રકે સર્વથા અભાવકા પ્રદર્શન નહીં કરતા કિન્તુ ડસમેં અલ્પતા હી બતલાતા હૈ । એસે-જો અચેલ-અલ્પ વસ્ત્રવાલા હૈ, તથા કર્મેંકે વિનાશક ઉપાયમેં જિસકી સ્થિતિ હૈ, ડસ સાધુકે ચિત્ત મેં યહ કલ્પના નહીં ડઠતી હૈ અર્થાત્ ડસે ઇસ પ્રકારકી કલ્પના કરના ડચિત નહીં હૈ કિ મેરા યહ વસ્ત્ર જીર્ણ પુરાના હો ગયા હૈ અબ ઇસસે મેરે શરીરકી રક્ષા નહીં હો સકેગી; અતઃ કોઈ દૂસરા વસ્ત્ર કહીં કિસી સે ચલકર યાચ લૂંગા । મતલબ યહ કિ મેરા પહિલેકા જો યહ વસ્ત્ર હૈ વહ ડસ સમય જીર્ણ ઓર ફટા હુવા હોનેસે શીતપીઢિત મેરે શરીરકી રક્ષા કરનેમેં સર્વથા અસમર્થ હૈ અતઃ નવીન વસ્ત્રકે વિના મિલે મેરે

તથા “જે અચેલે” ઇત્યાદિ ।

અચેલે—અહીં અલ્પ અર્થ વાચક નચ્ચનો પ્રયોગ થયો છે—એમ “અજ્ઞ” આમા થાય છે આ અજ્ઞ શબ્દ જે પ્રકારે સર્વથા જ્ઞાનનો અભાવ પ્રતિપાદિત નથી કરતો, પરન્તુ જ્ઞાનમા અલ્પતા પ્રદર્શિત કરે છે, ઠીક એ પ્રકારથી ‘અચેલ’ આ શબ્દ પણ વસ્ત્રના સર્વથા અભાવનું પ્રદર્શન નથી કરતો, પરન્તુ એમા અલ્પતા જ બતાવે છે એવા જે અચેલ-અલ્પવસ્ત્રવાળા છે, તથા કર્મોના વિનાશક ઉપાયમા જેની સ્થિતિ છે, એવા સાધુના ચિત્તમા એ કલ્પના નથી ઉઠતી, અર્થાત્ એણે એ પ્રકારની કલ્પના કરવી ઉચિત નથી કે માફ આ વસ્ત્ર છુટું-ચુટું થઈ ગયું છે, હવે આનાથી મારા શરીરની રક્ષા થઈ શકવાની નથી બીજું કોઈ વસ્ત્ર કોઈ જગ્યાએ કોઈની પાસેથી માગી લઈશ મતલબ-મારી પાસે પહેલાનું જે આ વસ્ત્ર છે તે આ સમયે છુટું થવાથી ફાટી ગયેલ છે, અને ઠડીમા મારા શરીરની રક્ષા કરવામા તદ્દન અસમર્થ છે આથી નવીન વસ્ત્ર વગર મારા શરીરનું ઠડીથી રક્ષણ થવું અસંભવ છે આ માટે નવું વસ્ત્ર

त्पर्यः । सूत्रं=तन्तुं याचिष्य, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि=मूत्रसूष्यौ लम्बा जीर्ण  
 वस्त्रस्य रत्नं संधास्यामीत्यर्थः । तथा स्फाटिर्षं सेविष्यामि । तथा=सत्कर्मयिष्यामि  
 =अपरवस्त्रसम्बन्ध योमयित्वा वर्षयिष्यामि, लघुवस्त्रं विघ्नसं करिष्यामीत्यर्थः । तथा  
 व्युत्कर्षयिष्यामि=स्फाटितमार्गं भ्रोटयित्वाऽपनेष्यामि तथा परिधास्यामि=पथ कृते  
 सति पद्मादिदं भीर्णनसं परिधानसं करिष्यामि । तथा=माधरिष्यामि=प्रापरभं  
 'चादर' इति मापामसिद्धं करिष्यामि ।

शरीरकाय चीलसे घ्राण (रक्षा) होना असम्भव है । इसलिये नवीन वस्त्र  
 मिल जाय तो ठीक ! जब तक यह नहीं मिलता है—तब तक जैसे पने  
 इस फटे पुराने वस्त्रसे ही काम निकाल लूंगा; परन्तु ऐसे तो ये काममें  
 आवेगा नहीं; अतः यदि कहींसे सुई और धोरा मिल जाय तो उससे  
 इसे सी लूंगा, जहां २ यह फट चुका है—जोड़ लूंगा, इसमें जितने छेद हो  
 चुके हैं उन्हें भर लूंगा, नहीं तो कौन इतना परिश्रम कर, जो भाग  
 यिलकुल फट चुका है उसे इससे निकाल लूंगा और दूसरा टुकड़ा जोड़  
 लूंगा, इससे यह फटा पुराना टुकड़ा पहिलेकी अपेक्षा कुछ पड़ा भी  
 हो जायगा । इससे मेरे दोनों काम निकल जायेंगे, पहिरने टाइममें पहिर  
 लिया फर्केगा और ओढ़नेके समयमें ओढ़ भी लिया फरेगा, अर्थात्  
 इसकी चादर बना लूंगा । इस प्रकारके संकल्प विकल्परूप आत्मध्यानसे  
 मुनिके शुभ अध्यवसाय नहीं होता है । शुभ अध्यवसाय उत्पन्न हुए  
 बिना परंपरारूपसे कर्मोका क्षय भी नहीं हो सकता, अतः कर्मोके क्षय  
 के लिये उद्यत हुए मुनिको आर्चध्यानका सवधा परित्याग कर देना

भणी नम तो हीर परन्तु न्यां सुधी जे न भणे त्यां सुधी जमे तेम आ  
 शेटेव नुन वस्त्रधी न खलावी लक्ष्य, परन्तु शेटेव दाखवाम्य तो जे काममां  
 आवी शके तेम नधी, आधी जे न्यांयधी सोप दोरा भणी नम तो जेनाधी  
 जेने सीवी लक्ष न्यां न्यां जे शट्यु छे त्यां जेधी लक्ष जने न्यां छिद्र  
 पथ्य छे जेने बारी लक्ष नखि तो कोणु आटवी परिभन करे जे भाग नील  
 कुल हाटी जयेव छे जेने हाटी नाथी जीने दुकटा जेधी लक्ष्य आधी जे  
 शेटेव नुने दुकटा पडेवां ठरवां भोगे घरे जने जेधी भाग जने काम धर्ष जरे  
 पडेवना टाळिमे पडेरी लक्ष्य जने जेवनाता समये जेधी पणु लक्ष्य आ  
 प्रकाशना स कल्प-विषयश्च आर्चध्यानधी मुनिने शुभ अध्यवसाय घतेव नधी, शुभ  
 अध्यवसाय उत्पन्न यथा बिना परंपररूपया कर्मोनि क्षय पद्य धर्ष शकतो नधी  
 आधी कर्मोना क्षयने भाटे उपव जनेव मुनिके आर्चध्यानने सर्वथा त्याज  
 ३८

एवरूपार्तध्यानेन शुभाध्यवसायो नोत्पद्यते, तस्मात् कर्मधूननार्थमुपयतेन मुनिनाऽऽर्तध्यान परिवर्जनीयम्, अवसरे यद् भवेत्तद् भविष्यतीति चिन्तयेदिति भावः ॥ सू० २ ॥

तस्याऽचेतस्य साधोर्जीर्णवह्निविषयकमार्तध्यान यदि नापि भवेत्, किन्तु चाहिये और ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस समय जो होनेवाला होगा सो होगा ।

भावार्थ—चाहे अल्पवस्त्रवाले हों, चाहे बहु वस्त्रवाले हों; जो पर-पदार्थों में मोहી हैं, उनके ही ये पूर्वोक्त रूपसे कल्पनाएँ उठा करती हैं । यदि मुनिके भी ये इसी तरहसे उठती हैं तो वह सच्चा मुनि नहीं है । मुनिके इस प्रकारकी कल्पनाओंका जागरण आर्तध्यानका कारण माना गया है, जो शुभ परिणामोंकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक होता है । अतः मुनियोंको तो इस प्रकारकी कल्पना उठनी ही नहीं चाहिये—उन्हें तो यही विचार चाहिये कि जो जिस समयमें होना है वही होगा, मुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, चिन्तासे कर्मोंका ही बन्ध होगा, न कि उनका धूनन । तात्पर्य यह है कि वस्त्र पुराना हो जाय तो उसकी चिन्ता न करे, और कब सीऊगा इस प्रकार आर्तध्यान न करे ॥सू० २॥

भले ही उस अचेत साधुके लिये फटे-पुराने-वस्त्र-विषयक आर्त-  
કરવો જોઈએ અને એવો વિચાર કરવો જોઈએ કે જે સમયે થવાનું છે તે  
થઈને જ રહેશે

ભાવાર્થ—ચાહે અલ્પવસ્ત્રવાળા હોય, ચાહે બહુવસ્ત્રવાળા હોય, જે પર-  
પદાર્થોમાં મોહી છે એને જ એ પૂર્વોક્તરૂપથી કલ્પનાઓ ઉઠાયા કરે છે મુનિના  
મનમાં પણ જે આવી કલ્પના ઉઠે તે એ સાર્યો મુનિ નથી મુનિમાં આ પ્રકાર  
ની કલ્પનાઓ બંધવી એ આર્તધ્યાનના કારણરૂપ માનવામાં આવેલ છે જે  
શુભ પરિણામોની પ્રાપ્તિમાં બાધારૂપ બને છે આથી મુનિઓમાં તે આ પ્રકારની  
કલ્પનાઓ ઉઠવી જ ન જોઈએ એણે તે એવો જ વિચાર રાખવો જોઈએ કે જે  
સમયે જે બનવાનું છે તે બનવાનું જ છે. મારે એની ચિન્તા શા માટે કરવી  
જોઈએ ચિન્તાથી તે કર્મનો બન્ધ થાય છે, એનો નાશ નહિ તાત્પર્ય એ છે કે  
વસ્ત્ર ભલે જુનું થઈ બંધ એની એ ચિન્તા ન કરે, અને ક્યારે સીવીશું આ  
પ્રકારથી આર્તધ્યાન ન કરે (સૂ० ૨)

એ એવેલ સાધુને માટે ફાટેલ જુના વસ્ત્રો વિષે ભલે આર્તધ્યાન ન હોય

वत्स्यमाणपरीपहायामवश्यं सम्भव इति तत्र तस्य क्त कर्तव्यं तदाह—'अनुवा तस्य' इत्यादि ।

मूळम्—अनुवा तस्य परक्रमत मुञ्जो अचेल तणफासा फुसति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसति, दसमसगफासा फुसति । प्गयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेति अचेले लाघव आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागय भवइासू० ३॥

छाया—अथवा तत्र परक्रममाणं भूयोऽवेले वृणस्पर्शाः स्पृशन्ति, शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति तेषास्पर्शाः स्पृशन्ति, वंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति । एकतरान् भन्पतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् अप्यास्ते अवेले लाघवम् आगमयन्, तपस्तस्य अभि-  
समन्वागतं भवति ॥ मू० ३ ॥

टीका—अथवा तत्र—अल्पवस्त्रावस्थायां पराक्रममाण=कर्मभूलनापाय समय समुप-  
जानं अथेकम्=अल्पवस्त्रं साधुं क्वचित् प्रामादीं त्वक्प्राववक्षामानात् वृण्णापिने,  
ध्यान न हो तो भी ये बहयमाण परीपहतो अवश्य हो सकते हैं । उनके होनेपर जो उनका कर्तव्य है, उसे सूत्रकार कहते हैं—“अनुवा तस्य” इत्यादि ।

अथवा—अल्प वस्त्र धारण करनेकी अवस्थामें अच्छी तरहसे उपयुक्त अर्थात् संयमकी रक्षा अधिक वस्त्रोंके धारण करनेसे नहीं हो सकती है और जहां संयमकी रक्षा ही नहीं है वहां कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता है—इस भावनासे प्रेरित यह साधु कर्मविनाशक समयमें सदा सद्योगशाली बना रहता है और इसीलिसे वह अल्प वस्त्र—थोड़े वस्त्रोंसे अपना काम चलाता है, तो भी ऐसे साधुको किसी प्रामादिकमें शारीरिक रक्षाके योग्य वस्त्रोंका अभाव होनेसे कदाचित् घासपर भी शयन करना पड़ता है, इस अवस्थामें कठोर वृणस्पर्शोंसे उत्पन्न दुःखविशेषों  
तो पक्ष को वक्ष्यमाण परिपक्ष तो अपरम भाव छे, ते क्त्वा तेषु ने कर्तव्य छे तेने सुत्रकार कहे छे “अनुवा तस्य” इत्यादि.

अथवा अल्प वस्त्र धारण करवाना अवस्थामें शारीरी रीति उपयुक्त कोरले संयमकी रक्षा वपु वस्त्राधारण करवाधी कर्ष शकती नभी, अने न्यां संयमकी रक्षा वर नधी त्यां कर्मने क्षय पक्ष कर्ष शकते नभी, अथ साधनाधी प्रेरित ते साधु कर्मविनाशक संयममें सदा उपोदशान्नी जती रहे छे अने को नारे ते अल्प वस्त्र—मोटां वस्त्राधी धारणु काम चलावे छे, तो पक्ष कोवा साधुने कोर्ष सामग्रामें शारीरिक रक्षा—मोअ वस्त्राने अक्षय कोवाधी कोर्ष वपते घास उपर



તૃણસ્પર્શાઃ=પરુપતૃણસ્પર્શજનિતદુઃસ્વવિશેષાઃ કદાચિત્ સ્પૃશન્તિ=પીડયન્તિ, તથા શીતસ્પર્શાઃ=શીતપરીપહા સ્પૃશન્તિ । તથા-તેજઃસ્પર્શાઃ=ઉષ્ણપરિપહાઃ સ્પૃશન્તિ, તથા દંશમશકાસ્પર્શા સ્પૃશન્તિ । एषु परिपहेषु ये एकतरे=एकरूपाः, -प्रतिकूला एव दंशमशकादय, तथा-ये अन्यतरे=उभयविधा -अनुकूलप्रतिकूलरूपाः=शीतोष्णादयः; यथा ये शीतस्पर्शाः हेमन्ते प्रतिकूलास्त एव ग्रीष्मेऽनुकूलाः, तथा य उष्णस्पर्शाः ग्रीष्मे प्रतिकूलास्त एव हेमन्तेऽनुकूला इत्येवमनुकूलप्रतिकूलरूपाः शीतस्पर्शाः उष्ण-स्पर्शाश्च भवन्ति, अतएव विरूपरूपाः=अनेकरूपाः स्पर्शाः-परिपहरूपास्तृणादि-स्पर्शाः प्रादुर्भवन्ति, तान् अचेलः=अल्पवृत्तः साधुः अधिसहते । स किमुद्दिश्य परिपहान् अधिसहते? इति जिज्ञासायामाह-लाघवभागमयन्निति । लाघवम्=द्रव्यतो

का उसे सामना करना पड़ता है—उन दुःखोंको सहता है । शीतस्पर्श-परीषह भी वह सहता है । डांस मच्छर आदि जन्य वेदनाओंको भी सहन करता है । इन परीषहोंमें कोई २ परीषह प्रतिकूल ही हैं, तथा कोई अनुकूलप्रतिकूल उभयरूप हैं । जैसे—दशमशकादिक प्रतिकूल ही हैं । तथा शीत उष्ण वगैरह अनुकूल प्रतिकूल दोनों रूप हैं । जो शीतस्पर्श हेमन्त ऋतुमें प्रतिकूल मालूम देते हैं वे ही ग्रीष्मऋतुमें अनुकूल लगने लगते हैं । इसी प्रकार जो उष्ण स्पर्श ग्रीष्ममें प्रतिकूल लगते हैं वे ही हेमन्तमें अनुकूल जचते हैं । इसी अपेक्षा ये शीत-उष्ण स्पर्श विरूप-रूप-अनेक रूप यताये गये हैं । इन अनेकरूप स्पर्शोंको और परीषहरूप तृणादिस्पर्शोंको वह अचेल साधु सहन करता है । किस विचारसे वह इन परीषहोंको सहता है ? इस प्रकारकी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार

પણ સુબુ પટે છે આ સ્થિતિમા કંઠેર ઘાસના સ્પર્શથી ઉત્પન્ન હુ ખોનો તેને સામનો કરવો પટે છે—એ આવા હુઃખોને સહે છે શીતસ્પર્શ પરીષહ પણ સહે છે ડાસ, મચ્છર આદિજન્ય વેદનાઓને પણ સહન કરે છે આ પરીષહોમા કોઈ કોઈ પરીષહ પ્રતિકૂળ જ હોય છે, અને કોઈ કોઈ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ હોય છે જેમ દશ મશકાદિ પરીષહ પ્રતિકૂળ જ છે અને શીત ઉષ્ણ આદિ પરીષહ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ છે જે શીતસ્પર્શ હેમન્તઋતુમા પ્રતિકૂળ માલુમ પટે છે તે જ ગ્રીષ્મ ઋતુમા અનુકૂળ લાગે છે એ જ શીત ઉષ્ણ સ્પર્શ ગ્રીષ્મ ઋતુમા પ્રતિકૂળ લાગે છે તે જ હેમન્તમા અનુકૂળ લાગે છે આ અપેક્ષાથી શીત-ઉષ્ણ સ્પર્શ વિરૂપરૂપ-અનેકરૂપ બતાવવામા આવેલ છે આ અનેકરૂપ સ્પર્શોને અને પરિષહરૂપ તૃણાદિસ્પર્શોને એ અચેલ સાધુ સહન કરે છે કયા વિચારથી એ આવા હુ ખો સહે છે? આ પ્રકારની ઇચ્છામા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે કે—“લાઘવં આગમચ્ન”-એ સાધુ વસ્ત્રાદિકોના લાઘવ-સંલેપ

भाषतथा तत्र द्रव्यतो-धर्मोपकरणवस्त्रादिलाघवं, भाषतस्तु-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविक्रमं  
सायवस्, आगमयन्-नयन्, यद्वा-अवगमयन्-मोक्षार्थिनो मम वस्त्रादिलाघवं  
कर्मसायवं चावश्यं करणीयमित्येवं चिन्तयन्-इति यावत्; परिपहाणां सहनमेव  
मम कर्मघूननोपाय इति कृत्वा तान् सर्भान् परीपहान् अधिसहति इति भावः ।

तस्य=उपकरणलाघवन कर्मसायव कर्मलाघवेन उपकरणसायवं विदित्वा  
तृणादिस्पर्शान् अधिसहमानस्य तपः=कायकलत्ररूपतया बाह्यं तपः, धर्मि  
समन्वागत=मोक्षामिमुल्यन सम्पगाचरितं भवति ॥ सू० ३ ॥

कहते हैं कि "लाघवं आगमयन्" यह साधु वस्त्रादिकोंका लाघव-  
संक्षेप करानेका अधिलापी है-अर्थात् द्रव्य और भाषके भेदसे लाघव  
दो प्रकारका है-धमक उपकरणभूत वस्त्रादिकोंकी लघुता-अल्पता द्रव्य  
लाघव है और ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मोंकी लघुता भाषलाघव है ।  
इन दोनोंको वह मुनि लाघव (इलफापन)की ओर ले जा रहा है ।  
"आगमयन्"की जगह "अवगमयन्" यह भी पाठान्तर है, इससे यह  
भाव निकलता है कि उसका मदा यही विचार रहता है कि मैं मोक्षका  
अधिलापी हूँ, मेरे पास सदा वस्त्रोंकी अल्पता ही होनी चाहिये और  
मुझे कर्मोंका लाघव अवश्य करना चाहिये। इसी विचारसे वह परीपहोंको  
सहता है, क्योंकि इनका सहना ही मेरे पास कर्मोंके क्षय करनेका उपाय है।

साधुक उपकरण क लाघवसे कर्मोंका लाघव और कर्मोंके लाघव  
से उपकरणका लाघव जानकर, तृणादि स्पर्शजन्य कर्मोंको सहन करने  
वाले उस साधुका तृणादि स्पर्शजन्यकष्ट तपः-कायकलेश नामक पाद्मतप  
है और वह उसका निर्जरा समझकर अच्छी तरहसे सहन करता है। सू० ३।

अर्थाने अधिलापी है-अर्थात् द्रव्य जने भाष ना वेदधी सायव से  
प्रक्षरे है-धर्मना उपकरणभूत वस्त्र आदिनी लघुता द्रव्य सायव से जने ज्ञान  
वरणीयादि आठ कर्मोंनी लघुता भाषसायव से आ जनेने के लाघवनी तदर्थ  
लघु भाष से आगमयन् "ने स्थाने "अवगमयन्" आ पक्ष पाठान्तर से आधी  
के भाव निकले से के जने सदा के विचार रहे से के कुं मोक्षने अधिलापी हूँ,  
भारी पास वस्त्रोंनी सदा अल्पता व रहेवी लेके जे, जने भारे कर्मोंनु सायव  
अवश्य अर्धु लेके जे केम के दुःखने मुहोवधी आठ कर्मोंना सव भाष से

उपकरणना सायवधी कर्मोंनु सायव जने कर्मोंना सायवधी उपकरणनु सायव  
अधी तृणादिस्पर्शजन्य कर्मोंने सहनकरते साधुनु तृणादिस्पर्शजन्य कष्ट तपः-मज्जतेषा  
नामधु पाद्मतप से जने के तेने निज य मज्ज आरी रते सहन करे से। (सू० ३)

एतच्च न मया स्वबुद्ध्या परिकल्प्य कथ्यते; किन्तु भगवदुक्तानुसारेण  
त्याह—‘जहेय’ इत्यादि ।

मूलम्—जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्व-  
ओ सव्वत्ताए संमत्तमेव समभिजाणिज्जा, एवं तेसिं महावीराणं  
चिररायं पुव्वाइं वासाणि रीयमाणानं दवियाणं पास अहिया-  
सियं ॥ सू० ४ ॥

छाया—यथैतद् भगवता प्रवेदित तदेवाभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया  
सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् । एवं तेषा महावीराणा चिररात्र पूर्वाणि वर्षाणि  
रीयमाणाना द्रविकान् पश्य अध्यासितम् ॥ सू० ४ ॥

टीका—एतद्=उन्नतं वक्ष्यमाणं च यथा=येन प्रकारेण भगवता प्रवेदितं=प्ररूपेण  
बोधितम्, अतः तदेव उपकरणादिलाघवम्, सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः, तत्र द्रव्यतः  
—आहारोपकरणादौ, क्षेत्रतः—सर्वत्र ग्रामादौ, कालतः—अहर्निशम् दुर्मिक्षकादौ वा,

यह मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे नहीं कहता हूँ, किन्तु भगवान्‌के  
कहे अनुसार ही कहता हूँ; इस बातको प्रकट करनेके लिये श्रीसुधर्मास्वामी  
श्रीजम्बूस्वामीसे कहते हैं—“जहेयं” इत्यादि ।

भगवान्‌ने यह पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघवरूप  
विषय जिस प्रकारसे कहा है—समझाया है, वही द्रव्य, क्षेत्र, काल और  
भावसे जानकर, मुनि उसमें दत्तावधान बन, शुभ अध्यवसायरूप सम्य-  
क्त्वका ही मोक्षकी सन्मुखतासे चिन्तन करे। आहार एवं उपकरणादि-  
कोंमें जो लाघव किया जाता है वह द्रव्यकी अपेक्षा लाघव है। मैं इतने  
ही ग्रामोंमें विहार करूंगा, इतनेमें नहीं—इस प्रकार जो ग्रामादिकोंमें

आ हुं भारी लुब्धिनी कल्पनाथी नहीं कहेतो, परंतु लगवानना कहेवा  
अनुसार न कहुं छु आ वातने प्रगट करवा भाटे श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बू-  
स्वामीने कहे छे—“जहेय” इत्यादि

लगवाने आ पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघवरूप विषय के  
प्रकारे कहेल छे—समझावेल छे, तेने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने लाघवी ललुब्धिने  
मुनि तेमा अेकाअ अनी शुभ अध्यवसायरूप सम्यक्त्वतो न मोक्षनी सन्मुखता  
भाटे चिंतन करे आहार अने वस्त्रो आदिमा के लाघव करवामा आवे छे  
ते द्रव्यनी अपेक्षा लाघव छे हुं अेटला न आमादिकोमा विचार करीश, अेटलामा  
नहिं—आ प्रकारे के आमादिकोमा लाघव करवामा आवे छे ते क्षेत्रनी

मायतां मायाराहित्येन अभिसमस्य=इत्था सर्वात्मतया=अनन्यमनसा सम्यक्त्वमेव  
 =शुमान्यक्सायमव समभिजानीयात्=सम्यग्शुभोत्सामिदुस्येन मानीयात्, चिन्तयेदि  
 त्यर्थः। अयं मानः-जिनकल्पिक एकवस्त्रधारिणं स्वविरकल्पिकं न हीस्येत्।  
 एवमेकवस्त्रधारको द्विवस्त्रधारकम्, द्विवस्त्रधारकम् त्रिवस्त्रधारकम्। तथा चातुर्मासिकक्षप  
 कक्षिमासक्षपकम्, त्रिमासिका द्विमासिकम्, द्विमासिक एकमासिकम्, एकमा-  
 सिकोऽर्धमासिकम्, अर्धमासिकक्षपक एकान्तरक्षपकम्, एकान्तरक्षपक  
 एकमक्तभोजिनं न हीस्यत्, यथा अयं न माहसः, किन्तु दुष्करतयासंयमाराधनकार  
 इत्यादिक्य दुष्मणिधान न कुर्यात्। किमपिकेन? जिनकल्पिक' प्रतिमामतिपन्नो वा

लाघव क्रिया जाता है वह क्षेत्रकी अपेक्षा लाघव है। इस ग्राममें मैं एक  
 रात दिन रहूंगा, अथवा बुर्भिक्षकालादिकमें रहूंगा, सब समयमें नहीं,  
 यह कालकी अपेक्षा लाघव है। मायाधाररहित होना यह भाषकी  
 अपेक्षा लाघव है। तात्पर्य इसका यह है-जिनकल्पी साधु, एक वस्त्र  
 धारण करनेवालेका, एक वस्त्रधारी द्विवस्त्रधारणकरनेवालेका, द्वि  
 वस्त्रधारी तीनवस्त्रधारणकरनेवालेका, तथा चातुर्मासिकक्षपक, त्रिमा  
 सिक क्षपकका, द्विमासिक क्षपक त्रिमासिक क्षपकका, द्विमासिकक्षपक  
 एकमासिक क्षपकका, एकमासिक क्षपक अर्धमासिक क्षपकका, अर्धमा  
 सिकक्षपक एकान्तर क्षपकका, और एकान्तरक्षपक एकमक्तभोजीका,  
 कभी भी तिरस्कार न करे। यह मेरा जैसा नहीं है; किन्तु दुष्कर तप  
 और सयमकी आराधना करनेमें कायर है-इत्यादि-रूपसे उनकी अप-  
 खेहना न करे, और न अनादरकी दृष्टिसे देखे। इस विषयमें ज्यादा

अपेक्षा लाघव छे आ आमभां दुं जेक रात दिवत रहीथ. अबवा  
 बुर्भिक्ष कालादिकमा रहीथ, तथा अमम सुधी नहि. आ हाजनी अपेक्षा लाघव  
 छे मायाशी रहित रहैवु जे लावनी अपेक्षा लाघव छे तात्पर्य जेन जे छे  
 के एकवस्त्री साधु जेक वस्त्र धारण करवावाणानु अने जेक वस्त्रधारी जे वस्त्र  
 धारण करवावाणानु जे वस्त्रधारी त्रय वस्त्र धारण करवावाणानु तथा चातुर्मासिक  
 क्षपक त्रिमासिक क्षपकनु त्रिमासिक क्षपक जे मासिक क्षपकनु जे मासिक क्षपक  
 जेक मासिक क्षपकनु जेक मासिक क्षपक अर्धमासिक क्षपकनु अर्धमासिक  
 क्षपक जेकान्तर क्षपकनु अने जेकान्तर क्षपक जेकमक्तभोजीको कहि पणु  
 तिरस्कार न करे-जे मासकेषा नही; परतु दुष्कर तप अने संयमनी आराधना  
 करवाभां कायर छे-इत्यादि रूपधी जेनी अपखेहना न करे अने न ते अनादरनी  
 दृष्टिधी जुजे. आ विषयभां वधु शुं करेनुं. एकवस्त्री साधुजो अने प्रतिमाधारी

कदाचित् स्वकल्पेन पडपि मासान् भिक्षा न लभते चेत्तथाऽप्यसौ समभावमालम्ब्य विभावयति-सर्वे चैते स्वस्वकर्मक्षपणार्थं यथाविधिप्रवृत्ताः धृतिसहननवलस्यामादिकारणवशाद् विसदृशकल्पा जिनाज्ञायामेव वर्षन्त इति। एतच्च बाहुभ्यां समुद्रतरणवदसम्भव नास्ति, चिरमन्वैर्बहुभिस्तीर्थङ्करगणधरैः समाराधितत्वादिति दर्शयितुमाह-‘एवम्’ इत्यादि। एवम्=उक्तविधिना तेषाम्=अचलेतया तृणस्पर्शादि कमधिसहमानाना महावीराणां=कर्मविदारणशूराणां चिररात्र=प्रभूतकालं यावज्जीवमिदर्थः, तदेव स्पष्टीकरोति-पूर्वाणि वर्षाणि च रीयमाणानां=सयममार्गं गच्छता,

क्या कहा जाय? जिनकल्पी हो, अथवा पडिमाधारी हो, कदाचित् वह यदि अपने कल्पसे छह मास तक भी भिक्षा नहीं पाता है तो भी समताभावका अवलम्बन कर विचारता है कि ये समस्त मुनिजन शास्त्रविधि के अनुसार अपने २ कर्मोंके क्षपण करनेके लिये प्रवृत्त हैं, धैर्य, सहनन, वलकी स्थिरता आदि कारणके वशासे विसदृश कल्पवाछे होते हुए भी जिन भगवान्की आज्ञामे ही प्रवृत्ति कर रहे हैं। यह बात हाथोंसे समुद्र को पार करने जैसी असंभव नहीं है। क्यों कि यह सम्यक्त्वस्वयं मार्ग चिरकाल तक अनेक तीर्थङ्करों एवं गणधरोंने पाला है। इसी बातको दिखलानेके लिये सूत्रकारने “एव तेषां महावीराणां चिररात्र पूर्वाणि वर्षाणि रीयमाणानां द्रविकाणां पश्य अध्यासितम्” इस सूत्रांशको कहा है। इसमें वे यह बतलाते हैं कि तीर्थङ्करादिकोंने भी उक्त विधिके अनुसार ही अचेल अवस्थामें रहते हुए तृणस्पर्शादि परीषहोंको सहन किया है, और इसीसे वे कर्मरूपी शत्रुओंके क्षय करनेमें शूरवीर बने हैं, तथा उनके जीवनका पूर्व और वर्षरूप समय सयममार्गकी आराधना

साधुओंो कदाच पोटाना कल्पथी छ भडिना सुधी भिक्षा न भेणवे तो पणु समताभावनु अवलभन करी विचारे छे के आणधा मुनिजन शास्त्रविधिना अनुसार पोटपोताना कर्मोना क्षपणु करवा भाटे प्रवृत्त छे धैर्य, सहनन, भजनी स्थिरता आदि कारणना वशथी विविन्न कल्पवाणा डोवा छता एन भगवाननी आज्ञामा न प्रवृत्ति करे छे आ वात डोधथी समुद्रने पार करवा नेवी अस भव नथी, डेम के सम्यक्त्वस्वयं मार्ग चिररात्र सुधी अनेके तीर्थङ्करे अने गणधरोये पायेल छे आ वातने प्रदर्शित करवा भाटे सूत्रकार “एव तेषां महावीराणां” इत्यादि सूत्राशने कडेल छे आमा तेओये गतावे छे के तीर्थङ्कर आदिओये पणु उक्तविधि अनुसार न अचेल अवस्थामा रहेता तृणस्पर्शादि परिषहने सहन करेल छे, अने ओथी तेओ कर्मरूपी शत्रुओनो क्षय करवाभा शूरवीर भन्था छे तथा ओभनां एवतना पूर्व अने वर्षरूप समय सयममार्गनी आराधना करवाभा न व्यतीत थयेल छे अडि पूर्वनु प्रभाणु



परीपहोपसर्गसहनशीलानां यद्भवति, तदाह—‘आगयपन्नाणाणं’ इत्यादि।

मूलम्—आगयपन्नाणाणं किं वाहा भवन्ति, पयणुए मंस-  
सोणिए । विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए, एस तिन्ने मुत्ते विरए  
वियाहिए त्तिवेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—आगतप्रज्ञानानां कृशा वाहवो भवन्ति, प्रतनुकं मांसशोणितम् ।  
विश्रेणिं कृत्वा परिज्ञया, एप तीर्णः मुक्तः विरतः व्याख्यातः—इति ब्रवीमि ॥सू०५॥

टीका—आगतप्रज्ञानानां=लब्धसम्यग्ज्ञानानां वाहवः=शुजाः कृशा भवन्ति,  
तपसा परीपहाधिसहनेन च गात्राणि कृशत्वमापद्यन्त इत्यर्थः । यद्वा—‘वाधा’  
इतिच्छाया, तत्र वाधाः=परीपहजनिता पीडाः कृशा भवन्ति=प्रतनुत्वमापद्यन्ते ।  
कर्मक्षपणार्थं प्रयतमाना साधवः “ममैते शरीरमात्रपीडाकराः परीपहोपसर्गाः  
सहायका एवे”ति मन्यमानाः शरीरपीडा न पश्यन्तीति भावः । अतः मांसशोणित

परीषह और उपसर्गोंको सहन करनेका जिनका स्वभाव है ऐसे  
महासुनियों को जो लाभ होता है उसे सूत्रकार कहते हैं “आगय-  
पन्नाणाणं ” इत्यादि ।

जिन्हें सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है ऐसे महासुनियोंकी शुजाएँ  
कृश हो जाती हैं, अर्थात्—तप और परीषहोंके सहनेसे उनके शरीर कृश  
जाते हैं । “वाहा ” शब्दकी छाया “वाधा” भी है—जिसका अर्थ है  
कि सम्यग्ज्ञानी सुनियोंकी परीषहजन्य बाधाएँ कृश हो जाती हैं—अत्यंत  
अल्प रह जाती हैं ।

भावार्थ—कर्मोंको नाश करनेके लिये प्रयत्नशील साधु परीषहा-  
दिकोंके आने पर यह विचार करते हैं कि ये परीषह और उपसर्ग मेरे  
शरीरमात्रको ही पीड़ा देनेवाले हैं, समयका कुछ भी ये विगाड नहीं कर  
सकते हैं, प्रत्युत उसमें सहायक ही हैं । इस प्रकार मानकर वे महा-

आ परिषद् अने उपसर्गों सहन करवाने के लिये स्वभाव से जो  
महासुनियोने के लाभ थाय से अने सूत्रकार कहे से “आगयपन्नाणाणं” इत्यादि  
नेने सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति यद्युक्ती से जो महासुनियोनी बुज्जयो कृश  
यद्यन्त्य से, उ सहेन करवायी अनेतु शरीर कृश यद्यन्त्य  
से, “वाहा ” पणु से नेने अर्थ से से के सम्यग्ज्ञानी  
सुनियोनी परिषद् यद्यन्त्य अत्यंत अल्प यद्यन्त्य से  
भावार्थ प्र साधु परिषद् पगेरेना  
अ शरीर मात्रने ज  
नधी, परतु अनेभा

परीपद्मादिसहस्रीलानां शरीरस्य मांसरुधिरं मृतजुक्तं—गुल्फं सत् स्वल्पतरं भवति ।  
साधारत्वाद्दस्याहारत्वात् परीपद्मादिसहस्राच्च भ्रूयवस्तया मृणस्पर्शशीतस्पर्शां  
भेभिः शरीरस्य रसघ्नोपश्लोच मोक्षार्पिनां मांसशोणितं शुष्कं भवतीति भाव ।

तथा—परिधिया—समभावनाया जिनकस्त्रिकः स्यधिरकस्त्रिको वा विकृष्टाविकृ-  
टतपभस्त्रशीलः प्रत्यहमोमी वा सर्वेऽप्यते भगवदाहारार्पिन एव—इत्यन्तरूपया  
नेभेभिः कृत्वा—रागद्वेषकपायसतविरूपां संसारावतारविका संसारभेगि समत्वमाव-  
त्या क्षान्त्यादिमिथ प्रोटितां कृत्वा पर्वत इत्यर्थः । एष—उक्तमप्यत्र साधुः,

मुनि होनी हुई शारीरिक पीडाकी तरफ लक्ष्य नहीं देते हैं । परीपद्म आदि  
हो शांतिभावसे सहनेवाले साधुओंके शरीरका मांस और रुधिर  
ष्क हो जाता है—वे शरीरसे कुछे पतले हो जाते हैं—रुधिर और मांस  
नके शरीरमें बहुत कम रह जाता है । कारण कि अन्तर्प्रान्त और भ्रूय  
आहारसे, परीपद्म आदिके सहनेसे और थोड़े वस्त्र रखनेके कारणसे  
मृणस्पर्शाविकोक्त द्वारा होनेवाली अनेक परीपद्मोंसे उनके शरीरका  
मांस और शोणित सूख जाता है ।

समभावनासे युक्त जिनकस्त्री हो या स्यधिरकस्त्री हो, विकृष्ट  
(कठिन) तप तपनेवाला हो, या अविकृष्ट (साधारण) तप तपनेवाला  
हो, या प्रतिदिन आहार करनेवाला हो, ये सब भगवानकी आज्ञानुसार  
ही चलनेवाले हैं । इस रूपसे जो राग, द्वेष और कपायकी परपरारूप  
संसारभेगीको समभावसे एवं क्षान्त्यादि धर्मके आराधनसे तोड़ देते

ये अहायक व ठे आ प्रकारे भली जे महाभुनि पोताने भती शारीरिक  
पीडानी तरह लक्ष आपता नही, परिषद आदिने शान्तिपूर्वक सहन करवावाग्य  
साधुओंना शरीरतु मांस अने बोही सुगंध अथ ठे अने शरीरभी तेज्य दुभगा  
पतग्य जनी अथ ठे बोही अने मांस जेभना शरीरमा नमभात्रनां रडे ठे  
अशु ठे अन्तर्प्रान्त अने अर अकारधी परिषद आदिना सहेवाथी अने बोद्ध  
अर शोभना अशुधी, तृणस्पर्शाविकेदारा जनवा अनेक परिषदधी तेना  
शरीरतु मांस अने बोही सुगंध अथ ठे

समभावनाधी युक्त लनकस्त्री होय अथवा तो श्वधिरकस्त्री होय, विकृष्ट-  
कठिन तप तपनेवाला होय, अथवा—अविकृष्ट—साधारण तप तपनेवाला होय,  
अथवा प्रतिदिन आहार करनेवाला होय, केठं यजु साधु होय जे  
जया अत्रचान्ती आरा अनुसर व याववावाग्य ठे अने आ रूपधी जे  
सम, द्वेष अने कपायकी पर पक्ष्य असाभेजीने समभावधी जेठे क्षान्त्यादि



તોર્ણઃ=મવાચ્ચે: પારગતઃ, મુક્તઃ=સર્વસંગરહિતઃ, વિરતઃ=સર્વસાવચવ્યાપારરહિત  
વ્યાખ્યાતઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ કથિતઃ । इति ब्रवीमि, भगवता यद्योपदिष्ट तथेद  
कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

સસારશ્રેણિ સત્રોટ્ય વર્તમાનમરતિરભિભવતીત્યાહ—‘વિરચ’ इत्यादि ।

मूलम्—विरचं भिक्खुं रीयंतं चिरराओसियं अरई तत्थ किं  
विधारण? ॥ सू० ६ ॥

छाया—विरत भिक्षु रीयमाण चिररात्रोपितम् अरतिस्तत्र किं विधारयेत्॥सू०६॥

टीका—विरतम्=असयमतो निवृत्त रीयमाणम्=उत्तरोत्तरप्रवर्धमानशुभा-  
ध्यवसायेषु प्रवर्तमान चिररात्रोपितं=प्रभूतकाल संयमावस्थितं भिक्षु=निरवद्यभि-  
क्षाजीविन मुनिम् अरतिः=सयमोद्वेगः तत्र=सयमे किं विधारयेत्=किं प्रतिस्खलयेत्?।

है, वहीं पूर्वोक्तलक्षणसंपन्न साधु ससारसमुद्रसे पार हो जाते हैं और  
सर्वसगसे रहित हो सर्वसावचव्यापाररहित हो जाते हैं—ऐसा तीर्थङ्कर  
प्रभुका कहना है। “इति ब्रवीमि” यह कथन मेरा नहीं है, किन्तु प्रभुका  
है। हे जम्बू ! उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ ॥ सू०५ ॥

સંસારપરમ્પરાકો ડચ્છેદ કરકે રહે હુપ સાધુકો અરતિભાવ કદા-  
ચિત્ પરાસ્ત કર સકતા હૈ । ડસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે  
હૈ “વિરચ” इत्यादि—

असयम भावसे दूर रहनेवाले, और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ  
अध्यवसायोमें प्रवृत्ति करनेवाले, तथा बहुत काल तक संयमकी आरा-  
धना करते २ उसीमें अपने जीवनके समयको व्यतीत करनेवाले ऐसे  
निरवद्य भिक्षाजीवी मुनिको संयममें उद्वेगरूप अरतिभाव उससे स्व-

ધર્મના આરાધનથી તોડી દે છે, એવા પૂર્વોક્તલક્ષણસ પન્ન સાધુ સ સારસમુદ્રથી  
પાર થઈ બચ છે, અને સર્વસગથી રહિત બની સર્વસાવચવ્યાપારરહિત બની  
બચ છે, એવુ તીર્થકર પ્રભુતુ કહેવું છે “ इति ब्रवीमि ”—આ કથન મારું નથી,  
પરન્તુ પ્રભુતુ છે હે જમ્બૂ ! એમણે જેમ કહ્યું છે તેવી જ રીતે હું કહું છું (સૂ०૫)

સ સારપરપરાનો ઉચ્છેદ કરીને રહેલા સાધુઓને અરતિભાવ કદાચ પરાસ્ત  
કરી શકે છે ! આને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “વિરચ” इत्यादि

અસયમભાવથી દૂર રહેવાવાળા અને ઉત્તરોત્તર વધતા જતા શુભ અધ્ય-  
વસાયોમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા તથા ઘણા કાળ સુધી સયમની આરાધના કરતા  
કરતા એમા જ પોતાના જીવનનો સમય વ્યતીત કરવાવાળા એવા નિરવચ  
ભિક્ષાજીવી મુનિને સયમમા ઉદ્વેગરૂપ અરતિભાવ અટકાવી શકે ખરો કે ?

अथ किं शब्दाः प्रभेः तथाभूतमपि मोक्षमार्गाख्यं किमरतिविषयस्थानं नीत्वा स्त-  
स्यत्?, स्तस्यदित्युच्यते। इन्द्रियाणि दुर्नाराणि अविनयवन्ति च, मोक्षशक्तिधा-  
चिन्त्या, तथा—कर्मपरिणतिरपि विचित्रा, तर्हि किं न कुर्यात्?, अपि तु सर्वं  
कुर्यादिति मात्र ।

यद्वा—किं शब्दाऽप्र क्षपार्ये । अरतिस्तथाभूतं मासमागावस्थितं विचारयत्=  
मतिस्त्वन्मत् किम्?, नैव विचारयदित्यर्थ ॥ सू० ६ ॥

किञ्च—‘संधेमाणे’ इत्यादि ।

मूळम्—संधेमाणे समुट्टिप, जहा से दीवे असदीणे । सू० ७।

उपाया—संश्रयान्तः समुत्पितः; यथा स शीपः असदीन ॥ सू० ७ ॥

लित कर सकता है क्या? यहाँ “कि” यह शब्द प्रश्नवाचक है।

उत्तर—हाँ! ऐसे भी उस मोक्षमार्ग में आरूढ़ हुए मुनिको अरति-  
भाव विषयोंकी ओर छे जाकर स्थलित कर सकता है। क्यों कि  
इन्द्रियां दुर्निवार है, मोहकी शक्ति अचिन्त्य है तथा कर्मकी परिणति भी  
विचित्र है। इनकी प्रपलता क्या नहीं कर सकती? सच कुछ कर  
सकती है।

अथवा—“कि” शब्द यहाँ शेष अर्थमें है; इसका मतलब है कि  
यदि कोई हमस यह पूछ कि क्या ऐसे मोक्षमार्गमें स्थित मायुको  
भी अरतिभाव संयममार्गसे च्युत कर सकता है? तो हम यह उत्तर दगे  
कि नहीं कर सकता है ॥ सू० ३॥

तथा—“संधेमाणे” इत्यादि—

अर्हि “कि” आ शब्द प्रश्नवाचक है

उत्तर—हाँ, जेव मोक्षमार्गमां आरूढ संधेवा मुनिने पण अरतिभाव  
विषयोंकी तरफ लक्ष्य रूपलित करी शकते है; तेम के इन्द्रियोंकी अनेकविध  
नोक्षणाणी शक्ति अचिन्त्य है तथा कर्मकी परिणति पण विचित्र है जेनी  
प्रपलता गु नथी करी शकती? लणु करी शकते है.

अथवा—“कि” शब्द अर्हि शेष अर्थमां है जेवने मतलब जे है के  
कदाच तेम जेव पछे के गु आवा मोक्षमार्गमां स्थित आयुने पण अर-  
तिभाव संयम मार्गसे च्युत करी शकते है? तो जेवने आ उत्तर है के करी  
शकते नथी. (सू ३)

“संधेमाणे” इत्यादि—

टीका—यतः स संदधानः=उत्तरोत्तरमधिकारप्रशस्तपरिणामधारा गुण-  
स्थानकं वा आरोहन् समुत्थितः=सम्यगुत्थितः यथाऽऽद्यात् चारित्र्याभिमुखः उत्तरोत्तर  
-प्रशस्तभासमारूढो वर्तते । तमरतिः ऋथ स्वलेयिदिति भावः । यथा द्वीपः=  
द्विर्गता आपोऽस्मिन्निति द्वीपः—उभयतः पानीय यत्र तिष्ठति सा स्थलभूमिर्द्वीपः,  
असदीनः=जलोपप्लावनाद्युपसर्गरहितो भवति, तथा स=पूर्वोक्तवृक्षणो मुनिरपि  
परिप्लव्योपसर्गप्रतिवापितो न भवतीत्यर्थः । यद्वा—असदीनो द्वीपो यथा यात्रिभिरा-  
श्वसनीयो भवति, तथा स तथाविधः सागुरिति । समुद्रादिकमुत्तरीनुमिच्छन्तोऽम-  
दीन द्वीपमाश्रयन्ति—विश्वसन्ति, तथैव ससारसागरं समुत्तितीर्ष्योऽन्ये प्राणिनः त  
सागु विश्वसन्तीत्यर्थः ॥ मृ० ७ ॥

जिसकी प्रशस्त परिणामधारा उत्तरोत्तर अधिकाधिकरूपमें  
वृद्धिगत हो रही है, अथवा जो आगे २ के गुणस्थानों पर चढ़ता जा  
रहा है, और इसीसे जो यथाख्यात चारित्र्यके सम्मुख जा रहा है, ऐसे  
महामुनिको अग्निभाव कैसे अपने स्थानसे स्वलित कर सकता है ?  
अर्थात् नहीं कर सकता है, दोनों ओर जिसके जल होता है उसका नाम  
द्वीप है । वह द्वीप-स्थलभूमि जिस प्रकार जलमग्न होने आदिके उप-  
द्रवसे सुरक्षित रहता है उसी प्रकार ऐसा मुनि भी परीपह और उपसर्ग  
से बाधित नहीं होना है ।

अथवा—जिस प्रकार असदीन ( उपसर्गरहित ) द्वीप यात्रियोंके  
लिये आश्रयस्थानका स्थान होता है उसी प्रकार वे महामुनि भी भव्योंके  
लिये आश्रयस्थान ( आधार ) रूप हैं । समुद्रादिकको पार करनेकी भावना-  
वाले मनुष्य असदीन द्वीपमें विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार ससाररूपी

वेनी प्रशस्त परिणामधारा उत्तरोत्तर अधिकाधिकरूपमें वृद्धिगत वर्ध  
रही है, अथवा वे शुद्धस्थानों पर आगल आगल चढ़ता जाता होय है, अने  
आधी वे यथाख्यात चारित्र्यकी सम्मुख जा रहे हैं वेवा महामुनिने अरतिभाव  
क्याथी पेटाना स्थानकी स्थिति उरी शडे ? अर्थात् उरी शडते नहीं अने आलु  
वेने लण है वेनु नाम द्वीप है, ये द्वीप-स्थलभूमि वे रीते पूर आदिना उपद्रवथी  
सुरक्षित रहे है ये रीते वेवा मुनि पक्ष परिपह अने उपसर्गथी बाधित होता नहीं  
वेमडे उपसर्ग रहित द्वीप यात्रियोने माटे आश्रयस्थाननु स्थान होय है, तेवी ल  
रीते महामुनि पक्ष लव्य लवोने माटे आश्रयस्थान है समुद्रादिने पार क्वानी  
लावनावाणा मनुष्य उपसर्गरहित द्वीपमा विश्वास राणे है, वेवी रीते ससाररूपी  
समुद्रथी पार धवानी लावनावाणा लव्य पक्ष वेवा मुनिने विश्वास करे है

मूत्रम्—एव से धम्मे आरियपदेसिय ॥ सू० ८ ॥

छाया—एवं स धर्म आर्यप्रदक्षितः ॥ सू० ८ ॥

टीका—स प्रायुक्तः आर्यप्रदक्षितः=वीर्यकुरमापितः धर्मः एवम्—ईदृशो द्वीप तुन्योऽस्तीत्यर्थः । भगवत्प्रापितो धर्मः सद्य ज्ञेनासंदीनद्वीपवत् अस्या कुत-  
कैश्च न कदाचिदपि न बाध्यत इति भाष ॥ सू० ८ ॥

ननु तथाविधा भगवत्प्रापितधर्मस्य समाराधका कथंभूता भवन्तीति दिव्य-  
धिज्ञासायामाह—‘ते अणवकंस्वमाणा’ इत्यादि ।

समुद्रसे पार होनेकी भावनाबाले भग्य भी उन मुनिका विश्वास करते हैं।

भाषार्थ—यथावयात् चारित्रकी ओर छे जानेवाली प्रशस्त परिणाम  
पारा जिसके उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूपमें बढ रही है ऐसे मुनिके लिये  
एकतो परीपह उपसर्गादिक आते नहीं हैं, यदि कदाचित् भा भी जाते हैं  
तो वे मुनि उनसे जलके प्लाव (उपद्रव)से असंदीन द्वीपकी तरह सदा  
सुरक्षित रहते है और अन्य प्राणियोंके लिये आभारभूत होते हैं ॥सू०७॥

जिस प्रकार पूर्वाक्त स्वरूपबाला साधु अरति आदि बाधाओंसे  
बाधित नहीं होते उसी प्रकार जिनेन्द्रप्रतिपादित वह धर्म भी अरति  
या कुतकोंसे कभी भी बाधित या क्षणिकत नहीं होता है । यह धर्म भी  
असंदीन द्वीपकी तरह ही है । यह जिस प्रकार जलप्लावसे निर्वान रहता  
है—उसी प्रकार धर्म भी कुतकोंसे या अरति आदि दुर्भागोंसे अबाध्य  
रहता है ॥सू०८॥

भगवत्कथित धर्मके समाराधक जीव कैसे होते हैं? इस प्रकार  
शिष्यकी जिज्ञासाका “ते अणवकंस्वमाणा” इत्यादि सूत्रसे सूत्रकार

भाषार्थ—यथाप्यात् चारित्रिनी तश्च दोरवावाणी प्रशस्त परिष्कामधारा नेने  
उत्तरोत्तर अधिक-अधिक-उपमा वर्षी रही छे जेवा मुनिने भाटे जे के परिपक उप  
सर्गादिके आवता नथी जने कदाच आपी बाय तो पक्ष जे मुनि जेनापी जगन्ना  
उपद्रवभी सुरक्षित द्वीपनी भाइके सदा सुरक्षित रहे छे जने अन्य प्राणियों  
भाटे आभारभूत रहे छे ( सू ७ )

जे प्रकार पूर्वोक्तस्वउपपण्य साधु अरति आदि बाधाओंकी बाधित  
नथी बत्ता, जेव प्रकार जेनेन्द्रप्रतिपादित धर्म पक्ष अरति जने कुतकोंकी कही  
पक्ष बाधित जने क्षणिक बत्ता नथी आ धर्म पक्ष सुरक्षित द्वीपनी भाइके छे  
जे जेव जगन्ना उपद्रवभी सुरक्षित रहे छे ते प्रकार धर्म पक्ष कुतकोंकी जने  
अरति आदि दुर्भागोंकी सुरक्षित रहे छे ( सू ८ )

लजवत्कथित धर्मनि स्वराधक एव केवे कोम छे? आ प्रकारनी शिष्यनी

मूलम्—ते अणवकंखमाणा पाणे अणइवाएमाणा दइया  
मेहाविणो पंडिया ॥ सू० ९ ॥

छाया—ते अनवकाङ्गन्तः प्राणान् अनतिपातयन्तः दयिताः मेधाविनः  
पण्डिताः ॥ सू० ९ ॥

टीका—यतरते मुनयः अनवकाङ्गन्तः=विषयभोगाननभिवाञ्छन्तः तथा—  
प्राणान्=प्राणिनः, अनतिपातयन्तः=अर्हिसन्तः, इदं शेषमहाव्रतानामुपलक्षणम्—तेन  
शेषाप्यपि महाव्रतानि धारयन्त इत्यर्थः, तथा—दयिताः=सकलप्राणिना शुभचिन्त-  
कत्वात् सर्वलोकप्रिया इत्यर्थः, तथा—मेधाविनः—साधुमर्यादाव्यवस्थिताः, पण्डिता =  
सर्वसावधव्यापारपरिहारेण हेयोपादेयज्ञानवन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

ये तु हेयोपादेयज्ञानाभावाद्भगवद्दर्मे समुत्थिता न सन्ति, तान् प्रति यदाचा-  
र्यादीनां कर्तव्यं तदाह—‘ एव तेसिं ’ इत्यादि ।

समाधान करते हैं—

भगवत्प्रतिपादित धर्मके समाराधक जीव विषयभोगोंकी वाञ्छासे  
रहित होते हैं, प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते हैं । उपलक्षणसे अवशिष्ट  
महाव्रतोंके धारक होते हैं । समस्त जगतके कल्याणके अभिलाषी होने  
से वे जगत्प्रिय होते हैं । साधुमर्यादामें रहते हैं और समस्त सावध  
व्यापारोंके त्यागी होनेसे हेय और उपादेयके विवेकसे वासित अन्तःक-  
रणवाले होते हैं ॥सू०९॥

जो हेय और उपादेयके विवेकके अभावसे भगवत्प्रतिपादित धर्म  
में समुत्थित नहीं है—उसमें अनुत्साही है, उनके प्रति आचार्योंका क्या  
कर्तव्य होना चाहिये ? इस बातको सूत्रकार “ एव तेसिं ’ इत्यादि सूत्र-  
द्वारा प्रकट करते हैं—

उपशासतु “ ते अणवकंखमाणा ” इत्यादि सूत्रधी सूत्रकार समाधान करे छे

भगवत्-प्रतिपादित धर्मना आराधक एव विषयभोगोनी वाछनाथी रहित  
होय छे प्राणीओनी हिंसा करता नथी उपलक्षणधी अवशिष्ट महाव्रतोनी  
धारक होय छे समस्त जगतना कल्याणना अभिलाषी होवाथी छे जगत्प्रिय  
होय छे साधुमर्यादामें रहे छे अने समस्त सावध व्यापारोना त्यागी होवाथी  
होय अने उपादेयना विवेकधी भरपूर अन्तःकरणवाणा होय छे (सू०९)

जे हेय अने उपादेयना विवेकना अभावधी भगवत्-प्रतिपादित धर्मना  
स्थिर नथी—उत्साही नथी, ऐभना तरङ्ग आचार्योंतु शु कर्तव्य छे ? छे वातने  
सूत्रकार “ एव तेसिं ” इत्यादि सूत्रद्वारा प्रकट करे छे

मूळम्—एष तेसिं भगवतो अणुद्वाणे जहा से दियपोष। एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुण्वेण वाइयत्तिवेमि॥सू०१०॥

छाया—एषं तेषां भगवतोऽनुस्थाने यया स द्विनपोष' । एष ते शिष्या देवा च राशौ च अनुपूर्वम् वाचिताः, इति प्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—भगवतः श्रीवर्षमानस्वामिनो धर्मं एवं—पूर्वोक्तरीत्या तेषां—तथाभूतानामाचन भगवत्समसमारापनानुत्साहपतां शिष्याभ्याम् अनुस्थाने—दृष्टरोत्तरमुपि शक्तिप्रसस्तपरिणामभारानारोहणे सति आचार्यादिभिः सदुपदेशदानेन बुद्धिपैत्रं विधेयमित्यर्थः । अथ दृष्टान्तमाह—' यया सः ' इत्यादि,

यया सः=प्रसिद्धः द्विनपाठः=पक्षिप्रापकः मातापितृभ्यामनुपान्यते, एष ते शिष्या आचार्येषु दिवा च राशौ च अनुपूर्वम्=क्रमशः वाचिताः=सामायिकरूपी न्येकादशाहानि च पाठिताः सकलपरीपहापसर्गसहिष्णवः संसारसागरोत्तरणसमर्थाश्च भवन्तीत्यर्थः । इति प्रवीमि । अस्य व्याख्या प्राग्बत् ॥ सू० १० ॥

॥ पठ्याध्ययनस्य तृतीयोद्देश समाप्त ॥ ६-३ ॥

भगवान् श्री वर्षमानस्वामीके धर्ममें इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे यदि शिष्यजन हेयोपादेय ज्ञानसे विकल होनेके कारण, भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मकी आराधना करनेमें अनुत्साही हों तो, आचार्योक्त कर्मव्य है कि वे उन्हें सदुपदेश प्रदान करें, जिससे उनकी बुद्धिमें बिधा दता आवे । दृष्टान्त—जैसे पक्षियुगल अपने घरबौको पालता है, उन्हें बलना—फिरना सिखलाता है उसी प्रकार वे शिष्य भी आचार्यद्वारा रात दिन क्रम २ से सामायिक आविके तथा ग्यारह अंगोंके पाठी बनाये जाते हैं, ताकि वे सकल परीपह और उपसर्गोंको जीतनेमें सहजशील बन संसारसागरसे पार होनेमें शक्तिसम्पन्न बन सकें । "इति प्रवीमि " इन पदोंकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये ।

भगवान् श्री वर्षमान स्वामीना धर्ममां आ प्रकारे पूर्वोक्त रीतधी कथ्य शिष्यजन—हेय उपदेयना ज्ञानधी विकल होवाना कारणे भगवान्द्वारा उपदिष्ट—उपदेशेक धर्मनी आराधना कस्वामां अनुत्साही होय तो आचार्यनु कर्तव्य छे के तेज्ये तेने बहु उपदेश प्रदान करे जेनाधी तेनी बुद्धिमां विशदता आवे. दृष्टान्त—जेम जेक पक्षीजेडु पोताना जन्मनि पोरे छे तेने आसतां कस्तां शीजवाडे छे जेवी च रीते ते शिष्य पक्ष आचार्य द्वारा सदुपदेश क्रम क्रमधी सामायिक आविना जने जन्माए ११ जजोना पाठी बनाववामा आवे छे जेधी ते सकल परिपह जने उपसर्गो लतवामां सहजशील जनी संसारसागरधी पार बवामां शक्तिसंपन्न जनी शके "इति प्रवीमि" आ पदोनी व्याख्या पहिले जेवी जालुवी.

મૂલમ્—તે અળવકંઠમાણા પાળે અળઙ્વાણમાણા દઙ્ગ્યા  
મેહાવિણો પંડિયા ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—તે અનવકાઙ્ગન્તઃ પ્રાણાન્ અનતિપાતયન્તઃ દયિતાઃ મેધાવિનઃ  
પણ્ડિતાઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—યતરતે મુનયઃ અનવકાઙ્ગન્તઃ=વિષયભોગાનનભિવાઙ્ચન્તઃ તથા-  
પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ, અનતિપાતયન્તઃ=અર્હિસન્તઃ, ઇદ શેપમહાવ્રતાનામુપલક્ષણમ્—તેન  
શેપાણ્યપિ મહાવ્રતાનિ ધારયન્ત ઇત્યર્થઃ, તથા—દયિતાઃ=સકલપ્રાણિના શુભચિન્ત-  
કત્વાત્ સર્વલોકપ્રિયા ઇત્યર્થઃ, તથા—મેધાવિનઃ—સાધુમર્યાદાવ્યવસ્થિતાઃ, પળ્ડિતા =  
સર્વસાવધવ્યાપારપરિહારેણ હેયોપાદેયજ્ઞાનવન્તો ભવન્તીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

યે તુ હેયોપાદેયજ્ઞાનાભાવાદ્ભગવદ્ધર્મે સમુત્થિતા ન સન્તિ, તાન્ પ્રતિ યદાચા-  
ર્યાદીનાં કર્તવ્યં તદાહ—‘ એવં તેસિં ’ ઇત્યાદિ ।

સમાધાન કરતે હૈં—

ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મકે સમારાધક જીવ વિષયભોગોંકી વાઙ્ગાસે  
રહિત હોતે હૈં, પ્રાણિયોંકી હિંસા નહીં કરતે હૈં । ઉપલક્ષણસે અવશિષ્ટ  
મહાવ્રતોંકે ધારક હોતે હૈં । સમસ્ત જગતકે કલ્યાણકે અભિલાષી હોને  
સે વે જગત્પ્રિય હોતે હૈં । સાધુમર્યાદામ્ રહતે હૈં ઔર સમસ્ત સાવધ  
વ્યાપારોંકે ત્યાગી હોનેસે હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકસે વાસિત અન્તઃક-  
રણવાલે હોતે હૈં ॥ સૂ૦ ૧ ॥

જો હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકકે અભાવસે ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મ  
મ્ સમુત્થિત નહીં હૈં—ઉસમ્ અનુત્સાહી હૈં, ઉનકે પ્રતિ આચાર્યોંકા કયા  
કર્તવ્ય હોના ચાહિયે ? ઇસ વાતકો સૂત્રકાર “ એવં તેસિં ’ ઇત્યાદિ સૂત્ર-  
દ્વારા પ્રકટ કરતે હૈં—

છાયાસાનુ “ તે અળવકંઠમાણા ” ઇત્યાદિ સૂત્રથી સૂત્રકાર સમાધાન કરે છે

ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મના આરાધક છવ વિષયભોગોની વાછનાથી રહિત  
હોય છે પ્રાણીઓની હિંસા કરતા નથી ઉપલક્ષણથી અવશિષ્ટ મહાવ્રતોનો  
ધારક હોય છે સમસ્ત જગતના કલ્યાણના અભિલાષી હોવાથી એ જગતપ્રિય  
હોય છે સાધુમર્યાદામા રહે છે અને સમસ્ત સાવધ વ્યાપારોના ત્યાગી હોવાથી  
હોય અને ઉપાદેયના વિવેકથી ભરપૂર અન્તઃકરણવાળા હોય છે (સૂ૦ ૯)

જે હેય અને ઉપાદેયના વિવેકના અભાવથી ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મમા  
સ્થિર નથી—ઉત્સાહી નથી, એમના તરફ આચાર્યોંનુ શુ કર્તવ્ય છે ? એ વાતને  
સૂત્રકાર “ એવં તેસિં ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પ્રકટ કરે છે

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके उपकरणद्वारीरममत्वपून्नं प्रतिबोधितम् । तच्च गौरव प्रयत्नः सम्पूर्णतया न भवत्यतस्तद्वृत्तनार्थं चतुर्थोद्देशं रूपयन्नायं सूत्रमाह—‘एवं ते सिस्सा’ इत्यादि ।

मूत्रम्—एवं ते सिस्सा दिवा च रात्रौ च अणुपुञ्जवेण वा इया तेहि महावीरेहि पण्णाणमतेहि, तेसिंतिप पण्णाणमुवल्लं वम हिच्छा उवसम फारुसिय समाइयति ॥ सू० १ ॥

छाया—एवं ते सिस्सा दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वम् वाचिताः तैर्बह्वीरैः महानवद्भिः, तेषामन्तिकं प्रदानमुपलभ्य रित्वा उपश्रमं पाकपिकं समाहवति ॥ १ ॥

टीका—एवं=पक्षिणावकस्तनर्धनक्रमेण ते सिस्साः दिवा रात्रौ च अनुपूर्वम्=क्रमेण यथा त्रिवर्षपर्याय आचाराद्वादि अध्याप्यते, क्रान्तरे केवलसमुद्भवे सति तत्

॥ छद्वा अध्ययनका चोथा उद्देशः ॥

इस अध्ययनके तृतीय उद्देशमें साधुको उपकरण और शरीरमें ममत्व नहीं रखना चाहिये, यह बात समझा दी गई है । इनमें ममत्व का त्याग, जो तीन गौरवोंसे युक्त है उसके संपूर्ण रीतिसे नहीं होता है । इसलिये उन गौरवोंके त्याग करानेके लिये इस चतुर्थ उद्देशको प्रारम्भ करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“एवं ते सिस्सा” इत्यादि ।

जिस प्रकार पक्षी अपने चरुणोंका क्रमशः संवर्धन करते हैं, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके द्वारा भी आचाराद्वादि

छठा अध्ययनको चौथो उद्देश.

अध्ययनका तीसरा उद्देशमें साधुको उपकरण वरके ममत्व साधु न लेके अथवा वत समत्ववर्धनमें आवीरके अथवा ममत्वको त्याग, के त्रय गौरवकी भरपूर छे तेनाकी सारी रीति बर्णन कइतो नहीं आटे ते त्रय गौरवको त्याग करानेका आटे अथवा चतुर्थ उद्देशको प्रारम्भ करवां सूत्रकार कहे छे—“एवं ते सिस्सा” इत्यादि ।

के प्रकार पक्षी पेटाना अध्ययने पाणी पीनेने भोटु करे छे अथवा रीति सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर अने जगधर आदि द्वारा पक्षु आचारार्थ सूत्र इत्यादि पाठनकेमधी शिक्षणके दिनरात प्रदक्षुशिक्षा अने आसेवनशिक्षा अथ अने



भगवान्के द्वारा कथित धर्ममें जो शिष्यजन मन्दपरिणामी हों-  
उत्साहशील न हों तो, आचार्यका कर्तव्य है कि वह उनका तिरस्कार न  
कर उन्हें उस धर्मकी आराधना करनेमें चतुर बनावे-उन्हें शास्त्रोंका  
अभ्यास करावे। जैसे पक्षी अपने बच्चोंकी संभाल रखते हैं उसी प्रकार  
आचार्य भी उनकी हरएक प्रकारसे संभाल रखते हुए हेय और उपा-  
देयके विवेकसे वासित मतिवाला करनेकी चेष्टा करते रहें; ताकि वे  
परीषद् और उपसर्गोंके सहनमें अधीर न बन कर सहनशील बनें, और  
इस संसार समुद्रसे पार हो सकें ॥सू० १०॥

॥ छद्म अध्ययन का तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-३ ॥



भगवान्द्वारा कहेवायेला धर्मभा के शिष्यजन मन्दपरिणामी होय-  
उत्साहशील न होय तो, आचार्यनु कर्तव्य छे के तेना तिरस्कार न करता तेने  
आ धर्मनी आराधना करवामा चतुर बनावे-तेने शास्त्रोना अभ्यास करावे केम  
-पक्षी पोताना अभ्याओनी सलाण राणे छे ते प्रकारे आचार्य पणु तेनी हरक  
प्रकारधी सलाण राणीने होय अने उपादेयना विवेकधी लरपूर मतिवाणा करवानी  
चेष्टा करता रहे, केधी ते परिषद अने उपसर्गो सहन करवामा अधीर न अने  
सहनशील अने, अने आ संसार समुद्रधी पार थळ थके ( सू०१० )

छद्म अध्ययननो तीजे उद्देश समाप्त ॥ ६-३ ॥



इति-प्रवृत्तान्ति, यथा-ज्ञानस्यं प्राप्य, उन्मदान्वाः परस्पर वाचनाप्रच्छनादियु  
 वदन्ति, 'मनता यस्मिन्गद्यते नैतत् समीचीनं, अस्य शब्दस्य नायमर्थः, यथा मयो-  
 च्यते स एव सिद्धान्तः, शब्दार्थनिर्णयाय कश्चिदेवास्ति माहृत्' इत्यादिस्यं  
 पचनपारुष्य स्वीकुर्यन्ति ॥ सू० १ ॥

किञ्च—'वसिष्ठा' इत्यादि ।

मूकम्—वसिष्ठा यंभचेरसि आण त नोत्ति मद्ममाणा ॥ सू० २ ॥

छाया—उपित्वा ब्रह्मवर्षे आह्वां तां नो इति मन्यमानाः ॥ सू० २ ॥

टीका—एक तु शिष्याः ब्रह्मवर्षे-संयमे भाषारावम् उपित्वा=स्मित्वा ता  
 माह्वां तीर्थङ्करोपदेशस्थां नो इति मन्यमानाः=दक्षतस्तीर्थङ्करोपदेशं नाद्रियमाणा-  
 सातागौरवकर्षेणाऽऽतकुलादिष्वन्तप्रान्तादारभासिष्ठश्रुत्या क्षीरविभूपादिना सा  
 रिष्मासिन्यस्यस्यं बाहुशिक्षस्यं प्रपद्यन्त इति भाव ॥ सू० २ ॥

करने लग जाते हैं । वे पङ्कवमाहिपाण्डित्यघाळे शिष्यजन गर्बोन्मत्त  
 बन-भइंकरसे फूल कर सुत्रोकी वाचना एवं प्रच्छना आदिके समय  
 यह कह दिया करते हैं कि "आप जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक नहीं  
 है, इस शब्दका यह अर्थ नहीं है" "जो कुछ मैं कहता हूँ वही यथार्थ  
 है-वही सुन्दर सिद्धान्त है, शब्द और अर्थका निर्णय मेरा जैसा कोई  
 कर सकता है ! कोई नहीं" इत्यादि रूपसे अभिमानयुक्त वचन  
 बोलते हैं ॥ सू० १ ॥

तथा—"वसिष्ठा" इत्यादि ।

कोई एक शिष्यजन ब्रह्मवर्षेकर पालन करके तीर्थङ्कर उपविष्ट आश्र  
 का भावर नहीं करते हैं । एकदेशसे भी तीर्थङ्करके उपदेशको वे नहीं  
 मानते हैं । सातागौरवके प्रकर्षसे "कदाचिन् अज्ञानकुलादिकोमें हमें  
 भन्तप्रान्त आहार मिले ?" इस प्रकारकी शङ्कासे वे शारीरिक बेप

होए अव्यक्त इत्यादि होते हैं । वे पङ्कवमाहिपाण्डित्यघाळा शिष्यजन गर्बो  
 मत्त बनी लक्ष्मणकी कुलाहल सुत्रोकी वाचना अववाप्रच्छना आदिना समये  
 जेवु इती २ ३ ४ आप के हाथ छोड़े हैं जो ठीक नहीं, यह शब्दने  
 का अर्थ नहीं । 'तु ने हाथ छोड़ें तु ते भरोणर है जो न सुद्ध सिद्धान्त  
 है शब्द जने अर्थने निर्णय भास केवे हाथ छोड़ी शके है । हाथ नहीं" इत्यादि  
 रूपसे अभिमानयुक्त वचन बोलते हैं । (सू० १)

तथा "वसिष्ठा" इत्यादि ।

कोई एक शिष्यजन ब्रह्मवर्षेनु पालन करी तीर्थङ्कर उपदेशके आह्वाने  
 भावर न करे, कोदेशकी पक्ष तीर्थङ्करके उपदेशने के न माने, सातागौरवका

પૂર્વમપ્યધ્યાપ્યતે, -ઇત્યાદિક્રમેણ પ્રજ્ઞાનમદ્ધિઃ=સમ્યગ્જ્ઞાનવદ્ધિઃ; તૈર્મહાવીરૈઃ તીર્થઙ્કરગણધરાદિભિઃ વાચિતાઃ=ગ્રહણાસેવનાશિક્ષાદ્વયેન શિક્ષિતાઃ, સૂત્રાર્થતદુભયાધ્યાપનરૂપા ગ્રહણશિક્ષા સાધુસામાચારીપાલનરૂપામાસેવનશિક્ષા ચ ગ્રાહિતાઃ । તત્ર કેચન શિષ્યાઃ, તેષામ્ આચાર્યાદીનાં તીર્થઙ્કરાદીનામ્ અન્તિકે=સમીપે પ્રજ્ઞાન=પ્રકુષ્ટ જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાનમ્ ઉપલભ્ય=સંપ્રાપ્ય જ્ઞાનગર્વાન્ધાઃ સન્તઃ ઉપશમ શાન્તિભાવ દિત્વા=પ્રવલ-મોહોદયાપનીતસદુપદેશસજ્ઞાતોત્કટમદત્વેન ત્યક્ત્વા પાર્શ્વિક્ષુ=પારુષ્યં સમાદ-

સૂત્ર પાઠનક્રમસે શિષ્યજન દિન-રાત નિરન્તર ગ્રહણશિક્ષા ઓર આસેવનશિક્ષા ઇન ઢોનો શિક્ષાઓસે શિક્ષિત કિયે જાતે હૈ । શિષ્યકી ઢીક્ષાપર્યાય જવ તીન વર્ષકી હો જાય તો ડસે આચારાઙ્ક આદિ સૂત્રોકા ક્રમસે અધ્યયન કરાના ચાહિયે, તથા યદિ કક્ષા ( કાંચ ) મેં વાલ ડગ આવે તો ઇસકે પહિલે મી ડસે આચારાંગ આદિકા અધ્યયન કરાયા જા સકતા હૈ । ક્રમ ૨ સે સૂત્ર અર્થ ઓર સાચ ૨ સૂત્ર અર્થકા અધ્યયન શિષ્યકો કરાના ઇસકા નામ ગ્રહણશિક્ષા હૈ । સાધુ સમાચારીકે પાલન કરનેકી ડન્હે શિક્ષા ઢેના ઇસકા નામ આસેવનશિક્ષા હૈ । ડસમેં કોઈ ૨ શિષ્ય ડન તીર્થઙ્કર યા આચાર્યોકે નિકટ સર્વોત્તમ શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર વિશિષ્ટ જ્ઞાની જવ હો જાતે હૈ તવ જ્ઞાનકા ગર્વ કરને લગ જાતે હૈ, ઓર ઇસ અમિમાનસે અંધ-ડન્મત્ત હો કર શાન્તિભાવ તકકા મી પરિત્યાગ કર ઢેતે હૈ । ઇસ અવસ્થામેં વે પ્રવલ મોહકે ડદયસે ગુરુકે પ્રદત્ત ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે હૈ, ઓર ડત્કટ મદકે નશેમેં વેમાન જૈસે વન કર અપને ઉપકારી ગુરુજનોકે સાચ મી વાચનિક કઠોર વ્યવહાર

શિક્ષાઓઢી શિક્ષિત બનાવવામા આવે છે શિષ્યની ઢીક્ષાનો સમય જ્યારે ત્રણ વર્ષનો થઈ જાય ત્યારે તેને આચારાગ સૂત્ર આદિ સૂત્રોનુ ક્રમથી અધ્યયન કરા વધુ જોઈએ પણ જો આ સમયની અઢર તેની કાષ્ઠમા વાળ ડગવા લાગે તો આ કાળ પહેલા આચારાગ આદિનુ અધ્યયન કરાવી શકાય છે ક્રમ ક્રમથી સૂત્ર, અર્થ અને સાથેસાથ સૂત્ર અર્થનુ અધ્યયન શિષ્યને કરાવધુ જોઈએ, આનુ નામ અહલ્કુશિક્ષા છે સાધુસામાચારીનુ પાલન કરવાની શિક્ષા ઢેવી જોઈએ ? આનુ નામ આસેવનશિક્ષા છે આમા કોઈ કોઈ શિષ્ય તીર્થ કર અથવા આચાર્યોની પાસેથી શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી જ્યારે સાસ જ્ઞાની બની જાય ત્યારે જ્ઞાનનો ગર્વ કરવા લાગી જાય છે, અને એ અભિમાનથી અધ-ડન્મત્ત બની શાન્તિભાવનો પશુ પરિત્યાગ કરી ઢે છે આ અવસ્થામા તે પ્રમળ મોહના ડહ-ચથી ગુરુથી પ્રાપ્ત થયેલ ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતા નથી અને મઢના નશામા ડેમાન ડેવા બની જઈ ઉપકારી ગુરુજનોની સાથે પશુ વાઢવિવાઢરૂપી

न सम्यग् भवन्तः—पुनर्मोहोदयाद् गौरवत्रयान्यतमावेशान्मोक्षमार्गे न प्रवर्षमाना  
 स्वर्ष ; तथा कामैः—भोगामिलापैः विदग्धमानाः—अभिलषितविषयानवाप्त्वा कपा-  
 यान्तेनान्तस्त्वप्यमानाः कृद्धाः—सातादिगौरवलोड्याः, बभ्रुपपभाः—विषयसुख  
 निमग्नमानसा आख्यातं—तीर्थङ्करप्ररूपितं समाधिम्—उपशमम् भगोपयन्तः—असेन-  
 गानाः सन्तः शास्त्रारमेभ—द्विलषितारमेव, पद्म-तीर्थङ्करादिकमेव परुषं—स्वर्ष निन्दात्रच-  
 नं चदन्ति । अत्र—एव श्रद्धनेदसुशक्तं भवति—एवं तीर्थङ्करादि सर्वभागिसुखापरं दुरन्त  
 संसारदुःखविषयसकं श्लाघतिकश्चिपदमापकं दयामयं धर्म परमकल्याणा कल्याणाय

भवन्तः” पुन मोहके उदयसे तीन गौरवोंमें से किसी एक गौरवके  
 आवेशसे मुक्ति मार्गमें प्रवृत्तिसे शून्य ही रहते हैं । भोगोंकी अभिला-  
 पासे वे रातदिन जलते रहते हैं । जय इन्हें अभिलषित विषय नहीं  
 मिलता है तो उस समय वे कपायरूपी अग्निसे संतप्त बन कर साता  
 दिक् गौरवोंमें लोलुपी बने रहते हैं । इनकी वैषयिक सुप्नोंमें मानसिक  
 वृत्ति चलायमान होती रहती है । तीर्थङ्कर प्रभुसे प्ररूपित समाधिभाव-  
 उपशमभावसे रहित ही बने रहते हैं । समझाने पर लस्टे ये समझाने  
 वालेको ही कठोर बचन बोलकर उनकी भर्त्सना करते हैं—स्वर्ष निन्दा-  
 त्मक बचन बोलते हैं । सूत्रमें “शास्त्रारमेव” जो यहाँ ‘एव’ पदका  
 प्रयोग हुआ है उससे यह बात माळूम होती है कि—जो तीर्थङ्कर भग-  
 वान सर्वभागियोंको सुखकारक, इस दुरंत संसारके दुःखोंका विनाशक  
 शाश्वतिक शिष्यपदकी प्राप्तिफा हेतु और दयामय ऐसे धर्मकी परम  
 कठुणासे जीबेकि कल्याणके निमित्त प्ररूपणा करते हैं, ऐसे तीर्थङ्करोंकी

साधु तो जनी अथ छे छतां पञ्च ते “न सम्यग् भवन्तः” पुन  
 मोहना उदयधी त्रषु औस्वनांन्य जेक औस्वना आवेशधी मुक्तिमार्गनी प्रवृत्तिधी  
 इर जनी अथ छे खोजेनी अभिलाषाधी ते रातदिवस जगतो रहे छे अथारे  
 तेने उच्छिन्त विषय नधी भजतो त्वारे ते कपायरुपी अभिधी संतप्त जनी साता  
 दिक् औस्वोभां लोलुपी जनी रहे छे तेनी वैषयिक सुप्नोंभां मानसिक वृत्ति  
 चलायमान बती रहे छे तीर्थंकर प्रभुसे प्ररूपित उपशमभावधी रहित जनी  
 अथ छे समझवनाधी ते लस्टे समझवनार तरह कठोर बचनेनो बोली जेनी  
 मानवनि इरे छे—निन्दारमक बचनेनो बोली छे सूत्रभां “शास्त्रारमेव” अर्थ के  
 ‘एव’ पदने प्रयोग छे, जेनाधी जे वात माळूम परे छे के तीर्थंकर भगवान सब  
 भाषीयोंने सुखकारक आ दुरन्त संसारना हाथीना विनाशक शाश्वतिक शिष्य  
 पदनी प्राप्तिना हेतु अने दयामय जेवा धर्मनी परम कठुणाधी जेवना कल्याण  
 निमित्त प्ररूपणा इरे छे जेजनी अज्ञान पावन कस्तु तो इरे कस्तु पञ्च जेजने

ननु साध्वाचारपरिभ्रष्टाना कुशीलाना दीर्घः ससारो भवतीत्युपदेशः कथं न तेभ्यः क्रियते ? इति जिज्ञासायामाह—‘ आघाय तु ’ इत्यादि ।

मूलम्—आघायं तु सुच्चा निसम्म, “समणुन्ना जीविस्सामो” एगे निक्खम्म ते असंभवन्ता विडज्झमाणा कामेहिं गिद्धा अज्झोववन्ना समाहिमाघायमज्झोसयन्ता सत्थारमेव फरुसं वयन्ति ।सू०३।

छाया—आख्यातं तु श्रुत्वा निशम्य, ‘समनोज्ञा जीविष्यामः’ एके निष्क्रम्य ते असंभवन्तः विदह्यमानाः कामैर्गृद्धाः अध्युपपन्नाः समाधिम् आख्यातम् अजोपयन्तः शास्त्रारमेव परुषं वदन्ति ॥ सू० ३ ॥

टीका—एके=केचन कुशीलाः शिष्यास्तु—आख्यात=तीर्थङ्करगणधरादिभिः कथितं कुशीलाचारविपाक श्रुत्वा निशम्य=अवधार्य शास्त्रारमेव परुषं वदन्तीत्यन्वयः। कथम्भूतास्ते शिष्याः ? इत्यत्राह—‘समनोज्ञा’ इत्यादि, समनोज्ञाः=लोकप्रियाः सन्तः जीविष्यामः; इति मत्वा निष्क्रम्य=प्रव्रजितो भूत्वा ते असम्भवन्तः=न

भ्रूषा बनाते है, इससे उनका चारित्र्य मलिन बनता है, और इससे वे यकुश मुनियोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगते है ॥ सू० २ ॥

साधुके आचारसे परिभ्रष्ट उन कुशीलोंको आप वह उपदेश क्यों नहीं देते हो कि कुशीलोंका ससार दीर्घ हो जाता है ? इस प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासामें सूत्रकार “आघाय तु” यह सूत्र कहते है—

कोई एक कुशील शिष्य तीर्थङ्कर और गणधरादिकों द्वारा कथित कुशील संबंधी आचारके विपाकको सुनकर और उसका अवधारण कर के भी अपने शासकके प्रति कठिन वचन बोलते है । “ हम लोग लोकप्रिय बन कर जीयेंगे ” ऐसे अभिप्रायसे प्रेरित हो भागवती दीक्षाका वेष पहिन साधु तो बन जाते है, परन्तु फिर वे “ न सम्यग्

प्रकर्षंथी “ कदाच अन्तश्चा कुणवाणाओने त्याधी अन्तप्रान्त आडार भणे ? आवी श काधी ते शरीरनी वेशभूषा बनावे छे आथी जेनु चारित्र मलिन भनी नय छे, गकुश मुनिओनी गणुत्रीभा गणवा लागे छे ( सू० २ )

साधुना आचारथी भ्रष्ट थयेला ते कुशीलोने आप केम उपदेश आपता नथी, जेथी कुशीलोने ससार दीर्घ भनरे रह्यो छे ? आ प्रकारनी शिष्यनी अने जेथी ते जिज्ञासामा सूत्रकार “ आघायं तु ” आ सूत्र कडे छे

कौर्छ ओक कुशील शिष्य तीर्थंकर अने गणधरादिद्वारा कडेवाभा आवेल कुशीलसंबंधी आचारना विपाकने साबणी, अने समजने पणु येताना गुणन वगेरे तरङ्ग कडलु वचन बोले छे, “ अमे तो लोकप्रिय भनीने लववाना ” आवा अलिप्रायथी प्रेरित भनी भागवती दीक्षाने वेश पडेरी

मूकम्—सीलमंता उवसता सखाप रयिमाणा 'असीला'

अणुवयमाणस्स वितिया मदस्स बालया ॥ सू०४ ॥

छाया—शीलन्त उपशान्ताः संस्यया रीयमाणा 'अशीलाः' अनुवदतः  
द्वितीया मन्दस्य पास्ता ॥ सू० ४ ॥

टीका—ये साधव' शीलन्त'—अष्टादशशीलाङ्गसहस्रवराः, यथा महाप्रव-  
पञ्चेन्द्रियरूपायनिग्रह-गुप्तित्रय-चारिषाः अतएव उपशान्ताः—क्षान्त्यादिगुणयुक्ताः,  
'शीलवन्तः' इत्यनेनैव कृपायापन्नमार्गस्य गतार्थत्वात्पुनः 'उपशान्ताः' इति  
विशेषणं कृपायनिग्रहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम्। तथा—सङ्ख्यया—हेयोपादेयप्रज्ञया  
व्यवहार करते हैं। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं  
"शीलमंता" इत्यादि।

जो साधु अठारह हजार (१८००) शीलोक मेदोंको धारण करनेवाले  
हैं, अथवा पंच महाप्रतोंके पालक पञ्चेन्द्रियों एवं कृपायोंका निग्रह करनेवाले  
और गुप्तित्रयके धारक हैं, तथा इसीसे जो क्षमा आदि मद्गुणोंसे विभूषित  
है, ह्य और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें जो लवलीन है।  
उन्हें भी ये कुशील "ये अशील हैं—ये चारित्रसे रहित हैं" ऐसा कहते हैं।  
यह इन अवसल-पासत्यादिरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है। प्रथम  
तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है—जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए  
हैं और दूसरी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको भी अचा-  
रित्री—भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें "शीलवन्त" इस पदसे ही कृपायोंके उपा-  
शमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी "उपशान्ताः" ऐसा जो  
पद देकर उनकी स्वतन्त्ररूपसे अभाव प्रदर्शित किया है, उसका मतलब  
केवल कृपायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

ये साधु महाप्रव १८ (१८००) शीलाना वेदोने धारण करवावाण्ये अथवा  
पाच महाप्रतोना पालक पञ्चेन्द्रियो अने उपाधेने निग्रह करवावाण्ये अने सुसित्रयना  
धारक्ये अने जेथी जे क्षमा आदि सद्गुणोधी विभूषित्ये हेय अने उपा-  
देयना विवेकपूर्वक संयम मार्गमां जे लवलीन्ये जेअने पद्य ते कुशील  
"आ अशील्ये—आ चारित्रधी स्तित्ये जेअ हडेये, आ ते अवसलपाश्चादि  
रूप कुशीलोनी जील अज्ञानता से पडेथी ते तेनी आ भोटी अज्ञानता छे हे  
ते स्वयं चारित्रधी अणु बड्य जया छे अने जील अज्ञानता आ छे हे जे  
चारित्रशालीअने पद्य अचारित्री भ्रष्ट हडेये सूत्रमां "शीलवन्ताः" आ पडथी  
अ उपाधेना उपशानतश्च अर्थनी प्रतीति यथं जय छे छया पद्य "उपशान्ताः"

સમુપદિશતિ, તદાજ્ઞાપરિપાલનં તુ દૂરતોઽપાસ્ત; પ્રત્યુત પરુપવચનેન તમેવાક્ષિપન્તિ, ત ઘથા-ભગવાન્ પ્રમાદી ષ્ઙ્લેશ્યાધારી ગોશાલકરક્ષણેન સ્વલ્લિત; इत्यादि तदेत्सर्वं तेषां प्रबलमिथ्यात्वोदयविलासमात्रमिति नवमाध्ययनचतुर्थोद्देशवृत्तौ स्पष्टी-भविष्यति ॥ सू० ३ ॥

તે સ્વયં ભ્રષ્ટાઃ કુશીલા ન કેવલં શાસ્તારં પરુષં વદન્તિ, અપરાનપિ સાધુન્ પરુષં વદન્તીત્યાહ-‘ સીલમંતા ’ इत्यादि ।

આજ્ઞાકા પાલન કરના તો દૂર રહ્યા, પરતુ વે કુશીલ અનેકા હી પરુષ (કઠિન) વચનોંસે તિરસ્કાર કરતે હૈં, કહતે હૈં કિ “ ભગવાન તો પ્રમાદી થે, ષ્ઙ્લેશ્યાઓંકો ધારણ કરતે થે, ગોશાલાકે રક્ષણ કરનેસે વે ચૂક ગયે થે ” । इस प्रकार उनका कहना प्रबल मिथ्यात्वके उदयका एक विलास-मात्र है; यह बात हम नौमे अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें स्पष्ट करेंगे ।

વે વેષધારી સાધુકા બાના ઇસલિયે પહિર લિયા કરતે હૈં કિ ઇસ બાનેસે હમૈં ખાને પીનેકો નિશ્ચિન્તતાસે મિલ જાયા કરેગા; નહીં તો કૌન પૂછે ! વિષયકથાઓંકે યે પિણ્ડ હોતે હૈં । થોડી ૨ સી વાતોંમૈં લઙ્ગને-જ્ઞગઙ્ગનેકો તૈયાર હો જાતે હૈં । इन्हें साधुभर्यादा क्या है ? इस तकका भी भान नहीं होता ! मौजसे खाना और तीन गौरवोंके वश रहना एक यही इनका लक्ष्य रहता है ॥ सू० ३ ॥

સ્વયંભ્રષ્ટ વે કુશીલ સિર્ફ અપને શાસ્ત્રાકે પ્રતિ હી કઠોર વચનોં કા પ્રયોગ કરતે હૈં, સો વાત નહીં; કિન્તુ અન્ય સાધુઓંસે ષી યદ્યા-તદ્યા

જ કઠણ વચનોથી તિરસ્કાર કરે છે કે “ ભગવાન તો પ્રમાદી હતા, ષ્ઙ્લેશ્યાધારી હતા, ગોશાળાનુ રક્ષણ કરવાથી તેઓ ચૂકી ગયા હતા ” આ પ્રકારે તેનું કહેવું પ્રબળ મિથ્યાત્વના ઉદયનો એક વિલાસ માત્ર છે આ વાત નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

તે વેષધારી સાધુનો વેષ એ માટે પહેરી રાખે છે કે એ વેષથી ખાવા પીવાનું તો વગર ચિન્તાએ મળતું રહે છે નહિ તો ડોણુ ભાવ પૂછે વિષય કથાઓના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમાં લડવા-ઝગડવા તૈયાર થઇ જાય છે સાધુભર્યાદા શું છે ? એનું તેને જ્ઞાન નથી હોતું મોજથી ખાવું અને ત્રણ ગૌરવના વશ રહેવું આ જ તેનું લક્ષ્ય હોય છે (સૂ. ૩)

જાતે ભ્રષ્ટ અનેક તે કુશીલ ક્રુત પોતાના આચાર્ય ગુરુ આદિ પ્રત્યે જ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત નથી, પરતુ ખીન્ત સાધુઓથી પણ એ આવેજ વ્યવહાર કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે “સીલમંતા”ઇત્યાદિ

मूढम्—सीलमता उवसता सखाप रयिमाणा 'असीला'  
अणुवयमाणस्त धितिया मंदस्त बालया ॥ सू०४ ॥

छाया—शीलवन्त उपशान्ताः सख्यया रयिमाणा 'अशीलाः' अनुवदतः  
द्वितीया मन्दस्य वास्ता ॥ सू० ४ ॥

टीका—ये सापयः शीलवन्तः=अष्टादशशीलाङ्गसहस्रपराः, यद्वा महाव्रत-  
पञ्चत्रिंशत्कपायनिग्रह-गुप्तित्रय-भारिष' अतएव उपशान्ताः=सान्त्पादिगुणयुक्ताः,  
'शीलवन्तः' इत्यनेनैव कपायोपशमार्थस्य गतार्थत्वात्पुनः 'उपशान्ताः' इति  
विशेषणं कपायनिग्रहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम् तथा-सख्यया=इयोपादेयप्रणया  
व्यवहार करते हैं। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं  
"सीलमता" इत्यादि।

जो साधु मठारह हजार (१८०००) शील्लोके मेदोंको धारण करनेवाले  
हैं, अथवा पंच महाव्रतोंके पालक पंचेन्द्रियों एवं कपायोंका निग्रह करनेवाले  
और गुप्तित्रयके धारक हैं, तथा इसीसे जो क्षमा आदि सद्गुणोंसे विभूषित  
हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें जो लवलीन है।  
उन्हें भी ये कुशील "ये अशील हैं-ये भारिषसे रहित हैं" ऐसा कहते हैं।  
यह इन अवसन्न-पासत्पादिरूप कुशीलोंकी दूसरी भ्रमज्ञानता है। प्रथम  
तो उनकी यही बड़ी भारी भ्रमज्ञानता है-जो ये स्वयं भारिषसे भ्रष्ट हुए  
हैं और इसी भ्रमज्ञानता यह है कि जो ये भारिषशालियोंको भी अन्ध-  
रित्री-भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें "शीलवन्तः" इस पदसे ही कपायोंके उप-  
शमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी "उपशान्ताः" ऐसा जो  
पद देकर उनका स्वतन्त्ररूपसे अमाय प्रदर्शित किया है, उसका मतलब  
केवल कपायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

ये साधु अठारह हजार (१८ ) शील्लोना सेहोने धारण इत्यावाण्ये उ अथवा  
पञ्च महाव्रतेना चालक पंचेन्द्रियो अने कपायेना निग्रह इत्यावाण्ये अने गुप्तित्रयना  
धारक उ अने जेथी ने क्षमा आदि सद्गुणोषी विभूषित उ हेय अने उपा-  
देयना विवेकपूर्वक संयम मार्गमां ने लवलीन उ जेअने पद्य ते कुशील  
आ अशील उ-आ भारिषधी रहित उ जेअने हडे उ आ ते अवसन्नपासत्पादि  
इप कुशीलोनी भील भ्रमज्ञानता उे पडेही तो तेनी आ नीटी भ्रमज्ञानता उे  
ते स्वयं भारिषधी भ्रष्ट बध जया उे अने भील भ्रमज्ञानता आ उे के ने  
भारिषशालीओने पद्य अन्धरित्री भ्रष्ट हडे उे सूत्रमां "शीलवन्तः" आ पदधी  
ने कपायेना उपशमनइय अर्थनी प्रतीति बध आव उे उतां पद्य उपशान्ताः



સમુપદિશતિ, તદાજ્ઞાપરિપાલનં તુ દૂરતોઽપાસ્ત; પ્રત્યુત પરુપવચનેન તમેવાક્ષિપન્તિ, ત ઘથા-ભગવાન પ્રમાદી પહ્લેશ્યાધારી ગોશાલ-રક્ષણેન સ્વલિતઃ ઇત્યાદિ। તદેત્સર્વં તે પા પ્રવલમિથ્યાત્વોદયવિલાસમાત્રમિતિ નવમાધ્યયનચતુર્થોદેશવૃત્તો સ્પષ્ટો-ભવિષ્યતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

તે સ્વયં ભ્રષ્ટાઃ કુશીલા ન કેવલં શાસ્તારં પરુપં વદન્તિ, અપરાનપિ સાધૂન પરુપં વદન્તીત્યાહ-‘સીલમતા’ ઇત્યાદિ ।

આજ્ઞાકા પાલન કરના તો દૂર રહ્યા, પરતુ વે કુશીલ ડનકા હી પરુપ (કઠિન) વચનોંસે તિરસ્કાર કરતે હૈ, કહતે હૈ કિ “ભગવાન તો પ્રમાદી થે, ષહ્લેશ્યાઓંકો ઘારણ કરતે થે, ગોશાલાકે રક્ષણ કરનેસે વે ચૂક ગયે થે” । હિસ પ્રકાર ડનકા કહના પ્રવલ મિથ્યાત્વકે ડદયકા ઇક વિલાસ-માત્ર હૈ; યહ વાત હમ નૌમે અધ્યયનકે ચતુર્થ ડદેશમેં સ્પષ્ટ કરેગે ।

વે વેષધારી સાધુકા વાના ઇસલિચે પહિર લિયા કરતે હૈં કિ ઇસ વાનેસે હમેં ઁવાને પીનેકો નિશ્ચિન્તતાસે મિલ જાયા કરેગા; નહીં તો કૌન પૂછે ! વિષયકષાયોંકે યે પિષ્ઠ હોતે હૈં । થોડી ૨ સી વાતોંમેં લડને-જગડનેકો તૈયાર હો જાતે હૈં । ઇન્હેં સાધુમર્યાદા ક્યા હૈ ? ઇસ તકકા ખી ખાન નહીં હોતા ! મૌજસે ઁવાના ઓર તીન ગૌરવોંકે વશ રહના ઇક યહી ઇનકા લક્ષ્ય રહતા હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

સ્વયંભ્રષ્ટ વે કુશીલ સિર્ફ અપને શાસ્ત્રાકે પ્રતિ હી કઠોર વચનોં કા પ્રયોગ કરતે હૈં, સો વાત નહીં, કિન્તુ અન્ય સાધુઓંસે ખી યદ્વા-તદ્વા

જ કઠણ વચનોંથી તિરસ્કાર કરે છે કે “ભગવાન તો પ્રમાદી હતા, પહ્લેશ્યાધારી હતા, ગૌશાળાનુ રક્ષણ કરવાથી તેઓ ચૂકી ગયા હતા” આ પ્રકારે તેનું કહેવું પ્રબળ મિથ્યાત્વના ઉદયનો એક વિલાસ માત્ર છે આ વાત નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

તે વેષધારી સાધુનો વેષ એ માટે પહેરી રાખે છે કે એ વેષથી ખાવા પીવાનું તો વગર ચિન્તાએ મળતું રહે છે નહિ તો કેાણુ ભાવ પૂછે વિષય કષાયોના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમાં લડવા-જગડવા તૈયાર થઈ જાય છે સાધુમર્યાદા શું છે ? એનું તેને જ્ઞાન નથી હોતું મોજથી ખાવું અને ત્રણુ ગૌરવના વશ રહેવું આ જ તેનું લક્ષ્ય હોય છે (સૂ. ૩)

જાતે ભ્રષ્ટ અનેક તે કુશીલ કૃત્ત પોતાના આચાર્ય શરૂ આદિ પ્રત્યે જ કઠોર વચનોંનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત નથી, પરતુ ખીજા સાધુઓંથી પણ એ આવેજ વ્યવહાર કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે “સીલમતા” ઇત્યાદિ

મૂઠ્ઠ્-સીલમતા ઉવસતા સલાપ રીયમાણા 'અસીલા' અણુવયમાણસ્સ ધિતિયા મંદસ્સ ચાલયા ॥ સૂ૦૪ ॥

છાયા—શીલવન્ત ઉપશન્તાઃ સસ્યયા રીયમાણા 'અસીલા' અનુવયઃ ત્રિતીયા મન્વસ્ય ચાલતા ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકા—યે સાપયઃ શીલવન્તઃ=અષ્ટાદશશીલાફલપરઃ, યદ્વા મહાવ્રત-પંચેન્દ્રિયકપાયનિગ્રહ-ગુપ્તિત્રય-ધારિણ' ત્રણ્યવ ઉપશન્તાઃ=સાન્ત્યાદિગુણયુક્તા, 'શીલવન્તાઃ' इत्यनेनैव कपायोपश्रमार्थस्य गतार्थत्वात्पुन 'उपशान्ताः' इति विशेषं कपायनिग्रहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम् तथा-सस्स्यया=हेयोपादेयप्रज्ञया प્યबહાર કરતે હૈં । इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं "सीलमंता" इत्यादि ।

જો સાધુ અઠારહ હજાર (૧૮૦૦૦) શીલોંકિ મેદોંકો ધારણ કરનેચાલે હૈં, અપવા પંચ મહાવ્રતોંકિ પાલક પંચેન્દ્રિયોં પર્થ કપાયોંકા નિગ્રહ કરનેચાલે ઓર ગુપ્તિત્રયકે ધારક હૈં, તથા હસીસે જો જ્ઞમા આદિ સર્વગુણોંસે ચિમૂપિત હૈ, હેય ઓર ઉપાદેયકે બિલેકપૂર્વક સંયમમાર્ગમેં જો લલ્લીન હૈ । વન્હેં 'મી યે કુશીલ "યે અશીલ હૈં-યે ચારિત્રસે રહિત હૈં" પેસા કહતે હૈં । યહ ઇન અવસલ-પાસત્યાવિરુપ કુશીલોંકી વૃસરી અજ્ઞાનતા હૈ । પ્રથમ તો વનકો યહી યહી 'મારી અજ્ઞાનતા હૈ-જો યે સ્વયં ચારિત્રસે ધ્રષ્ટ હુપ હૈ ઓર વૃસરી અજ્ઞાનતા યહ હૈ કિ જો યે ચારિત્રશાલિયોંકો 'મી અષ્ટા રિધી-ધ્રષ્ટ કહતે હૈ । સૂત્રમેં "શીલવન્તાઃ" હસ પદસે હી કપાયોંકિ ઉપ શામનરુપ અર્થકી પ્રતીતિ હો જાતી હૈ; ફિર 'મી "ઉપશાન્તાઃ" પેસા જો પદ વેકર વનકા સ્પતન્દ્રરુપસે અમાઘ પ્રવર્ણિતકિયા હૈ, વસકા મતલબ કેબલ કપાયોંકિ નિગ્રહકી પ્રમાનતા પ્રકટ કરના હી સમજના ચાહિયે ।

જે સાધુ અઠારહ હજાર (૧૮ ) શીલોના લેહોને ધારણ કરવાવાળા છે અથવા પંચ મહાવ્રતોના પાલક પંચેન્દ્રિયો અને કપાયોને નિગ્રહ કરવાવાળા અને ગુપ્તિત્રયના ધારક છે અને એથી જે જ્ઞમા આદિ સર્વગુણોથી વિભૂષિત છે હેય અને ઉપદેયના વિલેકપૂર્વક સંયમ માર્ગમાં જે લલ્લીન છે એમને પણ તે કુશીલ "મા અશીલ છે-મા ચારિત્રથી રહિત છે એમ કહે છે આ તે અવસતપાસત્યાદિ રૂપ કુશીલોની બીજી અજ્ઞાનતા છે પહેલી તે તેની આ મોટી અજ્ઞાનતા છે જે તે સ્વયં ચારિત્રથી ધ્રષ્ટ થઈ ગયા છે અને બીજી અજ્ઞાનતા આ છે જે જે ચારિત્રશાળીઓને પણ અચારિત્રી ધ્રષ્ટ કહે છે સૂત્રમા "શીલવન્ત" આ પદથી જે કપાયોના ઉપશમનરૂપ અર્થની પ્રતીતિ થઈ ગય છે છતાં પણ "ઉપશાન્તા"

રીયમાણાઃ=સયમમાર્ગં પ્રવર્તમાનાઃ સન્તિ તાન્ 'અઙ્ગીલાઃ=ચારિત્રવર્જિતા પતે' इति अनुवदतः प्रतिवदत मन्दस्य=असन्नपाश्वरश्चादेरेपा द्वितीया वालतास्ति । अत्र ज्ञानगर्वान्धत्वात् स्वयं चारित्रभ्रष्टा अभूवन्निति प्रथमा, द्वितीया तु अन्यसाधून् प्रति 'भ्रष्टाः' इति कथनरूपेति भावः ॥२०४॥

કેચિદ્ ઋજુમતયઃ સ્વયમશક્તા અપિ સાધ્વાચારં પ્રશમન્તીત્યાહ- 'નિચટ્ટમાણા' इत्यादि ।

મૂલ્ય-નિચટ્ટમાણા વેગે આચારગોચરમાઙ્કલંતિ ॥સૂ.૦૫॥

છાયા--નિવર્તમાના વૈકે આચારગોચરમાહ્યાન્તિ ॥ મૂ. ૫ ॥

ટીકા--વા=અથવા એકે=કેચિત્ નિવર્તમાનાઃ=સ્વયં સંયમારાધનાં સમ્યક્તયા કર્તુમસમર્થતયા તતો નિહત્તા અપિ આચારગોચર=મૂલોત્તરગુણં અહ્યાન્તિ=શુદ્ધતયા વર્ણયન્તિ, તેપાં દ્વિતીયા વાલતા નાસ્તીતિ ભાવઃ ॥ મ. ૫ ॥

જો ક્ષીલસપ્ત્ર છે-ઉપશાન્ત છે, હેય ઓર ઉપાદેયકે વિવેકપૂર્વક સંયમમાર્ગમેં લગે હુણ છે ડન્હેં યે કુક્ષીલ અચારિત્રી કહ કર અપની અજ્ઞાનતા પ્રદર્શિત કરતે છે ॥સૂ.૦૪॥

કોઈ ૨ કુક્ષીલ (શિથિલાચારી) ઋજુમત્તિયુક્ત હોતે છે । યે ચારિત્રકે ખારકો વહન કરનેકે લિયે અસમર્થ હોતે હુણ ખી સાધુકે આચારકી પ્રશસા કરતે છે । ડસી વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે છે " નિચટ્ટમાણા " इत्यादि—

અથવા કોઈ ૨ કુક્ષીલ (શિથિલાચારી) સ્વય સયમકી સમીચીન આરાધના કરનેમેં અસમર્થ હોનેસે ડસસે દૂર રહતે છે, તો ખી મૂલગુણ ઓર ઉત્તરગુણોકી શુદ્ધતાસે પ્રશસા કરતે છે । ડનકે દ્વિતીયા વાલતા (અજ્ઞાનતા) નહીં હોતી ।

એવુ જે પદ છે તે સ્વતન્ત્રરૂપથી ઉપાયોના અભાવ પ્રદર્શિત કરે છે આને અર્થે કેવળ ઉપાયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા પ્રગટ કરવા માટેજ કહેવાયાતુ સમજવુ જોઈએ જે શીલસપ્ત્ર છે-ઉપશાન્ત છે, હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સયમ માર્ગમા લાગેલા છે એમને તે કુક્ષીલ ચારિત્ર વગરના કહી પોતાની અજ્ઞાનતાતુ પ્રદર્શન કરે છે (સૂ.૦૪)

કોઈ કોઈ કુક્ષીલ (શિથિલાચારી) હલકી મનિથી ભરેલા હોય છે ચારિત્રના ભારને એ વહન કરી શકતા નથી, છતાં પણ સાધુના આચારની પ્રશસા કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે " નિચટ્ટમાણા " इत्यादि

અથવા કોઈ કોઈ કુક્ષીલ (શિથિલાચારી) સ્વય સયમના આરાધના કરવામા અસમર્થ હોવાથી એનાથી દૂર રહે છે તો પણ મૂળશુદ્ધ અને ઉત્તરશુદ્ધોની

सदसद्भिवेकभ्रष्टा किं कुर्वन्ती ? स्यात्काङ्क्षायामाह—'नाणभद्रा' इत्यादि  
 मू०—नाणभद्रा दसगल्लसिणो नमनाणा वेगे जीविय  
 विप्परिणामति ॥ सू० ६ ॥

छाया—ज्ञानभ्रष्टा दर्शनरूपिणो नमः एक नीचितं विपरिणामयन्ति ॥ म० ६ ॥  
 टीका—एक=कवन दर्शनरूपिण=सम्यक्त्वपतिता, अतएव ज्ञानभ्रष्टाः=  
 ह्यापादेयबुद्धिबिच्युता, नमन्ता वा=आचार्यादीन् द्रव्यतः प्रममन्ताऽपि नीचित=  
 स्वात्मानं विपरिणामयन्ति=परिषर्षयन्ति-सम्यक्चारिणाव् विध्यंसपन्तीत्यर्थ, सम्य  
 दर्शनज्ञानचारित्र्यभगान्नाक्षमागाव् भ्रश्यन्ताति माहः ॥ सू० ६ ॥

माधार्थ—शुद्ध संयमकी आराधना नहीं हो सकनेके कारण कोई  
 २ कुशील उस संयमकी पालनासे यद्यपि दूर रहते हैं, फिर भी उस  
 संयमको शुद्ध रीतिसे पालनवालोंकी ब निंदा नहीं करते—उन्हें 'य भ्रष्ट  
 हैं, ऐसा नहीं समझत; अतः य प्रथम पालनासे युक्त होते हुए भी दूसरी  
 पालनासे रहित मान जाते हैं ॥ सू० १ ॥

जो सत और असत्क विषयसे भ्रष्ट हैं, व क्या करते हैं? इस प्रकार  
 की आकांक्षा होन पर सूत्रकार कहत हैं—“ नाणभद्रा ” इत्यादि—

कोई २ यकुश सम्यक्स्यसे पतित होनकी यजहसे, हेय और उपा-  
 देयवाली बुद्धिसे रहित होते हुए, आध्यायिककिक लिय द्रव्यस्य नमस्कार  
 से नमन करते हैं तो भी अपनी आत्माको सम्यक्स्य चारित्र्यसे पतित  
 ही बनाये रहते हैं । ऐस जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आर सम्यक्  
 चारित्र्यरूप मोक्षमागसे सदा भ्रष्ट हैं, ऐसा समझना चाहिय ॥ सू० ६ ॥

शुद्धताधी प्रथमा ४२ ७ जेने जी० भागवा (अज्ञानवा) नधी छीती.

भावार्थ—शुद्ध समनता अतधना न करी शकवाने कारणे केछ केछ  
 दुशील ते लभनी पठनाथां जे के इर रहे छे तो पनु तयनने शुद्ध रीतिधी  
 पाणवावाजाना निंदा न नधी करत—जेमने जे ज्ञान छे जेम नधी लभतवा  
 आधी जे प्रथम भावनाथां युद्ध जया छता पनु जी० भागवाधी रहित  
 भावनामा आवे छे (सू. ५)

? ननु जेने मन अतन्व विवेकधी अप्प छे ते शु ४२ छे ज्य प्रकास्नी  
 आकांक्षा छेवाधी बडे छे ज्ञानमद्वा इत्यादि.

केछ केछ अदुश सम्यक्स्य पतित यथवा का जे देव जेने उपादेयवाली  
 बुद्धिबिच्युत वनी आचार्यादिकाने सम्यग्ज्ञानमस्कारधी नमन करे छे ता पनु ते  
 पालना अतमाने सम्यक्स्यचारित्र्यरी पतित व बनधी तजे छे ज्य छे  
 सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान जेने सम्यक् चारित्र्य नीत भावधी नदा अप्प छे जेवु  
 सम्यक् जेजे (सू. १)

रीयमाणाः=सयममार्गं प्रवर्तमानाः सन्ति तान् 'अशीलाः=चारित्रवर्जिता एते' इति अनुवदतः प्रतिवदत मन्त्रस्य=असन्नपार्श्वश्वादेरेषा द्वितीया वाल्तास्ति । अत्र ज्ञानगर्वान्धत्वात् स्वय चारित्रध्रष्टा अभृन्निति प्रथमा, द्वितीया तु अन्यसाधून् प्रति 'अग्राः' इति कथनरूपेति भावः ॥म०४॥

केचिद् ऋजुमतयः स्वयमगता अपि माध्याचार प्रशमन्तीत्याह- 'नियदृमाणा' इत्यादि ।

मूलम्—नियदृमाणा वेगे आचारगोचरमाइकखंति ॥सू०५॥

छाया--निर्वर्तमाना वैके आचारगोचरमाग्यान्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका--मा=अथवा एके=केचित् निर्वर्तमानाः=स्वय संयमाराधना सम्यङ्गतया कर्तुमसमर्थतया ततो निवृत्ता अपि आचारगोचर=मूलोत्तरगुणं अख्यान्ति=शुद्धतया वर्णयन्ति, तेषा द्वितीया वाल्ता नास्तीति भावः ॥ म० ५ ॥

जो शीलमपन्न है--उपजान्त हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें लगे हुए हैं उन्हें ये कुशील अचारित्री कह कर अपनी अज्ञानता प्रदर्शित करते हैं ॥सू०४॥

कोई २ कुशील ( शिथिलाचारी ) ऋजुमतियुक्त होते हैं । ये चारित्रके भारको वहन करनेके लिये असमर्थ होते हुए भी साधुके आचारकी प्रशंसा करते हैं । इसी बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं " नियदृमाणा " इत्यादि--

अथवा कोई २ कुशील ( शिथिलाचारी ) स्वय संयमकी समीचीन आराधना करनेमें असमर्थ होनेसे उससे दूर रहते हैं, तो भी मूलगुण और उत्तरगुणोंकी शुद्धतासे प्रशंसा करते हैं । इनके द्वितीया वालता ( अज्ञानता ) नहीं होती ।

येषु वे पद ए ते स्वतः प्रथमीत्यायोना अभाव प्रदर्शित करे ए आने अर्थ देवण इयायोना निमज्जनी प्रधानता प्रगट करवा माटेव डहेवायातु समज्जु मेधये वे शीलमपन्न ए-उपशान्त ए, हेय अने उपादेयना विवेकपूर्वक सयम मार्गना लागेला ए अने ते कुशील चारित्र वगरना कही पोतानी अज्ञानतातु प्रदर्शन करे ए (सू०४)

कोई कोई कुशील ( शिथिलाचारी ) उदकी भनिधी लरेला होय ए आग्निना भारने अे वहन करी शकता नहीं, छता पजु साधुना आचारनी प्रशंसा करे ए आ वातने प्रगट करता सूत्रकार कहे ए " नियदृमाणा " इत्यादि

अथवा कोई कोई कुशील ( शिथिलाचारी ) स्वय संयमना आराधना करवाना असमर्थ होवाधी अेनाधी दूर रहे ए तो पजु मूलगुण अने उत्तरगुणनी

सदसश्रियेकश्रयाः किं कुर्वन्ती ? स्यात्कान्वायामाह—'नाणग्मट्टा' इत्यादि।  
 म्भम्—नाणवभट्टा दसगल्लसिणो नममाणा वेगे जीविय  
 विप्परिणामति ॥ सू० ६ ॥

छाया—ज्ञानश्रया दर्शनरूपिणो नम एवैक जीवितं विपरिणामयन्ति ॥ सू० ६ ॥  
 टीका—एके=केचन दर्शनरूपिणः=सम्यक्त्वपतिता, अतएव ज्ञानश्रयाः=  
 ह्यापादेयबुद्धिविष्णुणा, नमन्ता वा=आचार्यादीन् द्रव्यसः प्रामन्ताऽपि जीवितं=  
 स्वात्मानं विपरिणामयन्ति=परिवर्धयन्ति—सम्यक्चारिणाव् विध्वंसयन्तीत्यर्थः; सम्य  
 दर्शनज्ञानचारिभ्रलक्षणान्माप्तमार्गाव् भ्रश्यन्ताति भावः ॥ सू० ६ ॥

भावार्थ—शुद्ध संयमकी आराधना नहीं हो सकनेके कारण कोई  
 २ कुशील उस संयमकी पालनासे यद्यपि दूर रहते हैं, फिर भी उस  
 संयमको शुद्ध रीतिसे पालनघालोंकी धे निंदा नहीं करते—उन्हें 'ये भ्रष्ट  
 हैं, ऐसा नहीं समझते; अतः य प्रथम पालनासे युक्त होते हुए भी दूसरी  
 पालनासे रहित मान जाते हैं ॥ सू० १ ॥

जो सत् और असत्के विषयसे भ्रष्ट हैं, क्या करते हैं? इस प्रकार  
 की आकांक्षा होन पर सूत्रकार कहते हैं—“ नाणग्मट्टा ” इत्यादि—

कोई २ शकृदा सम्यक्त्वसे पतित होनेको घजहसे, ज्ञेय और उपा  
 देयवाली बुद्धिसे रहित होते हुए, आचार्यादिकोंके लिये द्रव्यरूप नमस्कार  
 से नमन करते हैं तो भी अपनी आत्माको सम्यक्त्व चारित्र्यसे पतित  
 ही बनाय रहते हैं । ऐसे जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आर सम्यक्  
 चारित्र्यरूप मोक्षमार्गसे सदा भ्रष्ट हैं, ऐसा समझना चाहिय ॥ सू० ६ ॥

शुद्धताधी प्रयत्ना करे छे जेने नील भाणवा (अज्ञानता) नधी दोता।

भावार्थ—शुद्ध संयमकी आराधना न करी शकवाने कारणे कोछ कोछ  
 कुशील ते संयमकी पालनायां जे हे दूर रहे छे तो पक्ष संयमने शुद्ध रीतिधी  
 पाणवपाणधी निंदा ते नधी करता—जेमने जे भ्रष्ट छे जेम नधी समजतो.  
 आधी जे प्रथम पालनाधी युक्त जेवा छवा पक्ष नील पालनाधी रहित  
 मानवाया आवे छे (सू० ५)

जे सत् जने जने असत्ताय विवेकधी भ्रष्ट छे ते शु करे छे आ प्रकास्ती  
 आकांक्षा जेवाधी कहे छे नाणग्मट्टा इत्यादि।

कोछ कोछ लक्ष्य सम्यक्त्वयां पतित भवाना कारणे देव जने उपदेयवाणी  
 बुद्धिरहित जनी आचार्यादिकोंने द्रव्यरूप नमस्कारयां नमन करे छे तो पक्ष ते  
 पीतान्ता ज्ञानाने सम्यक्त्वचारित्र्यधी पतित व जनावी राये छे जवा एव  
 सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान जने सम्यक्चारित्र्यरूप मोक्ष मार्गयां सदा भ्रष्ट छे जेव  
 समज्यु जे।जे. (सू ६)

किञ्च—'पुट्टा' इत्यादि ।

मूलम्—पुट्टा वेगे नियतंति जीवियस्सेव कारणा, णिकखंतंपि तेसिं दुन्निक्खंतं भवइ ॥ सू०७ ॥

छाया—स्पृष्टा वैके निरर्चन्ते जीवितस्यैव कारणात्, निष्क्रान्तमपि तेपा दुर्निष्क्रान्तं भवति ॥ सू०७ ॥

टीका—एके=केचन स्पृष्टाः=परीपहोपसर्गैरुपद्रुताः सन्तः जीवितस्यैव कारणात्=क्षणभङ्गुरजीवनस्य सुखार्थं निवर्त्तन्ते=सयमात्पृथग् भवन्ति । तेपा=चारित्र्यदुत्ताना निष्क्रान्तमपि=निष्क्रमणमपि दुर्निष्क्रान्तं भवति=मूलोत्तरगुणविघातेन निरर्थकं भवति । चारित्रपरिभ्रष्टाना गृहान्निष्क्रमणं न श्लाघनीयं भवति; प्रत्युत गर्हणीयमेवेति भावः ॥ सू० ७ ॥

तथा—“पुट्टा” इत्यादि ।

कोई २ बकुश परीपह और उपसर्गों से वाधित बन कर अपने प्यारे जीवनके विनाशके भयके कारणसे गृहीत सयममार्गमें भ्रष्ट हो जाते हैं । अर्थात् ये जहां भी जीवनके कष्टकारी विपत्तिरूप विभीषिका से उपद्रवित होते हैं शीघ्र ही वहां 'इस क्षणभंगुर जीवनको सुख मिले' इस चाहनासे संयममार्गसे हट जाते हैं । ऐसे चारित्रसे पतित हुए भयशीलोंकी पूर्वकालगृहीत प्रव्रज्या-दीक्षा मूल और उत्तरगुणोंके विघातसे निरर्थक हो जाती है । ठीक बात है—जो चारित्रसे भ्रष्ट हो चुके हैं, उनका गृहसे निकलना—गृहका परित्याग करना प्रशंसनीय नहीं होता है; उल्टा निंदनीय ही माना जाता है ।

भावार्थ—कोई २ बकुश क्षणभंगुर जीवनको सुखी करनेके अभि-

तथा—“पुट्टा” इत्यादि ।

कोई कोई बकुश परिपह अने उपसर्गोंकी गलतशर्त पोताना प्यारा जीवनका विनाशना बनना कारणकी अड़ल्लु करेला सयम मार्गकी भ्रष्ट यर्थ नथ छे अर्थात् ये नथा पणु जीवनने कष्टकारी कोई पणु आपत्ति-विपत्तिरूप कारणकी उपद्रवित अने छे तरत न त्यागी आ क्षणभंगुर जीवनतु सुख भणे अनी आड नथी ते सयम मार्गकी इर थाय छे अेवा चारित्रकी पतित अनेला भयशीलनी पूर्व क्षणमा अड़ल्लु करेदी दीक्षा मूल अने उत्तर गुणाना विघातकी निरर्थक अनी नथ छे ठीक बात छे न्ने चारित्रकी भ्रष्ट अनेला छे अेभनु घरभाथी निकलनु प्रशंसनीय अतनु नथी, उल्टु निंदनीय मानवामा आवे छे

भावार्थ—कोई कोई बकुश क्षणभंगुर जीवनने सुखी करवाना अभिप्रा-

किञ्च—'पालषपणिज्जा' इत्यादि ।

मृशम्—घालवयणिज्जा द्रुते नरा, पुणो पुणो जाइ पकप्पति, अहे समवसा विहायमाणा "अहमसीति" विउक्कसे, उदासीणे फरुस वयति, पलिय पकस्थे, अदुवा पकस्थे अतहेहिं, तं वा मेहाधी जाणिज्जा धम्म ॥ सू० ८ ॥

छाया—पालषपनीया द्रु ते नराः, पुन पुनर्जातिं प्रकल्पयन्ति, अथा समस्तं विहायमाना 'अहमस्मीति' व्युत्थयिषुः, उदासीनान् परुषं वदन्ति, पस्तिं प्रकथयत्, अथवा प्रकथयत् अतथ्यैः, क्मेधाधी जानोपत्तु धर्मम् ॥ ८ ॥

टीका—यत् जीवितसुखार्थं चारित्र्यविन्युता भवस्ते नरा पालषपनीयाः—पालानाम्—आपामरजनानां वचनीयाः=निन्दनीया भवन्ति, किंच ते पुन पुनर्जातिम् =एकन्द्रियाद्विप्लवतिं प्रकल्पयन्ति=प्रदुर्बन्ति । चारित्र्यपरिचर्जनानन्तानन्तपारं चतुर्गतिकसंसारं जन्ममरणान्यनुवर्षमान्ना अरहद्दृष्टीयन्त्रन्यापन परिवर्त्तन्व इति भाषा ।

किञ्च—अथा संभवन्तः=संयमस्थानात्पठन्तः विहायमानाः=पण्डितमन्याः प्रायसे ही परीपहादिकोकि भाने पर सयममार्गको छोड़ देते हैं । ऐसे जीवोंकी पूर्णकालिक प्रवृत्त्या भी निरर्थक हो जाती है ॥ सू० ७ ॥

तथा—"पालषपणिज्जा" इत्यादि—

क्यों कि य बहुधा जीवनको सुखी करनेके अभिप्रायसे चारित्र्यसंघट्ट धनते हैं, इसीलिये पामर जैसे प्राणियों तकसे भी निन्दनीय होते हैं । ऐसे जीव बार २ एकेन्द्रियादिक पर्यायों में अपनी उत्पत्ति करते रहते हैं—अर्थात् शरीर चारित्र्यके त्यागसं अनन्तानन्त पार चतुर्गतित्स्वरूप संसारमें जन्म और मरणके चक्रमें पड़ कर अरहद्दृष्टीयन्त्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं ।

ये संयमस्थानसे नीचे गिरते हैं, फिर भी अपनेको पण्डित मानते

यथा च पस्तिं च आदि व्यापतां तथमभाजने लेखी ३ ३ केवा एवोनी पूर्वक विष प्रकथया पद्य निरवध जनी जय ३ ( सू ७ )

तथा—"पालषपणिज्जा" इत्यादि ।

हेम के जे अदुश एवने सुभी कस्वाना अभिप्रायधी चारित्र्यधी प्रष्ट वने ३ आ भाटे पामर केवा भाषीजोधी पद्य निन्दनीय वने ३ केवा एव वारवार केकेन्द्रियादिक फथिमां पेतानी उत्पत्ति कस्ता रहे ३ अर्थात् शरीर चारित्र्यना त्यागधी अनन्तानन्तपार चतुर्गतित्स्वरूप संसारमां जन्म वने भरवना चक्रमां पडी अरहद्दृष्टीयन्त्रनी भाषक प्रभव किया करे ३

ये अथम स्थानधी नीचे पडे ३ छत्तां पद्य पेतानी बतने पण्डित भाने



किञ्च—‘पुट्टा’ इत्यादि ।

मूलम्—पुट्टा वेगे नियट्टंति जीवियस्सेव कारणा, णिक्खंतंति तेसिं दुन्निक्खंतं भवइ ॥ सू०७ ॥

छाया—स्पृष्टा वैके निवर्त्तन्ते जीवितस्यैव कारणात्, निष्क्रान्तमपि तेषां दुर्निष्क्रान्तं भवति ॥ सू०७ ॥

टीका—एके=केचन स्पृष्टाः=परीपहोपसर्गैरुपहृताः सन्तः जीवितस्यैव कारणात्=क्षणभङ्गुरजीवनस्य सुखार्थं निवर्त्तन्ते=सयमात्पृथग् भवन्ति । तेषां=चारित्र्यपुताना निष्क्रान्तमपि=निष्क्रमणमपि दुर्निष्क्रान्तं भवति=मूलोत्तरगुणविघातेन निरर्थकं भवति । चारित्र्यपरिभ्रष्टानां गृहान्निष्क्रमणं न श्लाघनीयं भवति; प्रत्युत गर्हणीयमेवेति भावः ॥ सू० ७ ॥

तथा—“पुट्टा” इत्यादि ।

कोई २ बकुश परीषह और उपसर्गों से बाधित बन कर अपने प्यारे जीवनके विनाशके भयके कारणसे गृहीत संयममार्गमें भ्रष्ट हो जाते हैं । अर्थात् ये जहां भी जीवनके कष्टकारी विपत्तिरूप विभीषिका से उपद्रवित होते हैं शीघ्र ही वहां ‘इस क्षणभंगुर जीवनको सुख मिले’ इस चाहनासे संयममार्गसे हट जाते हैं । ऐसे चारित्र्यसे पतित हुए भयशीलोंकी पूर्वकालगृहीत प्रव्रज्या-दीक्षा मूल और उत्तरगुणोंके विघातसे निरर्थक हो जाती है । ठीक बात है—जो चारित्र्यसे भ्रष्ट हो चुके हैं, उनका गृहसे निकलना—गृहका परित्याग करना प्रशंसनीय नहीं होता है; उल्टा निंदनीय ही माना जाता है ।

भावार्थ—कोई २ बकुश क्षणभंगुर जीवनको सुखी करनेके अभि-

तथा—“पुट्टा” इत्यादि ।

डोळ डोळ अकुश परिषद अने उपसर्गांची गलराळ पोताना प्याश लवना विनाशना लयना डारळुथी अडळु करेला संयम मार्गाची भ्रष्ट थर नथे छे अर्थात् ऐ न्या पळु लवनेने कष्टकारी डोळ पळु आपत्ति-विपत्तिइय डारळुथी उपद्रवित अने छे तरत न त्याथी आ क्षणभंगुर लवनेतु सुभ भणे ऐवी आड नाथी ते संयम मार्गाची हर थाय छे ऐवा चारित्र्यची पतित अनेला लयशीलनी पूर्व काणमा अडळु करेली दीक्षा मूल अने उत्तर शुद्धाना विघातथी निरर्थक अनी नथे छे ठीक वात छे जे चारित्र्यची भ्रष्ट अनेला छे ऐमनु धर्मथी निकळु प्रशंसनीय अंतु नथी, उलटु निंदनीय मानवामा आवे छे

भावार्थ—डोळ डोळ अकुश क्षणभंगुर लवनेने सुभी उरवाना अलिप्रा-

प्रवदन्ति यथा—‘त्व हिंसका मपावादी स्वय पतिवाऽसि, किमन्यमुपदिशती’—  
 त्यादि । सुत्रे ‘विठवसे’ ‘पसत्प’ इत्यत्र भार्गवादकचनम् । उपसहरमाह—‘त  
 मेहावी’ इत्यादि, वत=तरमात् कारणात् मघानी=साधुमर्पादाभ्यवस्थिता मुनिः  
 धर्म=भुतचारिप्रलक्षणं ज्ञानीयात्=सम्यग् भावयत्, न तु धर्मात्प्रचलितो मघेताम् ०८।  
 ऐसे अधिद्यमान क्षीपोसे उसे तर्जित-तिरस्कृत करना; जैसे—तुम हिंसक  
 हो, साधुवादी हो, स्वय पतिव हो, दूसरोंके लिये क्या उपदेश देते हो?  
 इत्यादि। उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“तं मेहावी” इत्यादि।  
 इसलिये साधुमर्पादार्थे व्यवस्थित मेघावी मुनि भुतचारिभ्रष्ट धर्मकी  
 अच्छी तरहसे भाषना मक्ता रह-उसे समझालता रहे, धर्मसे कमी  
 भी प्रच्युत न होये ।

भाषार्थ—जो एकदश क्षणिक इस जीवनको सुखित बनानकी इच्छा  
 से चारिभ्रष्ट धर्मसे च्युत हो जाते है, अगतक छोटे से भी छोटे प्राणी  
 उनकी निंदा और हसी करते है । चारिभ्रष्ट जीवोंका अनन्तानन्त काल  
 एकेन्द्रियादिक जीवोंकी पर्यायमें ही व्यतीत होता है । चारिभ्र  
 ष्ट हो कर भी जो अपनको अच्छा समझत है—अपन भीतर बहुत  
 भुत होनेका जो अभिमान करते हैं—अन्य निर्मल चारिभ्र भाराधक  
 साधुओंके प्रति जो कठोर शब्दोंका प्रयोग करते हैं—उनका तिरस्कार  
 करते हैं—पहिलेके उनके आचरणोंको छे कर जो उन्हें नीचा दिखानका

त्याह आने अमने उपदेश आपवा आ या ऐ आ प्रकृत्या भवन्तु नाम  
 पवित छ अथवा ने दोष जेनामां न होय जेव पज-भाषा विनाया दोषे  
 वयादी तिरस्कृत करवा; जेभ के-तये द्विसह छे जेदु मोहनारा छे स्वय पतिव  
 छे हरी जीवने शु उपदेश आपो छे वजेरे उपसहर करवां सूत्रकार कहे छे के-  
 “तमेहावी इत्यादि। आ मा’ साधु-मर्पादाभा अवस्थित मेघावी मुनि भुतचारिभ्र  
 ष्ट धर्मनी जाव । सापवा रहे जेने साभजना रहे धर्मणी कदि पक्ष पाछा न छे

भाषार्थ—जे बहुत दुखिके अरु लवनने सुधी जनाववाणी धर्मभ्रष्टी  
 चारिभ्रष्ट धर्मकी पाछा छे जेवा साधुनी जगतमां नाना मोटा जेनी  
 निदा अने हांसी करे छे चारिभ्रष्ट जेवने अनन्तानन्त काल सुधी जेकेन्द्रि  
 यादिक जेवनी पर्यायमां समक व्यतीत जाय छे । चारिभ्रष्ट जनीने पक्ष ने  
 पोताने साभ समजे छे पोतानी अदर बहुभुत होवन्तु अभिमान करे छे  
 जीव निर्मल चारिभ्र भाराधक साधु तरह ने कठोर शब्दोंका प्रयोग करे छे-  
 तेना तिरस्कार करे छे पहिलेका तेना अचरणोंका सापवा आ पी तने नीचा

‘अहमस्मीति’ अहमेव बहुश्रुतोऽहमीति अन्येक प्रवृत्तस्ते व्युत्कर्षयेयुः=स्व  
 स्वमात्मानं प्रशंसन्ति, यथा—यदाचार्यो जानाति तन्मया प्रागेव ज्ञातमित्यादि ।  
 किञ्च—उदासीनान्=उपशान्तकपायान् स्वहितहितकथनप्रवृत्तान् इत्यादिषु पक्ष  
 वदन्ति=प्राक्षिपति । तदत्र दर्शयति—पथितमित्यादि, पथित=प्राक्तन दीक्षाग्रहणा-  
 त्प्राक्कालिकचरितं काष्ठभारवहनादिकं प्रकथयेयुः=प्रवदन्ति—‘पूर्वं तृणकाष्ठभारवाह-  
 नादिभिर्वृष्टशिरसि तत्र नैकाऽपि केशो दृष्टिगोचरीभवति, एवभूतस्य किमि-  
 दानीमुपदेष्टुं प्रवृत्तोऽस्ति’ इत्यादि । अथवा अतल्लैः=अनद्विर्दोषैः प्रकथयेयुः=पक्षं  
 है । “मै ही बहुश्रुत हूँ”—इस प्रकार ये हरणकसे अपनी आठलाघा  
 किया करते हैं । उसमें ये कभी २ यह भी कह दिया करते हैं कि जो  
 आचार्य जानते हैं वह तो मैं पहिलेसे ही जानता था—आदि । तथा—जिन  
 की कपायें उपशान्त हो चुकी हैं, आत्महितसे भ्रष्ट बन टूट मनुष्योंको  
 जो आत्महितके उपदेश करनेमें प्रवृत्त हैं ऐसे अन्य साधुजनोका भी  
 ये तिरस्कार करते हैं—उनके प्रति भी ये कठोर वचनोका प्रयोग करते  
 हैं । इसी बातको सूत्रकार “पथितं प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट  
 करते हैं । दीक्षा ग्रहण करनेके पहिलेके समयके आचरणका नाम पथित  
 है । यदि कोई बकुल निर्मल समय प्रागैके आराधक साधुजनसे ऐसा  
 कहे कि हम तुम्हें जानते हैं, तुम वे ही हो जो पहिले काष्ठका भार माथे  
 पर होया करते थे । देखो, यही कारण है कि पहिले तृणकाष्ठके भारों  
 को ढोते ढोते तुम्हारे माथे—शिरपर एक बाल भी नजर नहीं आ रहा है,  
 तुम ऐसे हो; अब इतल समय क्या हमें उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त हो—इस  
 प्रकारके कथनका नाम पथित कथन है । अथवा जो दोष उसमें न हों

ये “हुं न बहुश्रुत हूँ” आ प्रकारथी ते इदं ज्ञानं सांभे चोत्तानी गदायं उदये  
 राभे छे आभा ते कोय वभने येवु पथु गडे छे के आथार्थ ने नाले छे आ तो हुं  
 पडेलेथी न नालु हूँ वि

तथा—नेनी उपाय उपशान्त यद्यं बुद्धी छे, आत्महितथी भ्रष्ट  
 भनेला माधुसेने ने आत्महितने उपदेश आपवामा प्रवृत्त छे येवा अन्य  
 साधुजनोने पथु ते तिरस्कार करे छे येना तरङ्ग कठोर वचनोने प्रयोग करे  
 छे आ वातने सूत्रकार “पथितं प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्रार्थी प्रकट करे छे  
 दीक्षा दीक्षा पडेलाना समयना आचरणवु नाम पथित छे, कही दोष भकुल  
 निर्मल समय प्रागैना आराधक साधुजनने येम कडे के हुं तभने नालु हूँ  
 तमे तो ये छेने के पडेला लाजडाना भार माथे उपाडना डता वुगो, आ  
 करखे तभार माथामा येठ पथु वाण नजर पडतो नथा, तमे तो येवा छे,

प्रवदन्ति यथा—'स्व हिंसका मयावादी स्यं पतिताऽसि, क्षिमन्यस्युपदिशसी'—  
 त्यादि। सूत्रे 'विठफसे' 'पसत्म्' इत्यत्र आर्पत्वाद्कञ्चनम्। उपसहरभाह—'त  
 मेहाधी' इत्यादि, तद=तस्मात् कारणात् मेधाधी=साधुमयादाय्यवस्थिता मुनिः  
 धर्म=भुतचारिप्रभृत्सर्वं जानीयात्=सम्यग् भावयत्, न तु धर्मात्पथस्त्वितो मवेतामू०८।  
 ऐसे अधिष्ठमान दोषोंसे उसे तर्जित-तिरस्कृत करना; जैसे—तुम हिंसक  
 हो, सृपावादी हो, स्वयं पतित हो, वृमरोंके लिये क्या उपदेश देते हो?  
 इत्यादि। उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'तं मेहाधी' इत्यादि।  
 इसलिये साधुमयादानें व्यवस्थित मेधाधी मुनि भुतचारिप्ररूप धर्मकी  
 अच्छी तरहसे भावना माता रहे—उसे सम्हालतां रहे, धर्मसे कमी  
 भी प्रच्युत न होवे।

भावार्थ—जो एकदूस क्षणिक इस जीवनको सुखित बनानेकी इच्छा  
 से चारित्ररूप धर्मसे च्युत हो जाते हैं, जगतके छोटेसे भी छोटे प्राणी  
 उनकी निंदा और इसी करते हैं। चारित्रप्रभृत् जीवोंका अनन्तानन्त काल  
 एकेन्द्रियादिक जीवोंकी पर्यायमें ही व्यतीत होना है। चारित्र  
 प्रभृत् हो कर भी जो अपनेको अच्छा समझते हैं—अपने भीतर बहुत  
 भुत होनेका जो अभिमान करते हैं—अन्य निर्मल चारित्र आराधक  
 साधुओंके प्रति जो कठोर शब्दोंका प्रयोग करत हैं—उनका तिरस्कार  
 करते हैं—पहिलेके उनके आचरणोंको ले कर जो उन्हें नीचा दिखानेका

त्यादि करने अपने उपदेश आपका आया है, आ प्रकाशना धननु नाम  
 पवित छे अथवा के दोष जेनामा न होय जेवा पज-माया विनाया देखे  
 लयाधी तिरस्कृत करवा; केम के-तमे हिसक छे जेदु गोलनाय छे स्वयं पतित  
 छे इरी जीवने शु उपदेश आपो छे वजेरे उपसहार करवा सूत्रकार कहे छे के-  
 "तमेहाधी इत्यादि! आ भागे साधु-मयादाया अवस्थित मेधाधी मुनि भुतचारि  
 रूप धर्मनी भाव। भावता रहे केने आनगता रहे, धर्मभी कहे पञ्च पाप न हठे.  
 भावाथ—के एकदूस क्षणिक आ लुपनने सुधी गनापवानी धर्मकी  
 चारित्ररूप धर्मकी पाछा हठे छे आवा साधुनी अततमां नाना गेता केनी  
 निद्रा आने हारी करे छे चारित्रप्रभृत् लोकोने अनन्तानन्त काल सुधी केकेन्द्रि  
 यादिक लोकोनी पर्यायमा समय व्यतीत जाय छे चारित्रप्रभृत् अनोने पञ्च के  
 पोताने जारा उनके छे पोतानी अरर बहुभुत कोषानुं अधिमान करे छे  
 जीव निमंण चारित्र अततमां साधु तरे ७ कोर शब्दोने प्रयोग करे छे-  
 तेने तिरस्कार करे छे पहिलेका तेना आचरणोने दाखवे आधी तने नीचा

‘अहमस्मीति’ अहमेव बहुश्रुतोऽस्मीति मत्नेक प्रकृत्यन्तस्ने व्युत्कर्षयेयुः=सं स्वमात्मान प्रशसन्ति, यथा—यदाचार्यो जानाति तन्मया प्रागेव ज्ञानमित्यादि । किञ्च—उदासीनान्=उपशान्तरूपायान् स्पष्टितद्वितकथनमवृत्तान्ऽन्यानपि परुष वदन्ति=आक्षिपति । तदेव दर्शयति—पलितमित्यादि, पलित=प्राक्तन दीक्षाग्रहणात्प्राकालिकचरित काण्ठभारवनादिक प्रकथयेयुः=प्रवदन्ति—‘पूर्वं तृणकाण्ठभारनाहनादिभिर्वृष्टभिरसि तव नैकोऽपि केशो द्रष्टिगोचरीमति, एवभूतस्तु क्रिमिदानीमुपदेष्टु प्रवृत्तोऽसि’ इत्यादि । अथवा अतथैः=असद्विद्विषैः प्रकथयेयुः=परुषं है । “मै ही बहुश्रुत हूँ”—इस प्रकार ये हरणकसे अपनी आडलावा किया करते हैं । उसमें ये कभी २ यह भी कह दिया करते हैं कि जो आचार्य जानते हैं वह तो मैं पहिलेसे ही जानता था—आदि । तथा—जिन की कथायें उपशान्त हो चुकी हैं, आत्महितसे भ्रष्ट बने हुए मनुष्योंको जो आत्महितके उपदेश करनेमें प्रवृत्त हैं ऐसे अन्य साधुजनोका भी ये तिरस्कार करते हैं—उनके प्रति भी ये कठोर वचनोका प्रयोग करते हैं । इसी बातको सूत्रकार “पलित प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं । दीक्षा ग्रहण करनेके पहिलेके समयके आचरणका नाम पलित है । यदि कोई बकुश निर्मल समय मार्गके आराधक साधुजनसे ऐसा कहे कि हम तुम्हें जानते हैं, तुम वै ही हो जो पहिले काण्ठका भार माथे पर ढोया करते थे । देखो, यही कारण है कि पहिले तृणकाण्ठके भारों को ढोते ढोते तुम्हारे माथे—शिरपर एक बाल भी नजर नहीं आ रहा है, तुम ऐसे हो; अब इस समय क्या हमें उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त हो?—इस प्रकारके कथनका नाम पलित कथन है । अथवा जो दोष उसमें न ही

छे “हुं न बहुश्रुत हूँ” आ प्रकारथी ते इरेडनां सामे पोतानी अडध डाकये रामे छे आभा ते कोध वभते ऐवु पणु कडे छे के आचार्य ने नाले छे आ तो हुं पडेवेथी न नालु हूँ वि

तथा—जेनी कथाय उपशान्त थछ शूकी छे, आत्महितथी भ्रष्ट भनेवा माणुसेने ने आत्महितने उपदेश आपवामा प्रवृत्त छे ऐवा अन्य साधुजनोना पणु ते तिरस्कार करे छे ऐना तरङ्ग कठोर वचनोना प्रयोग करे छे आ बातने सूत्रकार “पलितं प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्राशयी प्रकट करे छे दीक्षा लीधा पडेवाना समयना आचरणतु नाम पलित छे, कही जोध अकुश निर्मल समय मार्गना आराधक साधुजनने ऐम कडे के हुं तमने नालु हूँ तमे तो ऐ छेने के पडेवा डाकडाना भारा माथे उपाउता डता वुयो, आ डारणे तमार माथामा ऐक पणु बाण नजर पडतो नथी, तमे तो ऐवा छे,

प्रसिद्धोऽसि, तथा भवर्माथी=भवर्माभिलाषी असि। किञ्च-पोरः=दुःस्वयः कर्तुम-  
 शक्य, धर्मः=साधनामाधारः उदीरितः=तीर्थङ्करैः कथित इत्यन्वयार्थं अनाश्रया-  
 तीर्थङ्कराणां हिर्षी सन् तं=तीर्थङ्करोक्त धर्मम् उपेक्षस=परित्यजतीत्यर्थः। आर्य  
 त्वात्सुभे प्रथमपुरुषनिर्देशः। एषः=एवंविधस्त्वाहो जनः विषय्या=कामभोगम्  
 मूर्च्छितः, यत्पय विर्दः=पद्मजीवनिकायोपमदनपरायणः व्याख्यातः=तीर्थङ्करैः  
 कथितः। तस्मात् इति प्रथमि= 'त्व मेधावी भूत्वा धर्म आनीया ' इति पूर्वोक्तं,  
 तथा अस्वमां च कथयामि ॥ सू० ९ ॥

से उन्हें मरवाते हो, तथा उन्हें मारनेवालोंकी तुम अनुमोदना करते हो।  
 इसलिये तुम बाल हो-अज्ञरूपसे प्रसिद्ध हो। इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे  
 ही यह स्पष्ट मालूम होता है कि तुम भवर्माभिलाषी पने हुए हो।  
 तीर्थङ्करों ने साधुओंका आधार बहुत कठिनतर फतलाया है-हर एक प्राणी  
 उसे सहसा नहीं पाल सकता है - ऐसा निश्चय कर तुम उनकी भाशा  
 के बहिर्भर्ता मत बनो। यदि ऐसा करते हो तो निश्चय है कि तुम उनके  
 धर्मकी अवहेलना करते हो-उपेक्षा करते हो। तीर्थङ्करोंका यही आदेश  
 है कि जो तुम्हारे जैसे मनुष्य कामभोगोंमें मूर्च्छित पने हुए हैं वे पद्म  
 जीवनिकाय के उपमर्दन करनेमें परायण माने गये हैं। इसलिये मैं  
 कहता हूँ कि तुम मेधावी बन कर धर्मको समझो। तथा और भी जो  
 कुछ कहता हूँ उसे सुनो। साधुको कृत, कारित और अनुमोदना एवं  
 मन बचन और कायसे हिंसादिक पापोंका सर्वथा त्यागी होना चाहिये  
 ऐसा तीर्थङ्कर प्रवृत्तियोंका मुख्य आदेश है यद्यपि-तुम स्वयं हिंसा नहीं

तथा तेने भास्वावाणाओनी अनुमोदना करे छे, आ माटे तमे जाण छे-अज्ञ  
 रूपकी प्रसिद्ध छे। आ प्रकृती प्रवृत्तिमी जे स्पष्ट मालूम बाब छे के तमे  
 अधर्म-अभिलाषी बन्या छे। तीर्थङ्करोंने साधुओंने आधार बहुत अ कठिन  
 बताओ छे। इरेक प्राणी तेने सहसा पाणी शकते नहीं तेवे निश्चय करी  
 तमे जेमनी आसातु उद्वेगन करनार न जने। जे तमे जेवु वर्दन रापता  
 हो वे जे निश्चय छे के तमे तेन धमनी अपहेलना करे छे-उपेक्षा करे  
 छे। तीर्थङ्करोंने जे आदेश छे के जे तमाय जेवा मनुष्य कामभोगेमा मूर्च्छित  
 जनेवा छे तेज्जे पद्मजीवनिकायने उपमदन करवामा परायण मानवामा आवेत छे।  
 आ माटे हूँ हूँ हूँ के तमे मेधावी जनी धर्मने समझे, जने जीवु पख जे  
 हूँ हूँ ते सांजवे। साधुजे कर्तुं, करवतुं जने अनुमोदन आपतुं जने मन  
 बचन जने कायाधी हिंसादिक पापेने उदा त्याग करवे जेछेज्जे; जेने तीर्थङ्कर  
 प्रवृत्ते मुख्य आदेश छे। इदम जे पीते हिंसा न करता छे; परंतु जीव

ચારિત્રવિન્યુતં વાલમાચાર્યાદિરેવં શિક્ષયેદિત્યાહ—‘ અહમ્મટ્ટી ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—અહમ્મટ્ટી તુમંસિ ણામ વાલે, આરંભટ્ટી અણુવચમાણે ‘હણ પાણે’ ઘાયમાણે, હણઓ વાવિ સમણુજાણમાણે, ‘ઘોરે ધમ્મે ઉદીરિણ’ ઉવેહહ ણં અણાણાણ્ણસ વિસણ્ણે વિતદ્દે વિયાહિણ્ણ-ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—અધર્માર્થી ત્વમસિ નામ વાલે, આરમ્માર્થી અનુવદન્ ‘પ્રાણાન્-જહિ’ ઘાતયન્, ઘનતશ્ચાપિ સમનુજાનાનઃ, ઘોરઃ ધર્મઃ ઉદીરિતઃ, ઉપેક્ષસે તમ્ અનાજ્ઞાયામ્ ઇવ વિપણ્ણઃ વિતર્દઃ વ્યાખ્યાતઃ—इति ब्रवीमि ॥ મૂ. ૧ ॥

ટીકા—હે શિષ્ય ! યતસ્ત્વમ્ આરમ્માર્થી=પહ્લુજીવનિકાયોપમર્દનપટ્ટતઃ ‘પ્રાણાન્=પાણિનઃ જહિ=મારય’ इति अनुवदन्=पुनः पुनर्धुवन्, तथा अपरैः घातयन्, ઘનતશ્ચાપિ સમનુજાનાનઃ=અનુમોદયન્ અસિ, તસ્માત્ચ વાલો નામ=અજ્ઞતયા

પ્રયત્ન કરતે હૈં, અવિદ્યમાન દોષોંસે જો ઉઠ્ઠેં દૂષિત પ્રકટ કરતે હૈં એસે જીવ સાધુમર્યાદાસે બાહ્ય હૈં । ઇનમેં પ્રથમ નંબરકી ચાલતાકે સાથ ૨ દ્વિતીય નંબરકી ચાલતા રહી હોતી હૈ । ઇસલિયે મુમુક્ષુ સાધુકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ કમી ખી કિસી અન્ય સાધુકે પ્રતિ પરુપ ( કઠિન ) શબ્દોંકા પ્રયોગ ન કરે, તમી જાકર શ્રુતચારિત્રરુપ ધર્મકા વહ સરક્ષણ ઓર પાલન કર સકતા હૈ ॥ સૂ. ૮ ॥

ચારિત્રસે ધ્રુષ્ટ હુણ વાલજીવોંકો આચાર્ય કિસ પ્રકારસે સવોધે ? ઇસ ચાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ અહમ્મટ્ટી ” इत्यादि ।

વાલ શિષ્યકો સવોધન કરતે હુણ આચાર્ય કહ રહે હૈં કિ હૈ શિષ્યો ! તુમ પહ્લુજીવનિકાયોં કે ઉપમર્દનરુપ આરમ્મમેં પ્રવૃત્ત હો, ક્યોં કિ તુમ “ પ્રાણિયોંકો મારો ” ઇસ પ્રકાર વાર ૨ કહતે હો, ઓર દૂસરોં

દેખાડવાને પ્રયત્ન કરે છે પગ-માથા વિનાના દોષોથી જે તેને દોષિત પ્રગટ કરે છે, એવા છતાં સાધુ મર્યાદાથી બાહ્ય છે તેમા પહેલા નંબરની બાલતાની સાથે સાથે બીજા નંબરની બાલતા (અજ્ઞાનતા) રહી હોય છે માટે મુમુક્ષુ સાધુનુ કર્તવ્ય છે કે કોઈ પણ વખતે બીજા સાધુ પ્રત્યે કકળુ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરે, તો જ તે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનુ સરક્ષણ અને પાલન કરી શકે છે (સૂ. ૮) ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બનેલા બાલણ્યોને આચાર્ય કયા પ્રકારે સંબોધે ? આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “ અહમ્મટ્ટી ” इत्यादि

બાળશિષ્યને સંબોધન કરીને આચાર્ય કહે છે કે, હે શિષ્યો ! તમે પરુષ વનિકાચોના ઉપમર્દનરૂપ આરભમા પ્રવૃત્ત છે, કેમ કે તમે—“ પ્રાણીઓને મારો ” આ પ્રકારે વાર વાર કહેા છો અને બીજાઓથી તેનો ઘાત કરાવો છો

प्रसिद्धोऽसि, तथा अघर्माशी=अघर्माभिलाषी असि। किञ्च-घोरः=दुःस्वमयः कर्तुम  
 शक्यः, धर्मं=साधुनामाधार उदीरित=तीर्थङ्करै कथित इत्यनपार्थ भनाङ्गार्पा=  
 तीर्थङ्कराणां बहिर्धर्मो सन् तं=तीर्थङ्करोक्त धर्मम् उपेक्षस=परित्यजसीत्यर्थः। भार्य  
 स्वास्थुमे प्रथमपुरुषनिर्देशः। एषः=एवंविधस्त्वाहश्चो जनः विपण्णः=काममोगम्  
 मूर्च्छितः, अतएव विहर्षः=पद्मजीवनिकायोपमर्दनपरायणः व्याख्यात=तीर्थङ्करैः  
 कथित। तस्मात् इति प्रथीमि=‘स्वं मघावी भूत्वा धर्मं जानीयाः’ इति पूर्वोक्तं,  
 तथा वक्ष्यमाणं च कथयामि ॥ सू० ९ ॥

से उन्हें मरघाते हो, तथा उन्हें मारनेवालोंकी तुम अनुमोदना करते हो।  
 इसलिये तुम घाल हो-अज्ञरूपसे प्रसिद्ध हो। इस प्रकारकी प्रवृत्तिये  
 ही यह स्पष्ट मास्त्रूम होता है कि तुम अघर्माभिलाषी बने हुए हो।  
 तीर्थङ्करो ने साधुओंका आधार बहुत कठिनतर पतलाया है-हर एक प्राणी  
 उसे सहसा नहीं पाल सकता है - ऐसा निश्चय कर तुम उनकी भाक्षा  
 के बहिर्धर्मों मत बनो। यदि ऐसा करते हो तो निश्चय है कि तुम उनके  
 धर्मकी अपेक्षा करते हो-उपेक्षा करते हो। तीर्थङ्करोका यही आदेश  
 है कि जो तुम्हारे जैसे मनुष्य काममोगोमें मूर्च्छित बने हुए हैं वे पद्म  
 जीवनिकाय के उपमर्दन करनेमें परायण माने गये हैं। इसलिये मैं  
 कहता हूँ कि तुम मेघावी बन कर धर्मको समझो। तथा और भी जो  
 कुछ कहता हूँ उसे सुनो। साधुको कृत, कारित और अनुमोदना एवं  
 मन बचन और कायसे हिंसादिक पापोंका सर्वथा त्यागी होना चाहिये  
 ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुओंका मुख्य आदेश है यद्यपि-तुम स्वयं हिंसा नहीं

तथा तेने भास्वाबाणाओनी अनुमोदना करे छे, आ भाटे तमे आण छे-अज्ञ  
 रूपधी प्रसिद्ध छे। आ प्रकारनां प्रवृत्तिधी के स्पष्ट मास्त्रूम थाव छे के तमे  
 अघर्म-अभिलाषी बन-आ छे। तीर्थङ्करैने साधुओने आ-वार धर्मो के कठिन  
 अताओये छे इरेक प्राणी तेने सहसा पाणी सकये नथी, तेवे निश्चय करी  
 तमे जेमनी आसाधु उद्वेगन करुएर न बने। के तमे केवुं पान रापवा  
 हो तो के निश्चय छे के तमे तेना धर्मनी अपेक्षा करे छे-उपेक्षा करे  
 छे। तीर्थङ्करैने के आदेश छे के के तमास केवा मनुष्य कामलोकेमां मूर्च्छित  
 बनेवा छे तेजे पद्मजीवनिकायने उपमर्दन करवामां परायण मानवामा आवेद छे।  
 आ भाटे कुं कर्तुं छुं के तमे मेघावी बनी धर्मने समझे, बने जीवुं पवुं के  
 कर्तुं छुं ते सांभवे। साधुके कर्तुं करववुं बने अनुमोदन आपवुं बने मन  
 बचन बने कायाधी हिंसादिक पापोंने सदा त्याग करवे जेछे, जेवे तीर्थङ्कर  
 प्रभुने मुख्य आदेश छे। कदाप तमे पीते हिंसा न करवा छे; परंतु जीव



इति ब्रवीमिति पूर्वसूत्रोपात्तं वक्ष्यमाणवचनमाह ' किमणेण भो ' इत्यादि ।

मूलम्—किमणेण भो ! जणेण करिस्सामिति मन्नमाणा एवं एगे विइत्ता मायरं पियरं हिच्चा णायओ य परिग्गहं वीरायमाणा समुट्ठाए अविहिंसा सुव्वया दंता, पस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे, वसट्ठाकायरा जणा लूसणा भवंति । सू० १० ।

छाया—किमनेन भो ! जनेन करिष्यामीति मन्यमाना एवमेके विदित्वा मातरं पितरं हित्वा ज्ञातीन् च परिग्रह वीरायमाणाः समुत्थाय अविहिंसाः सुव्रता दान्ताः, पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपततः, वशार्चाः कातरा जनाः लूपका भवन्ति ॥ सू० १० ॥

टीका—भो ! = हे आत्मन् ! अनेन = एतद्भवप्राप्तेन जनेन = मातापित्रादि-स्वजनेन स्वार्थपरेण वस्तुतोऽनर्थरूपेण किं करिष्यामि = स्वकर्मविपाकावसरे नायं

करते हो, परंतु फिर भी दूसरों को उस ओर लगाते हो, एव उस काम के करनेवालोंकी अनुमोदना भी करते हो । अतः तुम्हारी इस प्रवृत्तिसे यही निश्चित होता है कि तुम अभी तक भी साधुमर्यादासे अनभिज्ञ बने हुए हो; इसलिये इस अज्ञताका त्याग करो । तुम तो समझदार हो, प्रयत्न करो, ता कि मुनिधर्मका वास्तविक स्वरूप समझ सको । आरभार्थी बन कर अधर्माभिलाषी मत बनो ॥ सू० ९ ॥

“इति ब्रवीमि” इस प्रकार जो ९ में सूत्रमें कहा है उसीके विषय को सूत्रकार कहते हैं—“ किमणेण भो ” इत्यादि ।

जो पहिले संसारका परित्याग कर विरक्त साधु बन जाते हैं और पीछे उससे पतित बन गृहस्थ हो जाते हैं, उनके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं कि ये प्राणी प्रथम ऐसा विचार करते हैं “ हे आत्मन् ! इस

એને તે તરફ લગાડો છે, અને તેવા કામ કરવાવાળાઓની અતુભોદના પશુ કરો છે, માટે તમારી આ પ્રવૃત્તિથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે તમે હજી સુધી સાધુમર્યાદાથી અનભિજ્ઞ છે. માટે આ અજ્ઞતાનો ત્યાગ કરો તમે સમજદાર છે, પ્રયત્ન કરો, એથી મુનિધર્મનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ સમજી શકો. આરભાર્થી બની અધર્માભિલાષી ન બનો. (સૂ. ૯)

“इति ब्रवीमि” આ પ્રકારે એ તબમા સૂત્રમાં કહેલ છે એ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—“ किमणेण भो ” ઇત્યાદિ

એ પહેલાં સંસારનો પરિત્યાગ કરી વિરક્ત સાધુ બની જાય છે, અને પાછળથી એનાથી પતિત થઈ ગૃહસ્થ થઈ જાય છે, એના વિષયમાં સૂત્રકાર કહે છે—એ પ્રાણી પ્રથમ એવો વિચાર કરે છે “ હે આત્મન ! આ ભવમાં પ્રાપ્ત એવા

जनो मम शरणाय वा प्राणाय वा मन्विष्यतीति मन्यमाना एके क्वचन धर्मकथादि  
 भ्रमणेन निवृत्तसंसारस्वभावाः एषम्=एतत्स्वकारक संसारस्वरूपं विदित्वा=सर्वधा-  
 नर्थमूलं विज्ञाय मातरं पितरम्, उपलक्ष्यतया पुत्रकृत्स्नमिन्द्रादिकमपि, तथा ध्यातीन्  
 =भान्भवान् परिग्रहं=घनधान्यहिरण्यसुवर्णहर्म्यादिकं च हित्वा=वैराग्यमाचनया वृण  
 क्तपरित्यज्य वीरायमाथाः=धारित्रग्रहणे सिद्धयस्प्रवर्तमानाः समुत्थाय=ममज्यां पृ  
 षीत्वा अविहिंसाः=पट्टकायोपमर्दननिष्ठा, अतएव मुक्ताः=प्राणातिपातविरमणादि  
 महाप्रतपारिभाः, दान्ताः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनप्रवृत्ता भवन्ति । तान् उत्पतितान्=  
 प्रवृत्तमोहोदयेन समयमस्थानात् उत्सृज्य निर्गतान् प्रतिपत्तः=कर्मगतवैचिष्यात्का

भवमें प्राप्त स्वार्थमें तत्पर एवं वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता  
 आदि स्वजनसे मैं क्या करूँगा ! ये मेरे क्या कर्म आयेंगे ? जब मैं अपन  
 शुभ और अशुभ कर्मके फलका भोक्ता बनूँगा तब य मुझे उसमें सहा  
 एक नहीं हो सकेंगे, न ये मुझे शरणमूल होंगे, और न ये मेरे रक्षक  
 ही होंगे" ऐसे अप्यवसायसे प्रेरित हो कई एक जीव धार्मिक कथाओं  
 क भ्रमणसे संसारका स्वरूप जानकर और माता पिता तथा उपलक्षण  
 से-पुत्र, कलत्र एवं मित्रादिकोंको, तथा याचवों, घन, धान्य, हिरण्य,  
 सुवर्ण और मकान आदिको वैराग्यभावनासे वासित अन्तःकरण बन,  
 वृणकी तरह छोड़ कर, चारित्रके ग्रहणमें सिद्धकी तरह प्रवृत्तिशील  
 बनते हुए दीक्षा धारण करते हैं, और पट्टकायके जीवोंकी हिंसासे दूर  
 रहते हुए प्राणातिपातविरमण आदि पंच महाव्रतोंका आराधन करते  
 हुए इन्द्रिय और मनका निग्रह करनेमें लक्ष्मीन रहते हैं। इतनी अवस्था  
 तक भी पहुँचे हुए जीवोंको मोहका प्रपल उदयका शक्वोरा फहाँ से कहाँ

स्वार्थमा तत्पर अने वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता अत्यादि स्वजन  
 आदि कुं शुभं ? आ तोजे भास क्या कामयां आववाना ? अतरे कुं भास शुभ अने  
 अशुभ कर्मना होनेने बोधता लनीश त्तारे जेभां जे मने सहाय करी शकवाना  
 नहीं न जे मने आश्रय आपरो, न ते भासं रक्षक लनरो अथा विना  
 रही प्रेशांने केळ कोळ एव धार्मिक कथाजोना अवलुधी संसारु स्वहृप  
 लक्ष्मी, माता-पिता, श्री पुत्र द्रुंल तेमज मित्रादिहो तथा घन, धान्य हीश,  
 भाती, सुवर्ण अने मकान अत्यादिने वैलन्य आवनधी छेरी, चारित्रने  
 अकल्य कल्याणं मित्रनी माहक प्रवृत्तिशील लनी दीक्षा धारण करे छे अने पट्टा  
 कथा लवोनी विनाधी इर रही प्राणातिपातविरमण वनेरे पाप नद्वानतोनी  
 आराधना करवा अन्त्रिय अने मनने निवृत्त कल्याणमा तत्पर रहे छे आटली  
 अवस्था सुधी पदोधिहा एवने पद्य भांजना प्रवृत्त उदयने कोकल अपारो कथाधी

रागासदृशगृहस्थावासे पुनर्निपततः, अतएव दीनान्=शृगालवन्नीचभावमगतान्  
संसारदुःखव्याकुलान् पश्य=हे शिष्य ! अवलोकय । यतः वशात्ताः=कषायवश-  
चित्वादाचरौद्रध्यानयुक्ताः, कातराः=शृगालसादृश्यं प्राप्य परीषहोपसर्गभीरवो ये  
ले जाकर पटक देता है—इसके लिये सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान्  
प्रतिपततः” इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं—

वे इसमें बतलाते हैं कि प्रवल मोहके उदयसे सयमस्थानसे उछल-  
कर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुल्य  
गृहस्थावासमें जाकर ठहरते हैं और वहाँ शृगालकी तरह नीच मनो-  
वृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं ।  
शिष्यको सम्बोधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो !  
क्या से क्या वे बन जाते हैं । इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई  
कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रवलता जाग्रत  
बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार “वशात्ताः  
कातराः जनाः लूपका भवन्ति” इस पंक्तिसे देते हैं । वे कहते  
हैं—इसमें प्रवल अपराध कषायवशवर्तिताका है । इतना सब कुछ करने  
पर भी वे जो प्रवल मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका  
प्रधान कारण उनका कषायोंसे युक्त होना है । कषायोंसे युक्त होनेके  
कारण ही जीव आर्त्त एव रौद्रध्यानवाले होते हैं । जिस प्रकार शृगाल  
जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार  
वे भी परीषह और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

ठपाडी क्या पछाडी दे छे ओ अगे सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपतत”  
आ पंक्तिद्वारा प्रकट करे छे तेओ आमा बतावे छे के प्रमण मोहना उदयथी  
सयमस्थानथी उछणी कर्मनी विचित्रताथी एव कारागारतुल्य गृहस्थवासमा नर  
पडे छे त्या शृगालनी माइक नीच मनोवृत्तिथी युक्त अनि सांसारिक दुःखोथी  
व्याकुण थतो रडे छे शिष्यने सम्बोधन करता सूत्रकार कडे छे के छे शिष्ये ।  
तमे तुओ, घडीमा शु थो शु धर्य नथ छे आ प्रकारना ओना परिवर्तनमा कर्  
ओनी छुपी वस्तु काम करे छे के ओथी मोहना उदयनी प्रवलता नथत थर्य  
ओनी सर्व संहार करे छे ? आनेः उत्तर सूत्रकार वशात्ता कातरा जना  
लूपका भवन्ति” आ पंक्तिथी आपे छे तेओ कडे छे—आमा प्रमण अपराध  
कषायवशवशवर्तितानो छे आतलु नरवा छता पणु मोहना प्रमण उदय ओने पतित  
पनावी दे छे. आनु प्रधान कारण ओनु कषायोथी युक्त थनु छे कषायोथी युक्त  
थवाना कारणे ए एव आर्त्त-रौद्र ध्यानवायो अनि नथ छे. के रीते शृगाल

जनाः सन्ति ते सूत्रकाः=व्रतविधिसंस्कारा मन्ति । अष्टादशश्रीलाङ्गसहस्राणि पारयित्वा  
कः पारयिष्यतीत्यवधार्य द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं च पिहाय सर्वथा पट्कायविराधका  
मन्तीति भावः ॥ सू० १० ॥

पथास्तुतानां लोकप्रवेक्षणा भवतीत्याह—‘ अहमेगेसि ’ इत्यादि ।

मूढम्—अहमेगेसिं सिलोप पाषण्डं भवइ, से समणविठ्ठभते  
समणविठ्ठभते ॥ सू० ११ ॥

छाया—अयेकेपां श्लोकं पापको भवति, स भ्रमणविभ्रान्तः भ्रमणविभ्रान्तः ।

टीका—अयं=द्रव्यभावलिङ्गस्यागानन्तरम् एकेपां=ये मन्त्रप्रतिज्ञाः परित्यक्त  
समयास्तेषां मध्य कश्चित्समज्यात्यागसमनन्तरमव निपन्ते, केचित्त्वपकाधेन, यथा  
कृषीबलमुनिर्मगवदमिच्छुलं रजोहरण-सदोरकमुसबस्त्रिका-यज्ञ-पाषाणि प्रक्षिप्य समपक्ष

महाप्रत-भाराधन-रूप स्थानसे भाग लूठे होते हैं—अर्थात् प्रतोंके लोप  
करनवाले होते हैं । द्रव्यलिङ्ग तथा भावलिङ्गको तज कर ये सर्वथा पट्  
कायके जीवोंके विराधक हो जाते हैं ॥ सू० १० ॥

पछाकड़ोंकी लोकमें अथलेहना होती है—इस पातको प्रदर्शित  
करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“ अहमेगेसि ” इत्यादि ।

द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्गके त्यागके बाद अपनी प्रतिज्ञाभङ्ग करनवाले  
तथा संप्रमका परित्याग करनेवाले उन जीवोंमें से किन्हीं २ जीवोंकी  
प्रव्रज्या त्यागके अनन्तर समयमें ही मृत्यु हो जाती है, तथा किन्हीं २  
की कुछ समय पश्चात्, जैसे कृषीबल मुनिकी कि जिसने भगवान् के  
समक्ष ही रजोहरण, सदोरक मुसबस्त्रिका एवं यज्ञ और पाषाणोंका परि  
त्याग कर दिया था, समबसरणकी भूमिसे बाहर निकलते समय ही

( सियाण ) अत्र पठ्यते साधनत्वा योताना स्थानधी जाये छे जे अ रीते  
जे पक्ष परित्यक्त अने उपसन्न भावतां जेनाथी लक्षणीत जनी योताना  
महाप्रतानी आसथानाना स्थानधी जायी लूटे छे अर्थात् महाप्रताने जायी  
जाये छे द्रव्यलिङ्ग तथा भावलिङ्गने छेपीने पट्कायना लयेना जे सदा  
विराधक जनी लय छे ( सू १ )

पछाकड़जोनी लोकमें भरकरी भाष छे आ वातने प्रदर्शित कएवा सूत्रकार  
कहे छे अहमेगेसि इत्यादि

द्रव्यलिङ्ग अने भावलिङ्गना त्याग जाइ योतानी प्रतिज्ञा का अ कएवावाण्य  
अने सवध परित्याग कएवावाण्य ते लोभाधी कोष काँ छेपीने प्रव्रज्या  
त्यागना जाइना समयमा अ मृत्यु कइ लय छे तथा कोष कोषीनी यो अ समय  
माइ जेपी रीत कृषीबल मुनिउ के जेवे लक्षणानी समय अ स्नेहस्य सदोरक

रागारसदृशगृहस्थावासे पुनर्निपततः, अतएव दीनान्-शृगालवन्नीचभायप्रगतान्  
संसारदुःखव्याकुलान् पश्य-हे शिष्य ! अवलोकय । यतः वशात्ताः-कषायशव-  
त्तिस्वादात्तैरौद्रध्यानयुक्ताः, कातराः-शृगालसादृश्यं प्राप्य परीषहोपसर्गभीरवो ये  
ले जाकर पटक देता है-इसके लिये सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान्  
प्रतिपततः” इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं—

वे इसमें बतलाते हैं कि प्रबल मोहके उदयसे संयमस्थानसे उछल-  
कर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुल्य  
गृहस्थावासमें जाकर ठहरते हैं और वहां शृगालकी तरह नीच मनो-  
वृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं।  
शिष्यको सम्योधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो !  
क्या से क्या वे बन जाते हैं। इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई  
कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रबलता जाग्रत  
बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार “वशात्ताः  
कातराः जनाः लूपका भवन्ति” इस पंक्तिसे देते हैं। वे कहते  
हैं-इसमें प्रबल अपराध कषायवशावर्तिताका है। इतना सब कुछ करने  
पर भी वे जो प्रबल मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका  
प्रधान कारण उनका कषायोंसे युक्त होना है। कषायोंसे युक्त होनेके  
कारण ही जीव आर्त्त एव रौद्रध्यानवाले होते हैं। जिस प्रकार शृगाल  
जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार  
वे भी परीषह और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

ठपाडी क्या पछाडी दे छे ओ ओ सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपतत.”  
आ पंक्तिद्वारा प्रकट करे छे तेओ आभा अतावे छे के प्रमण मोडना उदयधी  
सयमस्थानधी उछणी कर्मनी विचित्रताधी एव कारागारतुल्य गृहस्थावासमा लथ  
पडे छे त्या शृगालनी माइक नीच मनोवृत्तिधी युक्त अनी सांसारिक दुःखोंधी  
व्याकुल यतो रहे छे शिष्यने सम्योधन करता सूत्रकार कहे छे के हे शिष्यो !  
तये बुओ, धर्मीमा शु थी शु थर् नय छे आ प्रकारना ओना परिवर्तनमा कर्  
ओनी छुपी वस्तु काम करे छे के ओधी मोडना उदयनी प्रबलता नअत थर्  
ओनो सर्व संहार करे छे ? आनो उत्तर सूत्रकार वशात्ताः कातरा जना  
लूपका भवन्ति” आ पंक्तिधी आपे छे तेओ कहे छे-आभा प्रमण अपराध  
कषायवशावर्तिताने छे आठवु करवा छता पबु मोडना प्रमण उदय ओने पतित  
बनावी दे छे. आनु प्रधान कारण ओनु कषायोंधी युक्त थवु छे कषायोंधी युक्त  
भवाना कारणे एव आर्त्त-रौद्र ध्यानवाणे अनी नय छे के रीते शृगाल

इति द्विरूपतेनेदमुक्तं भवति—लोके सर्वत्र प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्वल्पं  
प्रतिभनं संयमभ्रणानां निन्दा पसरतीति ॥ सू० ११ ॥

किञ्च—‘पासहेगे’ इत्यादि ।

मूळम्—पासहेगे समझागपहिं असमन्नागप, णममाणेहिं अण  
ममाणे, विरपहिं अविरप, दविपहिं अदविप। अभिसमेच्चा पडिप  
मेहावी णिट्टियट्टे वीरे आगमेण स्या परकमज्जासि—त्तियेमि ॥ १२ ॥

छाया—पश्यत एके समन्वागतैः असमन्वागताः, नमस्त्रिरममन्तः, वि-  
रतरविरताः, द्रविकैरद्रविकाः । अभिसमेत्य पश्चितः मेघाधी निष्ठितार्थः वीरा  
भागमेन सवा पराक्रमवाः, इति व्रथीमि ॥ मू० १२ ॥

टीका—हे शिष्याः ! पश्यत ययं कर्मप्रमाणम्, एके केचन इतमाग्याः समन्वा  
गतैः=उग्रविहारिभिः सह पसन्तोऽपि असमन्वागताः=शीतलविहारिणो भवन्ति ।  
तथा—नमस्त्रिः=संयमाराधकतया विनयनञ्चैः सह स्थिता अपि अनमन्तः=अविनीता  
अशुद्धारिणः, तथा विरतैः=विरतिमग्निः सह निपसन्तोऽपि अविरताः=विरतिर

लिये अमणविभ्रान्त है । मूल सूत्रमें यह पद दो बार कहा गया है; सो  
उसका यह मतलब है—कि लोकमें सर्व जगह—हरएक गाँवमें, हरएक  
नगरमें, हरएक स्थानमें और प्रत्येक मनुष्यमें संयमसे छप्ट हुए मनुष्यों  
की निन्दा होती है ॥ सू० ११ ॥

तथा—“पासहेगे” इत्यादि ।

शिष्योंको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो !  
तुम लोग कर्मोंके प्रमाणको तो देखो, विचारो हतभाग्य कोई साधुजन  
उग्र विहार करनेवालोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं,  
संयमक धाराधन करनेवाले होनेसे विनीत साधुओंके साथ एक जगह  
बसते हुए भी उद्धतस्वभावक अहंकारी होते हैं, विरतिवालोंके साथ

विभ्रान्त थे भूज सूत्रमां आ पठ वे वा ३ डेवाभां आवेत्तुं तेने आ  
मतललुं उं डे वीडोभां सर्वं ७७७७ इरेक आभमा, इरेक नगरमां, इरेक स्थानमां  
अने प्रत्येक मनुष्यमां संयमशीं अष्ट बयेत्ता मनुष्यनी निदा थायुं उं (सू ११)

तथा—पासहेगे” इत्यादि ।

शिष्योने संबोधिते सूत्रकार उहे उं डे डे शिष्यो । तमे उमीना  
प्रभाव तो तुमो जीवाशा उतवाजी डेडं साधुजन उग्रविहार इत्यावावाओनी  
साथे रहेवा छातां पख शीतलविहारी अने उं संयमनु आसधन इत्यावावा  
डोवावी विनीत साधुजेली साथे रहेवा छातां पख उद्धतस्वभावना तथा अ  
कारी कीप उं विरतिवावाओनी साथे उमीश स्थिति इत्या छातां पख अविभ्रति-

रणाद् वद्विर्निर्गतस्तदानीमेव मृतः, यथा वा ततोऽधिकेन कालेन कण्डरीकः, केचिच्च ततोऽधिकमपि जीवन्ति, तेषां श्लोकः=चारित्रग्रहणतत्परिपालनजनितयशःशीर्षि-  
रूपः पापकः=स्वपक्षपरपक्षे सर्वत्र भूमण्डले चाश्लोको भवति—भग्नोन्माहाना भग्न-  
पराक्रमाणा भग्नमहाव्रताना लोके सर्वत्र निन्दा भवति । यथा—

“ परलोकविरुद्धानि, कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत् ।

आत्मानं यो न संधत्ते, सोऽन्यस्मै स्यात्कथं हितः ” ॥ १ ॥ उति ।

निन्दामेव दर्शयति—‘सः’ इत्यादि, सः=असौ श्रमणविभ्रान्तः=श्रमणः  
पश्चाद्विभ्रान्तः, श्रमणो भूत्वा पश्चाद्भ्रष्ट इति । अत्र मूले ‘श्रमणविभ्रान्तः’

मृत्यु हो गई थी, कण्डरीककी चारित्रत्यागके कुछ काल बाद ही मृत्यु  
हुई थी, कोई मनुष्य चारित्रत्यागके बाद भी जीवित रहते हैं । ऐसे जीवों  
की स्वपक्ष और परपक्षमे तथा सर्वत्र अपकीर्ति फैलती है। लोग कहते हैं  
कि यह भग्न उत्साहवाला है, भग्न पराक्रमवाला है, भग्न महाव्रत-  
वाला है, इस प्रकार लोकमें सब जगह उसकी निन्दा होती है । ठीक ही है—  
लोकमें भग्न उत्साहवालोकी, भग्न पराक्रमवालोकी, भग्न महाव्रतवालोकी  
निन्दा होनी ही चाहिये, क्यों कि—“परलोकविरुद्धानि कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत् ।  
आत्मानं यो न संधत्ते सोऽन्यस्मै स्यात्कथं हितः॥” परलोक विरुद्ध कार्योंको  
करनेवाले व्यक्तिका दूरसे परित्याग कर देना चाहिये । जो स्वयका हित  
नहीं कर सकता है वह दूसरोका कैसे हितकारक हो सकता है । निन्दाका  
प्रकार प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“स श्रमणविभ्रान्तः ”  
यह चारित्रभ्रष्ट श्रमण हो कर पश्चात् विभ्रान्त-भ्रष्ट हुआ है, इस-

भुभवस्त्रिका अने वस्त्र तथा पात्रोना त्याग कर्यो, अने समवसरणुनी भूमिथी गडार नी  
कणता समये न तेनु मृत्यु थयेल्लु कण्डरीकनु चारित्रत्याग बाद थोडा काणे मृत्यु  
थवा पापेल्लु कोड मनुष्य चारित्र त्याग बाद पक्ष लुपित रहे छे जेवा लुपोनी  
स्वपक्ष अने परपक्षमां पक्ष अपकीर्ति सर्वत्र इलाय छे बोडो कडे छे के आ  
उत्साह वगरने छे, पराक्रम वगरने छे, महाव्रतने त्याग करनार छे, आ प्रकारे  
बोडोमा सर्वत्र तेनी निन्दा थाय छे ठीकन छे—बोडोमा उत्साह रक्षितनी,  
पराक्रम रक्षितनी तथा महाव्रतने त्याग करनारनी निन्दा थयी न जेध जे  
केम के—“ परलोकविरुद्धानि, कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत् । आत्मानं यो न संधत्ते  
सोऽन्यस्मै स्यात् कथं हितः॥ ”—परबोडो विरुद्ध कार्योना करनार व्यक्तिने इरथी त्याग  
कर्यो जेध जे जे पोतानु छित नथी करी शकता ते जीवन्त्योनु छित केवी रीते करी  
शके निदानो प्रकार भ्रष्ट करता सूत्रकार कडे छे के “ स श्रमणविभ्रान्त ” छति ।  
आ चारित्रभ्रष्ट साधु जनीने पाछणथी विभ्रान्त-भ्रष्ट थयेल छे, भाटे श्रमण

इति द्विरुभतेनेदमुक्त भवति—सोके सर्वत्र प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्थलं प्रतिजनं संयमभ्रपानां निन्दा मसरतीति ॥ सू० ११ ॥

किञ्च—‘पासहेगे’ इत्यादि ।

मूळम्—पासहेगे समन्नागएहि असमन्नागए, णममाणेहि अण ममाणे, विरएहि अघिरए, दविएहि अदविए। अभिसमेच्चा पडिए मेहावी णिद्वियहे वीरे आगमेण स्या परकमज्जासि—त्तिघेमि ॥ १२ ॥

छाया—पश्यत एके समन्वागतै असमन्वागताः, नमस्त्रिरनमन्तः, चिरतरविरता, द्रविकैरद्रविकाः । अभिसमेत्य पण्डितः मेधावी निष्ठितार्यः वीर आगमेन स्या पराक्रमेयाः, इति व्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—हे शिष्याः ! पश्यत यूयं कर्मप्रमानम्, एके केचन इतभाग्याः समन्वागतैः—उग्रविहारिभिः सह वसन्तोऽपि असमन्वागताः—शीतलविहारिणो भवन्ति । तथा—नमस्त्रिः—संयमारापकृतया विनयनम्रैः सह स्थिता अपि अनमन्तः—अविनीता अङ्कारिणः, तथा चिरतैः—विरतिमद्भिः सह निवसन्तोऽपि अघिरताः—घिरतिर

लिये अमणविघ्नान्त है । मूल सूत्रमें यह पद दो बार कहा गया है; सो उसका यह मतलब है—कि लोकमें सर्व जगह—हरएक गावमें, हरएक नगरमें, हरएक स्थानमें और प्रत्येक मनुष्यमें संयमसे घट्ट हुए मनुष्यों की निन्दा होती है ॥ सू० ११ ॥

तथा—“पासहेगे” इत्यादि ।

शिष्योंको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम लोग कर्मोंके प्रभावको तो देखो, पिपारे इतभाग्य कोई साधुजन उग्र विहार करनेवालोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं, संयमक धाराधन करनेवाले होनेसे विनीत साधुओंके साथ एक जगह बसते हुए भी उद्धतस्वभावके अहंकारी होते हैं, घिरतिवालोंके साथ

विघ्नान्त छे मूल सूत्रमां आ पर ले वार कहेवाभा आवेल छे तेने ज्ञा मतलब छे के दोहोभा सर्व जग्य, हरैक जगभा, हरैक नगरभा, हरैक स्थानभा अने प्रत्येक मनुष्यभा संयमधी अष्ट बयेला मनुष्यनी निदा थाय छे. (सू० ११)

तथा— पासहेगे धियादि.

शिष्योने संबोधिने सूत्रकार कहे छे के हे शिष्यो ! तमे कर्मोना प्रभाव तो तुज्जे. धीआत दतकागी डोड साधुजन उग्रविहार करवावाज्जोनी साथे रहेवा छ्या पर शीतलविहारी अने छे संयमनु आसधन करवावाज्जो दोवाधी विनीत साधुजोनी साथे रहेवा छ्या पर उद्धतरवभावना तथा अहंकारी होम छे. घिरतिवाज्जोनी साथे धमिया स्थिति करवा छ्या पर अघिरति



हिताः, तथा द्रविकैः=संयमाराधकैः सदास्थिता अपि अद्रविकाः=सयमानाराधका एव तिष्ठन्ति । हे शिष्य ! त्व तु अभिसमेत्य=समन्यागतादिमहापुरुषान् संप्राप्य तैः सह निवासं कृत्वा, पण्डितः=सम्यग्ज्ञानयान् मेधावी=साधु सामाचारीव्यवस्थितः निष्ठितार्थः=विगतविषयसुखस्पृहः, तथा वीरः=परीषहोपसर्गसहनपुरस्सर कर्मशत्रु-दलनदक्षः सन् आगमेन=तीर्थङ्करोपदेशानुसारेण सदा सर्वदा पराक्रमेधाः=तपः-संयमे पराक्रमं स्फोरय । इति ब्रवीमि, व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० १२ ॥

॥ इति षष्ठाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ६-४ ॥

सदा स्थिति करते हुए भी अविरतिसपन्न होते हैं, संयमकी आराधना करनेवालोंके साथ निवास करते हुए भी सयमकी आराधना करनेसे वंचित रहते हैं । इसलिये हे शिष्य ! तुम उग्रविहारी, विनयी, विरति-संपन्न और संयमाराधक साधुओंके साथ निवास करते हुए सम्यग्ज्ञान संपन्न, साधु समाचारीमे व्यवस्थित, वैषयिक सुखतृष्णासे निर्मुक्त, और परीषह और उपसर्गोंके सहनपूर्वक कर्मशत्रुओंके विनाश करनेमें दक्ष होते हुए, तीर्थङ्कर प्रभुके उपदेशके अनुसार सदा तप और संयमकी आराधना करनेमें वीर्योल्लासी बनो । “ इति ब्रवीमि ” इन पदोंकी व्याख्या पहिलेके समान समझनी चाहिये ॥ सू० १२ ॥

॥ छट्ठा अध्ययन का चौथा उद्देश समाप्त ॥ ६-४ ॥

सपन्न होने छे सयमनी आराधना करवावाजाओनी साथे निवास करवा छता पशु सयमनी आराधना करवाथी वञ्चित रहछे छे भाटे छे शिष्ये । तमे उग्रविहारी, विनयी, विरतिसपन्न अने सयम आराधक साधुओनी साथे निवास करीने सम्यग्ज्ञानसपन्न, साधुसमाचारीमे व्यवस्थित, वैषयिक तृष्णार्थी निर्मुक्त अने परिषद अने उपसर्गों सहन करी कर्मशत्रुओने विनाश करवामा दक्ष अने तीर्थङ्कर प्रभुना उपदेश अनुसार सदा तप अने सयमनी आराधना करवामा वीर्योल्लासी अने “ इति ब्रवीमि ” आ पदोनी व्याख्या पछेवानी भादक समजवी छट्ठा अध्ययनने। ओथे उद्देश समाप्त ॥ ६-४ ॥

। अथ षष्ठाध्ययनस्य पञ्चम उद्देश ।

इहान्तरप्रसुर्बोद्धेके गौरवप्रयविपुलनं निगदितम् । तदर्थं चोद्देशकार्यमुप-  
संहरन्—‘वीरे सया आगमेण परब्रह्मेज्जासि’ इति वाक्येन ‘मुनिना  
तीर्थङ्गरोपवेशानुसारेण वर्तितव्यमित्यबोधि । अथ तत्र गौत्वप्रयविपुलनं  
परीषद्बोपसर्गमानापमानविपुलनेन विना सम्पूर्णतया न भक्तिमार्गधीत्यतस्त्वदर्थ-  
पिदु पञ्चमोद्देशमुपक्रमते, तत्र परीषद्बोपसर्गादीनि कृम संमन्वीति दर्शयितुमाह—  
‘से गिह्रेसु वा’ इत्यादि ।

मूक्य—से गिह्रेसु वा गिह्रंतरेसु वा गामेसु वा गामतरेसु वा  
नगरेसु वा नगरतरेसु वा जणवपसु वा जणवयतरेसु वा संते

छटा अध्यायनका पाँचवाँ उद्देश ।

इस छठे अध्यायनके अंतर्गत उद्देशमें सूत्रकारने तीन गौरवोंके त्याग  
करनेका उपदेश दिया है । उस उपदेशके अन्दर उद्देशमें कथित अर्थका  
उपसंहार करते हुए उन्होंने “वीरे सया आगमेण परब्रह्मेज्जासि” इस  
वाक्यसे “मुनियोंको तीर्थङ्गर प्रभुके उपदेशके अनुसार रहना चाहिये”  
यह समझाया है । यह गौरवत्रयका त्याग परीषद्, उपसर्ग, मान और  
अपमानके सहे विना पूर्ण रूपमें नहीं हो सकता है । इसलिये इसी  
विषयका प्रदर्शन करनेके लिये इस पञ्चम उद्देशका प्रारम्भ किया गया है।  
उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार परीषद् और उपसर्ग कहां पर समवित होता  
है—इस बातको दिखानेके लिये “से गिह्रेसु” इत्यादि सूत्र कहते हैं—

छट्टा अध्यायनको पाँचवाँ उद्देश

छठ्ठे अध्यायनका पाँचवाँ उद्देशमें सूत्रकारने त्रय गौरवोंका त्यागने उपदेश  
किया है । उस उपदेशमें अंतर्गत उद्देशके अर्थको उपसंहार करते हैं । उद्देशके  
“वीरे सया आगमेण परब्रह्मेज्जासि” का वाक्यसे “मुनियोंके तीर्थङ्गर प्रभुना  
उपदेश-अनुसार रहने उद्देशके” से समझाने के लिये त्रय गौरवोंका त्याग  
परिषद् उपसर्ग, मान-अपमानने सहा विना पूर्ण रूपमें नही बनते नही । तेषी  
का निषयने समझवपु माटे का पाँचवाँ उद्देशने प्रारम्भ करेला है । आमां  
सर्वप्रथम सूत्रकार परिषद् अने उपसर्ग कहां कहां समवित करने के लिये बात  
देखाया माटे “से गिह्रेसु” इत्यादि सूत्र कहे है ।

गइया जणा लूसणा भवंति, अदुवा फासा फुसंति, ते फासे पुट्टो धीरो अहियासए ओए समियदंसणे ॥ सू० ? ॥

छाया—तस्य गृहेषु वा गृहान्तरेषु वा ग्रामेषु वा ग्रामान्तरेषु वा नगरेषु वा नगरान्तरेषु वा जनपदेषु वा जनपदान्तरेषु वा सन्त्येकके जना लूपका भवन्ति, अथवा स्पर्शाः स्पृशन्ति; तान् स्पर्शान् स्पृष्टः धीरः अव्यासयेत् ओजः समित्-दर्शनः ॥ सू० ? ॥

टीका—तस्य=आहारादि ग्रहीतुं गच्छतो मुनेः, गृहेषु वा उच्चनीचमध्यम-कुलेषु, गृहान्तरेषु वा गृहसमीपेषु, ग्रामेषु वा ग्रामसमीपेषु वा, नगरेषु वा नगरसमी-पेषु वा, तथा ग्रामानुग्रामं विहरतश्च जनपदेषु वा=देशेषु मगधादिषु, जनपदान्तरेषु=देशसीमासु, उपलक्षणत्वात् उद्यानेषु वा उद्यानान्तरेषु वा, तथा-विहारभूमिषु स्वाध्यायं कुर्वतो, विचारभूमिषु शरीरचिन्तार्थं गच्छतो गतस्य वा, एरुके=एके ये केचन कपायोपहतचेतसो जनाः लूपकाः=परीषदोपसर्गादिकारकाः भवन्ति। अथवा

आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त जाते हुए मुनिजनको घरोंमें—उच्च, नीच और मध्यम कुलोंमें, घरके आसपासमें, गावोंमें, गांवोंके आसपासमें, नगरमें, नगरके आसपासमें, तथा एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विहार करते हुए मुनिको मगधादिक जनपदमें, जनपदकी सीमा-हृदमें, उपलक्षणसे बगीचामें, बगीचाके आसपासमें, तथा—स्वाध्याय करनेवाले मुनिको विहार भूमिमें, शौचादिकी निवृत्तिके लिये जाते हुए अथवा गये हुए साधुको विचारभूमि—नगरके बाहिरी जंगल (वन) आदि प्रदेशमें, कई एक कि जिनका चित्त कपायसे मलिन हो रहा है—व्यास या युक्त बना हुआ है ऐसे दुष्ट मनुष्य उपसर्ग और परीषद् आदि करनेवाले होते ही हैं। अथवा—वात, पित्त और कफजनित दुःख विशेष या तृण-स्पर्श, दंशमशक, शीत उष्ण आदि जनित दुःख भी कभी २ उन्हें दुःखित

आहारादि ग्रहण करवा निमित्त जाता मुनिजनने घरमा—उच्च, नीच अने मध्य कुलीमा घरनी आसपासमा, गावमा, गावनी आसपासमा, नगरमा, नगरनी आसपासमा, तथा एक गावथी पील गावमा विहार करनार मुनिने मगधादिक जनपदमा, जनपदनी सीमा—हृदमा, उपलक्षणथी बगीचामा, बगीचानी आसपासमा तथा स्वाध्याय करवावाणा मुनिने विहार भूमिमा, शौचादिनी निवृत्ति भाटे जाता अथवा आपता साधुने विचारभूमि—नगरनी अडारं जंगल (वन) आदि प्रदेशमा, डेटलाक डुष्ट मनुष्य के जेतु चित्त कपायथी मलिन अनेल छे—आधुण व्याधुण अनेल छे; उपसर्ग अने परीषद् करनार होय छे अथवा वात, पित्त

स्पर्शाः=दुःखविशेषाः पातपितृकफदोषजनिताः, तृणस्पर्शदंशमयकञ्चीतोष्णादिजनिता  
 वा स्पृशन्ति=कदाचिदमिभषन्ति; तैः=परीपहोपसर्गादिभिः स्पृष्टः भोजः=एक राग-  
 द्वेषादिरहितः समितदर्शनः=उपशान्ताध्यवसायः, यद्वा समितदर्शनः=समतामितं  
 समितं दर्शनं यस्य सः, समदृष्टिरित्यर्थः, धीरः=असौम्यः सन् तान्=तृणकृतान्  
 पातादिवोषजनितात् तृणस्पर्शादिजनितान् वा स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यासमत्=  
 अभिसहत्; नरकादिदुःखं यथा कर्माद्यजनितं तथा मदीयमेतत्सर्वं स्वकर्मोद्यफल-  
 मित्यतन्मयैव सोढव्यमित्यवधार्य सम्यक् विविक्षत् इत्यर्थः ॥ ६० ॥

किञ्च—‘दयं’ इत्यादि ।

करते ही रहते हैं । इसलिये उन परीपह और उपसर्ग आदिसे सताये गये  
 या उपद्रवित किये गये वे रागद्वेषरहित सम्यग्दृष्टि मुनिजन असौम्य  
 होते हूये उन यातादिवोष जनित अथवा तृणस्पर्शादिसे होनवाले दुःख  
 विशेषोंको सहन करे, यपराये नहीं । उस समय वे यही विचार—कि  
 जिस प्रकार कर्मके उदयजनित नरक आदिके दुःखोंको मैंने ही भन  
 न्तवार सहन किये हैं, उसी तरह ये सप नी हमारे कर्मोद्यजनित हैं;  
 इसलिये हमें ही इन्हें मध्यस्थभाषसे सहना चाहिये, ऐसा निश्चय कर  
 अच्छी तरह—यिना किसी आकुलताके उन्हें सहें । समताको प्राप्त जिसका  
 दर्शन है उसका नाम समितदर्शन—सम्यग्दृष्टि है ॥ सू. १ ॥

तथा—“दयं लोगस्त” इत्यादि ।

अने इहजनित दुःखविशेष अने तृणस्पर्श इशमशक शीत उष्ण आदि  
 जनित दुःख यद्ये अनेने कोष्ट केश वपत दृष्टित करते रहे थे  
 आ नाटे जेवा पत्त्ये अने उपसर्ग वगैरेशी सतावेस अने उपद्रवित कर  
 जेस जे रागद्वेषरहित सम्यग्दृष्टि मुनिजन असाव्य जनने ते वातादि दोष  
 जनित अथवा तृण स्पर्शादिशी यवावाणा दृष्टविशेषेने सहन करे जससय  
 नहिं जे समये जे जेनुं च विचारि के से प्रकारे भनना उदयशी नरक  
 आदिना दृष्टोने से अनेक वपते सहन करैस छे जेव रीते जे जहां भास  
 करौंता उदयइस छे आ नाटे नारे यद्ये तेने मध्यस्थभाषशी सहन करवा  
 जेसजे जेवो निश्चय करी सारी रीते आहुतवासहित अने सहै समत्वाने प्राप्त  
 जेनु दर्शन छे जेनुं नाम सम्यग्दृष्टि छे (सू. १)

तथा—‘दयं लोगस्त’ इत्यादि.

મૂલમ્—દયં લોગસ્સ જાણિત્તા પાર્ઠિણં પડીણં દાહિણં ઉદીણં  
આહ્વલ્લે વિભલ્લ કિદ્દે વેયવી ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—દયા લોકસ્ય જ્ઞાત્વા પ્રાચીનં પ્રતીચીનં દક્ષિણં ઉદીચીનમ્ આવ-  
શીત વિભજેત્ કીર્તયેત્ વેદવિત્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકા—વેદવિત્—સર્વજ્ઞપ્રણીતાગમજ્ઞાનવાન્ મુનિઃ, લોકસ્ય જ્ઞાત્વા=દ્રવ્યતઃ  
પદ્જીવનિકાયસ્વરૂપં વિદ્વાયેત્યર્થઃ, લોકસ્યેત્યત્ર—કર્મણઃ સમ્બન્ધમાત્રવિશ્વાયા  
પઠ્ઠી; તથા—ક્ષેત્રતઃ—પ્રાચીનં=પૂર્વ, પ્રતીચીનં=પશ્ચિમ, દક્ષિણમ્, ઉદીચીનમ્=  
ઉત્તરમ્, ઉપલક્ષણત્વાદન્યાનપિ દિગ્વિભાગાન્ જ્ઞાત્વા=અભિસમીક્ષ્ય કાલતોયાવજ્જીવ  
ભાવતો રાગદ્વેષરહિતઃ સર્વત્ર દયાં કુર્વન્ ધર્મમાચક્ષીત; યથા—સર્વે પ્રાણિનો દુઃખ-  
દ્વિષઃ સુખલિપ્સવ આત્માપમ્યેન સર્વદા દ્રુષ્ટવ્યા इति । તથા ધર્મમાચક્ષાણઃ વિભ-  
જેત્=દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભેદૈઃ પ્રાણાતિપાતવિરમણાદિભિશ્ચ પ્રરૂપયેત્ । કીર્તયેત્=  
ધર્માનુદ્યાનફલં કથયેત્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સર્વજ્ઞરચિત આગમકે જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યસે પદ્જીવનિકાયસ્વરૂપકો  
જાન કર તથા ક્ષેત્રસે પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા ઓર ઉત્તર-  
દિશાકો, એવં ઉપલક્ષણસે ઇન દિશાઓકે વિભાગોકો જાનકર, કાલકી  
અપેક્ષા જીવનપર્યન્ત, ભાવસે રાગદ્વેષરહિત હોકર, સર્વત્ર ધર્મકા ઉપદેશ  
કરે. । ઉસ ઉપદેશર્મે યહ અવશ્ય ૨ પ્રકટ કરે કિ સમસ્ત સંસારી પ્રાણી  
દુઃખકો નહીં યાહતે હૈં ઓર સુખકે અભિલાષી હૈં, અતઃ સમસ્ત પ્રાણિઓ  
કો અપને સમાન સમજ્ઞના યાહિયે, તથા વહ ધર્મ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર  
ભાવકે ભેદો એવં અહિંસા આદિ વ્રતોકે ભેદોકી અપેક્ષાસે અનેક પ્રકાર  
કા હૈં । ઇસ પ્રકાર ઉસકા વિભાગ કર પ્રરૂપણા કરે । ધર્મકી આરાધનાસે  
જીવોકો ક્યા ફલ મિલતા હૈં ? ઇસકા બી વ્યાખ્યાન કરે ।

સર્વજ્ઞરચિત આગમના જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યથી પરબ્રુવનિકાયસ્વરૂપ લોક-  
સ્વરૂપ બ્રહ્મીને, તથા ક્ષેત્રથી પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા અને ઉત્તર-  
દિશા, અને ઉપલક્ષણથી આ દિશાના વિભાગોને બ્રહ્મીને, કાળની અપેક્ષા જીવન-  
પર્યન્ત, ભાવથી રાગ દેષ રહિત બનીને સર્વત્ર ધર્મને ઉપદેશ કરે આ ઉપદેશમા  
તે અવશ્ય અવશ્ય પ્રગટ કરે કે સમસ્ત સંસારી પ્રાણી દુઃખને યાહતા નથી,  
અને સુખના અભિલાષી છે માટે સમસ્ત પ્રાણીઓને પોતાના સમાન સમજવા  
જોઈ એ. તથા એ ધર્મ, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર અને કાળ, ભાવના ભેદો અને અહિંસા આદિ  
વ્રતોના ભેદોની અપેક્ષાથી અનેક પ્રકારનો છે. આ પ્રકારે તેના વિભાગ કરી  
પ્રરૂપણા કરે. ધર્મની આરાધનાથી જીવોને શું ફળ મળે છે તેનું વ્યાખ્યાન કરે.

किञ्च—‘से उद्विपसु वा’ इत्यादि ।

मूक्य—से उद्विपसु वा अणुद्विपसु वा सुस्तूसमाणेषु पवेदय—संति विरति उवसमं णिञ्वाण सोयं अज्जवियं महविय लाघवियं अणइवत्तिय ॥ सू० ३ ॥

छाया—उत्पितेषु वा अनुत्पितेषु वा शुभूपमाणेषु मवेदयेत् शान्ति विरतिम् ; उपसम निर्वाणं शौचम् आर्षिकं मार्षिकं लाघविकम् अनतिपत्य ॥ मू० ३ ॥

टीका—सः=आगमसिद्ध शुभूपमाणेषु=भोक्तृभिः स्युः शुभादिसेवां कर्मसु वा उत्पितेषु=पूरीतमन्त्रणेषु वा अनुत्पितेषु=भाक्कादिषु वा शान्तिम्=श्मनम्=अहिंसा-

भावाय—सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रतिपादित आगमके ज्ञाता मुनिराज लोक भादिका यथार्थ स्वरूप जान कर, जीबोंकी रक्षाके निमित्त धर्मका उपदेश दे । उसमें यह द्रव्य, क्षेत्र, कालमायकी, अथवा अहिंसा धर्म भादिकी अपेक्षासे धर्मका विस्तारपूर्वक कथन कर, और साथमें यह भी स्पष्ट समझावे कि धर्मके आराधनसे किन २ जीबोंको किस्त २ फल की प्राप्ति हुई है ॥ सू० २ ॥

तथा—“से उद्विपसु वा” इत्यादि ।

आगमज्ञाता वे मुनि धर्मका उपदेश करते समय इन विषयोंका भी विवरण करें । धार्मिक उपदेश सुननेके जो इच्छुक हैं उनका नाम शुभूपमाण हैं, अथवा जो गुरुओंकी सेवा करते हैं वे भी शुभूपमाण हैं । जिन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली है वे उत्पित हैं और भावक भादि अनुत्पित हैं । इस सयके लिये वे आगमज्ञाता मुनि अहिंसा, मृपापाद आदिसे

भावाय—सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रतिपादित आगमका ज्ञाता मुनिराज लोक भादिकी यथार्थ स्वरूप जान कर, जीबोंकी रक्षा निमित्त धर्मको उपदेश दे । तेषां ते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जने अदिधामत आदिनी अपेक्षाधी धर्मतु विस्तार-पूर्वक कथन करे । अने साथे साथे जे पक्ष समझवे के धर्मका आराधनकी क्या क्या लोचने क्या क्या इच्छनी प्राप्ति भवेत ते

तथा—“से उद्विपसु वा” इत्यादि ।

आगमज्ञाता जे मुनि धर्मको उपदेश करती वजते जे विषयोंनु पक्ष विवरण करे । धार्मिक उपदेश सुननेवालों जे इच्छुक छे तेषु नाम शुभूपमाण छे, अथवा जे गुरुजनोंकी सेवा करे छे तेषु पक्ष शुभूपमाण छे । जेजोके दीक्षा ग्रहण करेबी छे तेषु उत्पित अने भावक भादि अनुत्पित छे आ जथा भादे

मूलम्—दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं  
आइक्खे विभए किट्ठे वेचवी ॥ सू० २ ॥

छाया—दया लोकस्य ज्ञात्वा प्राचीनं प्रतीचीनं दक्षिणं उदीचीनम् आव-  
क्षीत विभजेत् कीर्तयेत् वेदवित् ॥ सू० २ ॥

टीका—वेदवित्—सर्वज्ञप्रणीतागमज्ञानवान् मुनिः, लोकस्य ज्ञात्वा—द्रव्यतः  
षड्जीवनिकायस्वरूपं विज्ञायेत्यर्थः, लोकस्येत्यत्र—कर्मणः सम्बन्धमात्रविवक्षाया  
पट्टी; तथा—क्षेत्रतः—प्राचीनं=पूर्व, प्रतीचीनं=पश्चिम; दक्षिणम्, उदीचीनम्=  
उत्तरम्, उपलक्षणत्वादन्यानपि दिग्विभागान् ज्ञात्वा=अभिसमीक्ष्य कालतो यावज्जीवं  
भावतो रागद्वेषरहितः सर्वत्र दयां कुर्वन् धर्ममाचक्षीत; यथा—सर्वे प्राणिनो दुःख-  
द्वेषः सुखलिप्सव आत्मौपम्येन सर्वदा द्रष्टव्या इति । तथा धर्ममाचक्षणः विभ-  
जेत्=द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदैः प्राणातिपातविरमणादिभिश्च प्ररूपयेत् । कीर्तयेत्=  
धर्मानुष्ठानफलं कथयेत् ॥ सू० २ ॥

सर्वज्ञरचित आगमके ज्ञाता मुनि द्रव्यसे षड्जीवनिकायस्वरूपको  
जान कर तथा क्षेत्रसे पूर्वदिशा, पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा और उत्तर-  
दिशाको, एवं उपलक्षणसे इन दिशाओंके विभागोंको जानकर, कालकी  
अपेक्षा जीवनपर्यन्त, भावसे रागद्वेषरहित होकर, सर्वत्र धर्मका उपदेश  
करे । उस उपदेशमें यह अवश्य २ प्रकट करे कि समस्त संसारी प्राणी  
दुःखको नहीं चाहते हैं और सुखके अभिलाषी हैं, अतः समस्त प्राणिओं  
को अपने समान समझना चाहिये, तथा वह धर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल और  
भावके भेदों एवं अहिंसा आदि व्रतोंके भेदोंकी अपेक्षासे अनेक प्रकार  
का है । इस प्रकार उसका विभाग कर प्ररूपणा करे । धर्मकी आराधनासे  
जीवोंको क्या फल मिलता है ? इसका भी व्याख्यान करे ।

सर्वज्ञरचित आगमना ज्ञाता मुनि द्रव्यथी षड्जीवनिकायस्वरूप लोक-  
स्वरूप ज्ञातुनि, तथा क्षेत्रथी पूर्वदिशा, पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा अने उत्तर-  
दिशा, अने उपलक्षणथी आ दिशाना विभागाने ज्ञातुनि, कालनी अपेक्षा जीवन-  
पर्यन्त, भावथी राग द्वेष रहित अनीने सर्वत्र धर्मने उपदेश करे. आ उपदेशमा  
ते अवश्य अवश्य प्रकट करे के समस्त संसारी प्राणी दुःखने चाहता नथी,  
अने सुखना अभिलाषी छे भाटे समस्त प्राणीओने पेताना समान समज्जा  
जेठ अ. तथा अे धर्म, द्रव्य, क्षेत्र अने काल, भावना वेदो अने अहिंसा आदि  
व्रताना वेदोनी अपेक्षाथी अनेक प्रकारनी छे. आ प्रकारे तेना विभाग करी  
प्ररूपणा करे. धर्मनी आराधनाथी लोवने शुं इण मणे छे तेनु व्याख्यान करे.

टीका—भिष्टुः=निर्दोषमित्सात्रीषी मुनिः सर्वप्राणिभूतजीवसत्त्वानां हितं अतु  
 विचिन्त्य=पर्यालोच्य धर्म=भुतधारिभ्रलक्षणम्-अगारधर्ममनगारधर्म वा भावणीत=  
 प्रतिबोधयत् । एकेन्द्रियादिषु सर्वेषु प्राणिषु कस्यपिदपि विराघना यथा न भवे  
 यथा धर्ममुपदिशेदिति मान ॥ सू० ४ ॥

अतुविचिन्त्य धर्ममाश्रयत्वा भिष्टुरन्वत्किं कुर्यादित्याह-‘अणुवीह भिक्खू’  
 इत्यादि ।

मूत्रम्-अणुवीह भिक्खू धम्ममाहक्खमाणे णो अत्ताण  
 आसाइज्जा, णो पर आसाइज्जा, णो अस्साइं पाणाइं मूयाइ  
 जीवाइ सत्ताइं आसाइज्जा ॥ सू० ५ ॥

निर्दोष भिक्षासे अपने शरीरका निर्बाह करमेवाले भिक्षु समस्त  
 प्राणियों, समस्त मृतों, समस्त जीवों और समस्त सत्त्वोंका हित विचार  
 कर भुतधारिभ्ररूप धर्मका, अथवा गृहस्थ और मुनिके धर्मका व्याख्यान  
 करे । एकन्द्रियादिक समस्त प्राणियोंमेंसे किसी भी जीवकी विराघना  
 जिस तरह किसी भी जीवसे न बने-इस प्रकारसे धर्मका उपदेश देकर  
 जीवोंको ममज्ञाबे। अथवा मुनिके धर्म क्या है ? गृहस्थका धर्म क्या है ?  
 इस विषयको समझाबे। ममज्ञानकी पद्धति इतनी हृदयरोषक एवं  
 विशाकर्षक हो कि जिससे प्राणी उस उपदेशको सुन कर एकेन्द्रिया  
 दिक जीवों तककरे भी विराघना करना छोड़ देवे ॥ सू० ४ ॥

धर्मका पार २ विचार कर कथन करनेवाला भिक्षु और क्या करे ?  
 इसके लिय सूत्रकार कहते हैं-“अणुवीह भिक्खू” इत्यादि ।

निर्दोष भिक्षाधी यत्ताना शरीरानो निर्वाह करववाणा भिक्षु समस्त प्राणीषो,  
 समस्त भूतो, समस्त लोको अने समस्त सत्त्वाना हितानो विचार करी भुत  
 धारिभ्ररूप धर्मनु अथवा गृहस्थ अने मुनि धर्मनु व्याख्यान करे. एकेन्द्रि  
 यारिक समस्त प्राणीषोमांधी कर्षयत्तु लवनी विराघना के रीते कर्ष यत्तु  
 लवनी न अने आ प्रकारभी धर्मनो उपदेश आपी लवोने समभववे अने मुनिनो  
 धर्म भुठे ? गृहस्थनो धर्म भुठे ? आ विषय समभववे समभाववानी पद्धति के ही  
 हृदयजम कोवी अर्थने के तेनी अउर तात्कालिक पठोधि; केधी उपदेश  
 चांलजनाए एकेन्द्रियलवानी तरह पक्ष अदुभाववणो अने (सू० ४)

धर्मनो वारवार विचार करी मोक्षवाणा भिक्षु जीवु मु करे ? अने  
 आटे सूत्रकार कहे छे-“अणुवीह भिक्खू” इत्यादि ।



मित्यर्थः, विरतिम्=विरमणं घृषावादादिविरमणं मूलगुणमित्यर्थः, उपशमं=क्रोधो-  
पशम क्षमाम्, उपलक्षणत्वात्सर्वमुत्तरगुणमित्यर्थः, निर्वाणं=मूलगुणोत्तरगुणफलभूत  
मोक्षम्, शौचं=मनःशुद्धिम्, आर्जविक्रमम्=आर्जव मायाशल्यराहित्यं, मार्दविकं=मार्दव  
मानराहित्यं, लाघविक्रमम्=कर्मभारापनयनादात्मनो लाघवम्। एतत्सर्वम् अनतिपत्यं-  
यथावस्थितमर्थमनतिक्रम्य-आगमानुसारेणेत्यर्थः, प्रवेदयेत्=उपदिशेत् ॥ सू० ३ ॥

किञ्च--' सव्वेसि ' इत्यादि ।

मूलम्--सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं,  
सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीड् भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा ॥ सू० ४ ॥

छाया--सर्वेषां प्राणानां, सर्वेषां भूतानां सर्वेषां जीवानां, सर्वेषां सत्त्वानाम्,  
अनुविचिन्त्य भिक्षुधर्ममाचक्षीत ॥ सू० ४ ॥

विरमणं होनेरूप विरति-मूलगुण, क्रोधका उपशमरूप क्षमा, उपलक्षणसे  
समस्त उत्तरगुण, निर्वाण-मूलगुण और उत्तरगुणोंके फलभूत मोक्ष, मान-  
सिक शुद्धि, मायाशल्यका अभावरूप आर्जव (सरलता), मानका अभावरूप  
मार्दव (नम्रता), और कर्मभारके नाश हो जानेसे उद्भूत आत्माके  
लाघवगुणका यथार्थ स्वरूपसे-आगमके अनुरूप उपदेश करें ।

आगमज्ञाता मुनिको अपने उपदेशमें प्रधानतया किन २ विषयोंका  
वर्णन करना चाहिये सूत्रकारने वे सब विषय उपर्युक्त रीतिसे प्रकट  
किये हैं । अतः विद्वान् उपदेशक मुनि, धार्मिक उपदेश सुननेवालोंके  
समक्ष उन विषयोंपर अवश्य २ अपने उपदेशमें प्रकाश डालें ॥ सू० ३ ॥

तथा--" सव्वेसि " इत्यादि ।

ते आगमज्ञाता मुनि, अहिंसानो गृषावाद् आदिथी विरमण्णो षोवाइप विरति-  
मूलगुणुणो, निर्वाणु-डोधना उपशमइप क्षमानो, उपलक्षणुथी समस्त उत्तरगुणु,  
मूलगुणु अने उत्तरगुणोना इणभूत मोक्षणे, मानसिक शुद्धि, मायाशल्यना अलावइप  
सरणता, मानना अलावइप नम्रता अने कर्मभारनो नाश थइ ज्वाथी उद्भूत  
आत्माना लाघवगुणुनी यथार्थस्वरूपथी आगमने अनुइप उपदेश करे

आगमज्ञाता मुनिसे पोताना उपदेशमा मुख्य तथा केवा केवा विष  
योनु वर्णन करतु जेथेसे सूत्रकारे से अथे विषय उपर्युक्त ( उपर उछेल )  
रीतिथी प्रकट करेल छे. माटे विद्वान् उपदेशक मुनि धार्मिक उपदेश साधनवा-  
वाणा समक्ष से विषयो उपर अवश्य अवश्य पोताना उपदेशनो प्रकाश दे के

तथा--" सव्वेसि " इत्यादि.

परम्=भन्य, शुभ्रुप्रमार्यमनार्घ्यमृत्पित्तमनुत्पित्तं वा न आशातयेत्, तथा-भन्यात्  
वा सामान्येन प्राणान्=प्राणिनाः भूतान् जीवान् सत्त्वान्, सर्वान्किस्यर्षः; न आशात  
येत्, पद्मजीवनिकायस्वरूपाऽपलापेन सामयोरपदेशेन च न विराधयेत्। इत्युक्तं  
मरुति-तवाभूतमुपदेशं न कुर्यात् येन कस्यापि प्राणिनो विराधना स्मृत्यधेत ॥५॥

आशातना है। उपदेश सुननेके लिये अभिलाषी होने हुएका नाम शुभ्रु पु,  
सर्वविरतिरूप चारित्रके पालक उत्पित्त और रहस्यजन अनुत्पित्त हैं। इनमें  
से कोई भी हो, मुनिका कर्तव्य है कि वह इनकी आशातना (विराधना) न  
करे। इसी प्रकार सामान्यसे प्राणियोंकी, भूतोंकी, जीवोंकी, और सत्त्वोंकी  
वे आशातना करनेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा उपदेश न दें कि जिससे  
पद्मजीवनिकायके स्वरूपका आपलाप हो और सावध व्यापारोंमें जीवोंकी  
प्रवृत्ति हो। क्यों कि इस प्रकारके उपदेशसे जीवोंकी प्रवृत्ति अन्य  
जीवोंकी विराधनाकी ओर उत्साहित होती है। कहनेका मतलब यह है  
कि ऐसा उपदेश मुनिको कभी नहीं देना चाहिये कि जिससे किसी भी  
जीवकी विराधना होवे।

धर्मका उपदेश करनेवाला संयमी सदा इस बातका पूर्ण ध्यान  
रखे कि, मेरे उपदेशसे जहाँ तक हो सके, सब जीवोंका कल्याण हो।  
कुमार्गमें जानेवाले भी प्राणी इससे लाभ उठावें और वे सन्मार्गमें लग  
जावें। भोताओंके ऊपर उसी उपदेशका प्रभाव पड़ता है जो स्वयं ज्ञान,

उ उपदेश सांभलवा माटे उत्सुक बनेलानु नाम शुभ्रु, सर्वविरतिरूप चारि  
त्रना पाकक उत्पित्त बने रहस्यजन अनुत्पित्त छे आभाषी केश पक्षु हो।  
मुनिनु कर्तव्य छे छे ते केशनी विराधना न करे। आ न छेते सामान्यप्राणी  
जोनी, ब्रह्मोनी, लोनी बने ब्रह्मोनी ते विराधना कस्याना अभिलाषी नथी।  
जोवे उपदेश न आपे छे नेधी पद्मजीवनिकायना स्वरूपना अपलाप (सत्त्वव्यापत्तु)  
याव बने सावध व्यापारोमा लोनी प्रवृत्ति वने। केशके आ प्रकारना उप-  
देशधी लोनी प्रवृत्ति अन्य लोनी विराधना तरह उत्साहित बने छे।  
कहवानी मतलब जे छे छे मुनिजे जोवे उपदेश न देवे जोध जे छे नेधी  
कोध पक्षु लोनी विराधना याव।

धर्मना उपदेश कस्यार समयी आ बातने सदा पूज्यरीते ध्यानमा रखे  
छे मास उपदेशधी बने त्थां मुधी लोवानु कस्याव याव कुमार्गमां लोवावागा  
प्राणी पक्षु आने लाल भेगवे बने स-भाजे नालवध बाजे, भोतजो उप-  
आवा उपदेशकनो प्रभाव पडे छे जे स्वयं ज्ञान दर्शन बने चारित्रधी विद्वद

छाया—अनुविचिन्त्य भिक्षुर्धर्ममाचक्षणः नो आत्मानमाशातयेत्, नो परमाशायेत्, नो अन्यान् प्राणान् भूतान् जीवान् सत्त्वान् आशातयेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—धर्मम् आचक्षणः=कथयन् भिक्षुः=संयमी, अनुविचिन्त्य=सर्वप्राणि-  
हिताहितं पर्यालोच्य आत्मानं=स्वकीयमात्मानं न आशातयेत्—स्वात्मन आशातनां  
सर्वथा न कुर्यात्, ज्ञानदर्शनचारित्रविरुद्धवर्तनेनात्मनः संसारपरिभ्रमणं भवति  
तदेवात्मन आशातना विराधनेत्यर्थः। सा द्विविधा—लौकिकी लोकोत्तरा चेति, एकै-  
काऽपि द्रव्यभावभेदाद् द्विधा । तत्र द्रव्यतो लौकिकी सचित्ताचित्तमिश्रद्रव्यविषया,  
भावतो विनयादिस्खलितस्य विद्यादिलाभो यया न भवति सा । द्रव्यतो लोकोत्तरा  
शरीरोपधिविषया, भावतस्तु ज्ञानदर्शनचारित्रतपोविनयादिगुणविषया । तथा—

धर्मका उपदेश करनेवाले भिक्षु-संयमी समस्त प्राणियोंके हित  
और अहितकी पर्यालोचना कर, अपनी निज आत्माकी सर्वथा विराधना  
न करे । ज्ञान, दर्शन और चारित्रसे विरुद्ध प्रवर्तन करनेसे आत्माका  
जो संसारमें परिभ्रमण होता है, वह परिभ्रमण ही आत्माकी आशातना-  
विराधना है । यह लौकिकी, और लोकोत्तरा के भेदसे प्रकारकी है ।  
लौकिकी एवं लोकोत्तरा ये दोनों भी द्रव्य और भावके भेदसे दो दो  
भेदवाली हैं । सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यको विषय करनेवाली  
आशातना द्रव्यसे लौकिकी है । अविषयीके जिससे विद्यादिकका लाभ  
नहीं होता है वह भावसे लौकिकी आशातना है । शरीर और उपधिको  
विषय करनेवाली द्रव्यसे लोकोत्तरा आशातना है, तथा ज्ञान, दर्शन और  
चारित्र, तप और विनयादिक गुणोंको विषय करनेवाली भावसे लोकोत्तरा

धर्मनो उपदेश करनार भिक्षुञ्चै सयम पाणवा उपरात भधा प्राणीञ्चोना  
हित अने अहितनी पर्यालोचना करी पोताना आत्मानी सर्वथा विराधना न  
करे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रथी विरुद्ध प्रवर्तन करवाथी आत्मानु के संसा-  
रमा परिभ्रमणु थाय छे—अने परिभ्रमणु न आत्मानी आशातना—विराधना छे. आ  
लौकिकी अने लोकोत्तरना भेदथी के प्रकारे छे लौकिकी अने लोकोत्तर आ  
अने पणु द्रव्य अने भावना भेदथी अणुके भेदवाणी छे सचित्त, अचित्त अने  
मिश्र द्रव्यनो विषय करवावाणी आशातना द्रव्यथी लौकिकी छे. अविनयीने अथी  
विद्यादिकनो लाभ नथी भणतो ते भावथी लौकिकी आशातना छे शरीर अने  
अने उपधिनो विषय करवावाणी द्रव्यथी लोकोत्तर तथा ज्ञान, दर्शन अने  
चारित्रमा अविनय आदि गुणनो विषय करवावाणी भावथी लोकोत्तर आशातना

परम्=अन्य, धुभूयुमार्यमनार्यमृत्थितमनुत्थितं वा न आशावयेत्, तथा=अन्यान्  
 वा सामान्येन प्रामान्=प्राणिनः धुतान् जीवान् सत्त्वान्, सर्वान्तिस्पर्यः; न आशाव  
 येत्, पद्ममीननिकायस्वरूपाऽप्यसापेन सावयोत्पदेशेन च न विराधयेत्। इदमुक्त  
 मवति-तथाधुतमुपवधं न कुर्यात् येन कस्यापि प्राणिनो विराधना समुत्पद्येत ॥५॥

आशासना है। उपदेश सुननेके लिये अभिषायी बने हुएका नाम धुभूयु,  
 सर्वविरतिरूप चारित्रिके पालक उत्थित और गृहस्थजन अनुत्थित हैं। इनमें  
 से कोई भी हो, मुनिका कर्तव्य है कि वह इनकी आशासना (विराधना) न  
 करे। इसी प्रकार सामान्यसे प्राणियोंकी, भूतोंकी, जीवोंकी, और सत्त्वोंकी  
 वे आशासना करनेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा उपदेश न दें कि जिससे  
 वह जीवनिकायक स्वरूपका आपसाप हो और सावध व्यापारोंमें जीवोंकी  
 प्रवृत्ति हो। क्यों कि इस प्रकारके उपदेशसे जीवोंकी प्रवृत्ति अन्य  
 जीवोंकी विराधनाकी ओर उत्साहित होती है। कइनेका मतलब यह है  
 कि ऐसा उपदेश मुनिके कमी नहीं देना चाहिये कि जिससे किसी भी  
 जीवकी विराधना होवे।

धर्मका उपदेश करनेवाला संयमी सदा इस बातका पूर्ण ध्यान  
 रखे कि, मेरे उपदेशसे जहां तक हो सके, सब जीवोंका कल्याण हो।  
 कुमार्गमें जानेवाले भी प्राणी इससे लाभ उठावें और वे सन्मार्गमें लग  
 जावें। श्रोताओंके ऊपर उसी उपदेशका प्रभाव पड़ना है जो स्वयं ज्ञान,

उ उपदेश श्रावणवा भागे उत्सुक बनेछतु नाम सुभूयु, सर्वविरतिरूप चारि-  
 त्रना पाठक उत्थित बने गृहस्थजन अनुत्थित उ आशांशी केउ पक्ष डे,  
 मुनितु कर्तव्य उ है ते इहानी विराधना न करे आ व शीते सामान्यप्राणी-  
 ओनी, भूतानी लोनी अने सवोनी वे विराधना करवाना अधिकारी नहीं  
 ओवे उपदेशन आये है ओधी परलुवनिकायना स्वरूपको अपसाप (सत्त्वप्राण्यु)  
 भाव अने सावध व्यापारोंमा लोनी प्रवृत्ति वपे हेमके अ प्रकारना उप-  
 देशधी लोनी प्रवृत्ति अन्य लोनी विराधना तरह उत्साहित बने उे  
 इहेवानी मतलब के उ है मुनिजे ओवे उपदेश न देवे ओहके है ओधी  
 ओध पक्ष लोनी विराधना भाव।

धर्मने उपदेश करनार सबभी आ बातने सदा पूर्णरीते ध्यानमां सजे  
 है मारा उपदेशधी बने त्मां सुधी लोनेतु इत्यावु भाष कुमार्गमा लोनावाणा  
 प्राणी पक्ष आने लोका भोगवे अने सन्मार्गे वातवा लोने, श्रोताओ ऊपर  
 अवा उपदेशने प्रभाव पडे उ के स्वयं ज्ञान इहानं अने चारित्रधी विद्व

एवम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिनां शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति—  
'से अणासायए' इति ।

मूलम्—से अणासायए अणासायमाणे वज्जमाणाणं पाणाणं  
भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असन्दीणे एवं से भवइ  
सरणं महामुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—सः अनाशातकः अनाशातयन् वध्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां  
सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एवं स भवति शरणं महामुनिः ॥ सू० ६ ॥

टीका—यथा सः=प्रसिद्धः असन्दीन =जलोपप्लवरहितः द्वीपः प्राणिनां शरणम्  
=आश्रयो भवति, एवं सः=असौ अनाशातकः=अविराधकः अनाशातयन्=आशातना-  
मकुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तपःसंयमलब्धिसम्पन्नोऽनगारो वा वध्य-

दर्शन, और चारित्र्यसे विरुद्ध प्रवर्तन नहीं करता है । इसी लिये उस  
उपदेष्टाके लिये प्रभुका यह आदेश है कि वह अपनी आशातना ( विरा-  
धना ) न करे । जो स्वयं धर्मसे विरुद्ध प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों  
को सुमार्गपर नहीं ला सकता है ॥सू० ५॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है—इस बातको दृष्टान्त  
द्वारा सूत्रकार दिखलानेके लिये “से अणासायए” यह सूत्र कहते हैं—

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो  
स्वयं जलके उपद्रवसे रहित होता है—ऐसा प्रदेशविशेष जैसे  
अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक  
—अविराधक महामुनि—तीर्थङ्कुर अथवा गणधर देव या तप और  
संयमकी लब्धिवाले मुनिजन भी आशातना (विराधना) से रहित होकर

प्रवृत्ति न करता होय या भाटे उपदेशकने प्रबुद्धों के आदेश छे के ते  
पोतानी विशाधना न करे के स्वयं धर्मथी विरुद्ध आलनार होय छे ते जीवने  
सुमार्ग उपर लायी शकता नथी (सू० ५)

येवा मुनि सर्वप्राणीओना शरणभूत होय छे ये बात दृष्टान्तद्वारा  
सूत्रकार अताववा भाटे “से अणासायए” या सूत्र कहे छे

असन्दीन जेट के जेनी आरे तरङ्ग पाली होय छे छता ते जणना उपद्र-  
वथी रहित रहै छे आवे प्रदेश अनेक प्राणीओना आश्रयदाता भने छे ये ज  
रीते अनाशातक—अविराधक महामुनि—तीर्थंकर अथवा गणधरदेव तेमज तप  
अने संयमनी लब्धिवाणा मुनिजन पणु, आशातना (विशोधना)थी रहित थकने

मानानां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां सर्वेषां क्लृप्तानोपायमदर्शनतः क्षरणं भवति । सपक्वानां च तदभ्यसयायाभिर्वर्षनेन विशिष्टगुणस्थानावस्थापनाच्छरणं भवति । तथाहि—अगारानगारधर्ममावसानस्तथाविधो महापुरुष कतिचन प्रथम भवति; कतिचन भावकश्चतः परवैयति, कतिचन सम्यक्त्व प्राप्त्यन् मोक्षमार्गस्य प्रथमसोपाने समारोहयति, कतिचन प्रकृतिमप्रान् करोति, प्रगाढमिध्यात्ववतभापि कतिचन नवनीतकन्दुलमानसान् विधातीति ॥ सू० ६ ॥

उक्तमप्युपसंहारमाह—‘एषं से उद्विप’ इत्यादि ।

समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वकी रक्षाके उपाय दिखानेके कारण समस्त प्राणियोंके, समस्त भूतोंके, समस्त जीवोंके और समस्त सत्त्वोंके आश्रय—शरण होते हैं । तथा—ये उन प्राणी आदिके बंध करनेवालोंके भी, उन्हें हिंसाके व्यापारसे निवृत्त कर विशिष्ट गुणस्थानमें पहुँचानेके कारण, शरण होते हैं । सपके शरण वे महामुनि बंध करनेवाले जीवोंमें से कितनेक जीवोंको उपदेश दे कर दीक्षित कर देते हैं, कष्टोंको भावकोंके घतोंमें स्थापित कर देते हैं, किन्नेकोंको सम्यक्त्व प्राप्त करा कर मोक्षमार्गकी प्रथम सीढ़ी पर चढ़ा देते हैं, और कितनेक प्राणियोंको प्रकृतिसे भद्र बना देते हैं । यहाँ तक कि जिनके गाव मिध्यात्वका भी उदय है ऐसे भी कई जीवोंके चित्त को वे नवनीत (सम्बन्ध) के समान कोमल बना देते हैं ॥ सू० ६ ॥

पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“एषं से उद्विप” इत्यादि ।

समस्त प्राणी भूत, जीव अने सत्त्वकी रक्षानेके उपाय प्रदर्शित करनेके लिये समस्त प्राणियोंका, समस्त भूतोंका, समस्त जीवोंका, अने समस्त सत्त्वोंका आश्रय—शरण—दाता होना है ।

तथा—ते प्राणी आदिनी बंध करनेके लिये महामुनिने हिंसाका व्यापारभी निवृत्त करी, विशिष्ट गुणस्थानमा वर्ध करवाना शरवे, ते महामुनि ते हिंसकेतना पक्ष शस्त्र आश्रय है । अथाना शरण्य ते महामुनि वध करनेके लिये भी डेटलाक लोचने उपदेश आधी दीक्षा प्रकृत्य शरण्य है डेटलायने आश्रयना यतोभां ६६ बनावे है । डेटलायने सम्बन्धत्व प्राप्त करवी मोक्षधर्मनी प्रथम सीढ़ी उपर चढ़ावी है है । अने डेटलाक प्राणियोंके प्रकृतिधी हेस्वनाए अने है त्वां सुधी है लेनाभा नाह मिध्यात्वनी पूर्ण उदय होना जेवा प्रवा लोचनेना चित्तमा धितानी गुण प्राणियोंके प्रकृत्य रीति लेने आश्रय लेवा केमग अनयाग्य बनावी है है (सू० १)

पूर्वोक्त अर्थके उपसंहार करवा उपसंहारकहे है—“एषं से उद्विप” इत्यादि ।

एवम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिना शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति—  
'से अणासायए' इति ।

मूलम्—से अणासायए अणासायमाणे वज्जमाणाणं पाणाणं  
भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ  
सरणं महासुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—सः अनाशातकः अनाशातयन् वध्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां  
सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एव स भवति शरणं महामुनिः ॥ सू० ६ ॥

टीका—यथा सः=प्रसिद्धः असन्दीन =जलोपप्लवरहितः द्वीपः प्राणिनां शरणम्  
=आश्रयो भवति, एव सः=असौ अनाशातकः=अविराधकः अनाशातयन्=आशातना-  
मकुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तपःसंयमलब्धिसम्पन्नोऽनगरो वा बध्य-

दर्शन, और चारित्रसे विरुद्ध प्रवर्त्तन नहीं करता है । इसी लिये उस  
उपदेशके लिये प्रभुका यह आदेश है कि वह अपनी आशातना ( विरा-  
धना ) न करे । जो स्वयं धर्मसे विरुद्ध प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों  
को सुमार्गपर नहीं ला सकता है ॥सू० ५॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है—इस बातको दृष्टान्त  
द्वारा सूत्रकार दिखलानेके लिये “से अणासायए” यह सूत्र कहते हैं—

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो  
स्वयं जलके उपद्रवसे रहित होता है—ऐसा प्रदेशविशेष जैसे  
अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक  
—अविराधक महामुनि—तीर्थङ्कर अथवा गणधर देव या तप और  
संयमकी लब्धिवाले मुनिजन भी आशातना (विराधना) से रहित होकर

પ્રવૃત્તિ ન કરતા હોય આ માટે ઉપદેશકને પ્રભુનો એ આદેશ છે કે તે  
પોતાની વિરાધના ન કરે જે સ્વયં ધર્મથી વિરુદ્ધ ચાલનાર હોય છે તે ધીનને  
સુમાર્ગ ઉપર લાવી શકતા નથી (સૂ. ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણભૂત હોય છે એ વાત દૃષ્ટાન્તદ્વારા  
સૂત્રકાર બતાવવા માટે “સે અણાસાયણ” આ સૂત્ર કહે છે

અસન્દીન ઝેટ કે જેની ચારે તરફ પાણી હોય છે છતાં તે ઝાપના ઉપદ્ર-  
વથી રહિત રહે છે આવા પ્રદેશ અનેક પ્રાણીઓના આશ્રયઠાતા અને છે એ જ  
રીતે અનાશાતક—અવિરાધક મહામુનિ—તીર્થંકર અથવા ગણધરદેવ તેમજ તપ  
અને સંયમની લબ્ધિવાળા મુનિજન પણ, આશાતના (વિરાધના)થી રહિત ધર્મને

उक्तरीत्या चारिभ्रमारापयन् ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—  
'संस्त्राय' इत्यादि ।

मूळम्—संस्त्राय पेसलं धम्म दिट्ठिमं परिणिव्वुडे ॥ सु० ८ ॥

छाया—संस्त्राय पेसलं धर्मं दृष्टिमान् परिनिर्वृतः ॥ सु० ८ ॥

टीका—दृष्टिमान्=सम्यग्दर्शनवान् पेसलं=हिंसादिदोषरहित शुद्ध धर्म=  
जिनोक्तं शुद्धचारिशास्त्रं संस्त्राय=सम्यग्ज्ञानन विज्ञाय परिनिर्वृतः=समूलसकल-  
धर्मसंघातं प्रकटितं शुद्धात्मस्वरूपतया निराबाधामन्दानन्दसन्दोहसम्पन्नो भवति ॥  
यस्तु मिथ्यादृष्टिः पेसलं धर्मं न जानाति स परिनिर्वृतो न भवतीति दर्श-  
यितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

सक्त रीतिसे चारिभ्रकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति  
करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—“संस्त्राय” इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्यक् मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे  
जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित शुद्धचारिभ्ररूप धर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान  
कर परिनिर्वृत हो जाता है—अर्थात् आमूलचूल सकल कर्मोंके विनाश  
होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण, निराबाध अमन्द आनन्द  
की परंपरासे संपन्न हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेव  
कथित धर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित  
हो जाता है और अध्याबाध सुखका भोक्ता बन जाता है ॥ सु० ८ ॥

जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त धर्म  
को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके भी पात्र नहीं होते हैं—इस बात

आ शीतधी आश्रितनी आराधना इत्यावाण्य मुनि ज्ञाननी प्राप्ति करी मुक्त  
बने छे आ बातने सूत्रकार कहे छे—“संस्त्राय” धर्म्यादि—

सम्यग्दर्शनसंपन्न मुनि हिंसादिक दोषोंकी रहित शुद्ध जेवा जिनेन्द्र  
द्वारा प्रतिपादित शुद्धचारिभ्ररूप धर्मने सम्यग्ज्ञानधी बंधुने परिनिर्वृत धर्म  
भव छे अर्थात् पीताना सकल धर्मोंना समूह विनाश भवा प्रभटेवा शुद्ध  
आत्मस्वरूपका आत्मे केरि प्रकाशनी आभासहित अमन्द ( परापर ) आनन्द-  
संपन्न धर्म भव छे सम्यग्दर्शनसंपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेवे कहेवा  
धर्मनी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना इत्याधी संपन्न धर्मोंकी रहित बनी भव  
छे अने आभावाध मुजना बोधव्य बने छे (सु ८)

जे मिथ्यादृष्टि छे ते मिथ्यात्वना प्रभावधी शुद्ध जेवा उनोभव धर्मने



મૂલમ્—એવં સે ઉદ્વિષ્ ઠિયપ્વાઅણિહે અચલે ચલે અવાહિ-  
લેસ્સે પરિવ્વણ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

છાયા—એવં સ ઉત્થિતઃ સ્થિતાત્મા અનીહઃ અચલ ચલઃ અઽહિલ્લેશ્યઃ  
પરિવ્રજેત્ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

ટીકા—એવમ્=ઉત્કરીત્યા સ ઉત્થિતઃ=કર્મધૂનનાથં ગૃહીતપ્રવ્રજ્યઃ સ્થિતાત્મા-  
શ્રુતચારિત્રધર્મે સ્થિતઃ=સ્થિરીભૂત આત્મા યસ્ય સઃ—ધર્મારાધનપરાયણઃ, અનીહઃ=  
કપટવર્જિતઃ—અનિગૂહિતવલ્લીર્યં ઇત્યર્થઃ, યદ્વા—‘અસ્નિહઃ’ ઇતિ છાયા; રાગદ્વેષ-  
રહિતઃ, અચલઃ=મદ્દાવાતે પ્રવહતિ સતિ મેરુરિવાનુમૂલપ્રતિકૂલપરીપહોપસર્ગસમુપ-  
સ્થિતૌ સત્યામપ્રક્રમ્પ., વિકૃતાધ્યવસાયરહિત ઇત્યર્થઃ । ચલઃ=સ્થિરવાસવર્જિતઃ,  
ઉગ્રવિહારીત્યર્થઃ । અઽહિલ્લેશ્યઃ=ન વર્તેતે સંયમાદ્વહિલ્લેશ્યા=મનોવૃત્તિર્યસ્ય સઃ  
તથોક્તઃ, સયમૈકલક્ષ્યઃ સન્ પરિવ્રજેત્=વિદરેત્ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिसे कर्मों को हटानेके लिये जिसने आर्हती दीक्षा  
धारण की है, तथा जिसकी आत्मा श्रुतचारित्ररूप धर्म में स्थिरीभूत है—  
धर्मके आराधन करनेमें जो परायण है, कपटरहित है—अपने बल और  
वीर्यको जिसने छिपाता नहीं है, अथवा अस्निह—राग और द्वेषसे  
रहित है, झंझावातके चलने पर भी सुमेरुकी ज्यों जो अनुकूल प्रतिकूल  
परीषह और उपसर्गोंके आने पर भी अडोल बना रहता है—विकृत-  
परिणामोंसे शून्य रहता है, जो उग्रविहारी है—स्थिरवास नहीं करता है,  
संयमके सिवाय बाहिरी पदार्थोंमें जिसकी मानसिक वृत्ति चलावमान नहीं  
होती है, ऐसा मुनि संयमरूप अपने एक लक्ष्यमें स्थिर बन विहार करे॥सू०७॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે આર્હતી દીક્ષા ધારણ કરી  
છે તથા જેનો આત્મા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે—ધર્મનું આરાધન કર  
વામાં જે પરાયણ છે, કપટરહિત છે—પોતાનું બળ અને વીર્યને જેણે છુપાવેલ  
નથી અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, ગમે તેવા ઝાંઝાવાતની સામે  
જેમ મેરુ પર્વત અડગ અને અચળ રહે છે, એ રીતે ગમે તેવા ઉપસર્ગો અને  
પરિષદ આપવા છતાં અચળ રહે છે—વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે, જે ઉગ્ર  
વિહારી છે—સ્થિર વાસ કરતા નથી, સયમ સિવાય બહારના પદાર્થોમાં જેની  
માનસિક વૃત્તિ ચલાવમાન થતી નથી, એવા મુનિ સયમરૂપ પોતાના એક લક્ષ્યમાં  
સ્થિર બની વિહાર કરે (સૂ૦૭)

उक्तरीत्या चारित्र्यमाराधनं ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—  
'संस्त्राय' इत्यादि ।

मूळम्—संस्त्राय पेसल धम्म दिट्ठिम परिणिब्बुडे ॥ सु० ८ ॥

छाया—संस्त्राय पेसल धर्मं इष्टिमान् परिनिर्बुतः ॥ सु० ८ ॥

टीका—इष्टिमान्—सम्यग्दर्शनवान् पेसलं=हिंसादिदोषरहितं गुदं धर्मं=  
जिनोक्तं भुतचारित्र्याख्यं संस्त्राय=सम्यग्ज्ञानं विज्ञाय परिनिर्बुतः=समूलसकल-  
धर्मक्षयात् प्रकटितशुद्धात्मस्वरूपतया निरायाधामन्दानन्दसन्दोहसम्पन्नो भवति ॥

यस्तु मिथ्यादृष्टिः पञ्चल धर्मं न जानाति स परिनिर्बुतो न भवतीति दर्श-  
यितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

उक्त रीतिसे चारित्र्यकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति  
करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—“ संस्त्राय ” इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्यक् मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे  
जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित भुतचारित्र्यरूप धर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान  
कर परिनिष्पन्न हो जाता है—अर्थात् आमूलघूल सकल कर्मोंके विनाश  
होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण, निरायाध अमन्द आनन्द  
की परंपरासे संपन्न हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रद्वेष  
कफिल धर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित  
हो जाता है और अभ्यायाध सुखका भोक्ता बन जाता है ॥ सु० ८ ॥

जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त धर्म  
को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके भी पात्र नहीं होते हैं—इस बात

आ रीतिसे चारित्र्यकी आराधना करवावना मुनि ज्ञानकी प्राप्ति करी मुक्त  
बने छे आ वातने सूत्रकार कहे छे— संस्त्राय ” इत्यादि—

सम्यग्दर्शनसंपन्न मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे जिनेन्द्र  
द्वारा प्रतिपादित भुतचारित्र्यरूप धर्मके सम्यग्ज्ञानकी वजहसे परिनिष्पन्न धर्म  
का छे अर्थात् चेताना सकल कर्मोंके विनाश कर्ता प्रकटित शुद्ध  
आत्मस्वरूपका कारणे कर्त प्रकटित आनन्द ( परावण ) आनन्द  
संपन्न धर्म का छे सम्यग्दर्शनसंपन्न महामुनि जिनेन्द्रद्वेष कहेवा  
धर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करवावनी संपन्न कर्मोंकी रहित वनी वय  
छे अने अभ्यायाध सुपना बोधवा बने छे ( सु ८ )

वे मिथ्यादृष्टि छे वे मिथ्यात्वका प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त धर्मके

મૂલમ્—एवं से उट्टिए ठियप्पाअणिहे अचले चले अवहि-  
लेस्से परिठ्वए ॥ सू० ७ ॥

छाया—एवं स उत्थितः स्थितात्मा अनीहः अचल चलः अवहिल्लेश्याः  
परित्रजेत् ॥ सू० ७ ॥

टीका—एवम्=उत्तरीत्या स उत्थितः=कर्मधूननार्थं गृहीतप्रव्रज्यः स्थितात्मा-  
श्रुतचारित्रधर्मे स्थितः=स्थिरीभूत आत्मा यस्य सः-धर्मााराधनपरायणः, अनीहः=  
कपटवर्जितः-अनिगूहितवल्कीर्य इत्यर्थः, यद्वा-‘अस्निहः’ इति छायाः रागद्वेष-  
रहितः, अचलः=महावाते प्रवहति सति मेरुरिवानुकूलप्रतिकूलपरीषदोपसर्गसम्पु-  
स्थितौ सत्यामप्रकम्प., विकृताध्यवसायरहित इत्यर्थः । चलः=स्थिरवासवर्जितः,  
उग्रविहारीत्यर्थः । अवहिल्लेश्याः=न वर्त्तते संयमाद्बहिल्लेश्या=मनोवृत्तियस्य सः  
तथोक्तः, संयमैकलक्ष्यः सन् परित्रजेत्=विहरेत् ॥ सू० ७ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिसे कर्मों को हटानेके लिये जिसने आर्हती दीक्षा  
धारण की है, तथा जिसकी आत्मा श्रुतचारित्ररूप धर्म में स्थिरीभूत है-  
धर्मके आराधन करनेमें जो परायण है, कपटरहित है-अपने बल और  
वीर्यको जिसने छिपाता नहीं है, अथवा अस्निह-राग और द्वेषसे  
रहित है, झंझावातके चलने पर भी सुमेरुकी ज्यों जो अनुकूल प्रतिकूल  
परीषह और उपसर्गोंके आने पर भी अडोल बना रहता है-विकृत-  
परिणामोंसे शून्य रहता है, जो उग्रविहारी है-स्थिरवास नहीं करता है,  
संयमके सिवाय बाहिरि पदार्थोंमें जिसकी मानसिक वृत्ति चलायमान नहीं  
होती है, ऐसा मुनि संयमरूप अपने एक लक्ष्यमें स्थिर बन विहार करे॥सू०७॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે આર્હતી દીક્ષા ધારણ કરી  
છે તથા જેનો આત્મા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે-ધર્મનું આરાધન કર  
વામાં જે પરાયણ છે, કપટરહિત છે-પોતાનું બળ અને વીર્યને જેણે છુપાવેલ  
નથી અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, ગમે તેવા ઝાઝાવાતની સામે  
જેમ મેરૂ પર્વત ચડાગ અને અચળ રહે છે, એ રીતે ગમે તેવા ઉપસર્ગો અને  
પરિષદ આવા છતાં અચળ રહે છે-વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે, જે ઉગ્ર  
વિહારી છે-સ્થિર વાસ કરતા નથી, સયમ સિવાય બહારના પદાર્થોમાં જેની  
માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન થતી નથી, એવા મુનિ સયમરૂપ પોતાના એક લક્ષ્ય માં  
સ્થિર બની વિહાર કરે (સૂ०૭)

उक्तरीत्या चारिभमाराभयन् ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—  
'संस्वाय' इत्यादि ।

मूखम्—संस्वाय पेसलं घम्म दिट्ठिम परिणिब्बुडे ॥ सु० ८ ॥

छाया—संस्वाय पेसलं घम्मं इट्ठिमान् परिनिवृत्त ॥ सु० ८ ॥

टीका—इट्ठिमान्—सम्यग्दर्शनवान् पेसलं=विद्यादिवापररिक्तं शुद्धं घम्मं=जिनोक्तं भुक्तचारिभ्रास्यं संस्वाय=सम्यग्ज्ञानेन विद्याय परिनिवृत्ता=समूलसफल-घम्मंस्वायत् प्रकटितशुद्धात्मस्वरूपतया निरायाचामन्दानन्दसन्दोहसम्पन्नो भवति ॥ यस्तु मिथ्यादृष्टिः पेसलं घम्मं न जानाति स परिनिवृत्तो न भवतीति दर्शयितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

उक्त रीतिसे चारित्रकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—“संस्वाय” इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्यक् मुनि विज्ञानिक दृष्टिसे रहित शुद्ध ऐसे जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित भुक्तचारित्ररूप घर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान कर परिनिवृत्त हो जाता है—अर्थात् आमूलचूल सकल कर्मोंके विनाश होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेका कारण, निरायाच अमन्द आनन्द की परपरासे संपन्न हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रद्वेष कथित घर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित हो जाता है और अव्यायाच सुखका भोक्ता बन जाता है ॥ सु० ८ ॥

जो मिथ्यादृष्टि है, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त घर्म को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके ली पात्र नहीं होते हैं—इस बात

का शीतधी चारित्रकी आराधना इत्याद्याया मुनि ज्ञानकी प्राप्ति करी मुक्त होने के लिये चारित्रकी आराधना करके है—“संस्वाय” इत्यादि—

सम्यग्दर्शनसंपन्न मुनि विज्ञानिक दृष्टिसे रहित शुद्ध ऐसे जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित भुक्तचारित्ररूप घर्मके सम्यग्दर्शनसे मुक्त होनेसे परिनिवृत्त घर्म का अर्थ है अर्थात् चेताना सकल कर्मोंके अमूलचूल यत्न प्रत्येक शुद्ध आत्मस्वरूपका इत्येके केवल प्रकारकी आयासद्वित अमन्द (यासवार) आनन्द संपन्न घर्म का अर्थ है सम्यग्दर्शनसंपन्न महामुनि जिनेन्द्रद्वेष कथित घर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना इत्याधी संपन्न कर्मोंकी रहित जनी का अर्थ है अने अव्यायाच सुखका भोक्ता होने के (सु ८)

वे मिथ्यादृष्टि के ते मिथ्यात्वका प्रभावकी शुद्ध ऐसे अनेका घर्मके

મૂલમ્—તમ્હા સંગંતિ પાસહ, ગંથેહિં ગઢિયા ણરા વિસળ્ણા  
કામક્રંતા, તમ્હા લૂહઓ ણો પરિવિત્તસેજ્જા ॥ સુ૦ ૧ ॥

જાયા—તસ્માત્ સજ્ઞમિતિ પશ્યત, ગ્રન્થૈર્ગ્રથિતા નરા વિપળ્ણાઃ કામક્રાન્તાઃ,  
તસ્માદ્ રૂક્ષાત્ નો પરિવિત્તસેત્ ॥ સુ૦ ૧ ॥

ટીકા—ઇતિ શબ્દોઽત્ર હેત્વર્થે; ઇતિ=યતઃ-મિથ્યાદૃષ્ટિઃ સજ્ઞવાન ભૂત્વા ન  
પરિનિર્વૃત્તો ભવતિ તસ્માત્ સજ્ઞ=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધં તદ્વિપાક વા પશ્યત=વિવેક-  
બુદ્ધયા પર્યાલોચયત । સજ્ઞમાહ-ગ્રન્થૈઃ=સવાહ્યાભ્યન્તરપરિગ્રહૈઃ ગ્રથિતાઃ=અવ-  
દ્ધાઃ વિપળ્ણાઃ=ગ્રન્થસજ્ઞે નિમગ્નાઃ કામક્રાન્તાઃ-કામભોગાભિનિવિષ્ટચિત્તા ન પરિ-  
નિર્વૃત્તા ભવન્તિ; કિન્તુ શારીરમાનસૈર્નાનાવિધદુરન્તદુઃસ્વૈઃ પરિતપ્તા એવ ભવન્તિ,  
તસ્માત્ કારણાત્ મુનિઃ રૂક્ષતઃ-રાગાદિરહિતત્વાદસ્નિગ્ધતયા રૂક્ષ ઇવ રૂક્ષઃ=નિસ્સજ્ઞ-

કો દિશાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં “ તમ્હા ” ઇત્યાદિ ।

સૂત્રમ્ ઇતિ શબ્દ હેત્વર્થમ્ પ્રયુક્ત હુઆ હૈ । જિસ કારણસે વહ મિ-  
થ્યાદૃષ્ટિ વાહ્ય પદાર્થોં મ્ સંગ-આસક્તિવાલા બન કર મુક્ત નહીં હોતા  
હૈ, ઇસી કારણસે હે શિષ્ય ! તુમ ખી માતા પિતા આદિકે સંબંધકા ઓર  
ઉસકે વિપાકકા વિવેકબુદ્ધિસે અચ્છી તરહસે વિચાર કરો । જો વાહ્ય  
ઓર આભ્યન્તર પરિગ્રહોંસે બંધે હુણ હૈં, ઓર ઇસીલિયે જો પરિગ્રહકે  
સમ્બન્ધમ્ મગ્ન હૈ, કામભોગોંમ્ જિનકા ચિત્ત સર્વ પ્રકારસે લબલીન હૈ,  
વે ઉસ અવસ્થામ્ મુક્ત નહીં હો સકતે હૈ । સિર્ફ એસે જીવ શારીરિક  
ઓર માનસિક નાના પ્રકારકે દુરન્ત દુઃસ્વોંસે હી સંતપ્ત હોતે રહતે હૈ ।  
ઇસ કારણ મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ રૂક્ષ-સંયમસે કમી ખી ઉદ્ધિગ્ન

બાણતા નથી, આથી તે મુક્તિને પાત્ર પણ નથી બનતા આ વાત બતાવવા  
સૂત્રકાર કહે છે “ તમ્હા ” ઇત્યાદિ—

સૂત્રમા ઇતિ શબ્દ હેતુ-અર્થમા પ્રયુક્ત થયેલ છે જે કારણથી તે મિથ્યા  
દૃષ્ટિ બાહ્ય પદાર્થોમા આસક્તિવાળા બની મુક્ત થઈ શકતા નથી, આ માટે છે  
શિષ્યો ! તમે પણ માતા પિતા આદિના સબંધને અને એના વિપાકને વિવેક-  
બુદ્ધિથી વિચાર કરો જે બાહ્ય અને આંતરિક પરિગ્રહોથી બંધાયેલા છે અને  
એથી કરી તેઓ એમા જ પુલેલા છે, કામભોગોમા જેમતુ ચિત્ત સર્વ-પ્રકા-  
રથી મગ્ન છે તેઓ એ અવસ્થામાંથી મુક્ત થઈ શકતા નથી આવા જીવો  
શારીરિક અને માનસિક નાના પ્રકારની વ્યાધિ-ઉપાધિઓમા સતપ્ત રહે છે  
આ કારણે મુનિતુ કર્તવ્ય કે તે રૂક્ષ-સંયમથી કઠિ પણ ઉદ્ધિગ્ન ન બને.

संयम, तस्मात् नो परिविप्रसत्=न विभीयात्-संयममुपादाय परीपशद्विभ्यस्त्रास  
न प्राप्नुयात्-अविचस्मनसा संयमं परिपालयदित्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

न हो। स्त्रक्षक अर्थ यहाँ संयम है; क्योंकि कि यह रागादिक क्षोभोंसे रहित  
होता है, इस लिये इसमें स्निग्धता नहीं आ सकती है, अतः उसके न  
होनेसे यह स्त्रक्षकी तरह स्त्रक्ष है, स्त्रक्ष होनेसे ही यह कपायोंसे संश्लिष्ट  
नहीं हो सकता है ऐसे संयमको ग्रहण कर मुनि परीपह आदिसे भय  
भीत न हो-अविचलित चित्तसे संयमकी पालना और उसकी सदा  
रक्षा करे।

मिथ्यादृष्टि मुक्त नहीं होता-इसका कारण सूत्रकार पतलाते हैं। वे  
कहते हैं कि उसकी मिथ्यात्वके सम्यक्से पाद्य पदार्थोंमें आसक्ति  
पनी रहती है, जो संयमकी विघातक है। इसकी बुद्धि कामाक्रान्त होती  
है, तथा पाद्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंमें यह सदा मग्न रहता है। इस  
लिये अनेक वुरन्त शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंका सामना करता  
हुआ भी संयमके दर्शन तकसे वंचित रहता है, फिर मुक्तिकी तो पाल  
ही क्या करनी? इसलिये मुनिका कर्त्तव्य है कि यह संयम ग्रहण करने  
के बाद परीपह और उपसर्गादिकोंके भ्रान पर भय न करे और अवि  
चलित मन धन संयमकी पालना और रक्षा करता रहे ॥ सू० ९ ॥

इक्ष्णो अर्थ अदि सखम छे केन के ते शमादिक दोषोधी रहित होय  
छे आ इत्ये तेनामं स्निग्धता आवी शक्ती नधी. आ इत्ये ते इक्ष्णी  
वरुं इक्ष छे. इक्ष होवाधी व ते इषाभोधी अङ्गता नधी. आवा  
सखमने अक्ष्णु करी मुनि परिषद आदिधी लक्ष्णीत न जने-अविचलितचित्तधी  
सखमनी पालना जने तेनी सदा रक्षा करे.

मिथ्यादृष्टि मुक्त नधी बरु शक्ता जेनु अरु सुत्रकार जतावे छे  
ते इहे छे के जेनामं मिथ्यात्व होवा सखम तेनी पाद्य पदार्थोभा आसक्ति  
रहे छे, जे सखमनी विघातक छे जेनी बुद्धि विषयधी व्याप्त होय छे,  
जने पाद्य तथा आन्तरिक परिग्रहोभा जे सदा मग्न रहे छे आधी  
लक्ष्ण करे जेना शारीरिक जने मानसिक कष्टोने सामने इत्या उवा पणु सख  
मना दर्शनधी पणु वंचित रहे छे पही मुक्तिनी ते पाल व इषा करवी. आ  
भाटे मुनिनु इत्ये छे के सखम धारण इत्या जाइ परिषद जने उपसर्गा  
दिशोना आषाधी लक्ष्णीत न जने जने अविचलित मनना जनी सखमनी  
पालना जने रक्षा इत्या रहे ( सू ६ )

कस्य पुनः सयमादपरिचासः सभवतीति जिज्ञासायामाह—‘जस्सिमे’ इत्यादि

मूलम्—जस्सिमे आरंभा सव्वतो सव्वत्ताए सुपरिण्णया भवन्ति, जेस्सिमे लूसिणो णो परिवित्तसन्ति, से वन्ता कोहं च माणं च मायं चलोहं च । एस तुट्ठे वियाहिए—त्तिवेमि । सू० १०।

छाया—यस्येमे आरम्भाः सर्वतः सर्वतया सुपरिज्ञाता भवन्ति, येष्विमे लूपिणो नो परिवित्रस्यन्ति, स यान्त्वा क्रोध च मानं च माया च लोभं च । एष तुट्ठः व्याख्यातः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—येषु=आरम्भेषु आरम्भप्रवृत्तिषु इमे=ग्रन्थग्रथिता विपण्णाः कामक्रान्ताः जनाः लूपिणः=लूपणशीला हिंसका नो परिवित्रस्यन्ति=अज्ञानेन प्रचलमोहोदयेन च नोद्विजन्ते । स्वस्वप्राणपरित्राणकारणात् स्वस्वस्थानस्थिताः पृथिव्यादयस्ताव भयसञ्ज्ञावतः, तथा—विलनीडगृहादिक निर्माय स्वात्मगोपनपराः स्थिताः

क्या कारण है कि जिससे सयमसे मुनिजनोंको चास नहीं होता है? इस प्रकारकी जिज्ञासा होनेपर सूत्रकार कहते हैं—“जस्सिमे” इत्यादि।

जो जीव अनेक आरंभों—अनेक आरम्भमय प्रवृत्तियोंमें बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंसे ग्रथित, तथा उस परिग्रहके जुटानेमें मग्न और कामभोगोंमें मूर्च्छित बन कर अनेक जीवोंकी हिंसा करनेरूप प्रवृत्तिमें सङ्घिष्टचित्त रहते हैं, वे अज्ञान और प्रचल मोहके उदयसे उस प्रकारकी प्रवृत्तिको करते हुए भय नहीं करते हैं—हमें नरकनिगोदादिकोंके दुरन्त दुःख भोगने पडेंगे इस प्रकारके भयसे वे किसी भी तरह नहीं डरते हैं । ये दुष्ट जन अपने २ स्थानमें स्थित भयसंज्ञावाले पृथिवीका-

कस्य कारण छे के मुनिजनने सयमथी चास थतो नथी ? आ प्रकारनी लसासा थवाथी सूत्रकार कहे छे—“जस्सिमे ” इत्यादि

जे एव अनेक आरंभो—अनेक आरंभमय प्रवृत्तियोभा बाह्य अने अदरना परिग्रहोथी गुथाछ, तथा आवा परिग्रहने जेउवाभा मग्न अने कामभोगोभा मूर्च्छित जनी, अनेक एवोनी हिंसा करवाइय प्रवृत्तिभा व्याकुण चित्त रहे छे, ते अज्ञान अने प्रणण मोहुना उदयथी जे प्रकारनी प्रवृत्तियो करता लय नथी करता—अमेने नरक निगोदादिकना लय कर डे जे भोगववा पउथे आ प्रकारना लयथी ते कोछ पण्णु रीते उरता नथी आवा दुष्ट जनो पोत-पोताना स्थानभा रही लयसंज्ञावाणा पृथ्वीकायिक आदि ओकेन्द्रिय एवोने,

શ્રીશ્રિયાદયઃ ક્ષુપક્ષિમનુષ્યાદિપૃષ્ઠેન્દ્રિયાધયે સ્વયમેવ પરિભ્રસ્તાસ્તિહ્યન્તિ વાનપિ  
 વિલિર્તુ પ્રૃષ્ઠા વના નરકનિગાદાદિહુરન્તદુઃખેભ્યઃ ક્ષય ક્વિદપિ ન વિમ્પતિ, પ્રત્યુત  
 તાન્ અન્નિવ્યાન્નિષ્યોપમર્થં હૃષ્યન્તીતિ માવઃ ।

ફિન્તુ यस્ય ગૃહીતમત્રન્યસ્ય મુને ઈમે=પૂર્વોક્તા માતાપિતાદિસજ્જનિતા વા  
 મારમ્માઃ ઉપમોગાદ્યર્થં દ્રવ્યમાવશ્ચૈઃ પૃથિમ્પત્તેજોરાયુવનસ્પતિપ્રસોપમર્દનરૂપાઃ  
 સ્વપરિજ્ઞાન્યપનપ્રતિષોધિતાઃ સાવચન્યાપારાઃ સર્વદઃ=દ્રવ્યક્ષમ્કાલમારત સર્વા  
 સ્મના=ત્રિકરણાત્રિયાગૈઃ સુપરિજ્ઞાતાઃ=દ્વપરિજ્ઞયા વન્ધરેતુસ્વેન વિજ્ઞાપ પ્રત્યાખ્યાન  
 નપરિજ્ઞયા પરિત્યક્તા મઘન્તિ ।

યિક આદિ ણ્કેન્દ્રિય જીર્ણોક્તો, બિલ, નીહ, ઘર ધના કર ઉસીમેં રહ કર  
 અપની આરમાફી રક્ષા કરનેમેં તત્પર શ્રીન્દ્રિયાદિક તયા પશુ, પક્ષી  
 ઓર મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય જીર્ણો ક્તો, કિ જો સ્વય હી હરે હુપ  
 રહતે; હેં હૂં ૨ કર મારતે હેં ઓર આનન્દ મનાતે હેં ।

ફિન્તુ-જિસને ભાગવતી વીજ્ઞાત્કા અજ્ઞીકાર કિયા હૈ; દેસે મુનિ જન  
 પૂર્વોક્ત કુટુમ્બોક્તો અથવા માતા પિતા આદિકે સંગસે ઉદ્ભૂત આરમ ઓર  
 ઉપમોગ આદિકે લિપ દ્રવ્ય વર્થં ભાવશાસ્ત્રોસે પૃથિવીકાયિક, અપ્કાયિક  
 તેજકાયિક, વાયુકાયિક, વનસ્પતિકાયિક ઓર ત્રસ જીર્ણોકે વિનાશ  
 કરનેરૂપ શક્તિપરિજ્ઞાકે અધ્યયનમેં સમજાવે ગયે સાવચન્યાપારકો, દ્રવ્ય,  
 સેત્ર, કાલ ઓર ભાવકી અપેક્ષાસે, ત્રિકરણ ઓર ત્રિયોગોદારા, પ્રપરિજ્ઞા  
 સે વન્ધકે કારણરૂપ જાનકર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે પરિત્યાગ કરતે હેં ।

ભોજ, શહા, ધર બનાવી એમા શ્દીને, પિતાના આરમાની રક્ષા કરવામા વત્પર  
 બેઠાન્દ્રિય, પશુ પક્ષી અને મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય જીર્ણને, કે ૨ પાતે વ  
 શ્વત રહે છે; ગેલી ગેલીને મારે છે અને જાનક મનાવે છે

પશુ જેઓને જાનવતી વીજ્ઞા અજીકાર કરી છે એવા મુનિઓ આ પૂર્વોક્ત  
 કુટુમ્બોને અથવા માતા પિતા આદિના સમથી ઉદ્ભૂત આરમ અને ઉપમોગ  
 આદિને મારે દ્રવ્ય અને જાનશસ્ત્રોથી પૃથ્વીકાયિક અપ્કાયિક તેજકાયિક,  
 વાયુકાયિક વનસ્પતિકાયિક અને ત્રસજીર્ણો વિનાશ કરવાત્પર ય પ્રપરિજ્ઞાના  
 અધ્યયનમા સનભવવામા આવેલ સાવચ વ્યાપારોને, દ્રવ્ય, સેત્ર, કાલ અને જાવતી  
 અપેક્ષાથી ત્રિકરણ અને ત્રિયોગથી પ્રપરિજ્ઞાથી બધના કારણરૂપ બાજાને  
 પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરે છે



स क्रोध च मान च मायां च लोभं च चतुरः कृपायान् वान्त्वा=उद्गीर्य-  
त्यक्त्वेत्यर्थः, मोहनीय क्षपयति-सयममार्गं विहरति । एषः=असौ मुनिः तुष्टः=  
तुष्टितः-कर्मसन्ततेरपसृतः-छिन्नकर्मबन्धः-अकर्मा व्याख्यातः=तीर्थङ्करगणधरा-  
दिभिरभिहितः । एतादृशस्य संयमात् परित्रासो न भवतीति बोध्यम् । इति=एवं  
पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० १० ॥

वह चतुर मुनि क्रोध, मान, माया और लोभ कथायोंका परित्याग कर, मोहनीय कर्मके विनाश स्वरूपसंयममार्गमें विहार करता है। ऐसा मुनि ही तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंके द्वारा कर्मसंततिसे अलग-छिन्न-बंधवाला-अकर्मा कहा गया है। इस प्रकारके मुनिको संयमसे भय नहीं होता है। 'इति ब्रवीमि'-ऐसा मैं कहता हूँ, आगे और भी इसके विषयमें कहूँगा।

भावार्थ-क्या कारण है कि जिससे सयमी मुनिजनोंको संयमसे त्रास नहीं होता है? इसी प्रश्नका उत्तर इस सूत्रमें सूत्रकारने दिया है। वे कहते हैं कि जो जीव आरंभ और आरंभमय प्रवृत्तियोंमें लवलीन रहते हैं, परिग्रहमें जो मग्न हो रहे हैं, अथवा उसके जुटानेमें ही जो रातदिन एक करते रहते हैं, विषयोंमें भोगेच्छासे जिनका अन्तःकरण आक्रान्त बना हुआ है, और इसीलिये जो दूसरे जीवोंकी विराधना करनेसे नहीं डरते हैं-त्रस और स्थावर तकको भी मारकर जो आनंद मानते हैं; ऐसे निर्दयी जीवोंको इतना तक भी ख्याल नहीं होता है कि हमें इन अपने कुकृत्यों का फल नरकनिगोदादि गतियोंमें जाकर भोगना पड़ेगा।

ये चतुर मुनि क्रोध, मान, माया અને લોભ કષાયોનો પરિત્યાગ કરી મોહનીય કર્મના વિનાશરૂપ સયમમार्गમાં विहार करे છે એવા मुनि व तीर्थंकर અને गणधर आदि देवोंद्वारा कर्मसंततिसे अलग-छिन्नबंधवाला-अकर्मा कहेवाया છે આવા પ્રકારના મુનિઓ સયમથી ભય કરતા નથી "इति ब्रवीमि"

—आ रीते हूँ कहुँ छु, आगण पक्ष्य ऐना विषयमा कहीश

भावार्थ-कस्य कारणे छे के नेनाथी सयमी मुनिजनोंने सयमधी त्रास थतो नथी? आ प्रश्नना उत्तरमा सूत्रमा सूत्रकारे आपेल छे तेओ कडे छे के ने एव आरंभ અને आरंभमय प्रवृत्तियोंमा मग्न रहे छे, परिग्रहमा ने मग्न होय छे, અને ऐनामा व ने रात-दिन श्येोपश्येो रहे छे, विषयमा भोगेच्छाधी नेनु अन्तःकरण आक्रान्त भनेलुं छे, અને आ माटे ने भीव लवोनी विराधना करवाधी डरतो नथी, त्रस અને स्थावरने मारीने ने आनंद माने छे, ऐवा निर्दयी लवोने ऐटवो पक्ष ख्याल नथी थतो के अभादे आ ने करेवा कुल्लोतु क्षण नरकनिगोदादि गतिओमा वछेने भोगवधु पश्ये केमके अज्ञान અને

प्रवीमोतिपदमतिहात वक्ष्यमाणमर्धमुपदर्शयति—'कायस्त' इत्यादि ।

मूत्रम्—कायस्त वियाघाप सगामसीसे वियाहिप । से द्रु पारगमे मुणी। अत्रि हम्ममाणे फलगावयद्वा कालोवणीप कखेब्ब काल जाव सरीरभेओ च्चि वेमि ॥ सू० ११ ॥

घाया—कायस्य व्याघातः सग्रामशीर्षं न्यास्यातः । स द्रु पारङ्गमो घृनिः । अपि ह्यन्यमानः फलकापकृष्टी कालोपनीतः काश्चत्कालं याक्त् शरीरमद् इति प्रवीमि ॥ सू० ११ ॥

टीका—कायस्य=भौदारिक-तैजस-कर्मण-शरीरस्य भयप्रादिकर्मचतुष्टयस्य पा फयो कि भक्षण और प्रफल मोहक उदयसे उन्हें भारंम-समारभादि कायोसे भय नहीं होता है, परंतु जो यह समझ चुके है कि ये भारंम-समारंम आदि कार्य भयङ्कर नरकनिगोदादिक अनर्थोंके उत्पादक हैं, इसलिये वे इनका भ्रिकरण और प्रियोगसे द्रुष्यक्षेत्रादिकी नी अपक्षासे त्यागकर चुके हैं वेस मुनिजनोंको सदा ये भयप्रद ही ज्ञान होत रहते हैं । इसीलिय इन सप अनर्थोंके त्यागरूप संघमसे उन्हें अप्राप्त होता है, और इसीसे कपाय आदिके त्यागक्रमसे वे धीरे २ अकर्मा पनते हैं । यही तीर्थङ्करादिकोंका अभिमत है ॥ सू० १० ॥

“प्रवीमि” इस पदसे सूचित वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार “कायस्त” इत्यादि सूत्रसे प्रदर्शित करते हैं—

भौदारिक, तैजस और कर्मण-इन तीन शरीरों अथवा नयोपग्राहि

प्रलण मोहना उदयधी तने आरंभ-समारंभादि कार्योधी भय धते नधी परत ७ समल सुकेल उ के आ आरंभ समारंभ आदि काय भय कर नरक निजे दारिक अनर्थोना उत्पदक उ तेधी ने तेनी त्रलु इत्यु अने त्रलु येनधी तन्-सेत्रादिनी पलु अपेक्षाधी त्याग कधी सुकेल उ जेवा मुनिशाब्देने जे सदा भयप्रद क वयातां रहे उ अ भागे आ लधा अनर्थोना त्यागरूप सुयनधी तने त्राच धते नधी अने जेधी कपाय आदिने त्यागक्रमधी ते धीरे धीरे अकर्मा अने उ जेयो तीम कर आदिना अन्विष्यथ उ (सू०१)

“प्रवीमि” आ पदधी सूचित वक्ष्यमाण विषयने सूत्रकार “कायस्त” इत्यादि सूत्रधी प्रदर्शित करे उ

भौदारिक तैजस अने कर्मण आ त्रलु शरीरों अथवा नयोपग्राही आरं

વ્યાઘાતઃ=આત્યન્તિકવિનાશઃ સગ્રામશીર્ષમ્=અષ્ટવિધકર્મૈરિસંગ્રામશીર્ષમ્ વ્યા-  
 રુચ્યાતઃ=તીર્થદ્વરૈઃ કથિતઃ । યથા=દ્રવ્યસંગ્રામશિરસિ શત્રું પરાજિત્યેષ્ટાન્ મોગાન્  
 વીરઃ પ્રાપ્નોતિ, એવ ભાવસંગ્રામશિરસિ કર્મવૈરિવિનાશનાદ્ વીરઃ સયમી અનન્ત-  
 કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનં પ્રાપ્નોતીતિ ભાવઃ । સ હુ=સ એવ મુનિઃ પારંગમઃ જ્ઞાનાદિ  
 પન્ચવિધાચારતરણિસમારૂઢઃ સંસારસાગરપારગામી ભવતિ । કિન્ચ સ પરીષો-  
 પસર્ગૈર્હન્યમાનોઽપિ=ઉપદુતોઽપિ ફલકાવક્રુષ્ટી=અવક્રુષ્ટમસ્યાસ્તીત્યવક્રુષ્ટી ફલકવદ-  
 વક્રુષ્ટી ફલકાવક્રુષ્ટી, યથા ફલકં વાસ્યાદિભિરુભયપાર્શ્વતસ્તષ્ટ ઘટ્તિં સત્ તદુ  
 ભવતિ, અરક્તદ્વિષ્ટં વા ભવતિ, તથા સાધુરપિ સવાહ્યામ્બ્યન્તરેણ તપસા નિષ્પન્-

ચાર અઘાતિયા કર્મોંકિ આત્યન્તિક ક્ષયકો, તીર્થદ્વરોંને સંગ્રામશીર્ષ,  
 અર્થાત્-અષ્ટવિધ કર્મોંકે સાથ સંગ્રામકા અગ્રભાગ કહા હૈ । જૈસે  
 દ્રવ્યસંગ્રામકે અગ્ર ભાગમૈં શત્રુકો જીત કર વીર પુરુષ અપને ઈચ્છિત  
 મોગોંકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઈસી તરહ ભાવસંગ્રામકે અગ્ર ભાગમૈં કર્મ-  
 રૂપી વૈરિયોંકે વિનાશસે વીર સંયમી અનન્ત કેવલજ્ઞાન અનન્ત કેવલદર્શન  
 કો પ્રાપ્ત કર લેતા હૈ । એસા હી મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારકે  
 આચારરૂપી નૌકા પર સવાર હોકર સંસારરૂપી સમુદ્રકા પારગામી હોતા  
 હૈ । પરીષહ ઓર ઉપસર્ગોંસે ઉપદુત હોતા હુઆ મી યહ ફલકકી તરહ  
 અવક્રુષ્ટી હોતા હૈ । અવક્રુષ્ટ જિસકે હૈ વહ અવક્રુષ્ટી હૈ, ફલકકે તુલ્ય જો  
 અવક્રુષ્ટી હૈ વહ ફલકાવક્રુષ્ટી હૈ । જૈસે ફલક-કાષ્ટકા પાટિયા કુલ્હાઢી  
 વગૈરહ હથિયારોંસે આજૂવાજૂમૈં છીલે જાને પર પતલા હો જાતા હૈ,  
 ડસી તરહ સાધુ મી વાહ્ય ઓર આમ્બ્યન્તર તપ તપનેસે કૃશશરીર-દુર્બલ  
 ઓર રાગદ્વેષ રહિત હો જાતા હૈ । અથવા-જૈસે વહી ફલક, વાસી (વસોલા)

અઘાતિયા કર્મોંના આત્યન્તિક ક્ષયને તીર્થ કરોએ સ ગ્રામશીર્ષ, અર્થાત્-અષ્ટવિધ  
 કર્મોંની સાથે સંગ્રામને અગ્રભાગ કહેલ છે જે રીતે દ્રવ્યસંગ્રામના  
 અગ્ર ભાગમા શત્રુને છુટી વીર પુરુષ પોતાના ઇચ્છિત મોગોને પ્રાપ્ત  
 કરે છે, આવી રીતે ભાવસંગ્રામના અગ્ર ભાગમા કર્મરૂપી વૈરિયોના  
 વિનાશથી વીર સયમી અનન્ત કેવળજ્ઞાન, અનન્ત કેવળ દર્શનને પ્રાપ્ત કરી લે  
 છે એ જ રીતે મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારના આચારરૂપી નૌકા ઉપર  
 સવાર થઈ સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર ઉતરનાર બને છે પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી  
 ઉપદ્રુત (યુક્ત) થવા છતાં પણ તે મક્કમ રહે છે જેવી રીતે શ્લક-લાકડાનું  
 પાટીયું કુવાડાથી કે બીજા હથિયારોથી છોલતા પાતળું થઈ નથી, એ  
 જ રીતે સાધુ પણ બાહ્ય અને અંદરથી તપ તપતા તેનું શરીર હમણું મનેજ  
 રાગદ્વેષરહિત થઈ નથી એમ પાટીયું કુવાડા વિ છોલવાથી પાતળું બને છે

वेहस्तनुदुर्बलशरीरा रागद्वेषरहितमेति । यद्वा—यथा फलकमुपगतो वास्यादिनाञ्च कृप्यमात्मवकृष्टं च सत् शयनोपयोगिफलकं खेत्वनोपयोगिपट्टिकास्यं वा सपद्यते तथा मुनिर्बाह्याभ्यन्तरेण तपसा बहिरन्तर्भात्मानमवकर्षति, तत्रानुकूलमतिहृत्परिपोषसर्गैर्बहिः शरीरमन्तस्तु कर्म भवकृप्यमाणं सदात्माञ्चकृष्टो भवति, वास्यादिशस्त्रेण तस्यमत्साः कृशावेभादिना ताव्यमानो वा कर्मघोटनाशो निर्बेदं प्राप्नोति ।

यद्वा—‘फलकावस्थायी’ इति ज्ञाया । दुर्बचनवास्यादिमिस्तत्पमाणाञ्चिपि

कुल्हाडी बगैरहसे छीले जानेपर और घिसे जानेपर पतला और चिकना हो जाता है और शयन करनेके काममें तन्त्ररूपसे और लिखने पढ़नेके काममें पट्टीरूपसे आता है, उसी प्रकार मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तर्पोंद्वारा बाहर और भीतरसे अपने आपको कृश कर देता है, अनुकूल, प्रतिकूल परीषद् और उपसर्गों के जीतनेसे बाहरमें उसका शरीर और भीतरमें कर्मोंके बंधन शिथिल हो जाते हैं, ऐसी अवस्थामें वह आत्मा उन कर्मोंके बंधनसे शिथिल—हल्का हो जाता है । पहिले कर्मोंके बंधनका जितना भार उस पर था उसके शिथिल होने पर आत्मा भी पहिलेकी अपेक्षा उस भारके शिथिल होते ही स्वयं अपने आपको विना बोझके अनुभव करने लगता है । क्रम २ से जब वह कर्मोंका शिथिल हुआ बंधन बिल्कुल नष्ट होन लगता है तब वह आत्मा कर्मोंके दूटसे समय कुल्हाडी भादि शास्त्रसे कपटे जाने पर या कशा—कोडा और केश्र आदिसे ताड़ित होने पर भी खेदविन्न नहीं बनता है ।

अथवा—“फलगावयुक्ती” की सस्तुत ज्ञाया ‘फलकावस्थायी’ भी होती

जने प्रसन्नाशी लीमुं धाम छे जने सुवा भाटे पाटना रूपमां जने लक्षण—पदवाना भाये पट्टीरूपमां हेस्वाम छे, जे ज शते मुनि पाह्य जने अहस्या तपसी पोते पोतानी जतने दुलणी जनावी दे छे अनुकूल प्रतिकूल परिषद् जने उपसर्जने लववाशी लक्षारमां जेनु शरीर जने अहसमां कर्मोंनां लघन छुटी जतां जेने आत्मा कर्षको जनी जस छे प्रथम कर्मोंना लघनने लेटेबा बाह तेना उपर हते ते दूर जतां जने लक्षारमा लघन पक्षु हटी जतां स्वयं पोते पोताने जेअवस्थित माने छे कम कमशी कर्मोंना जेअ कर्षको जने छे जने लघन तुटतां तुटतां शय निर्भूज जने छे, त्वारे आत्मा भीली छे छे जेइनु नामनिश्चय सरयु रसेतुं नथी

अथवा—“फलगावयुक्ती” नी सस्तुत ज्ञाया फलकावस्थायी पक्षु धाम छे जेने

यः कपायाभावेन फलरूपश्चलोऽप्रतिष्ठते तच्छीलश्च स फलकावस्थायी—वासीचन्दनरूपः, वास्या तक्ष्यते चन्दनेन चाऽनुलिप्यते, उभयत्र समभाव इत्यर्थः ।

यद्वा—‘ फलकापदर्थी ’ फल कर्मक्षयरूप तटेय फलक तेनाऽऽपदि ससारभ्रमणरूपायामर्थः; प्रयोजन फलकापदर्थः, स विद्यते यस्यासौ फलकापदर्थी—ससारभ्रमणरूपायामापदि कर्मक्षयरूपफलाभिलाषीत्यर्थः ।

तथा कालोपनीतः—फालः=मरणकाल. उपनीतः=प्रज्ञाविषयीकृतो येन स है । इसका अर्थ इस प्रकार है कि दुर्वचनरूपी कुठारसे छेदा गया भी वह मुनि कषायरहित होनेसे फलककी तरह बिना किसी विकृतिके स्थिरचित्त रहता है । इसे क्या बसोला क्या चन्दन ? दोनोंमें समता रहती है । चाहे कुल्हाडीसे यह काट दिया जावे तो इच्छे उसमें रोष नहीं, और चन्दनसे लिप्त कर दिया जावे तो उसमें उसे हर्ष नहीं, अर्थात्—उसे दोनोंमें समभाव रहता है ।

अथवा—“ फलकापदर्थी ” यह भी संस्कृत छाया “ फलकावयद्वी ” जब इस पदकी मानी जावेगी, तब इसका अर्थ इस प्रकारसे होगा कि कर्मक्षयरूप जो फल वही हुआ फलक, उससे संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो मुनि प्रयोजनवाला है वह फलकापदर्थी है । मुनिजन ससारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें कर्मक्षयरूप फलके अभिलाषी होते हैं । मुनिको जब अपना मरणकाल ज्ञात हो जावे तब वह १२ वर्षकी संलेखनासे क्रमशः शरीरको कृश करता हुआ भक्त

अर्थ के प्रकारने छे के दुर्वचनरूपी कुहाडाथी छेडवाभा आवेल पद्य के मुनि-कषायरहित होवाथी पाटीयानी भाइक डेअपद्य प्रकारनी विकृति विना स्थिरचित्त रहे छे केने वासी (वासदी) शु ? अने अहन शु ? अन्नेमा समता रहे छे लवे कुवाडाथी तेने कापवाभा आवे तो पद्य तेने शुस्से नथी, अने अहनथी वेप करवाभा आवे तो तेने डर्ष नथी अन्नेमा समभाव रहे छे

अथवा—“ फलकापदर्थी ” या पद्य संस्कृत छाया “ फलगावयद्वी ” न्यारे या पदनी भानवाभा आवेशे त्यारे केने अर्थ के प्रकारे थशे के कर्मक्षयरूप के इण तेज थशु इलक तेनाथी ससार-परिभ्रमण-रूप आपत्तिमा के मुनि प्रयोजनवाणा छे ते इलकापदर्थी छे मुनिजन ससार परिभ्रमणरूप आपत्तिमा कर्मक्षयरूप इणना अभिलाषी होय छे मुनिने न्यारे पीताना मरणकाणने समथ अण्णार्थ आवे त्यारे ते १२ वर्षनी संलेखनाथी कमे कमे शरीरने घसावता घसावता

तथाक्त - ज्ञातस्वमरणकालः साधुः, द्वादशवार्षिक्या स्तेरुत्तनया क्रमशः शरीर सलिलस्य मक्तप्रत्याख्यानैः क्लृप्तमरणपादपोषणमनान्यतममरणेन यावच्छरीरमेवः=शरीरस्य मेवः स्वात्मनः पार्यं क्य यावद्भवति तावत् कांसं=मरणकालम् कावृषत्=इच्छेत् शरीरविधूनेन कुर्यादित्यर्थः । एष मक्तप्रत्याख्यानादिभि कृत्स्नकर्मस्यै

प्रत्याख्यान, इच्छितमरण और पदपोषणमन; इनमें से किसी एक मरणसे अपनी आत्मासे जब तक शरीरकी शुष्कता नहीं हो जाती तब तक शरीरको कृश करता रहे, समाधिमरणसे ही शरीरको छोड़े ।

भावार्थ—औदारिक आदि शरीरत्रयक, अथवा भवोपग्राहि कर्म चतुष्टयका अभाव होते ही कर्मों के साप लगे हुए युद्धका अन्त हो जाता है । इस अवस्थामें संग्राममें विजयभी पानेवाले वीरकी तरह वह आत्मा भी अनन्त ज्ञान और अनन्तदर्शनकी विजयपताका फहराता हुआ पंच प्रकारके आचारोंकी पूर्णतासे मुक्तिका धरण कर लेता है । परीपह और उपसर्ग मुक्ति प्राप्तिकी तैयारी करनेवालेके लिये बाधक नहीं बनते हैं । हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लायक बाध और आभ्यन्तर तपोको तपता हुआ, बाह्यमें कृशगात्र एवं भीतर शिथिल कर्मोपव वाला बन जाता है । इस अवस्थामें आत्मा कर्मोंके भारसे हल्का बन

प्राप्तप्रत्याख्यान, इच्छितमरण, अथवा पदपोषणमन आभासी है। अथ मरणभी पोषणा आभासी न्यां सुधी शरीरही पृथक्ता नहीं घटी, त्यां सुधी शरीरने कृश इत्या रहे, अने समाधिमरणभी शरीरने छोड़े.

भावार्थ—औदारिक आदि शरीरत्रयने अथवा भवोपग्राही चार कर्मोने अभाव होता है कर्मोनी साथे वाजेहा युद्धने अत बर्धव्य है. अथ अवस्थायां संग्राममा विजयभी मेजवनार वीरनी भावक ते आत्मा पक्ष अनन्तज्ञान अने अनन्तदर्शनही विजयपताका लहेउपत्य पाव प्रकारना आव्याशनी पूर्णताधी मुक्तिने भावे पड़ेवे है. परिपह अने उपसर्ग मुक्ति प्राप्तिनी तैयारी इत्या वाज्य भावे लायक बनता नहीं है. अ, अथी अस्तु अवश्य भाव छेके ते आत्मा इत्या तेनी समभावधी सामनो करे तो मुक्ति प्राप्तिने लायक जाव अने अइत्या वरने तपता तपत्य बहुरभां कृशशरीर अने नइरधी शिथिल-कर्म उपवगाय लनी व्यय है. अथ अवस्थायां आत्मा कर्मोना भारधी लहेके लनी पोते पोताने लहेके अनुभव इत्या लावे छे लेनी शीते वाज्यनु पाटीव

विधाय महापुरुषः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्यावाधमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं  
स्थानं संप्राप्नोतीति भावः ॥ सू० ११ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

स्वजन-कर्म-शरीर-विधूनन,  
त्रितयगौरव-धूननमात्मनः ।

इह परीपहधूननमन्ततो,—

निजगदे गणनाथसुधर्मणा ॥ १ ॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाह-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“जैनशास्त्राचार्य”-पद्भूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलाल-त्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां धृताख्यं षष्ठ-  
मध्ययन सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥



अपने आपको हल्का अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार काष्ठका पाटिया आजूबाजूसे व्यर्थके अवयव छिल जाने पर शयनादिक कार्योंमें उपयोगी बन जाता है उसी प्रकार तपश्चर्या आदिसे आत्माके ऊपरका कर्मरूपी व्यर्थका कचरा जब निकल जाता है तो यह भी मुक्तिकी प्राप्ति में उपयोगी बन जाता है।

मुनिको जब अपना मरणकाल मालूम हो जावे तो उसका कर्तव्य है कि वह १२ वर्षकी संलेखनासे शरीरको कृश कर भक्तप्रत्याख्यान आदि किसी भी प्रकारसे अपने शरीरका परित्याग करे ॥सू०११॥

आयुआयुधी छेलाछ नवाधी शयनादिकार्योमा उपयोगी अनि नय छे अे प्रकारे तपश्चर्या आदिधी आत्माना उपरना कर्मइधी नकामे कथरे न्यारे निकणी नय छे त्यारे अे पबु मुक्तिनी प्राप्तिमा उपयोगी अनि नय छे

मुनिने न्यारे पोतानो भरखुकाण भाळुम थळ नय त्यारे तेनु कर्तव्य छे के ते १२ वर्षनी सलेखनाशी शरीरने कृश करी ककत प्रत्याख्यान आदि कोर् पबु प्रकारधी पोताना शरीरने त्याग करे (सू०११)

अध्ययनान्तर्गतविषयोका उपसंहार

स्वजन-संग शरीर-ममत्वके

प्रितय गौरवके अरु कर्मके।

कथन है इसमें परिहार का

विधि परीषद्के जयकी कही ॥

यह आचारसूत्रके धूतनामक छंटा अध्ययनकी आचार

चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

अध्ययनान्तर्गत विषयोनो उपसंहार—

स्वजन-संग शरीर-ममत्वना,

प्रितय-गौरवना अरु कर्मना,

विधि परीषदना परिहारने,

कहि कह्यो जगत्त गजाधिपे

आ आचारसूत्रना धूत नामना छंटा अध्ययनकी आचार-

चिन्तामणि-टीकानो अनुवाद् सम्पूर्ण ॥ ६ ॥



। अथ विमोक्षारूपस्य अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देश ।

अथ घृताख्यपञ्चाध्ययनानन्तरं क्रमप्राप्तमहापरिज्ञाख्यसप्तमाध्ययनस्यावसरः, किन्तु तस्य विच्छेदात्सम्पत्ति तन्मोपसम्पत्ते, यतोऽथ यावच्छरीरमेवस्तावत् संपन्नं परिपालयन् मक्तप्रत्याख्यानपूर्वकं पण्डितमरणेन मुनिः कालमभिकाङ्क्षदिति घृताध्ययने 'कस्मिञ्ज कालं जाव शरीरमभो ' इत्यन्तिमसूत्रेण प्रोक्तम् । तदनु महापरिज्ञानामकं सप्तममध्ययनम् । शास्त्रस्य सफलेद्योपादयविषयप्रतिपादकत्वेन तदध्ययने हेयनानाविषयमत्कारजनकविषयपरिपूरितमासीत् । एतदध्ययनमपीत्य समा

॥ विमोक्षनामक आठवां अध्ययनका पहला उद्देश ॥

घृत नामक छठे अध्ययनके बाद क्रमप्राप्त महापरिज्ञा-नामक सातवें अध्ययनका अवसर था, किन्तु विच्छेद हो जानेसे यह इस समय उपलब्ध नहीं है । जय तक शरीरका मेद ( विनाश ) है, तब तक सयमकी पालना करता हुआ मुनि काल-समाधिमरणरूप कालकी चाहना करता रहे, यह बात घृत अध्ययनमें " कस्मिञ्ज कालं जाव शरीरमेभो " इस अन्तिम सूत्रसे कही गई है, उसीके पीछे महापरिज्ञानामक सातवां अध्ययन है ।

यह अध्ययन अनेक प्रकारके सामकारिक विषयोंसे, जो हेयकोटिमें माने गये हैं; परिपूरित था । शास्त्रोंमें प्रत्येक विषयका, चाहे वह हेय हो या अपावेय हो; वर्णन होता है । इस अध्ययनको पढ़ कर और सुन कर

विमोक्ष नामना आठवा अध्ययनने पहिले उद्देश.

घृत नामना छठे अध्ययन पछी महापरिज्ञा नामना सातवा अध्ययनने अवसर दते वयु तेने विच्छेद भई जवावी ते आ श्रमसे प्राप्त भई शके तेम नवी नई सुभी शरीरने खेद (विनाश) छे तय सुभी सयमनी पालना कस्ता मुनि काल-समाधिमरणरूप कालनी चाहना कस्ता रहे. आ बात घृत अध्ययनमा कस्मिञ्ज कालं जाव शरीरमेभो आ अन्तिम सूत्रवी कहेवामां आवेल छे जे पछी महापरिज्ञा नामनु सातवु अध्ययन छे

आ अध्ययन, अनेक प्रकारना सामकारिक विषयोनी-के हेयकोटीमां मानवामां आवेल छे तेनाची-परिपूरुं कर्तुं शास्त्रोमां प्रत्येक विषयनु आके ते हेय कीव अथवा अपावेय हेय, वयु न होय छे. आ अध्ययनने वाचीने अने सांख्यीने महा-

कर्ण्य च महापुरुपास्तदुक्तविधां ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धकारिणी ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया तां परिहृत्य च कर्मधूननपूर्वकं स्वात्मकल्याणमकार्षुः ।

तत्र जल-स्थलाऽऽकाश-पातालादिविहरणरूपाः परकायप्रवेशादिकाः सिंह-व्याघ्रादिशरीरधारणपूर्वकस्वस्वरूपपरावर्तनादिस्वभावाश्चावर्तिन्यो विद्या आसन् । श्रूयते च गुरुपरम्परया-स्वशिष्यमध्यापयन् कश्चिदाचार्य एकदा विचारभूमिं गतवान्, तदनु स शिष्यो बाल्यचापल्येन महापरिज्ञाऽऽध्ययनेऽभिहितायाः सिंहतनुधारण-विद्याया उपयोगं कुर्वन् तत्प्रभावेण स सिंहरूपो जातः, परन्तु तत्परावर्तनविधान-महापुरुषो ने इस अध्ययनमें वर्णित विद्याओं को ज्ञपरिज्ञासे कर्मोंके बंध करानेवाली जान कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका परिहार कर कर्म-धूननपूर्वक अपनी आत्माका कल्याण किया है ।

इस अध्ययनके अंदर जलमें, स्थलमें, आकाशमें, पातालमें विहार करानेवाली विद्याओंका, परशरीरमें प्रवेश करानेवाली विद्याओंका, और सिंह व्याघ्र आदिका शरीर धारणपूर्वक अपने निजरूपका परिवर्तन करानेवाली विद्याओंका वर्णन था । गुरुपरंपरासे ऐसा सुना जाता है कि कोई एक आचार्य महाराज यह अध्ययन एक समय अपने शिष्यको पढा रहे थे। शौचक्रिया की बाधा होने पर जब ये बाहर शौचनिवृत्तिके लिये गये तो शिष्यने बाल-सुलभ चंचलता से इस महापरिज्ञाके अध्ययनमें कथित सिंहशरीरको धरानेवाली विद्याका उपयोग किया और वह उसके प्रभा-

पुत्रोच्चे ये अध्ययनमा वर्णिते विद्याञ्चाने ज्ञपरिज्ञाधी कर्मोना बंध करवावाणी न्वाणीने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी ज्ञेना परिहार करी कर्मधूननपूर्वकं पोताना आत्मानु कल्याणु कर्षुं छे.

आ अध्ययनमां जगमां, स्थलमां, आकाशमां, पातालमां विहार करवावावाणी विद्याञ्चानु, परशरीरमां प्रवेश करवावावाणी विद्याञ्चानु' अने सिंह, बाध आदिना शरीर धारणु करीने पोताना निजरूपना परिवर्तन करवावावाणी विद्या च्चानु वर्णन छतु. गुरुपरम्परधी ज्ञेनुं साबज्यु छे के केछं ज्येक आचार्य महाराज ज्ये अध्ययन पोताना शिष्यने ज्येक समय शीघ्रवी रक्षा छता. आ वपते शौचक्रियानीं बाधा थता न्यारे तेज्ये शौचनिवृत्ति माटे बाडेर गया भाछणधी शिष्ये भाणसुलभ चंचलताधी ज्ये महापरिज्ञा अध्ययनमां कहेल सिंह शरीरने धारणु करवावावाणी विधाने उपयोग करी, अने ते सिंहना स्वरूपमां हेरवाछं ज्ये. सिंहस्वरूपतु परिवर्तन करवावावाणी विधाना अध्ययनधी अप-

अप्यनेन तद्रूप एव स्थितः किं कर्तव्यमिति विचारभूमेरागतेनाऽऽचार्येण विलो-  
 कितः, परमस्वरूपया पुन स्वस्वरूपप्रापितः स्वचेतसि चिन्तितं च-पञ्चमारकेऽस्या-  
 ऽप्यपनेन लाभस्तु दूरापत् एव; प्रत्युत महाननयो मावीति । तत आरम्यैव  
 तस्याभ्यापनक्रिया छत्रमायाऽभूत् । तेनैव हेतुना पुस्तकात्कृतसमयेऽप्याचार्यवर्षेरे  
 त्वअप्यनं न सहाय्यहीतम् । तस्मादिदं विच्छेदमापेति युक्तमुत्पत्त्यामः ।

अयाऽष्टमं विमोक्षाध्ययनं प्रारम्भ्यते । तत्र विमोक्षः—वि=विच्छेपेन सर्वथा मोक्षाः=  
 श्रीमन्नं कर्मम्यः कर्मबन्धकारणेभ्यश्च, पूयग् भूत्वा पश्चित्तमरणेन शरीरपरित्याग  
 वसे सिंहाके स्वरूपमें आ गया । यह सिंहास्वरूपके परावर्तन करानेवाली  
 बिद्याके अध्ययनसे अपरिचित था, इसलिये उससे छूट कर अपने अस-  
 ली रूपमें नहीं आ सका । शौचसे निवृत्त होकर जब आचार्य महाराज  
 भाये तब उन्होंने इसे सिंहरूपमें देखा, देखकर उसके ऊपर उन्हें क्या  
 आई और उसे सिंहाके रूपसे मुनिरूपमें परिवर्तित कर दिया । बादमें  
 आचार्यने विचार किया कि पञ्चमकालमें इस अध्ययनके पठनसे लाभकी  
 तो कोई आशा ही नहीं है; उल्टा महान् अनर्थ ही होगा । अतः उस  
 समयसे छगाकर ही इस अध्ययनको छुट कर दिया । इसी कारणसे  
 शास्त्रोंकी रचनाके समयमें भी आचार्योंने इस अध्ययनका संग्रह नहीं  
 किया, इसीलिये इसका विच्छेद हुआ ।

अथ विमोक्षाध्ययनं नामका भाठवा अध्ययनं प्रारम्भ होता है ।  
 इसमें 'विमोक्ष' शब्दका अर्थ इस प्रकार है—वि=सर्वथा मोक्ष=रू होना

रिचित होवाही के शिभ्ये चेतना असल रूपने प्राप्त करी शकत नकि, शिभ्ये  
 निवृत्त वर्ध अन्धारे आन्धार् मन्त्रालय आन्ध्य त्पारे तेमये शिभ्यने सिद्धना रूपमा  
 जेये, अने इया आवतां सिद्धना रूपकी मुनिरूपमां पस्वित्तनं करान्यु अ पछी  
 आन्ध्यामे विचार कर्षे के पान्यमा कृतमां आ अध्ययनना पठनकी कथानी तो  
 कोर् आशा नथी, पद्य जेकी विपरीत मन्त्रालयनीय सहायना के आधी ते समये  
 तेमये जे अध्ययनने छुट करी दीया, आ कालखुशी शान्तेनी रचनाना समयमा पद्य  
 आन्ध्यामे जे जे अध्ययनने स शक करत नथी, आ अख्ये जेने सिद्धे वयेत के.

इने विमोक्षाध्ययन नामका आठवा अध्ययनने प्रारंभ थाप के  
 आमां विमोक्ष शब्दने अर्थ आ प्रकार के—वि=सर्वथा, मोक्ष-  
 रू भवु अर्थात् कर्म अने जेना जपना अख्येकी पूयग् वर्ध

इत्यर्थः। तत्प्रतिपादकमिदमध्ययनमपि विमोक्षशब्देन व्यवह्रियते। अस्य धृताध्ययनेन सहाय परम्परासम्बन्धः—तत्र स्वकर्मशरीरोपकरणऋद्धिरससाताख्यगौरवत्रिकोप-सर्गसम्मानानां विधूननेन मुनेः सङ्गरहित्यं प्रतिपादितम्, तद्धूननं तदैव सफलं स्याद् यद्यन्तकाले सम्यग् निर्याणं जायेतेति तदर्थमस्याध्ययनस्यारम्भः ।

अथवा—पठे शब्दादिविषयसङ्गवर्जितेन मुनिनाऽनेकपरीपहोपसर्गाः सहनीया इत्यभिहितम् । एवमत्र मारणान्तिकोपसर्गसर्गोऽप्यनुद्विग्नेन सयमिना सम्यग् निर्याणं कार्यमिति कथनायेदमारभ्यते ।

—अर्थात् कर्म और इनके बन्धके कारणोंसे पृथक् होकर पण्डितमरणसे शरीरका परित्याग करना वही विमोक्ष है । इस विमोक्षका प्रतिपादन करनेवाला यह अध्ययन भी 'विमोक्ष' शब्दसे व्यवहृत हुआ है। इस अध्ययनका धृत नामक छठे अध्ययनके साथ परपरारूपसे संबंध है। छठे अध्ययनमें मुनिको अपनेद्वारा कृत कर्म, शरीर, उपकरण, ऋद्धि-रस-साता-नामक तीन गौरव, उपसर्ग एव मान और अपमान इन सबके विधूननसे सङ्गरहित होना चाहिये—इस प्रकारसे प्रतिपादन किया है। इन सबका विधूनन मुनिका तभी सफल हो सकता है, कि जब उसका अन्तसमयमें निर्याण सम्यक्—शास्त्रोक्त विधिके अनुसार हो, इसी विषयको प्रकट करनेके लिये इस अध्ययनका आरम्भ हुआ है ।

अथवा—शब्दादिक विषयोंमें संगसे रहित मुनिको अनेक परीपह और उपसर्ग सहन करना चाहिये—यह बात भी छठे अध्ययनमें कही गई है; सो मरणके समयमें उपसर्गों के आने पर भी सयमी—मुनिको उद्विग्ण-

पण्डितमरणार्थी शरीरने परित्याग करेवे जे न विमोक्ष छे आ विमोक्षनु प्रतिपादन करवावाणु आ अध्ययन पणु विमोक्ष शब्दही व्याहृत थयेल छे. आ अध्ययनने धृत नामना छुट्टा अध्ययननी साथे परम्पराइपधी सज्ज छे छुट्टा अध्ययनमा मुनिजे पोताना द्वारा कृत कर्म, शरीर, उपकरण, ऋद्धि-रस-साता नामना पणु गौरव, उपसर्ग अने मान अने अपमान आ सवणाना विधूननही सगरहित होवा जेछे जे, आ प्रकारे प्रतिपादन करेल छे आ अधातु विधूनन मुनिनु त्तारे सङ्गणने छे के त्तारे जेना अ त समयमा निर्याण सम्यक्—शास्त्रोक्तविधि अनुसार होय, आ विषयने प्रकट करवा माटे आ अध्ययनने आरंभ थाय छे

अथवा—शाब्दादिक विषयाना संगथी रहित मुनिजे अनेक परिपह अने उपसर्गो सहन करवा जेछे जे आ बात पणु छुट्टा अध्ययनमा कहेवायेल छे, माटे मरणना समयमा उपसर्गो आववाधी पणु सयमी मुनिजे उद्विग्नचित्त

अप्रोक्षेणाधिकार । अस्मिन्प्रोक्षेणाः सति । तत्र प्रथमे-त्रिपट्यधिकारि-  
 तप । पण्डिकानामाहारोपदिष्ट्याविससर्गो वर्जनीयाः, किं पुनस्वन्मत्तस्वीकारः। तपः  
 सं वमविरापकानामवसन्नपार्श्वस्थादीनां संसर्गत्यागश्च कर्तव्य इति । (१)

द्वितीये-वाक्यव्याहारादि प्रयच्छतस्तन्निषेधकृत्तयस्यस्य शस्त्रोक्तदोषमक-  
 वनपुरस्सरं तदाहारादिपरित्याग इति । (२)

बिल नहीं होना चाहिये और सम्यक्-रीतिसे नियौण करना चाहिये  
 इस बातको समझानेके लिये इस अध्ययनका प्रारंभ किया गया है यहाँ  
 उद्देशके अर्थका अधिकार है । इसमें आठ उद्देश हैं-१ प्रथम उद्देशमें यह  
 बताया गया है कि मुनिजनको ३६३ पास्त्यिष्टमतवालोंका आहार,  
 उपधि और शय्या आदिके संसर्गका परित्याग कर देना चाहिये । जब  
 इनकी ये सब चीजें परिबर्जनीय हैं तो फिर उनके मतकी स्वीकृति तो  
 वर्जनीय है ही, इसमें क्या कहना! इसी प्रकार यह भी बतलाया गया है  
 कि जो तप और संयमके विराधक हैं देसे अबसन्न-पास्त्याधिकोंका  
 संसर्ग भी त्यागने योग्य है ।

२ द्वितीय उद्देशमें-मुनिफल्यके विरुद्ध-अकल्पनीय आहारादिक  
 प्रदान करनेवाला यहस्य, "यह आहार मुनिजनके अयोग्य-अकल्प्य है"  
 इस प्रकार मुनिजन द्वारा निषेध करनेपर यदि रुठ होता है तो, मुनिका  
 कर्तव्य है कि वह उस आहारके प्रहण करनेमें शास्त्रोक्त दोषोंका प्रतिपादन  
 करे और उस आहारका परित्याग करे । यह प्रकट किया गया है ।

अतुं न लोभं च अने सम्भ्र-रीतिभी निबोध कर्तुं लोभं च आ वातने सुभ  
 लवया भाटे आ अकल्पनने अरुण करेण छे अर्द्ध उद्देशना अर्थना अधिकार  
 छे. लोभ आर्द्ध उद्देश छे १ प्रथम उद्देशमां लोभ जतावेण छे छे मुनिजनने उद्देश  
 पापदीमतवालाओंना आहार, उपधि अने शय्या आदिना संसर्गना परित्याग  
 करेणे लोभके कारणे तेनी के यधणी थीके पस्विजनीय छे ते पछी तेना  
 मतनी स्वीकृति तो वर्जनीय छे अ लोभां कहेवातुं छे अरुण अ रीते के पणु  
 जतावेणु छे छे ते तप अने संयमना विराधक छे लोभा अणवसन्न-पास्त्याधिकीना  
 संसर्ग पणु त्याग करेणे योग्य छे.

२ धीमा उद्देशमां-मुनिफल्य विरुद्ध अकल्पनीय आहारादिक प्रदान  
 करेवाला नृक्षस्य, आ आहार मुनिजनने भाटे अयोग्य छे-अकल्प्य छे  
 आ प्रकारे मुनिजनद्वारा निषेध करेवासी के रीतस्य ते, मुनिनु कर्तव्य छे छे ते तेना  
 आहारने अर्द्ध करेवामां शास्त्रोक्त दोषोक्त प्रतिपादन करे अने के आहारने

तृतीये—शीतादिना प्रकम्पितं मुनिं कामविकारिणं शङ्कमानाय गृहपतये  
'शीतादिकं मम मात्रकम्पनकारणं न कामविकारः' इति प्रतिपाद्य तच्छङ्कापनौ-  
दनमिति । (३)

चतुर्थे—चापरिहार्यस्याद्युपसर्गोपनिपाते संयमरक्षार्थं वैदानस-गार्द्धपृष्ठका-  
रद्वयरूपमरणं श्रेय इति । (४)

पञ्चमे—ग्लानाद्यवस्थायां पूर्वदृतप्रतिज्ञायाः पालनाशक्तौ मुनेर्भक्तपरिज्ञया  
मरणं साधीय इति । (५)

३ तृतीय उद्देशमें—शीत आदिसे कपते हुए मुनिको देख कर  
गृहस्थ यदि यह शङ्काशील बन जाय कि "इस मुनिके कामविकार हो  
गया है इसीलिये यह कँप रहा है" तो मुनिजनका यह धर्म है कि  
उस शंकाका निवारण करे और कहे कि मेरा शरीर शीतादिक निमि-  
त्तसे कँप रहा है, कामविकारसे नहीं!—यह प्रतिपादित किया गया है ।

४ चतुर्थ उद्देशमें—स्त्री वगैरह द्वारा कृत उपसर्गके अपरिहार्य हो  
जाने पर साधुका कर्तव्य है कि वह अपने संयमकी रक्षाके लिये वैहा-  
नस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणसे अपने प्राणोंको छोड़ देवे—यह स्पष्ट  
किया गया है ।

५ पंचम उद्देशमें—ग्लान आदि अवस्थामें पूर्वगृहीत प्रतिज्ञा की  
पालनामें साधुकी अशक्ति होने पर उस मुनिके लिये भक्तपरिज्ञासे मरण  
प्राप्त करना श्रेयस्कर है—यह बात बतलाई गई है ।

परित्याग करे अथ प्रगट करवाभां आवेत्तु

३ त्रीना उद्देशमा—ठडी आदिथी भ्रूणता मुनिने जोई गृहस्थ कठाय अथी  
शका करे के "आ मुनिने कामविकार थयेत्तु अथी अथे कपी रहेत्तु"   
तो मुनिजनने अथे धर्म अथे के ते गृहस्थनी अथी शकानु निवारणु करे अने  
कहे के माइ शरीर ठडी आदिथी कपी रहेत्तु अथे, कामविकारथी नहि. आर्धु  
प्रतिपादित करवाभां आवेत्तु

४ चोथा उद्देशमा—स्त्री वगैरे द्वारा कथयेत्ता उपसर्ग अनिवायु डोय तो  
साधुनु कर्तव्य अथे के ते पोताना संयमनी रक्षा माटे वैदानस अने गार्द्ध-  
पृष्ठ नामना भरषुथी पोताना प्राणुने छोडी दे आ स्पष्ट करेत्तु अथे.

५ पाचमा उद्देशमा—ज्ञानादि अवस्थाभा पूवे लीथेल प्रतिज्ञाना पालनभा

पठे—वैद्यस्वभावनाया मुनेरिद्वितमरणं मश्वस्तमिति । (६)

सप्तमे—मुनिनैकमासादिका भिक्षुप्रतिमा पालनीया, शरीरस्य संयमपालनाङ्क-  
कावस्थायां क्रमेण पष्टमादितपसाऽऽहारादिसङ्घेपं कृत्वा पादपोषगमनं  
विधेयमिति । (७)

अष्टमे च—धिरपरिपालितचारिषस्य यथाशक्तविहारिणः सूत्रार्थतदुभय-  
प्राप्तादानाऽऽसेवनानन्तरं ब्रह्मज्ञान्या संसीदत्संयमक्रियस्य स्वर्द्धितश्चिष्यसम्पद

६ छठे उद्देश्ये—एकद्व-भावनासे युक्त होकर मुनिका इंगितमरण  
प्रशस्त है । यह प्रकृत किया गया है ।

७ सातवें उद्देश्ये—एक मास आदि प्रमाणवाली भिक्षुप्रतिमा  
मुनिको पालनी चाहिये, तथा जय शरीर संयम पालन करनेकी शक्ति  
रहित अवस्थामें आ जाये तो क्रम २ से पष्ठ और अष्टम आदि तपसे  
आहारका संक्षेप कर उसे पादपोषगमन संयारा धारण कर लेना चाहिये—  
यह वर्णन किया गया है ।

८ आठवें उद्देश्ये—धिरकालसे जिसने चारित्रकी आराधना की  
है और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही जिसने विहार किया है—ऐसे मुनि  
की सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ इन तीनोंके ग्रहण, दान और आसेवनके  
पाद बलकी ज्ञानसे संयमरूप क्रियाकी पालनामें शिथिलता आ रही हो

साधुनी अशक्ति वधाधी के मुनिने भाटे अकतपरिवाधी मरुष प्रप्त करवु  
मेवशर उ अ वात जतावेक छे.

६ छम् उद्देश्यमा—जेकवभावनाधी मुकत जनी मुनिनु उंभितमरुष  
प्रशस्त छे आ प्रजद कसयेक छे

७ सातमा उद्देश्यमा—जेकमास - अदि प्रमाणवाणी भिक्षुप्रतिमा  
मुनिजे पाजनी जेकजे. तथा अजारे शरीर, संयम पाजवाणी शक्तिधी  
रहित अवस्थामां जानी जय तो धीरे धीरे छड जाने अठम अदि तपनी  
अधारने जय करी तेजे पादपोषगमन संयारे धारण करी लेवे जेकजे, अ  
पधुन करेक छे.

८ अठमा उद्देश्यमा—जाना कालधी जेजे चारित्रनी आराधना करी छे  
जने शास्त्रोक्तमिति अनुसार अ जेजे विहार करेक छे जेवा मुनिने सूत्र  
अर्थ जने सूत्रार्थ जे प्रवेष्ट शक्य, दान जने आसेवनना पछी जगनी  
ज्ञानधी संयमरूप क्रियाने पाजनामा शिथिलता अवी रहेक होय तें

ઉત્સર્ગતો દ્વાદશવર્ષસંલેખનાક્રમેણ સંલિખિતશરીરસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેક્ષિતપાદપોપ-  
ગમનમરણેષુ કિંચિદેકમાશ્રિત્ય જન્મ સફલીકર્તવ્યમિતિ પ્રતિપાદિતમ્ । (૮)

સામ્પ્રતં પ્રથમસૂત્રેણ પરમતનિરાકરણાર્થમેવોપક્રમતે ' સે વેમિ ' इत्यादि ।

મૂલમ્—સે વેમિ સમણુન્નસ્સ વા અસમણુન્નસ્સ વા અસણં  
વા પાણં વા ખાઈમં વા સાઈમં વા વત્થં વા પહિમ્મહં વા કંબલં  
વા પાયપુંહણં વા નો પાણ્જા નો નિમંતિજ્જા નો કુજ્જા વેયાવ-  
હિયં પરં આઢાયમાણે ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦૧ ॥

છાયા—સોઠ્ઠં વ્રવીમિ સમનોજ્ઞાય વાઽસમનોજ્ઞાય વાઽણં વા પાનં વા સાઘં  
વા સ્વાઘં વા વસ્સ વા પતદ્ગ્રહં વા કમ્બલં વા પાદપ્પોહ્હણં વા નો પ્રદઘાત્તુ નો  
નિમન્નયેદ્દુ નો કુર્યાદ્દુ વૈયાટ્ઠત્ત્યં પરમાદ્રિયમાણ इति વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—' સોઠ્ઠમ્ ' इत्यादि—યો ભગવન્મુખાદ્વિનિર્ગતયથાશ્રુતપ્રાહી  
પરિજ્ઞાતહેયોપાદેયઃ સોઠ્ઠં ત્વા વ્રવીમિ=વક્તવ્યમાણવચનં વચ્ચિ, તદેવાહ—'સમનોજ્ઞાયે-  
તો સંવર્દ્ધિત-શિષ્યરૂપ-સંપત્તિવાલે ઉસ મુનિકો ઉત્સર્ગસે ૧૨ વર્ષ  
કી સંલેખના ધારણ કર લેની યાહિયે । ઇસ ક્રમસે શરીરકે કુશ હોને  
પર ઉસે ભક્તપ્રત્યાખ્યાન, ઇંગિત ઓર પાદપોપગમ ઇન મરણોસે કિસી  
એક મરણકો ધારણ કર જન્મ સફલ કરના યાહિયે—યહ વિષય  
સમજાયા ગયા હૈ ।

ઇસ સમય પ્રથમ સૂત્રસે સૂત્રકાર પરમતકે નિરાકરણ કરનેકા  
ઉપક્રમ (પ્રારંભ) કરતે હૈ—' સે વેમિ ' इत्यादि—

શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હૈ—હે શિષ્ય ! જિસને  
ભગવાનકે મુલસે નિર્ગત શ્રુતકે અનુસાર હી તત્ત્વ ગ્રહણ કિયા હૈ ઓર

શિષ્યરૂપ સંપત્તિથી વૃદ્ધિ પામેલ એ મુનિકે ઉત્સર્ગથી ૧૨ વર્ષની સંલેખના ધારણ  
કરી લેવી બેઠાયે આ કમથી શરીરના કુશ થવાથી તેણે લક્ષ્યપ્રત્યાખ્યાન,  
ઇંગિત અને પાદપોપગમ આ મરણોમાથી કોઈ એક મરણને ધારણ કરી જન્મ  
સંજ્ઞા કરવો બેઠાયે આ વિષય સમજાવેલ છે

આ સમય પ્રથમ સૂત્રથી સૂત્રકાર પરમતનુ નિરાકરણ કરવાનો પ્રારંભ  
કરે છે—' સે વેમિ ' इत्यादि

શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—હે શિષ્ય ! જેને ભગવાનના  
મુખથી નિર્ગત શ્રુતના અનુસાર જ તત્ત્વ ગ્રહણ કરેલ છે અને એનાથી જે હેય  
અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી સુકત છે એવો હું તમને આ પ્રકારથી કહું છું કે તમે



स्यादि । परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः=सत्कृषाणः सन् समनोद्भाय=दृष्टिभिराम्या  
 पान्त्रपाय स्वमहावसन्नपार्श्वस्यप्रभृतये, वा-शब्दः पक्षान्तरघोतकः; असमनोद्भाय  
 =परतीर्थिकाय शाक्यप्रभृतय वा यद् अन्नम्-ओदनादिकम् पानं=द्राक्षादिपावन-  
 वसं वा, स्वाद्यं=नारिकंलादिकं वा, स्वाद्यं=स्वहादिकं वा, वसं वा, पतवृषां=पात्रं  
 वा कम्बलं वा, पादप्रोच्छन्नं=रजोहरणादिकं वा नो प्रदघात्=मासुकमपि तस्मै न  
 वदेत्, नापि च चित्तरणाय निमन्त्रयत्, वैयावृत्त्यं=शुभ्रूपादिकमपि न कुर्याद्=नो  
 सिद्ध्यत् । इति=एषम् अहं त्वां घनीमि=पया भगरत्सकाक्षाच्छुंषं तथा कथयामि ॥

अपरमप्यहं व्रवीमीत्याह- 'धुवं' इत्यादि ।

मूस्म्-धुव चेय जाणिञ्जा असण वा जाव पायपुछण वा  
 लभिया, नो लभिया मुंजिया, नो मुजिया, पथ विउत्ता  
 विउक्कम विभत्त धम्म जोसमाणे समेमाणे चलेमाणे पाइञ्जा

इसीसे जो ह्य और उपादेयके ज्ञानसे युक्त है वह मैं तुमसे इस प्रकार  
 कहता हूँ कि तुम अच्छी तरह-भक्तिके आवेशसे-आदर सत्कार करके,  
 समनोद्भ-दृष्टि और लिङ्गोंसे सुन्दर बेषबासे ऐसे स्व-जैनमतानुयायी  
 भवसन्न पासत्यादिकोको, अथवा असमनोद्भ-परतीर्थिक शाक्य आदिको  
 भवान-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिका घोवन जल, स्वाद्य-नारियल आवि,  
 अथवा स्वाद्य-लवंगवादिक, वस्त्र, पतवृषाह-पात्र, कम्बल अथवा पादप्रो  
 छन्न-रजोहरणादिक, प्रासुक होने पर भी न दो और न उन्हें देनेके  
 लिये आमंत्रित करो, वैयावृत्त्य भी उनकी न करो-इस प्रकार जैसा  
 भगवानसे सुना है वैसा मैं तुमसे कहता हूँ ॥ सू०१ ॥

और भी "धुवं" इत्यादि सूत्रसे कहता हूँ, सो सुनो—

सारी रीते-कठिना आवेशशी आदरसत्कार करीने समनोद्भ-दृष्टि जने लिङ्गशी सुदर  
 वेषपाया जेवा पोताना जैनमत अनुयायी अवसन्न-पक्षध्यादिकोने भाटे-  
 अथवा असमनोद्भ-परतीर्थिक शाक्य आदिने भाटे भवान-ओदनादिक पान-  
 द्राक्षादिकतु घोवन जल, स्वाद्य-नारियल आवि, जने स्वद्य-वपत्रादिक वस्त्र,  
 पतवृषाह-पात्र, कम्बल जने पादप्रोच्छन्न-रजोहरणादिक प्रासुक कीया छत्वां  
 पयु न दो, जने न जेने अपथवा भाटे आमत्रण करी, वैयावृत्ति पयु तेनी न  
 करी आ प्रकार जेवुं अत्रयानशी सावज्यु से तेवुं कुं वभने कहुं छ (सू०१)

भीलु पयु "धुव" इत्यादि सूत्रशी कहुं छ सावज्ये

वा निमंतिज्जा वा कुज्जा वा वेयावडियं परं अणादायमाणे  
त्तिवेसि ॥ सू० २ ॥

छाया--भ्रुवं चैतज्जानीयादशनं वा यावत् पादप्रोच्छनं वा लब्धा नो  
लब्धा, भुक्त्वा, नो भुक्त्वा, पन्थानं व्यावर्त्यापि उत्क्रम्य विभक्त धर्मं जुषमाणः  
समायन् चलन् प्रदद्यात् वा निमन्त्रयेद्वा कुर्याद्द्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥

टीका--'भ्रुव'मित्यादि । शाक्यादयो हि कदाचिदशनादिकं प्रदर्शयित्वा  
ब्रुवन्ति,—भवान्—एतत्=वक्तव्यं भ्रुवं=निश्चित जानीयात्=बुद्ध्येत, यद्  
अशनादिकमारभ्य यावत् पादप्रोच्छनं सर्वं परगृहे लब्धा वा अलब्धा वा भुक्त्वा  
वा अभुक्त्वा वा अवश्यमस्माकं मनस्तुष्टये तद्ग्रहणायास्मदीयव्रतसौ समागन्तव्यम्,  
तथा हि—अशनादीनामलामे लाभाय, लाभेऽपि चोत्कृष्टमिष्टान्नादिलाभार्थं वा,  
भुक्तेऽपि पुनर्भोजनार्थम्, अभुक्तेऽपि प्रथमालिकार्थम् [‘सिरावण’ इति भाषायाम्],

शाक्य आदि, मुनिको देख कर कदाचित् भोजनादिक  
दिखा कर यह कहें कि हे मुनि! आप यह हमारा कहना  
अवश्य मानें कि आपको अशनसे लगाकर पादप्रोच्छन तककी  
समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री परगृहमें मिले या न  
मिले, आपने आहार किया हो अथवा न भी किया हो तो भी आप  
अवश्य २ हमारे सन्तोषके लिये ही कम से कम अशनादिक लाभके  
निमित्त, हमारे स्थान पर पधारे। वहां आनेसे आपको फायदा होगा—  
अशनादिकके अलाभमें आपको वहां उनका लाभ होगा, अन्यत्र उनके  
मिल जाने पर भी वहां आनेसे आपके लिये उत्तम २ मिष्टान्न आदि  
सामग्री की प्राप्ति हो जायगी, खा करके भी आने पर फिरसे भोजन हो

शाक्य आदि, मुनिने जो कुछ कदाचित् भोजनादिक बताया ऐसे  
कहे के हे मुनि! आप अमार के कहेके अवश्य मानो के आपने  
अशनथी लगाडी पादप्रोच्छन सुधी समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री  
भीजने धरे भणे अथवा न भणे, आपे आहार कर्यो होय अथवा न  
कर्यो होय तो पण आप अवश्य अवश्य अमार सतोष माटे न कर्मथी कर्म  
अशनादिक लाभना निमित्त अमारा स्थान उपर पधारे त्या आववाथी आपने  
हायहो थरे—अशनादिकना अलाभमा आपने त्या येना लाभ थरे, भीजे स्थणेथी  
के भजवा छता पण त्या आववाथी आपने माटे उत्तममा उत्तम मिष्टान्न  
आदि सामग्रीनी प्राप्ति थरे, आर्धने आववा छता इरीथी भोजन थरे, अने

वस्मत्सन्तोपायावश्यमस्मत्स्थाने समागन्तव्यम्, यद् यद् भवतां कल्पनीयं तददा  
 स्यामीति भावः। ममावासो भवत्संभारपरिव्यायामत्र वर्तते, यदि वक्राऽपि भवेद्य  
 वाऽपि पन्थानं=मार्गं व्यावर्त्तापि=परिभ्रम्यापि उत्क्रम्य=मार्गमध्यवर्तिगुहाभ्युत्थ-  
 ङ्गपानन्तव्यम्, नाऽत्र ब्रह्मेशा गमनीय, कृपा विवेका-इत्यादि कल्पित्वा स  
 विमर्कं=मिन्नं धर्मं ज्ञपमाणा=सेवमानः शाक्यादि, स्मापन्=तेन मार्गेण कदाचिद्  
 मातन्वन्, वलन्=मार्गं गच्छन् यन्नाशनादिकं प्रशपात्, तद्वानादिना निमन्-  
 पेहा, अन्यथा वैयावृत्त्यं कुर्यात्=चिद्व्यात्, तर्हि मुनिः परम्=अस्पृश्यं अनाद्रियमाणः  
 तस्यानादरं कुर्वन्-वमस्वीकुर्वानः सन् विहरेत्, तेन सह परिचयमपि न कुर्यात्,  
 यनेन दक्षेनशुद्धपादरवस्थं भावादित्याद्ययः। इति पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च व्रतीमि-  
 क्कयामि ॥ सू० २ ॥

आपगा, और नहीं आ कर आनेपर सुबहका लघुभोजन हो जायगा। इस  
 लिये हमारे संतोपके लिये आप मेरे स्थान पर अवश्य २ आवें। आनेपर  
 आपके लिये जो २ वस्तुएँ कल्पनीय होंगी उन्हें मैं अवश्य २ दूंगा मेरा  
 निवासस्थान आपके निकलनकी गली ही में है। यदि वहाँसे वह शायद  
 आपके लिये टेढ़ा भी पड़े तो भी घूमकर कुछ मध्यवर्ती घरोंको छोड़  
 कर आप वहाँ जसूर आवें। इसमें परिभ्रमका क्याल न करे। यड़ी  
 दया होगी।” इत्यादि कह कर वह भिन्न धर्मका अनुयायी शाक्य  
 भादि उस मार्गसे कदाचित् जाता जाता मिथ जाय और  
 उस मुनिके लिये जो कुछ भी अशानाविक दे, अथवा उसके लिये  
 आप्रह करे, या आमंत्रित कर अथवा दूसरी तरहसे कोई वैयावृत्ति  
 करना चाहे तो उस मुनिके बाहिये कि वह उसकी किसी  
 भी बात पर क्याल न करे, उसके द्वारा प्रवृत्त किसी भी वस्तुका ग्रहण

आपने न कदावाची क्षिराभक्ष करो। आ भाटे अभास स्थान उपर अभास सुतोप  
 भाटे आप अवश्य अवश्य आवे। आववाची आपने भाटे के के वस्तुको कल्पनीय  
 करो के के वस्तुको अवश्य अवश्य आपीया। भाई निवासस्थान आपनी निकल  
 यनी शेरिमां के छे। अववा त्याचीके छोटा छोटा पडे तो पक्ष करीने केटलाक  
 पथला धरनेने मुकीने पक्ष आप त्यां करे आवे। आभा परिभ्रमनेना ज्यादा न  
 करेये। पूल हमा करो। उत्थाकि करीने के जीवा धर्मना अनुयायी शाक्य भादि  
 के भाजेकी कदाचित् आववां क्या भजी अव्य आने के मुनि  
 भाटे के कर्ष पावा पीवानु आपी अववा केने भाटे अव्यक करे या  
 आप प्रक्ष करे, अववा नीला रीते कर्ष देयावृत्त करवा चाहे, त्याहे ते मुनि

‘अथवा’ पक्षान्तरद्योतकः, तद्यथा—अदत्तं गृह्णन्तो हि वाचः=वहृषिधाः वक्ष्य-  
माणा विद्युञ्जन्ति=प्रयुञ्जन्ति—वाचो विनियोग कुर्वन्ति—कथयन्तीत्यर्थः, तदेवाह—  
तद्यथेत्यादिना—तद्यथा—

केचिदाहु—‘लोकः=स्थावर-जगमन्लक्षणः, अस्ति=विद्यते। तथाहि—सप्तसमुद्रा  
सप्तद्वीपा नवखण्डा पृथिवी, नातः परमन्यो लोकः’ इति ।

केचिच्च—एतादृशानि वहृनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु ऋति चिज्जलमध्ये प्लव-  
मानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा अस्ति च पर-  
लोकः=यमलोकादिरूपः’ इति प्रवदन्ति ।

सूत्रकारको इसके विषयमें विशेष कथन नहीं करना है—इसलिये इसका  
क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोल्लेखरूपसे किया  
है । द्वितीय अव्रतमें विशेष वक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका  
कथन किया है ।

अथवा—अदत्तका ग्रहण करनेवाले मनुष्य बहुत प्रकारकी ( जिसके  
विषयमें आगे कहा जायगा ) बातें बनाया करते हैं । इसीका “तद्यथा”  
पदसे स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

कोई कोई कहते हैं—स्थावर और जगम स्वरूपवाला यह लोक है ।  
इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है,  
सात इसमें द्वीप है, और नव इसके खण्ड है । इसीका नाम लोक है ।  
इससे जुदा और कोई लोक नहीं है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं—ऐसे  
तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं । इनमें कितनेक तो जलके बीचमें डूबे हुए हैं,

आ विषयमा विशेष कडेवा भागता नथी आ भाटे कमप्राप्त असत्यनु कथन  
नहि करता पडेला अदत्तादाननु नामोदलेअइपथी कथन करेल छे भील अन्नतमा  
विशेष वक्तव्य छे, आ भाटे जेना पछी जेतु उथन उरेल छे

अथवा—अदत्तनु अहृषु करवावाणा मनुष्य वषु प्रकारनी ( जेना विषयमा  
आगण कडेवाभा आवेशे ) वातो बनाव्या करे छे, जेतु “तद्यथा” पदधी  
स्पष्टीकरषु करता सूत्रकार कडे छे—

कोई कोई कडे छे स्थावर अने जगम—स्वरूपवाणे आ लोक छे आने  
अर्थ इत ओटेलो ज छे के आ पृथ्वी सात समुद्रवाणी छे, आमा सात द्वीप  
छे अने नव जेना पड छे आनु नाम लोक छे आनार्थी जुहो भीजे कोई  
लोक नथी कोई जोई जेम पषु कडे छे—जेम तो वषु प्रहाउ छे, आमा  
केटलाक तो पाषीमा जुभी गयेला छे केटलाउ पयमडाभूतस्वरूप पृथ्वी आदि

षार्वाकारतु—'लोकः=परलोको नास्ति' इत्याहुः। इत्यं च तेषामभ्युपगमा-  
स्वर्गादिकं गन्धर्वनगरमरुमरीचिकादिसदृशमेव, प्रत्यक्षमप्यप्रमाणं, नान्यदमनुमाना  
विकं परोक्षम्, परलोकाभावेन जीवः परलोकगामी न मरत्येव; किन्तु प्रत्यक्षं परि  
दृश्यमानः पञ्चभूतात्मक एव लोकः, अतो नास्ति बन्धो, नास्ति मोक्षः, नास्ति  
पुण्यं, नास्ति पापमित्यादि, तथाहि—

“यथा यथाऽर्थाभिन्त्यते, विविष्यन्त तथा तथा।

यद्येतस्वयमर्थेभ्यो, रोचत तत्र क्व वयम् ॥ १ ॥

कित्नेकेक पंचमहाभूतस्वरूप पृथिवी आदिक विद्यमान हैं। तथा यम  
लोक-आदि-स्वरूप परलोक भी मौजूद हैं। षार्वाक-सिद्धान्तवांछे  
नास्तिकलोग 'परलोक नहीं है' ऐसा मानते हैं। उनका सिद्धान्त  
इस प्रकारसे है - स्वर्गादिक परलोककी मान्यता गन्धर्वनगर  
तथा मरुमरीचिका जैसी है। जैसे इनका आभास ध्रमसे होता है, उसी  
तरहसे स्वर्गादिक परलोककी भी मान्यता ऐसी ही है, वास्तविक नहीं।  
इनके सिद्धान्तानुसार १ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। परोक्ष-अनुमानादिक  
नहीं। जब परलोक ही नहीं तो जीव परलोकमें जाता है,  
अथवा परलोकमें उसके जानेका स्वभाव है-ऐसी कल्पना  
भी ठीक नहीं है। जो कुछ प्रत्यक्षसे पञ्चभूतात्मक दिम्बाई वृता है वही  
लोक है, इससे पर नहीं। इसलिये न पाप है, न मोक्ष है, न पुण्य है,  
और न पाप है।

विद्यमान है तथा यमलोक वगैरे स्वभूतकी परलोक पक्ष है आर्वाक सिद्धांत  
वाला नास्तिक लोक परलोक नहीं जेबु माने है जेभने सिद्धांत  
आ प्रकारने है-स्वर्गादिक परलोककी मान्यता न धर्मनगर तथा मरुमरीचिका  
जैसी है जेभ जेने आभास ध्रमकी भाष है जेवी न सीते स्वर्गादिक परलो-  
ककी मान्यता पक्ष है वास्तविक नहीं जेभने सिद्धान्त - अनुसार  
१ प्रत्यक्ष व प्रमाण है परोक्ष-अनुमानादिक नहीं। अन्ये परलोक व  
नहीं ते एव परलोकमें जय है, अथवा परलोकमें जेने कल्पने स्वभाव है  
जेवी कल्पत करनी जे पक्ष ठीक नहीं। जे गार् प्रत्यक्षकी पञ्चभूतात्मक देभाष  
है जे व लोक है आधी जीवु नहीं आधी न व व है, न मोक्ष है न  
पुण्य है के न पाप है।

अपि च वक्ष्यमाणं दर्शयति—‘ इहमेगेसिं ’ इत्यादि—

मूलम्—इहमेगेसिं आचारगोचरे नो सुनिसन्ते भवति, तेइह आरंभट्टी अणुत्रयमाणा हण पाणे घायमाणा हणओ यावि समणुजाणमाणा, अदुवा अदिन्नमाययंति, अदुवा वायाउ विउ-ज्जंति, तं जहा—अत्थि लोए, नत्थि लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपज्जवसिए लोए, अप-ज्जवसिए लोए, सुकडेत्ति वा, दुक्कडेत्ति वा, कल्लाणेत्ति वा, पावेत्ति वा, साहुत्ति वा, असाहुत्ति वा, सिद्धित्ति वा, असिद्धित्ति वा, निरएत्ति वा, अनिरएत्ति वा, जमिणं विप्पडिव्वन्ना मामगं धम्मं पन्नवेमाणा, एत्थ वि जाणहअकस्मात्, एवं तेसिं नो सुयक्खाए धम्मे नो सुपन्नत्ते धम्मे भवइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—इहैकेषामाचारगोचरो नो सुनिशान्तो भवति, त इहाम्भार्थिनोऽनु-वदन्तो घ्नन्तः प्राणान् घातयन्तः घ्नतश्चापि समनुजानन्तः, अथवाऽदत्तमाददति, अथवा वाचो विद्युञ्जन्ति, तद्यथा—अस्ति लोको, नास्ति लोको, धुत्रो लोकः, अधुवो लोकः, सादिको लोकोऽनादिको लोकः, सपर्यवसितो लोकोऽप्यपर्यवसितो लोकः, सुकृतमिति वा, दुष्कृतमिति वा, ऋत्याणमिति वा, पापमिति वा, साध्विति वा, असाध्विति वा, सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, निरय इति वा, अनिरय इति वा, यदिदं विप्रतिपन्ना मामरु धर्मं प्रयदन्तः, अत्रापि जानीत अकस्मात्, एवं तेषां नो स्वाख्यातो वर्मो न सुप्रज्ञप्तो वर्मो भवति ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ इहैकेषा ’मिति—इह=अत्र मनुष्यलोके एकेषां = कतिपयानाम्,

न करे और वहांसे चल देवे, कोई भी प्रकारका संपर्क उससे न रखे। इस प्रकारके वर्तनसे उस मुनिके समकित की शुद्धि होती है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० २ ॥

तथा —‘ इहमेगेसिं ’ इत्यादि—

इस मनुष्य लोकमें जो सर्वज्ञसे उपदिष्ट सयमके मार्गसे अनभिज्ञ

जेनी कोठपणु वात उपर भ्याल न करे, जेना ठारा भणती कोठपणु वस्तुने ब्रह्मणु न करे अने त्यांथी थाइया ज्ञथ, कोठ पणु प्रगारने स पर्ड जेनाथी न राणे आ प्रकाशना वर्तनथी ते मुनिना समकितनी शुद्धि थाय छे, जेवु हुं कहु छु (सू० २)

अपि च—“ इहमेगेसिं ” इत्यादि

आ मनुष्य लोकमा जे सर्वज्ञथी उपदेशवाभा आवेल सयम मार्गथी

न सर्वेषाम्; 'आचारगोचर' आचारस्य=सयमस्य गोचरः=विषयः सर्वज्ञोपदिष्ट  
मार्ग इत्यर्थः, सुनिश्चान्तः=सुपरिचितः, नो मयति, ते इह=अस्मिँच्छ्लोके आरम्भा-  
र्थिनः पचन-पाचनानुमोदनादिसाक्ष्यव्यापारवन्तः शाक्यादयो द्रव्यलिङ्गिनोऽवसन्न-  
पार्थस्वाद्य, अनुवदन्तः=दवायतननिर्माणे प्रतिमाप्रतिष्ठापूर्वादाँ भौदेशिकाहारादाँ  
ष धर्म प्ररूपयन्तः सन्तः प्राणान्=एकेन्द्रियादिबीजान् जन्तः=नाशयन्तः अन्यै  
र्पातयन्तः, जन्तः घातयतो वा समनुनानन्तः=अनुमोदयन्तो मयन्ति । एतेन  
पञ्जीवनिकापविरापकत्वं तेषामभिहितम् ।

'अथवा' =पश्चान्तरे, तेन-ते आरम्भार्थिनः अर्धं=परस्य क्नादिकम् भाव  
दति=पृहन्ति, तृतीयेऽप्रते स्तोत्रकथनीयत्वात्तस्य पूर्वं प्रतिपादन्म् । द्वितीये च  
शुद्धकथ्यत्वात्तस्तदुपन्यास इति विज्ञयम् ।

हैं, अर्थात् जो सर्वज्ञकथित संप्रमके मार्गसे अपरिचित हैं—ऐसे वे  
शाक्यादिक तथा द्रव्यलिङ्गी अवसन्न-पास्त्यादिक आरम्भार्थी, पचन,  
पाचन और अनुमोदन आदि साक्ष्य व्यापारोंसे युक्त पचन देवाय-  
तन-मन्दिर आदिके निर्माणमें, प्रतिमा की प्रतिष्ठामें, और उसके पूजन  
भावमें तथा उद्दिष्ट आहार वगैरहमें धर्मकी प्ररूपणा करते हुए एकेन्द्रि-  
यादिक जीवोंका स्वयं आरम्भ करनेवाले, दूसरोंसे उनका आरम्भ करा-  
नवाले एवं उनके आरम्भ करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाले होते हैं।  
इस कथनसे पञ्जीवनिकायोंकी विरापकता उनके कही गई  
समझनी चाहिये ।

अथवा—वे आरम्भार्थी-शाक्यादिक एवं अवसन्न-पास्त्यादिक पर  
का अवसन्न घनादिक द्रव्य ग्रहण करते हैं । तृतीय अवगत-चौर्य है ।

अनलिप्तं च अर्थात् ते सर्वज्ञकथित सयमना मार्गधी अपरिचितं च ज्ञेया  
जे शाक्यादिक तथा द्रव्यलिङ्गी अवसन्न-पास्त्यादिक आरम्भार्थी पचन, पाचन  
अने अनुमोदन आदि साक्ष्य व्यापारधी युक्त जनी देवायतन-मन्दिर आदिना  
निर्माणमा प्रतिमान्नी प्रतिष्ठाभा अने तेना पूजन आदिना तथा उद्दिष्ट आहार  
वगैरहमाँ धर्मनी प्ररूपणा करता जेकेन्द्रिय आदि लोचनेना स्वयं आरम्भ करवा-  
वाण, जीवधी तेना आरम्भ करवावणा अने तेना आरम्भ करवावणाने अनु-  
मोदन आपनान्न हीयं च आ कथनधी पञ्जीवनिकायोंनी विरपकता तेनी कहे-  
वायाँ जनी समझनी जेअजे

अथवा—जे आरम्भार्थी-शाक्यादिक अने अवसन्न-पास्त्यादिक जीवजु  
वदत क्नादिक द्रव्य ग्रहण करे च त्रीणु अवगत-चौर्यं च । सुत्रकार आ

‘અથવા’ પદાન્તરઘોત્કઃ, તથથા-અદત્તં ગૃહ્ણન્તો હિ વાચઃ=વહુવિયાઃ વક્ષ્ય-  
માણા વિયુઙ્ગન્તિ=પયુઙ્ગન્તિ-વાચો વિનિયોગ કુર્વન્તિ-કથયન્તીત્યર્થઃ, તદેવાહ-  
તથથેત્યાદિના-તથથા--

કેચિદાહુ-‘લોકઃ=સ્થાવર-જન્મલક્ષણઃ, અસ્તિ=વિદ્યતે। તથાહિ-સપ્તસમુદ્રા  
સપ્તદ્વીપા નવસ્વખંડા પૃથિવી, નાતઃ પરમન્યો લોકઃ’ ઇતિ ।

કેચિચ્-एतादृशानि बहूनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु कति चिज्जलमध्ये प्लव-  
मानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा अस्ति च पर-  
लोकः=यमलोकादिरूपः’ ઇતિ પ્રવદન્તિ ।

સૂત્રકારકો इसके विषयमें विशेष कथन नहीं करना है-इसलिये इसका  
क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोल्लेखरूपसे किया  
है । द्वितीय अव्रतमें विशेष वक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका  
कथन किया है ।

અથવા-અદત્તકા ગ્રહણ કરનેવાલે મનુષ્ય વહુત પ્રકારકી (જિસકે  
વિષયમેં આગે કહા જાયગા) વાતેં બનાયા કરતે હેં । ઇસીકા “તથથા”  
પદસે સ્પષ્ટીકરણ કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હેં--

કોઈ કોઈ કહતે હેં-સ્થાવર ઓર જંગમ સ્વરૂપવાલા યહ લોક હૈ !  
इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है,  
सात इसमें द्वीप है, और नव इसके खण्ड हैं । इसीका नाम लोक है ।  
इससे जुदा और कोई लोक नहीं है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं-ऐसे  
तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं । इनमें कितनेक तो जलके बीचमें डूबे हुए हैं,

આ વિષયમા વિશેષ કહેવા માગતા નથી આ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અસત્યનું કથન  
નહિ કરતા પહેલા અદત્તાદ્યનું નામોલ્લેખરૂપથી કથન કરેલ છે બીજા અવ્રતમા  
વિશેષ વક્તવ્ય છે, આ માટે એના પછી એનું કથન કરેલ છે

અથવા-અદત્તનું અર્થ ઠી કરવાવાળા મનુષ્ય ઘણા પ્રકારની ( એના વિષયમા  
આગળ કહેવામા આવશે ) વાતો બનાવ્યા કરે છે, એનું “ તથથા ” પદથી  
સ્પષ્ટીકરણ કરતા સૂત્રકાર કહે છે--

કોઈ કોઈ કહે છે સ્થાવર અને જંગમ-સ્વરૂપવાળા આ લોક છે આનો  
અર્થ ક્રમ એટલો જ છે કે આ પૃથ્વી સાત સમુદ્રવાળી છે, આમા સાત દ્વીપ  
છે અને નવ એના ખંડ છે આનું નામ લોક છે આનાથી બુદ્ધો બીજા કોઈ  
લોક નથી કોઈ કોઈ એમ પણ કહે છે-એમ તો ઘણા બ્રહ્માંડ છે, આમા  
કેટલાક તો પાણીમા ડુબી ગયેલા છે કેટલાક પચમહાભૂતસ્વરૂપ પૃથ્વી આદિ



चावाँकास्तु—'लोकः=परलोको नास्ति' इत्याहुः। इत्यं च तेषामभ्युपगमः—  
स्वर्गादिकं गन्धर्वनगरमरुमरीचिकादिसहस्रमेव, प्रत्यक्षमेव प्रमाण, नान्यदनुमाना  
दिकं परोक्षम्, परलोकामात्रेण नीचं परलोकगामी न भक्ष्येव; किन्तु प्रत्यक्षं परि  
दृश्यमानः पञ्चभूतात्मक एव लोकः, अतो नास्ति अन्यो, नास्ति मोक्षः, नास्ति  
पुण्यं, नास्ति पापमित्यादि, तथाहि—

“यथा यथाऽर्थाभिन्त्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा।

यद्येवस्वयमर्थेभ्यो, रोषत तत्र के वयम् ॥ १ ॥

कितनेक पञ्चमहाभूतस्वरूप पृथिवी आदिक विद्यमान हैं। तथा यम  
लोक-आदि-स्वरूप परलोक भी मौजूद हैं। चावाँक-सिद्धान्तवांछे  
नास्तिकलोग 'परलोक नहीं है' ऐसा मानते हैं। उनका सिद्धान्त  
इस प्रकारसे है—स्वर्गादिक परलोककी मान्यता गन्धर्वनगर  
तथा मरुमरीचिका जैसी है। जैसे इनका आभास ध्रमसे होता है, उसी  
तरहसे स्वर्गादिक परलोककी भी मान्यता ऐसी ही है, वास्तविक नहीं।  
इनके सिद्धान्तानुसार १ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। परोक्ष-अनुमानादिक  
नहीं। जब परलोक ही नहीं तो जीब परलोकमें जाता है,  
अथवा परलोकमें इसके जानेका स्वभाव है—ऐसी कल्पना  
भी ठीक नहीं है। जो कुछ प्रत्यक्षसे पञ्चभूतात्मक दिखाई देता है वही  
लोक है, इससे परे नहीं। इसलिये न वच है, न मोक्ष है, न पुण्य है,  
और न पाप है।

विद्यमान है तथा यमलोक परे स्वर्गपक्षी परलोक यजु है आर्वाक सिद्धांत  
वाण्य नास्तिक लोक परलोक नहीं जेवु माने है जेभने सिद्धांत  
आ प्रकारने है—स्वर्गादिक परलोककी मान्यता गन्धर्वनगर तथा मरुमरीचिका  
जेवी है जेभ जेने आवाक ध्रमकी भाय है जेवी व रीते स्वर्गादिक परलो-  
ककी मान्यता यजु है वास्तविक नहीं। जेभने सिद्धान्त—अनुसार  
१ प्रत्यक्ष व प्रमाण है परोक्ष-अनुमानादिक नहीं अन्ये परलोक व  
नहीं तो एव परलोकमें जाय है अथवा परलोकमें जेने व जेने स्वभाव है  
जेवी कल्पना कस्ती जे यजु ठीक नहीं। जे मंड प्रत्यक्षकी पञ्चभूतात्मक देखाय  
है जे व लोक है आधी जीजु नहीं आधी न जन्म है, न मोक्ष है न  
पुण्य है न पाप है

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ, વિપયાઃ કરુણાનિ ચ ॥

તથાઽપિ મન્દૈરન્યસ્ય, તત્ત્વ સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥ ” ઇતિ ।

કિમધિક્ષેન ।

કાપિલાસ્તુ—‘ ધ્રુવો લોકઃ ’=લોકઃ ધ્રુવઃ=શાશ્વતિકઃ=નિત્યઃ કુમારની-  
વાઽઽવિર્ભાવ-તિરોભાવેનૈવોત્પત્તિઃસાદિવ્યવહાર ઔપચારિકો ન તુ વાસ્તવિકોઽ-  
પૂર્વોપજનરૂપઃ ।

વૈશેષિકાદિતન્ત્રવદુત્પત્તેઃ પૂર્વં કાર્યસ્થાઽસત્ત્વસ્વીકારેઽસતઃ શશશૃક્રાદેરપ્તુ-  
ત્પત્તિઃ કદાચિદ્ગ્રીકાર્યા સ્યાત્ । સતો વિનાશઽસમ્ભવાચ ન સન્નાઽસત્; કિન્તુ

• યથા યથાર્થાશ્ચિન્ત્યન્તે વિવિચ્યન્તે તથા તથા ।

યદ્યેતત્સ્વયમર્થેભ્યો રોચતે તદ્વ કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ વિપયાઃ કરુણાનિ ચ ।

તથાપિ મન્દૈરન્યસ્ય તત્ત્વ સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—જિસ જિસ પ્રકારસે પદાર્થોંકા વિચાર ક્રિયા જાતા હૈ  
ઉસ ઉસ પ્રકારસે વે વિશીર્ણ (નષ્ટ) હોતે હૈં । હમ ક્યા કરે—યદિ યહ  
શૂન્યતા હી પદાર્થોંકો રુચતી હૈ તો ! શરીર, વિપય ઓર ઇન્દ્રિયાં યે  
સબ ભૌતિક હૈં, તો ખી મૂર્ખ પ્રાણી અન્યકે લિયે તત્ત્વોંકા ઉપદેશ વેતે  
હૈં; જ્યાદા ક્યા કહા જાય ?

કાપિલમતાનુયાયી સાંખ્ય—યહ કહતે હૈં કિ યહ લોક  
ધ્રુવ-શાશ્વતિક-નિત્ય હૈ । ઇસમેં ઉત્પત્તિ ઓર ધ્વંસ-નાશકા વ્યવહાર  
ઔપચારિક-ગૌણ હૈ । ઇસમેં આવિર્ભાવ ઓર તિરોભાવ હી હોતે

યથા યથાર્થાશ્ચિન્ત્યન્તે વિવિચ્યન્તે તથા તથા ।

યદ્યેતત્સ્વયમર્થેભ્યો રોચતે તદ્વ કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ વિપયાઃ કરુણાનિ ચ ।

તથાપિ મન્દૈરન્યસ્ય તત્ત્વ સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—જે જે પદાર્થોંનો જે પ્રકારથી વિચાર કરવામા આવે છે તે તે  
પ્રકારથી તેનો નાશ થાય છે અને શુ કરીએ—જો આ શૂન્યતા જે પદાર્થોંને રુચે  
છે, શરીર, વિપય અને ઇન્દ્રિયો આ બધુ ભૌતિક છે તો પણ મૂર્ખ પ્રાણી  
ખીલને માટે તત્ત્વોંને ઉપદેશ આપે છે વધુ શુ કહેવાય

કાપિલ-મતાનુયાયી સાંખ્ય એવુ કહે છે કે આ લોક ધ્રુવ-શાશ્વતિક-નિત્ય છે,  
આમા ઉત્પત્તિ અને નાશનો વ્યવહાર ગૌણ છે એમા આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ જે

‘सर्वसविद मपञ्जमार्त, वृषिकादाधुपादानकारणे घटादिरन्यक्तरूपेण सन् बहिरि  
 न्द्रियप्रत्यक्षायोक्तत्वेनाऽसन् घट इति व्यपहारः’ इत्यादिकमाहुः, तेषां मते सिद्ध  
 येष लोकास्य ध्रुवत्वम् ।

हैं, अतः यह व्यपहार—वास्तविक नहीं है । मिथीसे घट कोई अपूर्व वस्तु  
 उत्पन्न नहीं होती है किंतु उसमें घटका तिरोभाव या धौर कारण  
 कलापसे तिरोभाव हट जाने पर उसका आविर्भाव होता है । अर्थात्—  
 सत्का ही आविर्भाव हुआ असत्का नहीं । इस लिये अपूर्व कुछ भी  
 उत्पन्न नहीं होता । वैशेषिकसिद्धान्तकी तरह उत्पत्तिसे पूर्व कार्यका  
 असत्त्व माना जायगा तो असत् शशशृङ्गी भी उत्पत्ति कदाचित्  
 स्वीकार करनी पड़ेगी । सत्का कभी भी विनाश नहीं होता है इसीलिये  
 घटका सर्वथा सत्त्व मानने पर उसका कभी विनाश नहीं हो सकता है,  
 परन्तु विनाश होता दिखता तो है, इसलिये यह जगत्प्रपञ्च सत्-असत्  
 -स्वरूप है । उपादानकारणस्वरूप मिथीमें घटादिक कार्य अप्यक्तरूपसे  
 ये, इसलिये वे बहिरिन्द्रिय चक्षुरादिकोंके अभिपद्यन्त ये; अतः मिथीमें  
 वर्तमान होते हुए भी उनका चक्षुरिन्द्रियसे ग्रहण नहीं होता है । इस  
 लिये बहिरिन्द्रियसे ग्रहणके अयोग्य होनेसे घटादिकोंमें “ असन् घटः ”  
 इत्यादिक व्यपहार होता है—पेसा सांख्योंका कहना है, इस प्रकारके उनके  
 कथनसे लोकमें ध्रुवता सिद्ध होती है ।

यद्यपि ये पक्ष जगत्-व्यपहार वास्तविक नहीं, भाटीमें घट कोई अपूर्व वस्तु उत्पन्न  
 नहीं, परन्तु जेमां घटनेके विशेषण कहते अने कारणकलापकी विशेषण इत  
 यतां जेने आविर्भाव यर्ध जय छे अर्थात्-सत्त्वे जगत्-व्यपहार यथे असत्त्वे  
 नहीं, ज्यधी अपूर्व कार्य पक्ष उत्पन्न यत्तु नहीं, वैशेषिक सिद्धांत माहत्त उत्प-  
 त्तिकी पूर्व कार्यत्त असत्त्व मानवामां आवे तो असत् शशशृङ्गी पक्ष उत्पत्ति  
 कदाच स्वीकृत्यी पठे सत्त्वे कति पक्ष विनाश यते नहीं, ज्य कारणे घटतु  
 सर्वथा सत्त्व मानवामी जेने कति विनाश यर्ध यत्तु नहीं, परन्तु विनाश यते  
 देखाय तो छे ज्यधी ज्य जगत्-प्रपञ्च सत्-असत्-स्वरूप छे उपादान कारण  
 भाटीमां घटादिक कार्य जगत्-प्रपञ्चकी कथा ज्यधी ते बहिरिन्द्रिय चक्षुनां  
 अभिपद्यन्त कर्ता, माटे भाटीमां वर्तमान कौवा कर्ता पक्ष तेने ज्यपक्षी  
 जेध शक्यतु नहीं, माटे ज्यधे चन्द्रियकी जेवाने ज्येवाज देवायो घट ज्यधिमां  
 “ असन् घटः ” उत्पत्ति व्यपहार यद्यपि छे जेवु सांख्येनु कहेवु छे, ज्य प्रकाश  
 तेना कथनी लोकमां ध्रुवता सिद्ध यद्यपि छे.

બૌદ્ધાસ્તુ—‘અધુવો લોકઃ’ ઇતિ ધ્રુવતે; ઇત્યં હિ તેપામમ્યુપગમઃ—સર્વમિદં સ્થાવરજન્માત્મકં જગત્ ક્ષણિકમ્, લોકસ્ય વિનાશકારણાભાવેન યદિ ‘લોકો નિત્યઃ’ ઇતિ મન્યસે તર્હિ નિત્યભૂતસ્ય શાશ્વતિકસ્ય સ્વરૂપેનાવિચ્ચુતસ્ય તસ્ય સર્વથા વિકારરહિત્વેન ભાવ્યમ્, તથા ચ ક્રમેણ યૌગપદ્ધેન વા તસ્યાર્થક્રિયાયા સામર્થ્યાભાવાત્સર્વવ્યવહારોચ્છેદાપત્તિઃ સ્યાત્, તસ્માત્ ‘અધુવો લોકઃ’ ઇતિ ।

બૌદ્ધોંકા કથન હૈ કિ યહ લોક અધુવ-અનિત્ય હૈ । ઁનકી માન્યતા ઇસ પ્રકાર હૈ-કિ સ્થાવર-જંગમ-સ્વરૂપ યહ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ૨ મેં નષ્ટ હોતા રહતા હૈ । વિનાશકે કારણોંકે અભાવસે યદિ લોકો નિત્ય માના જાવે તો ફિર ઇસ પ્રકાર સે સર્વથા નિત્ય બને ઇસ લોકમેં વિકૃતિકા સદ્ભાવ નહીં પાયા જાના ચાહિયે; ક્યોંકિ “અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્યઃ” ઉત્પત્તિરહિત, શાશ્વતિક, સ્વરૂપસે અપ્રચ્ચુત કા નામ હી નિત્ય હૈ, ઔર ઇસ પ્રકાર નિત્ય બને હુપ મેં વિકૃતિ નહીં હોતી હૈ । તથા-ક્રમ ઔર યૌગપદ્યસે સર્વથા નિત્ય પદાર્થકી અર્થક્રિયા કરનેમેં સામર્થ્ય ઘટિત નહીં હોનેસે અર્થક્રિયાકારિત્વ કે અભાવસે ઁસમેં શૂન્યતા હી આવેગી, “યદેવાર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” ઇસ વાક્યકે અનુસાર અર્થક્રિયાકારી પદાર્થ હી પરમાર્થ સે સત્ માના ગયા હૈ । ઇસલિયે નિત્યમેં વિકૃતિકે અભાવસે સર્વ વ્યવહાર કે ઁચ્છેદકી આપત્તિ આનેસે “લોકઅધુવ” હૈ યહી માન્યતા ઠીક હૈ ।

બૌદ્ધોંનુ કથન છે કે આ લોક અધુવ-અનિત્ય છે તેની માન્યતા આ પ્રકારની છે સ્થાવર-જંગમ-સ્વરૂપ આ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ક્ષણમા નષ્ટ થતો-રહે છે વિનાશના કારણોના અભાવથી કહાય લોકને નિત્ય માનવામા આવે તો પણ આ પ્રકારથી સર્વથા નિત્ય બનેલા આ લોકમા વિકૃતિના સદ્ભાવ રહેવુ એઈએ નહિ, કારણ કે ‘અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્યઃ’ ઉત્પત્તિરહિત, શાશ્વતિક અને સ્વરૂપથી અપ્રચ્ચુતનુ નામજ નિત્ય છે, અને આ પ્રકારે નિત્ય બનેલામા વિકૃતિ હોતી નથી. ક્રમ અને યૌગપદ્યથી સર્વથા નિત્ય પદાર્થની અર્થક્રિયા કરવામા સામર્થ્ય ઘટિત નહિ હોવાથી, અર્થક્રિયાકારિત્વના અભાવથી તેમા શૂન્યતા જ આવવાની “યદેવાર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” આ વાક્ય અનુસાર અર્થ ક્રિયાકારી પદાર્થ જ પરમાર્થથી સત્ માનવામા આવેલ છે નિત્યમા વિકૃતિના અભાવથી સર્વ વ્યવહારના ઁચ્છેદની આપત્તિ આવશે, માટે “લોક અધુવ” છે એજ માન્યતા ઠીક છે

यद्वा कश्चित्—‘लोकः=मूलोक्तः पृथिवीमण्डलमित्यर्थः, भद्रुषः=चल’ इति वदन्ति, तथा हि—यथा—नौकादिगतैर्न नैमलद्विरपि भ्रान्तिवशादपसास्तीरस्य दृश्यादयमसा दृश्यन्ते, एवं वस्तुतः पृथिव्यत्र चलति सूर्यस्तत्रचलोऽपि भ्रान्तिवशाच्चल इव प्रतिभाति ।

यत्तु—सूर्यं य पूर्वस्यां दिशि नीसतं तपासुदितः सूर्यो भायते, य तु दूर्वति त्वार्चं मेसतं तेषामस्तमितः सूर्य इति । मध्यस्थितानां मध्याह्नगता भवति ।

पौराणिकास्तु—सादिको लोकः=उत्पत्तिमान् लोकः, तत्पूर्वं सृष्ट्यादौ तमो भूतमतर्क्यं सर्वतः प्रमुप्तमिवाऽऽसीत् । विष्णोर्नामिकमसाज्जगदिदमुत्पन्नमिति कथयन्ति ।

अथवा—कोई यह कहते हैं—लोक—मूलोक्त—पृथिवीमण्डल—चल है । जैसे—नौकादिसे चलनेवाले मनुष्योंको (जो नौकादिमें रहनेसे स्वयं स्थिर होते हुए भी भ्रमण कर रहे हैं) भ्रान्तिक वशासे तीरस्य दृक्षादिक चलते हुए नजर आते हैं । इसी तरह वस्तुतः पृथिवी ही चलती है सूर्य अचल होते हुए भी भ्रान्तिके वशासे चलता हुआ जैसा ज्ञात होता है । सूर्यको जो पूर्वदिशामें उदित हुआ देखते हैं वे कहते हैं कि सूर्यका उदय हुआ, दूर होनेसे जो नहीं देख सकते हैं वे कहते हैं कि सूर्य अस्तमित हो गया, मध्यमें स्थित प्राणियोंको मध्याह्नगत मालूम देता है; वास्तवमें तो सूर्य अचल ही है ।

पौराणिकोंका यह कथन है कि यह लोक सादिक उत्पत्तिवाला है, जय इसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी अर्थात् सृष्टिकी आदि में यह तमोभूत था, अतर्क्य था (यह क्या था कुछ नहीं कहा जा सकता

अथवा—कई जेम रहे थे—लोक—मूलोक्त—पृथ्वीमण्डल चल थे जेम जहाजमां सादिकवापणा मनुष्यने भ्रान्तिने काल्पे तीरस्थित पक्ष बनेरे दोहतां—वाहतां नजर परे थे जे नरीते वस्तुता पृथ्वी यावे थे सूर्य अचल होवा छतां पक्ष भ्रान्तिना यथाधी यावतो होव जेम देणाय थे सूर्य के बनेने पूव दिशामां उदित बजेवे जेमके छीजे, अने कहीजे छीजे के सूर्यना उदय बये। इए हीवाधी ने नधी रोपी यावता ते रहे थे के सूर्य आबनी जये। मध्यमां स्थित प्राणियोंने मध्याह्न माह्रम परे थे वास्तवमां ते सूर्य अचल न थे

पौराणिकोंका जेवु कथन है कि वास्तव सादिक उत्पत्तिवाला न था, अर्थात् सृष्टिकी उत्पत्ति पहले था तमोभूत

અનાદિકો લોકઃ=સૌગતમતે ચાનાદિપરમ્પરયૈકાન્તતો લોકસ્થાનાદિત્વં ભવતિ ।  
 સપર્યવસિતઃ=સાન્તઃ પ્રલયસમયે વિષ્ણોર્નાભિકમલ્લે લોકો વિલીનો ભવતિ,  
 એતદપિ પૌરાણિકમતમ્ ।

અપર્યવસિતઃ=અન્તરહિતો લોકોઽસ્તિ । સતો લોકસ્યાઽઽત્યન્તિકવિનાશ-  
 સમ્ભવાત્ ।

યેપાં મતે સાદિકો લોકસ્તેપાં મતે લોકઃ સપર્યવસિતઃ । યેપા ત્વનાદિકસ્તે-  
 પામપર્યવસિત ઇતિ બોધ્યમ્ ।

હૈ ) ઔર સર્વતઃ પ્રસુત્ત જૈસા થા । વિષ્ણુકી નાભિમ્ રહે હુણ કમલસે  
 યહ જગત ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । અતઃ યહ સાદિક હૈ ।

યહ લોક અનાદિ હૈ--યહ ભી સૌગતોકા મત હૈ । ઇસ માન્યતામ્  
 એકાન્તરૂપસે અનાદિ પરમ્પરાસે ચલા આયા હુઆ હોનેસે લોકમ્ અના-  
 દિતા આતી હૈ ।

“ સપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક સાન્ત હૈ, પ્રલયકે સમયમ્  
 યહ લોક વિષ્ણુકી નાભિકે કમલમ્ વિલીન હો જાતા હૈ--યહ ભી  
 પૌરાણિકોકા મત હૈ । “ અપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક અન્તરહિત હૈ,  
 ક્યોં કિ જો સત્ પદાર્થ હોતા હૈ ઉસકા આત્યન્તિક વિનાશ નહીં હોતા  
 હૈ । જિસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક સાદિક હૈ ઉસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક  
 સપર્યવસિત ભી હૈ, જિસને ઉસે અનાદિ માના હૈ, ઉસકી માન્યતાનુસાર  
 વહ અપર્યવસિત ભી હૈ ।

હતું, યુ હતું તે કહેવાઈ શકતું નથી ચારે બાજુ સૂતકાર જેવું હતું વિષ્ણુની  
 નાભિમા રહેલા કમળથી આ જગત ઉત્પન્ન થયેલ છે આ બરોબર છે.

આ લોક અનાદિ છે--આ સૌગતોનું કહેવું છે આ માન્યતા--અનુસાર  
 એકાન્ત રૂપથી અનાદિ પરપરાથી આદ્યુ આવેલ હોવાથી, લોકમા અનાદિતા  
 આવે છે

“ સપર્યવસિતો લોકઃ ” આ લોક સાન્ત છે પ્રલયના સમયમા આ  
 લોક વિષ્ણુના નાભિ-કમળમા વિલીન થઈ વાય છે આવા પણ પૌરાણિકોનો  
 મત છે “ અપર્યવસિતો લોક ” આ લોક અન્તરહિત છે, કેમ કે જે સત્  
 પદાર્થ હોય છે એનો આત્યન્તિક વિનાશ થતો નથી જેના સિદ્ધાન્ત અનુસાર  
 લોક સાદિક છે તેના સિદ્ધાન્ત-અનુસાર લોક સપર્યવસિત પણ છે, જેને  
 એણે અનાદિ માનેલ છે--એમની માન્યતાનુસાર તે અપર્યવસિત પણ છે.

स्याद्वादवत्स्थानामिच्छास्ते 'अस्ति लोकः' इत्यादिनैकान्तवादमाभित्य नाना-  
विषयाणां विनियोजनमभिधायत्मात्मविषयेऽपि विवदन्ते । तदेव दर्शयति—'सुकृत'  
मित्यादि । सुकृतमिति वा=पुण्यमिति, सुष्टुकृतमित्यर्थो वा, एवमेव दुष्कृतमिति वा  
=पापमिति यादिनो भवन्ति । तथा हि—यदनेन परिहृतसवसङ्गेन पञ्चमहाव्रतादानं  
विहितं तस्मुष्टु कृतम्, तथा विहितस्त्रीपरिग्रहेन तनयमनुत्पाद्य स्त्री त्यक्तेति दुष्क  
रमिति वा कृतमिति ।

किञ्च 'कल्याणमिति वा' गृहीतस्यम कश्चित्कल्पयति—कल्याणमाचरितं त्वयेति,

ये पूर्वोक्त "अस्ति" आदि लोकाविषयक समस्त मान्यताएँ स्या-  
दादिसिद्धान्तके तत्त्वसे अमभिज्ञ हुए व्यक्तियोंकी हैं । इन अनेक प्रकारकी  
मान्यताओंमें एकान्तरूपसे ही अपने २ अभिमतकी पुष्टि की गई है ।  
इन प्रवादियों की मान्यता आत्मतत्त्वमें भी भिन्न २ रूपसे है—यही बात  
'सुकृत' मित्यादि वाक्योंसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं ।

पुण्य अथवा सुष्टुकृतका नाम सुकृत है । पाप अथवा स्रोटे कृत-  
किये गयेका नाम दुष्कृत है । जैसे—इसने सब परिग्रह आदिका त्यागकर  
पंच महाव्रतोंको धारण किया यह तो सुष्टुकृतम्—सहुत अच्छा किया,  
परन्तु जब इसके स्त्री भी तो इसे चाहिये या कि उसके कमसे कम एक  
बच्चा ही हो जाता तब जा कर यह मुनि बनता, इसके पहिले इसने स्त्री  
त्याग कर दिया और मुनि बन गया यह इसने 'दुष्कृतम्'—अच्छा नहीं किया ।

तथा—'कल्याणम् इति वा'—जिसने सयम धारण कर लिया है, ऐसे

आ पूर्वोक्त 'अस्ति' आदि लोकाविषयक समस्त मान्यताओंके स्याद्वाद  
सिद्धान्तका तत्त्वही अन्वय जैसी व्यक्तिजैसी है आती अनेक प्रकारकी मान्य-  
ताओंका ज्ञान-व्यपत्ति वा चेतपीताना भवती पुष्टि कल्याणम् आवेक है आ  
भक्त्याण्यजैसी मान्यता आत्म तत्त्वमां पक्ष लुका लुका रूपमें है आ वात-  
'सुकृतम्' इत्यादि वाक्योंकी सूत्रकार स्पष्ट करे है पुण्य—अथवा साईं कार्यं तेन  
नाम सुकृत है, पाप अने जेदुं कार्यं तेन नाम दुष्कृत है जेम-तेजे  
सर्व परिश्रमने त्याग करी पांच महाव्रत धारण कर्थां तेजे सुकृत कर्तुं परंतु  
जैनी स्त्रीने जेकरा आणक बसा पक्षी जेजे मुनिमत अक्षय कर्तुं कीव ते  
पक्ष कर्तुं आनी पक्षीयां ते मुनि जनी जसो ते जेजे दुष्कृत कर्तुं  
जेरते साईं नहीं कर्तुं

तथा कल्याणम् इति वा—जेजे सयम धारण करेक है जेवा मुनिना अन्वये

तथा 'पापमिति वा' कश्चित्कथयति-पाप त्वया समाचरितं यद् गृहस्थ धर्मपरिपाल-  
नासमर्थं कातरोऽनपत्य एव त्वं संयमं गृहीतवानिन्त। एतमेव कश्चित्कथयति-साधु-  
रिति वा असाधुरिति वा, तथैव तव सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, तथा नित्य

मुनिके प्रति कोई ऐसा कहना है कि "कल्याणम् आचरितं त्वया" तुमने अपनी आत्माका कल्याण-भला-कर लिया। तथा 'पापमिति वा' कोई कहता है कि आपने यह अच्छा नहीं किया; क्यों कि उससे तो यह मालूम होता है कि तुम गृहस्थ धर्मके पालन करनेमें कायर-असमर्थ थे और इससे कायर बन कर बिना पुत्ररूप उत्तराधिकारीके हुए तुमने संयम धारण कर लिया है। इसी तरह कोई कहता है-'साधु इति वा, असाधु इति वा-आपने अच्छा किया, आपने अच्छा नहीं किया, तथा-'तव सिद्धिरिति वा'-असिद्धिरिति वा, तुम्हारी सिद्धि होगी-तुम्हारी सिद्धि नहीं होगी, एव नित्य इति वा-तुमने घरवालोंका कुछ भी खयाल न कर और उन्हें रोता बिलखता छोड़ कर जो यह साधुका वेप पहिर लिया है-इससे तुम्हारी गति अच्छी हो जावेगी, सो यह बात नहीं है, दूसरों को दुःखके उत्पादक होनेसे तुमने नरक गमनके योग्य पापका ही उपा-  
र्जन किया है, अतः तुम मनुष्य नहीं-नारकी हो। यह आवेशके बचन हैं। कोई २ मनुष्य सांसारिक पदार्थोंको छोड़कर आत्मकल्पाण करने-

कोई जेभ कहे छे के "कल्याणम् आचरितं त्वया" तमे तभारा आत्मातु  
कल्याणु भले करी लीधु तथा-'पापमिति वा'-कोई जेभ कहे छे के तमे आ डीक  
नथी कथुं, केभ के आधी तो जेभ मालुम पडे छे के तमे गृहस्थ धर्मतुं पालन  
करवाभा असमर्थ हुता, अने जेथी कायर जनी पुत्ररूपी उत्तराधिकारी बिना  
तमे सथम धारणु करेले छे आभा कोई जेभ पणु कहे छे के 'साधु इति वा'  
'असाधु इति वा' आपे साइ कथुं आपे साइ नथी कथुं तथा-'तव सिद्धि-  
रिति वा असिद्धिरिति वा' तभारी सिद्धि थरो तभारी सिद्धि थनार नथी  
तथा-'नित्य इति वा' तमे पैताना करवाणाज्जेने कोई पणु ज्ज्याल  
कथी पगर अने तेने शता कडणता छोडीने जे आ साधुने वेश पहिरो छे  
जेथी तभारी गति सारी थरो जे वात भरोगर नथी, पीणज्जेने हुण थथ  
तेपु करवाथी तभोजे नरक योग्य पापतु ज उपाजन करेले छे आधी तमे  
मनुष्य नथी, नारकी छे आ आवेशतु बचन छे कोई कोई मनुष्य, सांसा  
रीक पदार्थोने छोडीने आत्मकल्याणु करवाणाज्जेने प्रश सा-स्तुति पणु करे छे



इति वा—नरकगमनायोपाजितपापत्वादेव त्व नरकः—नरकगामी, अथवा निरय इति वा—नरकलोकोऽस्तीति वा, तथैव अनिरय इति वा—नरकलोको नास्तीति, यद्वा—नास्य उपमिनो नरकगमनमिति वा—इति । इत्यादीनि स्वच्छन्दमतिक्रिप्तानि नाना विधानि वाक्यानि विवदन्ते । अन्यदप्युक्त्वा विवदन्त इति दर्शयति—'यदिद'—मिष्यादि । यद्=यस्मात् कारणात्, यद्वा—यत्पूर्वोक्तं=लोकादिक्रममिहितं तद् इयं=लोकादिकं विप्रतिपत्ता=विरुद्धभाषिमस्ते मिष्याद्युक्त्या, मामर्कं=स्वकीय धर्मं भेषस्करं मुक्तिकरं च प्रज्ञापयन्तः=प्रकर्षेण प्रकथयन्तः स्वयं भेयोमार्गात् यच्चिताः परा-

वालोक्यी प्रशंसा—स्तुति भी करते हैं और कहते हैं—“अनिरय इति” आपने अच्छा किया जो इस संसाररूपी नरकसे आप पार हो गये, अथवा यह सिद्धान्तका वचन है कि “अणुब्रह्ममहामयाहं न लहइ देवावर्गं मुत्सं” अणुब्रह्म महाब्रह्म देवायुके बंध करनेवालेके सिवाय किसी अन्य आयुके बंधक जीवको नहीं होते हैं—इस अपेक्षा इस संयमीका नरकमें गमन नहीं हो सकता । इस प्रकार लोग स्वच्छन्दमतिसे कल्पित अनेक प्रकारके वाक्योंका प्रयोग करते रहते हैं । और भी स्वकल्पित बातें बोलनाते हैं—इसे सूत्रकार “यदिद विप्रतिपत्ता” इम पदोंसे प्रदर्शित करते हैं । इस प्रकारसे विरुद्ध भाषण करनेवाले ये मिष्यादृष्टि जीव “मेरा ही धर्म भेषस्कर और मोक्षप्रदाता है” इस प्रकारकी प्रकथना कर स्वयं भेयोमार्गसे बंधित बन, अन्य जीवोंको भी ठगा करते हैं, अर्थात् इस मार्गसे दूसरोंको बंधित बनाते रहते हैं । जिस प्रकार कोई

अने बड़े से अनिरय इति वा आपे आई कहे के आ सुखरूपी नरकधी आप पार गया, अथवा आ सिद्धांतनु वचन से है—“अणुब्रह्ममहामयाहं न लहइ देवावर्गं मुत्सं” अणुब्रह्म महाब्रह्म देवायुना जय करवावाजानी सिद्धय कहें जीव आयुध्याना जयक लयने मतु नहीं आ अपेक्षा जेवा जेवा संयमीनु नरकमा गमन कथं शकतुं नहीं, आ शीते लोक स्वच्छन्दमतिधी कल्पित अनेक प्रकारके वाक्योंके प्रयोग करता रहे से जीव पक्ष स्वकल्पित बातें बोलता रहे से, तेने सूत्रकार—“यदिद विप्रतिपत्ता” आ पदोंधी प्रदर्शित करे से आ लोकमें आ प्रकारधी विरुद्ध भाषण करवावाज के मिष्यादृष्टि लय “मेरा ही धर्म भेषस्कर अने मोक्ष प्रदाता है” आ प्रकारधी प्रकथना करी भेयोमार्गधी बंधित जनी, जीव लयने पक्ष इमे से अर्थात् के आर्जधी जीवकोने पक्ष बंधित जनावे से, के शीते कहें आधये आध्याने दाध

નપિ વશ્ચયન્તિ 'અન્ધેનેૈ૨ નીયમાનો યથાઽન્ધઃ' ઇતિ લોકોક્ત્યા સ્વય નપ્તાઃ  
પરાનાશયન્તીતિ વાત્પર્યમ્ । લોકાદિવિપયે તે વહુધા વિચદન્તે, તદ્યથા—

“ ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ॥

કૃત્સ્ન લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજ કેચિત્કેચિત્સોમાગ્નિસમ્ભવ લોકમ્ ॥

દ્રવ્યાદિપદ્ધવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિત કેચિત્ કેચિદ્બ્રહ્મકૃતં જગત્ ॥

અવ્યક્તપ્રભવ સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલા ॥ ૩ ॥

અંધા અંધેકા હાથ પકડ કર માર્ગ ચતાને લે જાતા હૈ તો વહ દૂસરે અંધે  
કો ખી માર્ગસે ધ્રષ્ટ વના દેતા હૈ, અથવા યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં પહુચા  
સકતા, ડમી પ્રકાર ઇન મિથ્યાદૃષ્ટિયોંકે પદેમં પડા હુઆ પ્રાણી ખી  
યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં જા સકતા । અતઃ એસે જીવ સ્વય નષ્ટ વન કર  
દૂસરોંકો ખી નષ્ટ કરતે હૈં । લોકાદિકકે વિષયમં ખી યે વહુધા વિવાદ  
કિયા કરતે હૈં—

ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમ સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ।

કૃત્સ્ન લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજં કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસમ્ભવં લોકમ્ ।

દ્રવ્યાદિ—પદ્ધવિકલ્પ જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃત જગત્ ।

અવ્યક્તપ્રભવ સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

પકડીને માર્ગ અતાવવા લઈ વ્તય છે તે ખીબ આધળાને પણ માર્ગથી વેગળા  
કરી દે છે, અને ઉચિત સ્થાને પહોચાડી શકતો નથી એ રીતે આવા મિથ્યા-  
દૃષ્ટિના ક્રદ્ધમા પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોચી શકતા નથી. આથી  
એવા શુવ સ્વય નાશ પામીને ખીબનો પણ નાશ કરે છે લોકાદિકના વિષયમા  
પણ ઘણી વખત વિવાદ કર્યો કરે છે.

ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ।

કૃત્સ્નં લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજં કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસમ્ભવ લોકમ્ ।

દ્રવ્યાદિ—પદ્ધવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિત કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃતં જગત્ ।

અવ્યક્તપ્રભવ સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ॥

केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

अनेकान्तवादानभिन्नानामेकान्तवादिनामेतत्कथनम् । तथाहि—

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ।

केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सृष्टिवादी वैशेषिक, मीमांसक और नैयायिक आदि सिद्धान्तकार इस लोकको कृत्रिम और आदि-अन्तसहित मानते हैं । कोई २ अर्धनारीश्वरसे उत्पन्न हुआ इसे स्वीकार करते हैं । सोम, चन्द्र और अग्निसे यह लोक हुआ है—कोई २ ऐसा कहते हैं । किसी २ का सिद्धान्त है कि यह लोक ब्रह्मादि-यज्ञ-विकल्प-स्वरूप है । कोई २ इसे ईश्वरसे उद्भूत, कोई २ इसे ब्रह्मासे रचित मानते हैं । साध्य इसे प्रकृति से जनित, कोई २ इसे स्वतः उद्भूत, और कोई २ इसे पृथ्व्यादिकर्पाण्यमूर्तोंका विकारस्वरूप स्वीकार करते हैं । कोई इसे एकस्य और कोई इसे अनेकरूप भी मानते हैं । इस प्रकारसे इस लोकके विषयमें भिन्न २ सिद्धान्तकारोंकी भिन्न २ मान्यताएँ इन पद्यों द्वारा पतलाई गई हैं । लोक और आत्मतत्त्वके विषयमें ये उपर्युक्त मान्यताएँ उन्हीं व्यक्तियों की हैं जो अनेकान्तवादसे अनभिज्ञ बने हुए हैं । कहा भी है—

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद् भूतविकारजम् ।

केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सृष्टिवादी वैशेषिक मीमांसक और नैयायिक आदि सिद्धान्तकार आ लोकने कृत्रिम और आदि-अन्त-सहित माने छे. केछ केछ अर्धनारीश्वरशी कल्प बनेल होवाने स्वीकार करे छे सोम, चन्द्र और अग्निशी आ लोक बनेल छे तेम केछ केछे छे केछ केछनी सिद्धात छे के आ लोक ब्रह्मादि-यज्ञ-विकल्प-स्वरूप छे केछ केछ तेने क्षीरशी कल्प बनेल केछ केछ तेने प्रकृती रचित बनेल अने छे साध्य तेने प्रकृतिशी जनित स्वीकारे छे केछ केछ तेने स्वतः उद्भूत और केछ केछ तेने पृथ्वी आदि पण्य भूतेना विकार-स्वरूप स्वीकार करे छे. केछ तेने अनेकरूप, केछ तेने अनेक रूप पद्य माने छे, आ प्रकारशी आ लोकना विषयमां भिन्न भिन्न सिद्धान्तकारानी भिन्न भिन्न मान्यताये आ पद्य द्वारा पतलवेल छे लोक और आत्मतत्त्वना विषयमा उपर केछे के मान्यताये अने अज्ञित्येनी छे के के अनेकान्तवादी अन्वय छे. केछ पद्य छे

નપિ વશ્ચયન્તિ 'અન્વેનૈવ નીયમાનો યથાઽન્ધઃ' ઇતિ લોકોક્ત્યા સ્વયં નષ્ટાઃ  
પરાનાશયન્તીતિ તાત્પર્યમ્ । લોકાદિવિષયે તે વહુધા વિચદન્તે, તદ્યથા—

“ ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ॥

કૃત્સ્ન લોકે મહૈશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજ કેચિત્કેચિત્સોમાગ્નિસમ્ભવં લોકમ્ ॥

દ્રવ્યાદિષ્ટવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિદ્બ્રહ્મકૃતં જગત્ ॥

અવ્યક્તપ્રભવં સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલા ॥ ૩ ॥

અંધા અંધેકા હાથ પકડી કર માર્ગ વતાને લે જાતા હૈ તો વહુ દૂસરે અંધે  
કો ઢી માર્ગસે ભ્રષ્ટ બના દેતા હૈ, અથવા યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં પહુચ્ચા  
સકતા, ડસી પ્રકાર ઇન મિથ્યાદૃષ્ટિયોકે ફંદેમેં પડા હુઆ પ્રાણી ઢી  
યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં જા સકતા । અતઃ ંસે જીવ સ્વયં નષ્ટ બન કર  
દૂસરોંકો ઢી નષ્ટ કરતે હૈં । લોકાદિકકે વિષયમેં ઢી ચેવહુધા વિવાદ  
કિયા કરતે હૈં—

ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ।

કૃત્સ્નં લોકે મહૈશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજં કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસમ્ભવં લોકમ્ ।

દ્રવ્યાદિ-ષ્ટવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃતં જગત્ ।

અવ્યક્તપ્રભવં સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

પકડીને માર્ગ ખતાવવા લઈ બય છે તે ધીન્ત આધ્યાને પણ માર્ગથી વેગળે  
કરી દે છે, અને ઉચિત સ્થાને પહોચાડી શકતો નથી એ સીતે આવા મિથ્યા-  
દૃષ્ટિના દેહમા પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોચી શકતા નથી આથી  
એવા છવ સ્વયં નાશ પામીને ધીન્તનો પણ નાશ કરે છે લોકાદિકના વિષયનાં  
પણ ઘણી વખત વિવાદ કર્યા કરે છે.

ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ।

કૃત્સ્નં લોકે મહૈશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજં કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસમ્ભવં લોકમ્ ।

દ્રવ્યાદિ-ષ્ટવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃતં જગત્ ।

અવ્યક્તપ્રભવં સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

विप्रतिपत्तौ एवं सूर्यं नानीत्=बुध्यध्वम्, यस्तपाम् 'अस्ति लोकः' 'नास्ति लोकः'  
इत्यापेक्षान्तवादः सः अकस्मात्='अकस्मात्' इति संस्कृतस्यैव मगधदेशे प्रसिद्धत्वान्भूले  
गणपरीस्तदेव सूचीतम्, 'कस्मात्' इति हेतौ; न कस्मात् अकस्मात् निर्हेतुकोऽस्तीत्यर्थः।  
तथा हि-यपेक्षान्तः, 'अस्ति लोकः' इत्यप्रास्तित्वसमानाधिकरणत्वं लोकस्य स्यात्  
तत्र 'यदस्ति तल्लोकः' इति व्याप्ते 'अल्लोकोऽस्ति' इत्यप्रास्तित्वरूपहेतौः

अपेक्षा नास्ति और नास्तिकी अपेक्षा अस्ति। कोई वादी लोकमें अस्तित्व  
धर्म स्वीकार करता है दूसरा उसमें नास्तित्व। ये दोनों कथन परस्पर  
विकृत इसलिये हैं कि ये नयकी विषयज्ञासे रहित हैं। इसीका नाम  
एकांतवाद है। इसीलिये इनमें अपनी २ मान्यस्तानुसार वादियोंको  
विवादका प्रसंग आता है। सूत्रकार कहते हैं कि इस विप्रतिपत्तिमें आप  
लोग यही समझो कि उनका "अस्ति लोकः, नास्ति लोकः" यह जो  
एकांतवाद है वह अकस्मात्-निर्हेतुक है। "अकस्मात्" यह निर्हेतुकता-  
बोधक पद संस्कृत भाषाकी तरह मगधदेशकी भाषामें भी प्रसिद्ध है, इस  
लिये गणधरोने भी मूल सूत्रमें उसी पदका ग्रहण किया है। "कस्मात्" यह  
हेत्वर्थमें आता है, जो "कस्मात्" नहीं वह "अकस्मात्" है। इसका  
अर्थ निर्हेतुक" होता है, अर्थात् उनका यह वाद निर्हेतुक है। जैसे कि-  
"अस्ति लोकः" इस कथनमें अस्तित्वक साथ समानाधिकरणता एका-  
न्तरूपसे लोकमें मानी जावे तो "यदस्ति तल्लोकः" जो है वह लोक है-

अपेक्षा नास्ति अने नास्तिकी अपेक्षा अस्ति। कोई वादी लोकमें अस्तित्व धर्मको  
स्वीकार करे है तभी वह नास्तिकत्वको, अथ अ ने वाता परस्पर विकृत आ भाटे है  
है जो नयकी विषयज्ञासे रहित है अथु नाम अपेक्षान्तवाद है अथ भाटे जेभा  
प्रेतप्रेतानी मान्यता अनुसार वादध्याजोने विवाधने प्रसंग आवे है सूत्रकार  
कहे है है अथ सामान्यता वाद अथि आप जे समझे है जेअनु 'अस्ति लोकः'  
अस्ति लोकः' आ जे अपेक्षान्तवाद है जे अकस्मात्-हेतु वचनेने है अकस्मात् जे  
हेतु वचनेने बोधक पर संस्कृत भाषाकी जेभ मगधदेशमें पद्य प्रसिद्ध है आ  
भाटे वलुधरोने पद्य मूल सूत्रमें जे पदने प्रकृत करल है "कस्मात्" अथ  
हेत्वर्थमें आवे है जे "कस्मात्" नहीं ते "अकस्मात्" है जेने अर्थ  
हेतु वचनेने साथ है अर्थात् जेअने जे वाद निर्हेतुक है "अस्ति लोकः"  
अथ वाक्यमें अस्तित्वकी साथ समानाधिकरणता अपेक्षान्तवादी लोकमें मान  
यमें आवे तो "यदस्ति तल्लोकः" जे है ते लोक है अथ प्रकृतनी व्याप्ति

“લોકક્રિયાસ્મતત્ત્વે, વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।”

અવિદિતપૂર્વે યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

યેષાં તુ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તો હૃદયે પ્રલુહસ્તેપામસ્તિત્વનાસ્તિત્વાર્થસ્ય તત્ત-  
ત્રયાભિપ્રાયેણ કથચ્ચિત્સદ્ગતિસદ્ભાવાત્પ્રવાદસ્થાનમેવ નાસ્તીતિ ।

પરતૈર્થિકધર્માણામપારમાર્થિકત્વં પ્રતિપાદયન્ સ્વધર્મસ્ય પારમાર્થિકત્વં દર્શ-  
યતિ—‘ઇત્યવિ’—ઇત્યાદિ, અત્રાપિ ‘અસ્તિ લોકો નાસ્તિ લોક’ ઇત્યાદિ—

લોકક્રિયાત્મતત્ત્વે વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।

અવિદિતપૂર્વે યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિત તત્ત્વમ્ ॥

જિનકે હૃદયમેં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તકા વાસ હૈ, ણ્હેં અસ્તિત્વ—નાસ્તિત્વ  
ઇત્યાદિ અર્થમેં ડસ ૨ નયકે અભિપ્રાયસે સંગતિકા સદ્ભાવ હોનેસે, વાદ-  
વિવાદકે લિયે સ્થાન હી નહીં હૈ ।

માવાર્થ—યે પૂર્વોક્ત મન્તવ્ય એકાન્તરૂપમેં માને જાને પર હી એક  
દૂસરેકે લિયે વિવાદકા કારણ બનતે હૈ, પરન્તુ જબ યે કિસી અપેક્ષાસે  
( નયકે અભિપ્રાયસે ) વિચાર કરનેમેં આતે હૈં તો ઇનમેં વિવાદકે લિયે  
સ્થાન હી નહીં રહતા હૈ । ઇસી વાતકો સૂત્રકાર “અત્રાપિ ” ઇત્યાદિ  
પદોસે પ્રદર્શિત કરતે હૈં, વે કહતે હૈં—પરતૈર્થિક ધર્મોમેં અપરમાર્થિકતા  
ઔર સ્વધર્મમેં પરમાર્થિકતા ઇસ પ્રકારસે હૈ—

અસ્તિ લોકઃ, નાસ્તિ લોક, ંધે દો પરસ્પર વિરુદ્ધ હૈં—અસ્તિકી

લોકક્રિયાત્મતત્ત્વે વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।

અવિદિતપૂર્વે યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥

જેના હૃદયમા સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તનો વાસ છે તેને અસ્તિત્વ નાસ્તિત્વ ઇત્યાદિ  
અર્થમા તે તે નયના અભિપ્રાયથી સંગતિનો સદ્ભાવ હોવાથી વાદવિવાદ  
માટે સ્થાન નથી

માવાર્થ:—આ પૂર્વોક્ત મતવ્ય એકાન્તરૂપમા માનવામા આવેલ હોવાથી  
એક ખીજા માટે વિવાદનુ કારણ બને છે, પરન્તુ જ્યારે એ કોઇ અપેક્ષાથી  
( નયના અભિપ્રાયથી ) વિચાર કરવામા આવે છે તો તેમા વિવાદને માટે  
સ્થાન જ નથી આ વાતને સૂત્રકાર “અત્રાપિ ” ઇત્યાદિ પદોથી પ્રદર્શિત કરે  
છે તેઓ કહે છે—પરતૈર્થિક ધર્મમા અપરમાર્થિકતા અને સ્વધર્મમા પરમાર્થિકતા  
આ પ્રકારે છે—

‘અસ્તિ લોક, નાસ્તિ લોક’ આ બન્ને પરસ્પર વિરુદ્ધ છે. અસ્તિની

स्यागमवचनाद् अस्तित्वं लोकाणां व्यापकम् । लोकात्मलोकत्वं च अस्तित्वव्या-  
 र्म् इति अस्तित्वहेतुसद्भावेन समानत्वाद् अस्तित्वहेतुसद्भावेन लोकोऽप्यलोक इत्या-  
 येव, अलोकस्य अस्तित्वव्याप्यतया व्यापकीभूतास्तित्वसत्तया व्याप्यभूतालोक  
 सत्तया निर्वाण ।

अपरञ्च—एवम् अलोकभावरूपस्य लोकस्य अस्तित्वव्याप्यत्वे अलोकस्यापि  
 लोकप्रसङ्गः, लोकस्वरूपव्याप्यसद्भावे व्यापकस्यापि अलोकस्यास्तित्वस्य नि-

र्णमपि व्यापक है, लोक और अलोक ये दोनों उस अस्तित्वके व्याप्य  
 । इसलिये अस्तित्व हेतु दोनोंमें समानरूपसे रहता है। इस हेतुसे  
 प्रतिप्रसंग नामका भी रूपण आता है। क्योंकि अस्तित्व हेतुके सद्भावेसे  
 लोक भी अलोकरूपसे और अलोक लोकरूपसे आपादित किया जा सकता  
 । कारण कि लोक जिस प्रकार अस्तित्वका व्याप्य है और वह अपनी  
 व्यापकीभूत सत्तासे समन्वित है उसी प्रकार अलोक भी अस्तित्वका  
 व्याप्य है और वह भी उसी सत्तासे समन्वित है, अतः सत्ताके एकत्व  
 होनेसे लोकमें भी अलोकपना आपादित किया जा सकता है।  
 उसी प्रकार अलोकमें भी लोकपना आपादित हो सकता है, और  
 वह भी इस प्रकारसे कि अलोकके अभावरूप लोक अस्तित्वका व्याप्य-  
 पनामें रहता है; इसलिये अलोकमें लोकत्वका प्रसंग हो सकता है; क्यों-  
 कि लोकस्वरूप व्याप्यके सद्भावेमें व्यापक—जो अलोकका अस्तित्व है,  
 उसका भी नियमसे वहाँ सद्भाव पाया जाता है। तब तो लोक अलोक  
 और अलोक लोक हो जायगा—इस प्रकार अनिष्टापत्ति होनेसे कुछ

कारण अस्तित्व हेतु अन्नेमां समान रूपी स्वेद छे अ हेतुभी अतिप्रसङ्ग  
 नभनु रूप्य आवे छे ठेभके अस्तित्व हेतुना सद्भावभी लोक पक्ष अलोक  
 रूपी अने अलोक लोकरूपी आपादित करी शक्य छे। कारण के लोक के प्रकार  
 अस्तित्वनो व्याप्य छे अने ते पितानी व्याप्यभूत सत्ताभी समन्वित छे। अने  
 रीते अलोक पक्ष अस्तित्वनो व्याप्य छे अने अने पक्ष अने सत्ताभी समन्वित  
 छे आभी सत्तानु अनेत्व यथाभी लोकमां पक्ष अलोकपना आपादित करी शक्य छे  
 अ रीते अलोकमां पक्ष लोकपना आपादित यथ शक्य छे अने अने पक्ष  
 अ प्रकारभी के अलोकना अभावरूप लोक अस्तित्वना व्याप्यपनामां रह्ये छे।  
 अ कारणे अलोकमां लोकत्वनो प्रसङ्ग यथ शक्य छे ठेभके लोकस्वरूप व्याप्यना  
 सद्भावमां व्याप्य के अलोकनु अस्तित्व छे अनेना पक्ष निवृत्तभी तथा सद्भाव  
 हेतुय छे। त्वाहेतो लोक अलोक अने अलोक लोक यथ वये अ प्रकारनी

सत्त्वात्, साध्यस्य लोकस्य चासत्त्वादनैकान्तिको हेतुः । लोकाभावरूपसाध्याभाव-  
साधकतया विरुद्धोऽपि च भवति । तथा च-अस्तित्वहेतुना लोकस्य साधने लोक  
एवालोकः स्यात्, आकाशास्तिकायस्य लोकालोकभेदमाश्रित्य 'अत्थि अलोए'

इस प्रकारकी व्याप्ति होनेसे हेतु अनैकान्तिक हो जाता है; क्यों कि  
साध्य लोकसे विरुद्ध अलोकके साथ भी इस अस्तित्वरूप हेतुकी व्याप्ति  
व्यावृत्तिवाली नहीं होती है। अनैकान्तिक हेतु वही होता है जो पक्ष  
सपक्षमें रहता हुआ भी विपक्षमें रहता है। प्रकृतमें "यदस्ति तल्लोकः"  
यहां पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोकके साथ रहता हुआ भी विपक्ष अ-  
लोकमें भी रहता है, क्यों कि वहां-अलोकमें साध्य-लोकका अभाव है,  
दूसरे इसीलिये यह हेतु विरुद्ध भी पडता है, लोकका अभावरूप जो  
साध्यका अभाव अलोक है उसका साधक यह हेतु होता है-अलोकाकाश  
में भी अस्तित्वरूप हेतु रहता है। इस बातको प्रकट करनेके लिये टीका-  
कार कहते हैं कि लोक और अलोक ये दो विभाग एक आकाश अस्ति-  
काय द्रव्यके ही है तो जिस प्रकार लोकमें "अस्ति लोकः" ऐसा व्यव-  
हार होता है, उसी प्रकार "अस्ति अलोकः" अलोकमें भी यह अस्ति-  
त्वविशिष्ट व्यवहार होता है। "अत्थि लोए-अत्थि अलोए" ये दोनों वचन  
आकाशविषयक हैं, अतः अस्तित्व यह हेतु लोक और अलोक इन

धर्मा हेतु अनैकान्तिक धर्म नाथ छे केम के साध्य लोकधी विरुद्ध अलोकनी  
साधे पक्ष अे अस्तित्वरूप हेतुनी व्याप्ति व्यावृत्तिवाणी धती नधी अनैकान्तिक  
हेतु अे न डोय छे ने पक्ष सपक्षमा रहेवा छता विपक्षमा पक्ष रहे छे प्रकृ  
तमा "यदस्ति तल्लोकः" अर्धी पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोकनी साधे रहेवा  
छता पक्ष विपक्ष अलोकमा पक्ष रहे छे केम के त्या अलोकमा साध्य लोकने  
अभाव छे, णीधु आ न अरखे अे हेतु विरुद्ध पक्ष पडे छे लोकने अभावरूप  
साध्यने अभाव अलोक छे, अनेना साधक अे हेतु थाय छे-अलोकाशमा पक्ष  
अस्तित्वरूप हेतु रहे छे आ वातने प्रगट करवा भाटे टीकाकार कडे छे के  
लोक अने अलोक आ जे विभाग अेक आकाश अस्तिकाय द्रव्यमा न छे तो  
ने प्रकारे लोकमा "अस्ति लोक" अेवाे व्यवहार थाय छे अे न रीते "अस्ति  
अलोक" अलोकमा पक्ष आ अस्तित्वविशिष्ट व्यवहार थाय छे अे आकाशधु  
"अत्थि लोए-अत्थि अलोए" पयन छे आधी अस्तित्व आ हेतु लोक अने अलोक  
अनेमा व्यापक छे लोक अने अलोक अने अे अस्तित्वना व्याप्य छे आ



इत्यागमवचनाद् अस्तित्वं साकालोकव्यापकम् । लोकात्मलोकत्वं च अस्तित्वव्याप्यम् इति अस्तित्वहेतोरुभयत्र समानत्वाद् अस्तित्वहेतुसद्भावेन लोकोऽप्यलोक इत्यापद्येत्, असाकस्य अस्तित्वव्याप्यतया व्यापकीभूतास्तित्वसत्तया व्याप्यभूतालोकत्वस्य निर्वापा ।

अपरञ्च—एसम् अलोकामात्ररूपस्य लोकस्य अस्तित्वव्याप्यत्वे अलोकस्यापि साकल्यसङ्गः, लोकस्वरूपव्याप्यसद्भावे व्यापकस्यापि अलोकस्यास्तित्वस्य निवृत्तयोर्मे व्यापक है, लोक और अलोक ये दोनों उस अस्तित्वके व्याप्य हैं । इसलिये अस्तित्व हेतु दोनोंमें समानरूपसे रहता है । इस हेतुसे अतिप्रसंग नामका भी रूपण आता है । क्योंकि अस्तित्व हेतुके सद्भावेसे लोक भी अलोकत्पसे और अलोक लोकरूपसे आपादित किया जा सकता है । कारण कि लोक जिस प्रकार अस्तित्वका व्याप्य है और वह अपनी व्यापकीभूत सत्तासे समन्वित है उसी प्रकार अलोक भी अस्तित्वका व्याप्य है और वह भी उसी सत्तासे समन्वित है, अतः सत्ताके एकत्व होनेसे लोकमें भी अलोकपना आपादित किया जा सकता है । इसी प्रकार अलोकमें भी लोकपना आपादित हो सकता है, और वह भी इस प्रकारसे कि अलोकके अभावरूप लोक अस्तित्वका व्याप्यपनामें रहता है; इसलिये अलोकमें लोकत्वका प्रसंग हो सकता है; क्योंकि लोकस्वरूप व्याप्यके सद्भावमें व्यापक—जो अलोकका अस्तित्व है, उसका भी नियमसे वहाँ सद्भाव पाया जाता है । तब तो लोक अलोक और अलोक लोक हो जायगा—इस प्रकार अनिष्टापत्ति होनेसे कुछ

कारण अस्तित्व हेतु अनेकों समान रूपों में रहता है अथ हेतुकी अतिप्रसंग नामक रूपण आवे से केमके अस्तित्व हेतुका सङ्कापकी लोक पक्ष अलोक रूपकी अने अलोक लोकरूपकी आपादित करी शक्य है । कारण के लोक के प्रसंग अस्तित्वको व्याप्य है अने ते पितानी व्याप्यभूत सत्ताकी समन्वित है अथ हीते अलोक पक्ष अस्तित्वको व्याप्य है अने को पक्ष अथी सत्ताकी समन्वित है अथी सत्तानु अथी सत्ताकी लोकमां पक्ष अलोकपना आपादित करी शक्य है अथ हीते अलोकमां पक्ष लोकपना आपादित करी शक्य है अने को पक्ष अथ प्रकाशकी के अलोकना अभावरूप लोक अस्तित्वना व्याप्यपनामां रहते है अथ कारण अलोकमां लोकत्वको प्रसंग करी शक्य है केमके लोकत्वरूप व्याप्यना सङ्कापमां व्यापक के अलोकनु अस्तित्व है अने पक्ष नियमकी त्या सङ्काप देनाय है । त्वरिते लोक अलोक अने अलोक लोक करी अथ प्रकाशकी

यमतः सद्भावात्, तथा च—लोकः अलोको भवति, अलोकोऽपि लोकः, इत्यादि सर्वमनिष्टम् ।

किञ्च—लोकालोकापेक्षयाऽस्तित्वस्य व्यापकत्वे जिनदत्तजिनदासादेरप्यलोकत्वापत्तिः, व्याप्याया जिनदत्तव्यक्तेर्नियमतो व्यापकीभूतलोकास्तित्वसद्भावात्, जिनदत्तादौ अलोकव्यापकास्तित्वस्य सद्भावे अलोकत्वसत्ताया अवश्यम्भावात् ।

किञ्च—यद्यस्तित्वरूपेण हेतुना लोकत्वं साध्यते तर्हि 'अस्तित्वरूपो हेतुरस्ति' इति कृत्वा हेतुरपि—अस्तित्ववानेव भवति, तथा च हेतोरपि लोकत्वे सिद्धे हेतु-

भी व्यवस्था नहीं बन सकती है ।

तथा—लोक और अलोककी अपेक्षासे अस्तित्वमें व्यापकता मानने पर जिनदत्त और जिनदास आदि व्यक्तियोंमें भी लोकत्व और अलोकत्व की आपत्ति आयगी; क्योंकि उभयकी सत्ताका वहाँ सद्भाव है। व्याप्य जिनदत्त आदि व्यक्ति लोकरूप इसलिये माने जाने चाहिये कि उनमें लोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका सद्भाव है, तथा अलोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका भी वहाँ सद्भाव है।

तथा—यदि अस्तित्वरूपसे लोककी सिद्धि होती है तो कोई यहाँ यह भी प्रश्न कर सकता है कि अस्तित्वरूप हेतु जब स्वयं अस्तिरूप है तो उसे भी अस्तित्वविशिष्ट होनेसे लोकत्वापत्ति आवेगी, अर्थात् वह स्वयं लोकरूप हो जायगा ।

तथा—हेतु और साध्यमें लोकरूपपनेसे एकत्वापत्ति आ जानेसे साध्यसाधकभाव ही नहीं बन सकता है, ऐसी स्थितिमें किसको हेतु मान

अनिष्टापत्ति थवाधी काँ पणु व्यवस्था नहीं थछ शकती

तथा—लोक अने अलोकनी अपेक्षाधी अस्तित्वमा व्यापकता मानवाधी एनदत्त अने एनदास वगेरे व्यक्तियोंमा पणु लोकत्व अने अलोकत्वनी आपत्ति आवी नथे केम के भन्नेनी सत्ताने त्या सद्भाव छे व्याप्य एनदत्त आदि व्यक्तिये लोकत्व अने अलोकत्व मानवी जेठ अने के अनामा लोकत्व के व्यापक अस्तित्व छे अने सद्भाव छे, तथा अलोकत्व व्यापक के अस्तित्व छे अने पणु सद्भाव छे

तथा—जे अस्तित्वरूपधी लोकनी सिद्धि थाय छे तो काँ अने पणु प्रश्न करी शके छे के अस्तित्वरूप हेतु न्यारे स्वयं अस्तित्व छे तो अने पणु अस्तित्वविशिष्ट होवाधी लोकत्वापत्ति आवेशे अर्थात् अने स्वयं लोकत्व अनी नथे तेमज हेतु अने साध्यमा लोकत्वपणुधी एकत्वापत्ति आवी नवाधी

साध्यलोकोत्तररूपतयैकस्वापत्तिः, तत्र च हेतुमाभिस्य लोकाः सापयिष्यते मत्स्युत  
लोकादन्योऽप्यलोकाः अस्तित्वहेत्वसम्भवाद् 'अस्ति लोकाः' इति प्रतिज्ञाऽपि नैव  
सिष्यति । तस्मादेकान्त एव लोकास्तित्वे स्वीक्रियमाणे उक्तरीत्या हेतुभावोऽ-  
स्तीति 'अकस्मात्' इति पदं भगवता प्रदर्शितम् ।

अत्रायं विवेकः—सिद्धो हि हेतुर्भवति, तत्र यद्यस्तित्वहेतुलोकोत्तरसाध्यान्त

क्त लोकाः सिद्धि की जा सकेगी ! लोकाः सिद्धिके अभावमें 'अस्ति  
लोकाः' यह साध्य और पक्षकी बचनस्वरूप जो प्रतिज्ञा है उसकी भा  
सिद्धि नहीं हो सकती ! साध्यकी सिद्धि हेतुसे होती है, क्यों कि हेतु  
और साध्यका परस्परमें अविनाभाव सम्बन्ध होता है । यहां पर लोकके  
अस्तित्वविधायक हेतुका ही जब अभाव है तब फिर साध्यकी सिद्धि  
हेतुके अभावमें हो भी कैसे सकती है ? नहीं हो सकने से प्रतिज्ञा की  
हानि आती है । इसलिये मूल सूत्रमें जो "अकस्मात्" इस पदसे यह  
सूत्रकारने कहा है कि "अस्ति लोकाः नास्ति लोकाः" इत्यादि विप्रतिपत्तियां  
निर्हेतुक हैं, यह बात यहां तक स्पष्ट रीतिसे समझाई गई है; क्यों कि  
पक्षान्तरीतिसे ही लोकका अस्तित्व स्वीकार करनेमें उपर्युक्त रीतिसे  
हेतुका अभाव आया है ।

जो हेतु सिद्ध होता है वही अपने साध्यका साधक होता है, असिद्ध  
नहीं । असिद्ध साध्य होता है । प्रकृतमें अस्तित्वरूप हेतु जब अपने साध्यके

साध्य-साधकभाव न नही जनी शकते जेवी स्थितिमां डेने हेतु मानी लोकनी  
सिद्धि करी शक्य । लोकनी सिद्धिमा अभावमा "अस्ति लोकाः" मा साध्य जने  
पक्षमा बचनरूप के प्रतिज्ञा छे जेनी पद्य सिद्धि कर शकती. साध्यनी सिद्धि  
हेतुकी साथ छे, डेम के हेतु जने साध्यने परस्पर अविनाभाव संलक्ष साथ  
छे अर्कि लोकत अस्तित्व-विधायक हेतुने न न्यारे अभाव छे-त्यारे पक्षी  
साध्यनी सिद्धि हेतुना अभावमा बध पद्य डेम शके ? न बध शकवाधी प्रतिज्ञाने  
हानि भवेति छे अ अरथे मूल सूत्रमा "अकस्मात्" जे पक्षी सूत्रकारे मा कहुं  
छे के "अस्ति लोका नास्ति लोकाः" इत्यादि विप्रतिपत्तिये निर्हेतुक छे जे वात अर्की  
सुभी रूपत रीते समबन्धनामा आवी छे के जेकान्त रीतिथी न लोकना अस्तित्वने  
स्वीकार कस्वामा उपर्युक्त रीतिथी हेतुने अभाव आवे छे.

जे हेतु सिद्ध साथ छे ते न साध्यमा साधक जने छे, असिद्ध नहीं असिद्ध  
साध्य साथ छे. प्रकृतमा अस्तित्वरूप हेतु न्यारे पीताना साध्यना अन्तर्गत बध

गतत्वेन तस्यापि साध्यत्वमापतितं, साध्यरूपहेतोरसिद्धत्वेनासाधकतयाऽनुमानस्यै-  
कोच्छेदः स्यात्त्वन्मते-इत्यादिवहुवक्तव्यस्याद् विस्तरमिया विरम्यते । एवं 'ध्रुवो  
लोकः' 'अध्रुवो लोकः' इत्यादिष्वपि एकान्तवाद निरस्य स्याद्वादपक्षः सर्वत्र  
योजनीयः । यथा- 'नास्ति लोकः' इति वादिनं पृच्छामि- 'त्वमसि न वा ?  
यदि त्वमसि तदा लोकान्तर्भूतस्तद्वद्विर्भूतो वा ? यदि लोकान्तर्भूतस्त्व तर्हि  
' नास्ति लोक ' इति ब्रुवन् कथं न लज्जसे?, अथ तदन्तर्भूतो नासि तर्हि बन्ध्या-

अन्तर्भूत हो जागया तब वह साध्यसम-असिद्ध, होनेसे स्वयं साध्य-  
कोटिमें आ जायगा । यहां साध्य लोक है, हेतु भी लोकस्वरूप हो जानेसे वह  
साध्य जैसा हो गया; अतः साध्य भावका अभाव होनेसे साधनसे साध्य  
का ज्ञान न हो सकनेसे यहां अनुमान ही नहीं बन सकता है । इस  
विषयमें टीकाकार कहते हैं कि बहुत कुछ कहना था, परन्तु विस्तार  
के भयसे इतना ही कहना काफी है । इसी प्रकार " ध्रुवोलोकः " इत्यादि  
वाक्योंमें भी एकान्तवादका निरसन और स्याद्वाद पक्षका समर्थन कर  
लेना चाहिये । जो लोग एकान्तरूपसे " नास्ति लोकः " इस बातको कहते  
हैं, हम उन वादियोंसे इतना पूछते हैं कि " तुम स्वयं अस्तिरूप हो कि  
नास्तिरूप ? " यदि अस्तिरूप हो तो लोकके अन्तर्गत हो या उससे बाहिर ?  
यदि लोकके अन्तर्गत तुम अपनेको मानते हो तो " नास्ति लोकः " इस  
प्रकार कहते हुए आपको संकोच क्यों नहीं होता । क्यों कि तुम स्वयं  
अस्तित्वरूपसे लोकके अंतर्गत अपने आपको मान रहे हो । यदि

जये त्वारे ते साध्यसम-असिद्ध-डोवाथी स्वयं साध्यकोटिमा आवी जये, अर्द्धी  
साध्य लोक छे, हेतु पक्ष लोकस्वरूप थर्ध जवाथी ते साध्य भाङ्क थर्ध नथ छे.  
साध्यसाधकभावना अभाव डोवाथी साधनथी साध्यनु ज्ञान न जनी शकवाथी  
आ जग्याजे अनुमान जनी शकतुं नथी आ विषयमा टीकाकार छडे छे डे-धर्धु  
कडेवानु डर्धु, परन्तु विस्तारना कथथी आटलु ज कडेवु जरोजर छे आ प्रकारेज  
" ध्रुवो लोक " इत्यादि वाक्यमा पक्षु एकान्तवादनु निरसन जने स्याद्वाद पक्षनु  
समर्थन करी देवु जेधर्धजे जे लोकजे एकान्तार्थथी " नास्ति लोक " आ वातने  
कडे छे, अजे तेवा वादीजोने जेवु पूछीजे छीजे डे " तजे स्वयं  
अस्तिरूप छे डे नास्तिरूप ? " जे अस्तिरूप छे तो लोकना अन्तर्गत छे डे  
तेनाथी आडर ? जे लोकना अन्तर्गत पोताने मानता डो तो " नास्ति लोक "  
आ प्रकारे कडेता आपने सकोच केम नथी थतो ? केम डे तजे स्वयं अस्तित्व-

पुत्रादिवत् सर्षपाजसत्त्वं तत्र प्राप्तं, सर्वं ध्रुवैषाजसत्ता त्वया सह वादक्याऽऽजम्भः ।

अनेकान्तवादिनामस्माकं मते त्वेकान्तवत् सत्त्वस्यासत्त्वस्य वा न सम्भवः, किन्तु द्वयोरपि सम्भवोऽस्ति, तथा हि-पटादिः स्वस्वरूपेण सन् परकीयरूपेण चाऽऽनू-स्त्वव्य-स्र-काष्ठमावैः घटादेः सत्त्वं परकीर्यैश्च वैरसत्त्वमिति । उक्तञ्च-

“सदेव सर्वं को नञ्छत्, स्वरूपादिवत्तुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासात्तत्र चेष व्यतिष्ठते ॥ १ ॥” इति ।

लोकके अंतर्गत अपने आपको नहीं मानते होते तुम्हारी धन्यापुत्रकी तरह स्वतन्त्र सत्ता ही सिद्ध नहीं हो सकती; अतः असत्प्रात्मक होने से तुम्हारे साथ वादविवाद करना भी व्यर्थ है । वादविवाद सत्क साथ होता है, असत् धन्यापुत्रके साथ नहीं ।

अनेकान्तवादी हम लोगोंक मिद्धान्तमें न किसीका एकान्तसे एकत्व माना गया है और न एकान्तसे किसीका असत्त्व ही । सत्त्व और असत्त्व पे दो धर्म हैं और इनका सम्भव स्वद्रव्यादि-चतुष्टयकी अपेक्षासे ही स्वीकृत है, जैसे-घटादि द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काष्ठ और भाव की अपेक्षासे ही है, परद्रव्य-पटादिकके द्रव्य-क्षेत्रादिकी अपेक्षासे नहीं । इनकी अपेक्षासे तो उसका असत्त्व ही अंगीकृत है । कहा भी है—

सदेव सर्वं को नञ्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासात् न चेष व्यतिष्ठते ॥ १ ॥

इसकी लोकनी अदर पोवाने मानी रह्य छे जे लोकनी अदर पोवाने न मानता हो तो तमारी वन्यापुत्रनी तरह स्वतंत्र सत्ता न सिद्ध भई सकती नहीं। जेहते असत्प्रात्मक होवारी जे अवे तमारी साथे वादविवाद करेवे व्यर्थ छे परविवाद सत्त्वनी साथे होय छे असत्त्व वन्यापुत्रनी साथे नहीं।

अमास अनेकान्तवादिजोना सिद्धांतमां न केअनु कोकान्तधी केकेत्व मानेव छे जने न तो कोकान्तधी केअनु असत्त्व सत्त्व जने असत्त्व का जे धर्म छे जने जेने सत्त्व स्वद्रव्यादि-चतुष्टयनी अपेक्षाधी न स्वीकृत छे जेम-घटादि द्रव्य पोवतना द्रव्य, क्षेत्र, काष्ठ जने भावनी अपेक्षाधी न छे परद्रव्य पटादिकना द्रव्य-क्षेत्रादिनी अपेक्षाधी नहीं। जेनी अपेक्षाधी तो जेना असत्त्वनेका जनीकार छे अहु पद्य छे—

“सदेव सर्वं को नञ्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासात्तत्र चेष व्यतिष्ठते ॥ १ ॥” इति ।

इति सुदृढमनेकान्तवादसाम्राज्यम् ।

एवमुक्तप्रकारेण तेषां विरुद्धमपलपतां परतैर्थिकाणां धर्मो न स्वाख्यातः—न शोभनो व्याख्यातः, एकान्तवादगर्भितत्वात्, नैव च तेषां धर्मः सुप्रज्ञप्तः—सुप्ररूपितो भवति असर्वज्ञप्रणीतत्वात्; अतः स्याद्वादसाम्राज्यवर्हिर्भूतत्वाच्चेपा परवादिनां धर्मः सर्वथा हेय एवेति भावः ॥ सू० ३ ॥

स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाऽऽह—‘ से जहेयं ’ इत्यादि—

मूलम्—से जहेयं भगवया पवेइयं आसुपन्नेण जाणया पासया, अदुवा गुत्ती वओगोयरस्त चिंवेमि, सव्वत्थ संमयं पावं तमेव उवाइक्कम्म एस महं विवेगे वियाहिण, गामे वा अदुवा रण्णे नेव गामे नेव रण्णे, धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया.

वस्तु स्वद्रव्यादिक की ही अपेक्षासे सत्त्वात्मक और परद्रव्यादिक की अपेक्षासे ही असत्त्वात्मक मानी गई है । इस प्रकारकी मान्यता न माननेसे किसी भी वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती है। यही सुदृढ अनेकान्तवादका साम्राज्य है ।

इस प्रकार उक्तरूपसे एकान्तरूपमें गर्भित होनेके कारण परस्परमें विरुद्धार्थकी प्ररूपणा करनेवाले अन्य तीर्थिकोंका मत निर्दोष रूपसे कथित नहीं है, और इसीलिये वह असर्वज्ञ प्रणीत होनेसे अच्छी तरहसे प्ररूपित भी नहीं है । इसलिये स्याद्वाद साम्राज्यके वर्हिर्भूत होनेसे उन परवादियोंका धर्म सर्वथा हेय ही है ॥ सू० ३ ॥

अनेकान्ततत्त्वमें सूत्रकार स्वबुद्धिसे परिकल्पितपनेका निषेध करने के लिये “ से जहेयं ” इत्यादि सूत्र कहते हैं ।

वस्तु स्वद्रव्यादिकनी अपेक्षाधी सत्त्वात्मक अने परद्रव्यादिकनी अपेक्षाधी असत्त्वात्मक माननामा आवेल छे. आ प्रकारनी मान्यता न माननाधी कोधपिणु वस्तुनी स्वतत्र सत्ता सिद्ध थछ शकती नथी आ सुदृढ अनेकान्तवादतु साम्राज्य छे.

आ रीते अे इपथी अेकान्तइपमा गर्भित थवाना कारण्णे, परस्परमा विइ द्वार्थनी अइपण्णा करवावाणा अन्य तीर्थिओना मत निर्दोषइपथी कडेवायेल नथी अने अे कारण्णे असर्वज्ञ प्रणीत होवाधी सारी रीते अइपित पणु नथी आ कारण्णे स्याद्वादसाम्राज्यना अडिर्भूत होवाधी परवादीओना धर्म सर्वथा हेय छे (सू०३)

अनेकान्त तत्त्वमा सूत्रकार स्वबुद्धिथी परिकल्पितपणुना निषेध करवा माटे “ से जहेयं ” इत्यादि सूत्र कडे छे—

जामा तिस्रि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया सबुद्धमाणा समु  
दिया, जे णिब्बुया पावेहिं कन्मेहिं अणियाणा ते धियाहिया ॥सू०४॥

छाया—उद्यपेदे मगयता प्रवेदितम् आशुमन्नेन ज्ञानता पश्यता, भयथा  
स्तिर्नोचोचरस्येति द्रवीभि, सर्वत्र सम्मतं पाप, तदेवोपातिक्रम्य एव मम विषेको  
व्याख्यातः, ग्रामे वा अथवाऽरम्ये, नैव ग्रामे नैवारण्य, धर्ममाजानीत प्रवेदितं  
माहनेन मतिमता, यामात्रय उदाहता, एषु इमं आपां सम्बुध्यमानाः सद्बुधिताः,  
ये निर्वाताः पापेषु धर्मेषु अनिदानास्ते व्याख्याताः ॥ सू० ४ ॥

टीका—उद्यथा—इदम् अनेकान्तरूप पूर्वोक्तं सफळस्मयवहारानुसारि कुत्राप्यस्त्व-  
ल्लितं मत्तं आशुमन्नेन—श्रीघण्टुदिना आबरमस्रयात् सत्तोपयुक्तेन, ज्ञानता—ज्ञानोपयुक्तेन  
पश्यता—दर्शनोपयोग्यता भगवता—तीर्थहारेण प्रवेदितं—प्ररूपितम् । एकान्तवादिनां  
धर्मो न स्वाख्यातो ममति वप्र हेतुदृष्टान्तामावात्, सर्वज्ञोपदिष्टसु स्वाख्यातः  
प्रतिज्ञा—हेतु—दृष्टान्तादिसम्प्रापाविति वाच्यम् । भयथा पक्षान्तरे वान्मोचरस्य—

कोई भी वस्तु एकान्तरूपसे न अस्तिरूप है और न नास्तिरूप है,  
किन्तु अस्ति—नास्तिरूपता वस्तुओं में स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे  
ही मानी जाती है—यह बात तृतीय सूत्रकी व्याख्याके अंतमें सक्षेप  
रूपसे पल्लवाई गई है। इसीका नाम अनेकान्त है। इसकी स्वीकृति  
बिना बुनियातका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता है। ऐसी कोई भी  
वस्तु नहीं है जो इस अनेकान्तके साम्राज्यसे बहिर्भूत हो। ऐसी  
प्ररूपणा आशुमन्—अनन्त ज्ञानशाली और अनन्तदर्शनोपयोगी श्री  
तीर्थेश्वर भगवान्ने की है। हेतु और दृष्टान्तके समावसे एकान्तवादिसंमत  
धर्म स्वाख्यात—निर्दोषरूपसे प्रतिपादित नहीं हुआ है। प्रतिज्ञा, हेतु,

केवल पक्ष वस्तु अनेकान्तइपधी न अस्तिरूप छे अने न तो नास्तिरूप छे  
अस्ति—नास्तिरूपता वस्तुओंमें स्वद्रव्यादिवस्तुष्वन्ती अपेक्षाधी व मानी यथाव  
छे. आ बात त्रीज सुवनी व्याख्यात अतर्मा सक्षेपइपधी छेदेछे छे जेतु व नाम  
अनेकान्त छे जेनी स्वीकृति वजर बुनियाते केवल पक्ष वदेवार वाली यके नहीं.  
जेनी केवल पक्ष वस्तु नहीं वे आ अनेकान्तना साम्राज्यधी वद्विर्भूत छेय. जेनी  
प्ररूपणा आशुमन्—अनन्तज्ञान अने अनन्तदर्शनशाली श्री तीर्थेश्वर भगवाने छेरी  
छे हेतु अने दृष्टान्त अभावधी अनेकान्तवादी—अ मत धर्म स्वाख्यात—निर्दोष-  
इपधी प्रतिपादित यथा नहीं. प्रतिज्ञा, हेतु अने इत्यत आदिना सद्रूपवधी

‘तदेवे’त्यादि—तदेव=सावद्याचरणमेव उपातिक्रम्य=उल्लङ्घ्याद् वर्तमानोऽस्मीत्येवं-  
भूतस्य मम एष महान् विवेकः=हेयोपादेयरूपविचारो व्याहृतः=कथितः, अनपिदि-  
तास्रवद्वारेण भवता सह सम्भाषणेनालम् ।

ननु परतीर्थिका अपि वनवासिनः फल-मूल-कन्दाद्याहारास्तरुतलवासिनो भ-  
वन्ति, कथं ते समापणानर्हा? इति चेन्न, वनवास-फलाहारादिकरणेन न धर्मः, अपितु  
जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवद्याचरणात्, तच्च तेपा नास्ति । एतमेवार्थमावि-  
र्भाव्यन्नाह—‘ग्रामे वे’त्यादि—ग्रामे=ग्रामविषये वसेच्चेद्धर्मो भवेद्, एवमरण्ये=वने

मैं सदा इन कृत्यों—पापोंसे दूर रहता हूँ । मेरा विवेक—हेय और  
उपादेयकी जागृतिरूप बोध भी मुझे यही कहता है । महापुरुषोंकी  
भी यही शिक्षा है । अतः जिन्होंने इन पापमय सावद्य व्यापारोंके  
अत्यागसे अपने कर्मोंके आस्रवके द्वारको बन्द नहीं किया है, उनके साथ  
संभाषण करना भी मुझे उचित नहीं है ।

शङ्का—परतीर्थिक जन भी वनमें रहते हैं, कंद, मूल और  
फल आदिका आहार करते हैं, गिरि गुफामें एवं वृक्षोंके नीचे निवास  
करते हैं तो फिर ये संभाषणके अयोग्य कैसे माने जा सकते हैं ?

उत्तर—कन्दमूल आदि खानेसे और वनमें निवास करनेसे धर्मकी  
प्राप्ति होती है, सो बात नहीं है । धर्मकी प्राप्ति कारण जीव और  
अजीव आदि तत्त्वोंका परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरण करना है । यह  
उनके नहीं होता है । इसी अर्थको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं—

अभिदधित नधी. आ माटे हुं सदा मे दुकृत्यो—पापोधी दूर रहुं छु  
भास विवेक—हेय अने उपादेयनी जगृतिरूप बोध पद्यु मने मे कडे  
छे महापुरुषोनी पद्यु मे शिक्षा छे माटे जेयोअे आवा पापमय सावद्यव्याप-  
राना अत्यागधी पोताना कर्मोना आस्रवतु द्वार अथ ठरेल नधी तेनी साथे  
संभाषण करतु पद्यु मने उचित नधी ।

शंका—परतीर्थिक जन पद्यु वनमा रहे छे, कंद, मूल, द्रव्य आदिना आहार  
करे छे गिरि गुफामा अने वृक्षोनी नीचे वास करे छे, तो पछी जेयो संभाषण  
करवाने अयोग्य केवी रीते मानी शक्य ?

उत्तर—कंदमूल आदि आवाधी अने वनमा निवास करवाधी धर्मनी  
प्राप्ति थाय छे जेवी वात नधी धर्मनी प्राप्ति कारण पद्यु एव अने अएव आदि  
तत्त्वोनु परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरण करतु ते छे आ तेनाधी अननु नधी ।



वा घर्मो मषेदिति नैष नियमा, यतो घर्मो नैष ग्रामे मषति नैषारम्ये, किन्तु यत्र कुत्रापि वस्तो जीवाणीवादितस्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवधानुष्ठानमेव घर्मम् आ वानीत, इति माहनेन 'मा इह-मा इह' इति वो जीवरक्षामुपदिशति स माह्नो बीतरागस्त्वेन, मतिमता-मतिः=सकृत्स्त्वस्तुतस्त्वपरिज्ञानं, सा यस्यास्तीति मतिमान्, तेन-केषलिना, घर्मः=पूर्वोदाहृतो वस्तुमागम्य प्रवेदितः=मरुपितः॥ वस्तुमागमेनाह-'यामा' इत्यादि-भयो यामाः=व्रतरूपाः उदाहृताः=कथिताः, अथ भिन्न इणेन प्राणातिपातमुपायादपरिग्रहनिरमणरूपा वृहीताः, मैथुनाऽऽत्ताऽऽदानविरमणयोः परिग्रहविरमणेऽन्वर्त्तमानाभित्य तथा प्रोक्तमिति बोध्यम् ।

कि 'ग्राममें रहनेसे, जंगलमें निवास करनेसे घर्म होता है' ऐसा नियम नहीं है; क्योंकि कि घर्म ग्राम अथवा जंगलमें नहीं रहता है जो वहाँ रहने से मिल जाता हो । घर्म जीव और अजीवादि तत्त्वोंके परिज्ञानपूर्वक निरवध अनुष्ठानके आचरणका नाम है, ऐसा जीवरक्षाके उपदेशक और वस्तुतत्त्वके ज्ञाता केषली भगवानने कहा है । 'माह्न' शब्दका अर्थ बीतराग और 'मति' शब्दका अर्थ सम्पूर्ण वस्तुओं का परिज्ञान है । यह मतिरूप परिज्ञान जिसके है वह मतिमान् केषली है ।

व्रतरूप तीन याम कहे गये हैं—१ प्राणातिपातविरमण, २ मुषावाद विरमण और ३ परिग्रहविरमण । बाकीके मैथुनका विरमण और अदत्तादानका विरमण, ये दो महाव्रतरूप घर्म यहाँ इसलिये स्वतन्त्ररूपसे नहीं कहे गये हैं कि उनका अन्तर्भाव परिग्रहविरमणरूप महाव्रतमें कर लिया है।

आ अर्धेने सुमन्वापवा आटे सुत्रकार कहे छे के-गाभर्मा रहेवाधी, अजलभां निवाध करवाधी घर्म आध छे जेवो निवम नधी, केम के घर्म आभ अने अजलभां शयेल नधी के ने त्यां रहेवाधी मणी आध, घर्म एव अने अलुपाडि तस्तेनु परिज्ञानपूर्वक निरवध अनुष्ठाननु अत्ररखु ते छे आभ एवशकाना उपदेशक अने वस्तुतत्त्वना ज्ञाता देवली सजवाने कहेल छे 'माह्न' शब्दने अर्थ बीतराग, अने मति शब्दने अर्थ सम्पूर्ण वस्तुज्येनु परिज्ञान छे. आ मतिरूप परिज्ञान जेने छे ते मतिमान् देवली छे ।

मतरूप त्रयु याम कहेवाधां छे १ प्रजातिपातविरमण २ मुषावाद विरमण, ३ परिग्रहविरमण आर्त्तानां मैथुनविरमण अने अदत्तादान विरमण आ अने महाव्रतरूप घर्म अर्द्ध अत्र आटे स्वतन्त्ररूपधी कहेवायेल नधी के तेने अतर्भाव परिग्रहविरमणरूप महाव्रतमें करायेल छे ।

वाग्निपयस्य गुप्तिः=भाषासमितिर्विधेयेत्येतदपि प्रवेदितम् ।

यद्वा-‘अस्ति लोको नास्ति लोक’ इत्यादिवादाय समुत्थितानां पापण्डिकानां स्वाभिमतहेतुदृष्टान्तस्थापनेन तदुक्तदूषणगणनिरसनेन च जयात् स्वमतस्थापनं और दृष्टान्त आदिके सद्भावमें सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म ही स्वाख्यात है ।

एकान्तस्थापक न कोई हेतु है और न कोई दृष्टान्त ही मिलता है कि जिसके बल पर एकान्त धर्मकी प्ररूपणा वास्तविक सिद्ध हो सके । हाँ-अनेक धर्मात्मक ही वस्तु है । इसकी प्ररूपणाके ख्यापक हेतु और दृष्टान्तादि उपलब्ध होते हैं ।

भगवान्ने वचन बोलनेवाले साधुके लिये भाषासमिति पालनेका भी आदेश दिया है । “ अस्ति लोकः नास्ति लोकः ” इत्यादि वादके लिये तैयार हुए वादियोंके अभिमत तत्त्वका जो उन्होंने अपने इच्छानुसार हेतु-दृष्टान्तकी स्थापनासे स्थापन किया है, और प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वकी निराकृतिनिमित्त दूषणोंका प्रदर्शन किया है, सो उनके प्रदर्शित हेतु और दृष्टान्तोंका निराकरण एव प्रदत्त दूषणोंका परिहार करते समय प्रतिवादी मुनिके लिये भाषासमितिका पालन करना चाहिये । परपक्षका निराकरण करते या तद्विषयक उत्तर देने समय कभी २ जोश सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म न स्वाख्यात छे

एकान्तस्थापक न कोछ हेतु छे अने न कोछ दृष्टान्त पणु भणे छे, जेना जण उपर एकान्त धर्मनी प्ररूपणा वास्तविक सिद्ध थरु शके छे-अनेक धर्मात्मक न वस्तु छे अनी प्ररूपणाना ख्यापक हेतु अने दृष्टान्तादि उपलब्ध थाय छे

भगवाने वचन बोलवावाणा साधु भाटे भाषासमिति पाणवाने पाणु आदेश आपणे छे “ अस्ति लोक नास्ति लोक ” इत्यादि वादने भाटे तैयार थयेला वादि येअये पोताना अभिमत-तत्त्वनु पोतानी इच्छानुसार हेतु-दृष्टान्तनी स्थापनाथी स्थापन करेल छे अने प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वनी निराकृति निमित्त दूषणोत्त प्रदर्शन करेल छे, जेवा जेभना प्रदर्शित हेतु अने दृष्टान्तोनु निराकरण अने प्रदत्त ( आपेल ) दूषणोनु परिहार करती वधते प्रतिवादी मुनिने भाटे भाषासमितितु पालन जरूरी छे परपक्षनु निराकरण करता अथवा कोछ प्रश्नने उत्तर देवाने समये क्यारैक जेश आपी नवाथी वचनने समय रहेतो नथी, तो पणु विद्वान्

शम्भोचरस्य गुप्तिरिति । वाचसपयमेन सम्यगुत्तर देय न तु मापासमितिमनपेक्ष्येति यतः । इति=गुप्तिर्वाग्भोचरस्य कार्येत्येवद्वेष्यमाण वाहं प्रधीमि । तदेव वक्तुं प्रकृतं- सर्वत्रे 'स्यादि-प्रतिवादिन सपोष्य पून्धेय-यत्तव परधीनिकायोपमर्दनं कृत्कारितानुमोदनैः सर्वत्र स्पष्टाङ्ग सम्मतम्=अप्रतिपिद्यत्वेनामिलपित तस्त्व पापं=पापजनकं नरकनिगोदादिदुःस्वकारकत्वावतो न ममामिलपितमित्यर्थः । तदेवाह-

आ जाने से बचनका संयम नहीं रहता है, तो श्री विद्वान् मुनिके लिये इस बातका बड़ा भी ध्यान रखना चाहिये । भाषासमितिका परिहार कर अपने मूलगुणमें बिराधना लाना यह विद्वान् मुनिका कर्तव्य नहीं है । इसी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रख कर सूत्रकार " गुप्तिर्वचोभोचरस्येति प्रधीमि " यह कहते हैं-जैनसिद्धान्तमिलत हेतु और दृष्टान्तकी स्थापनासे एवं पास्वण्डियेके द्वारा कथित रूपणोके निरसन (उत्तर)से उन पास्वण्डियेके परास्त होनेपर स्वमतकी स्थापन स्वतः हो जाती है, और यही वचनविषयकी गुप्ति है । इसमें रहनेवाले साधुको वाक्-संयमसे ही उत्तर देना चाहिये; उसकी उपेक्षा करके नहीं । इसी प्रकारसे सूत्रकार प्रवर्धित करते हैं-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीको संबोधित कर यह पूछे कि आपके शास्त्रमें कृत, कारित और अनुमोदनासे परधीनिकायका उपमर्दन प्रतिपादित हुआ है और यह अप्रतिपिद्य होनेसे आपके लिये सम्मत है । परंतु यह आप विश्वास रखे कि यह सब कुछ कृत्य है और करनेवाले जीवोंको नरक और निगोदादिकदुःस्वके प्रवृत्ता है । इसलिये हमारी दृष्टिमें यह उपादेय-अभिलपित नहीं है । इसी कारण

मुनिज्जे जे वातनेत्थां पद्य ज्जाह शपये ज्जेधजे. भाषासमितिनो परिहार करी यिताना भूय शुभमां निराकण्य वाचयी जे विद्वान् मुनिज्जे कर्तव्य नथी. आ वस्तु स्थितिने ध्यानमां शपयी सूत्रकार गुप्तिर्वचोभोचरस्येति प्रधीमि " अथ कहे छे. जैनसिद्धान्तमिलत हेतु जने दृष्टान्तकी स्थापनाशी जने पाप डीज्जे द्वारा कहेवायेछा इष्योन्म उत्तरशी ते पापडिज्जेनी द्वारा बवायी स्वमतनी स्थापना आपसेजे सध अथ छे-अ वचनविषयनी गुप्ति छे अथां कहेवावाण्य साधुजे वाक्-संयमशी क उत्तर आपवा ज्जेधजे, भाषासमितिनी उपेक्षा करीने नथी. अथ प्रकृतं सूत्रकार प्रवर्धित कर छे-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीने संबोधित करी पूछे के आपण्य शास्त्रमां कृत करित जने अनुमोदनाशी परधीनिकायनु उपमर्दन प्रति पादित भयेव छे जने जे अप्रतिपिद्य कीवाशी आपने भाटे सम्मत छे; परंतु आप विश्वास राषो के जे जथां कृत्य छे जने कथावाण्य लयेने नरक जने निगोदादिक दुःस्वकार छे. अथ कहे जे हमारी दृष्टिमां जे उपादेय-

‘तदेवे’त्यादि-तदेव=सावधाचरणमेव उपातिक्रम्य=उल्लङ्घयाह वर्तमानोऽस्मीत्येवं-  
भूतस्य मम एष महान् विवेकः=हेयोपादेयरूपविचारो व्याहृतः=रुथितः, अनपिहि-  
तास्रवद्वारेण भवता सह सम्भाषणेनालम् ।

ननु परतीर्थिका अपि वनवासिनः फल-मूल-कन्दाद्याहारास्तरुतलवासिनो भ-  
वन्ति, कथं ते सम्भाषणानर्हा? इति चेन्न, वनवास-फलाहारादिकरणेन न धर्मः, अपितु  
जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवद्याचरणात्, तच्च तेषा नास्ति । एतमेवार्थमाधि-  
र्मावयन्नाह-‘ग्रामे वे’त्यादि-ग्रामे=ग्रामत्रिपये वसेच्चेद्धर्मो भवेद्, एवमरण्ये=वने  
मैं सदा इन कृत्यों-पापोंसे दूर रहता हूँ । मेरा विवेक-हेय और  
उपादेयकी जागृतिरूप बोध भी मुझे यही कहता है । महापुरुषोंकी  
भी यही शिक्षा है । अतः जिन्होंने इन पापमय सावय व्यापारोंके  
अत्यागसे अपने कर्मोंके आस्रवके द्वारको बंद नहीं किया है, उनके साथ  
संभाषण करना भी मुझे उचित नहीं है ।

शङ्का—परतीर्थिक जन भी वनमें रहते हैं, कंद, मूल और  
फल आदिका आहार करते हैं, गिरि गुफामें एवं वृक्षोंके नीचे निवास  
करते हैं तो फिर ये संभाषणके अयोग्य कैसे माने जा सकते हैं ?

उत्तर—कन्दमूल आदि खानेसे और वनमें निवास करनेसे धर्मकी  
प्राप्ति होती है, सो बात नहीं है । धर्मकी प्राप्तिका कारण जीव और  
अजीव आदि तत्त्वोंका परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरण करना है । यह  
उनके नहीं होता है । इसी अर्थको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं—

अभिलषितं नथी आ माटे हुं सदा ये कुकृत्यो-पापोथी इर रहुं छु  
भाश विवेक-हेय अने उपादेयनी जागृतिरूप बोध पद्यु मने ये कडे  
छे महापुरुषोनी पद्यु ये शिक्षा छे माटे ज्येज्ये आवा पापमय सावधव्यापा-  
शना अत्यागथी पोताना कर्मोना आस्रवतु द्वार बध करेन नथी तेनी साथे  
संभाषणु करु पद्यु मने उचित नथी

शंका—परतीर्थिक जन पद्यु वनमा रहे छे, कंद, मूल, इण आदिमा आहार  
करे छे गिरि गुफामा अने वृक्षोनी नीचे वास करे छे, तो पद्यु ज्येज्ये संभाषणु  
करवाने अयोग्य केवी रीते मानी शक्य ?

उत्तर—कंदमूल आदि भावाथी अने वनमा निवास करवाथी धर्मनी  
प्राप्ति थाय छे ज्येवी बात नथी धर्मनी प्राप्तिनु कारणु लव अने अलव आदि  
तत्त्वोनु परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरणु करु ते छे आ तेनाथी जनतु नथी ।

या धर्मो भवेदिति नैव नियमा, यतो धर्मो नैव प्राप्ते भवति नैवारण्ये, किन्तु यत्र कुत्रापि वस्तुो जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवयानुष्ठानमेव धर्मम् आ बानीत, इति माहानन 'मा हन-मा हन' इति यो जीवरक्षापदिशति स माहनो भीतरागस्तेन, मतिमता-मति-सम्पन्नस्तुतत्त्वपरिज्ञानं, सा यस्यास्तीति मति-मान्, तेन-केवलीना, धर्मः=पूर्वोदाहृतो वक्ष्यमाणप्रवेदितः=प्रकृतितः। वक्ष्यमाण प्रवेदाह-'यामा' इत्यादि-त्रयो यामाः=प्रवरूपाः उदाहृताः=कथिताः, अत्र अत्रि इणेन प्राणातिपातवृथावाहपरिग्रहविरमणक्या गृहीता, मैथुनाऽऽद्याऽऽदानविरम णयोः परिग्रहविरमणेऽन्तर्माधमाभित्य तथा प्रोक्तमिति बोध्यम् ।

कि 'धाममें रहनेसे, जंगलमें निवास करनेसे धर्म होता है' ऐसा नियम नहीं है; क्योंकि कि धर्म धाम अथवा जंगलमें नहीं रम्भा है जो वहाँ रहने से मिल जाता हो। धर्म जीव और अजीवादि तत्त्वोंके परिज्ञानपूर्वक निरवय अनुष्ठानके आचरणका नाम है, ऐसा जीवरक्षाके उपदेशक और वस्तुतत्त्वके ज्ञाता केवली भगवानने कहा है। 'माहन' शब्दका अर्थ भीतराग और 'मति' शब्दका अर्थ सम्पूर्ण वस्तुओं का परिज्ञान है। यह मतिरूप परिज्ञान जिसके है वह मतिमान् केवली है।

वतरूप तीन धाम कहे गये हैं—१ प्राणातिपातविरमण, २ मृषावाह विरमण और ३ परिग्रहविरमण। पाकीके मैथुनका विरमण और अद स्तादानका विरमण, ये दो महावतरूप धर्म यहाँ इसलिये स्वतन्त्ररूपसे नहीं कहे गये हैं कि उनका अन्तर्भाव परिग्रहविरमणरूप महावतरुमें करलिया है।

आ अर्धेन समन्वयवा भाटे सुत्रकार कहे छे के—'आमर्धं रडेवाधी, ए अर्धमां निवात कस्वाधी धम भाय छे' जेवा नियम नहीं, केम के धर्म आम अने ए अ लमां शजेव नहीं के के त्या रडेवाधी मणी अम धर्म एव अने अलवादि तत्त्वोनु परिज्ञानपूर्वक निरवय अनुष्ठाननु आचरणु ते छे आम एवरक्षानु उपदेशक अने वस्तुतत्त्वना शाय केवली अचवाने कहे छे 'माहन' शब्दने अर्थ भीतराग, अने 'मति' शब्दने अर्थ सम्पूर्ण वस्तुओनु परिज्ञान छे. आ मतिरूप परि- ज्ञान अने छे ते मतिमान् केवली छे

वतरूप त्रयु धाम कहेवाधा छे १ प्रजातिपातविरमण २ मृषावाह विरमण ३ परिग्रहविरमण आधीनां मैथुनविरमण अने अदस्तादान- विरमण, आ अने महावतरूप धर्म अर्द्ध आ भाटे स्वतंत्ररूपधी कहेवायेव नहीं के तेने अतर्भाव परिग्रहविरमणरूप महावतरुमां करायेव छे.

यद्वा—यामा=अवस्थाविशेषास्त्रयस्ते यथा—अष्टवर्षादात्रिंशत् एका (१), तत् पष्टिवर्षपर्यन्तं द्वितीया (२), तत् ऊर्ध्वं तृतीयेति, उदाहृताः=कथिताः, एतेनातिवाल—वृद्धयोर्निरासः, तिसृष्वेवावस्थासु धर्माद्याचरणस्य सम्भवात् ।

अथवा—‘यामाः’ यम्यते=विरम्यते ससारपरिभ्रमणादेभिरिति यामाः=ज्ञानाद्यस्त्रयः कथिताः, किमेतेनेत्याह—‘येष्वि’—स्यादि, येषु=वयोविशेषेषु त्रिषु ज्ञानादिषु वा संबुध्यमानाः=धर्माचरणावसरं मोक्षं वा जानानाः, इमे=आर्या द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभेदेन चतुर्विधास्ते समुत्थिताः=तपःसयमाचरणादौ प्रवृत्ताः, के ? ये पापेषु=पापजनकेषु प्राणातिपाताद्यष्टादशस्थानेषु कर्मसु निवृत्ताः=कषायापन-

अथवा—अवस्थाविशेषोका नाम भी याम है, वे तीन हैं—आठ वर्षसे लगा कर तीस वर्ष तक प्रथम, एकतीस वर्षसे ले कर ६० वर्ष तक द्वितीय, और उससे आगे तृतीय । इससे यह ध्वनित होता है कि अतिवाल और अतिवृद्ध अवस्था धर्माचरणके योग्य नहीं है । इन तीनों ही अवस्थाओंमें धर्माचरणकी संभावना है ।

अथवा—ससारका परिभ्रमण जिनसे इस जीवका रुक जाता है उनका नाम भी याम है । ऐसे ये याम ज्ञानादिक तीन हैं। जिन वयोविशेष या ज्ञानादिकत्रयमें संबुध्यमान, धर्मके आचरणके अवसरको अथवा मोक्षको जानते हुए ये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे चार प्रकारके आर्यजन मुनिराज कि जो पापजनक प्राणातिपातादिक रूप १८ पापस्थानोंमें कषायके दूर होनेसे शान्त—आस्रवसे निवृत्त हैं, वे तप और संयमके

अथवा—अवस्थाविशेषोनु नाम षण्णु याम छे ते षण्णु छे आठ वर्षधी भाडी त्रीस वर्ष सुधी प्रथम, अष्टत्रीस वर्षधी भाडी ६० वर्ष सुधी द्वितीय अने तेनाधी आगण तृतीय आधी अे क्षणित थाय छे के अतिभाण अने अतिवृद्ध अवस्था धर्माचरणुने योग्य नथी आ षण्णु अवस्थाओमा धर्माचरणुनी स लावना छे

अथवा—स सारनु परिभ्रमणु जेनाधी आ एवनु अटकी नय छे तेनु नाम याम छे आवा अे याम ज्ञानादिक षण्णु छे जे वयोविशेष अथवा ज्ञानादिके त्रयमा संबुध्यमान, धर्मा आचरणुने अवसरने अथवा मोक्षने लक्षणारा, द्रव्य, क्षेत्र, काल अने लावना लेदधी चार प्रकारना अे आर्यजन मुनिराज के जे पापजनक प्राणातिपातादिक १८ पापस्थानोमा कषायना दूर थावधी शात छे—आस्रवधी निवृत्त छे ते तप अने संयमना आचरणु आदिमा प्रवृत्त थाय छे

यनेन शान्ताः, आसन्नविपयता इत्यर्थ, तेषां रागादिवन्धहेतुवा न सम्मथन्ति, अत एव ते अनिदानाः=द्रव्य-भाव-निदानरहिताः, तत्र द्रव्यनिदानं माता-पितृ-पुत्र-कृत्वादि-विषयकं धन-धान्यादिविषयकं च, भावनिदानं विषयकपायादिकं चेति द्विविधनिदानज्ञानपरायणास्ते व्याख्याता=कथिताः ॥ सू० ४ ॥

कस्मिंस्ते निदानरहिताः ? इति दर्शयति—'उद्धं' इत्यादि ।

गूम्-उद्ध अह तिरियं दिसासु सव्वओ सव्वावति च ण पाटियकं जीवेहिं कम्मसमारभे ण, त परिहाय मेहावी नेव सय प्पहिं काप्पहिं दंढ समारभिज्जा, नेवञ्जे प्पहिं काप्पहिं दंढं समारभावेज्जा, नेवन्ने प्पहिं काप्पहिं समारभतेऽपि समणु जाणेज्जा । जे अन्ने प्पहिं काप्पहिं दंढं समारंभति तेसिं पि षय लज्जामो, तं परिन्नाय मेहावी त वा दंढं अन्न वा दंढं नो दंढमी दंढं समारभिज्जासि-सिवेमि ॥ सू० ५ ॥

श्या—ऊर्ध्वमवस्तिर्यग् दिक्षु सवतः सर्वांश्च च लक्ष्मप्रत्येकं नीचपु कर्मसमारम्भः सद्य, त परिहाय मेहावी नैव स्वयमेतेषु दण्डं समारमेत, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारम्भयेत्, नैवान्यैरतपु कायपु दण्डं समारममाणानपि समनुजानीयात्, ये चान्ये एतेषु कायेषु दण्डं समारमते तैरपि पर्यं चञ्चामह, तं परिहाय मेहानी त वा दण्डमन्य वा ना दण्डमीदं दण्डं समारमया, इति प्रथमि ॥ सू० ५ ॥

आश्चरण भाविमें प्रवृत्त होते हैं। इनके रागादिक ओषधके कारण हैं वे नहीं होत हैं। इसीलिये ये द्रव्य और भावके भेदसे दोनों प्रकारके निदानके बिनादा करनेमें तत्पर कहे गये हैं। माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदि स्वजनविषयक, और धन-धान्य आदि परिग्रहविषयक द्रव्य निदान, एवं विषयकपायादिविषयक भावनिदान होता है ॥ सू० ४ ॥

और श्री किसमें वे निदानरहित होते हैं? इस विषयको सूत्रकार कहते हैं—“उद्धं अह” इत्यादि—

तेने रात्रादिक १० धनु ठारवु छे ते जन्तु नथी, जेथी ते इन्ध जने भाव ना सेवथी जे अन्नरुपा निदानोने विनाश करवामां तत्पर कहेवायेल छे माता, पिता, पुत्र जने स्त्री आदि स्वजनविषयक, जने धन धान्य आदि परिग्रह-विषयक द्रव्य निदान छे जने विषयकपायादिविषयक भावनिदान होय छे. (सू० ४)

नीच कथा कथामां निदानरहित होय छे? अत्र विषयने सूत्रकार कहे छे—  
“उद्धं अह” इत्यादि.

टीका—‘ऊर्ध्व’मित्यादि—ऊर्ध्वमधस्तिर्यग् दिक्षु सर्वतः=सर्वप्रकारेण ‘सन्त्रावन्ति’इति सर्वासु ‘च’ शब्दाद् विदिशा सङ्ग्रहस्तेन विदिक्षु-इत्यर्थः, खलु=निश्चयेन प्रत्येक जीवेषु=सूक्ष्मवादरादिषु प्रत्येकं प्राणिषु यः कर्मसमारम्भः=प्राणिविराधनादिरूपः खलु=निश्चयेन अस्ति। मेधावी=विदितप्राण्युपमर्दनजनितकटुकफलः, तं=कर्मसमारम्भ परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च स्वयम् एतेषु कायेषु=षड्जीवनिकायेषु दण्ड=मनोवाक्यायैर्जीवविराधनारूपं नैव समारभेत=नैव कुर्यादित्यर्थः। अपि च—स एव एतेषु कायेषु=चतुर्दशभूतग्रामवर्तिषु जीवेषु अन्यैर्दण्ड न समारम्भयेत्=न कारयेत्, एतेषु कायेषु दण्ड समारम्भमाणानप्यन्यानैव समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । ये वाऽन्ये दण्डं समारभन्ते तैः=दण्डसमारम्भविधायिभिः सह वक्तु-

उर्ध्व, अधः और तिर्यग् दिशाओंमें, सर्व प्रकारसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें, और “च” शब्दसे गृहीत विदिशाओंमें वर्तमान सूक्ष्म और वादर आदिकके भेदसे १४ प्रकारके प्रत्येक जीवोंमें जो प्राणियोंकी विराधनारूप कर्मसमारम्भ है, मेधावी—जिसने प्राणियोंकी हिंसासे उत्पन्न कटुक परिणाम जान लिया है ऐसा मेधावी (बुद्धिमान) मुनि—उस कर्मसमारम्भको ज्ञपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उसका परित्याग कर षड्जीवनिकायोंके विषयमें मन, वचन और कायसे जीवविराधनारूप दण्डका समारम्भ न करे, दूसरोंसे इन १४ प्रकारके जीवोंमें दण्डका आरंभ न करावें, और जो इनके विषयमें समारम्भ कर रहे हैं उनकी अनुमोदना भी न करे । अंतमें शिष्यको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जो अन्य प्राणी षड्जीवनिकायोंमें दण्ड

उर्ध्व, अधः अने तिर्यग् दिशाओंमा सर्व प्रकारधी पूर्व, पश्चिम, उत्तर अने दक्षिण दिशाओंमा “च” शब्दधी गृहीत विदिशाओंमा वर्तमान सूक्ष्म अने वादर आदिना भेदधी १४ प्रकारना प्रत्येक लोकोमा जे प्राणियोंकी विराधनारूप कर्मसमारम्भ छे, मेधावी—जेणे प्राणियोंकी हिंसाधी उत्पन्न कटुक परिणाम जानी लीधु छे अथा बुद्धिमान—मुनि कर्मसमारम्भने ज्ञपरिज्ञाधी जानी अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी तेना त्याग करी स्वय षड्जीवनिकायो विषे मन, वचन अने कायाधी लवविराधनारूप दण्डना समारम्भ न करे, अन्याओंधी अथा १४ प्रकारना लोकोमा दण्डना समारम्भ न करावे अने जे तेना समारम्भ करे छे तेनी अनुमोदना न करे अतमा शिष्यने संबोधित करीने सूत्रकार कहे छे जे—अन्य प्राणी आ षड्जीवनिकायोमा दण्डना समारम्भ करे छे,



मपि नयं स्वनामहे; किमुत तदभिमतानुमोदन्म्, इत्थं कृतनिश्चयः मेषाधी=साधुमर्यादास्थितः—'दण्डमी' दण्डात्=प्राणिविराधनाख्याद् विमतीति दण्डमी=प्राणातिपातमीकः सन् तम्=अनर्थकरं कर्मसमारम्भं परिह्राय=इपरिह्राया द्वात्वा मेषाधी तं=पूर्वोक्तं प्राणातिपातादिरुम् दण्डमन्यं वा दण्डं न समारम्भाः=स्वं न कुस्वन्-भ्रिकरण-त्रियोगैस्त्वं सर्वथा परित्यज्जरित्याश्रयः । 'इति प्रवीमी' त्यस्यार्थस्तूक्त पवति॥ सू० ५ ॥

॥ इति अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥८-१॥



का समारम्भ करते हैं साधुजनोका यह दृढ़ निश्चय होता है कि वे यह विचार कर उनके कृत्यकी प्रशंसा नहीं करते हैं कि जब हम इनके साथ बोलचलकामें सजाते हैं तो इनके कृत्यकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं ? इसलिये वे शिष्य ! तुम भी साधुमर्यादाके पालक हो और प्राणियोंकी विराधनाख्य दण्डसे भीरु हो, अतः इस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका तथा अन्य दण्डका तुम तीव्र करण और तीन योगसे सर्वथा परित्याग करो ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवां अध्यायनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



साधुजनानो ज्येष्ठे दृढ निश्चय होय छे के तेजो विचार करी तेना कृत्योनी प्रशंसा करवा नही, केम के ज्येष्ठे ज्ये तेनी साथे बोलचलामां पद्य शरभ अनुलनीज्ये छीज्ये तो पद्ये तेनां कृत्यनी प्रशंसा केवी रीते थछ थके ? भाटे डे शिष्यो ! तमे पद्य साधुमर्यादाया पालक छे अने प्राणीज्योनी विराधनादृप इदमी भीरु छे भाटे ज्येथा ज्येथ करी प्राणातिपात-आदिदृप इदमे तथा अन्य इदमे तमे त्रयु करवु अने त्रयु मेषाधी सर्वथा परित्याग करे ( सू ५ )

आठवां अध्यायनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



## । अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

उक्तः प्रथमोद्देशः, सम्प्रति द्वितीय आरभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिः सम्बन्धः, पूर्वोद्देशे विशुद्धसंयमनिर्वाहाय कुट्टिपरिहार उक्तः, स चाऽकल्प्य परिहारं विना च संभवति, तत्सम्बन्धेनास्मिन्नुद्देशे चाकल्प्यपरित्याग एव प्रतिपादनीयोऽस्ति । तत्र पूर्वमकल्प्यपरिहारविधिं दर्शयति—‘ से भिक्खू ’ इत्यादि—

मूलम्—से भिक्खू परिक्रमिज्ज वा, चिट्ठिज्ज वा, निसीइज्ज वा, तुयट्ठिज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुन्नागारंसि वा, गिरिगुहंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, कुंभाराययणंसि वा, हुरत्था वा, कहिंघि विहरमाणं तं भिक्खुं उपसंक्रमित्तु गाहावई बूया—आउसंतो ! समणा ! अहं खल्लु तव अट्टाप असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुच्छणं

## आठवें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देश कहा जा चुका । अब द्वितीय उद्देशका प्रारम्भ होता है । इसका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध इस प्रकारसे है—प्रथम उद्देशमें विशुद्ध संयमके निर्वाहके लिये मुनिको जो मिथ्यादृष्टियोंका परिहार करना कहा है वह अकल्पनिक अशनादिक परिहारके विना संभवित नहीं होता है इसलिये विशुद्ध संयमके साथ सम्बन्ध रखनेसे इस उद्देशमें अकल्पनिक अशनादिकका परित्यागसम्बन्धी वर्णन है । उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकके परिहारकी विधिका प्रदर्शन करते हैं—“ से भिक्खू ” इत्यादि ।

## आठमा अध्ययननो पीले उद्देश

प्रथम उद्देश कहेवाछ गये छे डवे भील उद्देशनो प्रारंभ थाय छे आनो पूर्व उद्देशनी साथे संयम आ प्रारंभो छे—प्रथम उद्देशमा विशुद्ध संयमना निर्वाह भाटे मुनिये मिथ्यादृष्टियेनो परिहार कन्वानु कहु छे ते अकल्पनिक अशनादिकना परिहार विना संभवित भनतु नवी, आ भाटे विशुद्ध संयमनी साथे संयम शयवाधी आ उद्देशमा अकल्पनिक अशनादिकना परित्यागसंघी वणुन छे आमा सर्व प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकना परिहारनी विधिनु प्रदर्शन करे छे—“ से भिक्खू ” इत्यादि

वा, पाणाइं भूयाइं जीवाइ सत्ताइ समारब्ध समुद्दिस्त कीय  
 पामिच्च अच्छिज्ज अणिसिद्धं अभिहृदं आहृद्दु वेपमि, आवसहं  
 वा समुस्सिणोमि से भुजह वसह आउसतो! समणा! भिक्खूत्तं  
 गाहावइ समणस सवयस पढियाइक्खे—आउसतो ! गाहावइ !  
 नो खल्ल ते वयण आढामि, नो खल्ल ते वयण परिजाणामि जो  
 तुमं मम अट्ठाए असण वा ४, वत्थवा ४, पाणाइ वा ४, समारब्ध  
 समुद्दिस्त कीय पामिच्च अच्छिज्ज अणिसिद्धं अभिहृदं आहृद्दु  
 वेपसि आवसह वा, समणुस्सिणामि से विरओ आउसो !  
 गाहावइ ! एयस्स अकरणयाए ॥ सू०१ ॥

छाया—स मिथुः पराक्रमेत वा तिष्ठेद्वा निपीदेद्वा स्वम्बर्तयेद्वा स्मृत्ताने वा  
 शून्यागारे वा गिरिशिखायां वा वृक्षमूले वा कुम्भकारायतने वा दुरत्या वा एष  
 पित्रिहरन्तं तं मिथुमुपसंक्रम्य गाथापठित्वात्—आयुष्मन् ! भ्रमण ! अहं स्वच्छ तथा  
 वायाधनं वा पानं वा स्वार्थं वा स्वार्थं वा वस्त्रं वा पतवद्रई वा कम्बलं वा पादप्रो  
 क्कनं वा प्राणिनो भूतान् जीवान् सत्त्वानि समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम्  
 आच्छिद्यम् अनिष्टुष्टम् अभिहृतम् आहृत्य ददामि, आपस्यं समुच्छृणोमि तव् भूक्त्वा  
 वस आयुष्मन् ! भ्रमण ! । मिथुस्तं गाथापठिं समनसं सवयसं प्रत्यावसीत—आयुष्मन् !  
 गाथापठं ! न खल्ल ते वचनमाद्रिये न खल्ल ते वचनं परिमानायि, यस्त्वं ममार्षाप  
 वस्त्रं वा ४ वस्त्रं वा ४ प्राणिनो वा ४ समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छि-  
 द्यम् अनिष्टुष्टम् अभिहृतम् आहृत्य ददामि, आवसहं वा समुच्छृणोमि, सोऽहं  
 विरत आयुष्मन् ! गाथापठं ! एतस्याकरणतया ॥ सू०१ ॥

इसमें ये जितने कल्प प्रकट किये गये हैं व सब प्रतिभाप्रतिपन्न  
 साधुकी अपेक्षा से कहे गये हैं। अन्य साधुजनोंमें भी ये यथासंभव  
 जान लेना चाहिये। सूत्रकार 'इसमें मुनिजनके लिये इस प्रकारका आहार  
 अकल्पनिक है' यह बातलाते हैं—

अर्थात् नेटला इत्य प्रकट इत्यानां अपेक्षा उते तथा प्रतिभाप्रतिपन्न साधुनी  
 अपेक्षाभी कहेवाया से अन्य साधुजनेमा पद्य को अथाय एव समव्या लोभके.  
 सूत्रकार आमा मुनिजनने माटे 'ये प्रकारका आहार अकल्पनिक है' ते बतावे है—

टीका—‘स भिक्षु’—रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाव्रतः, परिज्ञाशिखरिशिखर-  
समारूढः सकलसमारम्भोपरतः भिक्षुः=शरीरयात्रानिर्वहणार्थमशनवसनादियाचन-  
शीलो मुनिः ‘श्मशाने’ शवाः शेरते यत्र तत् श्मशानम्, अत्र ‘वा’ शब्दः सर्व-  
पक्षान्तरद्योतकः । तथा शून्यागारे=निर्जनगृहे गिरिगुहाया=पर्वतरुन्दराया वृक्षमूले  
=तरुमूले, कुम्भकारयतने=कुम्भकाराशालायां ‘हुरत्या’ इति देशभाषया पूर्वो-  
क्तस्थानेभ्योऽन्यत्र वा कुत्रचित् स्थाने पराक्रमेत=तपःसंयमाचरणादौ पराक्रमं  
कुर्यात्, विहरेदित्यर्थ, तिष्ठेद्वा ध्यानादिविधानाय, निपीदेद्वा वाचना-पृच्छना-  
परिवर्तनादिकरणाय उपविशेत्, अपि चाध्वखेदसमापन्नः स त्वग्वर्तयेत्=त्वग्वर्तन  
कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः,  
अन्येषां तु यथासम्भव बोध्यम्। गाथापतिः=गृहस्थः=स्वीकृतसम्पत्त्वसाध्वाचार-  
नभिज्ञः प्रकृतिभद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्तं=विचरन्तं मुनिम् उपसंक्रम्य=मुनि-स-

पांच महाव्रतोंका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समारूढ  
समस्त समारम्भोंसे निवृत्त भिक्षु शरीरयात्राके निर्वाहके लिये ही  
अशन, वसन ( वस्त्र ) आदिकी याचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि  
करनेके निमित्त, या आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि  
करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और संयमकी विशेष आरा-  
धनाके निमित्त कभी श्मशानमें जाता है, कभी शून्य गृहमें ठहरता है  
कभी पर्वतकी गुफामें बसता है और कभी किसी वृक्षके नीचे और कभी  
किसी कुम्भारकी शालामें या और भी कहीं इन स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें  
तथा मार्गजनित परिश्रमको दूर करनेके लिये विश्रामके निमित्त भी इन्हीं  
स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले  
मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

पांच महाव्रतोना धारक, परिज्ञाशी पर्वतना शिखर पर समाडूढ अने  
समस्त समारम्भोभाधी निवृत्त भिक्षु-शरीर यात्राना निर्वाह माटे अशन,  
वसन आदिनी याचना करवावाणा मुनि-ध्यान आदि करवा निमित्त, अगर आग  
मनी वाचना, पृच्छना अने परिवर्तना आदि करवा निमित्त, अथवा पोते धारण  
करेले तप अने संयमनी विशेष आराधनाना निमित्त क्यारेक श्मशानमा अथ  
छे, क्यारेक उज्जड भठानमा रहे छे, क्यारेक पर्वतनी गुहामा वसे छे अने  
क्यारेक कोठ वृक्षनी नीचे अने कुम्भारनी शालामा अथवा जीव कोठ स्थानोमा  
तथा मार्गनी थाकने दूर करवा माटे विश्राम निमित्त पण्ये स्थानोभाधी कथिण्य  
रही अथ छे आ परिस्थितिथी स पन्न विहार करवावाणा मुनिनी पास प्रकृतिथी

मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोधः कामालामसन्तोषी भिक्षोपजीवी परोपकारपरायणो  
 अस्ति तस्मादेतस्यै सर्वमक्षनादिकं दास्यामी' -ति चेत्सि भिषिन्त्य च भ्रूमात्=मत्स्यमात्रं  
 प्राक्यं क्ययेत्, तदेनाह-आयुष्मन्! भमभ! =भो मुने! अहं संघारपारात्रारपारं  
 निगमिषुः 'खलु' वाक्यात्मकारे तवार्पाय=मक्षदत्रं सर्वम् अन्नं पानं स्वाद्यं स्वाद्यं पशु  
 विषमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पतव्द्रव्यं कम्बल पादमोच्छनं स्मृदिभ्यः=मन्त्रद्विभ्य  
 एवं प्राग्निं भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारभ्य=त्रिराभ्य सम्पादितम् अन्नतादि  
 प्रम्यादने पद्भूजीविकापविराधनाया अक्षय्यम्भावात्, तदक्षनादिकं क्लीतं=मुरयेन,  
 प्रामित्यम्=अपमित्यद्विच्छिन्नतया सुधीतम्, आच्छिद्यं=अक्षत्कारेण यद् दुर्धम्याद् यद्

अनभिज्ञ है वह आकर इस क्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोध लाभ  
 और अलाममें संतोषी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण  
 इसके लिए मैं भक्षण बसनादिक हूँ" इस भावनासे प्रेरित होकर पेंजा  
 कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूँ, अतः  
 आपके लिये समस्त भक्षण, पान, स्वाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार,  
 तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूँ। ये समस्त वस्तुएँ  
 मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी हैं। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह  
 करनेमें अनेक प्राणियों मृतों जीवों और सस्योकी विराधना हुई है, क्यों  
 कि पशुकायके जीवोंकी विराधना हुए बिना इनकी उत्पत्ति हो ही कैसे  
 सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मूल्य दे कर खरीदा है,  
 इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है।  
 अलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

७५ अन्त्यर्थात् क्रोधं गृह्यते ये मुनिना आचारधी अन्त्यर्थात् ते अन्तीने जाया अन्त्यर्था  
 हे "आसाधु सानुक्रोध लाभ अने अलाममां संतोषी, भिक्षोपजीवी, तथा परोपकारमां  
 निरत छे अहं करके अने हुँ अतः पत्र आयु" अहं आधी अन्त्यर्था श्रिस्ति अनी  
 साधु समस्त आनी वदना करी ठके छे-हे आयुष्मन् मुने! हुँ संसाररूपी  
 समुद्रधी पार बनाने अखिलाधी छे आपणा भाटे अन्न, पान, आद्य, स्वाद्य  
 अहं अर प्रकारका आहार तथा वस्त्र पान, कम्बल अने स्मृदिकरवु देवा यानु  
 हुँ आ अधी वस्तुओ मे आपणा उद्देशधी व राधी छे आनी तैयारी कर  
 यमां अथवा संग्रह करवामां अनेक प्राणीओ, मृते, लवे अने सन्ताननी  
 विरधना यद्य छे, हेम के पशुअथा लवेनी विरधना क्या विना जेनी कल्पति  
 यद्य पशु हेम शके? आपने आपणा भाटे व मे आ वस्तुओ  
 मूल्य छे खरीदी छे, आ अधी वस्तुओ उछीटी अछने सनेल छे,  
 अलात्कारधी दुर्लभधी छीनयी जेने संग्रह करेल छे. अतः परमां

टीका-‘स भिक्षु’-रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाव्रतः, परिज्ञाशिरसिगिर-  
समारूढः सकलसमारम्भोपरतः भिक्षुः=शरीरयात्रानिर्वहणार्थमशनवसनादियाचन-  
शीलो मुनिः ‘श्मशाने’ शयः शेरते यत्र तत् श्मशानम्, अत्र ‘वा’ शब्दः सर्वत्र  
पक्षान्तरद्योतकः । तथा गून्यागारे=निर्जनगृहे गिरिगुहाया=पर्वतकन्दराया वृक्षमूले  
=तरुमूले, कुम्भकारयतने=कुम्भकाराशालाया ‘द्वरस्था’ इति देशभाषया पूर्वो-  
क्तस्थानेभ्योऽन्यत्र वा कुत्रचित् स्थाने पराक्रमेत=तपःसंयमाचरणादौ पराक्रम  
कुर्यात्, विहरेदित्यर्थः, तिष्ठेद्वा ध्यानादिविधानाय, निपीदेद्वा वाचना-पृच्छना-  
परिवर्तनादिकरणाय उपविशेत्, अपि चाध्वखेदसमापन्नः स तन्वर्तयेत्=त्वन्वर्तन  
कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः,  
अन्येषां तु यथासम्भव बोध्यम् । गाथापतिः=गृहस्थः=स्वीकृतसम्यक्त्वसाध्याचारा-  
नभिज्ञः प्रकृतिभद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्त=विचरन्त मुनिम् उपसक्रम्य=मुनिस्त-

पांच महाव्रतोका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समारूढ  
समस्त समारम्भोंसे निवृत्त भिक्षु शरीरयात्राके निर्वाहके लिये ही  
अशन, वसन ( वस्त्र ) आदिकी याचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि  
करनेके निमित्त, या आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि  
करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और सयमकी विशेष आरा-  
धनाके निमित्त कभी श्मशानमे जाता है, कभी शून्य गृहमे ठहरता है  
कभी पर्वतकी गुफामें बसता है और कभी किसी वृक्षके नीचे और कभी  
किसी कुभारकी शालामें या और भी कहीं इन स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें  
तथा मार्गजनित परिश्रमको दूर करनेके लिये विश्रामके निमित्त भी इन्हीं  
स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले  
मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

पाथ महाव्रतोना धारक, परिज्ञारूपी पर्वतना शिखर पर समारूढ अने  
समस्त समारम्भोमाधी निवृत्त भिक्षु-शरीर यात्राना निर्वाह माटे अशन,  
वसन आदिनी याचना करवावाणा मुनि-ध्यान आदि करवा निमित्त, अगर आग  
भनी वाचना, पृच्छना अने परिवर्तना आदि करवा निमित्त, अथवा पीते धारण  
करेव तप अने सयमनी विशेष आराधनाना निमित्त क्यारेक श्मशानमा गत्य  
छे, क्यारेक उल्लङ्घन भक्षानमा रहे छे, क्यारेक पर्वतनी शुक्षमा वसे छे अने  
क्यारेक कोर्ध वृक्षनी नीचे अने कुभारनी शालामा अथवा भील कोर्ध स्थानोमा  
तथा मार्गनी थाकने दूर करवा माटे विश्राम निमित्त पण्ये स्थानोमाधी कथपि  
रही गत्य छे आ परिस्थितिथी स पन्न विहार करवावाणा मुनिनी पासे प्रकृतिधी

मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोशः कामासामसन्तोपी मिक्षोपधीवी परोपकारपरामयोः  
 जस्ति तस्मादेतस्यै सर्वमघनादिकं दास्यामी' विषेतसि विचिन्त्य न भ्रूयात्=नश्यमानं  
 प्राक्यं कथयेत्, तदेवाह-आयुष्मन्! भ्रमण!-मो मुने! अहं ससारपाराधारपारं  
 निगमिषुः 'सत्तु' वाक्पासङ्कारं तवार्थाय=मघद्वयं सर्वम् भक्षणं पानं स्वाद्यं स्वाद्यं चतु  
 विधमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पदवस्त्रं कम्बल पादमोच्छ्रनं समुद्रिष्य=मन्तमुद्रिष्य  
 एवं प्राणिनो भूतानि=जीवन्तु सत्त्वानि समारभ्य=विराभ्य सम्पादितम् भक्षणादि  
 सम्पादने पद्जीवनिकापविराषनाया अनप्यम्मापात्, तद्वस्तुदिकं क्लीत=मूर्खेण,  
 प्रामित्यम्=अपमित्यमुच्छिन्नतया वृष्टितम्, आच्छिद्यं=वस्त्रात्कारेण यद् दुर्बलम् यद्

अनभिज्ञ है वह आकर इस ब्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोश लान्त  
 और अलाममें संतोपी मिक्षोपधीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण  
 इसके लिए मैं भ्रमण वसनादिक हूँ" इस भाषनासे प्रेरित होकर ऐसा  
 कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूँ, अतः  
 आपके लिये समस्त भक्षण, पान, स्वाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार,  
 तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूँ। ये समस्त वस्तुएँ  
 मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी हैं। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह  
 करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी विरापना हुई है, क्यों  
 कि पदकायके जीवोंकी विरापना हुए बिना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे  
 सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मूल्य दे कर खरीदा है,  
 इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है।  
 वस्त्रात्कारसे छीम कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

५२ सम्बन्धि क्रोश वृद्धस्य च मुनिना आचार्यो अबल उ ते आनीने आया अप्यदधी  
 के "आ साधु सानुक्रोश काम अने अलाममां स तीपी, मिक्षोपधीवी, तथा परोपकारमां  
 निरत छे आ क्रोशे आने हूँ अत्र पत्र आयु" आ आनी आचनधी प्रियत आनी  
 साधु समस्त आनी वदना ठरी हके छे-हे आयुष्मन् मुने! हूँ ससाररूपी  
 समुद्रधी पार ववाने अलिवाधी हूँ आपना माटे अशन, पान, पाद्य, स्वाद्य  
 च चार प्रकारका आहार तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल अने रजोहरण देना चाह  
 हूँ आ अधी वस्तुओ ये आपना उद्देशधी क राधी छे आनी तैयारी कर  
 पनां अथवा संग्रह करवामां अनेक प्राणीओ, भूत, लोको अने अवेनी  
 विरापना अछ छे हेम के पदकायना लोकोनी विरापना तथा चिया जेनी कर्षचि  
 यक्ष पशु हेम शके! आपने आपना माटे क ये आ वस्तुओ  
 मूल्य छे खरीदी छे, आ अधी वस्तुओ वृष्टीती लधने सजेव छे,  
 अकार्यधी दुर्बलधी छीनवी जेने संग्रह करैव छे। भास्य परम्यं

टीका-‘स भिक्षु’-रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाव्रतः, परिज्ञाशिवरिशिवर-समाख्यः सकलसमारम्भोपरतः भिक्षुः=शरीरयात्रानिर्वहणार्थमशनवसनादियाचनशीलो मुनिः ‘श्मशाने’ शवाः शेरते यत्र तत् श्मशानम्, अत्र ‘वा’ शब्दः सर्वत्र पक्षान्तरघोतकः । तथा शून्यागारे=निर्जनगृहे गिरिशुहायां=पर्वतरुन्दराया वृक्षमूले =तरुमूले, कुम्भकारयतने=कुम्भकाराशालायां ‘हुरस्था’ इति देशभाषया पूर्वोक्तस्थानेभ्योऽन्यत्र वा कुत्रचित् स्थाने पराक्रमेत्=तपःसंयमाचरणादौ पराक्रमं कुर्यात्, विहरेदित्यर्थ, तिष्ठेद्वा ध्यानादिविधानाय, निपीदेद्वा वाचना-पृच्छना-परिवर्तनादिकरणाय उपविशेत्, अपि चाव्यखेदसमापन्नः स त्वग्वर्तयेत्=त्वग्वर्तनं कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः, अन्येषां तु यथासम्भव बोध्यम्। गाथापतिः=गृहस्थः=स्वीकृतसम्यक्त्वसाध्याचारानभिज्ञः प्रकृतिभद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्तं=विचरन्तं मुनिम् उपसंक्रम्य=मुनिस-

पांच महाव्रतोका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समाख्य समस्त समारम्भोसे निवृत्त भिक्षु शरीरयात्राके निर्वाहके लिये ही अशन, वसन ( वस्त्र ) आदिकी याचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि करनेके निमित्त, या आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और सयमकी विशेष आराधनाके निमित्त कभी श्मशानमें जाता है, कभी शून्य गृहमें ठहरता है कभी पर्वतकी गुफामें बसता है और कभी किसी वृक्षके नीचे और कभी किसी कुम्भारकी शालामें या और भी कहीं इन स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें तथा मार्गजनित परिश्रमको दूर करनेके लिये विश्रामके निमित्त भी इन्हीं स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

पांच महाव्रतोका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समाख्य समस्त समारम्भोमाथी निवृत्त भिक्षु-शरीर यात्राका निर्वाह भाटे व अशन, वसन आदिनी याचना करवावाणा मुनि-ध्यान आदि करवा निमित्त, अगर आगमनी वाचना, पृच्छना अने परिवर्तना आदि करवा निमित्त, अथवा पोते धारण करे तप अने सयमनी विशेष आराधनाका निमित्त क्यारैक श्मशानमा अथ छे, क्यारैक उज्ज्वल भक्षानमा रहे छे, क्यारैक पर्वतकी शुक्षमा वसे छे अने क्यारैक डोई वृक्षनी नीचे अने कुम्भारनी शालामा अथवा भील डोई स्थानामा तथा मार्गनी थाकने दूर करवा भाटे विश्राम निमित्त यक्ष्य अथवा स्थानामाथी कथिषु रही अथ छे आ परिस्थितिथी स पन्न विहार करवावाणा मुनिनी पासे प्रकृतिथी



मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोशः कामाकामसन्तोपी भिक्षोपजीवी परोपकारपरायणोऽस्ति तस्मादेतस्मै सर्वमभक्षनादिकं दास्यामी'-ति चेत्सि विचिन्त्य च ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं प्राकृत्य कथयेत्, तदेवाह-आयुष्मन्! भ्रमन्! =भो मुने! अहं संसारपारापारपरं निममिपुः 'खलु' वान्पास्मूतारे तवापीय=मधुमै सर्वम् भक्षनं पानं स्वाद्यं स्वाद्यं चतुर्विधमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पत्रद्वयं कम्बल पादभोज्यं सम्पुष्टिम्=मन्त्रद्वयम् एषं प्राणिनो भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारभ्य=निराभ्य सम्पादितम् भक्षनादि सम्पादने पद्भीषनिकायधिराधनाया अन्नस्यम्मावात्, तदभक्षनादिकं क्लीटं=मृत्युनेन, प्राप्तिस्त्यम्=अपमित्यमुच्छिन्नतया पृथीतम्, आच्छिद्यं=वशात्कारेण यद् दुर्बलाद् गृ

धनमिह है वह आफर इस क्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोश लान और अलाभमें संतोपी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण इसके लिए मैं अन्न वसनादिक दूँ" इस भाषनासे प्रेरित होकर पेंसा कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूँ, अतः आपके लिये समस्त अन्न, पान, स्वाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार, तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूँ। ये समस्त वस्तुएँ मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी हैं। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी धिराधना हुई है, क्यों कि घट्टकायके जीवोंकी धिराधना हुए बिना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मृत्यु दे कर खरीदा है, इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उपार ले कर इन्हें रखा है। बलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

एक समयअहोश कोश वृद्धस्य ये मुनिना आचार्यो जन्मस्य ते ते आसीने आया जन्मवधी है "आ साधु सानुक्रोश लान अने अलाभमा संतोपी, भिक्षोपजीवी, तथा परोपकारमां निरत ते आ कारणे आने हुं अन्न वस्त्र आयु" अ आची भाषनाची प्रकृति अनी साधु समस्त वस्ती वस्त्रा ठरी कहे छे-हे आयुष्मन् मुने! हुं संसाररूपी समुद्रसी पार भवाने अबिलापी हूँ कापना भाटे अन्न, पान, पाद्य, स्वाद्य, अ चार प्रकारका आहार तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल अने रजोहरण देना चाहता हूँ आ वधी वस्तुको ये आपना उद्देशसी व राभी छे आनी तैयारी करे धामां जन्मा संकट करवामां अनेक प्राणीको, भूतो, लोको अने अन्वेषी विस्रधना कर्त छे हेम के पदधरणा लोकोनी विस्रधना कर्त विना जेनी छे-पुत्रि कर्त पद्य हेम शके? आपने लपना भाडे व मे आ वस्तुको मृत्यु छे खरीदी छे, आ वधी वस्तुको क्लीटी कर्तने सजेव छे, अन्वेषारी दुर्बलोधी छीनपी जेना संकट करेव छे, भास परमपं

हीतम्, अनिसृष्टम्=अनेकस्वामिस्नाहारादिकमन्याननापृच्छत्य तदनिष्ठैकेन यथीय मानम्, अभिद्वत्=साधुसमीपमानीय दीयमानम्, एतादृशं सर्वाहारादिकम् आदृत्य=आनीय तुभ्य ददामि, एवम् आनसर्थं=उसति वा भवदर्थं समुच्छृणोमि=नवीनं विदधामि जीर्णं वा परिष्करोमि भो आयुष्मन् ! श्रमण ! त्वं तत्तथाभूतमशनादिकं भुङ्क्ष्व=अशान, त्वदर्थं मन्निर्मितभवने च वम=तिष्ठ । मूले बहुवचनमार्पत्वात् । एकमुक्तवन्त गाथापतिं निषेधयन्मुनिरेवमाह—भिभ्रुः=मुनिः समनस मनसा सदेति समनास्त=सचेतसम् शोभनमनसा कृतादरं, सवयसं वयसा=वाल्यातिरिक्तेन सह सवयास्तं सवयस=वाल्पेतरासंस्थापन्नं तादृशं गाथापतिं=गृहस्थं प्रत्याचक्षीत=कस्यमाण प्रत्युत्तरं दधात—

भो आयुष्मन् ! गृहपते ! अहं ते वचन=पूर्वोक्तं न 'सखु' शब्दोऽप्यर्थे तेन नापि आद्रिये=न तत्रादरं करोमि, अपि च अहं ते वचनं न परिजानामि ओंके अनेक मालिक हैं सो मैंने इन्हें देनेके निमित्त और किसीसे नहीं पूछा है—शायद उनकी इच्छा देनेकी न हो—सो मैं तो एक ही जनसे पूछ कर इन्हें देनेके लिये आपके समक्ष ले आया हूँ । ये आहारादिक वस्तुएँ आपके लेनेके योग्य हैं अतः आप इन्हें लीजिये मैं देता हूँ, इसी प्रकार मैं आपको ठहरनेके लिये एक नवीन मकान बनवाये देता हूँ, अथवा पुरानेको ही ठीक करवाये देता हूँ, सो आप जैसा मैंने कहा है उस प्रकारसे अशनादिकको ग्रहण करें और उस मेरे द्वारा बनवाये हुए मकानमें रहें । इस प्रकार कहनेवाले गृहस्थजनके लिये मुनि इस प्रकारसे निषेध करे—

हे आयुष्मन् गृहपते ! आपने जो कुछ कहा है वह भक्तिसे भरे हुए अंतःकरणसे कहा है—उसमें ऊपरके दिखावकी झलक नहीं है । तथा

आ वस्तुओंका अनेक मालिक छे परतु आपने देवा निमित्त में ओंकेने पूछलु नहीं, कारण के कदाच ओमनी छिछि देवानी न थाय—इकत ओकल लघुने पूछी देवा भाटे आपनी समक्ष लक्ष आवेल छुं आहारादिक वस्तुओं आपने लेवा योग्य छे, आप ओने स्वीकार करे, हुं आयु छु आ शीते आपने रहेवा भाटे ओक ननु मकान बनावी आयु छु अथवा गुनाने ठीक करावी आयु छु तो आप में छलु तेम असनादिकने अलक्षु करे अने भाश बनावेला मकानमा रहे आ प्रकारे कहेवावाण्य गृहस्थने मुनि आ प्रकारे निषेध करे—

हे आयुष्मान् गृहस्थ ! आपने के छलु ते भक्तिसे लरपूर अंतःकरणसे कहुं छे, तेमा उपरना देखावनी अलक नहीं, तथा तेमे आदृत्य अवरस्थाने ललधन

भासेकनपरिह्रया न समनुजानामि, यस्त्वं ममार्याय=मभिमिच्छ यद् भवन्न=वदुर्विषं  
 क्त्वं वा=वस्त्रादिकं प्राणादीन् समारभ्य पञ्जीषनिकायपुष्पमर्द्यं सम्पादितम्, तथा  
 सगुणिस्य=मागुणिस्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् अभिहृतम् आहृत्य  
 ददासि, भावसद्यं वा सगुणिस्योपि=मर्द्यं निर्मापयसि किन्तु हे आयुष्मन् ! गृह्यते !

तुम वाल्य अवस्थाको उल्लङ्घन भी कर चुके हो इसलिये हम यह भी  
 नहीं मान सकते कि किसीने तुम्हें समझा बुझाकर हमारे पास भेजा  
 है, अतः तुम सद्बुद्ध एवं उमरलायक व्यक्ति हो फिर भी तुम मुनि  
 के मात्सर विचारोंसे अपरिचित हो इसलिये हम तुम्हें समझाते हैं  
 कि—आपने जो कुछ आहार आदि सामग्रीके छेनेके विषयमें कहा है,  
 मैं उन वचनोंको न सुनना चाहता हूँ, न आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ और  
 न भासेकनपरिह्रासे उनकी अनुमोदना भी करता हूँ। तुम जो कह रहे  
 हो कि मैं अशानादिक चारों प्रकारका आहार तथा वस्त्रादिक पञ्जी-  
 षनिकायको उपमर्दन करके संपादित किया है, तथा मेरे उद्देश्यसे इन्हें  
 खरीदा है, ये समस्त चीजें तुमने उधार लेकर हमको देनेके लिये इन्हें  
 रख छोड़ी है, पछात्कारसे निर्पलोंसे इसे छीन झपट कर संग्रह  
 की है, घरमें इस सामग्रीके अनेक मासिक ये सो फितीसे न पूछ कर  
 कैबल एक ही मनुष्यकी आज्ञा ले कर तुम अपनी इच्छासे ही हमें देनेके  
 लिये इसे लाये हो, तथा एक नवीन मन्थन भी मुझे करवा देनेके लिये  
 कह रहे हो, आदि २ व तुम्हारी बातें मुनियोंके योग्य नहीं हैं, इस लिये

करी तथा छि माटे अग्नि जे पय मानता नहीं के कर्त्तव्ये तमने समन्वयी  
 पुनर्विने अभासी पासे आकरोके छे माटे तमे अङ्गुष्ठमे तेमव उमरलायक अङ्गि  
 छे ते पय तमे मुनिना आचार विचारधी अपरिचित छे माटे अग्नि  
 तमने समन्वयीके छीके के आपे के कर्त्त आहारादि सामग्री लेवाना विषयमा  
 क्त्वं छे हूँ ते वचनोने साकगवा छिछते नहीं, आदरनी दृष्टिधी  
 हेमते नहीं अने असेवनपरिह्राधी तेनी अनुमोदना पय करतो नहीं, तमे  
 के कही रह्या छे के मे अशानादिक चार प्रकारने आहार तथा वस्त्रादिक पञ्ज  
 षनिकायनु उपमर्दन करीने संपादित करेके छे तथा मारी छिछधी खरीदेके छे  
 अ समस्त चीजे तथा छीनी छनि मने आपका माटे सजी मुकेके छे जगत्कास्त्री  
 निर्माणो पासेधी अने आचारी छि सभके करेके छे परमां अ सामग्रीना  
 अनेक मासीके द्वारा जेमाधी कर्त्तने न पूछतां केवज केके अ मायुस्त्री आज्ञा  
 छनि तमे तमारी छिछधी मने आपका माटे लायेके छे तेमव केके ननु

एतस्य=पूर्वोक्तस्य अकरणतया अनासेवनपरिज्ञया सोऽहं विरतः=अकल्पनीयाश-  
नादिग्रहणेभ्यो निवृत्तोऽस्मि, पूर्वोक्तं सर्वं मम न कल्पत इति भावः, अतो मदर्थ-  
मुपकल्पितं पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातं भगवदाज्ञावहिर्भूतत्वात् स्वीकर्तुं न शक्नोमि,  
नात्र त्वया स्वमनसि खेदो विधेयः, इत्यादि सान्त्वनावाक्यैस्तं प्रकृतिभद्रं गृहस्थ-  
मनुनयेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

विदितसाध्वाचारो गृहपतिः साधुमविज्ञाप्याशनादिकमुपकल्प्य निमन्त्रये  
तन्निषेधयितुमाह—‘से भिक्षु’ इत्यादि ।

हम इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं और न हम इसकी तुम्हें स्वीकृति ही  
दे सकते हैं, कारण कि इस प्रकारकी अकल्पनीय सामग्रीके ग्रहणसे  
हम सर्वथा विरत हैं । तीर्थङ्कर प्रभुकी यह आज्ञा है कि मुनिजन इस  
प्रकारकी अकल्पनीय अशनादि सामग्रीको ग्रहण न करें, अतः हमारे  
निमित्त रखी हुई पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थङ्कर  
भगवान्की आज्ञासे वहिर्भूत होनेके कारण हमें ग्रहण करनेयोग्य नहीं  
है, इसलिये हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं । इस विषयमें तुम  
अपने चित्तमें खेद मत करना । इस प्रकारके सान्त्वना परिपूर्ण वचनोंसे  
वह मुनि उस प्रकृतिभद्रं गृहस्थको समझावे ॥ सू० १ ॥

साधुके निमित्त तय्यार की गई आहारादिक सामग्री ज्ञात होने पर  
साधुके लिये अकल्पनीय है । साधुजन उसे नहीं ले सकते हैं ।  
जिसने साधुका आचार जाना है ऐसे गृहस्थके द्वारा साधुके उद्देश

भक्षान पणु भारा माटे करावी आपवानु कडी रक्षा छे आ सधणी तभारी  
पातो मुनिने योग्य नथी जेथी तेने हुं अडलु करी शकतो नथी तेभ जेनी स्वीकृति  
पणु दध शकतो नथी । कारणु के आ प्रकारनी अकल्पनीय सामग्रीना अडलुपुथी  
हुं सर्वथा विरकत छु तीर्थंकर प्रभुनी जेवी आशा छे के मुनिजन आवा  
प्रकारनी अकल्पनीय अशनादि सामग्री अडलु न करे माटे भाग निमित्त राणेडी  
पूर्वोक्ता ममस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थंकर भगवान्नी आज्ञावी गडि  
भूत जेमाने कारणे भारे योग्य नथी आ माटे हुं तेने अडलु करी शकतो  
नथी आ आगत तमे तभारा मनमा जेठ करथे नडी आ प्रकारे सान्त्वना  
परिपूर्ण वचनोथी ते मुनि जे प्रकृतिभद्रं अकल्पने समस्तये ॥ सू० १ ॥

साधुना निमित्त तय्यार करायेडी आहारादिक सामग्री तय्यार पडी साधु  
माटे अकल्पनीय छे साधुजन तेना स्वीकार करता नथी जेणे साधुना आचार  
जान्छा छे जेवा गृहस्थद्वारा साधुना उद्देश विना पणु तय्यार करायेडी दोऽनादिक

मूत्रम्—से भिक्षु परकमिज्ज वा, जाव दुरस्था वा, कर्हि चि विहरमाण त भिक्षुं उवसकमित्तु गाहावई आयगयाप पेहाप असण वा ४, वत्थं वा ४, जाव आहइ वेपइ आवसहं वा समुस्सिणाइ त भिक्षु परिघासेडा त च भिक्षु जाणिज्जा सह सम्मइयाप परवागरणेण अण्णोसिं वा अतिप सुच्चा—अय खलु गाहावई मम अट्टाप असण वा ४, जाव आवसह वा समुस्सिणाइ त च भिक्षु पडिलेहाप आगमिच्चा आणविज्जा अणासे वणयाप त्तिवेमि ॥ सू०२ ॥

छाया—स भिक्षुः पराक्रमेत वा याक्त् दुरस्था ( भग्यप्र ) वा क्वचित् विहरमाण तं भिक्षुमुपसक्रम्य मृष्टपतिरात्मगतया प्रेतया भक्षणं वा ४ वस्त्रं वा ४ याक्त्वाहस्य ददाति आभसयं वा समुच्छृणोति तं भिक्षुं परिघासयितुं । तच्छ भिक्षुर्भा नीयात् सहसम्मत्स्या परम्याकरणेनाऽन्वेषां वाऽन्तिके भुत्वा—अयं खलु गायाप-तिर्ममावायाशनं वा ४ याक्त्वाभसयं वा समुच्छृणोति तश्चिद्धः प्रत्युपेत्यावगम्या ऽऽज्ञापयदनासेषन्तयेति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ स भिक्षु’—रित्यादि, स भिक्षु—भुनिः पूर्वोक्ते श्मशानादौ ‘दुरस्था’ देशमापया म्यथापि ग्रामादौ पराक्रमेत—उपसंयमादौ, ‘याक्त्’ इत्यनेन पूर्वो के बिना भी तैयार की गई भोजनाविक सामग्री निमंत्रित किया गया साधु नहीं छे सकता है, इसे प्रकट करनेके लिय सूत्रकार कहते हैं—  
“ से भिक्षु ” इत्यादि।

उस भुनिको कि जो अपने तप और संयमकी वृद्धि करनेके निमित्त ध्यान आदिकी सिद्धिके निमित्त, अथवा आगमकी वाचना, पृच्छमा और परिवर्तना आदिके निमित्त इमशान आदि स्थानोंमें शून्य घरमें पर्वतकी

शामग्री निमंत्रित करवायं आवेक साधु लक्ष्य शक्य नहीं, तेने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे—“ से भिक्षु ” इत्यादि।

जे भुनि छे जे चेताना तप अने संयमकी वृद्धि करवा निमित्त ध्यान आदिनी सिद्धिना निमित्त अथवा आगमनी वाचना, पृच्छमा अने परिवर्तना आदिना निमित्त श्मशान आदि स्थानोंमें, शून्य घरमें, पर्वतकी शुकुर्मा,

वृत्तस्य=पूर्वोक्तस्य अकरणतया अनासेवनपरिहृत्या सोऽहं विरतः=अकल्पनीयाश्च-  
चादिग्रहणेभ्यो निवृत्तोऽस्मि, पूर्वोक्तं सर्वं मम न कल्पत इति भावः, अतो मदर्ध-  
मुपैकल्पितं पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातं भगवदाज्ञावहिर्भूतत्वात् स्वीकर्तुं न शक्नोमि,  
नात्र त्वया स्वमनसि खेदो विधेयः, इत्यादि सान्त्वनावाक्यैस्तं प्रकृतिभद्रं गृहस्थ-  
मनुनयेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

विदितसाध्वाचारो गृहपतिः साधुमविज्ञाप्याशनादिकमुपकल्प्य निमन्त्रयेत्  
तन्निषेधयितुमाह—‘से भिक्खू’ इत्यादि ।

हम इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं और न हम इसकी तुम्हें स्वीकृति ही  
दे सकते हैं, कारण कि इस प्रकारकी अकल्पनीय सामग्रीके ग्रहणसे  
हम सर्वथा विरत हैं । तीर्थङ्कर प्रभुकी यह आज्ञा है कि मुनिजन इस  
प्रकारकी अकल्पनीय अशनादि सामग्रीको ग्रहण न करे, अतः हमारे  
निमित्त रखी हुई पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थङ्कर  
भगवान्की आज्ञासे बहिर्भूत होनेके कारण हमें ग्रहण करनेयोग्य नहीं  
है, इसलिये हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं । इस विषयमें तुम  
अपने चित्तमें खेद मत करना । इस प्रकारके सान्त्वना परिपूर्ण वचनोंसे  
वह मुनि उस प्रकृतिभद्र गृहस्थको समझावे ॥ सू० १ ॥

साधुके निमित्त तय्यार की गई आहारादिक सामग्री ज्ञात होने पर  
साधुके लिये अकल्पनीय है । साधुजन उसे नहीं ले सकते हैं ।  
जिसने साधुका आचार जाना है ऐसे गृहस्थके द्वारा साधुके उद्देश

भक्षण पक्षु भास भाटे करावी आपवानु कडी रह्या छे आ सधणी तभारी  
वातो मुनिने योग्य नथी जेथी तेने हुं अडधु करी शकतो नथी तेम जेनी स्वीकृति  
पक्षु इध शकतो नथी कारखु के आ प्रकारनी अकल्पनीय सामग्रीना अडधुथी  
हुं सर्वथा विरक्त छु तीर्थंकर प्रभुनी जेनी आशा छे के मुनिजन आवा  
प्रकारनी अकल्पनीय अशनादि सामग्री अडधु न करे भाटे भास निमित्त सजेली  
पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थंकर भगवान्नी आशाथी अडि  
वृत्त होवने कारखे भाटे योग्य नथी आ भाटे हुं तेने अडधु करी शकतो  
नथी आ जायत तमे तभारा मनभा जेठ करखे नडी आ प्रकारे सान्त्वना  
परिपूर्ण पथनोथी ते मुनि जे प्रकृतिभद्र अडधुने समजवे ॥ सू० १ ॥

साधुना निमित्त तय्यार करायेली आहारादिक सामग्री ज्ञात पक्षु साधु  
भाटे अकल्पनीय छे साधुजन तेने स्वीकार करता नथी जेखे साधुना आचार  
जान्या छे जेवा गृहस्थद्वारा साधुना उद्देश विना पक्षु तय्यार करायेली ज्ञानादिक

जानीयात्=बुद्धपेक्ष, किं जानीयादित्याह—'अय'—मित्यादि—अयम्=एष गायापतिः  
 सङ्घ=निश्चयेन, ममार्याय=मदर्थं संपाद्य भक्षणं वा ४ पक्षं वा ४ यावत्सर्वं  
 वदाति, आरसत्वं वा समुष्ण्योति एतत्सर्वं जानीयादिति सम्बन्धः । तत्सर्वमक-  
 स्यस्वात्परिहरेदित्याह—'तवि'—स्यादि, भिक्षुः=शुनिः तत्=अन्नं-वसनावसथादिकं  
 मदर्थमेव सम्पादितमिति मत्स्युपेक्ष्य=दृष्ट्यादिना सम्मेक्ष्य अन्नगम्य=स्वपुद्गपा  
 सम्यगवपुद्गप एव त गृहस्यम् अनासेवनतया अकल्पनीयत्वेन\_सेषितुमयोग्यमिति  
 आह्वापयेत्=प्रविशोपयेत्, ब्रवीतुमपि न कस्यच इति तत्पर्यम्, 'एतन्मदर्थमुपक-  
 स्विषमभनादिकमुद्गमादिदोषवृत्तितया नाहं ब्रवीष्ये, नापि तस्मिन् आरसत्वे  
 वत्स्यामि, इत्यापमिधाय 'मासुक्रवाने पर्माऽन्यथा न पर्माः' इत्यादिकं

वसीके दासदासी आदिके पासमें सुननेसे यह मासूम होता है कि यह  
 आहारादिक सामग्री, या कन्न पात्रादिक वस्तुएँ, और ठहरनेके लिये यह  
 निर्मित स्थान इस भावकने मुनियोंके निमित्त ही तैयार किये हैं । यह  
 आहारादिक सामग्री इसने हमारे निमित्त ही बनवाई है, कन्नादिक ये  
 हमारे निमित्त ही देने लाया है, यह मकान भी इसने हमारे निमित्त  
 ही तय्यार करवाया है, इस प्रकार अच्छी तरह जानकर और विचारकर  
 उस दाता गृहस्थको समझावे, कि—ये तुम्हारे द्वारा दी जानेवाली समस्त  
 वस्तुएँ हमें अकल्प्य हैं—हमें सेवन करनेके अयोग्य हैं । हम इन्हें ग्रहण  
 तक नहीं कर सकते हैं, कारण कि ये सब भक्षनादिक वस्तुएँ उद्गमा-  
 दिक दोषोंसे वृत्त हैं, इसलिय हम न इन्हें ग्रहण करेंगे और न मकान-  
 नमें ही ठहरेंगे । ऐसा कह कर “निर्देयिके देनेमें ही धर्म होता है

सालणी जेभ मासूम पठे छे के जे आहारादिक सामग्री अने कन्न पात्रादिक  
 वस्तुज्ये अने उतरवा भाटे ज्य निर्मित स्थान ते भावके मुनियेज्य निमित्त  
 वेधार इरेल छे ज्य आहारादिक सामग्री तेजे अभास निमित्त अ जनावेली छे  
 कन्नादिक अभास निमित्त अ आपवा भाटे लावेल छे ज्य मकान पशु अभास  
 निमित्त अ तेजे जनावेल छे ज्य प्रकारे शारी रीते ब्यथीने अने विचार करीने  
 ते दत्ता बुद्धस्थने ज्य प्रकारे समबवे के ज्य तभारा द्वारा अपाटी समस्त  
 वस्तुज्ये अभासे अकल्पनीय छे अभास सेवन भाटे अथेअथ छे अथि तेने  
 अकल्प करी शकता नथी अरज्य के जे सफल ज्य आहारादिक वस्तुज्ये उद्गमादिक  
 दोषोधी इपित छे भाटे अथे तेने अकल्प इरता नथी जेवुं कहीने मासुकने  
 देवामं अ धर्म थाव छे जे सिवाय नहीं” एतथादि शाश्रोवत इत्येने जेने

क्षत्रिणीदेवत्ववर्तयेदिति सङ्ग्रहः, गायापतिः=प्रकृतिभद्रकः कश्चिद् आत्मगतया  
 =अन्तःकरणस्थितया प्रेक्षयाऽनाविष्कृताशयः प्रच्छन्नपचनपाचनादिना पट्टजीवनि-  
 कायं विराधयन् त भिक्षुं तत्र क्वचिदेकत्र विहरन्तम् उपसक्रम्य तत्समीपं गत्वा  
 अशनं वा चतुर्विधं, वस्त्रं वा ४ यावत् सर्वम् आहृत्य=आदाय त भिक्षु परिधासयितुं=  
 मुनिभोजनाय ददाति=वितरति आवसथ वा=नवीनं गृह वासयितुं समुच्छृणोति=  
 निर्मापयति जीर्णं वा परिष्करोति, भिक्षुः=संयमी तद् आहारादिकं वस्त्रादिक्रमाव-  
 सथं वा साध्वर्थमेव कृतमिति सहसम्मतया=स्वबुद्ध्या, तयाऽनधिगमे परव्याकरणेन  
 परपरिषत्नेन, ततोऽनवगमे अन्येषां=तत्परिजनदासादीनामन्तिके=समीपे श्रुत्वा वा

शुफाओंमें कुंभारकी शालामें या इनसे अतिरिक्त किसी भी स्थानमें  
 रहता है ठहरता है उठता है तथा बैठता है या मार्गजन्य खेदको दूर  
 करनेके लिये उन २ स्थानोंमें विश्राम करता है उन्हें देख कर कोई  
 प्रकृतिभद्र गृहस्थ अपनी इच्छासे उपाजित आहार देनेकी भावनासे आता  
 है । मुनिके निमित्त इसने आहारादिक सामग्री तैयार की है इस प्रकार  
 का उसका अभिप्राय प्रकट नहीं हो रहा है, तथा मुनिसे प्रच्छन्न पचन  
 पाचनादि व्यापारसे जिसने षट्जीवनिकायकी विराधना भी की है वह  
 गृहस्थ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और  
 रजोहरण आदि समस्त सामग्रीको ले कर मुनिको देनेके निमित्त कहीं  
 रख देता है । नया मकान भी ठहरनेके लिये बनवा देता है, अधवा जीर्ण  
 का उद्धार करवा देता है । मुनिको जब यह बात अपनी बुद्धिसे या उस  
 से नहीं मालूम पड़ने पर दूसरेसे पूछनेसे, उससे भी निश्चित न होनेपर

कुंभारनी शालामा, अथवा तेनाथी सिवाय केअ पणु स्थानमा रहे छे-शकाय छे  
 ठडे छे जैसे छे तथा मार्गजन्य थाउने इर करवा भाटे तेवा स्थानमा  
 विश्राम करे छे तेने जेधने केअ प्रकृतिभद्र गृहस्थ पोतानी इच्छाथी उपाळत  
 आहारा देवानी भावनाथी आवे छे मुनि निमित्त तेजे आहारादिक सामग्री  
 तैयार करेली छे आ प्रकारने भाव देभाळ आवतो नथी तथा मुनिथी  
 प्रच्छन्न पचनपाचनादि व्यापारथी जेजे पणुवनिकायनी विराधना करेली छे ते  
 गृहस्थ अशन, पान, खाद्य, अने स्वाद्य तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल अने रजोहरण  
 आदि समस्त सामग्री लधने मुनिने देवा भाटे केअ जग्येजे शपे छे ननु  
 मकान पणु रहेवा भाटे बनानी हे छे अथवा नुनाने समरणी आवे छे मुनिने  
 आ बात न्यारे पोतानी बुद्धिथी, अथवा तेने नहीं मालुम पडवाथी जीजने  
 पूछवाथी, जेनाथी पणु निश्चित न थवाथी तेना हास हासी आदिना पासेथी



'मो मित्तो ! तुभ्यमाहारबन्धादिकं दातुमिच्छामि स्वार्त्नं वा परिष्करिष्यामि अनु  
 चानीहि मा' मित्यादिवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, भ्रमात्तानुहोऽपि गावापतिर्यदि सहसा वाऽऽ-  
 ग्राहयिष्यते, कश्चिन्व स्तोत्रमनगाराधारविक्रियः मपृष्ट्वा वा मिधुष्पाऽनुज्ञात्वा

आधारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आधारसे  
 परिचित हैं। इनमें जो उनके आधारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें  
 सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अध्ययनादि  
 पूर्वोक्त कारणोंके कारण इमशान आदि स्थानोंमें पिहार करते हुए देख  
 कर भक्तिके आवेशसे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि—महाराज ! मैं आपके  
 लिये आहार बन्धादिक देनेका अभिलाषी हू। आपके लिये एक नयीन  
 भवन भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हू।  
 नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुपरवा दू, कहिये  
 आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही देरी है काम बहुत शीघ्र  
 हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी बातको सुन कर मुनि ध्यानादिके  
 कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें  
 अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने  
 इमें कोई इस बातमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैंने उन्हें  
 सुझा तो कर दिया है, बसो भक्ति—अनुनय विनयादि करके सब  
 उनसे मंजूर करवा लूंगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

आधारसे अपरिचित थे तथा इतनाक बुद्धस्थ जेवा होय थे के तेना आवास्थी  
 परिचित थे जेभां के जेना आधारसे अपरिचित थे तेना विषयमां सूत्रकार  
 इरीषी पद्य कहे थे के जेनी व्यक्ति मुनिने ध्यान अध्ययन आदि स्थानेमां  
 पिहार कत्वा जेधने कश्चितना आवेशसे पीते मुनिने पूछे थे के—महाराज क  
 आपने माटे आहार वन्धादिक देवाने अभिलाषी हूँ आपने माटे जेक नयीन  
 भवन पद्य जेमां आप निवास करी सके तेंवुं बनावी देवा थाहुं हू, नकि तो  
 आपने लायक जुना भवनने सुपरवावी इठे कहे आपनी हूं संमति छे ?  
 आपनी आज्ञाकी चार छे शंभु कश्ची पद्य कश्ची आ प्रकान्ती ते बुद्धस्थनी चार  
 आंशनीने मुनि ध्यानादिकेना कारणे जेवारे कश्चिं पद्य उत्तर आपत्ता नथी त्पारे  
 ते बुद्धस्थ पीतानी कल्पनासे पीताना मनमां निश्चय करी ले छे—ठीक छे  
 मुनिराजने मने आ आज्ञातमां कश्चिं उत्तर आपेव नथी तो कश्चिं वापे नथी  
 ये तेमने जेधरे तो करी कश्ची छे। कश्चित—अनुनय—विनय विजिरे—भी मंजूर  
 कश्ची लच्छि जने आ आहारादिकनी सामग्री पद्य जेमने कश्चिं पद्य प्रकारे

शास्त्रोक्तकल्पमुपदिश्य तमभिसान्त्वयेदिति भावः। 'इति' अधिकारसमाप्ति, यन्मया भगवत्सकाशात् श्रुत तत्सर्वं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=ऋथयामि ॥ सू० २ ॥

- वक्ष्यमाणमेवाह—'भिक्षुं च' इत्यादि—

मूलम्—भिक्षुं च खलु पृष्ठा वा, अपृष्ठा वा जे इमे आहञ्च गंथा वा फुसंति से हंता हणह, खणह, छिंदह दहह, पयह, आलुंपह, विलुंपह सहसा कारेह, विप्परामुसह, ते फासे, पुष्टो धीरो अहियासए, अदुवा, आयारगोयरमाइक्खे तविकया णमणे-लिसं, अदुवा वइगुत्तीए गोयरस्स अणुपुब्बेण सम्मं पडिलेहाए आयगुत्ते, बुद्धेहिं एयं पवेइयं ॥ सू० ३ ॥

छाया—भिक्षुं च खलु पृष्ठा वा अपृष्ठा वा ये इमे आहृत्य ग्रन्थाद्वा स्पृशन्ति स हन्ता इत क्षणत, छिन्त, दहत, पचत, आलुम्पत, विलुम्पत, सहसाकारयत, विपरामुसत, तान् स्पर्शान् स्पृष्टोऽध्यासयेत्, अथ वा आचारगोचरमाचक्षीत, तर्कयित्वा खलु अनीदशमथवा वागुप्त्या गोचरस्यानुपूर्व्या सम्यक् प्रत्युपेक्षेव आत्मगुप्तः, बुद्धैरेतत्प्रवेदितम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—'भिक्षु'—मित्यादि, ये=पूर्वोक्ता इमे=प्रत्यक्षनिर्दिष्टा गाथापतयो भिक्षु =भगवानादौ विहरन्त त मुनि 'चः' समुच्चयार्थकः, 'खलु' वाक्यालङ्कारे, पृष्ठा अन्यथा नही " इत्यादिक शास्त्रोक्त कल्पका उसे उपदेश देकर समझावे। सूत्रमें इति शब्द अधिकारकी समाप्तिका सूचक है। जो मैंने भगवान्से सुना है वह सब पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण तुमसे कहा है, तथा आगे कहता हू ॥ सू० २ ॥

वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार कहते हैं—“ भिक्षुं च ” इत्यादि।

सूत्रकारने १ प्रथम और २ द्वितीय सूत्रमें यह प्रकट किया है कि-कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो मुनियों के प्रति पूर्ण भक्ति रखते हैं परन्तु उनके

उपदेश आपी समझवे सूत्रभा इति शब्द अधिकारनी समाप्तिके सूत्रके छे ने मे भगवान् पासेशी सालणेल छे ये सबणु पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण तमने कहेल छे तथा आगण कहुं छुं ॥ सू० २ ॥

वक्ष्यमाण विषयने सूत्रकार कहे छे—“ भिक्षुं च ” इत्यादि

सूत्रकारे १ प्रथम अने २ भाँव सूत्रभा ये प्रकट करेल छे के के छे गृहस्थ अथवा होय छे के ने मुनियोनी तरङ्क पूछुं भक्ति राणे छे पण तेन

‘मो मिसो ! तुम्यमाहारवस्त्रादिकं दातुमिच्छामि स्थानं वा परिष्करिष्यामि अतु  
 पानीहि मा’ मित्याविवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, अमाप्ताद्ब्रह्मोऽपि गाथापतिर्यदि सहासा चाऽऽ-  
 ब्राह्मिष्यते, कश्चिष्व स्तोत्रमनगाराचारविधिः अपृष्ट्वा वा मिदुष्पाऽनुवाताः

आचारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आचारसे  
 परिचित हैं। इनमें जो उनके आचारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें  
 सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अध्ययनादि  
 पूर्वोक्त कारणोंके कारण इमशान आदि स्थानोंमें बिहार करते हुए देख  
 कर भक्तिके आवेशसे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि—महाराज ! मैं आपके  
 लिये आहार वस्त्रादिक देनेका अभिलाषी हू। आपके लिये एक नवीन  
 भवन भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हू।  
 नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुधरवा दू, कष्टिये  
 आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही बेरी है काम बहुत शीघ्र  
 हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी यातको सुन कर मुनि ध्यानादिके  
 कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें  
 अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने  
 हमें कोई इम बातमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैंने उन्हें  
 सुचित तो कर दिया है, बसो भक्ति—अनुनय विनयादि करके सब  
 उनसे मंजूर करावा लूंगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

आचारभी अपरिचित थे तथा इतनाकें अक्षय्य जेवा होय थे के तेना आचारभी  
 परिचित थे जेमां ने जेना आचारभी अपरिचित थे तेना विषयमां सूत्रकार  
 करीभी पद्य कहे थे के जेवी अक्षित मुनिने ध्यान अभ्यसन आदि स्थानेमां  
 निहार करवा जेधने अक्षितना आवेशभी पोते मुनिने पूछे थे के—महाराज  
 आपने माटे आहार वस्त्रादिक देवाने अक्षितापी हूँ आपने माटे जेक नवीन  
 भवन पद्य जेमा आप निवास करी शकें तेंवुं जनावी देवा आहुं हू, नकिं ते  
 आपने दावक जुना भवनने सुधरवा ईई कहे आपनी शुं संमति छे ?  
 आपनी आज्ञानी वार छे काम करी घट करे, आ प्रकाशनी ते अक्षय्यनी वात  
 अक्षय्यने मुनि ध्यानादिकना कारणे जेभारे कर्म पद्य उत्तर आपत्ता नहीं त्पारे  
 ते अक्षय्य पीतानी अक्षय्यनी पीताना मनमां निश्चय करी ले छे—ठीक छे  
 मुनिशब्दे भने आ आज्ञतमां कर्म उत्तर आपिल नहीं तो कर्म बापि नहीं  
 ये तेभने अक्षेरे तो करी क ईषुं छे अक्षित—अनुनय—विनय विजिरे—भी मंजूर  
 करवी छयसि जने आ आहारादिकनी सामग्री पद्य जेभने कर्म पद्य प्रकरे

દનૈઃ પરામૃશત=યાતના દદત । એ સ્પૃષ્ટઃ=પૂર્વોક્તહનનાદિવહુવિષ્પરીપહાભિપૂતઃ  
સન્ ધીરઃ=પરીપહોપસર્ગસહનશીલઃ તાન્=પૂર્વાક્તાન્ હનનાદીન્ સ્પર્શાન્=દુઃસ્વવિ-  
શેપાન્ અધિસદ્દેત । સ ભિક્ષુઃ પરિપહોપસર્ગઃ સ્પૃષ્ટોઽપિ ન તદૌદેશિકાદિદોષદુષ્ટ-  
માહારં શૂઠ્ઠીયાત્, નાપિ ગ્લાનત્વમવલમ્બેતેત્યાશયઃ ।

અથવા સ ભિક્ષુઃ અનીદૃશમ્ 'અય પુરુષ' કઃ કિં સમ્યગ્દષ્ટિરુત મિથ્યાદષ્ટિઃ?  
અભિગૃહીતનિયમોઽનભિગૃહીતનિયમો વા?' ઇત્યાદિરૂપમીદૃશં, તદ્વિન્નમનીદૃશ  
પુરુષં તર્કયિત્વા=સમ્ભાષણાઈ સમાલોચ્ય આચારગોચરં=મુનેરાચારવિષયમ્ આવ-  
ક્ષીત=સમુપદિશેત્ । સ્વસમયસ્થાપન-પરસમયનિરસનેન ચ તમભિસાન્તવયેદિત્યર્થઃ,

જિસ ૨ પ્રકારસે હસે અનેક યાતનાણં દી જા સકેં દો । હસ પ્રકાર હન  
ઉપર્યુક્ત હનનાદિક અનેક પ્રકારકે પરીપહોંસે વ્યાપ્ત હોતા હુઆ ખી  
વહ ધીર-પરીપહ ઓર ઉપસર્ગોં કે સહન કરનેમેં શક્તિશાલી-મુનિ હન  
હનનાદિક દુઃસ્વવિશેષોંકો સમભાવ સે સહન કરે । હન પરીપહ ઓર  
ઉપસર્ગોં સે ઘવડા કર વહ મુનિ ઓદેશિકાદિ દોષોંસે દૂષિત ઉસ  
આહારકો ન લેવે ઓર ન ચિત્તમેં કોઈ ગ્લાનિ હી લાવે ।

અથવા—વહ મુનિ “યહ પુરુષ કૌન હૈ? સમ્યગ્દષ્ટિ હૈ? કિ  
મિથ્યાદષ્ટિ? અભિગૃહીત નિયમવાલા હૈ? યા ઉસસે રહિત હૈ?” ઇત્યા-  
દિરૂપ વિચારકા ઓ વિષય હો ઉસકા નામ ઈદૃશ હૈ, હસસે મિત્રકા  
નામ અનીદૃશ હૈ । “યહ અનીદૃશ હૈ” ઈસા વિચાર કર—‘યહ સમ્ભાષણકે  
યોગ્ય હૈ’ ઈસા જાનકર—ઉસે મુનિકે આચારકા ઉપદેશ દે । સ્વસિદ્ધાન્ત  
કી સ્થાપના ઓર પરસિદ્ધાન્તકે નિષ્કરણસે ઉસ વ્યક્તિકો સંતુષ્ટ કરે

નાઓ પહોચાડી શકાય તેટલી પહોચાડો, એને રીખાવી રીખાવીને મારી નાખો  
આ પ્રકારે અનેક પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી વ્યાપ્ત થતા પણ ધીર-  
પરીપહ અને ઉપસર્ગોને સહન કરવામા શક્તિશાલી મુનિ હનનાદિ હુ એને  
સમભાવે સહન કરે પણ ઓદેશિકાદિક દોષોથી દૂષિત અથ વચ્ચાદિકને અહણ  
ન કરે, તેમ ચિત્તમા કોઈ પ્રકારની ગ્લાનિ પણ ન લાવે.

અથવા—તે મુનિ “એ પુરુષ કોણ છે? સમ્યગ્દષ્ટિ છે? કે મિથ્યાદષ્ટિ?  
અભિગૃહીતનિયમવાળા છે? અથવા એથી સહિત છે?” ઇત્યાદિ વિચારવાનો  
વિષય એલુ નામ ઈદૃશ છે એનાથી ભિન્નલુ નામ અનીદૃશ છે “આ અનીદૃશ છે”  
એલુ વિચારી-એ સભાષણને યોગ્ય છે-એલુ બહાઈ લઈ એને મુનિના આચા-  
રનો ઉપદેશ આપે સ્વસિદ્ધાન્તની સ્થાપના અને પરસિદ્ધાન્તના નિષ્કરણથી એ  
વ્યક્તિને સતોષ આપે અમારે માટે આ ઓદેશિક અશન વસનાદિક અસ્વી-

‘ममेदमश्नन्नसनादिकं न कल्प्य’ मिति मनोत्तरगुणमदभिन्नां सर्वा पिण्डैपणाच्छुद्धि  
 क्यपित्वा—“यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवलमुपग्रह  
 करं, धर्मकृते तद्भवैरेयम्” ॥ १ ॥ इत्यादिवाक्यैस्तमनुनयविति भावः ।

स्वस्मिन् कथनसामर्थ्ये श्रोतरि चानुकूले कथनीयम्, अन्यथा कथनवैयर्थ्या  
 दित्याह—अथ वा वाग्गुण्या भाषो गुप्तिः वाग्गुप्तिः=वाक्यसयमन मौनमित्यर्थः,  
 तथा वाग्गुण्या उपलसितः मौन एव आत्मगुणः=आत्मना लिख्यभिर्मनागुण्यादि  
 मिश्रणः=रसितः सन् गोचरस्य=आचारगोचरस्य पिण्डविशुद्धिपादेः, आनुपूर्व्या=उत्तर  
 इमार लिय औपेक्षिक अज्ञान घसनादिक कल्पनिक नहीं है, इस प्रकार  
 मूल गुण और उत्तरगुणोंके भेदसे भिन्न ऐसी सम्पूर्ण पिण्डैपणाकी शुद्धि  
 का कथन कर “यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवल  
 लमुपग्रहकरं, धर्मकृते तद्भवैरेयम् ॥” इत्यादि वाक्योंसे यह मतलावे कि जो  
 आहारादिक वस्तु अवोप होगी वही दूसरोंकी उपकारक होगी, ऐसी उप  
 कारक वस्तु ही मुनियों के लिये उनके धर्मकी वृद्धिमें सहायक होनेसे  
 बेनेयोग्य मानी गई है । यह सब मुनि आचारविषयक कथन तप ही करे  
 कि जब अपनेमें इस आचारको समझानकी पूर्ण शक्ति-योग्यता हो और  
 सुननवाला श्रोता अनुकूल हो । अन्यथा कहनेसे कोई लाभ नहीं  
 होगा । इसी बातको “अथवा वाग्गुण्या गोचरस्यानुपूर्व्यां सम्यक्  
 प्रत्युपक्षेप आत्मगुणः” इन पदोंसे प्रस्फुट करते हैं—अथवा कथनगुप्ति  
 -कथनसंयम-मौन ही आत्मका गुण है । इस प्रकार मनोगुप्ति आदि तीन  
 गुणियोंसे गुण होता हुआ वह साधु पिण्डविशुद्धि आदिके उत्तम

धर्म है आ प्रकारे भूदुःख अने उत्तरशुद्धी लेखी जित जेवी पिण्डैपणाकी  
 शुद्धिनु कथन करी ते सुकल्पना मनमां कइता जभावे तेवी वाक्कीधी तेने  
 समझवे “यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवल  
 मुपग्रहकरं,  
 धर्मकृते तद्भवैरेयम्” इत्यादि वाक्योधी जे जतावे के आहारादिक वस्तु अहोप  
 होव ते ज नीबने उपकारक अने आवी उपकारक वस्तु ज मुनियो माटे  
 जेभना धर्मनी वृद्धिमां सहायक होवाधी देवा भोज्य भनवामां आवेत है आ  
 रीते मुनि आचारविषयक कथन त्वारे ज करे के कथारे जेनामां आचारने  
 समझववानी पूरुं शक्ति-योग्यता होव अने संभजनार पक्ष भोज्य-पात्र होव  
 जेभ न होव तो कइवाधी कइल बाक नहीं अने आ वातने “अथवा  
 वाग्गुण्या” इत्यादि आ पदोधी प्रस्फुट ( २५५ ) करे है अथवा कथन  
 गुप्ति-कथनसंयम-मौन ज आत्मने शुद्ध है ज रीते मनोगुप्ति आदि

दैनैः परामृशत=यातना ददत । एव स्पृष्टः=पूर्वोक्तहननादिवहुविपरिपहाभिभूतः  
सन् धीरः=परीपहोपसर्गसहनशीलः तान्=पूर्वाक्तान् हननादीन् स्पर्शान्=दुःखवि-  
शेषान् अधिसहेत । स भिक्षुः परिपहोपसर्गैः स्पृष्टोऽपि न तदादेशिकादिदोषदुष्ट-  
माहारं शक्यायात्, नापि ग्लानत्वमवलम्बेतेत्याशयः ।

अथवा स भिक्षुः अनीदृशम् 'अयं पुरुषः कः किं सम्यग्दृष्टिरुत मिथ्यादृष्टिः?  
अभिगृहीतनियमोऽनभिगृहीतनियमो वा?' इत्यादिरूपमीदृश, तद्भिन्नमनीदृश  
पुरुषं तर्कयित्वा=सम्भाषणार्हं समालोच्य आचारगोचरं=मुनेराचारविषयम् आव-  
सीत=समुपदिशेत् । स्वसमयस्थापन-परसमयनिरसनन च तमभिसान्त्ययेदित्यर्थः,

जिस २ प्रकारसे इसे अनेक यातनाएं दी जा सकें दो । इस प्रकार इन  
उपर्युक्त हननादिक अनेक प्रकारके परीपहोसे व्याप्त होता हुआ भी  
वह धीर-परीपह और उपसर्गों के सहन करनेमें शक्तिशाली-मुनि इन  
हननादिक दुःखविशेषोंको समभाव से सहन करे । इन परीपह और  
उपसर्गों से घबड़ा कर वह मुनि औद्देशिकादि दोषोंसे दूषित उस  
आहारको न लेवे और न चित्तमें कोई ग्लानि ही लावे ।

अथवा—वह मुनि “ यह पुरुष कौन है ? सम्यग्दृष्टि है ? कि  
मिथ्यादृष्टि ? अभिगृहीत नियमवाला है ? या उससे रहित है ? ” इत्या-  
दिरूप विचारका जो विषय हो उसका नाम ईदृश है, इससे भिन्नका  
नाम अनीदृश है । “ यह अनीदृश है ” ऐसा विचार कर—“ यह सम्भाषणके  
योग्य है ” ऐसा जानकर—उसे मुनिके आचारका उपदेश दे । स्वसिद्धान्त  
की स्थापना और परसिद्धान्तके निराकरणसे उस व्यक्तिको संतुष्ट करे

नाज्यो पड्योयाडी शक्य तेटली पड्योयाडो, जेने रीयावी रीयावीने मारी नाज्यो  
आ प्रकारे अनेक परिषद अने उपसर्गोथी व्याप्त थता पण धीर-  
परीषद अने उपसर्गोने सहन करवाभा शकितशाली मुनि हननादि दु ज्येने  
समभावे सहन करे पण औद्देशिकादिक दोषोथी दूषित अत्र वर्यादिकने अडणु  
न करे, तेम चित्तमा कोठ प्रकारनी ग्लानि पणु न लावे

अथवा—ते मुनि “ जे पुरुष कोणु छे ? सम्यग्दृष्टि छे ? के मिथ्यादृष्टि ?  
अभिगृहीतनियमवाला छे ? अथवा ज्येथी रहित छे ? ” इत्यादि विचारवानो  
विषय जेवु नाम ईदृश छे ज्येताथी भिन्नतु नाम अनीदृश छे “ आ अनीदृश छे ”  
जेवु विचारी-जे सम्भाषणुने योग्य छे-जेवु जाणुी बड ज्येने मुनिना आवा  
रनो उपदेश आपे स्वसिद्धान्तनी स्थापना अने परसिद्धान्तना निराकरणथी ज्ये  
व्यक्तितने संतोष आपे अमारि भाटे आ औद्देशिक अशन वसनादिक अस्वी-

‘मयद्मश्ननरसनादिकं न कल्प्य’ मिति मूलोत्तरगुणमेदमिमां सर्वा पिण्डैपथाक्विदुर्दि  
 क्यपित्वा—“यस्त्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । कवस्मृपग्रह  
 कर्त्त, धर्मकृते तद्गवेषेयम्” ॥ १ ॥ इत्यादिवाक्यैस्त्वमनुनयदिति भावः ।

स्वस्मिन् कथनसामर्थ्ये भोतरि चानुकूले कथनीयम्, अन्यथा कथनवैयर्थ्या-  
 दित्वाह—अथ वा साम्युत्पत्त्या वाचो गुप्तिः साम्युत्तिः=वाक्यसंयमन मौनमित्यर्थाः,  
 तथा चागुत्पत्त्या उपलक्षितः मौन एव आत्मगुप्तः=आत्मना तिसृभिर्मनागुत्पत्त्यादि  
 मिर्यात् =रक्षितः सन् गोचरस्य=आचारगोचरस्य पिण्डविद्वेषादेः, आनुपूर्व्या=उत्तर

हमारे लिये औपेक्षाक अशन वसनादिक कल्पनिक नहीं है, इस प्रकार  
 मूल गुण और उत्तरगुणोंके भेदसे निम्न ऐसी सम्पूर्ण पिण्डैपणाकी शुद्धि  
 का कथन कर “यस्त्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केव  
 लमुपग्रहकर्त्त, धर्मकृते तद्गवेषेयम् ॥” इत्यादि वाक्योंसे यह मतलावे कि जो  
 आहारादिक वस्तु अवोप होगी वही दूसरोंकी उपकारक होगी, ऐसी उप  
 कारक वस्तु ही मुनियों के लिये उनके धर्मकी वृद्धिमें सहायक होनेसे  
 बेनेयोग्य मानी गई है । यह सब मुनि आचारविषयक कथन तब ही करे  
 कि जब अपनेमें इस आचारको समझानेकी पूर्ण शक्ति-योग्यता हो और  
 सुननेवाला भोता अनुकूल हो । अन्यथा कहनेसे कोई लाभ नहीं  
 होगा । इसी बातको “अथवा चागुत्पत्त्या गोचरस्यानुपूर्व्यां सम्यक्  
 प्रत्युपक्षेत आत्मगुप्तः” इन पदोंसे प्रस्तुत करते हैं—अथवा कथनगुप्ति  
 -कथनसंयम-मौन ही आत्मका गुण है । इस प्रकार मनोगुप्ति भादि तीन  
 गुणियोंसे गुप्त होता हुआ वह साधु पिण्डविद्वि आदिके उत्तम

धर्म है आ प्रकारे मूलशुद्धि होने उत्तरशुद्धिना वेदधी जित जेनी पिंडैपछानी  
 शुद्धि कथन कथी ते अकल्पना मनमां इकता नभावे तेनी वाक्कीनी तेने  
 समभावे “यस्त्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवल मुपग्रहकर्त्त,  
 धर्मकृते तद् गवेषेयम्” इत्यादि वाक्योधी जे अत्तावे के आहारादिक वस्तु अवोप  
 होय ते व नीबने उपकारक जने आवी उपकारक वस्तु व मुनिये भाटे  
 जेगना धर्मनी वृद्धिमां सहायक होवाधी देवा योग्य भावनामां आवेला है आ  
 रीते मुनि आचारविषयक कथन त्पारे व करे के न्यारे जेनामा आचारने  
 समबनवानी पूरा शक्ति-योग्यता होय जने संलग्नतार पक्ष योग्य-पात्र हीय  
 जेन न हीय ते कहेवाधी देउ बाब नहीं जने ज्ञा बातने “अथवा  
 चागुत्पत्त्या” इत्यादि आ पदोधी प्रस्तुत ( १५८ ) करे है अथवा कथन  
 गुप्ति-कथनसंयम-मौन व आभाने शुद्ध है आ रीते मनोगुप्ति आदि

मोत्पादनादिप्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वकं सम्यक् प्रत्युपेक्षेत=तद्गतदोषान् सम्यगन्धारयेत् । भिक्षुः कदाचिदप्यौद्देशिकाहारादिकं न गृह्णीयात्, तदाहारग्रहणास्याकल्प्यत्वं प्रतिपादयेत्, सम्भाषणेनाप्यप्रभाविताशङ्काया मौनमेवावलम्ब्येतेति कर्तुर्लार्थः । सर्वमेवैतन्न मया स्वबुद्धयोच्यत इत्याह—'बुद्धैः'—रिगादि, एतत्=सर्वं पूर्वोक्तमकल्प्याहारादिनिषेधनं वक्ष्यमाण वा बुद्धैः कल्प्याकल्प्यविधानाभिज्ञैः सर्वैः प्रवेदितं=द्वादशपरिपदि प्ररूपितम् ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाणमेव दर्शयति—'से समणुन्ने' इत्यादि ।

उत्पादनादि गत दोषोका प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वक अच्छी तरहसे निश्चय करो तात्पर्य यह कि—भिक्षु कभी भी औद्देशिक आदि आहारको न लेवे । दूसरे जन यदि बलात्कारसे उसे देनेकी हठ करे—आपत्ति विपत्तियां खड़ी करें—तो उनसे बिलकुल भी न घबडावे । मुनिको कैसा आहार कल्पनिक है यह उन्हें समझावे । यदि समझाने पर भी वे न माने तो सर्वोत्तम एक यही उपाय है कि वह मौन रखें ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा है किन्तु यह पूर्वोक्त कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन तथा आगे और भी जो कहना है वह सब कल्प और अकल्पके विधानको जाननेवाले सर्वज्ञ भगवान्ने अपनी १२ प्रकारकी सभामें कहा है ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाण विषयको ही सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करते हैं—  
"से समणुन्ने" इत्यादि ।

त्रयु मुत्तिञ्चोथी गुप्तं रहता ये साधु पिण्डविशुद्धि आदिना उद्दगम उत्पादनादि गत दोषानो प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वक सारी रीतथी निश्चय करे तात्पर्य ये छे के—भिक्षु कदि पणु औद्देशिक आदि आहार न ले गीने भाणुस कही भणत्कारथी येने आपवानी छड पकडे—आपत्ति विपत्तिञ्चो उली करे—त्यारे येनाथी जरा पणु न गलराय मुनि माटे केवो आहार कल्पनिक छे ते येने समजवे येने समजाववा छता पणु ते न माने तो साराभा सारे स्तो मौन धारणु करवानो छे

आ भधु मे मारी बुद्धिथी कदिपत करीने कलु नथी परतु आ पूर्वोक्त कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन, तथा आगण काछ कडेवानु छे ये भधु कल्प येने अकल्पना विधानने जणुवा वाणा सर्वज्ञ भगवाने पातानी १२ प्रकारनी सभामा कडेल छे. (सू० ३)

वक्ष्यमाण विषयने ज सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करे छे—“से समणुन्ने” इत्यादि



शुभम्—से समणुषे असमणुषस्स असण वा ४, वत्थं वा ४  
नो पाइज्जा नो निमतिज्जा नो कुज्जा वेयावद्धियं पर आढाय  
माणे त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स समनोऽसमनोऽद्यायाश्चन वा ४ पक्षं वा ४ नो श्रद्धाभो निमन्त्र-  
यभो ह्यर्पा द्वैयाप्त्यं परमाद्रियमाण इति प्रचीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘स समनोऽ’ इत्यादि, स समनोऽः=पूर्वोक्तोऽनगारः परम्=अल्पपर्यम्  
आद्रियमाणः तैः कृतावरोऽपि गृहपतिसकाशात्केपसमकल्पनीयमेष न गृह्णीयात्  
इत्येष न प्रवेदितं, किन्तु असमनोऽयाय=शाक्यपभृत्तये तत्पूर्वोक्तमाहारादिकं न  
प्रदद्यात् न निमन्त्रयत् न तेषां द्वैयाप्त्यं ह्यर्पात् । ‘इति’ अधिकारसमाप्तीं त्वां  
प्रचीमि=कथयामि ॥ सू० ४ ॥

कीदृशः कस्मै दद्यादित्याह—‘धम्म०’ इत्यादि ।

बह अनगार उन असमनोऽह—शाक्यादिको—द्वारा भक्ष्यत मादत होता  
हुआ भी गृहस्थोके यहाँसे प्राप्त—कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, स्वाद्य  
और स्वाद्य एवं वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोच्छनको उन शाक्यादिकों  
के लिये न देवे न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करें और न उनकी वैपद्य  
हुरि ही करो यहाँ ‘इति’ शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आया है, इस प्रकार  
अधिकारकी समाप्तिमें सुभमास्वामी भी जन्मस्वामीसे कहते हैं—

साधु गृहस्थोसे सिर्फ अकल्पनीय आहारादिकका ग्रहण न करे  
इतना ही नहीं किन्तु जो कल्पनीय आहारादिक ग्रहण किये गये हैं, वे  
कल्प शाक्यादिकों को प्रदान भी न करे ॥ सू ४ ॥

‘कैसा होकर किसके लिये उन्हें दे’ इसे प्रकट करते हैं—‘धम्म०’ इत्यादि ।

जो अनगार ते असमनोऽह—शाक्यादिको प्राप्त कल्पत आदत भयेत पक्ष  
गृहस्थोने त्वांभी प्राप्त कल्पनिक आहारादिक अशन पान, स्वाद्य अने स्वाद्यतथा  
वस्त्र, पात्र, कम्बल अने पादप्रोच्छन, जो शाक्यादिकोने न आप्ते, कथवा ते  
जो अने आप्तेवा भाटे न आमंत्रण आप्ते, कथवा तो न तेनी वैयावत्स्य करे  
अर्थात् ‘इति’ शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आप्ते छे अथ प्रकार अधिकारकी समा  
प्तिमें भी सुभमास्वामी भी जन्मस्वामीने कहे छे—

साधु गृहस्थो पासेभी इत्त अकल्पनीय आहारादिक स्वीकार न करे आदतुं  
नकि परन्तु कल्पनीय आहारादिक स्वीकारके उद्यमे ते अथ शाक्यादिकोने आप्ते  
पक्षु नकि ( सू ४ )

“देवा अर्थात् देने भाटे आप्ते” अने प्रकट करे छे—‘धम्ममायाजह’ इत्यादि ।

मोत्पादनादिप्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वकं सम्यक् प्रत्युपेक्षेत-तद्गतदोषान् धारयेत् । भिक्षुः कदाचिदप्यौद्देशिकाहारादिकं न गृह्णीयात्, तदाहारः कल्प्यत्वं प्रतिपादयेत्, सम्भाषणेनाप्यप्रभाविताशङ्काया मौनमेवावत्त्वन्तर्लार्थः । सर्वमेवैतन्न मया स्वबुद्धयोच्यत इत्याह-‘बुद्धै’-रित्यादि, एतत्-मकल्प्याहारादिनिषेधन वक्ष्यमाणं वा बुद्धैः कल्प्याकल्प्यविधानानि प्रवेदितं=द्वादशपरिपदि प्ररूपितम् ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाणमेव दर्शयति-‘से समणुन्ने’ इत्यादि ।

उत्पादनादि गत दोषोंका प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वक अच्छी तरह से तात्पर्य यह कि-भिक्षु कभी भी औद्देशिक आदि आहारको जन यदि बलात्कारसे उसे देनेकी हठ करे-आपत्ति विपत्ति-तो उनसे बिलकुल भी न बचडावे । मुनिको कैसा अहंकार है यह उन्हें समझावे । यदि समझाने पर भी वे न माने एक यही उपाय है कि वह मौन रखें ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा पूर्वोक्त कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन तथा आगे कहना है वह सब कल्प और अकल्पके विधानको जानने भगवान्ने अपनी १२ प्रकारकी सभामें कहा है ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाण विषयको ही सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित “से समणुन्ने” इत्यादि ।

पद्य सुसिद्धोत्थी सुप्त रहेता ये साधु पिबुडविशुद्धि आदिना उद्गृत होयेना प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वक सारी रीतथी निश्चय करे के-भिक्षु कदि पद्य औद्देशिक आदि आहार न ले जांजे भाषुस के अने आपवानी छठ पकडे-आपत्ति विपत्तिया उली करे-त्यारे अने न गलशय मुनि भाटे केवो आहार कल्पनिक छे ते अने समं जववा छता पद्य ते न माने तो साराभा सारा रस्तो मौन धारा

आ जधुं रे भारी बुद्धिथी कल्पित करीने कछु नथी पर कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन, तथा आगण काई कडेवा कल्प अने अकल्पना विधानने भाषुवा वाणा सर्वज्ञ भगवाने पोता सलाभा कडेल छे. ( सू० ३ )

वक्ष्यमाण विषयने ज सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित “से समणुन्ने” इत्यादि

नीत ' मा=सर्वतो जानीत=बुद्धपञ्च रूपमिति शेषः । ' इति प्रचीमि '—स्यस्वार्थं  
स्तुक्त एवेति ॥ सू० ५ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-२ ॥



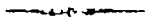
धर्मको हे शिष्यो ! तूम सप सर्व प्रकारसे समझो । इति प्रचीमि इन  
पदोक्त अर्थ पहिले उद्देशोमें कहा जा चुका है ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवा अध्यायनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥



शिष्ये । तमे अपञ्च सारी रते समझे " इति प्रचीमि " आ पदोने अर्थ पदेवान्ना  
वश्येना उद्देशार्थ जयेव छे (सू० ५)

आठवा अध्यायनने। जीजे उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥



सूलम्—धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया समणुत्ते  
समणुत्तस्स असणं वा ४ वत्थं वा ४ पाण्डजा निमंतेज्जा कुजा  
वेयावडियं परं आढायमाणे त्तिवेमि ॥सू० ५ ॥

छाया—धर्ममाजानीत प्रवेदितं माहनेन मतिमता समनोऽः समनोज्ञायाशनं वा  
४ वस्त्र वा ४ प्रदधात् निमन्त्रयेत् कुर्या द्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥५॥

टीका—‘ धर्म ’—मित्यादि, परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः तस्यादरं कुर्वन्  
समनोज्ञैराहतो वा स समनोऽः=अनगरः उद्यतविहारी समनोज्ञाय=परस्मै सम्प-  
दर्शनादिमते सविग्नाय साम्भोगिकायैकसामाचारीप्रविष्टाय मुनये अशनं वा चतुर्वि-  
धमाहार वस्त्रादिक प्रदधात्, निमन्त्रयेत्, वैयावृत्त्यं=सुश्रूषां वा कुर्यात्। गृहस्थेभ्यः  
केवलमकल्पनीयाऽऽहारादिग्रहणस्यैव प्रतिषेधः, असमनोज्ञेभ्यस्तु न ग्राह्यं नापि  
तस्मै देयमिति भावः। इत्येवं माहनेन मतिमता=भगवता महावीरेण प्रवेदितं=  
प्ररूपित धर्म=पूर्वोक्तमशनादिग्रहणविधिनिषेधप्रतिपादकं साध्वाचाररूपम् ‘ आज्ञा-

समनोज्ञोका आदर करता हुआ, अथवा समनोज्ञोसे आहत होता  
हुआ वह उद्यतविहारी साधु सम्पदर्शनादिमें संविग्न—एक सामाचारीके  
पालन करनेमें प्रविष्ट—अन्य मुनिजनोंके लिये चार प्रकारके अशन और  
चार प्रकारके वस्त्रादिक देवे, उन्हें देनेके लिये आमन्त्रित करे, और उनकी  
वैयावृत्त्यं—सुश्रूषा भी करे। गृहस्थोंके पाससे केवल अकल्पनीय आहा-  
रादिक एव वस्त्रादिक ले लेनेका ही निषेध है—कल्पनीयका नहीं, परंतु  
असमनोज्ञोसे तो उन्हें न वह लेवे और न उन्हें वह देवे। इस प्रकार  
मतिमान्—केवलज्ञानी श्री महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त  
अशनादिके ग्रहणकी विधि और निषेधका प्रतिपादक साधुके आचाररूप

समनोज्ञोको आदर करता अथवा समनोज्ञोसे आहत होता अथवा उद्यतविहारी  
साधु सम्पदर्शनादिमा संविग्न—एक सामाचारीके पालन करवाना प्रविष्ट—अन्य  
मुनिजनों भाटे चार प्रकारका अशन अने चार प्रकारका वस्त्रादिक दे, अने  
आपका भाटे आमन्त्रण आपे अने अने वैयावृत्त्यं—सुश्रूषा पद्य करे गृह-  
स्थोनी पासोसे केवल अकल्पनीय आहारादिक अने वस्त्रादिकने लेवानो निषेध छे  
अकल्पनीयनो नहीं, परंतु असमनोज्ञो पासोसे न तो ले के न अने आपे आ  
प्रकारे मतिमान्—केवलज्ञानी महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त अशन  
दिना अकल्पनी विधि अने निषेधका प्रतिपादक साधुका आचाररूप धर्मने छे

મધ્મ-મજ્જિમેણ વયસાધિ પગે સંબુજ્જમાણા સમુટ્ટિયા સુચ્ચા મેહાવી વયણ પટ્ટિયાણ નિસામિયા સમિયાપ્પ ધમ્મે આરિપર્હિ પવેહ્પ, તે અણવકલ્લમાણા અણહ્વાપમાણા અપરિગ્ગ હેમાણા નો પરિગ્ગહાવતિ સવ્વાવતિ ચ ણ લોગસિ વિહાય દહ પાણેર્હિ પાવ કમ્મ અકુલ્લમાણે પ્પસમહ્ અગથે વિયાહિપ્પ, ઓપ્પ જુહ્મસ્સ સ્વેયણ્ણે ઉવવાય વ્વયણ ચ નચ્ચા ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—મધ્યમેન વયસાઽપ્યકં સંબુદ્ધમાનાઃ સમુત્પિતા, મુક્ત્વા મેષાધી વર્ષનં પશ્ચિતાનાં નિદ્રમ્ય સમતયા વર્ષં માર્થઃ પ્રવેદિત, ઠેઽનમિક્ષ્ણન્તઃ ધનવિપા તયન્તાઽપરિચ્છન્તઃ નો પરિચ્છન્તઃ સર્વસ્મિન્નાપ ચ સ્વલ્લ સાક વિશાય દષ્ટં પ્રાપ્તિપુ પાપં કર્માઽકુર્વાંઃ પપ મહાન્ અપ્પ્યા ધ્યાસ્યાતઃ, માજો યુતિમતઃ સ્વેદહ્ ઉપવાત વ્યવનં ચ દ્વાસ્વા ॥ મૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘મધ્યમેને’—સ્વાદિ, મધ્યમેન વયસા—યૌવન—નાર્દ્યવયાવિરિષ્ઠેન તપઃ સંયમાચરણયોગ્યેનાવસ્થાવિશ્લેષેણ સંબુદ્ધમાનાઃ—સયમાચરણાય વૌષં પ્રસા પક્કે—કેવન સ્મૃત્વિતાઃ—પૂર્ણીતપમગ્ન્યાઃ મુનયો મરન્તિ । અથ પ્રથમ—દ્વિતીયાવસ્થાદ્યૈ વિશાય મધ્યમસ્રજ્જ્વાલ્યાયદ્વસ્તસ્મિન્ વયસિ નિવૃત્તકામાભિલાપા નિર્બિઞ્ન રત્નવ્રયા-રામને વક્તિસમ્પન્ના મરન્તીતિ ઘોષિતમ્ ।

યૌવન એક શુદ્ધ અવસ્થાસે નિશ્ચ અવસ્થાવિશેષકા નામ મધ્યમ અવસ્થા છે । યહ અવસ્થા હી પ્રમાનતયા તપ ઔર સંયમકે યોગ્ય માની ગઈ છે । હસ અવસ્થાસે સંયમકે આચરણકે સિયે વૌષકો પ્રાપ્ત હુમા કોઈ ૨ મનુષ્ય વીક્ષા છેકર મુનિ હો જાતે હૈ । સુબ્રમે પ્રથમ ઔર તૃતીય, હન વોનો અવસ્થાઓકો છોડકર જો મધ્યમ અવસ્થાકા પ્રહુણ કિયા છે ઉસસે યહ વાત માહુમ્ હોતી છે કિ પ્રાયઃ કર હસ અવસ્થામે કામકી અભિલાપાસે નિવૃત્ત હો કર પ્રાણી નિર્બિઞ્ન રૂપસે રત્નવ્રયાકી આરાધના કરને મેં શક્તિશાલી હોતે હૈ ।

યૌવન અને વૃદ્ધ અવસ્થામાં વ્યક્તિની અવસ્થાનું નામ મધ્યમ અવસ્થા છે, જે અવસ્થા ન આસ કરી તપ અને સયમ માટે યેજ્ઞ માનવમાં વ્યવેશ છે; જે અવસ્થામાં સયમના વ્યવસ્થા માટે જોધને પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ મનુષ્ય વીક્ષા હઈ મુનિ અને છે. સુવમાં પ્રથમ અને ત્રીજી વ્ત વ-ને અવસ્થાઓને છેડી જે મધ્યમ અવસ્થા નામી કરવામાં આવી છે આથી જે વાત માહુમ પટે છે કે આસ કરી જે અવસ્થામાં કામની અભિલાષાથી નિવૃત્ત વની પ્રાણી નિર્બિઞ્ન રૂપથી રત્નવ્રયાની આરાધના કરવામાં યજ્ઞિયાણી હોય છે.

## । अथाष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः।

अभिहितो द्वितीयोद्देशः, साम्प्रत तृतीय आरभ्यते, अस्य च पूर्वोद्देशेन सहाय सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे चाकल्पनीयाशनादिग्रहणनिषेध उक्तः, अत्र च गृहपतिः कदाचिच्छीतादिना प्राप्तप्रकम्प भिक्षाद्यर्थमागत भिक्षु पृच्छति—‘कामचेष्टयैव भवच्छरीर कम्पते ?’ इति तस्य गृहपतेरसदाशङ्का मुनिर्दूरीकृष्यात्, ‘शीतादिना मम गात्र कम्पते नान्यथे’—ति प्रतिपादयिष्यते, तत्र मध्यमानस्थायां शीतप्रवेपितगात्रप्रसङ्गात्तस्य वयसः सयमाचरणयोग्यता प्रथममुत्रेणोपदर्शयति—‘मज्झिमेण’ इत्यादि।

## आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश।

द्वितीय उद्देश कहा। अब तृतीय उद्देश कहा जाता है, इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—वहाँ साधुके लिये अकल्पनीय अशनादि ग्रहण करनेका निषेध किया है, इस उद्देशमें यह बतलाया जायगा कि अपने घर आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त आये हुए मुनिको कोई भद्र गृहस्थ कदाचित् शीतादि कारणवश प्रकम्पित होते देख पूछे कि “कामकी चेष्टासे ही आपका शरीर कांप रहा है क्या ?” तब साधुका कर्तव्य है कि वह इस प्रकारकी गृहस्थकी असत्-खोटी आशकाका निवारण करे और कहे कि “शीतादिक निमित्तसे ही मेरा शरीर कांप रहा है अन्य कारणसे नहीं।” उसमें सर्व प्रथम मध्यम अवस्थामें शीत से कपित शरीरके प्रसंगसे उस अवस्था की सयमके आचरणकी योग्यता को सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘मज्झिमेण’ इत्यादि।

## आठमा अध्ययनना त्रीजे उद्देश

शीजे उद्देशे कडेवाच गयेल छे, डवे त्रीजे उद्देशे कडेवाभा आवे छे आ उद्देशेने पूर्व उद्देशे साथे जेवो सणध छे—साधुने अकल्पनीय अशनादि अडधु करवानो जेभा निषेध करवाभा आवेल छे आ उद्देशेभा जे जताववाभा आवरी के पोताने घेर आडाशति अडधु करवा निमित्ते आवेला मुनिने डोर्धे लद्र गृहस्थ ठडीना कारखे थरथरता जोर्धे पूछे के “कामनी जेष्टाथी आ शरीर कपी रहु छे के शुं ?” त्तारे साधुनु जे कर्तव्य छे के तेखे पेला गृहस्थनी जोटी शकतु निवारण करतु जने कडेपु के—“ठडीना कारखे भाइ शरीर कपी रहु छे जीनु डोर्धे कारखे नथी” आभा सर्व प्रथम मध्यम अवस्थाभा ठडीथी कपता शरीरना प्रसगधी जे अवस्थाभा सयमना आचरणनी योग्यताने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—“मज्झिमेण” इत्यादि

धम्म—मज्झिमेण वयसाधि एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिया सुच्चा मेहाधी वयण पडियाण निसामिया समियाए धम्मो आरिपहिं पवेइए, तेअणवकस्वमाणाअणइवाएमाणा अपरिग्ग हेमाणा नो परिग्गहावति सठ्वावति च ण लोगसि विहाय दइ पाणेहिं पाव कम्म अकुव्वमाणे एसमह अगंथे वियाहिंए, ओए जुइमस्स खेयझे उववाय चवणं च नच्चा ॥ सू० १ ॥

छाया—मध्यमेन वयसाऽप्यकं संबुद्धयमानाः समुत्थिताः, भुत्वा मेधाधी वषनं पश्चितानां निश्चम्य समतया धर्मं आर्यैः प्रवेदितं, तेष्वनभिकाहन्तः अनतिपा तयन्तोऽपरिसुहन्तः नो परिग्रहन्त सर्वस्मिन्नाप च स्वसु लोके विहाय दण्डं प्राप्सिपु पाप कर्माऽकुर्वाणः एव महान् अग्र्यो ब्याम्भ्यातः, भावो पुतिमतः खेदज्ञः उपपात प्यभनं च ज्ञात्वा ॥ सू० १ ॥

टीका—‘मध्यमेन’—स्यादि, मध्यमेन वयसा—यौवन—वर्द्धक्यातिरिक्ततन तथा संयमाचरणयोग्यनामस्यानिश्चयेन संबुद्धयमानाः=संयमाचरणाय बोधं प्राप्त्वा एकैकेषु केषुन समुत्थिताः=श्रीतभद्रस्याः मुनयो भवन्ति । अथ प्रथम—द्वितीयावस्थाद्वयं विहाय मध्यमप्रवृत्त्यात्मायष्वस्तस्मिन् क्वसि निवृत्तकामाभिज्ञाया निर्विघ्नं रत्नप्रापराधने शक्तिसम्पन्ना भवन्तीति द्योतितम् ।

यौवन एवं वृद्ध अवस्थासे मिला अवस्थाविशेषका नाम मध्यम अवस्था है । यह अवस्था ही प्रधानतया तप और संयमके योग्य मानी गई है । इस अवस्थासे संयमके आचरणके सिधे बोधको प्राप्त हुआ कोई २ मनुष्य वीक्षा लेकर मुनि हो जाते हैं । सूत्रमें प्रथम और तृतीय, इन दोनों अवस्थाओंको छोड़कर जो मध्यम अवस्थाका ग्रहण किया है उससे यह बात मालूम होती है कि प्रायः कर इस अवस्थामें कामकी अभि लापासे निवृत्त हो कर प्राणी निर्विघ्न रूपसे रत्नत्रयकी आराधना करने में शक्तिशाली होते हैं ।

यौवन जने वृद्ध अवस्थाधी वप्येनी अवस्थानु नाम मध्यम अवस्था छ जे अवस्था क जान करी तप जने सवम माटे योग्य मानवामा आवेत छ, जे अवस्थाभां सवमना अवस्थु माटे बोधने प्राप्त वयेत कोर कोर मनुष्य वीक्षा लर मुनि जने छे सूत्रभां प्रथम जने त्रीण ज्ञा जने अवस्थाकोने छेदी जे मध्यम अवस्था नकी इत्याभां आवी छे जाधी जे वात माहुरम पडे छे इ प्राय करी जे अवस्थाएव कामनी जकिवापधी निवृत्त जनी मध्यी निर्विघ्न रूपधी रत्नत्रयनी आराधना इत्याभां शक्तिशाली होव छे ।

અગ્રાય વિશેષ:-૩હ સમ્યુદ્ધયમાના:-સ્વયંબુદ્ધા: પ્રત્યેકબુદ્ધા: બુદ્ધવોધિતાશ્વેતિ ત્રિવિધા: સન્તિ, તેષુ બુદ્ધવોધિતાનામેવાગ્રાધિકારોઽસ્તિ, તમેવાવલ્કલ્ય દર્શયતિ- 'શ્રુત્વે' -તિ-મેધાવી-રત્નત્રયારાધનફલાભિન્ન: પણ્ડિતાના=તીર્થઙ્કર-ગણધરાદીના વચનમ્ ઇષ્ટાનિષ્ટપ્રાપ્તિપરિહારપ્રતિપાદકમાગમ શ્રુત્વા=સમારૂપ્ય તતો નિશમ્ય=હૃદયેઽવધાર્ય ચ સમતામાશ્રયેત્ । યતો ધર્મઃ=શ્રુત-ચારિત્રલક્ષણ: સમતયા=સર્વપ્રાણિણુ સમભાવેન ઔર્યઃ=તીર્થઙ્કર-ગણધરૈ: પ્રવેદિતઃ=દ્વાદશવિધપરિપદિ પ્રલપિતઃ। તેપામેવ કર્તવ્યં નિર્દિશતિ-'તે' ઇત્યાદિના, તે=સમ્યુદ્ધયમાના: સમુદ્યતા: સન્તઃ અનવકાલ્પન્તઃ=શબ્દાદિવિપયમનિચ્છન્તઃ અતિપાતયન્તઃ=પ્રાણિણાણવ્યપરોપણમકુ-

યદ્વાં ઇતના વિશેષ હૈ-સબુદ્ધયમાન જીવ તી પ્રકારકે હૈ-૧ સ્વયમ્બુદ્ધ, ૨ પ્રત્યેકબુદ્ધ, ઔર ૩ બુદ્ધવોધિત । ઇનમૈં જો બુદ્ધવોધિત હૈ ઁનકા હી યદ્વાં અધિકાર હૈ, અતઃ ઁસી અધિકારકી લે કર કહતે હૈ "શ્રુત્વા" ઇત્યાદિ, રત્નત્રયકી આરાધનાજન્ય ફલકા જાતા વહ મેધાવી-તીર્થઙ્કર ઔર ગણધરાદિકોંકે ઇષ્ટ ઔર અનિષ્ટકી પ્રાપ્તિ ઔર પરિહારકે પ્રતિપાદક આગમસ્વરૂપ વચન સુન કર, ઔર ઁન્હે હૃદયમૈં ધારણ કર સમસ્ત જીવોમૈં સમતાભાવ ધારણ કરે । કયો કિ શ્રુતચારિત્રલક્ષણરૂપ હી ધર્મ હૈ ઔર યહ સમસ્ત જીવોમૈં સમભાવરૂપસે રહને સે હી પ્રાપ્ત હોતા હૈ, ઁસા તીર્થઙ્કર ઔર ગણધરાદિ દેવોને વારહ પ્રકારકી સમામૈં કહા હૈ । બુદ્ધવોધિતોં કે કર્તવ્યોકો દિશ્વલાનેકે નિમિત્ત સૂત્રકાર 'તે અણવકંચમાણા' ઇસ સૂત્રાંશકા કથન કરતે હૈ-ઁ બુદ્ધવોધિત જીવ પ્રવ્રજ્યા ધારણ કરનેકે લિયે ઉચ્ચત હોતે હુણ શબ્દાદિક વિષયોંકી

આમા એટલુ વિશેષ છે-સબુદ્ધયમાન ૭વ ત્રણ પ્રકારના છે ૧ સ્વયંબુદ્ધ, ૨ પ્રત્યેકબુદ્ધ, ૩ બુદ્ધવોધિત આમા ૭ બુદ્ધવોધિત છે એનોજ અર્થ અધિકાર છે આથી એ અધિકારને લઈ સૂત્રકાર કહે છે-"શ્રુત્વા" ઇત્યાદિ રત્નત્રયની આરાધનાજન્ય ફળના બલુનાર એ મેધાવી-તીર્થઙ્કર-અને ગણધરાદિકોના ઇષ્ટ અને અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ અને પરિહારના પ્રતિપાદક આગમસ્વરૂપ વચન સાંભળી અને તેને હૃદયમા ધારણ કરી સમસ્ત ૭વોમા સમતાભાવ ધારણ કરે કેમ કે શ્રુતચારિત્રલક્ષણરૂપ જ ધર્મ છે, અને તે સમસ્ત ૭વોમા સમભાવરૂપથી રહેવાથી પ્રાપ્ત થાય છે એલુ તીર્થઙ્કર અને ગણધર આદિ દેવોએ ખાર પ્રકારની સભામા કહ્યુ છે બુદ્ધવોધિતોના કર્તવ્ય અતાવવા માટે સૂત્રકાર "તે અણવકંચમાણા" આ સૂત્રાશથી કથન કરે છે-આ બુદ્ધવોધિત ૭વ પ્રવ્રજ્યા ધારણ કરવા માટે ઉચ્ચતી બનીને શબ્દાદિક વિષયોની આહવાથી રહિત બનીને





वा खेदज्ञः, खेदगद्गोऽत्र स्वरूपार्थप्रतिबोधकस्तेन मोक्ष-संयमयोः स्वरूपपरि-  
ज्ञातेत्यर्थः । देवलोकेऽपि उपपातं च्यवन चकारान्नर-नरक-तिर्यग्जन्म-मरणादिदुःख  
ज्ञात्वा=बुद्ध्वा पापकर्म नैव कुर्यात् ॥ सू० १ ॥

हो 'द्युतिमत'—मोक्ष और उसके साधन-संयम-के 'खेदज्ञ' स्वरूपका परिज्ञाता होता है, संसारके साधनोंका नहीं, कारण कि यह इस यातको अच्छी तरह जान चुका है कि संसारमें इस जीवको कभी सच्ची सुखशांति नहीं मिल सकती है, देवगतिमें भी जीवको जन्म और मरण करना पड़ता है, मनुष्यगति, नरकगति और तिर्यग्जगतिमें भी यही परिस्थिति है । यहाँ पर भी जीव जन्म और मरणके दुःखोंसे रहित नहीं है, इसलिये इन समस्त सांसारिक दुःखोंसे छुड़ानेवाला यदि कोई है तो, वह इनका अभावस्वरूप एक मोक्ष है, और मोक्षकी प्राप्तिका कारण एक संयम है अतः यह मोक्ष और संयमके स्वरूपका ज्ञाता बनकर उसी ओर अपनी प्रवृत्तिको लगाता रहता है और पापकर्मोंसे सर्वथा जुदा रहता है, इसी आशयको सूचित करनेके लिये "ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः उपपातं च्यवन च ज्ञात्वा" यह कहा है ।

खेदज्ञ—खेद शब्दका अर्थ स्वरूप है, उसके ज्ञाताका नाम खेदज्ञ है । मध्यम अवस्थामे संयमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुए कोई २ जीव दीक्षा ले कर मुनि हो जाते हैं । तीर्थङ्करादिप्रतिपादित वचन-

—मोक्ष अथवा तेना साधन-संयम-ना 'खेदज्ञ' स्वरूपना ज्ञातुंकार होय छे-  
संसारना साधनोना नखि, कारखु के अथवा वातने सारी रीते ज्ञाती बुद्धेले छे के  
संसारमा अथवा लुवने कही पखु साची सुख शांति भणी शकती नथी  
देवगतिमा पखु लुवने जन्म अने मरखु करवा पडे छे मनुष्यगति,  
नरकगति, अने तिर्यग्जगतिमा पखु आवी न परिस्थिति छे—त्या पखु  
लुव जन्म अने मरखुना दुःखोथी रहित नथी, माटे अथवा समस्त सांसारिक  
दुःखोथी होखववावाणा जे कोरि होय तो ते तेना अभावस्वरूप अथे मोक्ष न छे,  
अने मोक्षनी प्राप्ति संयमथी न भेजवी शकय छे मोक्षनी प्राप्तिनु कारखु अथे  
संयम छे माटे मोक्ष अने संयमना स्वरूपना ज्ञाता जनी तेना तरह पेतानी  
प्रवृत्तिने लगाडे छे अने पाप कर्मोथी सर्वथा जुदा रहे छे अथवा आशयने सम  
जववा माटे "ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः उपपातं च्यवन च ज्ञात्वा" अथवा कखु छे  
खेदज्ञ—जेह शब्दने अर्थ अथवा स्थणे स्वरूप छे, तेना ज्ञातानु नाम जेहस छे

मध्यम अवस्थामे संयमना आचरण माटे प्राप्त थयेले कोरि कोरि लुव  
दीक्षा लधने मुनि जनी जय छे तीर्थङ्करादिप्रतिपादित वचननुप आगभनु

मध्यमे वयसि प्रवृत्तिता अप्यन्य परीपहेन्द्रियैर्ग्रायन्तीत्याह—‘आहारो०’ इत्यादि।  
 मध्यम—आहारावचया देहा परीसहपमगुरा, पासह एगे  
 सर्त्विदिपहिं परिगिलायमाणेहिं ओए दय दयइ ॥सू०२ ॥

उाया—आहारोपचया देहाः परीपहमगुराः पश्यत एके सर्वेन्द्रियैः परि  
 स्थायमानैः भाजो दया दयते ॥ सू० २ ॥

टीका—‘आहारोपचये’—स्यात्, ‘आहारोपचया’ आहारेण=भक्षणादिना  
 उपचयो इन्द्रियेषां ते आहारोपचयाः ‘परीपहमगुराः’ परीपहेण=ध्रुपारूपेण

स्य आगमके भवण एषं मनन से समस्त जीवों में समता धारण करने  
 से ही भुक्तचारित्रस्य धर्मकी प्राप्ति होती है, ऐसे दृढ़ विश्वास से शब्दा-  
 दिक विषयों की ओर नहीं जा कर अठारह प्रकारके पापस्थानकोंका परि-  
 त्याग कर अपने गृहीत चारित्रकी लज्जबलता करने निमित्त समस्त परिग्रहसे  
 रहित बन राग और द्वेषसे रहित होनेके लिये मोक्ष और उसके साधनों  
 को जानने की ओर ही अघेसर होते हैं ॥सू०१॥

मध्यम वयमें दीक्षित होने पर भी कोई एक मुनि परीपह और  
 इन्द्रियोसे दुग्मित होते हैं, इस विषयको क्तानेके लिये सूत्रकार  
 कहते हैं—‘आहारोपचया’ इत्यादि ।

प्राणियोकि शरीर “आहारोपचया” आहार—अशन आदिसे उपचय  
 —वृद्धि को प्राप्त होनेवाले तथा “परीपह प्रमगुराः” ध्रुपारूप परीपहसे  
 पिनदानशील होते हैं ।

तात्पर्य यह कि—प्राणियोका औदारिक शरीर आहारसे वृद्धिगत और

अप्यु तेमच मननधी समस्त लवोग्य समता धारण इत्यादी व सुतस्मृतिरूप  
 धर्मनी प्राप्ति थाय है जेवा दृढ़ विश्वासधी ते शब्दादिके विषयोंनी तरह नवीं  
 कर्ता अहार प्रदास्त पापस्थानेने पस्वियज करी पीताना नृहीन चारित्रने विम्वय  
 इत्य निमित्त समस्त परिग्रहधी स्थित बनी राग अने द्वेषधी पर अनवापी  
 मोक्ष अने तेन साधने लवलुबानी तरह व अघेसर थाय है. (सू १)

मध्यम वयमा दीक्षित अनवापी पयु केई जेके मुनि परिग्रह अने  
 इन्द्रियोधी दुग्मित थाय है अ विषयने अत्तावना माे सूत्रकार भेके है—  
 “आहारोपचया” इत्यादि.

प्राणीभ्यानु शरीर “आहारोपचयाः आहार—अशन—आदिसे उपचय—वृद्धिने  
 प्राप्त भवत्य तथा—“ परीपहप्रमगुराः ” ध्रुपारूप परित्तधी स्थान होय है

तात्पर्य जे है है—प्राणीभ्यानु औदारिक शरीर आहारसे वृद्धिगत अने

वा खेदज्ञः, खेदशब्दोऽत्र स्वरूपार्थप्रतिबोधकस्तेन मोक्ष-सयमयोः स्वरूपपरि-  
ज्ञातेत्यर्थः । देवलोकेऽपि उपपातं च्यवन चकारान्नर-नरक-तिर्यग्जन्म-मरणादिदुःख  
ज्ञात्वा=बुद्ध्या पापकर्म नैव कुर्यात् ॥ सू० १ ॥

हो 'द्युतिमतः'—मोक्ष और उसके साधन-सयम-के 'खेदज्ञ' स्वरूपका  
परिज्ञाता होता है, ससारके साधनोंका नहीं, कारण कि यह इस  
जातको अच्छी तरह जान चुका है कि संसारमें इस जीवको कभी सच्ची  
सुखशांति नहीं मिल सकती है, देवगतिमें भी जीवको जन्म और मरण  
करना पड़ता है, मनुष्यगति, नरकगति और तिर्यग्जगतिमें भी यही परि-  
स्थिति है । यहाँ पर भी जीव जन्म और मरणके दुःखोंसे रहित नहीं है,  
इसलिये इन समस्त सांसारिक दुःखोंसे छुड़ानेवाला यदि कोई है तो,  
वह इनका अभावस्वरूप एक मोक्ष है, और मोक्षकी प्राप्ति का कारण  
एक सयम है अतः यह मोक्ष और सयमके स्वरूपका ज्ञाता बनकर उसी  
ओर अपनी प्रवृत्तिको लगाता रहता है और पापकर्मोंसे सर्वथा जुदा  
रहता है, इसी आशयको सूचित करनेके लिये "ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः  
उपपातं च्यवन च ज्ञात्वा" यह कहा है ।

खेदज्ञ—खेद शब्दका अर्थ स्वरूप है, उसके ज्ञाताका नाम खेदज्ञ  
है । मध्यम अवस्थामें संगमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुए कोई २  
जीव दीक्षा ले कर मुनि हो जाते हैं । तीर्थङ्करादिप्रतिपादित वचन-

—मोक्ष अथवा तेना साधन-सयम-ना 'खेदज्ञ' स्वरूपना ज्ञानुकार होय छे-  
स सारना साधनेना नहि, कारण छे अथवा वातने सारी रीते ज्ञानु बुद्धि छे के  
स सारना अथवा लवने कही पणु सारी सुख शांति भणी शकती नही  
देवगतिना पणु लवने जन्म अने मरण करवा पडे छे मनुष्यगति,  
नरकगति, अने तिर्यग्गतिना पणु आवी न परिस्थिति छे—त्या पणु  
लव जन्म अने मरणना दुःखी रहित नही, माटे अथवा समस्त सांसारिक  
दुःखी छे अववावाणा जे केह होय तो ते तेना अभावस्वरूप अथवा मोक्ष न छे,  
अने मोक्षनी प्राप्ति सयमथी न भेगवी शकय छे मोक्षनी प्राप्तिनु कारण अथवा  
सयम छे माटे मोक्ष अने सयमना स्वरूपना ज्ञाता जनी तेना तरङ्ग पीतानी  
प्रवृत्तिने लगाडे छे अने पाप कर्मोंथी सर्वथा जुदा रहे छे अथवा आशयने सम  
जववा माटे "ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः उपपातं च्यवन च ज्ञात्वा" अथवा कणु छे  
खेदज्ञ—जेह शब्दना अर्थ अथवा स्थणे स्वरूप छे, तेना ज्ञातानु नाम जेदज्ञ छे

मध्यम अवस्थाभा सयमना आचरणु माटे प्राप्त थयेल केह केह लव  
दीक्षा लधने मुनि जनी जय छे तीर्थङ्करादिप्रतिपादित वचनरूप आगमनु

मध्यमे वयसि प्रव्रजिता अप्यन्ये परीपहन्द्रियैर्म्हापन्तीत्याह—‘आहारो०’ इत्यादि।

मूत्रम्—आहारोषचया दहा परीसहपमगुरा, पासह एगे सर्व्विदिपहिं परिगिलायमाणेहिं ओष द्य द्यइ ॥सू० २ ॥

छाया—आहारोषचया दहाः परीपहममगुरा पश्यत एक सर्व्वेन्द्रियैः परि स्थापमानैः भानो द्यां इयते ॥ सू० २ ॥

टीका—‘आहारोषचय’—स्यादि, ‘आहारोषचया’ आहारेण=अन्ननादिना उपचयो इन्द्रियेषां ते आहारोषचया ‘परीपहममगुरा’ परीपहेण=धुधारूपेण

रूप आगमके अचण एधं मनन से समस्त जीवों में समता धारण करन से ही धुतचारित्ररूप धर्मकी प्राप्ति होती है, ऐसे हड़ विश्वास से शब्दादिक विषयों की ओर नहीं जा कर अठारह प्रकारके पापस्थानकोंका परि त्याग कर अपने गृहीत चारित्रकी उज्ज्वलता करने निमित्त समस्त परिग्रहसे रहित पन राग और द्वेषसे रहित होनेके लिये मोक्ष और उसके साधनों को जानने की ओर ही अघेसर होते हैं ॥सू० २॥

मध्यम वयमें दीक्षित होने पर भी कोई एक मुनि परीपह और इन्द्रियोसे दुःखित होते हैं, इस विषयको पतानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘आहारोषचया’ इत्यादि ।

प्राणियोंके शरीर “आहारोषचया” आहार-अशन आदिसे उपचय-वृद्धि को प्राप्त होनेवाले तथा “परीपहप्रमगुरा” धुधारूप परीपहसे विनदानशील होते हैं ।

तात्पर्य यह कि—प्राणियोंका औदारिक शरीर आहारसे वृद्धिगत और

अपव्यु तमश्च मननधी समस्त लभेमा समता धारण इत्याधी न धुतचारित्ररूप धर्मनी प्राप्ति भाव्ये ते केवा एह विश्वासधी ते शब्दादिक विषयानी तश्च नदीं शर्ता अक्षर प्रकारका पापस्थानानां परित्याग इरी पीताना वृद्धीन आदिने उज्ज्वलता इत्या निमित्त समस्त परिग्रहधी रहित वनी राज जने द्वेषधी पर जनवाधी मोक्ष जने तेनां साधनां व्यवधानी तश्च न अक्षर भाव्ये ते (सू १)

मध्यम वयमा दीक्षित जनवाधी पव्यु केवल्येक मुनि पश्चिद्व जने इन्द्रियोधी दुःखित भाव्ये ते आ विषयने लतावया भाटे स्तकार इहे ते— ‘आहारोषचया’ इत्यादि।

प्राणीजोना शरीर, “आहारोषचया” आहार-अशन आदिसे उपचय-वृद्धिने प्राप्त वन्यत तथा—“परीपहप्रमगुरा” धुधारूप पश्चिदधी भवान् जेव जे।

तात्पर्य जे ते हे—प्राणीजोना औदारिक शरीर आहारधी वृद्धिगत जने

પમદ્ગુરાઃ=વિનશનશીલાઃ પ્રાણિના દેહાઃ=શરીરાણિ ભગ્નતીતિ પશ્યત=યૂયં પ્રેક્ષ-  
ધ્વમ્, એકે=કંચિત્કાતરાઃ ક્ષુધયા પરિગ્લાયમાનૈઃ સર્વેન્દ્રિયૈઃ કાતરભાવ ગચ્છન્તિ,  
इत्यपि पश्यतेति पूर्वेषु सम्बन्धः । किन्तु तद्विपरीत ओजः=एकः राग-द्वेषवर्जितः  
परीपहोपसर्गसहनममर्थः क्षुधाद्विपरीपहोपनिपातेऽपि महागिरिनिवाऽऽकम्प्यो दयां  
पङ्जीवनिकायानुकम्पा दयते=परिपालयति ।

ક્ષુધાર્તશ્ચક્ષુપા રૂપાદિક ન સમ્યક્ પશ્યતિ, કર્ણેન શબ્દ ન સમ્યક્ શૃણોતિ,  
रसनया न सं सम्यगास्वादयति, नाऽपि घ्राणेन गन्ध सम्यग् जिघ्रति, त्वचा  
नाऽपि शीतादिक सम्यक् स्पृशति, क्षुधा सर्वेन्द्रियाणा शक्तिप्रतिघातकारिणी  
भवतीत्याशयः ।

ક્ષુધારૂપ પરીપહ સે મ્લાન યા વિનષ્ટ હો જાતા હૈ, યહ વાત શિષ્યોં કો  
સમજાતે હૈ—“પશ્યત” આપ લોગ ઇસ વાત પર વિશ્વાસ રહો ।  
जब यह बात है तो कोई २ कातर प्राणी क्षुधावेदनीय से दुःखित हुए  
इन्द्रियोंद्वारा कातर भावको धारण करते हैं । यह भी बात विश्वास करने  
जैसी है, किन्तु जो राग-द्वेषसे रहित होते हैं वे परीपह और उपसर्गों  
को सहनेमें शक्तिशाली होते हैं—क्षुधादि परीपहों के आ जाने पर भी  
वे सुमेरुकी तरह अकम्प्य होते हैं, और पङ्जीवनिकाय की दयाका  
परिपालन करते हैं ।

જો કાતર હોતે હૈં વે જબ ક્ષુધાસે પીડિત હોતે હૈ તવ આંત્રોસે  
રૂપાદિકલા અચ્છી તરહસે અવલોકન નહીં કર સકતે હૈં, કાનોસે  
અચ્છી તરહ શબ્દ મી નહીં સુન સકતે હૈં, જીમસે સુન્દર સુસ્વાદુ રસ  
તક કા મી સ્વાદ નહીં લે સકતે હૈં, નાકસે સુન્દર ગધ તક મી નહીં

ક્ષુધાઽપ પરિપહથી મ્લાન અને નિર્બળ બને છે આ વાત શિષ્યોને સમ-  
જાવે છે અને કહે છે—“પશ્યત” આપ લોક આ વાત ઉપર વિશ્વાસ રાખો ।  
બ્યારે આ વાત છે તો કોઈ કોઈ કાતર પ્રાણી ભૂખના ડુ ગથી ડુ ખિત બની  
ઈન્દ્રિયોદ્રાશ કાતરભાવ ધારણ કરે છે આ વાત પણ વિશ્વાસ કરવા બેવી છે, પરંતુ  
જે ગમ દેષથી રહિત છે તે પરિપહ અને ઉપસર્ગોં સહેવામા શક્તિશાળી હોય છે—  
ક્ષુધાદિ પરિપહોના આવવાથી પણ તે સુમેરુની માફક અડગ રહે છે, અને પર  
જીવનિકાયની દયાતુ પરિપાલન કરે છે

જે કાતર હોય છે તે બ્યારે ભૂખથી પીડિત થાય છે ત્યારે આખોથી  
રૂપાદિકતુ પણ સારી રીતે અવલોકન કરી શકતા નથી, કાનોથી સારી રીતે શબ્દ  
પણ સાભળી શકતા નથી જીભથી સુન્દર સુસ્વાદુ રસનો પણ સ્વાદ લઈ  
શકતા નથી, નાકથી સુન્દર ગધ પણ સુધી શકતા નથી અને સ્પર્શ ઈન્દ્રિયથી

ननु केषलिभिर्मानां देहा आहारोपचया मवन्तीति तदर्थं तेऽभ्रन्ति, दयादीनि च पाळयन्तीति, केषलिनो हि नियतं सेत्स्यन्ति तर्हि किमर्थं ते देहं पारयन्ति? किमर्थं च सुञ्जते? इति चेत् न, केषलिनामपि षडनीयादिकर्मफलपुष्टयसद्भावेन उत्सपकारं शरीरपारणस्याऽऽहारस्य चाऽऽवश्यकत्वात्, अन्यथा तेषां तदानीमपि वेदनीयादिकर्मसम्भारलक्ष्णुषापरीपहामिभवस्य दुर्वारत्वं स्यात्, तत्र केषलिनोऽपि कषलाहारं कुर्वन्ति, तं विनौदारिकशरीरस्थितेरसम्भवात्, शरीरस्थितिं विना श्लेषकर्मचतुष्टयसम्भवासम्भवाच्चावश्यक एव केषलिनामपि कषलाहार इत्यस्मि ॥ सू० २॥  
 पञ्जीवनिकायरक्षकः कीदृशो भवतीति दर्शयति—'जे संनिहाणसत्थस्स' इत्यादि ।

सू घ सकते हैं और स्पर्शन इन्द्रियसे शीतादिकके ज्ञानसे भी अपरिचित रहते हैं, तात्पर्य—शुद्धा समस्त इन्द्रियोंकी शक्तिका प्रतिघात करनेवासी होती है ।

केवलियों के भी वेदनीयादिक चार अवघातिया कर्मोंका सद्भाव है, अतः उन कर्मोंको नाश करनेके लिये उन्हें भी शरीररक्षाकी आवश्यकता है, और शरीररक्षाके निमित्त कषलाहार की जरूरत है, कषलाहार भी इसलिये यहां होता है कि वह वेदनीय कर्मका कार्य है, यदि वे कषलाहार न करें तो वेदनीय कर्मके सद्भावेसे तज्जन्य-शुष्मापरीपहजन्य कष्टका उन्हें सामना करना पड़े । इस लिये केषली भी कषलाहार करते हैं, इसके बिना औदारिक शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती, शरीरस्थिति रहे बिना श्लेष कर्मचतुष्टयका विनाश नहीं हो सकता है, अतः केषलियोंके भी कषलाहार है ॥ सू० २ ॥

पञ्जीवनिकायका रक्षक वह कैसा होता है ? सो कहते हैं—  
 "जे संनिहाणसत्थस्स" इत्यादि ।

इति आदिना ज्ञानभी पञ्च अपरिचित रहे छे तात्पर्य—शुद्ध समस्त इन्द्रियोंकी शक्तिको प्रतिघात करनेवा छे ।

केवलियोंने पञ्च वेदनीय अर्द्धि चार अवघातिया कर्मोंना सद्भाव छे भाटे तेवा कर्मोंना नाश करवा तेने पञ्च शरीररक्षानी आवश्यकता छे अने शरीररक्षाना निमित्त कषल आवश्यकनी जरूरत छे कषल आहार पञ्च जे भाटे त्यां कोष छे छे ते वेदनीय कर्मनुं कार्य छे जे ते कषल आहार न करे तो वेदनीय कर्मोंना सद्भावथी तज्जन्य-शुष्मापरीपहजन्य कष्टनो तेने सामना करवा पठे, भाटे केवली पञ्च कषल आहार करे छे तेना विना औदारिक शरीरकी स्थिति रही शकती नथी शरीरस्थिति रक्षय विना ज्ञानी रहेला चार कर्मोंना विनाश कार्य शकतो नथी, भाटे केवलियोंने पञ्च कषल आहार छे (सू० २)

पञ्जीवनिकायका रक्षक केवा कोष छे? ते कहे छे—'जे संनिहाणसत्थस्स' इत्यादि ।

मूलम्—जे संनिहाणसत्थस्स खेयत्ते से भिक्खू कालत्ते वलन्ने मायन्ने खणन्ने विणयन्ने समयन्ने परिग्गहं अममायमाणे कालेणुट्ठाई अपडिन्ने दुहओ छित्ता नियाड ॥ सू० ३॥

छाया—यः सन्निधानशास्त्रस्य खेदज्ञः भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो विनयज्ञः समयज्ञः परिग्रहममायमान कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विधा छित्त्वा नियाति।

टीका—‘यः’ इत्यादि, यः=पूर्वोक्तो दयापरिपालकः सन्निधानशास्त्रस्य-सन्निधीयते=स्थाप्यते नरकनिगोदादिषु जीवो येन तत् सन्निधानं=ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, तस्य शास्त्रं=तत्स्वरूपप्रतिपादक आगमः=सन्निधानशास्त्रं, तस्य। यद्वा—‘सन्निधानशास्त्रस्य’ इति छाया, तेन सन्निधानस्य कर्मणः शस्त्रवच्छेदकत्वेन शास्त्रं सयमस्तस्य खेदज्ञः=कुशलो भवति स भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो विनयज्ञः समयज्ञः परिग्रहममायमानः कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विधा रागं द्वेष च छित्त्वा नियाति=मीक्षं प्राप्नोति। एतेषा व्याख्या द्वितीयाध्ययनस्य पञ्चमोद्देशे प्रोक्तेति ॥

सन्निधानशास्त्रका अर्थ आगम है, वह इस प्रकारसे—नरक और निगोदादिकों में जीव जिसके द्वारा स्थापित किया जाता है वह सन्निधान—ज्ञानावरणीयादि कर्म—है, इनके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है वह सन्निधानशास्त्र—आगम है। अथवा—“सन्निधानशास्त्र” यह भी “संनिहाणसत्थस्स” की छाया हो सकती है। इसका अर्थ संयम है संनिधानका अर्थ कर्म, और उस कर्मका शास्त्रकी तरह छेदक होनेसे शास्त्र सयम है। आगमका अथवा सयमका जो ज्ञाता—उस विषयमें जो कुशल—है वह कालज्ञ, बलज्ञ, मात्राज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, समयज्ञ परिग्रहत्यागी, कालोकाल सयम क्रियाका आराधक, अप्रतिज्ञ मुनि राग और द्वेषका विनाश कर मोक्षको प्राप्त करता है। इन समस्त पदों की

सन्निधानशास्त्रको अर्थ आगम छे ते आ प्रकारथी—नरक अने निगोदादिकोमा छव जेना द्वारा स्थापित कराय छे ते सन्निधान—ज्ञानावरणीयादि कर्म छे तेना स्वरूपनु प्रतिपादक जे शास्त्र छे ते सन्निधानशास्त्र—आगम छे अथवा—“सन्निधानशास्त्र” आ पद्य “संनिहाणसत्थस्स”नी छाया भने छे, आने अर्थ सयम छे सन्निधानको अर्थ कर्म—अने जे कर्मनु शस्त्रनी रीते छेदन करनार होपाथी शस्त्र सयम छे आगमना अथवा सयमना जे ज्ञाता—आ विषयमा जे कुशल—छे ते कालज्ञ, बलज्ञ, मात्राज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, समयज्ञ, परिग्रहत्यागी, कालोकाल सयम क्रियाको आराधक, अप्रतिज्ञ मुनि राग अने द्वेषको विनाश करी मोक्षको प्राप्त करे छे आ समस्त पदोनी



सयमाशरणाय ममप्रवो यद्भवति उद्वेक्षयति—' तं भिक्षुं ' इत्यादि ।

मूकम्—त भिक्षु उ सीयफासपरिवेषमाणगाय उवसकमित्ता गाहावई ब्रूया—आउसतो ! समणा ! नो खलु त गामधम्मा उव्वाहति ?। आउसतो ! गाहावई ! नो खलु मम गामधम्मा उव्वाहति, सीयफास च नो खलु अह सन्धाएमिअहियासित्तए, नो खलु मे कप्पइ अगणिकाय उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए वा, काय आयावित्तए वा पयावित्तए वा, अच्चेसिं वा वयणाओ सिया से एव धयतस्स परो अगणिकाय उज्जालित्ता पज्जालित्ता काय आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा त च भिक्षु पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए—त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—तं भिक्षुं शीतस्पर्शपरिवेषमानमाश्रुत्सकम्प्य गाथापतिर्ब्रूयात्—अयुष्मन् ! भगवन् ! न खलु ते ग्रामधर्मा उद्वापन्त ? । आयुष्मन् ! गाथापते ! नो खलु मम ग्रामधर्मा उद्वापन्ते शीतस्पर्शे च न स्पर्शे शक्नोम्यस्यासित्तुं, न खलु मे कल्पतेऽन्निकायमुज्ज्वान्पितुं वा मन्वात्तयितुं वा कायमातापयितुं वा पयापयितुं वा; भन्वेपां वा नचनात् म्यात् तस्य एव कतः परोऽन्निकायमुज्ज्वान्य पज्ज्वान्य कायमातापयद्वा, पयापयद्वा, उद्विष्टः प्रत्युपस्थासगम्पाऽऽज्ञापयदनासेवनयति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—' तं भिक्षुं '—मित्यादि, गाथापतिः=धन-धान्य-हिरण्य-सुवर्णविसम्पत्तिमात् कस्तूरीचन्दनादिपरिस्मिताणां रमणीयवपुः कमनीयरमणीगणसमन्वितो व्याख्या त्रितीय अध्यायनके पांचवें उद्देशार्थे कह दी गई है ॥ सू० ३ ॥

संपमके आशरणके लिये वीक्षित हुए मुनि क जो होता है उसे सूत्रकार कहते हैं—“ तं भिक्षुं ” इत्यादि ।

जो धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण आदि सम्पत्तिसे युक्त है, कस्तूरी, चन्दन आदिसे जिसका शरीर लित हो रहा है, देह

व्याख्या त्रितीय अध्यायनके पांचवें उद्देशार्थे कह दी गई है (सू० ३)  
 सयमना आशरण भाटे वीक्षित जनेल के मुनि कोय के जेने सूत्रकार  
 कहे के— तं भिक्षुं ” इत्यादि  
 के धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण आदि सम्पत्तिसे युक्त के  
 कस्तूरी, चन्दन, आदिसे के शरीर लित हो रहे के देह पर जेनी

गृहस्थः शीतस्पर्शपरिवेषमानगात्रं=हेमन्तर्तौ शीतस्पर्शेन परिवेषमानं=कम्पमानं गात्रं=शरीर यस्य स शीतस्पर्शपरिवेषमानगात्रस्तम् अरूपोपधिकत्वेन शीतवातपरिकम्पितशरीरं तम्=अन्तप्रान्ताशिनं तेजोरहितमकिञ्चन भिक्षु=मध्यमावस्थापनं मुनिम्=उपसंक्रम्य=तत्समीपमागत्य ' किमयं मदीयवनितारूप-लावण्य-विलोकनेन शृङ्गारचेष्टाभिभूतत्वात् परिकम्पितगात्रोऽथवा शीतस्पर्शादिना वा? इति सन्देहमुपगम्य च तं भिक्षुं ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं वाक्यं कथयेत् पृच्छेदित्यर्थः, तदेवाह—' भो आयुष्मन् ! श्रमण ! किं ग्रामधर्माः=शृङ्गारादिमदनचेष्टाविशेषा विपयास्त्वां ' नो उद्वाधन्ते =न पीडयन्ति ? तादृशं कृतप्रश्नमसत्याशङ्कं गृहपतिमालक्ष्य स भिक्षुस्तच्छकामपनेतुं ब्रवीति—' आयुष्मन् '—नित्यादि, हे आयुष्मन् ! ग्रामधर्माः मां नो

भी जिसकी बहुत सुन्दर है, घरमें जिसके मनोहर अंगवाली नारियोंका समूह है, ऐसे किसी गृहस्थके घर पर मध्यम अवस्थावाले, अल्प उपधिके धारी मुनि आहार लेनेके निमित्त आवे तब उन्हें अधिक ठण्डसे कंपित होते देखकर वह गृहस्थ उन अन्तप्रान्तभोजी एवं तेजरहित अकिञ्चन मुनिके प्रति सन्देहयुक्त विचार करता है कि—“यह मेरे घरकी इन वनिताओंके सुन्दर रूप और लावण्यको निहार कर शृङ्गार की चेष्टासे युक्त बन कम्पितशरीरवाला हुआ है? या शीतके स्पर्शसे इसका शरीर कम्प रहा है ? ” ऐसा सोच कर वह मुनिसे पूछता है—‘भो मुने! आपका शरीर हमारी स्त्रियोंको देख कर कम्प रहा है या अन्य किसी कारणसे?, इस प्रकार असत्य आशङ्कासे युक्त उस पूछनेवाले गृहस्थ के प्रश्नको सुन कर वह भिक्षु उसकी आशङ्काके परिहार करने हेतु इस प्रकार कहे—‘भो आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-की चेष्टा

भुण सु हर छे, घरमा मनोहर अंगवाणी स्त्रीज्योना समूह छे, जेवा कोर्छ गृहस्थना घेर मध्यम अवस्थावाणा, अल्प उपधिना धारक मुनि आहार लेवा भाटे आवे त्तारे तेने अधिक ठडीथी कापता नेछ ते गृहस्थ अन्तप्रान्तभोजी जेव तेवरहित अकिञ्चन मुनिना तदृशं स हेडयुक्त विचार करे छे के—“आ मारा घरनी स्त्रीज्योना सु हर रूप अने लावण्यने नेछ शृङ्गारनी चेष्टाथी अकणार्ध कापी रहेल छे? अथवा ठडीना स्पर्शथी आनु शरीर कापी रह्यु छे?” जेवु विचारी जे मुनिने पूछे छे—हे मुनि ! तमाइ शरीर मारा घरनी स्त्रीज्योने नेछ कापी रह्यु छे के पीब कोर्छ कारणथी ?, आ प्रकारनी असत्य आश काथी पूछवामा आवेदा गृहस्थना जे प्रश्नने सावणी लिह्यु जेनी आश कानु निवारण्य करवाना हेतुथी कहे छे के—हे आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-नी चेष्टास्वप्न शृङ्गा-

सङ्घ=नैव उव्वाफन्ते=न मां पीडयन्ति किन्तु अहं शरीरदौर्बल्यनारूपोपधिकार्येन  
 च शीतस्पर्श=तोक्तरशीतबाधाम् अभ्यासितुम्=अभिसोतुं न शक्नोमि तेन मे गात्र  
 कम्पत न तु कामचेष्टयेति भावः । इति सम्प्रोचरो गृहपतिर्विनयमक्तिपरिपूर्तिता-  
 न्ताकरणः सन् सञ्जित पुनः पृच्छति-प्रदीपं पहिं ससेष्य शीतपीडां क्वं भवान्  
 नापनयति ! इति प्रश्ने सति मुनिरुत्तरमाह- ' न स्वस्वि '-त्यादि, अम्निकायम्  
 उन्नालपितुम्=ईपत् ज्यास्यितुं प्रन्वास्यितुं=प्रकर्षेण न्वालयितुं कायं=स्वशरीरम्=  
 आतापयितुम्=मनाद् तापयिम्=अधिकमातापयितुं प्रतापयितुं वा, अन्येषां=परपां  
 वा वचनात्=क्यनादपि तद् य=मम न कल्पते, अम्निकायारम्भं पृह्जीवन्किाया  
 रम्भस्यावश्यम्भावाद्गुणदाज्ञाविराफनादोपापातात् ।

स्वल्प शृङ्गारादि विषयबाले विषय मुझे पीडित नहीं कर रहे हैं, किन्तु  
 इस समय शीत अधिक पड़ रहा है, उपधि भी इतनी अधिक नहीं है  
 कि जिससे मैं शीतका निवारण कर सकूँ, सैर-उपधि अल्प होने पर  
 भी यदि शरीर सघात हो तो भी शीत बगैरह सहन किया जा सकता  
 है परन्तु इस समय शरीर भी दुर्बल हो रहा है अतः शीतके कारण  
 मेरा शरीर कंप रहा है-कामचेष्टासे नहीं । इस प्रकार मुनिसे जब वह  
 अपनी आवाङ्मय उत्तर ठीक ३ पाठेना है तब वह लज्जित अवश्य होता  
 है, साथमें उसके हृदयमें विवेकका सागरसा उमड़ आनेसे वह उस  
 मुनिक प्रति भक्ति भीर विनयक भावसे भरित अन्तःकरणबाला  
 सहि विषयबाला विषय भने पीडया नथी परतु अकारे ङी अधिक  
 प्रभासुभा होवावा, तेम मारी फसे जे ङीषी जवाव करी शके ते शीते  
 पक्कादिक न कापाधी कापी शको हुं पक्कादिके कोअ होवा ह्यां पवु जे शरीर  
 सघात होय तो ङी सहन करवाभा करकत न पडे आ समये भाई शरीर  
 पवु दुर्बल छे, आधी ङीना अत्ये भाई शरीर कापी शकु छे-कामचेष्टाकी  
 नही आ प्रकारे मुनिधी न्यारे ते पीतानी न्यारकाने उत्तर दीक दीक भेजनी  
 वे छे त्यारे ते अत्ये भने छे साथमा तेना हृदयमा स्थिकने उलेश न्यार  
 वाधी ते मुनि प्रये लज्जित भने विनयना कावधी करेला अत्ये श्लेषाजो अहं

एव वदतो मुनेरग्निनायप्रज्वालनादे परिहारे कृतेऽपि स्यात्=रुदाचिद् यदि सः=पूर्वोक्तोऽन्यो वा गृहस्थः अग्निनाय=वर्हि तदर्थमुज्ज्वालय प्रज्वालय च तस्य मुनेः कार्यं=शरीरम् आतापयेद्वा प्रतापयेद्वा तदा भिक्षुः=स मुनिः तत् सर्वं प्रत्युपेक्ष्य =सायधाचरणतया विचार्य अवगम्य=ज्ञात्वा वा त गृहपतिम् अनासेयनतया= अकल्पनीयतया 'अग्निसेवनं मम न कल्पते' इत्यनासेवनपरिज्ञया आज्ञापयेत्= प्रतिबोधयेत् । इति ब्रवीमि '-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-३ ॥

हो कर वह कहता है—महाराज ! जब आपकी यह हालत है तो फिर आप शीतको अग्निद्वारा क्यों नहीं दूर करते हैं ?। इसके उत्तरमें मुनि इस प्रकार कहता है कि—अग्निनायको थोड़ा या अधिक जलानेका और उससे इस शरीरको थोड़ा या अधिक तपानेका मुनिकल्प नहीं है ।

भावार्थ—अग्निनायके आरम्भमें षड्जीवनिकायकी विराधना होती है, इस लिये शास्त्रमें इस प्रकारका आचार मुनिके लिये निषिद्ध है, क्यों न भयङ्करसे भयङ्कर शीत पड़े तो भी मुनि इस प्रकारका अग्निका आरंभ नहीं कर सकते । किसीकी विराधना कर इस पौद्गलिक शरीरको सुखित करना यह मुनियोंका कर्तव्य नहीं है । अग्निनायके आरम्भमें अग्निनायिक जीवोंकी विराधनाके साथ २ इतरकायिक जीवोंकी भी विरा-

ते कहे थे—महाराज क्या आपकी आ हालत छे तो पछी आप ठडीने अग्निधी केम दूर करता नथी ? तेना उत्तरमा मुनि कहे छे, के—अग्निनायने थोडा अथवा वधारे भाणवाभा अने तेनाथी आ शरीरने थोडो अथवा अधिक ताप आपवाभा मुनिकल्प नथी

भावार्थ—अग्निनायना आरम्भमा षड्जीवनिकायनी विराधना साथ छे भाटे शास्त्रमा आ प्रकारने आचार मुनि भाटे निषिद्ध छे बले लयकरमा लयकर ठडी पडे तो पछी मुनि आ प्रकारे अग्निने आरम्भ करी शकता नथी । केअग्निनी विराधना करी आ पौद्गलिक शरीरने सुखी करवे अथवा मुनिनु कर्तव्य नथी अग्निनायना आरम्भमा अग्निनायना लवोनी विराधनानी साथे साथे थील

पनाका आरंभ अवश्य होता है, इस लिये इस प्रकारके आरंभ करनेकी भगवान् की आज्ञा मुनिके लिये नहीं है।

इस प्रकार समझाने पर भी यदि कोई या वही गृहस्थ भक्ति या वृषाके आदेशसे उस मुनिकी शीतसे रक्षा करनेके अभिप्रायसे थोड़ी या बहुत अग्नि जला कर उसके शरीरको थोड़े रूपमें या बहुत रूपमें तपाने की चेष्टा भी करे तो उस समय वह मिथु इस प्रकारकी उनकी (अग्नि उयालनादि क्रियासे शरीरको तपानरूप) क्रियाको सावधके आचरण रूपसे विचार कर और जानकर उस गृहस्थसे “यह आचार इस मुनियों को अकल्पनीय होनेसे नहीं कल्पता है” इस प्रकार अनासेवनपरिज्ञा से कहे—उसे समझावे। “इति ब्रवीमि” इन पदोंका अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥५०४॥

॥ आठवें अध्यायनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥

एवोनी पक्ष विराधनात् आरभ अवश्य यद्यपि भाटे अथ प्रकाशने आरभ इत्यादी अत्राननी आज्ञा मुनि भाटे नहीं।

अ रीते समझाववा छत्ता पक्ष को ठोड़ अथवा जेअ नृदक्ष अक्षि अन्तर इत्यादि आवेशकी ते मुनिकी कहीथी रक्षा इत्यादि अभिप्रायकी थोड़ी पक्षी अग्नि सज्जानी तेना शरीरने बैज रूपमा अथवा पक्षी रूपमा तपानवानी चेष्टा पक्ष करे तो ते समय ते भिक्षु अथ प्रकाशनी तेनी (अग्निउयालनादि क्रियाकी शरीरने तपववाहृप) क्रियाने आवधाना आचरण रूपकी विचारी अने जानी ते गृहस्थकी “अ आचार अथो मुनिको भाटे अकल्पनीय होवाकी कल्पतु नहीं” अथ उतादे अनासेवनपरिज्ञाकी कहे—तेने समझावे। “इति ब्रवीमि” अथ पदोने अथ पदेवाना उद्देशोमां कहेवाअ जयैव छे। ( ५०४ )

आठमा अध्यायनको तीसरे उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥

## ॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशकथनान्तरं सम्प्रति तुरीय आरभ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहाय्यं सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् मुनिः शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामधर्म-शङ्कितमनसा गृहस्थेन पृष्टस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम् । अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव तं भिक्षुं हावभावादिभिर्विषयीकृतुं चेष्टेरन्, मुनिस्तत्स्थानान्निष्क-मितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिरक्षणार्थं वैहायस—गार्द्धपृष्ठाख्यमरणविधिना प्राणां-

### आठवें अध्ययनका चौथा उद्देश ।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि “ भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिका शीतकालमें शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सब प्रकारसे रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणविधि

### आठमा अध्ययनोऽथो उद्देश

तीसरे उद्देशके डेवाठ गथा बाद डवे ओथा उद्देशने प्रारंभ थाय छे आ उद्देशने पाछगना उद्देशनी साथे आ सगंध छे—पाछगना उद्देशमा ओ डडेवाथु छे के भिक्षाने माटे निकलेल मुनिने ठडीमा ठडीना स्पर्शथी कापता नेछ ने केछ गृहस्थ ग्रामधर्मनी आशका करी ले छे त्यारे मुनि ओनी ओ असत्य आशकालु समाधान करी दे छे आ उद्देशमा ओ प्रकट करवामा आवथे—ओओ न कदाय मुनिने हावभाव वगेरे चेष्टाओथी वशमा करवाने प्रयत्न करे, अने मुनि पछु ओ स्थानमाथी पहार निकलवामा असमर्थ भनी नथ त्यारे ओ समये मुनिलु आ कर्तव्य छे के ते पोताना चारित्रनी रक्षा करवा माटे वैहायस अने गार्द्धपृष्ठ नामनी मरण विधिथी पोताना प्राणु तल दे पछु पोताना शील—ब्रह्मचर्यमंडानत—ने भग न करे केन के ब्रह्मचर्यना

स्यनेत्, न तु शीतस्पर्शं समाचरेत्, तदभावे च तन्मरणं गदितमिति कथयन्नात् शीतस्पर्शपसङ्गेन वस्त्रस्य कल्पनीयतामावेदयति—'जे भिक्खू इत्यादि ।

सूत्रम्—जे भिक्खू तिहिं वरथेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं, तस्स ण नो एव भवइ—चउत्थ वरथ जाइस्सामि से । अहेसणिज्जाइ वरथाइ जाइज्जा अहापरिमाहियाइं वरथाइं धारिज्जा नो धोइज्जा नो रएज्जा नो धोयरत्ताइ वरथाइ धारिज्जा अपलिउचमाणे गामतरेसु ओमचेलिए एय खु वरथधारिस्स सामग्गिय ॥सू०१॥

छाया—यो भिक्खुभिर्बन्धैः पर्युषितः पात्रपटवः, तस्य तस्य नो एवं यत्कि-  
पतुर्त्य वस्त्रं याचिष्य, स यथैषणीयानि वस्त्राणि याचेत्, यथापरिगृहीतानि वस्त्राणि  
धारयेत्, नो याचेत्, नो रञ्जयत्, नो पातस्तानि वस्त्राणि धारयेत्, अपरिगृह्य-  
मानः ग्रामान्तरेषु भयमवेष्टिकाः, एतस्सद्ध वस्त्रधारिणः सामग्ग्यम् ॥ सू० १ ॥

टीका—'यो भिक्खू'—रित्यादि, यो मुनि पात्रपटुयैः—वस्त्रपयातिरिक्तं चतुर्भे  
पात्रं यत्र तानि, तैः पात्रपटुयैः प्रिभिर्बन्धैः—कार्पासिकं द्वे, तृतीयमौर्षिकं कम्ब-  
लादिकम्, एतन्नयमेव वस्त्रं तेषां कल्पते, तत्र शीतप्रारम्भे वैकं प्रावरणवस्त्रं स  
मुनिधारयेत्, ततोऽप्यधिकशीतपीडायां कम्बलमुपरि धारयेत्, एतेन कम्बलगत-  
वाष्पाच्छादनता बोध्या ।

से अपने प्राणोंको छोड़ दे परन्तु वे शील—ब्रह्मचर्य महाव्रत—का भङ्ग न  
करे, क्यों कि ब्रह्मचर्यके अभावमें उसका मरण निश्चित है, इस बातको  
कहते हुए सूत्रकार भाविमें शीतस्पर्शके प्रसंगसे वस्त्रकी कल्पनीयता  
और अकल्पनीयता सूत्रद्वारा प्रकट करते हैं—'जे भिक्खू' इत्यादि ।

स्वधिरकस्सी मुनि तीन वस्त्र (दो सूती एक कमी कम्बल) आवि  
और एक पात्र, इस प्रकार वस्त्र और पात्र रखते हैं, क्यों कि इतने ही  
वस्त्र और पात्र रखने का उनका कल्प है । इनमें शीतकालके प्रारम्भमें  
एक ही ओढनेका वस्त्र वे रखते हैं । जब अधिक शीत पड़ने लगती है  
तो वे द्वितीय वस्त्र भी ओढनेके लिये रख लेते हैं, और ती अधिक

अभावधी जेनु भस्सु निहिते से आ बात कहेवां सूत्रकार इदीना प्रसज्जमां  
वस्त्राणि कल्पनीयता अने अकल्पनीयता सूत्रद्वारा प्रकट करे से—जे भिक्खू इत्यादि  
आ स्वधिरकस्सी मुनि वस्त्र वस्त्र जेमा वे सुतसुत्त अने जेठ इत्थल वजेरे  
अने जेठ पात्र आ प्रहास्यं वस्त्र अने पात्र सजे से तेम के जेटला व वस्त्र अने  
पात्र सजवानो जेमा कल्प से अज्जमां इदीना प्रारभमां जेठ व जेठवानुं वस्त्र सजे  
से अज्जारे इदी वपु प्रमाज्जमा पडवा लजे त्थारे पीज्जु वस्त्र पज्ज जेठवा माटे  
सज्जी से से अज्ज व प्रमाज्जमां इदी पडवा लजे त्थारे जेठ इत्थल पज्ज सज्जी

## ॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशरूपनान्तरं सम्प्रति तुरीय आरभ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहायं सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् मुनि शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामधर्म-शङ्कितमनसा गृहस्थेन पृष्टस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम् । अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव तं भिक्षु हावभावादिभिर्वशीकृतुं चेष्टेत्, मुनिस्तत्स्थानान्निष्प्र-मितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिरक्षणार्थं वैहायस—गार्द्धपृष्ठाख्यमरणविधिना प्राणा-

### आठवें अध्ययनका चौथा उद्देश ।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि “ भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिका शीतकालमें शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सब प्रकारसे रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणविधि

### आठवां अध्ययनका चौथो उद्देश

तीसरे उद्देशके उद्देशके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है । इस उद्देशके अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि “ भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिको शीतकालमें शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिको यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणविधि



स्यनेत्, न तु शीतसर्षपसङ्घेन वस्त्रस्य कल्पनीयतामावेदयति—'जे भिक्खु इत्यादि ।

मूत्रम्—जे भिक्खु तिहिं वत्थेहिं परिवुसिप पायवउत्थेहिं, तस्स णं नो एव भवइ—चउत्थ वत्थ जाइस्सामि से । अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाइउज्जा अहापरिग्गहियाइं वत्थाइ धारिज्जा नो धोइउज्जा नो रपज्जा नो धोयरत्ताइ वत्थाइ धारिउज्जा अपलिउचमाणे गामतरेसु ओमचेलिप पय खु वत्थधारिस्स सामग्गिय ॥सू०१॥

छाया—यो भिक्खुभिर्बन्धैः पर्युषितः पात्रचतुर्थैः, उभ्य ललु नो एवं यत्कि-  
चतुर्थं वस्त्रं याचिष्य, स यथैष्वपीयानि वस्त्राणि याचेत्, यथापरिगृहीतानि वस्त्राणि  
पारयेत्, नो याचेत्, मो रञ्जयत्, ना चोत्तरकानि वस्त्राणि पारयेत्, अपरिगृह्य-  
मानः ब्रामान्तरेषु अममवेच्छिकः, एतत्सल्ल वस्त्रधारिणः सामग्यम् ॥ सू० १ ॥

टीका—'यो भिक्खु'—रित्यादि, यो मुनि पात्रचतुर्थैः=वस्त्रपयातिरिक्तं चतुर्थ  
पात्रं यत्र तानि, तैः पात्रचतुर्थैः प्रिभिर्बन्धैः—कार्पासिके द्वे, तृतीयमौर्ध्विकं कम्ब-  
छादिकम्, एतन्नयमेव वस्त्रं तेषां कल्पते, एतन्न प्रारम्भे वैकं पात्रव्यपस्यं स  
मुनिपारयेत्, एतोऽप्यधिकशीतपीडायां कम्बच्छपरि पारयेत्, एतेन कम्बलगत  
वाहाच्छादनता बोध्या ।

से अपने प्राणोंको छोड़ दे परन्तु वे शील—ब्रह्मचर्य महाव्रत—का भङ्ग न  
करे, क्योंकि कि ब्रह्मचर्यके अभावमें उसका मरण निश्चित है, इस बातको  
कहते हुए सूत्रकार भाविमें शीतस्पर्शके प्रसंग स वस्त्रकी कल्पनीयता  
और अकल्पनीयता सूत्रद्वारा प्रकट करते हैं—'जे भिक्खु' इत्यादि ।

स्वधिरकणी मुनि तीन वस्त्र ( दो सूती एक ऊनी कम्बल ) आवि  
और एक पात्र, इस प्रकार वस्त्र और पात्र रखते हैं, क्योंकि कि इतने ही  
वस्त्र और पात्र रखने का उनका कल्प है । इनमें शीतकालके प्रारम्भमें  
एक ही छोड़नेका वस्त्र वे रखते हैं । जब अधिक शीत पड़ने लगती है  
तो वे द्वितीय वस्त्र भी ओढ़नेके लिये रख लेते हैं, और भी अधिक

जलावधी जेनु भरखु निहिते छे आ बात उदेत्तां सूत्रहार उदीना प्रसज्जमां  
वस्त्रणी कल्पनीयता अने अकल्पनीयता सूत्रदास प्रवट करे छे—जे भिक्खु इत्यादि  
आ स्वधिरकणी मुनि त्रय वस्त्र जेमा जे सुतसठ अने ओठ उभयल वजिरे  
अने ओठ पात्र आ प्रकल्प वस्त्र अने पात्र तथे छे तेम के जेटला व वस्त्र अने  
पात्र, सप्यवाने जेना कल्प छे. आमां उदीना प्रारभमा ओठ व जेटवानु वस्त्र तथे  
छे अन्धारे उदी वपु प्रमाज्जमा पठवा लावे त्थारे जीजु वस्त्र पव्व जेटवा माटे  
सथी वे छे. पुज व प्रमाज्जमां उदी पठवा लावे त्थारे ओठ उभयल पव्व राथी

एतैर्वस्त्रैः पर्युषितः=व्यवस्थितो भिक्षु-सयतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षोश्चेतस्येवमध्यवसाय खलु=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=वस्त्रत्रयरूपेण न शीतापगमो भवति तदर्थमहं चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये । अध्यवसायस्य प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम् । यदि वस्त्रत्रितयं न लब्धवान् शीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत् भिक्षुरिति दर्शयति- 'स' इत्यादि-स=भिक्षुः यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यतः प्रमाणतश्चोत्कर्षापरिष्कारितान्यपरिष्काराणि याचेत्, एवं स एव यथापरिगृहीतानि =यथारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयेत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्-प्रा-  
ठण्ड पड़ने पर वे एक कम्यल भी लेते हैं, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें बाधित न कर सके ।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है । उसके चित्तमें निश्चयसे इस प्रकारका अध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे वस्त्रकी याचना करूं । जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप अध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेगे ही कैसे ?-यह याचना तो सर्वथा त्याज्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही वस्त्रोंकी याचना करेगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात "से" इत्यादि सूत्रांश द्वारा प्रकट की है । वह भिक्षु यथैषणीय-प्रमाणसे एव मूल्यसे जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिष्कृत वस्त्रोंकी ही याचना कर सकते हैं । तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

दे छे जेथी ठडीने उपद्रव नहि थाय

आ वस्त्रोथी व्यवस्थित-युक्त जे साधु होय छे, तेना दिलमा निश्चयथी आ प्रकारने अध्यवसाय थतो नथी के भास-आ वस्त्रत्रय राखवाइप कल्पथी ठडीने निवारण थतो नथी आथी थोथा वस्त्रनी याचना करे न्यारे सूत्रकारे थोथा वस्त्रनी याचना करवाइप अध्यवसायने ज निषेध करेले छे तो आथी जे बात स्पष्ट थथे जय छे के जे थोथा वस्त्रनी याचना करे पणु कथे रीते ?-जे याचना तो सर्वथा त्याज्य ज छे, जेटलु थथे थके छे के जेनी पास जे पूर्वोक्त त्रय वस्त्र न होय जने ठडी शरु थथे गठ छेय तो ते पोताने भाटे कल्पनीय वस्त्रोनी ज याचना करे अकल्पनीयनी नहीं, आ ज बात "से" इत्यादि सूत्रांशथी प्रकट करवामा आवेल छे. ते भिक्षु यथैषणीय-

मुक्तोदकेनापि न प्रक्षालयेत्, नापि रञ्जयत्=कृशरहादिश्रादिना पीतादिरामरञ्जितानि न कुर्यात्, किं च धौत-रक्तानि' पूर्वं धौतानि=प्रक्षालितानि पश्चान्च रक्तानि धौतरक्तानि वस्त्राणि नां धारयत् तेन शृङ्गारादिमाषसम्भवात् । अपि च स प्रामान्तरपुत्रिहरत् उत्कृष्टादिमयन मार्गे वस्त्राणि अपरिकुञ्चमानः=न परिगापयन्-मूल्यप्रमाणादिना हीनत्वाद्भिन्नतममकृत्वेनागोपनीयान्यत्र मुनीनां वसनानि मयन्तीति कस्यपात्रादिषु तानि न प्रच्छन्तानि कुर्वन्वित्यर्थः, भवमवलिकः=मत्रम मूल्यत प्रमाणतमन्यूनं च तत् खेळं श्रीरमलिनकस्य=अवमखेल, तदस्यास्तीति भवमवलिकः=हीनधीर्ममस्त्रीमसपसनवात् स्तु मुनिर्विहरत्, एतत् न्तु पूर्वोक्तमेव नान्यत् ध्वजधारिणः साधोः सामर्थ्यं=पाषण्डुर्ध्वजप्रयादिस्वं सामर्थ्यमस्ति ॥ सू० १ ॥

रूपमें वे द्येत वस्त्रोंका उपयोग कर सकते हैं । अधौत् याचना समयमें द्येत वस्त्र ही लेते हैं और उन्हें वे उसी रूपमें रख कर अपने काममें ला सकते हैं । उन्हें य प्राप्तुक पानीसे धो भी नहीं सकते हैं और न हरिद्रा केशर आदि पीछे रंगसे रंग ही सकते हैं, क्योंकि कि ऐसे वस्त्रोंके रखनेसे शृङ्गारका आविर्भाव होता है जो पहिले भाय गये हों और पीछे रंगे गये हों वे धौत रक्त वस्त्र हैं। प्रामान्तरों में विहार करते समय वे वस्त्रोंको पौरादिकके मयसे कक्षा और पात्रादिकों में छुपानेकी भावना न रखे, क्योंकि कि मुनियों के वस्त्र मूल्यसे और प्रमाण आदि से हीन ही होते हैं, तथा सामान्य दृश्यामें रहते हैं अतः वे अगोपनीय ही होते हैं, इस लिये इन्हें छिपाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये । मूल्य एवं प्रमाणसे हीम वस्त्र अवमखेल कहलाता है, ये जिसके पास होते हैं धर्यात् ऐसे वस्त्रको

प्रभासुधी अथवा भूषणधी के उक्तर्ध्वं जाने अपरर्ध्वं रक्षित छे जेवा अपरिक्लमं वस्त्रोनीच यन्त्या करी शके छे तथा याचना समयमें जे वस्त्र के रूपमा भगे जेव रूपमा ते द्येत वस्त्रोना उपयोग करे अर्थात् याचना समयमें अर्ध्व वस्त्र न ले छे अने तेने जे व रूपमा सपी पीतना काममा लर्ध्व शके छे जेने जे धौत शकता नथी तेम कलकर केशर के तेवा पीणा रगधी रभी शकता नथी. हेम के जेवा वस्त्र सपवाधी शृङ्गारने आविर्भाव जनी जाय छे जे पहिले याचना होय अने पाछगधी रजवाभा आवे ते धौत-रक्त वस्त्र छे आमदामेना विहार करती बभते और वनेशेधी वस्त्रो बोसर्ध्व जपाना सपधी वस्त्रोने कक्षा के यात्रेमा छुपावपानी होशिय न करती जेधजे, हेम के मुनि-जेनां वस्त्र भूषणधी अने प्रभासुधी हीनक बोध छे तेम सामान्य दृश्यां होय छे आधी जे अत्रोपनीय क बोध छे. आ माटे जेने छुपावपानी होशिय न करती जेधजे. भूषण अने प्रभासुधी हीन वस्त्र अवमखेल कहेवाय छे. आ

एतैर्वस्त्रैः पर्युषितः=व्यवस्थितो भिक्षु-सपतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षुश्चेतस्येवमध्यवसाय खलु=निश्चयेन न पवति-मम कल्पेन=वस्त्रत्रयरूपेण न शीतापगमो भवति तदर्थमहं चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये। अव्यवसायस्य प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम्। यदि वस्त्र-धितयं न लब्धवान् शीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत् भिक्षुरिति दर्शयति-'स' इत्यादि-स=भिक्षुः यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यतः प्रमाणतथोत्कर्षापरकर्षरहितान्यपरिकर्माणि याचेत्, एवं स एव यथापरिगृहीतानि =पथारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयेत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्=भा-  
ठण्ड पड़ने पर वे एक कम्पल भी लेते हैं, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें बाधित न कर सके।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है। उसके चित्तमें निश्चयसे इस प्रकारका अध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे वस्त्रकी याचना करूं। जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप अध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेगे ही कैसे?—यह याचना तो सर्वथा त्याज्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही वस्त्रोंकी याचना करेगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात "से" इत्यादि सूत्रांश द्वारा प्रकट की है। वह भिक्षु यथैषणीय-प्रमाणसे एव मूल्यसे जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित है ऐसे अपरिकर्म वस्त्रोंकी ही याचना कर सकते हैं। तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

ले छे लेथी ङडीने उपद्रव नहि थाय

आ वस्त्रोर्थी व्यवस्थित-युक्त जे साधु होय छे, तेना दिलमा निश्चयथी आ प्रकारने अध्यवसाय यतो नथी के भास-आ वस्त्रत्रय राधवाङ्गप कल्पथी ङडीने निवारण यतो नथी आथी योथा वस्त्रनी याचना करे न्यारे सूत्रकारे योथा वस्त्रनी याचना करवाङ्गप अध्यवसायने न निषेध करैल छे तो आथी जे बात स्पष्ट यर्थ नदय छे के जे योथा वस्त्रनी याचना करे पखु कर्ष हीते?—जे याचना तो सर्वथा त्याज्य न छे, जोटलु यर्थ शके छे के जेनी पासे जे पूर्वोक्त त्रय वस्त्र न होय जने ङडी शङ्क यर्थगर्ष होय तो ते योताने माटे कल्पनीय वस्त्रोनी न याचना करे अकल्पनीयनी नही, आ न बात "से" इत्यादि सूत्रांशथी प्रकट करवाभा आवेल छे ते भिक्षु यथैषणीय-

टीका—‘अपे’-त्यादि, स मिथुरथ पुनरेव मानीयात् यत् उपातिक्रान्तः= व्यतीतं त्वत्त हेमन्तः=श्रीतसमयः प्रतिपन्नः=प्रातश्च ग्रीष्मः=उष्णसमयः तदा स मिथु यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयत्=परिहरेत्-यद् यद् जीर्णं संजात उक्तपरिस्थित्यं सङ्गरहितो विचरदित्यर्थः । व्यतीते श्रीतसमय क्षेम-काल पुरुषस्व भावन श्रीतवाधायां सत्यां किं फलम्वमित्याह-‘ सान्तरोच्चर ’ इत्यादि, भयवा= अधिक मूल्य एव प्रमाणमे अधिक होते ही नहीं हैं जो चौरोंके मनको पिगाड़ सकें, हीन, जीर्ण और मलिन वे वस्त्र होते हैं-भला चौर ऐसे बस्त्रोंको लेकर करेंगे ही क्या ? अतः इन बस्त्रोंको छुपानेकी साधुको किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये ॥१०१॥

अथ सूत्रकार ‘शीतकाल व्यतीत हो जाने पर कुत्र २ से उन वस्त्रों का भी साधुको परित्याग कर देना चाहिये’ यह प्रदर्शित करत है-  
“अह पुण” इत्यादि ।

यह मिथु इस घातको जाने कि-हेमन्तकाल व्यतीत हो चुका है और ग्रीष्मसमय आ गया है उस समय यह मिथु जीर्ण वस्त्रोंको परिष्ठापित कर देये-जो जो जीर्ण हो चुके हों उन २ का परित्याग कर नासंग पने । शीत समयके व्यतीत होने पर भी यदि क्षेत्र काल और पुरुषस्वभाव को छे कर शीतवाधा उपस्थित हो जाय तो यह क्या करे ? इस प्रकारकी आगभूतका उत्तर “सतन्सर” इत्यादि सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-‘अथवा’ यह पद पक्षान्तरमें है वे कहते हैं-जय इस प्रकारकी परिस्थिति हो तो यह तीन वस्त्र सहित हो जाय, भान्तर-सूतके दो वस्त्र एवं उत्तर-एक प्रापरणरूप ऊनका कम्पल,

अने प्रभाजभा अधिक नधी होय के चोरानु मन लक्षणा ओडी किमवना दुहा अने मेवा पत्र होय के चोर जेने लडने करे पण मु ? आधी -५ पत्रोने पुपावपानी नापुजे होउपण प्रप्ररनी बेला न इन्धी ओधले. (सू १)

अपे सूत्रकार इन्धीने भोसम पुरी यध वत्ता इमे इमे जे पत्राने त्वाय इरी हवे ओधले जेनु प्रदर्शित करे उ- अह पुण इत्यादि

तेलिमु आ नाव समयके के हेमन्तकाल पुरी यध नुकेल उ पने ग्रीष्म समय आवी अथे उ आ वपते ते लिमु लण पत्रोने त्वाय करे-जे जे लण यध नवा होय जेने त्वाय इरी नि-संज पने इन्धीना समय व्यतीत यध वत्ता उय पण क्षेत्र काल अने पुरुषस्वभावना कारणे इन्धीने उपरुव यध नवय ता ते मु करे ? आ प्रभासनी आशकाने उत्तर “सतन्सर” इत्यादि सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करे उ-“अथवा” आ पद पक्षान्तरमा उ तेज्य इडे उ-अपरे आ प्रभासनी परिस्थिति उभी नाय तेने नण पत्र भासण इरी बे. अपर-

મુનિઃ શીતેઽતિક્રાન્તે ક્રમેણ તાન્યપિ વસનાનિ પરિત્યજેદિતિ દર્શયતિ-  
'અહ પુણ' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહ પુણ એવં જાણિજ્ઞા ઉવાઙ્કંતે સ્વલુ હેમંતે  
ગિમ્હે પઢિવન્ને અહાપરિજુન્નાઈં વત્થાઈં પરિટ્ટવિજ્ઞા, અદુવા  
સંતરુત્તરે અદુવા ઇગ્ગસાડે અદુવા અચેલે લાઘવિયં આગમમાણે  
તવે સે અભિસમન્નાગણ ભવઈ ॥ સૂ૦૨॥

છાયા—અથ પુનરેવ જાનોયાત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ સ્વલુ હેમન્તો ગ્રીષ્મઃ પ્રતિપન્નઃ  
યથાપરિજીર્ણાનિ વહ્નાણિ પરિષ્ઠાપયેત્, અથવા સાન્તરોત્તરઃ, અથવા અવમચેલઃ,  
અથવા એકશાટઃ, અથવા અચેલઃ, લાઘવિક્રમાગમયન્, તપસ્તસ્યાભિસમન્નાગવ  
ભવતિ ॥ મૂ૦ ૨ ॥

જો ધારણ કરતા હૈ વહ અવમચેલિક હૈ । ઁસે વસ્ત્ર મુનિયૉકે પાસ  
હોતે હૈ, ક્યૉ કિ વે હીન જીર્ણ ઔર શીર્ણ વસ્ત્રવાલે હોતે હૈ । યે હી  
તીન વસ્ત્ર ઔર ઁક પાત્ર યે, ચાર હી ઇન સ્થવિરકલ્પધારી સાધુઔકે પાસ  
સામગ્ય-સાધન હૈ, અન્ય નહીં ।

ઢોરેસહિત મુંહપત્તી, રજોહરણ ઔર પહિરનેકા ઁક વસ્ત્ર ઇનકે  
સિવાય અન્ય યે પૂર્વોક્ત તીન વસ્ત્ર ઔર ઁક પાત્ર મુનિરસતે હૈ, ઇનસે  
અધિક નહીં । હાં ઇન તીનમૈં ચાહે તો વહ કમ હી કર સકતે હૈ પર  
ઈન્હે વઢા નહીં સકતે ।

અધિક યાચનાકી ભાવના કરના હી જવ મના હૈ તો ફિર  
વતુર્થ વસ્ત્રકી વહ યાચના કર ભી કૈસે સકતે હૈ ? વિહારમૈં વહ સિંહ  
કી તરહ વિચરે-વસ્ત્રૉકી તરફસે નિશ્ચિત રહે-કારણ કિ વે ઇતને

જેની પાસે ઢોય છે એટલે યાવા વસ્ત્રને જે ધારણ કરે છે તે અવમચેલિક છે  
એવા વસ્ત્રો મુનિઓની પાસે ઢોય છે, કારણ કે તે છૂર્ણ શીર્ણ વસ્ત્રોવાળા  
હોય છે એ જ વસ્ત્ર અને એક પાત્ર, આ ચાર જ આ સ્થવિરકલ્પધારી  
સાધુઓની પાસે સામગ્ય-સાધન છે, બીજુ નહીં ।

હોરા સાથે મુંહપત્તી, રજોહરણ અને પહેરવાતુ વસ્ત્ર ઉપરાત વસ્ત્ર વસ્ત્ર  
અને એક પાત્ર મુનિ રાખી શકે છે, એનાથી અધિક નહીં આ વસ્ત્રનાથી જે  
તે ચાહે તો ઝોછા કરી શકે છે પણ વધારી શકતા નથી ।

વધુ વસ્ત્રોની યાચનાની ભાવના કરવી એ પણ બ્યારે મના છે તો ચોથા  
વસ્ત્રની તે યાચના પણ કઈ રીતે કરી શકે છે નિહારમા તે સિંહની માફક  
વિચરે-વસ્ત્રોની પાખતમા નિશ્ચિત રહે, કારણ કે તે એટલા મૂલ્યવાન

टीका—‘अथे’-त्यादि, स मिथुरय पुनरेवं मानीयात् यद् उपातिक्रान्तः= व्यतीतः सख इमन्तः=शीतसमयः प्रतिपन्नः=मातृभ ग्रीष्मः=उष्णसमय तदा स मिथु यथापरिजीर्णानि रक्षाणि परिष्ठापयत्=परिहरेत्-यद् यद् जीर्णं संजात वक्ष्यपरिष्पस्य सङ्ग्रहिता विचरेदित्यर्थः। व्यतीते शीतसमय द्यत्र-काल पुरुषस्व-मावन शीतवाधायां सत्यां किं कर्तव्यमित्याह-‘ सान्तरोत्तरः ’ इत्यादि, अपवा=

अधिक मूल्य एवं प्रमाणमें अधिक होते ही नहीं हैं जो चौरोंके मनको बिगाड़ सकें, हीन, जीर्ण और मलिन वे वस्त्र होते हैं-मलां चौर ऐसे वस्त्रोंको छेकर करेगे ही क्या? अतः इन वस्त्रोंको छुपानेकी साधुको किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये ॥सू०१॥

अथ सूत्रकार ‘ शीतकाल व्यतीत हो जाने पर क्रमः २ से उन वस्त्रों का भी साधुको परिस्त्राग कर देना चाहिये ’ यह मर्शित करते हैं-  
“अह पुण ” इत्यादि ।

बह मिथु इस बातको जाने कि-हेमन्तकाल व्यतीत हो चुका है और ग्रीष्मसमय आ गया है उस समय बह मिथु जीर्ण वस्त्रोंको परिष्ठापित कर दवे-जो जो जीर्ण हो चुके हों उन २ का परिस्त्राग कर निःसंग बने । शीत समयके व्यतीत होने पर भी यदि क्षेत्र काल और पुरुषस्वभाव को ले कर शीतवाधा उपस्थित हो जाय तो वह क्या करे ? इस प्रकारकी आशङ्कका उत्तर “सतस्तरे” इत्यादि सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-‘अथवा’ यह पद पश्चान्तरमें है वे कहते हैं-जब इस प्रकारकी परिस्थिति हो तो बह तीन वस्त्र सहित हो जावे, आन्तर-सूतके दो वस्त्र एवं उत्तर-एक प्रावरणरूप ऊनका कम्बल,

जने प्रमाणमें अधिक नहीं होता है औरतु मन लक्ष्यात् कोठी किमतनां दुःखा जने मिलां वस्त्र क्षेत्र के चौर जेने लक्ष्ने करे पक्षु शु ? आधी न्य पकोने छुपाववाणी साधुके देअपक्षु प्रकस्नी केअ न करणी लेअके (सू १)

इवे सूत्रकार इदीनी मासम पुरी यध ज्वा कमे कमे को पकोने त्वाज करी देवा लेअके. जेवु मर्शित करे छे- अह पुण भ-त्यादि

तेमिथु आ वत्त समयके के हेमन्तकाल पूरा यधनुदेले छे जने ग्रीष्म समय आणी जये छे आ यभते तेमिथु लज्जं पकोने त्वाज करे-के के लज्ज यध जया क्षेत्र जेने त्वाज करी निःसंग जने इदीना समय व्यतीत यध ज्वा कर्ता पक्षु क्षेत्र काल जने पुरुषस्वभावना कारणे इदीने उपद्रव यध ज्वा ते शु करे ? आ प्रकारनी आशङ्काने उत्तर सन्तरोत्तरे” इत्यादि सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करे छे-“अथवा” आ पद पश्चान्तरना छे तेजो इडे छे-अथरे आ प्रकारनी परिस्थिति कधी बाध वेते ते पक्षु वस्त्र धारण करी ले. आन्तर-

पश्चान्तरे स सान्तरोत्तरः आन्तरं=मूत्रवस्त्रद्वयम् उत्तर=प्रावरणवस्त्र, ताभ्यां सहितो वस्त्रत्रयवान् भवेत्, शीतवाधया क्वचित् शरीरमाच्छादयेत्, क्वचिच्च शीतशङ्कया पार्श्वे स्थापयेत् न तु तत्परित्यजेत्। अथवा सः अवमचेलः=मूल्यतः प्रमाणतश्च हीन-जीर्णवस्त्रवान् भवेत्-कल्पनीयेषु त्रिषु वस्त्रेषु मध्ये चैकपरिहारेण वस्त्रद्वयं धारयेदिति भावः। अथवा शनैः शनैः शीतापगमे एकश्चाटकः द्वितीयवस्त्रपरित्यागेनैक-वस्त्रधारी भवेत्। अथवा सर्वथा शीतापगमे चैकमपि वस्त्रं परिहृत्य अचेलः=प्राव-रणवस्त्ररहितो भवेत्। केवलं सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणलज्जावस्त्रोपधिकः सन् विद्वेत्।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है। क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी बाधा आई हुई उसे ज्ञात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रख लेवे। जब शीतकी बाधा उसे होवे तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतबाधा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोंका त्याग न करे। अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे। कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे। शीत जैसेर व्यतीत हो जैसेर यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब बिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे। पासमें केवल एक धागेसहित मुखवस्त्रिका रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे।

सूतरना ये वस्त्र तेभ्य उत्तर-એક પ્રાવરણુરૂપ બિનની કબલ, આ સહિત થવાનું નામ સાન્તરોત્તર છે. ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવની અપેક્ષાથી એ ઠંડીની બાધા આપેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત એ વસ્ત્ર સૂતરના અને એક બની કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખી લે. જ્યારે ઠંડીને ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે એને ઓઢી લે ઉપદ્રવ ઓછો થતા પોતાની પાસે રાખે પણ વસ્ત્રોને ત્યાગ ન કરે. અથવા—તે અવમચેલ રહે-હલકા બુના વસ્ત્ર રાખે, કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રો માઠી એકનો પરિત્યાગ કરી એ વસ્ત્ર રાખે ઠંડી ઓછી થતા આ એ વસ્ત્રોમાંથી પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તણ દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સંપૂર્ણપણે ઠંડી ઓછી થઈ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રનો પણ તે ત્યાગ કરી દે આ રીતે તે પ્રાવરણુ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય પોતા પાસે રૂકત દોરા સાથેની એક મુહપત્તી એક રનેહરણુ અને લગ્ન સાચવવાના હેતુથી એક પહેરવાનું વસ્ત્ર, આટલું જ રાખે, બાકી કાંઈ નહીં.



द्विर्ध्रं क्रमपैकैक वसनं परिहार्यमित्याह—‘लाघविक’—मित्यादि, ‘लाघ-  
विक’ सपोर्मावा लाघव तद् यस्यास्तीति लाघविकस्तं लाघविकं=स्यात्मानम्  
भागमयन्=सम्पादयन् मिधुः क्रमेण वसनं परिहरेत् । यद्वा—लाघविकं=देशोपकरणे  
कर्मणि च लघुताम् भागमयन्=सम्पादयन् स वसनं परिचर्नयेत् । तस्य=एतादृशस्य  
मिश्रो एव करणे तपः=कायकलेसरूपम् अमित्यन्वनागतं=प्राप्त भवति कायकलस्य  
तपोमहत्वात्, तथा हि—“ पंचहिं ठाणेहिं समगार्णं निर्मयाण अभ्येसगते पसत्थ  
मपइ, १ जहा-अपा पबिलहा १ वेसासिए रूप, २ तवे मधुमए, ३ लाघवे  
पसत्थे, ४ कितले इदियनिमाह ॥ ” छाया-पश्चमिः स्थानैः भ्रमण्यानां निर्ग्रन्थानाम  
षेष्ठकस्य प्रथमं भवति—अन्त्या प्रतिष्ठेत्सना १, वैश्रासिक रूप २, तथाऽनुमतं ३,  
लाघव मशस्य ४, विपुल इन्द्रियनिग्रहः ५ । इति ।

मुनीनां वल्लभाघवेन प्रतिलेखनाऽन्यत्वं १ विद्यासयाप्रत्य २ तपःसद्भाष  
३ प्रवृत्तलाघवं ४ प्रपुष्टतरन्द्रियनिग्रहत्वं ५ च भवति भाषः ॥ सू०२ ॥

यह एकर घस्रके परिहारका जो यहाँ क्रम यतलाया है उसका मतलब  
केवल इतना ही है कि इन पूर्वोक्त तीन घस्रके रहनेसे आत्मामें लाघव  
नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव लानेके ही अमित्यापी होते हैं  
मतः क्यों २ इनका परित्याग होगा क्यों २ आत्मामें इनके हटनेसे इन  
संबंधी नारका भी अभाव हो जायगा। इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव  
नामका गुण प्रकट होगा। इस प्रकारसे रहनवाले उस पश्चिमाधारी स्व-  
विरक्तस्पी मिधुके कायकलेश नामक तप आचरित होता है। कायकलेश  
यह वादा तपका एक सेद है, जैसे—“ पचहिं ठाणेहिं ” इत्यादि, अर्थात्-  
अत्यवस्र रहनेसे पांच स्थानोंद्वारा निर्ग्रन्थ भ्रमणोंका अखेलपना प्रशस्त

अ रीते जेह जेह वखने। त्याग जे रीत अलाववामां अनेक छे जेने।  
मवलण इकत जेठलेण छे छे—जे पूर्वोक्त वख वखो तपवामां अन्धामां  
लाघव नहिं आवे। मुनिजनोने आत्मा मुदा सतोषी अने ठोड पख प्रकारनी  
आकांक्षा वजसने छेवे जेठजे, जाधी नेम जेम त्याग धतो स्के तेम तेम  
अन्धामां अना इर ववामी जे सलधी कारने। पख अलाव वाप छे अने जेधी  
अन्धामां जेह प्रकारने लाघव नामने छुख प्रजट वाप छे आ प्रकारनी रहेववाण  
ते पठिमाधारी स्वविरक्तधी किधु कायकलेश नामना तपने आवसनास होव  
छे कायकलेश जे नारा तपने जेह वेह छे नेन— पचहिं ठाणेहिं ” इत्यादि  
अव वख रापवाधी पांच स्थाने दास निर्ग्रन्थ भ्रमणां अखेलपई प्रशस्त

पक्षान्तरे स सान्तरोत्तरः आन्तर=सूत्रसङ्घटयम् उत्तर=प्रावरणवस्त्र, ताभ्या सहितो वस्त्रयवान् भवेत्, शीतवाधया क्वचित् शरीरमाच्छाद्येत्, क्वचिच्च शीतशुद्ध्या पार्श्वे स्थापयेत् न तु तत्परित्यजेत्। अथवा सः अमचेलः=मूल्यतः प्रमाणतश्च हीन-जीर्णवस्त्रवान् भवेत्-कल्पनीयेषु त्रिषु वस्त्रेषु मध्ये चैरुपरिद्वारेण वस्त्रद्वय धारये-दिति भावः। अथवा शनैः शनैः शीतापगमे एकश्चाटकः द्वितीयवस्त्रपरित्यागेनैक-वस्त्रधारी भवेत्। अथवा सर्वथा शीतापगमे चैत्रमपि वस्त्र परिहृत्य अचेलः=प्रा-रणवस्त्ररहितो भवेत्। केवल सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणलज्जाखोपधिरुः सन् निहरेत्।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है। क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी वाधा आई हुई उसे जात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रख लेवे। जब शीतकी वाधा उसे होवे तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतवाधा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोका त्याग न करे। अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे। कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे। शीत जैसेर व्यतीत हो जैसेर यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब थिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे। पासमें केवल एक धागेसहित मुखवस्त्रिका रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे।

सूतरना ये वस्त्र तेमञ्ज उत्तर-એક પ્રાવરણરૂપ ઊત્તરી કબલ, આ સહિત થવાનુ નામ સાન્તરોત્તર છે. ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવની અપેક્ષાથી જો ઠંડીની બાધા આવેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત યે વસ્ત્ર સૂતરના અને એક ઊની કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખ્યા હે. જ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે એને ઝોઢી લે ઉપદ્રવ ઝોઢે થતા પોતાની પાસે રાખે પણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ ન કરે અથવા—તે અવમચેલ રહે-હલકા જુના વસ્ત્ર રાખે, કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રો માથી એકનો પરિત્યાગ કરી યે વસ્ત્ર રાખે ઠંડી ઝોઢી થતા આ યે વસ્ત્રોમાથી પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તણ દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સપૂર્ણપણે ઠંડી ઝોઢી થઈ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રનો પણ તે ત્યાગ કરી દે આ રીતે તે પ્રાવરણ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય પોતા પાસે રૂકા ઢોરા સાથેની એક મુહપત્તી એક રજોહરણ અને લજ્જા સાચવવાના હેતુથી એક પહેરવાનુ વસ્ત્ર, આટલુ જ રાખે, બાકી કાઈ નહીં

किमर्थं क्रमजैकैक वसनं परिहार्यमित्याह—‘लाघविक’—मित्यादि, ‘लाघविकं’ सपोर्माधो लाघवं तद् यस्यास्तीति लाघविकस्तं लाघविकं=स्वात्मानम् भागमयन्=सम्पादयन् मिथु क्रमण वसनं परिहरत् । यद्वा—लाघविकं=वेदापरकरणे क्रमभि च लघुताम् भागमयन्=सम्पादयन् स वसनं परिवर्तयत् । तस्य=पतादस्य मिसो एष करणे तपः=कायकलेष्वरूपम् अभिसयन्नागते=प्राप्त भवति कायकलेष्वस्य तपोभद्रत्वात्, यथा हि—“ पंचहिं ठाणेहिं समणाणं निर्मयाणं अचेत्तगणं पसत्थे म्भइ, तं अहा—अप्पा पबिलेहा ? वेसात्थि रूढे, २ तुवे अजुमए, ३ लाघवे पसत्थ, ४ चित्तल इंदियनिमाइ ॥ ” छाया—पञ्चमि स्थानैः भ्रमणानां निर्घन्यानाम चेतस्त्व मशस्तं भवति—अस्या प्रतिषेधना ? , पैथात्थि रूपं २, तपाऽनुमत ३, लाघवं मशस्त ४, चिपुल इन्द्रियनिग्रहः ५ । इति ।

मुनीनां वस्त्रभाषवनं प्रतिषेधनाऽस्त्वत् १ विधासपात्रत्वं २ तपःसञ्चारः ३ प्रशस्तलाघवं ४ प्रभूततरन्त्रियनिग्रहत्वं ५ च मनति भावः ॥ मू०२ ॥

यह एकद वस्त्रके परिहारका जो यहाँ क्रम पतलाया है उसका मतलब केवल इतना ही है कि इन पूर्वोक्त तीन वस्त्रोंके रचनेसे आत्मामें लाघव नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव लानके ही अभिलाषी होते हैं अता ज्यों २ इनका परित्याग होगा त्यों २ आत्मामें इनके इतनेसे इन संपर्क भारका भी अभाव हो जायगा । इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव नामका गुण प्रकट होगा । इस प्रकारसे रहनबाले उस पंडिमाधारी स्थ विरकल्पी मिथुके कायकलेश नामक तप आचरित होता है । कायकलेश यह वाक्य तपका एक भेद है, जैसे—“ पंचहिं ठाणेहिं ” इत्यादि, अर्थात्—अल्पवस्त्र रचनेसे पाँच स्थानोंद्वारा निग्रन्ध भ्रमणोंका अचेतपना प्रशस्त

आ रीते जेक जेक वस्त्रना त्याग ले रीत अदाववाभां अनेक छे जेना भवदल इकल जेठबोले छे छे—जे पूर्वोक्त तप वस्त्रा सजवाधी आत्माभां लाघव नहि आवे मुनिजननेने आत्मा मल सतापी अने कोर्ध पल प्रकाशनी आर्काश वजनने बोवे जेठजे, आधी जेठ जेठ त्याग बतो रदे तेम तेम आत्माभां अन्य दूर यवाधी जे स लधी वारना पल अभाव भाव छे अने जेधी आत्माभां जेठ प्रकाशने लाघवनाभने जुलु प्रज् पाय छे आ प्रकाशधी श्लेषाया ते पंडिमाधारी स्थविरकक्षपी मिथु कायकलेश नामना तपने आवस्तास हीय छे । कायकलेश जे वस्त्र तपने जेठ बंद छे जेन—“ पंचहिं ठाणेहिं ” छत्यादि अथ वस्त्र सजवाधी पाय स्थानो दास निम ५ भ्रमणानु अचेतपनु प्रशस्त

સ્વમતિપરિકલ્પિતત્વનિરસનાયાદિ-‘જમેય’ इत्यादि,

મૂલમ્-જમેયં ભગવયા પવેદ્યં તમેવ અભિસમિચ્ચા સઠ્વઓ  
સઠ્વત્તાણ સમત્તમેવ સમભિજાણિજ્ઞા ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિત તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્ય-  
ક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ મૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘ય’-દિત્યાદિ, યત્=પૂર્વોક્તં તદેતત્સર્વં ભગવતા=મહાવીરેણ પ્રવેદિત=  
દ્વાદશપર્ષદિ પ્રરૂપિતમ્, મુનિઃ તદેવ=પૂર્વોક્તમેવ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારૈઃ સર્વાત્મતયા  
સકલાત્મભાવેન અભિસમેત્ય વિચાર્ય=સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્=આસેવનપરિ-  
જ્ઞયા સેવેત । યદ્વા-‘સમત્વમેવે’-તિચ્છાયા, તેન સમત્વમેવ=સચેલાઽચેલાવસ્થયોઃ  
સમાનભાવમ્ સમભિજાનીયાત્ ॥ મૂ૦ ૩ ॥

હોતા હૈ, વે પાંચ સ્થાન યે હૈ-૧ પ્રતિલેખના કી અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,  
૩ રેતપકા સદ્ ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલલુપ્તા, ૫ પ્રભૂતતર ઈન્દ્રિયોંકી નિગ્રહતા ॥ મૂ૦ ૩ ॥

સૂત્રકાર અપનેકથનમ્ અપની મતિદ્વારા કલ્પિતતાકા નિવેધ કરનેકે  
લિપે કહતે હૈ-‘જમેયં’ इत्यादि ।

જો કુછ ઝપર કહા ગયા હૈ વહ સય ભગવાન્ મહાવીરદ્વારા અપની  
બારહ પ્રકારકી સભાઓમ્ પ્રરૂપિત હુઆ હૈ અતઃ મુનિ ઇસ પૂર્વોક્ત કથન  
કા સર્વ પ્રકારસે વિચાર કર ઇસે સત્યરૂપ સે હી જાને । અથવા “સમ-  
ત્તમેવ” કી છાયા “સમત્વમેવ” ખી હોતી હૈ, ઇસ્કા અર્થ યહ હૈ કિ  
પૂર્વોક્ત કથન ભગવાન્ દ્વારા હી કથિત હુઆ હૈ, અતઃ મુનિ સચેલ ઔર  
અચેલ ઇન દોનોં અવસ્થાઓમ્ સમાન ભાવકા આસેવનપરિજ્ઞાસે  
સેવન કરે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

હોય છે તે પાચ સ્થાન આ છે—૧ પ્રતિલેખનાની અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,  
૩ તપનો સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલલુપ્તા, ૫ પ્રભૂતતર ઈન્દ્રિયોંની નિગ્રહતા (સૂ૦૨)

સૂત્રકાર આ કથનમા પોતાની મતિ-અનુસાર કલ્પિતતાનો નિવેધ કરતા  
કહે છે-“જમેયં” इत्यादि

જે કાઈ ઝપર કહેવાઈ ગયું છે એ બધું ભગવાન મહાવીરદ્વારા બાર  
પ્રકારની સભાઓમા પ્રરૂપિત થયેલ છે, આથી મુનિ આ પૂર્વોક્ત કથનનો સર્વ  
પ્રકારથી વિચાર કરી આને સત્યરૂપથી જ જાણે અથવા “સમત્તમેવ”ની છાયા  
‘સમત્વમેવ’ યહુ થાય છે આનો અર્થ એ છે કે પૂર્વોક્ત કથન ભગવાનનું  
જ ઝહેલ છે આથી મુનિ સચેલ અને અચેલ આ બન્ને અવસ્થાઓમા સમાન  
ભાવનુ આસેવનપરિજ્ઞાથી સેવન કરે (સૂ૦૩)

शरीराशक्तया मन्वाध्यवसाये सति किं कर्तव्यमिति-दर्शयति- 'नस्त यं' इत्यादि ।

सूत्रम्-जस्त ण भिक्खुस्स एव भवइ-पुट्ठो खल्ल अहमसि  
नालमहमसि सीयफास अहियासित्तप, से वसुम सठवसमन्ना  
गयपन्नाणेण अप्पाणेण केइ अकरणयाए आउहे तवस्सिणो वु  
त सेय जमेगे विहमाइए तरथवि तस्स कालपरियाए, सेऽपि  
तरथ विअतिकारए, इच्छेय विमोहायतण हिय सुह खम  
निस्सेयस आणुगामिय-तिथेमि ॥ सू० ४ ॥

श्या-यस्य खल्ल मिश्रोरेषं भवति-स्पृष्टं स्वस्वहमस्मि नालमहस्मि शीतस्पर्श-  
मभ्यासितुम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रदानेनाऽऽत्मना कश्चिदकरणतयाऽऽवृतस्त-  
पस्मिन्स्तवप भया यदको विहायआदिकं, तत्राऽपि तस्य कालपर्यायः, सोऽपि तत्र  
अप्यन्तिकारका, इत्यतश्च विमोहायतने रितं सुखं क्षमं निःभयसमानुगामिभूमिति  
ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका- 'यस्य'-त्यादि, यस्य=पूर्वोक्तस्य मिश्रोः=मुनेः खल्ल, एषं=वक्ष्यमा  
णोऽध्यवसायो भवति, समेषाह-अहं स्पृष्टः=रोगात्कृतेः शीतादिना कामिन्युपसर्गेण वा  
पीडितोऽस्मि, शीतस्पर्श=शीतजन्यदुःखविशेषं योपियुपसर्गं भाष्यशीतस्पर्शं वा  
मभ्यासितुम्=भषितोऽहमहं नाहं=न समर्थोऽस्मि । समुत्पिते च कामिन्युपसर्गे  
प्रतिकारान्तरविधानासमर्थः समयपरिपासका मुनिस्तदा किं कुर्यादित्याह-'सक्कु

शरीर अशक्त होनेके कारण यदि अध्यवसायोमें मंदता आ जाय  
तो मोक्षार्थी मुनिके क्या करना चाहिये ? इसे सूत्रकार प्रदर्शित करते  
हैं-'जस्त यं' इत्यादि ।

जिस्त मुनिके इस प्रकारका अध्ययमाण अध्यवसाय होता है कि  
"मैं रोगके आतङ्कसे, शीत आदिके स्पर्शसे, अथवा भाषशीत-कामिनीके  
उपसर्ग-से पीडित हूँ, मैं इस शीतजन्य दुःखविशेषको अथवा, भाष  
शीतस्पर्शरूप कामिनीके उपसर्गको सहनके लिये समर्थ नहीं हूँ" उस

शरीर अशक्त भवत्ये नो अध्यवसायोभा म इत्या आवी भाष तो मोक्षार्थी  
मुनिजे ह्यं इत्युं नोभयो आ वात सुवका सुवद्राय प्रदर्शित इरे उ- 'जस्त यं' इत्यादि  
के मुनिभां आ प्रकाशने-अध्ययमाण अध्यवसाय होय उ हे- "हं रोगेना  
उपसर्ग, शीत वरेरेना स्पर्शशी अथवा भाषशीत-कामिनीना उपसर्ग-से पीडित  
हूँ आ शीतना दुःख विशेषने अथवा भाषशीतस्पर्शरूप कामिनीना उपसर्गने सहन  
५३

मान्' इत्यादि, सः=पूर्वोक्तविचारवान् कोऽपि=उपसर्गसहनाक्षमः सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=समुपलब्धहेयोपादेयविशिष्टज्ञानवता, आत्मना=अन्तःकरणेन अकरणतया=उपसर्गप्रतीकारस्याकरणप्रतिज्ञया आवृतः=व्यवस्थितः वसुमान्=चारित्र्यधनो मुनिर्भवति । तादृशः किं कुर्यादित्याह—'तपस्विनः' इत्यादि, यत् यस्मिन् काले स्त्री भिक्षार्थमागतं मुनिं मोहयित्तुमुद्यता तं न मुञ्चति, सर्वथोपसर्गयित्तुमिच्छत्येव तद्=तदा तपस्विनः=चिरकालोपार्जितसंयमपर्यायस्य तपोधनस्यापसर्गाभिभवाऽसहि-

समय वह मुनि कि जो चारित्र्यका पालक है एवं कामिनी आदिके उपसर्ग उपस्थित होने पर उसके अन्य प्रतिकार करनेमें असमर्थ है तो क्या करे? इस का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—वह मुनि जिसके चे पूर्वोक्त विचार हैं अपने अन्तःकरणसे कि जो समुपलब्ध हेय और उपादेयके विशिष्ट ज्ञानसे युक्त है उस आये हुए उपसर्गको अच्छी तरह अकरणपनेसे सहन करे, अर्थात् मेरे ऊपर जो यह उपसर्ग स्त्री आदि द्वारा उपस्थित किया गया है मैं उसके अनुकूल कभी नहीं होऊँगा—विषयादिकों का सेवन इसके साथ कभी नहीं करूँगा चाहे प्राण भले ही निकल जावें, इस प्रकारकी अकरणपरिज्ञासे युक्त होता हुआ अपने चारित्र्यरूप धन का रक्षक बने। इस प्रकारसे जब उसकी दृढ़ता होगी तो भिक्षाके लिये आये हुए उस मुनिको मोहित करनेके लिये उद्यत कोई भी स्त्री—कामिनी उसे वश करनेके लिये जब भरपूर चेष्टा करती है, उसके संयमरूपी रत्नको छूटनेके लिये वह कोई भी बनता उपाय नहीं छोड़ती है, अथवा

करवामा असमर्थं छु" એ સમયે તે મુનિ કે જે ચારિત્રના પાલક છે અને કામિની આદિના ઉપસર્ગો ઉપસ્થિત થતા એની સામે પ્રતિકાર કરવામા અસમર્થ છે તે શું કરે? આને ઉત્તર આપતા સૂત્રકાર કહે છે કે—એ મુનિ જેના પૂર્વોક્ત વિચાર છે પોતાના અન્ત કરણથી કે જે સમુપલબ્ધ હેય અને ઉપાદેયના વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી યુક્ત છે એ આવેલા ઉપસર્ગને સારી રીતે અકરણપણથી સહન કરે, અર્થાત મારા ઉપર જે આ ઉપસર્ગ સ્ત્રી આદિ દ્વારા ઉપસ્થિત કરવામા આવેલ છે હું તેને અનુકૂળ કદી પણ નહીં બનુ—વિષયાદિકેનુ સેવન એની સાથે કદિ નહિ કરું આહે મારા પ્રાણ ભલે નિકળી જાય. આ પ્રકારની અકરણપરિજ્ઞાથી મહત્તમ રહી પોતાના ચારિત્રરૂપ ધનના રક્ષક બને, આ પ્રકારે જે એનામા દૃઢતા હોય તો ભિક્ષાને માટે આવેલ એ મુનિને મોહિત કરવા તત્પર થયેલ કોઈ પણ સ્ત્રી—કામિની એને વશ કરવા માટે જ્યારે ભરપૂર ચેષ્ટા કરે છે, એના સંયમરૂપી રત્નને છૂટવા માટે તે કોઈ પણ બનતો ઉપાય છોડતી નથી, અથવા કોઈ નિર્દોષ

प्यो केनापि जनेन कामिन्या सह गृहे प्रवेश्य कुतनिरोपस्य ततो निःसरणोपाय  
मसममानस्य शीलमङ्गमनिच्छतो मुने , विहायभादिकं वैहायसादिकं मरणं भेषः  
प्रवृत्तमस्ति । इत्यमुपसर्गाभिभवे सति स मुनिर्गले पादबन्धनं विपमसत्तं जिह्वाक  
र्षंश्चपरिष्ठात् यत्न वा विभाय प्राप्नान् परिस्थजेत्, न तु चारित्रि स्वभवेदिति पर  
मार्थः । ममौत्सर्गिकैर्मत्कपरिज्ञेत्तमरणपादपोपगमनस्वैर्मरुतैः शरीरपरित्याग एव

कोई निर्लज्ज मनुष्य उस स्त्रीके साथ उस मुनिको कि जिसने बहुत काल  
सयमपर्यायकी अच्छी तरह कमाई की है, और यही तपस्वी धन ही  
जिसके पास एक सहारा है, एवं जो उपसर्गजन्य परामवको सहनेमें  
असहिष्णु है उसको उस घरमें प्रवेश करा देता है और बाहिर नहीं  
निकलने देता है, इस अवस्थामें उस मुनिका कि जिसे वहाँसे निकलने  
का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, और जो अपने शीलके भंगसे डर  
रहा है, उसके लिये यही कर्तव्य मार्ग है कि वह उस समय वैहायस  
आदि मरण भंगीकार करे । अर्थात्—इस प्रकारके उपद्रव आने पर वह  
मुनि गलेमें फांसी लगा कर, विषका भक्षण कर या जिह्वाको  
आकर्षित (लींच) कर अपने प्राणों का विसर्जन कर देवे, यदि कोई  
उपाय उसे हाथ न आ सके तो वह ऊपरसे गिर कर भी मर जावे पर  
अपने अमूल्य प्राणप्यार चारित्र्यकी जोरी अपनी आंखोंके समक्ष न होने  
देवे । यह विचार उस समय अबश्य करे कि—मुझे तो उत्सर्ग मार्ग  
ही अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा था, मैं तो बही चाहता था कि मेरा मरण

मनुष्य को स्त्री साथे को मुनिने के लिये मला हाथी समय पर्यायनी शरी  
कमायी करी है जने को व तपस्वी धनये लेनी पसे कोक सहाये है जने  
ले उपसर्गजन्य पक्षजने सहेनामा असहिष्णु है जने को मरमा प्रवेश  
कसनी धर्म लकार निकलवा देता नहीं जेवी मरुतमा को मुनि के लेना त्वांभी  
निकलवामा को उपाय नहीं सूझता जने ले पीताना शीलना भगधी करी  
सहेत है जने भाठे को व कर्तव्य मार्ग है ते को समये वैहायस आदि मरुत  
अजीकार करे अर्थात्—इस प्रकारके उपद्रव आवनाही ते मुनि अणाम शंभी  
कमायी, विपनु कसकु करी कसवा तो लजने जेवी हाडी पीताना प्राणुत  
विसर्जन करी है को कोर् भीजे उपाय तेने न सहे तो उपरशी पडीने  
पक्ष प्राणुत विसर्जन करी है जसे तेवी आचरति बन्धे पक्ष पीताना अमूल्य  
चारित्र्यनी जोरी पीतानी आंभे साथे न बचा है को समये वा विचार ते  
अवश्य करे है मने तो उत्सर्ग मार्ग भास प्राणु करवा पक्ष पक्ष प्यारी है

શ્રેયાન્, પરન્તુ તેષા ચિરકાલસાધ્યતયા કાલક્ષેપાસદ્વનયોગ્યેઽસ્મિન્નવસરે ન સમ્ભવોઽસ્તિ । ઉપસર્ગશ્ચ સોદુમનર્હશ્ચારિત્રવિરાધકઃ સમુપસ્થિતસ્તસ્માત્સામ્પ્રતમાપવાદિકમપિ તત્ક્ષણનિષ્પાદ્ય વૈહાયસ-ગાર્દ્ધપૃષ્ઠાહ્યં ચાલમરણં પઙ્કિતમરણમેવેતિ ભાવઃ।

નત્તુ વૈહાયસગાર્દ્ધપૃષ્ઠાદિરૂપચાલમરણે સત્યનર્થાધિગમસ્યાગમે દર્શનં યથા—

ભક્તપરિજ્ઞા, ઇક્ષિતમરણ, ઓર પાદપોપગમન, ઇન ત્રીન મરણોંમેં સે કિસી એક મરણકી આરાધનાસે હોતા, પર હાય ! મુજ્જ દુર્ભાગીકે લિયે યહ જીવન કા સુવર્ણ અવસર દેખનેકે લિયે નહીં મિલા । ઇસ પ્રકાર આત્માકી નિંદા કરતા હુઆ વહ સાધુ યહ દેખ કર કિ—“ઇન મરણોંકા સમય ચિરકાલ સાધ્ય હૈ, ઓર યહ સમય અવ કાલક્ષેપ કરને યોગ્ય નહીં હૈ, ઇનકી સમ્ભાવના મી યહાં કૈસે હો સકતી હૈ, યહ ચારિત્રવિધ્વંસક ઉપદ્રવ જો દુર્નિવાર આ કર ઉપસ્થિત હો ગયા હૈ ઇસ લિયે ઇસ સમય યહી અપવાદ-માર્ગરૂપ મરણ મેરે લિયે પંકિતમરણ હૈ, વૈહાયસ, ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ મરણ ચાલમરણ હૈ, પરન્તુ મેરા કામ તો ઇસ સમય ઇનસે હી સાધ્ય હોતા હૈ અતઃ ઇન્હેં હી પંકિતમરણ માન કર મૈં અપના કામ કર હું, ઇસીમેં મેરા કલ્યાણ હૈ, વૈહાયસ આદિ મરણ સ્વીકાર કરે ।

શક્ષા—વૈહાયસ ઓર ગાર્દ્ધપૃષ્ઠરૂપ ચાલમરણસે પ્રાણોંકો છોડનેવાલોં કો અનર્થકી પ્રાપ્તિ આગમમેં બતલાઈ હૈ, જૈસે—

હું તો એ આહું છું કે મારૂ મરણુ ભકતપરિજ્ઞા, ઇક્ષિત મરણુ, અને પાદપોપગમન, આ ત્રણુ મરણુમાથી એક મરણુની આરાધનાથી થાય, પરતુ મારા જેવા હુબોગીને માટે જીવનનો આ સુવર્ણુ અવસર જોવાનો ન મળ્યો, આ રીતે આત્માની નિંદા કરતા કરતા તે સાધુ આ જોઈને—“એ મરણુનો સમય ચિરકાળસાધ્ય છે, અને આ સમય હવે કાલક્ષેપ કરવા યોગ્ય નથી તો એની સલાવના પણ કેમ થઈ શકે ? આ ચારિત્રનો નાશ કરનાર ઉપદ્રવ આથીને પડ્યો છે, એ કારણે મારે માટે આ સમયે અપવાદમાર્ગરૂપ મરણુ પંકિત મરણુ છે વૈહાયસ, ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ વગેરે મરણુ બાળ-મરણુ છે, મારૂ કામ તો આ સમયે આથી જ સાધ્ય બને છે આથી આને જ પંકિતમરણુ માનીને હું મારૂ કામ કરી લઉં આમા જ મારૂ કલ્યાણુ છે” વૈહાયસ આદિ મરણુ સ્વીકાર કરે.

શ કા—વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠરૂપ બાળમરણુથી પ્રાણુ છોડવાવાળાને અનર્થની પ્રાપ્તિ થવાતુ આગમના બતાવેલ છે જેમ—



“इच्छेएणं बाल्मरणेणं मरमाणे जीवे अणत्तेहिं नेरइयमवग्गएणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं मुज्जा मुज्जो परिपइइ” इति । छाया—इत्येतेन बाल्मरणेन चियमाणो जीवो अनन्तैर्नैरयिकमवग्रहणैरात्मानं संयोजयति यावदनादिषु पान्धदग्रं चातुरन्तं संसारकान्तारं भूमो भूयः परिवर्तते” । इति प्रतिपिद्धत्वेन कथं निन्दितमाचरतीति चेदाह—मैयुनं हि सकलस्याऽप्यधर्मस्य मूलं महादोषपुञ्जभूतम्, तत्र च निस्त्रिभुवमङ्गो भवति, तथा चात्त मगन्ता—

“मूलमेयमहम्मसस महादोससमुत्सय ।”

तस्मा महुणसंसमं निमाया वज्जर्यति णं” ॥ १ ॥ (इति वृक्षै० अ० ६)

छाया—मूलमतदधर्मस्य, महादोषसमुच्छ्रयम् ॥

तस्मान्मैयुनसंसमं, निर्धन्या धर्मयन्ति तम् ॥ १ ॥ इति ।

“इच्छेएणं बाल्मरणेणं मरमाणे जीवे अणत्तेहिं णेरइयमवग्गएणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं मुज्जो मुज्जो परिपइइ” इति ।

अर्थात्—इस बाल्मरणसे मरमेवाला जीव अनन्त बार अपनी आत्माको नरकमें डालता है और वह अनादि अनन्त संसारमें परिभ्रमण करता है, इत्यादि, अतः जब आगममें इसका निषेध है तो वह उस निन्दित बाल्मरणका आचरण क्यों करता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि मैयुन सकल अधर्म का मूल है और अनेक दोषोंका पुञ्ज है । इसके सेवनसे समस्त धर्मोक्त भंग होता है । इस प्रकार वृक्षकालिकके अध्ययन छट्टेमें कहा है, जैसे—“मूलमेयमहम्मसस महादोससमुत्सय” इत्यादि । यह मैयुन कर्म अधर्म

इच्छेएणं बाल्मरणेणं मरमाणे जीवे अणत्तेहिं नेरइयमवग्गएणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं मुज्जो मुज्जो परिपइइ” इति ।

अर्थात्—जब बाल्मरणी भस्वावाण एव अनन्तवार पीताना अप्पाने नरकमां नाये छे अने ते अणादि अनन्त संसारमां परिभ्रमण कर्था करे छे इत्यादि । अथवा अधर्ममां जेने निषेध छे तो पछी आवु पाणभरसुतु निन्दित आवु रणु केम करे छे ?

उत्तर—जो न कहेतु जेछेजे. केम के मैयुन सकल अधर्मतु भूण छे अने अनेक दोषोना पुञ्ज छे जेना सेवनशी समस्त धर्मोना लज बाध छे अथ प्रभारे इत्यैकालिकेणं छुम् अध्ययनमां कहेल छे तेम—“मूलमेयमहम्मसस महादोससमुत्सय” इत्यादि. जे मैयुन कर्म अधर्मतु भूण अने महादोषोनी पावु छे,

અતસ્તત્સેવનાપેક્ષ્યાઽઽવવાદિકચાલમરણમપિ પઞ્ચિતમરણમેવેત્યસ્યાત્રૈવ પ્રતિપાદિતત્વાત્ । તદેવ દર્શયતિ—‘તત્ત્વાઽપો’—ત્યાદિ, તત્ત્વાઽપિ=ઉપસર્ગાભિભવાવસરે વૈશ્યસગાર્દ્ધપૃષ્ઠાદિમરણેઽપિ તસ્ય=સમુપસ્થિતોપસર્ગાભિભવસ્ય મુનેઃ કાલપર્યાય પ્વચિરકાલ સંયમપરિરક્ષણ વિદધતો મુનેર્યથા દ્વાદશવાર્ષિકસંલેખનાવિધિના શરીરકૃત્તીકરણપૂર્વકાઽનશનરૂપેણ કાલપર્યાયેણ ભક્તપરિજ્ઞાદિમરણં ગુણાય ભવતિ, તદ્વત્ ત્વાતસ્ય વૈહાયસ—ગાર્દ્ધપૃષ્ઠમરણમપિ ગુણાયૈવેત્યાશયઃ । યઃ કોઽપિ વહુભિરપિ કાલપર્યાયૈર્યાવન્તિ કર્માણ્યપનયતિ તાવન્તિ ચ કર્માણિ સ સ્તોકે નૈવ કાલેન દૂરીકા મૂલ ઓર મહાદોષો કી લ્લાન હૈ । ંસા સમજ્ઞ કર હી નિર્ગ્રન્થ ંસકા સેવન નહીં કરતે હૈં ।

હસલિયે ંસકે સેવનકી અપેક્ષા અપવાદસ્વરૂપ ચાલ મરણ મી પઞ્ચિતમરણ હી હૈ, યહ ચાત યહાં પર પ્રતિપાદિત કી ગઈ હૈ । ંસી વિષયકો સૂત્રકાર દિલ્લાતે હૈ—‘તત્ત્વવિ’—ઈત્યાદિ, ંપસર્ગાજન્ય અભિભવકે સમયમેં વૈહાયસ ંર ંર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ ચાલમરણ હોને પર મી જૈસે ચિરકાલ તક સંયમકી રક્ષા કરનેવાલે મુનિકે લિયે વારહ વર્ષ કી સંલેખનાવિધિસે શરીરકો કૃશ કરનેપૂર્વક અનશનરૂપ કાલપર્યાયસે ભક્તપરિજ્ઞાદિ મરણ લાભદાયક હોતા હૈ ંસી પ્રકાર ંપસર્ગાજન્ય અભિભવ જિસ મુનિકે ંપસ્થિત હો ચુકા હૈ ંસ મુનિકે લિયે વૈહાયસ ંર ંર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ મી લાભદાયક હોતા હૈ । જો કોઈ મી અત્રતી પ્રાણી વહુત કાલપર્યાયો દ્વારા જિતને કર્મોંકા નાશ કરતા હૈ ંતને કર્મોંકા નાશ વહ મુનિ થોડેસે હી કાલમેં કર દેતા હૈ । ંસી અર્થકો પ્રકટ કરતે હુપ

એવુ સમજીને જ નિર્ગ્રન્થ એવુ સેવન કરતા નથી

આ ઠારણે એના સેવનની અપેક્ષા અપવાદસ્વરૂપ બ્રાહ્મમરણુ પશુ પંચિતમરણુ જ છે, એ વાત પશુ અર્હ પ્રતિપાદિત કરવામા આવી છે આ વિષયને સૂત્રકાર બતાવે છે—‘તત્ત્વવિ’ ઇત્યાદિ

ઉપસર્ગજન્ય અભિભવના સમયે વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ બ્રાહ્મમરણુ થવાથી પશુ જેમ ચિરકાળ સુધી સચમની રક્ષા કરવાવાળા મુનિને માટે બાર વર્ષની સંલેખનાવિધિથી શરીરને કૃશ—નબળુ કરવાની સાથે અનશનરૂપ કાલપર્યાયથી ભક્તપરિજ્ઞાદિમરણુ લાભદાયક થાય છે એ જ રીતે ઉપસર્ગજન્ય અભિભવ જે મુનિના ઉપર આવી પડે છે એ મુનિ માટે પશુ વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણુ પશુ લાભદાયક અને છે જેમ કોઈ અત્રતી પ્રાણી લાભા કાળને આતે કાલપર્યાયોદ્વારા જેટલા કર્મોંનો નાશ કરી શકે છે જેટલા જ કર્મોંનો નાશ તે

करोतीति इदम् । तत्रार्थं प्रकृत्यमाह—‘साऽपी—’त्यादि, सोऽपि=वैद्यायसादि  
 क्षरी ‘अपि’ इच्छन् क्लृप्तमन्त्रपरिज्ञादरानुपूर्व्यां न कारकम्, इत्यर्थो द्योत्यते,  
 यत्र वैद्यायसादिमरणे ‘अप्यन्तिकारकः’ चि=विद्युत्पण अन्ति=अप्यन्ति=अन्तक्रिया,  
 तस्यां कारकं अप्यन्तिकारकं=संसारान्तकारके मुनिर्भवति, अत एव तस्य  
 तदा वैद्यायसादिमरणमप्यौत्सर्गिकमवेत्यभिप्रायः । उपसंहारमाह—‘इत्यत’—इत्यादि,  
 इति=पूर्वोक्तम् पठत्=वैद्यायसागाद्गृष्टमरण, विमोहायतनम् चि=चिगतो मोहः  
 अविद्येको यथा तं चिमोहा=माहरहिता महापुरुषास्त्वयाम् आयतनं कर्तव्यतया  
 स्थानम् विमोहायतनम्, एव इति=इत्थम् कल्प्याणकारिणात्, तथा सुख विषय  
 समनन्तं कमनिर्जराप्यकल्प्यावापामन्दानन्दसन्दाहजनकत्वात्, एवं क्षम=समर्थं  
 सूत्रकार ‘सोऽपि’ इत्यादि सूत्राश कर्तते हैं—यहां ‘अपि’ शब्द यह प्रकट  
 करता है कि केवल मन्त्रपरिज्ञा आदिको अनुक्रमसे नहीं करनयाला भी  
 वह वैद्यायस आदि मरण प्राप्त करनेवाला मुनि उस मरणमें भी अन्तक्रिया  
 रूप संसारका अन्त करनेवाला होता है, इसलिये उसका वैद्यायस आदि  
 मरण भी औत्सर्गिक ही है ।

इस विषयका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि यह वैद्यायस  
 और गार्दपृष्ठ मरण विमोहायतन-जिनका मोह-अविद्येक नष्ट  
 हो चुका है ऐसे मोहरहित महापुरुषोंका कर्तव्यरूपसे स्थान-है, यह  
 कल्याणकारी होनेसे हित-इष्ट है, कर्मोंकी निर्जरापूर्वक अभ्यासाथ अमन्द  
 आनन्दपरम्पराका जनक होनेसे यह सुख-सुखस्वरूप है, अर्थात् शिष्यसुखका

मुनि शोध न कल्पना करी है । अथ अर्थने प्रकट करता सूत्रकार “सोऽपि”  
 इत्यादि सूत्राश कहे है—अर्थात् “अपि” शब्द जेवु प्रकट करे है के केवल मन्त्र  
 परिज्ञा आदिने अनुक्रमभी न कल्याणका पक्ष जे वैद्यायस आदि मरण प्राप्त  
 कल्पार मुनि जे मरणमां पक्ष अन्तक्रियारूप संसारने अन्त कल्याणका दोष  
 है, अथ कारवु जेवु वैद्यायस आदि मरण पक्ष औत्सर्गिक न है

अथ विषयने उपसंहार करता सूत्रकार कहे है के अथ वैद्यायस जने  
 गार्दपृष्ठ मरण विमोहायतन-जनेने मोह-अविद्येक नष्ट कर्ममुहेल है, जेवु  
 मोहकहित महापुरुषोंनु कर्तव्यरूपकी स्थान-है जे कल्याणकारी होनाची हित-इष्ट  
 है जे कर्मोंकी निर्जरापूर्वक अभ्यासाथ अमन्द आनन्दपरम्पराके आनन्द होनाची  
 वे सुख-सुखस्वरूप है, अर्थात् शिष्यसुखका आनन्द है, वरु जे प्रकारे पर्यंतोनु

वज्रवत् कर्मविदारणशक्तिमत्त्वात्, तथा निःश्रेयसं-नि श्रेयसकारक कर्मापनयनविधायकत्वात्, एवम् आनुगामिकम् आत्मनो जन्ममरणाद्यनन्तदुःखजालमुच्छेद्य मोक्षानुक्लृप्तगमनकारकत्वात् । एतादृशं मरण तस्य मुनेर्मङ्गलरूपमेव भवतीति भावः । 'इति ब्रवीमी' -त्यस्यार्थस्तृक्त्तरीत्या बोध्यः ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ८-४ ॥

देनेवाला है । वज्र जिस प्रकार पर्वतोंको भेद देता है उसी प्रकार यह मरण भी कर्मोंके विदारण करनेमें समर्थ होनेसे क्षम-शक्तिशाली है । तथा कर्मोंको आत्मासे भिन्न करानेवाला होनेसे यह निःश्रेयस-मोक्षका कारक है, और आत्माको जन्म मरण आदि अनन्तदुःखरूपी पाशका उच्छेदन कर मोक्षकी ओर ले जानेवाला होनेसे आनुगामिक है । ऐसा यह मरण उस मुनिके लिये मङ्गलरूप ही होता है ॥ सू० ४ ॥

॥आठवें अध्ययनका चतुर्थ उद्देश समाप्त ॥८-४॥

छेदन करे छे ये व रीते आवु मरण पञ्च कर्मोनी नाश करवाभा समर्थ होवाथी क्षम-शक्तिशाली छे तथा कर्मोनी आत्माथी भिन्न करनार होवाथी ते नि श्रेयस-मोक्ष आपनार छे अने आत्माने जन्म मरण आदि अनन्त दुःखरूपी शसलावु छेदन करी मोक्षनी तरङ्ग लक्ष जनान होवाथी ते आनुगामिक छे येवु मरण ते मुनिने भाटे मगणइय थाय छे (सू०४)

आठवा अध्ययनने योथो उद्देश समाप्त ॥ ८-४ ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

यस्य चतुर्थे उद्देशे कथ्यमानानन्तरं सम्पत्ति पञ्चमोद्देशः समारम्भ्यते । अस्यानन्तरोद्देशे  
 वाच्यमिति सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे श्रीमन्मृत्युपसर्गोऽभिमन्युप्राप्तौ वैशाख-गार्द  
 इति शिपरीतं मत्तपरिहाराय नामकमहीच्छायादिति प्रतिपादयन् मुनिर्नानावृत्त-  
 त्वात् 'जे निवृत्त' इत्यादि ।

एवम्—जे निवृत्तुं दोहि वरयेहि परिवृत्तिप पायतइपहि,  
 तस्य षं नो एव भवइ—तइय वरय जाइस्तासि । से अहेस  
 पियवाइ वरपाइ जाइज्जा जाव एव खु तस्त निवृत्तुस्त साम  
 मिया अइ पुण पयं जाणिज्जा उवाइकते खलु हेमते गिन्हं पडिवण्णे  
 अहापरिवृत्ताइ वरपाइ परिहविज्जा अवुवा सत्तुरुते, अवुवा ओम

आठवें अध्यायनका पाँचवाँ उद्देश ।

चतुर्थ उद्देशके कथन करने बाद अब पंचम उद्देशका कथन प्रारंभ  
 होता है, इसका चतुर्थ उद्देशके साथ यह संबंध है—वहाँ 'निवृत्तीकार  
 श्री मदि द्वारा कृत उपसर्गसे अभिमन्यु प्राप्त होने पर मुनिजीके अन्य  
 उपायके अभावसे वैशाख एवं गार्दृष्ट मरण आदि मरण भङ्गीकार  
 पर रूना चाहिये' यह बात समझाई गई है । इस उद्देशमें " ग्लानि को  
 मरण हुआ मुनि इससे शिपरीत नामक मरण भङ्गीकार  
 कर " इस शिपयका वर्णन किया जायगा, मत' मुनिजी न्याननाका  
 वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं— " जे निवृत्तु " इत्यादि ।

आठवा अध्यायनको पाचवो उद्देश

शेष उद्देशका कथन करने पञ्चम उद्देशको आरंभ करने के लिये  
 शेष उद्देशके साथ जो संबंध है—उस निवृत्तीकार श्री मदि द्वारा  
 श्री मदि उपसर्गसे अभिमन्यु प्राप्त होने पर मुनिजीके अन्य उपायके अभावसे वैशाख  
 एवं गार्दृष्ट मरण आदि मरण भङ्गीकार पर रूना चाहिये, जो बात  
 समझाई गई है । इस उद्देशमें " ग्लानि को मरण हुआ मुनि इससे शिपरीत नामक  
 मरण भङ्गीकार कर " इस शिपयका वर्णन किया जायगा, मत' मुनिजी न्याननाका  
 वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं— " जे निवृत्तु " इत्यादि ।

વજ્રવત્ કર્મચિદારણશક્તિમત્વાત્, તથા નિઃશ્રેયસં-નિ શ્રેયસકારક કર્માપનયનવિધાયક-  
ત્વાત્, एवम् आनुगामिकम् आत्मनो जन्ममरणाधनन्तदुःखजालमुच्छेद्य मोक्षानुकूल-  
गमनकारकत्वात् । एतादृश मरण तस्य मुनेर्मङ्गलरूपमेव भवतीति भावः । 'इति  
ब्रवीमी' -त्यस्यार्यस्तृक्करीत्या बोध्यः ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ८-४ ॥

દેનેવાલા હૈ । ચઢ્ર જિસ પ્રકાર પર્વતોંકો ભેદ દેતા હૈ ઉસી પ્રકાર યહ  
મરણ ધી કર્મોંકે ચિદારણ કરનેમેં સમર્થ હોનેસે ક્ષમ-શક્તિશાલી હૈ । તથા  
કર્મોંકો આત્માસે ભિન્ન કરાનેવાલા હોનેસે યહ નિઃશ્રેયસ-મોક્ષકા કારક  
હૈ, ઓર આત્માકો જન્મ મરણ આદિ અનન્તદુઃખરૂપી પાશકા ઉચ્છેદન  
કર મોક્ષકી ઓર લે જાનેવાલા હોનેસે આનુગામિક હૈ । ઈસા યહ મરણ  
ઉસ મુનિકે લિયે મન્ગલરૂપ હી હોતા હૈ ॥ સૂ० ૪ ॥

॥આઠવેં અધ્યયનકા ચતુર્થ ઉદેશ સમાપ્ત ॥૮-૪॥

ભેદન કરે છે એ જ રીતે આવુ મરણ પશુ કર્મોંનો નાશ કરવામા સમર્થ હોવાથી  
ક્ષમ-શક્તિશાળી છે તથા કર્મોંને આત્માથી બિન્ન કરનાર હોવાથી તે નિ શ્રેયસ-મોક્ષ  
આપનાર છે અને આત્માને જન્મ મરણાદિ અનન્ત દુઃખરૂપી ક્ષાલવાલુ છેદન કરી  
મોક્ષની તરફ લઈ જનારા હોવાથી તે આનુગામિક છે એવુ મરણ તે મુનિને  
માટે મ ગણરૂપ થાય છે (સૂ०૪)

આઠમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

## । अथाष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

अथ चतुर्थोद्देशक्यनानन्तरं सम्प्रति पञ्चमोद्देशः समारम्भ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन स्याज्ज्यमिस्त्वन्मन्त्रः-अनन्तरोद्देशेन क्षीममृत्युपसर्गाऽभिमन्त्रमाप्तौ वैश्यास्त-गार्हपत्यैर्दिकं बालमरणं मुनेरापरणीयमित्युक्तम् । इह तु रोगादिना म्भान्मृत्युपसर्गो मुनिस्त्वद्विपरीतं मन्त्रपरिहास्यं मरणमङ्गीकुर्वादिति प्रतिपादयन् मुनेर्भान्मन्त्रास्युपसर्गमित्युक्तं वाच्यप्रक्रमतः-‘जे भिक्खु’ इत्यादि ।

पञ्चम-जे भिक्खु दोहिं वत्थेहिं परिवुत्तिष्ण पायतइयहिं, तस्त ण नो एव भवइ-तइय वत्थ जाइस्तामि । से अइस णिउजाइं वत्थाइं जाइउजा आव एव खु तस्स भिक्खुस्स साम गिया अह पुण एव जाणिजा उवाइकते खलु हेमते गिम्हे पडिवण्णे अहापरिजुझाइं वत्थाइ परिह्विउजा अबुवा संतरुत्ते, अबुवा ओम

### आठवें अध्ययनका पाँचवाँ उद्देशः ।

चतुर्थ उद्देशके कथन करके बाद अथ पंचम उद्देशका कथन प्रारंभ होता है, इसका चतुर्थ उद्देशके साथ यह संबन्ध है-यहां ‘निष्पत्तीकार की भाँति द्वारा कृत उपसर्गसे अभिमन्त्र प्राप्त होने पर मुनिको अन्य उपायके अभावसे वैहायस एव गार्हपत्य मरण आदि मरण अङ्गीकार कर लेना चाहिये’ यह बात समझाई गई है । इस उद्देशमें “ ग्लानि को प्राप्त हुआ मुनि उससे विपरीत मन्त्रपरिहास नामक मरण अङ्गीकार कर ” इस विषयका वर्णन किया जायगा, अतः मुनिकी ग्लानताका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं-“ जे भिक्खु ” इत्यादि ।

### आठमा अध्ययननो पांचमो उद्देश

अथ चतुर्थोद्देशक्यनानन्तरं सम्प्रति पञ्चमोद्देशः समारम्भ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन स्याज्ज्यमिस्त्वन्मन्त्रः-अनन्तरोद्देशेन क्षीममृत्युपसर्गाऽभिमन्त्रमाप्तौ वैश्यास्त-गार्हपत्यैर्दिकं बालमरणं मुनेरापरणीयमित्युक्तम् । इह तु रोगादिना म्भान्मृत्युपसर्गो मुनिस्त्वद्विपरीतं मन्त्रपरिहास्यं मरणमङ्गीकुर्वादिति प्रतिपादयन् मुनेर्भान्मन्त्रास्युपसर्गमित्युक्तं वाच्यप्रक्रमतः-‘जे भिक्खु’ इत्यादि ।

ચેલે, અદુવા ઇગસાડે, અદુવા અચેલે, લાઘવિયં આગમમાણે તવે સે અભિસમન્નાગણ ભવઈ। જમેયં ભગવથા પવેઈયં તમેવ અભિસમિચ્ચા સઠ્વઓ સઠ્વત્તાણ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા । જસ્સ ણં ભિક્ખુસ્સ ઇવં ભવઈ-પુટ્ટો અવલો અહમંસિ નાલમહમંસિ ગિહંતરસંકમણં ભિક્ખારિયગમણાણ, સે ઇવં વયંતસ્સ પરો અભિહંડં અસણં વા ૪ આહટ્ટુ દલહજ્જા, સે પુઠ્ઠામેવ આલોહજ્જા-આડસંતો । ગાહા-વઈ! નો સ્વલ્લુ મે કલ્પઈ અભિહંડં અસણં વા ૪ ભુત્તણ વા પાયણ વા, અન્ને વા ઇયપ્પગારે ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—યો ભિક્ષુર્દ્વાભ્યા વસ્ત્રાભ્યા પર્યુપિતઃ પાત્રતૃતીયાભ્યા, તસ્ય સ્વલ્લુ નો ઇવ ભવતિ—તૃતીય વસ્ત્રં યાચિષ્યે । સ યથૈપણીયાનિ વસ્ત્રાણિ યાચેત યાવત્—ઇવ સ્વલ્લુ તસ્ય ભિક્ષોઃ સામ્યમ્ । અથ પુનરેવ જાનીયાત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ સ્વલ્લુ ઇમન્તઃ, ગ્રીષ્મઃ પ્રતિપન્નઃ, યથાપરિજીર્ણાનિ વસ્ત્રાણિ પરિષ્ઠાપયેત્, અથ વા સાન્તરોચ્ચર, અથવા જવમચેલઃ, અથવા ઇકશાટઃ, અથવા અચેલઃ, લાઘવિકમાગમયન્ તપસ્તસ્યાભિસમન્વાગતં ભવતિ, યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતમ્ તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ । યસ્ય સ્વલ્લુ ભિક્ષોરેવ ભવતિ—સ્પૃષ્ટોઽવલોઽહમસ્મિ, નાલમહમસ્મિ ગૃહાન્તરસક્રમણ ભિક્ષાચર્યાગમનાય, તદેવ વદતઃ પરોઽભિહૃતમશનં વા ૪ આહૃત્ય દદ્યાત્, સ પૂર્વમેવાઽઽલોચયેત્—આયુષ્મન્! ગાથાપતે ! નો સ્વલ્લુ મે કલ્પતેઽભિહૃતમશન ૪ઃભોક્તુ વા પાતું વા, અન્યાનપ્યેવપ્રકારાન્ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—' યો ભિક્ષુ '—રિત્યાદિ, પૂર્વોદ્દેશે ત્રિકલ્પપર્યુપિતઃ સ્થવિરકલ્પિકો ભવેત્, કલ્પદ્વયપર્યુપિતો હિ નિયમતો જિનકલ્પિક—પરિહારવિશુદ્ધિક—યથાલન્દિક

પૂર્વ—ચતુર્થ ઉદ્દેશમે યહ ચતલાયા જા ઝુકા હૈ કિ સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર ઓર ઇક પાત્રસે વ્યવસ્થિત હોય હૈ, અર્થાત્ ત્રણ વસ્ત્રોકો રચનેકે કલ્પવાલા સ્થવિરકલ્પી હોગા । યહાં દો વસ્ત્ર રચનેકા કલ્પ જો પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ ડસસે યહ ઘાત માલૂમ હોતી હૈ કિ દો વસ્ત્રોકે રચનેકા કલ્પવાલા

આગળના સોથા ઉદ્દેશમા એવું ખતાવવામા આવેલ છે કે સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્રથી વ્યવસ્થિત હોય છે, અર્થાત્ ત્રણ વસ્ત્રો રાખવાના કલ્પવાળા સ્થવિરકલ્પી સાધુ હોય છે એ વસ્ત્ર રાખવાનો કલ્પ એ પ્રકટ કરેલ છે તેનાથી એ વાત માલૂમ થાય છે કે એ વસ્ત્રના રાખવાવાળા સાધુ નિયમથી જીવકલ્પી,



—प्रविद्यामतिपन्नेष्वन्यतमोऽत्र कथितः । द्वाभ्यां ब्रह्माभ्यां पर्युपिताः, इत्यनेनैकं  
 धर्मासिद्धोऽपर मौर्धिकाः, इति पृथगे ब्रह्मसामान्यनाभित्वमतिपादनात् । 'जे  
 मित्स्व' इत्याधारम्य 'समवमेव समभिजाणिया' इत्यन्तस्य व्याख्या तद्वत्त्वप्यनस्य  
 प्तुर्पोद्देशान्तर्गत-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-सूत्रव्याख्यावद्विधेया, नधरमत्र पात्रवृत्तीयं  
 स्वार्थं मथताति, एतोऽधिकं न याचेत् । यस्य सत्तु मिथोरेन भवति—अह स्पृष्टः—

साधु नियमसे जिनकल्पी, परिहारविशुद्धिक, यथास्तद्विक एवं प्रतिमा-  
 प्रतिपन्न, इन साधुओंमें से कोई एक होगा। "द्वाभ्यां ब्रह्माभ्यां पर्युपिताः"  
 इस कथनसे यद्यपि सामान्यतया दो ब्रह्मोंके ही रहस्येका कल्प कथित  
 हुआ है परन्तु उन दो ब्रह्मोंमें एक ब्रह्म सूत्रका और एक ब्रह्म ऊनका बना  
 हुआ कम्बल, ऐसे दो ब्रह्म ही परिगणित हुए हैं, अत ब्रह्मसामान्य  
 भयका प्रतिपादन करनेवाले इस ब्रह्म शब्दसे इन दो ब्रह्मोंका ही यहां  
 ग्रहण हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। "जे मित्स्व" यहांसे छे कर  
 "समवमेव समभिजाणिया" यहां तकके पदोंकी व्याख्या इस  
 मध्ययनके बहुर्य उद्देशके अन्तर्गत पहिले दूसरे तीसरे सूत्रोंकी व्याख्या  
 वैसी ही समझनी चाहिये। सममें तीन ब्रह्म और एक पात्रको छेकर व्याख्या  
 की गई है यहां पर दो ब्रह्म एक पात्रको छे कर व्याख्या होगी, बस उनसे  
 इस सूत्रक पदोंकी व्याख्यामें यही विशेषता है, इस लिये इस व्याख्या  
 के अनुसार मुनि अधिक की याचना न करे।

परिहारविशुद्धिक यथास्तद्विक अने प्रतिमाप्रतिपन्न, जेवा साधुओंमेंसे अर्ही कोठ  
 जेकेनु अहंत्वं करेत्त उ "द्वाभ्यां ब्रह्माभ्यां पर्युपिता" अ अथनधी परपि सामान्यतया  
 जे वरने व साधवाने कल्प कथित कयेत्त उ परन्तु ते जे वरनेमें जेके सुतरतु  
 अने जेके वर ऊनतु जनेत्त कम्बल, जेवां जे वर व परिजचित कयेत्त उ भाटे  
 परससामान्य अर्थतु प्रतिपादन करवावाया अ वर राजधी अ जे वरनेमें  
 स्वीकार करेत्त उ जेके समवत्तु जेके "जे मित्स्व" अर्हीधी लठ  
 "समवमेव समभिजाणिया" अर्हि सुधीना परेनी व्याख्या अ मध्ययनना  
 मोका उद्देशना अतर्गत पहिला वीज अने त्रीज सूत्रनी व्याख्या जेवी व  
 समवत्तु जेके नेमां त्रसु वर अने जेके पात्रने लठने व्याख्या करवाया आवेत्त  
 उ, अर्हि जे वर अने जेके पात्रने लठने व्याख्या करी अस जधी अ सूत्रना  
 परेनी व्याख्यायां जे व विशेषता उ, तेने भाटे अ व्याख्यानुसार मुनि  
 अधिकनी याचना न करे.

वातादिरोगविशेषैः पीडितः, अवलः=शक्तिरहितोऽस्मि, अत एव भिक्षाचर्यागम-  
नाय=भिक्षार्थं गृहान्तरसंक्रमण=गेहाद् गेहान्तरगमनं कर्तुम् अहं नालभस्मि=समर्थो  
नैवास्मीति । तदेवम्=इत्येवम् एतादृशायां वदतः साधोः उपलक्षणाद्भवदतोऽपि च  
परः=गाथापतिः प्रकृतिभद्रकः सम्प्रदायानुरक्तो वा अभिहृत=पङ्जीवनिकायविराध-  
नासम्पादितम् अशन=चतुर्विधमाहारम् अभिहृत्य=स्वगृहादितः समानीय दद्यात् ।  
तद्-गृहस्थोपकल्पितमशनादिकं परिहरता जीवनस्पृहारद्वितेन ग्लानेनाऽपि मुनिना  
वीतरागोपदेशमनुगच्छता मरणमपि स्वीकार्यं न तु तदशनादिकं ग्राह्यमित्याशयः ।

उनके वादके पदोंकी व्याख्या इस प्रकार है—जिस भिक्षुके चित्तमें  
इस प्रकारका विचार आता है कि—“ मैं चात आदि रोगविशेषोंसे आ-  
क्रान्त हो कर शक्तिरहित हो गया हूँ अतः भिक्षाचर्या निमित्त  
एक घरसे दूसरे घर जानेकी अब मुझमें शक्ति नहीं रही है ” इस प्रकार  
से कहनेवाले अथवा उपलक्षणसे नहीं कहनेवाले उस साधुके निमित्त  
कोई गृहस्थ, कि जो प्रकृतिसे भद्र एवं अपने सम्प्रदायमें अनुरक्त है,  
वह षड्जीवनिकायकी विराधनासे सपन्न हुए चार प्रकारके आहारको  
अपने घरसे मुनिके स्थानपर ला कर यदि उन्हें देवे तो गृहस्थद्वारा लाये  
गये उस आहारादिकको, अपने जीवनमें भी स्पृहारहित बना हुआ वह  
ग्लान साधु न लेवे, और वीतरागके उपदेशका अनुसरण करनेवाला होनेसे  
वह अपनी मृत्यु तककी भी परवाह न करे । इस अवस्थामें उसकी यदि  
मृत्यु भी हो जाय तो वह अच्छी, पर उसे अकल्पनीय उस अभ्याहृत  
आहारादिकका ग्रहण करना कथमपि ठीक नहीं है । इस लिये जिनक-

तेना पथीना पथोनी व्याख्या आ प्रकारनी छे—जे भिक्षुना चित्तमा आ  
प्रकारना विचार आवे छे के—“ हुं वात आदि रोगोथी व्याकुण भनी शक्तिरहित  
भनी गथेव छु माटे भिक्षाचर्या निमित्त एक घरेथी गीणत घरे जवानी  
हुवे भारामा शक्ति रही नथी ” आ प्रकारथी कडेवावाणा अथवा उपलक्षणथी  
नहीं कडेवावाणा जे साधुना निमित्त कोर्ष गृहस्थ के जे प्रकृतिथी भद्र अने  
पोताना संप्रदायने अनुरागी छे ते षड्जीवनिकायनी विराधनार्थी सपन्न भनेल  
आर प्रकारना आहारने पोताने घरेथी मुनिना स्थानपर लावने ते तेने आपे तो  
गृहस्थद्वारा लाववामा आवेव जे आहारदिकने पोताना लवनमा पणु स्पृहारहित  
भनेल ग्लान साधु न दे, अने वीतरागना उपदेशनु अनुसरण करवावाणा  
होवार्थी ते पोताना मृत्यु सुधीनी परवा पणु न करे आ अवस्थामा कदाय  
तेनु मृत्यु पणु धर्षण्य तो पणु अकल्पनीय जे अभ्याहृत आहारदिकनु अहणु

तथा मुनिं किं कुर्यादित्याह—‘स’ इत्यादि—सः=जिनकरिपकाधन्पतमो मुनि पूर्वमेव=  
 =आहारादिब्रह्मणास्त्रयममेव आसोचयेत्= अषाकमादिदोषदूषिततयाऽभ्याहृततया  
 य प्रासुककम्प्यशनादिकमन्तम मम कल्पतं, तत्सेवनापेक्षया मरणमेष भेष’ इति  
 विचारयत्, तं गृहपतिं संबोधयेष्य, तद्यथा—इ आयुष्मन् ! गावापत ! एतदभ्या  
 हृतमशने घृतविषम् सदोष निर्दोषं वा यथायोग्यं भाक्तुमुपमाकर्तुं वा पातु वा अ-  
 न्यानपि=अन्ननापिचिरिक्तानपि पशु-पाशदिकान् एतत्प्रकारान् अभ्याहृतान्  
 अषाकमादिदोषदुष्टान् वा न मम कल्पत इति, इत्यर्थं दातुमुद्यतं गृहपतिमनासेष-  
 नयाऽऽज्ञापयत् ॥ सू० १ ॥

स्विक भावि मुनिजनों में से कोई भी मुनिजन क्यों न हो वह आहार  
 भाविके ग्रहणके पहिले ही इस बात की आलोचना करकि यह “आहार  
 भादि सामग्री आषाकमी भादि दोषोंसे दूषित होनेसे, एवं अभ्याहृत-  
 खाई गई होनेसे प्रासुक होने पर भी मुझे कल्प्य नहीं है, इसके  
 सेवनकी अपेक्षा मरण ही अच्छा है” ऐसा विचार कर। तथा खाकर देने  
 वाले उस गृहस्थको भी इस प्रकार समझावे कि—“ हे आयुष्मन् ! गृहस्था  
 यह छाया गया चारों प्रकारका आहार, अथवा यथायोग्य पशु पाश आदि  
 अन्य वस्तुएं जो इसी प्रकार की हैं चाहे सदोष हों चाहे निर्दोष हों,  
 मेरे भोग उपभोग एवं पानके योग्य नहीं हैं, क्यों कि य सब आषा  
 कमादिदोषोंसे युक्त हैं । आषाकमादिदोषविशिष्ट आहारादिक  
 सामग्री साधु को कल्प्य नहीं मानी गई, है इस लिये मैं इन सबका  
 परिहार करता हूँ ।” सू० १ ॥

कस्तुं हीं नथा आमां लुनकल्पी आदि मुनिजनोभाषी के। पशु मुनिजन केम  
 न दोष ते आहार आदिजु अकल्पु करवा पकेला न आ पातना विचार करे के  
 “य आहार आदि सामग्री आषाकमी आदि दोषोशी दूषित दोषोशी, अने  
 अभ्याहृत-खावनाम आवेल दोषोशी प्रासुक दोष छता पशु भासा ग्राटे कल्प्य  
 नथी जेना सेवननी अपेक्षा मरण न खाई छे जेवे विचार करे अने लापीने  
 आपनार जे जुद्धस्थने पशु अ प्रकरणी समजावे के— हे आयुष्मन् !  
 जुद्धस्थ ! आ खावनाम आवेल चारे प्रकारने आहार अथवा यथायोग्य पशु  
 पाश आदि अन्य वस्तुओ ने जे प्रकारनी छे, चाहे सदोष होय चाहे निर्दोष  
 होय, भासा लोअ उपभोग अने पानना योग्य नथी केम के जे अणु आषा  
 कमादि दोषोशी करेल छे, आषाकमादिदोषविशिष्ट आहारादिक सामग्री साधुने  
 ग्राटे कल्प्य माननाम आवेल नथी, आ नारे हुं आ जधाने लाज कई हूँ (सू० १)

किं चान्यदप्याह—' जस्स णं ' इत्यादि ।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स अयं पगप्पे—अहं च खलु पडि-  
न्नत्तो अपडिन्नत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं अभिकंख साहम्मि-  
एहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि, अहं वावि खलु  
अप्पडिन्नत्तो पडिन्नत्तस्स अगिलाणो गिलाणस्स अभिकंख  
साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, आहट्टु परिन्नं अणु-  
क्खिस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि ( १ ), आहट्टु परिन्नं  
आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि ( २ ), आहट्टु  
परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि ( ३ ),  
आहट्टु परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जि-  
स्सामि ( ४ )। एवं से अहाकिट्टियमेव समभिजाणमाणे संते  
विरए सुसमाहियलेसे तत्थवि तस्स कालपरियाए से तत्थ  
विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहाययणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं  
आणुगामियं—तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरय प्रकल्पः—अहं च खलु प्रतिज्ञप्तोऽप्रतिज्ञप्तैः,  
ग्लानोऽग्लानैरभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्यं स्वादयिष्यामि, अहं चापि  
खलु अप्रतिज्ञप्तः प्रतिज्ञप्तस्य अग्लानो ग्लानस्य अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्यां  
वैयावृत्यं करणाय । आहत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि, आहतं च स्वादयिष्यामि १,  
आहत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि आहतं च नो स्वादयिष्यामि २, आहत्य परिज्ञां नो  
अन्वेषयिष्यामि आहतं च स्वादयिष्यामि ३, आहत्य परिज्ञां नो अन्वेषयिष्यामि आहतं  
च नो स्वादयिष्यामि ४, एव स यथाकीर्तितमेव धर्मं समभिजानन् शान्तः  
विरतः सुसमाहृतलेश्यस्तत्रापि तस्य कालपर्यायः । स तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद्  
विमोहायतनं हितं सुखं इमं नि श्रेयसमानुगमिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

और भी इसी विषयसे संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करते हैं—  
' जस्स णं ' इत्यादि ।

गी० पद्य आ ७ विषयधी संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करे छे—  
“ जस्स णं ” इत्यादि

टीका—‘यस्ये’-त्यादि, यस्य मिश्रो=परिहारविशुद्धिकस्य यथाखन्दिकस्य वा ‘स्तु’ वाक्यालङ्कारे, अयं वस्यमायः प्रकल्पः=भाषारो मवति । तमेव दर्शयति—‘मा’-मित्यादि, ‘वा’ समुच्चये, ‘स्तु’ वाक्यालङ्कारे, अमतिशयैः=केनाप्यनुक्तैः=वैयाहृत्यकरणाय कनाप्यप्रेरितैरित्यर्थः, अस्मानैः=स्मृषितकार्यसहन शीघ्रैः प्रतिश्रुत=वैयाहृत्यविधानाय प्रोक्तः—‘वयं तव समुचितं वैयाहृत्यं करिष्यामः’-इत्यमिहित वाताहिस्रोमेण तपभर्यादिना वा स्नानः आम् अमिकाहृत्य=निर्जराशु-विष्य साधयिकैः=एककल्पस्यै सपतै क्रियमाणं=विधीयमान वैयाहृत्यं शुभ्राविकं स्नादयिष्यामि=स्वीकरिष्यामि, एतादृशो यस्य मिश्रोः प्रकृत्योऽस्तीति पूर्णेण समन्व’, स भिक्षुस्तार्थं कृत्यं परिरक्षणं मरुपरिहारा यात्रास्यजेत्, न पुनरभिप्रां परिरम्भवेदित्याशयः । पूर्वमितरसाधर्मिकेण विधीयमानवैयाहृत्यानुज्ञाः

सूत्रकार इस सूत्रमें परिहारविशुद्धि समयमात्रे साधुका, भयथा यथाखन्दिक साधुका आचार कैसा होता है ? इस विषयको प्रदर्शित करते हैं—‘वैयाहृत्य करनेके लिये किसी अन्य साधु द्वारा प्रेरित नहीं किये गये ऐसे अग्लान-समुचित कार्यसंपादन करनेमें सहमशील संपत्तोंद्वारा “ इस तुम्हारी समुचित वैयाहृत्य आवि करेंगे ” इस प्रकारसे कहा गया मैं, जो इस समय बालपित्तविक दोषोंसे या तपभर्यासे ग्लान हो रहा हूँ, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेके उद्देशसे एककल्पस्य उन साधुओंद्वारा की गई वैयाहृत्य आविको स्वीकार कर लूंगा ” इस प्रकारका जिस परिहारविशुद्धिका या यथाखन्दिक साधुका कल्प होता है वह भिक्षु उस प्रकारके कल्प-भाषारकी रक्षा करता हुआ अरुपरिहारा नामक मरणद्वारा अपने प्राणोंको छोड़ देने पर अभिम्रहका सण्डन न करे ।

सूत्रकार या सूत्रमा परिहाराविशुद्धि समयमात्रे साधुने अपवा वधा खन्दिक साधुने आचार केवो दोष छे ? या निषवने प्रदर्शित करे छे— वैयाहृत्य करणमाटे शीघ्र अन्य साधुधी प्रेरित न करानेके जेव या ग्लान जेटवे समुचित प्राय संपादन करणमा सहनशील संपत्तों द्वारा “तुं तमारी समुचित वैयाहृत्य आवि करीश जे प्रकारे कहेवाजेत तू जे आ समये नावपित्तविक दोषोधी अपवा तपभर्याधी अग्लान रको भू. पालना कर्मोनी निरस करणमा उद्देशो जेके कल्पस्य साधुजोधी करणमा आवेके वैयाहृत्य आविने स्वीकार करी लखि। ” या प्रकारे जेने परिहारविशुद्धि अने यथाखन्दिक साधुने करण दोष छे त भिक्षु या प्रकारेने तप-भाषारकी रक्षा करीने अरुपरिहारा नामक मरण स्वीकारी पालने प्राण छोडी दे छे पण अभिम्रहनु पालन करवा नही.

भिहिता, इदानीं स एवान्यस्य वैयावृत्यं विदधातीत्याह—‘अह’—मित्यादि, ‘चः’ समुच्चये ‘अपि’ शब्दः पुनरर्थे पूर्वस्माद्विशेषप्रदर्शनाय। अहं पुनः खलु अग्लानः=रोगादिरहितः, अपतिज्ञस्य=वैयावृत्यकरणाय केनाप्यनुक्त, प्रतिज्ञस्य=कथितस्य ग्लानस्य तपसा वात-शूलरोगादिना वा पीडितस्य साधर्मिकस्य=सदृशकल्पिकस्य साधोः करणाय=उपकारार्थं निर्जरामभिकाङ्क्ष्य वैयावृत्यं कुर्यामिति । एतादृशो मुनिभिग्रह-शिखरिशिखरपरिसरपरिचारी प्रतिज्ञा स्वीकृत्य प्राणान् परिहरेन्न त्वभिग्रहमित्याशयः । अभिग्रहस्वरूपप्रकटनाय चतुर्भङ्गिका दर्शयति—‘आहृद्’—इत्यादि,

पहिले किसी साधर्मी साधुने वैयावृत्य करने के लिये अपनी समति प्रदान की पर वह इस समय स्वयं किसी दूसरे साधुकी वैयावृत्य करने में लग गया इसके लिये सूत्रकार “अह”-मित्यादि, सूत्रांश कहते हैं—

“त्रै रोगादिरहित इ, वैयावृत्य करनेके लिये मुझसे किसीने भी नहीं कहा है, इस लिये पूर्वमें कथित ग्लान साधुकी कि जो इस समय तपस्यासे अथवा वात शूल रोग आदिसे पीडित हो रहा है, अपने उपकारके लिये कर्मोंकी निर्जराकी चाहनाके उद्देशको ले कर वैयावृत्य कर हूँ” इस प्रकारकी भावनावाला मुनि कि जो अभिग्रहरूपी पर्वतके शिखर के प्रदेश तक पहुँच चुका है, अभिग्रह स्वीकार कर प्राणोंको छोड़ देवे पर अपने अभिग्रहको न छोड़े ।

सूत्रकार अभिग्रहके स्वरूपको प्रकट करनेके लिये चार भगोंका प्रदर्शन करते हैं—“आहृद्” इत्यादि,

पड़ेला कोई साधर्मी साधुके वैयावृत्य करवा भाटे पोतानी समति आपी पणु ते आ समय कोई जीव साधुनी वैयावृत्य करवाभा लागी गया, आने भाटे सूत्रकार “अह” इत्यादि सूत्रांश कहे छे—

“हु रोगादिकथी रहिन छु वैयावृत्य करवा भाटे मने कोईके कहेल नथी आ भाटे पूर्वभा कहेवाखेल ग्लान साधुनी के के आ समय तपस्याधी अथवा वात शूल आदि रोगधी पीडित छे, पोताना उपकारने भाटे कर्मोंनी निर्जरानी चाहनाने उद्देश लधने वैयावृत्य करी आपु” आ प्रकारनी भावना वाणा मुनि के के अभिग्रहरूपी पर्वतना शिखरना प्रदेश सुधी पहुँचेल छे अभिग्रह स्वीकारने प्राणुने छोडी दे, पणु अभिग्रह न छोडे

सूत्रकार अभिग्रहना स्वरूपने प्रकट करवा भाटे चार भगोंनु प्रदर्शन करे छे—“आहृद्” इत्यादि,



અપરશ્રૈતાદશમભિગ્રહં કરોતિ--' અહં પરાર્થમશનાદિક નાન્વેપયિષ્યામિ, પરેણાઽઽહતમપિ નો સ્વાદયિષ્યામિ ' । ઇતિ ચતુર્થો મઙ્ગઃ (૪) ।

ઇતિ વહુવિધમભિગ્રહ સ્વીકૃત્ય ગ્લાયમાનોઽપિ જીવિતં પરિજઘાન્ન પુનરભિગ્રહં ત્યજેદિતિ પરમાર્થઃ । તમેવાર્થમુપસંહરન્નાહ-' એવ ' -મિત્યાદિ, સઃ=અનગારઃ પરિજ્ઞાતતત્ત્વઃ એવં=પૂર્વોક્તં યથાકીર્તિતમેવ=યથોક્તમેવ ધર્મમ્=અભિગ્રહસ્વીકરણરૂપં સમભિજ્ઞાનન્=આસેવનપરિજ્ઞયાઽઽસેવમાનઃ, શાન્તઃ=કષાયોપશમેન । યદ્વા-'શ્રાન્તઃ' ઇતિ-ઝાયા, શ્રાન્તઃ=નિરન્તરસસારપરિશ્રમળાત્ શ્રમયુક્તઃ, વિરતઃ=સર્વસમારમ્માદુપરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ-સુસમાહૃતાઃ=સમ્યગ્રૂપેળ ગૃહીતાઃ લેશ્યાઃ=અન્તઃકરણવૃત્તયો યેન સઃ । યદ્વા-સુસમાહૃતા=સમ્યક્ સદ્ગોચિતા લેશ્યા=તેજોલેશ્યા યેન સારાદિક લા કર ટૂંગા ઓર ન ડૂસરોસે લાયે હુણ આહારાદિકકા મેં ઉપભોગ હી કરૂંગા । યહ ચતુર્થ ભંગ હે । ૪ ।

ઇસ તરહ અનેક પ્રકારકી પ્રતિજ્ઞાકો સ્વીકાર કરકે, ગ્લાયમાન ખી મુનિ અપને જીવનકો છોડ દેવે પર અભિગ્રહકા ભંગ ન કરે । હસી અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હેં-' એવ ' -મિત્યાદિ, વહ તત્ત્વોકા જ્ઞાતા અનગાર અભિગ્રહકા સ્વીકાર કરના ઓર ઉસકા આસેવનપરિજ્ઞાસે પૂર્ણરૂપસે સેવન-નિર્વાહ કરના, ઇસ રૂપ ધર્મકો જાનતા હુઆ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામક મરણ સ્વીકાર કરે । " શાન્તઃ, વિરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ " યે સવ અનગારકે વિશેષણ હેં । ઇનકા અર્થ ઇસ પ્રકાર હે-યહ અનગાર કષાયોકે ઉપશમ હોનેસે શાન્ત, સર્વ પ્રકારકે સમારંભોસે ઉપરત હોનેસે વિરત ઓર અન્તઃકરણકી વૃત્તિયોકો અચ્છી તરહ નિગૃહીત કરનેસે સુ-

નહિ લાવી આપુ અને ખીજઞ્યોથી લાવેલા આહારાદિકનો પણ હું ઉપયોગ નહિ કરૂં આ થોથે ભગ છે (૪)

આવી રીતે અનેક પ્રકારના અભિગ્રહો સ્વીકાર કરીને ગ્લાય મુનિ પણ પોતાના જીવનને છોડી દે પણ અભિગ્રહનો ભંગ ન કરે આ અર્થનો ઉપસંહાર કરીને સૂત્રકાર કહે છે-' એવં ' ઇત્યાદિ તે તત્ત્વોના જાણનાર અનગારે અભિગ્રહનો સ્વીકાર કરવો અને તેનું આસેવનપરિજ્ઞાથી પૂર્ણરૂપથી સેવન-નિર્વાહ કરવો, આ રૂપથી ધર્મ જાણીને ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામનું મરણ સ્વીકારે " શાન્ત, વિરત, સુસમાહૃતલેશ્ય " આ સઘળા અનગારના વિશેષણ છે એનો અર્થ આ પ્રકારે છે-તે અનગાર કષાયોનો ઉપશમ થવાથી શાન્ત, સર્વ પ્રકારના સમારંભોથી ઉપરત હોવાથી વિરત અને અન્ત કરણની વૃત્તિઓને સારી રીતે નિગૃહીત કરવાથી સુસમાહૃતલેશ્યાવાળા કહેવાય છે. " સંતે " પ્રાકૃતની સચ્કૃત



सुसमाहृतछेदयः । प्रथमस्वीकृताभिग्रहपरिपात्मनाक्षमो रोगण उपसा वा ग्लान  
सु अभिग्रहपरित्यगन् मक्तप्रत्याख्यानन शरीरं त्यजन्ति वात्पर्यम् ।

तथापि मरणाकारूपर्पाय एव=सम्पादितत्रिज्यगणस्य सत्सन्ना-भोपणाश्रुप्ट  
देहस्य यो मृत्यारनसरं स एव ग्लानानसरेऽपि काक्षपर्याय एव, कर्मनिर्जरणस्याऽ

समाहृतछेदयावाला कहलाता है ' संते' प्राकृतकी संस्कृत छाया 'शान्त'  
मानकर अर्थ ऊपर यतलाया जा चुका है । जब इसकी छाया "शान्त"  
ऐसी मानी जायगी तब इसका अर्थ इस प्रकारसे होगा कि यह " संसार  
में परिभ्रमण करते २ भ्रमयुक्त हुआ है, इसी लिये सर्वसमारम्भोंसे  
यह घिरत-उपरत हुआ है। "सुसमाहृतछेदय" का यह भी दूसरे प्रकारसे  
अर्थ निकलता है कि-जिसने अच्छी तरहसे तेजोछेदया संकुचित की  
है, ऐसा यह अनगार होता है ।

तात्पर्य कहनेका यह है कि-जिसने पहिले पूर्वोक्त अभिग्रह स्वीकृत  
किये हैं पर रोग या तपसे जो ग्लान अवस्थायुक्त बन रहा है इस लिये  
स्वीकृत अभिग्रहोंके पालन करनेमें असमर्थ हो रहा है, तो भी स्वीकृत  
अभिग्रहवाले साधुका यह कर्तव्य है कि यह अपने गृहीत अभिग्रहका  
परिहार न कर मक्तप्रत्याख्यानद्वारा शरीरका परित्याग कर दे, यह मरण  
काक्षपर्याय ही है । जिसका शिष्यमण्डल तप्यार हो चुका है, ऐसे स  
छेदनाके सेवनसे युक्त देहवाले साधुकी मृत्युका जो भवसर है वह

ज्या शान्त मानी अर्थ ऊपर जतानवामा आवेद छे न्यारेतेनी ज्या "शान्त"  
कोवी मानवामा आवये त्यारे तेना अर्थ आ प्रकार थये के ते ससारमां  
परिभ्रमण इत्या भ्रमयुक्त थयेद छे आ मा' सुव समारंभोषी ते बिस्त-निवृत्त छे  
"सुसमाहृतछेदय" ने कोवे पण नीव प्रकार अर्थ नीके छे केकेके सारी  
सीते तेकेकेस्था सक्रिय इरेली छे कोवा ते अनजार होव छे.

वात्पर्य इहेवात्तु के छे के-केके पडेवां पूर्वोक्त अभिग्रहो स्वीकारेवा  
छे परतु राज जने तपशी के ग्लान अवस्थातु जानी जकेद छे. के करके  
स्वीकारेद अभिग्रहोत्तु पालन इत्यामां असमर्थ जनी रहेद छे तो पण केके  
अभिग्रहो स्वीकारां छे तेवा साधुत्तु के कर्तव्य छे के तेके स्वीकारेद अभि  
ग्रहोना त्याज न करी मक्तप्रत्याख्यानद्वारा शरीरना त्याज करे. आ भस्यु पण  
छेदस्थोम न छे केतु शिष्यमण तेवार यह जयेद छे कोवा संक्षेपनाया  
सेवनाही मुक्त देहवाला साधुना मृत्युना के भवसर छे ते के ग्लानता अवसरमां,

ત્રાપિ સમાનત્વાદિત્યાશયઃ । અત એવ સ તાદૃશો મુનિરનશનરૂપે વ્યન્તિકારકઃ=કર્મનાશકારકો ભવતિ । તદેવમુપસહરતિ-‘ઇત્યેત’-દિત્યાદિ, ઇત્યેતદ્-ગ્લાનસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેન શરીરત્યાગસ્તદ્ વિમોહાયતનં દિતં સુખ ક્ષમ નિઃશ્રેયસમાનુગામિક ભવતિ । एतेषा पदानां व्याख्याऽनन्तरोद्देशसमाप्तिं प्रोक्ता । ‘इति ब्रवीमी’-त्यस्यार्थस्तुक्त एवेति ॥ सू० २ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-५ ॥

હી ગ્લાન કે અવસરમેં મી કાલપર્યાય હી હૈ, કયોં કિ યહાં ળી કર્મોંકી નિર્જરાકી સમાનતા હૈ । હસીલિયે એસા મુનિ અનશન કરકે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનસે મરણ કરને પર કર્મકા નાશ કરનેવાલા હોતા હૈ અતઃ ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરકા ત્યાગ કરના, ગ્લાન મુનિકે લિયે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, એવં આનુગામિક રૂપ હોતા હૈ । ઇન પદોંકી વ્યાખ્યા ડસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશકી સમાપ્તિમેં કહ દી ગઈ હૈ ॥સૂ૦૨॥

॥ आठवें अध्ययनका पांचवां उद्देश समाप्त ॥ ८-५ ॥

પણ કાલપર્યાય જ છે, કેમ કે અહીં પણ કર્મોની નિર્જરાની સમાનતા છે, આ માટે એવા મુનિ અનશન કરીને ભક્તપ્રત્યાખ્યાનથી મરણ લાવવાથી કર્મોનો નાશ કરવાવાળા થાય છે, માટે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરનો ત્યાગ કરવો ગ્લાન મુનિ માટે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, અને આનુગામિકરૂપ બને છે આ પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ઉદ્દેશની સમાપ્તિમા કહેવાયેલ છે (સૂ૦૨)

आठमा अध्ययनનો पांचवो उद्देश समाप्त ॥८-५॥

## । अथाष्टमाध्ययनस्य पष्ठ उद्देश ।

पञ्चमोद्देशकयननान्तरमधुना पष्ठ प्रारम्भ्यत । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायममि  
सम्बन्ध—पूर्वोद्देशे स्नानस्य मक्तमत्याख्यानमरणममिहितम्; अत्र च घृति-संहनना-  
विषययुक्त एकस्वमावना मावयन् इहितमरणं दिशपीतेति वक्तव्यमस्ति, तत्प्रसङ्गेन  
पूर्वं तस्य वक्तव्यपरित्याग दर्शयति—' न मिषस्व ' इत्यादि ।

पृष्म्—जे भिक्खु एगेण वत्थेण परिवुसिप पायघिइएण,  
तस्स ण नो एव भवइ—विइय वत्थ जाइस्सामि । से अहेतणि  
ज्ज वत्थ जाएज्जा, अहापरिग्गहिय वत्थ धारिज्जा जाव गिम्हे  
परिइएणे अहापरिजुए वत्थ परिइविज्जा, अदुवा एगसादे अदुवा  
अषेले लाघविय आगममाणे, तथे से अभिसमन्नागण भवइ,  
जइये भगवया पवेइय तमेव अभिसमच्चा सव्वओ सव्वत्ताए  
समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू० १ ॥

श्रुत्या—यो मिधुरकन वस्त्रेण पर्युषितः पापत्रितीयेन, तस्य स्तु नो एषं भवति द्वितीयं  
वस्त्रं याचिष्ये, स यैष्वीयं वस्त्रं याचेत यथापरिगृहीतं वस्त्रं पारयेद् यानद् ग्रीष्मः

### ॥ आठवें अध्यायनका छटा उद्देश ॥

पञ्चम उद्देशके कहनक बाद अष पष्ठ उद्देशका कथन प्रारम्भ  
होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ इस प्रकारसे संबंध है—वहाँ  
स्नान मुनिके लिये मक्तप्रत्याख्यानमरण धारण करना कहा है । इस  
उद्देशमें घृति, संहनन आदि पक्षविशिष्ट मुनि पकस्वमावनाको भाला  
हुआ इहितमरण करे, यह कहा जायगा, इसलिये वसीके प्रसंगसे पहिले  
उसके बन्नोंका परित्याग सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“ जे मिषस्व ”  
इत्यादि ।

### आठमा अध्यायननो छटा उद्देश

पञ्चमो उद्देश कहेवाच्य आठ वें उद्देश यह था है आ उद्देशमां  
आजगना उद्देशनी साथे आ प्रकारणी साथे है—तथा स्नान मुनि माटे कक  
प्रत्याख्यान मरुत्त धारण इत्या इत्यु है आ उद्देशमां घृति, संहनन आदि एण  
विशिष्ट मुनि अहेतव्यावनाने कथीने उचित मरुत्त करे जेअ कहेवाच्य आउरो  
आ माटे तेना प्रसजणी पछेवां तेना वस्त्रेणो परित्याग सूत्रकार प्रदर्शित करे है  
जे मिषस्व इत्यादि ।

પ્રતિપન્નઃ, યથાપરિજીર્ણં વસ્ત્ર પરિષ્ઠાપયેત્, અથવા એકશાટ્, અથવા અચેલો લાઘવિકમાગમયન્, તપસ્તસ્ય અમિસમન્વાગત ભવતિ, યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતં તદેવામિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ.૦૧ ॥

ટીકા—‘ યો મિશ્નુ ’—રિત્યાદિ, સ્પષ્ટાર્થમેતત્સૂત્રમ્, વિશેષસ્ત્વયમ્—અન્ ‘ પાત્રદ્વિતીયેનૈકેન વસ્ત્રેણ ’ ઇતિ વ્યાખ્યેયમ્ ॥ સૂ.૦૧ ॥

અભિગ્રહવિશેષેણ પાત્રદ્વિતીયં વસ્ત્રમેક દધતો મિશ્નોઃ સપદિ મોક્ષપથમારુક્ષોઃ પરિકર્મિતમતેલ્લુકર્મત્વાદેકત્વભાવનાઽધ્યવસાયમાહ—‘ જસ્સ ણ ’ ઇત્યાદિ—

હસ સૂત્રમે સાધુકે લિયે એક વસ્ત્ર ઓર એક પાત્ર રલ્લનેકા કલ્પ પ્રદર્શિત કિયા ગયા હૈ; અતઃ એક વસ્ત્ર ઓર એક પાત્ર રલ્લતે હુવ કિસી ખી સમય ઁસી ઇચ્છા ન કરે કિ મેં દુસરે વસ્ત્ર યા પાત્રકી યાચના કરુ । વહ મુનિ યથાયોગ્ય ઁષળીય વસ્ત્રકી હી યાચના કરે ઓર જિસ પ્રકારકા મિલ જાત્ર વહી ધારણ કરે । ગ્રીષ્મ ઋતુ આને પર વહ એક વસ્ત્ર રલ્લના ચાહે તો રલ્લે, અથવા જીર્ણ હો જાને પર ઁસ જીર્ણ વસ્ત્રકા ત્યાગ કરકે અચેલ બન જાવે, ઓર જિસ પ્રકાર ભગવાને આગમમેં કહા ઁસી પ્રકાર સયમાચરણ કરતા હુવા મુનિ સમભાવસે વિચરે ॥ સૂ.૦૧ ॥

અભિગ્રહવિશેષસે એક પાત્ર ઓર એક વસ્ત્રકો રલ્લનેવાલા મિશ્નુ જો કિ શીઘ્ર મોક્ષકે પથ પર આરુઢ્ઢ હોનેકા અભિલાષી બના હુઆ હૈ, તથા પરિકર્મિતમતિવાલા હૈ, લલુકર્મી હોનેસે ઁસકે એકત્વભાવનાકા અધ્યવસાય હોતા હૈ, હસ લિયે એકત્વભાવનાકે અધ્યવસાયકા કથન કરતે હૈ—“ જસ્સ ણ મિશ્નુસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

આ સૂત્રમા સાધુ માટે એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખવાનો કલ્પ પ્રદર્શિત કરેલ છે, જેથી એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખીને કોઈ પણ વખત એવી ઇચ્છા ન કરે કે હું ખીલ્લા વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરું તે મુનિ યથાયોગ્ય એષળીક વસ્ત્રની જ યાચના કરે, અને જેવા પ્રકારના મળી બંધ તે ધારણ કરે, ગ્રીષ્મ ઋતુ આવવાથી તે એક વસ્ત્ર રાખવા ચાહે તો રાખે અથવા જીર્ણ થઈ જવાથી તે જીર્ણ વસ્ત્રનો ત્યાગ કરીને અચેલ બની બંધ, અને જે પ્રકારે ભગવાને આગમમા કહ્યું તેવા પ્રકારે સયમાચરણ કરીને મુનિ સમભાવથી વિચરે (સૂ.૦૧)

અભિગ્રહવિશેષથી એક પાત્ર અને એક વસ્ત્રને રાખવાવાળા મિશ્નુ કે જે શીઘ્ર મોક્ષના માર્ગ પર આરુઢ્ઢ હોવાના અભિલાષી બનેલ છે, તથા પરિકર્મિત મતિવાળા છે લલુકર્મી હોવાથી તેને એકત્વભાવનાનો અધ્યવસાય થાય છે તેથી એકત્વભાવનાનો અધ્યવસાય તુ કથન કરે છે—“ જસ્સ ણ મિશ્નુસ્સ ” ઇત્યાદિ

मृषम्-जस्त ण भिक्खुस्स एव भवइ-एगे अइमस्सि, न मे अस्थि कोइ, न चाहमत्रि कस्सवि, एव से एगागिणमेव अप्पाण समभिजाणिज्जा, लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमझागए भवइ जाव समभिजाणिया ॥ सू० २॥

छाया-यस्य ससु मिश्रोरेवं भवति-एकोऽमस्मि, न मऽस्ति कोऽपि, न चाहमपि कस्यापि, एवमसौ एकाकिनमेवात्मानं समभिजानीयात्, लाघविकमा मयन्, तपस्तस्याभिसमन्यागतं भवति याक्त् समभिजानीयात् ॥ सू० २ ॥

टीका-‘यस्ये’-त्यादि, यस्य मिश्रोभेतसि एवं-वच्यमाण भवति, तदेष इत्यपि-‘अह’-मित्यादि-अहम् एकोऽस्मि, न मऽस्ति कोऽपीतरः सहायकः, न चाहमपि कस्य चिदपि परस्य दुःखविमोक्षने सहायकोऽस्मि, सर्वेऽपि स्वकृत्वकर्मफलमोक्षार सन्त्यता न कोऽपि मम सहायकः, नाप्यहं कस्यापि साहाय्यं कर्तुमर्होऽस्मीति परमार्थः, अतो योऽर्थः सम्यक्स्तमाह-‘एव’ मित्यादि, एवं-पूर्वोक्तमकारण स्वस्य सहायकसम्भवाद् साहाय्यकरणासम्भवात्स्वत्यादिरूपण अतो मुनिः आत्मानं-निवात्मानम्, एकाकिनमव सहायरहितमव समभिजानीयात्,

जिस मिश्रुके पिन्धमें इस प्रकारका विचार होता है कि-“मैं एक हूँ, यहाँ मेरा दूसरा कोई सहायक नहीं है मैं भी किसी दूसरेके दुःखोंको दूर करनेमें सहायक नहीं हो सकता हूँ, जितने भी प्राणी हैं व मय अपनेर किये हुए कर्मोंके फलको भोगते हैं, इस स्थिति में उन्हें इस कर्मके फलके भोगमें थोड़ी भी सहायता करनेवाला नहीं हो सकता हूँ और न दूसरे भी मुझे इस विषयमें सहायता प्रदान करनेवाले हो सकते हैं इस प्रकार न कोई अपना सहायक है और न मैं दूसरोंका ही सहायक हूँ ” ऐसा विचार कर यह मुनि अपनी आत्माको सहायरहित ही मानता है, इसका यह प्रभाव होता है

ने विदुना निचमं मेवा प्रकाश्या विचार कोष छे के- तु कोषं तु अदि भारे वीने कोषं सहायक नही तु पक्ष कोषं वीचन्या दु भोने इर इशवाभा सहायक वनी शकते नही नेटका प्राणी छे ते वधा पीतपेयाना इरेवा इमेन्य इवने कोषवे छे आ भाटे तु तेमने जे इमना इजने कोषवचामा थोड़ी पक्ष सहायता इशवावाजा शक शकते नही अने अने पक्ष वीचन्या विषयना सहायता इशवावाजा वनी शकता नही आ प्रकारे कोष भारे सहायक नही अने तु पक्ष वीचने सहायक वनी शकते नही” जेवो विचार करी जे मुनि पीतान्य अमाने सहायरहित न माने छे. जेवो जे प्रकाश कोष छे के ते

‘નરકનિગોદાદિક્કુઃસ્વપારાવારમજ્જદાત્મસન્તારણે સ્વાત્માનં વિના કોઽપિ ન કર્ણધારઃ’ इत्यवधार्य सम्प्राप्तं रोगशोकादिकं सन्तापकारकमितरकृतत्राणशरण-  
स्पृहारहितो-‘ मत्कृतत्वेन मयैवोपभोक्तव्य’-मिति निश्चिन्वानः सर्वं सहेतैवेति  
भावः । कुतो दुःखादिकं सोढव्यमित्याह-‘ लाघविक ’-मित्यादि, अयं सूत्रभाग  
एतस्यैवाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे व्याख्यातः । इत्यलम् । सूत्रमिदं बहुषु पुस्तकेष्व-  
नुपलब्धमपि क्वचिदुपलब्धतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥ सू० २ ॥

अस्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैषणाऽभिहिता, पञ्चमोद्देशे च ग्रहण-  
पणा कथिता, साम्प्रतं प्रासैषणामुपदर्शयितुमाह-‘ से भिक्षु ’ इत्यादि ।

कि इस मुनिके चित्तमें यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि “ नरक और  
निगोदादिकोंके दुःस्वरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको वहांसे पार  
लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और  
कोई नहीं।” इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक  
आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एवं शरणकी स्पृहासे  
रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया  
गया है अतः मुझे ही भोगना चाहिये इस प्रकार सोच कर सब कुछ  
सहन करता है। दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है ? तथा यह  
दुःखादिक सहन क्यों करता है ? इसका उत्तर सूत्रकारने “ लाघवियं  
आगममाणे ” से लेकर “ समभिजागिया ” यहाँ तकके पदों द्वारा दिया  
है। इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें  
लिखा जा चुका है ॥ सू० २ ॥

मुनिना चित्तमा जेવી દઢ ધારણા બના રહે છે કે “ નરક અને નિગોદાદિકોના  
દુઃખરૂપી સમુદ્રમા ડુબતા મારા આત્માને લાથી પાર લગાવનાર જે કોઈ હોય  
તો તે મારે પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી ” આ પ્રકારની  
ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સન્તાપકારી રોગ અને શોક આદિમા પોતાને માટે,  
બીજાઓથી થનાર રક્ષા અને શરણની સ્પૃહાથી રહિત થઈ બંધ છે અને આવા નિશ્ચ  
યથી કે આ બધુ મારા દ્વારા જ ઠરાયેલ છે, અને મારે જ ભોગવવું જોઈએ આ  
પ્રકારે સમજીને બધુ સહન કરે છે, હ આદિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે ? તથા  
એ હ આદિકને સહન કેમ કરે છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે “લાઘવિય આગમમાણે”થી  
લઈ “સમભિજાગિયા” અહીં સુધીના પદો દ્વારા આપેલ છે આ સમસ્ત પદોનો  
સ્પષ્ટ રૂપથી અર્થ આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમા બતાવવામા આવેલ છે (સૂ૦૨)

मूष्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा ४ आहारेमाणे  
 नो वामाओ हणुयाओ दाहिण हणुय सचारिज्जा आसापमाणे,  
 दाहिणाओ हणुयाओ वाम हणुय नो सचारिज्जा आसापमाणे,  
 से अणासायमाणे लाघविय आगममाणे, तवे से अभिसमन्ना  
 यए भवइ, जमेय भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ  
 सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू० ३ ॥

ध्या—स मिष्टुर्वा मिष्टुकी वा अन्नं वा ४ आहारयन् नो वानतो इत्तो  
 इत्थिं इत्तु सचारयेदास्वादयन्, दक्षिणतो इत्तो वाम इत्तु नो सचारयेदास्वादयन्,  
 स अणासाययन् लाघविक्रमागमयन्, तपस्वस्याभिसमन्नागतं भवति, यदसद् भगव-  
 ता प्रवेदितं तवेवाभिसमत्य सर्वत सर्वात्मतया सम्यक्त्वमथ समभिजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘स मिष्टु’—रित्यादि, सः=पूर्वोक्तस्यः मिष्टुर्वा=साधुर्वा मिष्टुकी  
 वा=साध्वी वा अन्नं वा ४ पदुर्बिभम् उद्गमोत्पादनैपणापरिशुद्ध पवामाप्तं सुशीतं  
 ज्ञानैवादिदोषरहितं विगताङ्गारधूमादिकमथ श्लथीत, रागद्वेषाभ्यां हेतुभूताभ्या-

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें उद्गम उत्पादन और पपणा कही  
 गई है। पंचम उद्देशमें ग्रहण पपणा वर्णित हुई है, अथ इस समय प्राप्त  
 पपणाका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“से भिक्खू” इत्यादि।

पूर्वोक्त स्वरूपधाला साधु अथवा साध्वी ऐसे चारों प्रकारके आहार  
 को जो उद्गम उत्पादन और पपणासे परिशुद्ध है, जिस समय जो भी  
 जिनने रूपमें प्राप्त हुआ है, ग्रहण-पपणा आदि दोषोंसे जो रहित है,  
 और अंगार एवं धूमादिक दोष जिसमें नहीं हैं वैसे आहारको भोगवे-  
 लपयोग में लावे। अंगार एवं धूमादिक दोषोंके कारण राग और द्वेष हैं,  
 इनसे ही यह आहार अङ्गार एवं धूमादिकदोषविशिष्ट होता है। राग

अध्ययनना पीव उद्देशमां उद्गम उत्पादन अने जेपवा कहेवामां  
 आवेव छे अथमा उद्देशमां श्लथ जेपवा कहेवायेव छे अने आसमये प्राप्त  
 जेपवातु पदुर्न कस्वा माते सूत्रकार कहे छे—“से भिक्खू” इत्यादि।

पूर्वोक्त स्वरूपधाला साधु अथवा साध्वी जेवा प्रकारना आहारने छे ने  
 उद्गम उत्पादन अने जेपवाधी परिशुद्ध छे, ने वजते ने पदु जेटठा स्वइ  
 पमां प्राप्त जेववेव छे श्लथ जेपवा आदि दोषोधी ने रहित छे अने अङ्गार  
 अने धूमादिक दोष जेमां नहीं जेवा आहारने जेजवे-उपयोगमां लावे  
 अङ्गार अने धूमादिक दोषोना कारण राग अने द्वेष छे आनाधीव ते आहार

‘નરકનિગોદાદિક્કુઃખપારાપારમજ્જદાત્મસન્તારણે સ્વાત્માન વિના કોઽપિ ન કર્ણધારઃ’ इत्यवधार्य सम्प्राप्तं रोगशोकादिकं सन्तापकारकमितरकृतत्राणशरण-  
स्पृहारहितो-‘ मत्कृतत्वेन मयैत्रोपभोक्तव्य’-मिति निश्चिन्वानः सर्वं सहतेवेति  
भावः । कुतो दुःखादिकं सोढव्यमित्याह-‘ लाघविक ’-मित्यादि, अयं सूत्रभाग  
एतस्यैवाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे व्याख्यातः । इत्यलम् । सूत्रमिदं बहुषु पुस्तकेष्व-  
नुपलब्धमपि क्वचिदुपलब्धतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥मृ० २॥

अस्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैपणाऽभिहिता, पञ्चमोद्देशे च ग्रहण-  
पणा कथिता, साम्प्रतं त्रासैपणामुपदर्शयितुमाह-‘ से भिक्खू ’ इत्यादि ।

कि इस मुनिके चित्तमे यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि “ नरक और  
निगोदादिकोंके दुःखरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको वहांसे पार  
लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और  
कोई नहीं ।” इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक  
आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एव शरणकी स्पृहासे  
रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया  
गयाहै अतः मुझे ही भोगना चाहिये इस प्रकार सोच कर सब कुछ  
सहन करता है । दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है ? तथा यह  
दुःखादिक सहन क्यों करता है ? इसका उत्तर सूत्रकारने “ लाघविय  
आगममाणे ” से लेकर “ समभिजाणिया ” यहाँ तकके पदों द्वारा दिया  
है । इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें  
लिखा जा चुका है ॥ मृ० २ ॥

मुनिना चित्तमा એવી દૃઢ ધારણા બનાવેલ છે કે “ નરક અને નિગોદાદિકોના  
દુઃખરૂપી સમુદ્રમાં ડુબતા મારા આત્માને ત્યાથી પાર લગાવનાર એ કોઈ હોય  
તો તે મારા પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી ” આ પ્રકારની  
ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સન્તાપકારી રોગ અને શોક આદિમાં પોતાને માટે,  
બીજાએથી થનાર રક્ષા અને શરણની સ્પૃહાથી રહિત થઈ જાય છે અને આવા નિશ્ચ  
યથી કે આ બધું મારા દ્વારા જ કરાયેલ છે, અને મારે જ હોગવલુ જોઈએ આ  
પ્રકારે સમજીને બધું સહન કરે છે, હુ ખાદિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે ? તથા  
એ હુ ખાદિકને સહન કેમ કરે છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે “લાઘવિય આગમમાણે”થી  
લઈ “સમભિજાણિયા” અહીં મુખીના પદો દ્વારા આપેલ છે આ સમસ્ત પદોનો  
સ્પષ્ટ રૂપથી અર્થ આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવેલ છે.(મૃ૦૨)



मूष्म्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा ४ आहारेमाणे नो वामाओ हणुयाओ दाहिण हणुय सचारिज्जा आसापमाणे, दाहिणाओ हणुयाओ वाम हणुय नो सचारिज्जा आसापमाणे, से अणासायमाणे लाघविय आगममाणे, तवे से अभिसमन्ना गए भवइ, जमेयं भगवया पवेइय समेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताप समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू० ३ ॥

छाया—स मिष्टुर्वा मिष्टुकी वा अन्नं वा ४ आहारयन् नो वामतो इनुतो दक्षिणं इनुं सचारयेवास्वाद्यन्, दक्षिणतो इनुतो वाप इनुं नो सचारयेवास्वाद्यन्, ए अन्नास्वाद्यन् तापविक्रमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्नागतं भवति, यदंतद् भगवता प्रवेदितं तदेवामिसमत्य सर्वतः सर्पास्पतया सम्यक्स्वमेन समभिजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘समिष्टु’—रित्यादि, स=पूर्वोक्तस्यः मिष्टुर्वा=साधुर्वा मिष्टुकी च=साध्वी वा अन्नं वा ४ यदुर्बिष्म उन्नमोत्पादनैपचापरिशुद्ध पयापाप्य गृहीतं श्रमैक्यादिदोषरहितं विगताङ्गारधूमादिकमथ मुञ्जीत, रागद्वेषान्यां हेतुभूतान्या-

इस अध्वयनके द्वितीय उद्देशमें उन्नम उत्पादन और पपणा कही गई है। पंचम उद्देशमें ग्रहण पपणा वर्णित हुई है, अथ इस समय प्राप्त पपणाका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“से भिक्खू” इत्यादि।

पूर्वोक्त स्वरूपवाला साधु अथवा साध्वी ऐसे चारों प्रकारके आहार को जो उन्नम उत्पादन और पपणासे परिशुद्ध है, जिस समय जो भी जितने रूपमें प्राप्त हुआ है, ग्रहण-पपणा आदि दोषोंसे जो रहित है, और अंगार एवं धूमादिक दोष जिसमें नहीं हैं वैसे आहारको भोगवे-अपयोग में लावे। अंगार एवं धूमादिक दोषोंके कारण राग और द्वेष हैं, इनसे ही वह आहार अङ्गार एवं धूमादिकदोषविशिष्ट होता है। राग

अथ अध्वयनानां लीला उद्देशमां उन्नम उत्पादनं अने जेपवा उद्देशमां आवेल उ पावना उद्देशमां अकषु जेपवा उद्देशमांवे उ उवे अथसमवे प्राप्त जेपवातु वहुंन इत्था माटे सूत्रकार कहे उ—“से भिक्खू” इत्यादि।

पूर्वोक्त स्वरूपवाला साधु अथवा साध्वी जेवा प्रकारना आहारने के ले उन्नम उत्पादन अने जेपवाधी परिशुद्ध से ले वज्जते ले पपु नेटवा स्वइ रमां प्राप्त जेवेल उ अकषु जेपवा आदि दोषोधी ले शक्ति उ अने अज्जइ अने धूमादिक दोष लेमा नही जेवा आहारने सोअवे-अपयोगमां लावे अज्जार अने धूमादिक दोषोना इत्थं राज अने द्वेष उ आनाधीन ते आहार

મજ્જારધૂમાદિદોષદુષ્ટમશનાદિકં જાયતે, રાગદ્વેષો સરસનીરસાહારોપલમ્બહેતુના જાયતે । કારણમન્તરા કાર્યોત્પત્તેરદર્શનાદિતિ રસોપલબ્ધિકારણપરિહારમેવ પ્રદર્શયતિ—‘આહારયન્નિ’—ત્યાદિ, સ મિધુરશન વા ષ અશનાદિકમ્ આહારયન્=મુક્ષાનઃ, આસ્વાદયન્=તદશનાદિકં ચર્વયન્ વામતો હનુતઃ=વામહનુતઃ આદાય રસાસ્વાદાય દક્ષિણં હનું નો સચ્ચારયેત્, અપિ ચાશનાદિકમાસ્વાદયન્ સ મિધુઃ દક્ષિણતો હનુતઃ=દક્ષિણહનુતો યદ્દીત્યા વામં હનુ ન સચ્ચારયેત્, તાદૃશાસ્વાદન—સચ્ચારણયોઃ કૃતયોઃ સતોઃ રસોપલબ્ધ્યા રાગ—દ્વેષજન્યા અન્નાર—ધૂમાદિદોષા જાયન્તે, અતસ્તથા કૃત્વા નો આસ્વાદયેદિત્યાશયઃ । યો નાસ્પાદયતિ તમાશ્રિત્ય કથયતિ—‘સ’

और द्वेष होनेका कारण भी सरस और नीरस आहारकी प्राप्ति है । इससे ही राग और द्वेष ये दोनों उसमें उत्पन्न होते हैं । कारण के बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है इस लिये सूत्रकार यहां पर रसोपलब्धिरूप कारण के परिहारका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं—वह भिक्षु जिस समय आहार करे उस समय चबाते हुए उस आहारका रसास्वादके निमित्त मुह में एक तरफसे दूसरी तरफ परिवर्तन न करे । यदि घ्रास दक्षिणकी दाढाओंके नीचे रखा है तो उसे उन्हीं दाढाओं द्वारा चबावे—वामतरफ न फेरे, यदि वामबाजूकी दाढाओं तले उसे रखा है तो उन्हींसे उसे चबावे—दक्षिणकी तरफ उसे न ले जावें, इस प्रकार के परिवर्तनसे आहार के रसकी उपलब्धि होती है अत इस प्रकार का चबाना और परिवर्तन करना, ये दोनों साधु के लिये रसास्वाद के निमित्त हेय है । ऐसा करनेसे रसकी उपलब्धि होगी और फिर उससे रागद्वेषके कारण-

અગાર અને ધૂમાદિક દોષવિશિષ્ટ થાય છે રાગ અને દ્વેષ હોવાનું કારણ પણ સરસ અને નિરસ આહારની પ્રાપ્તિ છે તેનાથી જ તે બંને તેમા ઉત્પન્ન થાય છે, કારણના વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી આ માટે સૂત્રકાર અહીં રસની ઉપલબ્ધિરૂપ કારણના પરિહારનું પ્રદર્શન કરીને કહે છે કે તે ભિક્ષુ જે સમય આહાર કરે તે સમય ચાવતી વખતે તે આહારના રસાસ્વાદ માટે મોઢામા એક તરફથી બીજી તરફ ફેરફાર ન કરે કદાચ ઘ્રાસને દક્ષિણ દાઢાની નીચે રાખેલ હોય તો તેને એ જ દાઢો દ્વારા ચાવે બીજી તરફ ન ફેરવે કદાચ બીજી બાજુની દાઢો નીચે રખાયેલ હોય તો તેનાથી જ ચાવે સામી તરફ તેને ન લઈ બચ આ પ્રકારના પરિવર્તનથી આહારના રસની ઉપલબ્ધિ થાય છે માટે આ પ્રકારથી ચાવવું અને પરિવર્તન કરવું એ બંને સાધુ માટે હેય છે એમ કરવાથી રસની ઉપલબ્ધિ થશે અને પછી તેનાથી તેને રાગ અને દ્વેષના

स्वादि-स' पूर्वोक्ता मिष्टाः मनास्वादयन्-इत्यन्तराद्वन्तरेऽप्यनादिसंभारमकुर्वन्  
 अपविष्टम्-भाहारसाधयम् आगमयन्-विदधद् भवति, एसाहस्य तस्य घृने' तप'  
 समन्तात् सर्वतीति पूर्ववत् । स्वपुष्टिपरिक्रान्तिस्तत्वनिरासायाह-'पठत'-दित्यादि,  
 सन्-भोजनविधानं दोषरहितम् एतत् सर्वं भगवता-सर्वज्ञेन प्रवेदितं-प्रकृतम्, एत-  
 त्पदं-पूर्वोक्तमत्र अमिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्पत्त्वमेष सममिधानीयादि  
 त्पादभ्यांस्या पूर्वोक्तविज्ञानसया ॥ सू०३ ॥

मृत अंगार-दूमादिक दोष उत्पन्न होंगे, इसलिये इन दोषों से बचने  
 के लिये साधु इस तरह से भोजन-भाहार न चबावे । जो साधुजन  
 इस प्रकार से भोजनको नहीं चबाते हैं-अर्थात् एकजबड़े से दूसरे जबड़े  
 तरफ उसे रसास्वाद क निमित्त परिवर्तित नहीं करते हैं, इससे आटा  
 रबिपयक रसास्वाद न आनसे वे रागद्वेषकी लघुता करदेते हैं । इस  
 परिस्थितिमें जो भी उन्हें अल्पमात्रमें शुद्ध निर्दोष विधि-अनुसार  
 भाहार उपलब्ध होता है वही उन्हें प्राण होनेसे मुनिके तपकी प्राप्ति  
 और वृद्धि होती रहती है । साधुके लिये जो यह निर्दोष भोजनका  
 विधान कहा है वह सब भगवान् सर्वज्ञ द्वारा प्रकृत ही कहा गया है,  
 इसलिये इस पूर्वोक्त विधान को सर्व प्रकार एवं सर्वात्मरूपसे सत्य ही  
 जानना चाहिये ।

माचार्य-चाहे साधु हो या साध्वी हो भाहारको बिना रसास्वाद  
 लिये ही करें । यह बात साधुको तब ही पम सकती है कि जब वह

धरतु अजासुभादिके दोषो उत्पन्न यथे आ मां ज्ञेया दोषोऽपि  
 भवता माटे साधु आ रीते आकास्ने भावे नकि के साधुजन आ  
 प्रकृत्यो बोधन भावता नही अर्थात् जेठ लडाणी जीव लडाणा तथे तेने  
 स्वास्वाद निमित्त हेस्वता नही जेथी आकास्नेयक स्वास्वाद न जाकवाथी  
 तेजो सज्जेपनी लघुता करी डे छे आ परिस्थितिमां के पक्षु तेने जडप मात्रामां  
 शुद्ध निर्दोष विधि अनुसार आकास्ने भवे छे तेन जेने प्राण बोधाथी जेनाथी  
 पक्षी प्राप्ति जेने वृद्धि तेने बती रहे छे साधु माटे के आ निर्दोष  
 आकास्ने विधान कहेल छे ते जपु भजवान् सर्वज्ञाया प्रकृत न आकां कहे-  
 यधु छे आ माटे आ पूर्वोक्त विधानने सर्व प्रकार जेने सर्वात्मरूपथी  
 सत्य भवानुं जेथी जे

माचार्य-जैसे साधु होय अथवा साध्वी आकास्ने रसास्वाद बीधा बिना  
 चाहे, आ बात साधु माटे तयारे न जेने छे के ज्यारे ते आकास्ने मुपमां

एतादृशस्य भिक्षोरन्तर्प्रान्तसेविन परिशुष्कमासशोणितसकलकायक्रियायामव-  
सीदतो देहपरित्यागबुद्धिः समुदेतीति दर्शयति—' जस्स ण भिक्खुस्स '—इत्यादि।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—से गिलामि च खलु  
अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुब्बेण परिवहित्तए, से  
अणुपुब्बेणं आहारं संवट्टिज्जा, अणुपुब्बेण आहारं संवट्टित्ता  
कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय  
भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेव भवति—तद् ग्लायामि च खलु अहमस्मिन् समये  
इद शरीरकमानुपूर्व्यां परिवोडुम्, स आनुपूर्व्यां आहारं सर्वतयेत्, आनुपूर्व्यां  
आहारं संवर्त्य कपायान् प्रतनुकान् कृत्वा समाहितार्च्यः फलकापदर्थी उत्थाय  
भिक्षुरभिनिर्वृत्तार्च्यः ॥ सू० ४ ॥

आहार का मुखमे इधर उधर परिवर्तन न करे। आहार का स्वाद न  
आनेसे भोजनमें लघुता होती है उससे तपकी प्राप्ति और उसकी वृद्धि  
साधुके होती है। यह सब आहारविषयक कथन भगवान् सर्वज्ञद्वारा प्रल-  
पित है, वही यहाँ कहा गया है इसलिये इस पर पूर्ण विश्वास करें ॥सू० ३॥

जो मुनि अंत प्रान्त आहारका सेवन करता है और इसी कारणसे  
जिसके शरीरके मांस और शाणित शुष्क हो चुके हैं, और इसीलिये जो  
समस्त शारीरिक क्रियाओंके करनेमें असमर्थ बना हुआ है उसके  
चित्तमें इस देहको परित्याग करनेकी बुद्धि जागृत होती है, इस विषयको  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“ जस्स णं भिक्खुस्स ” इत्यादि।

આડે અવળે ન ફેરવે આહારનેા સ્વાદ ન આવવાથી ભોજનમાં લઘુતા થવાથી  
તપની પ્રાપ્તિ અને તેની વૃદ્ધિ સાધુને થાય છે આ સઘણુ આહાર વિષેનુ કથન  
ભગવાન સર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રરૂપિતજ આર્હિ કહેવામાં આવેલ છે એ માટે તેના ઉપર  
વિશ્વાસ કરવો (સૂ૦૩)

જે મુનિ અન્ત-પ્રાન્ત આહારનુ સેવન કરે છે અને તેના કારણથી  
જેનું લોહી અને માંસ સુકાઈ બાક છે જેનાથી સમસ્ત શરીરની ક્રિયાઓ કર-  
વામાં અસમર્થ બનેલ છે તેના ચિત્તમાં આ દેહનેા ત્યાગ કરવાની બુદ્ધિ બંધત  
થાય છે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—‘ જસ્સ ણં ભિક્ખુસ્સ ’ ઇત્યાદિ

टीका—‘यस्य’-स्यादि, यस्य=एकत्वमापनामाभितान्तकरणस्य मितो=अपनाविषु लघुतामुपगतस्य मुनेः ललु चतसि परं=वस्यमार्गं भवति, तदवाह-‘तद्’ तथा, ‘य’ शब्द समुच्चारकः, अत एवान्तप्रान्ताक्षनसञ्जातरोगामियुतः, वां ललु अस्मिन् समय प्रतिक्षणं शरीरस्य क्षीयमाणत्वाद् म्नायामि=अज्ञानतामुपगतोऽस्मि, इदम्=भौतिकं शरीरकं-श्रीयते=किरीयते यत्च्छरीरं, शरीरमय शरीरम्, अलुपूर्व्यां=समुचितवाचसरावश्यकर्तव्यक्रियया परिबोद्धुं=तत्र व्यापारपितु न शक्नोमि, इति विचार्य च स =मुनि, आनुपूर्व्यां=चतुर्थ-पष्ठा-अष्टमाऽऽ-चामाम्नादिक्रिया, आहारम्=अपनादिकं सर्वतयत्=संश्रययत् ।

नन्वानुपूर्वीं पुनर्द्वीदक्षवर्षसंखेनाख्या कृता न गृह्यत? इति चेन्न-म्नानिमुपगतस्य तच्छरीरस्य द्वादशवर्षकालिकावस्थानासम्भवात्, अतस्तत्कालसमुचितपाऽनु

जो मुनिका अन्तःकरण एकत्व-मापनासे भाविन है, और आहार भादि भी जिसका कम हो गया है उसके बिनामें इस प्रकारका विचार जाता है कि-मैं इस समय अन्त प्रान्त आहार के सेवन करनेसे रोगा कान्त हो चुका हूँ, शरीर भी प्रतिक्षण अपने कर्तव्यपथसे क्षीण हो रहा है-निपिल बनता जा रहा है, इसलिये योग्य अवसरमें जिनके आवश्यक क्रियाओंको करना चाहिये वे अथ इस शरीरद्वारा पूर्णरूपसे नहीं हो सकती हैं। ऐसा विचार कर वह ग्लान मुनि चतुर्थ-पष्ठा-अष्टम भक्तसे एवं आयम्विल आदि तपसे आहार भादिको कम कर देवे ।

शङ्क—चारह वर्षकी संखेस्वमारूप आनुपूर्वीका आपने यहाँ ग्रहण क्यों नहीं किया ?।

उत्तर—यह शङ्क ठीक नहीं है, क्यों कि जो मुनि ग्लान अवस्था-बीमारी हालत-में पड़ा हुआ है, उसका शरीर चारह वर्षतक स्थिर नहीं रहे

के मुनितु अन्तःकरण के व-भावनाधी भावित के अने आकार भादि पक्ष केने शोये बर्ष अखेले के तेना निचभां केवा प्रकारने विचार आवे के-हुं अन्तःप्रान्त आकार देवाधी अ समये राजअस्य अनेले हुं शरीर पक्ष प्रतिक्षण पीताना कर्तव्यधी क्षीय बर्ष रहेले के-निर्भण अनी रहेले के आ भाटे शो-अ अवसरभा के के अकारक क्रियाओ करी अके अके ते के अ शरीरधी पूर्ण स्वर्ूपधी अनी शकती नधी केवे विचार करी ते अज्ञान मुनि अर्कत्व-अनु-अनुम अकेतधी, आयम्विल आदि तपधी आकार भादि केवाअ करेले

शङ्क-आर वर्षनी संखेपनाइय आनुपूर्वीना आपे अकस्य केन नधी क्यों ?  
उत्तर—आ शङ्क ठीक नहीं, केभके के मुनि अज्ञान अवस्था-बीमारी हालत-भा परेले के अने शरीर चार वर्ष मुभी स्थिर रही शकतुं नधी, अ

पूर्वा द्रव्यसंलेखनयाऽशनादिकं संक्षेपयेदित्याशयः । स च द्रव्यसंलेखनया सल्लिख्यान्यदपि विदधीतेत्याह—‘से’ इत्यादि, आनुपूर्व्यां=तपःक्रमेण सवर्त्य=अशनादिकं, संक्षिप्य तदनु कषायान्=क्रोधादीन् प्रतनुकान्=कृशान् कृत्वा ‘समाहितार्चः’ समाहिता=सम्यग् व्यवस्थापिता अर्चा=शरीरं येन स समाहितार्चः=नियमितशरीरव्यापारः यद्वा-समाहिता=सम्यक् सम्पादिता अर्चा=प्रशस्तलेख्यां येन स समाहितार्चः=परिशुद्धाध्यवसायः, अथ वा समाहिता=प्रशमिता अर्चा=क्रोधाद्यध्यवसायरूपा लेख्या=ज्वाला येन स समाहितार्चः, ‘फलकापदर्थी’=फलमेव फलक कर्मक्षणात्मकं, तेन फलकेन आपदि=

सकता इसलिये उस कालमें समुचित द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे यह अशनादिकको कम करे, ऐसा कहा है, और इसी विचार से चतुर्थ-पष्ठ आदिरूप आनुपूर्वीका यहां ग्रहण किया गया है।

इस द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे आहारकी कृशता कर फिर वह साधु उसके बाद क्रोधादिक कषायोंको कृश करे। उनके कृश हो जाने पर फिर वह अपने शरीरको नियमित व्यापारमें लगावे। अथवा अपने परिणामोंको शुद्ध रखे। अथवा क्रोधादिक अध्यवसायरूप ज्वालाको शान्त करे। इस तरहकी प्रवृत्तिसे यह मुनि पण्डितमरण में उद्योग करके कर्मक्षपक तपकी विधिसे संसिद्ध शरीरवाला बनकर महर्षियों द्वारा तथा तीर्थंकर गणधरों द्वारा समाप्तरित मार्गका अनुगामी होता हुआ इगितमरण करे।

फलकापदर्थी—इस पदमें फलक १, आपद् २, अर्थी ३, ऐसे तीन शब्द हैं। कर्मोंका जो क्षपण होता है, वह फलक है, संसारमें परिभ्रमण करनेका

माटे से ढाणमा समुचित द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीधी ते अशनादिकने छोड़ा करे, ऐसे छोड़ें, अने आ ४ विचारधी यत्थ—छठु आदिरेप आनुपूर्वीने अर्द्धि अर्द्धु करवाना आवेल छे

आ द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीधी आहारनी कृशता-अल्पता करी करी ते साधु अने पछी क्रोधादिक कषायोंने कर करे आ यद्यु छोड़्या पाद पछी ते पोताना शरीरने नियमित व्यापारमा लगाडे अथवा पोताना परिष्कारने शुद्ध राजे अथवा क्रोधादिक अध्यवसायरूप ज्वालांने शान्त करे आ रीतनी प्रवृत्तिधी ते मुनि पण्डित भरषु माटे उद्योगशील अनी कर्मक्षपक तपनी विधिधी संसिद्ध शरीरवाला अनी महर्षियोंद्वारा तथा तीर्थंकर गणधरों द्वारा सुखवायेला मार्गना अनुगामी अनी इगित भरषु करे

फलकापदर्थी—अे पदमा श्लोक १, आपद् २, अर्थी ३, अेवा त्रषु शब्द छे, कर्मोंना ४े क्षय थाय छे, ते श्लोक छे—संसारमा परिभ्रमणु करवानु नाम आपद् छे. अर्थ

संसारपरिभ्रमणस्यायां योऽर्थः=प्रयोजनं स फलकापदर्थः सोऽस्यास्तीति फलकापद  
 र्थीसंसारजनककर्मप्रपणप्रयोजनत्वान् मिथुः=मुनिः उत्थाय पण्डितमरणोद्योगविधाय  
 मभिनिर्मुक्ताथः=अभिनिर्मुक्ता=कर्मक्षपणरूपोविधिना तसिद्धा अर्था=शरीर यस्य  
 स तपोक्ता=महर्षिसमाधिरितमार्गानुगामी सन् इद्वितमरणं कुर्यात् ॥ सू०४ ॥

नाम आपद् है, अर्थ शब्दका अर्थ प्रयोजन है, कर्मक्षपणरूप फलकसे  
 संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो अपने प्रयोजनका अभिलाषी है,  
 मर्णात् संसार में भ्रमण करनेवाले कर्मोंको विनाश करनेका ही जिसका  
 अभिप्रायरूप प्रयोजन है, वह फलकापदर्थी है। सूत्र में अर्था शब्दका  
 अर्थ शरीरकेद्वया या क्रोधादिरूप ज्वाला, ऐसा अर्थ किया गया है।

भाषार्थ—मुनिका शरीर जब अपने कर्मोपमार्गके आश्रय करनेमें  
 शिथिल हो रहा हो तब उसका कर्मोप्य है कि वह संसारजनक कर्मों का  
 क्षय करनेका प्रयोजनशील होकर क्तुर्य पण्ड आदि धानुपूर्वीद्वारा  
 आहारको, पश्चात् क्रोधादिक कषायोंको क्लेश करता हुआ इंगितमरणरूप  
 संसारको धारण करे। यह मार्ग महर्षियों द्वारा भी इसी अबसर पर  
 पहिछे आश्रित किया गया है, इस विचारसे वह मुनि भी अपनी शारी-  
 रिक क्रियाओंको नियमित कर इस मरणके करनेमें उत्तरोत्तर परिणत-  
 मोंकी वृद्धि करता रहे। थोड़ी सी भी शिथिलता इस 'समय न आने  
 पावे, इसकी पूर्ण सावधानी रखे। 'फलकापदर्थी' इस पदसे सूचकारने इस

शब्दने अर्थ प्रयोजन है कर्मक्षपण रूप इत्यर्थी संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमां  
 ने पोताना प्रयोजनना अभिलाषी है अर्थात् संसारमां अभयु क्षयवा  
 यणां कर्मिना विनाश इत्याने व नेना अभिप्रायरूप निश्चय है ते फलकापदर्थी  
 है सूत्रमां अर्था शब्दने अर्थ शरीरहेत्या—जेटके क्रोधादिरूप ज्वाला, जेवे  
 अर्थ इत्याना आवेक है.

भाषार्थ—मुनिउ शरीर आश्रय पोताना कर्त्तव्य भाजंतु आश्रयु कर  
 यामा शिथिल भाव है त्पारे जेनु कर्त्तव्य है ते तेके संसारजनक कर्मिना  
 क्षय इत्यामां प्रयोजनशाली यथ क्तुर्य पण्ड आदि धानुपूर्वीं आहार अने  
 क्रोधादिक कषायाने इर करता इत्या इंगितमरणरूप संसारो धारणु इवे। आ  
 भाजं महर्षिबोदास यजु आश्रय अनसरमां फलेहा आश्रयमां आवेक है. आ विधा  
 र्थी जे मुनि पण्ड पोतानी शारीरिक क्रियाजोने नियमित करी आनु मरणु  
 इत्या माटे उत्तरोत्तर परिणतमांती वृद्धि करता रहे. आ समये थोड़ी पण्ड  
 शिथिलता न आवे, जेनी पूज्यपण्डे संशयन राजे. फलकापदर्थी आपदर्थी सूत्रधारे

तादृशमरणविधिमेवाह—'अणुपविसित्ता' इत्यादि ।

मूलम्—अणुपविसित्ता गामं वा नगरं वा खेडं वा कब्बडं वा मडवं वा पट्टणं वा दोणमुहं वा आगरं वा आसमं वा सन्निवेशं वा नेगमं वा रायहाणिं वा तणाइं जाइज्जा, तणाइं जाइत्तासे तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अप्पंडे अप्पपाणे अप्पवीए अप्पहरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिंगपणगदगमट्टियमक्कडासंताणए पडिलेहियर पमज्जियर तणाइं संथरिज्जा, तणाइं संथरित्ता इत्थवि समए इत्तरियं कुज्जा, तं सच्चं सच्चवाई ओए तिन्ने छिन्नकहंकहे आईयट्टे अणाईए चिच्चाणं भेउरं कायं, संविधूय विरूपरूपे परीसहोवसग्गे, अस्सिं विस्संभणाए भेरवमणुचिन्ने तत्थवि तस्स कालपरियाए, जाव आणुगामियं-ति वेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—अणुपविश्य ग्रामं वा नगरं वा खेटं वा कर्वटं वा मडम्बं वा पत्तनं वा, द्रोणमुखं वा, आकरं वा, आश्रमं वा, सन्निवेशं वा, नैगमं वा, राजधानं वा, तृणानि वा, याचेत, तृणानि याचित्वा स तान्यादाय एकान्ते अपक्रमेत, एकान्तमपक्रम्य अल्पाण्डे अल्पप्राणे अल्पबीजे अल्पहरिते अल्पावश्याये अल्पोदके अल्पोत्तिरूपनक-दकमृत्तिकामर्कटसतानके प्रत्युपेक्ष्यर प्रमृज्यर तृणानि सस्तरेत्, तृणानि संस्तीर्य अत्रापि समये इत्वरिकं कुर्यात्, तत्सत्यं सत्यवादी ओजस्तीर्णश्छिन्नकथं कथः आतीतार्थः अनातीतः, त्यक्त्वा भिदुर कायं संविधूय विरूपरूपान् परीषहोपगन् अस्मिन् विथम्भणतया भैरवमनुचीर्णवान्, तत्रापि तस्य कालपर्यायो यावदानुगामिकम्—इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

प्रकारके मरण करनेमे आत्मघातका अभाव प्रकट किया है ॥ सू० ४ ॥

अब इस मरणकी ही विधिका प्रदर्शन करते हैं—'अणुपविसित्ता' इत्यादि ।

आपु मरथुं ज्ञेयान्मा आत्मघातं जेषु गन्तुं नथी तेम प्रपटं जरेल छे (सू० ४)  
अथ मरथुनीञ्च विधिने प्रदर्शितं ज्ञेयता सूत्रकारे द्रष्टे छे—'अणुपविसित्ता' इत्यादि.



टीका—'अनुमण्डये'—रयादि, स मिष्टुः 'ग्राम'—असति बुद्ध्यादिगुणानिति ग्रामस्य, 'वा' सर्वत्र पक्षान्तरघोषको ज्ञेयः; नगरं—प्रसिद्धं, खेट—प्रांशुमाकारमर्दं, कर्बटं—बुद्ध्याकारवेष्टितम्, मन्मन्व-यस्य अनुदिष्टु सार्धक्रोड्रयान्तरे ग्रामादिकं नास्ति तत्,

इतिगतरणका अमिलायी यह मुनि ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मन्मन्व, प्रस्तन, द्रोणमुख, आकर, आभ्रम, सन्निवेश, निगम, अथवा राज पानीमें जाकर घासकी याचना करे। घासको लेकर यह पर्वतकी गुफा आदि पकान्त स्थानमें जावे। यहाँ कीड़ीआदिकोके अण्डोंसे रहित, वीन्त्रि पादिक प्राणियोंसे रहित, नीबार—धान्यादिकबीजरहित, वृषादिरहित, संकुररहित, हिमरहित, भौम एवं आन्तरिक जखररहित, उत्तिग, प नक, दक—मृत्तिका और मर्कटसन्तानसे रहित, ऐसे स्थानमें उस घासका संस्तारा करे (उसे बिछावे)। संस्तारा करनेके पहिले यह उस स्थानकी अच्छी तरह—पार पार—प्रतिछेपना कर लेवे, प्रतिछेपना कर लेने बाद उसका फिर रजोहरण आदिसे प्रमार्जन करे। यहीनीत एव लघुनीतके स्थानका भी अच्छी तरहसे निरीक्षण करलेवे।

'असति बुद्ध्यादिगुणान इति ग्रामः'—बुद्धिआदि गुणोंका जो घास करता है—अर्थात् जहाँ पर रहनेसे बुद्ध्यादिक गुणोंमें विशेष उत्कर्षता नहीं आती है उसका नाम ग्राम है। नगर, प्रसिद्ध है। जिसके चारों ओर विशाल ऊँचा पुलि का कोट रहता है यह खेट है। जो छोटे परकोटेसे घिरा होता है यह कर्बट है। जिसकी चारों दिशाओंमें ढाई-ढाई कोश तक ग्रामादिक नहीं होते हैं यह मन्मन्व कहलता है। जहाँ पर प्रत्येक वस्तु

उचित नरखुना अमिलायी जे मुनि ग्राम, नगर, खेट, कर्बट मन्मन्व, प्रस्तन, द्रोणमुख, आकर आभ्रम, सन्निवेश, निगम, अथवा राजपानीमां कर्बट घासनी याचना करे. घासने लक्ष ते पर्वतनी गुहा वजेरे जेअन्त स्थानमां कस्य त्यां कीड़ी वजेरेना छंशंधी रहित, वे धन्त्रिअथवा प्राणीकोधी रहित, उत्तिग पनक, दक—मृत्तिका अने मर्कटसन्तान—(केशीयानी अण)धी रहित जेवा स्थानमां बिछावे. अथथि कर्बट पहेलां ते जे स्थानने सारी रीते जेछं दे अने लारवडी रनेदरख वजेरेधी प्रमर्जित करे. इरेक रीते जे स्थानजु अ'पूरु'पवे निरीक्षण करी दे

असति बुद्ध्यादिगुणान इति ग्रामः—बुद्धि वजेरे सुबोने जे आज करे छे अर्थात् जे स्थाने रहेवाधी बुद्धि आदि सुबोमा उत्कर्षता अथवा नहीं जेतु नाम ग्राम छे नगर प्रसिद्ध छे जेनी चारैपालु भुजाना उँचा उँचा टैकरा होय छे ते खेट छे जे नाना परकोटाधी घेराजेल छे ते कर्बट छे जेनी चारै दिशाजोनां अदी—अदी

પત્તનં=સર્વવસ્તુજાતં યત્ર સુસ્થેન લભ્યતે તત્, તત્ચ દ્વિવિધ જલપત્તનં સ્થલપત્તનં ચ, તત્ર જલપત્તનં રત્નદ્વીપાદિકં, સ્થલપત્તનં=લવપુરાદિકં, દ્રોણમુખં=જલ-સ્થલાગ-મનિર્ગમમાર્ગમ્, યથા-મુઘ્વાપુર્યાદિકમ્, આકરં=હિરણ્યાદિસ્વનિમ્, આશ્રમં=તાપ સાદીનાં વસતિં, સન્નિવેશં=સમાગન્તુકનરાણામાવાસં-સામાન્યજનાવાસં, નિગમં=પ્રચુરતરવણિગાદીનામાવાસં, રાજધાનીં=રાજસ્થાનમ્, અનુપ્રવિશ્ય તૃણાનિ યાચેત, તૃણાનિ યાચિત્વા તાનિ તૃણાનિ આદાય=ગૃહીત્વા એકાન્તમ્=નિર્જનસ્થાન ગિરિકન્દરાદિકમ્ ઉપક્રમેત=ગચ્છેત્, એકાન્તમુપક્રમ્ય ચ-‘અલ્પાણ્ડે’ અલ્પાનિ=અવિદ્યમાનાનિ અણ્ડાનિ ક્રીટકાદીનાં યત્ર તદ્ અલ્પાણ્ડં, તત્ર-અણ્ડપરિવર્જિતે સ્થાને, અલ્પશબ્દોઽત્ર પ્રકરણે સર્વત્રાઽભાવાર્થક એવ ધોધ્યઃ । એવમ્ અલ્પપ્રાણે=દ્વીન્દ્રિયા-

અનાયાસ મિલતી હૈ વહ પત્તન હૈ । યહ દો પ્રકારકા હોતા હૈ-એક જલ-પત્તન હૈ ઓર દૂસરા સ્થલપત્તન । રત્નદ્વીપ આદિ જલપત્તન હૈ । લવપુર (લાહોર) આદિ નગર સ્થલપત્તન હૈ । જિસમેં આને જાનેકા માર્ગ જલ એવં સ્થલ, ઇન દોનોંસે હોતા હૈ વહ દ્રોણમુખ હૈ, જૈસે વર્તમાનમેં ચર્ચઈ આદિ શહર હૈ । સુવર્ણઆદિકી ઉત્પત્તિ કા જો સ્થાન હૈ વહ આકર હૈ । તાપસ આદિકે નિવાસસ્થાન આશ્રમ હૈ । પથિકોંકે ઠટરનેકે સ્થાનકા નામ સન્નિવેશ હૈ । જહાં અધિક સંખ્યામેં વ્યાપારિવર્ગકા નિવાસ હો વહ નિગમ હૈ । જિસમેં સ્વયં રાજાકા નિવાસ રહતા હૈ વહ રાજધાની હૈ ।

इस प्रकरणमे अल्प शब्द अभाव अर्थका द्योतक है । उत्तिग, कीडी नगरेका नाम है । पनक-भाषामें लीलण-फूलणको कहते हैं, यह जहाँ

કોશ(ગાળી), સુધી ગામ નથી હોતા તે મહમ્મ કહેવાય છે ન્યા દરેક વસ્તુ અના-યાસે મળી જાય છે તે પત્તન છે એ જે પ્રકારના હોય છે-એક જળ-પત્તન અને બીજુ સ્થળ-પત્તન રત્નદ્વીપ આદિ જળ-પત્તન છે લવપુર-લાહોર વિગેરે નગર સ્થળ-પત્તન છે ન્યા આવવા જવાનો માર્ગ જળ અને સ્થળ બન્નેથી હોય છે તે દ્રોણમુખ છે તે હાલના મુખઈ આદિ શહેર છે સુવર્ણ વગે-રેની ઉત્પત્તિના જે સ્થાન છે તે આકર-ખાનિ છે તાપસ વગેરેના નિવાસસ્થાન આશ્રમ છે પથિકોને આશ્રમ આપનારા સ્થાનતુ નામ સન્નિવેશ છે ન્યા અધિક પ્રમાણમા વેપારી વર્ગનો વસવાટ હોય છે તે નિગમ છે ન્યા રાજાનો નિવાસ હોય છે તે રાજધાની છે

આ પ્રકરણમા અલ્પ શબ્દ અભાવ અર્થનો દ્યોતક છે ઉત્તિગ કીડી નગરાતુ નામ છે પનક-ભાષામા લીલણ-ફૂલણને કહે છે, જે જમીનમા ખીનાશ

दिमाभिर्ब्रिते, अल्पबीजे=नीवार-धान्यादि बीजरहिते, अल्पहरिते=दूर्वादिहरित  
 रमित 'अन्त्यावश्याये' -अन्त्यः=अविद्यमान अक्षयायो=नीवारो यत्र तत्र  
 =हरितरहिते, अत्योदक=मौमान्तरिक्षजनसरहिते, 'अत्योचिद्-पनक-दकमृत्तिका,  
 मर्कटसन्तानके-उचिद्ः=पिपीलिकानमरादिका, पनक=आर्द्रत्वेन पृथिव्यादिस्वितः  
 उचिद्विद्येयः 'लील्य-कृष्ण' इति भाषायाम्, दकमृत्तिका=अपकायाद्रीभूता मृत्तिका,  
 मर्कटसन्तानकः=सुतावन्तुजालं चैतेपामितरेतरद्वन्द्वे उचिद्-पनक-दकमृत्तिका-  
 मर्कटसन्तानकास्ते अन्त्या=अविद्यमाना यत्र तत् तत्र स्थाने गत्वा, तन्नभूपा  
 मस्युपेक्ष्यर=सुदुर्गुर्गुणा, अत्र वीप्सायां द्विर्वचनम्; प्रमूज्यर=रुनोहरणादिना  
 सम्भाष्यर, तादृशं पूर्वोक्ते स्थाने तृणानि सस्वरेत्, वृषानि सस्तीर्य उन्वारमस्र  
 मभूमिं मस्युपेक्ष्य च सस्तारकस्थितं पूर्वामिमुल्लं स्वोरकमुल्लवक्रिद्रोपशोभितमुल्लः  
 कृतमिन्दनमस्कारः भाषितित्यत्रपरमेष्ठिमन्त्रो गृहीतकतुर्विभञ्जरण मस्याख्याताप्टा  
 दृशपापः समापितसकसमीधः, अप्रापि समय=एतस्मिन्नवसरे 'अपि' कृन्दादन्यस्मि-  
 नपि आकस्मिकोपसर्गसमय क्रियमाणत्पगर्वनादिक्रियो वृत्तिसंहननादिबलस्तमन्वितो

जमीनमें गीलापनरहता है वहाँ रहती है। अपकायसे गीली हुई  
 मिट्टीका नाम दकमृत्तिका है। मकड़ीके जालेका नाम मर्कटसन्तान  
 है। ये सब तत्वज्ञात जहाँ नहीं है, ऐसे स्थान पर वह अपना  
 घासका सधारा कर, और उस पर पूर्वामिमुल्ल होकर बैठ जावे। डोरा  
 सहित मुहुरस्त्रसे घोभित है मुल्ल जिमका ऐसा वह साधु सिद्धोंको  
 नमस्कार कर पंचपरमेष्ठिबाबक नमस्कार मंत्रका जापकरे और अरहंत  
 सिद्ध, साधु और केवलप्रहृत भक्तका शरण ग्रहण करे। सत्रह प्रकारके  
 पापस्थानोंका परित्याग करे और समस्तजीवोंसे क्षमायाचना करे,  
 अपनी ओरसे भी उन्हें क्षमा प्रदान करे। इस अथसरमें 'मीत्पगर्वना-  
 दिप्रिया करता हुआ वह वृत्ति सहनन-बल-समन्वित ग्लान साधु नियत

कोष ७ त्या ओ रहे छे. अन्त्यावधी बीजबेबी भाटीनु नाम दकमृत्तिका छे  
 केशणीया वजेरेना जणां मर्कटसन्तान छे. आनी एय-भाव न्यां न  
 कोष जेवा स्थान उपर ते वासने सधारे छे, जने तेना उपर  
 पूर्वामिमुल्लधी केली बच. दोस भावैनी मुचपत्तीधी योसित मुजवाणा ते  
 साधु सिद्धीने नमस्कार करी पथपरमेष्ठियाक नमस्कार मंत्रने जाप करी  
 अरहंत, सिद्ध, साधु जने केवलप्रहृत भर्तनु शरण्य ते. अद्वय प्रकारना  
 पापस्थानेना परित्याग करी समस्त एयेनी क्षमायाचना करी पातना तरुधी  
 पञ्च जेभने क्षमा आपे. आ अथसरमां पञ्च त्वगर्वनादि क्रिया करतां करतां  
 ते वृत्ति-सहनन-जग-मुकत ग्लान साधु निश्चित देशमा दासवा बाधवाप

ગ્લાનઃ સ મિશુ ઇત્વરિકમ્=ઇક્ષિતમરણં નિયતદેશપ્રચારાદ્વીકારરૂપં યાવજ્જીવં ચતુર્વિધાહારત્યાગનિયમં કુર્યાત્, ઉક્તશ્ચ—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચઽવ્ચિહં ણિયમઓ ગુરુસમીવે ।  
 ઇંગિયદેસંમિ તહા, ચિટ્ઠંપિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈવિ અપ્પણા કુણહ ।

સન્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિચ, ણ અન્નજોગેણ ધિતિવલિઓ ” ॥ ૨ ॥

છાયા—પ્રત્યાહ્યાયિતિ આહારં, ચતુર્વિધં નિયમાદ્ ગુરુસમીપે ॥

ઇક્ષિતદેશે તથા, ચેષ્ટામપિ નિયમતઃ કરોતિ ॥ ૧ ॥

ઉદ્વર્તતે પરિવર્તતે કાયિક્યાથપિ આત્મના કરોતિ ॥

સર્વમિહાત્મનૈવ નાન્યયોગેન ધૃતિવલિકઃ ॥ ૨ ॥

પ્રદેશમેં હલને—ચલનેરૂપ મર્યાદાસે યુક્ત ઇંગિતમરણકો કિ જિસમેં યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારકા પરિત્યાગ હોતા હૈ ધારણ કરે । કહા મી હૈ—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચઽવ્ચિહં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તહા, ચિટ્ઠં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈ વિ અપ્પણા કુણહ ।

સન્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિચ, ણ અન્નજોગેણ, ધિતિવલિઓ ” ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—ઇસ ઇંગિત મરણમેં ગુરુકે સમીપ ચતુર્વિધ આહારકા પરિત્યાગ નિયમસે હોતા હૈ, ઇસ મરણમેં નિયમિત પ્રદેશમેં હી ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરતા હૈ, અનિયમિત પ્રદેશમેં નહીં । ઇસમે સમસ્ત શારીરિક સેવા સમાલ સાધુ સ્વતઃ કરતા હૈ, દૂસરોં સે નહીં કરવાતા ।

મર્યાદાયુક્ત ઇંગિતમરણ કે જ્યેષ્ઠે યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારને પરિત્યાગ હોય છે—ધારણ કરે કહ્યું પણ છે—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચઽવ્ચિહં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તહા, ચિટ્ઠં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈ વિ અપ્પણા કુણહ ।

સન્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિચ, ણ અન્નજોગેણ ધિતિવલિઓ ” ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—આ ઇંગિત મરણમા શુરૂની સામે ચતુર્વિધ આહારને પરિત્યાગ નિયમથી થઈ નાય છે, એવા મરણમા નિયમિત પ્રદેશમા ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરે છે, અનિયમિત પ્રદેશમા નહિ એમા હરેક રીતે શારીરિક સેવા સમાલ સાધુ પોતે જ કરે છે—ખીલથી કરાવતા નથી.

एवमित्त्रिमरणविषयापी कीदृशो भवतीत्याह—‘तत्सत्य’—मित्यादि, सत्यवादी यथोक्तानुष्ठानाद् यथाशुद्धीतप्रतिष्ठापरिपालनात्, एवम् भोजः=रागश्लेषरहितः, किं च—तीर्णः=दुष्पारसंसारपारावारपारं गतः, अत्र तदस्य भविष्यत्कामि-करणेऽपि भूतकालिकस्वमौपचारिकं बोध्यम्। एव ‘छिन्नकथंकथः’ छिन्ना=दूरीकृता कथं=कथमपि कथा कथा=रागकथादिरूपा विख्या यत्र स छिन्नकथंकथः। यथा—‘छिन्नकथंकथः’—छिन्ना=अपनीता ‘इत्त्रिमरणप्रतिष्ठायां कथं=केन प्रधरेण पारयिष्ये’ इत्येवविषया कथा यत्र स छिन्नकथंकथः, यस्त्वष्टविमान् इन्द्रुष्टेयाचारमाचरितुं प्रवृत्तो भवति स जायते कथंकथी, परन्तु यः पूर्वाक्तविषाः

इत्त्रिमरण करनेवाला साधु कैसा होता है इस बातको सूत्रकार निम्न लिखित पदों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—यह सत्यवादी होता है, कारण कि जिसरूपसे उसने नियम ग्रहण किया है उसी रूपसे यह उसका निर्वाहक होता है। यह आश्र-रागश्लेष रहित होता है। तीर्ण जिसका पार होना मुश्किल है, ऐसे संसाररूपी समुद्रको तैरनेवाला होता है। यद्यपि संसारसमुद्रसे यह अभी पार नहीं हुआ है, आगे पार होगा, फिर जो यहाँ ‘तीर्णः’ ऐसा भूतकालका प्रयोग किया है वह केवल उपचारसे ही समझना चाहिये। यह छिन्नकथंकथ होता है—रागकथादिरूप विख्याओंका दूर करनेवाला होता है। अथवा—“इस इत्त्रिमरण नियमका मैं कैसे निर्वाह कर सकूँगा ?” इस प्रकारकी कथाका परिहारक होता है। जो अप्रतिबाला हो च्छ इन्द्रुष्टेय आचारको आचरित करनेके लियं प्रवृत्त होता है वही

उचित भरण इत्याणां साधु केवा होय छे जे यतने सूत्रकार निवेना परोधी कहे छे—ते सूत्रवादी होय छे शरण्य के वेवा रूपधी जेहे नियम दीपित होय छे जे रूपधी तेजेने नीचावे छे. ते भोज-रागश्लेषरहित होय छे तीर्ण-केनाधी पार वतुं महाभुरहेत छे तेवा संसाररूपी समुद्रने तरी जनास होय छे इन्द्रु सुधी जे संसारसमुद्रधी पार कथं सकथा नथी—आजगणपर पार वरे, छातां पवु अदि “तीर्णः” जेवो भूतकालने प्रयोग करैत छे ते इन्द्रु उपचाररूप जे समजवे। जेहेजे ते छिन्नकथं कथ होय छे—रागश्लेषरहित कथारूप विख्याजोधी दूर रकेनास होय छे अथवा—“आ उचितभरण नियमने कुं कथं शीते पाणी शकीय आ प्रकारनी आस इत्याणां होय छे जे अप्रतिबाला (भीरु वरना) कथं इन्द्रुष्टेय अथवा स्वीं आचरण इत्यामां प्रवृत्त भव्य छे ते कथं कथी जने छे, “कुं कवे आ आचरण्यं यतन केम करी शकीय” जेवी कथा कथी करे छे परंतु ते जेवा नथी, केम के

સ મહાપુરુષપતયા ધૃતિબલસમ્પન્નસ્તાદશો ન ભવતીત્યર્થઃ, તથા-આતીતાર્થઃ આ=સમન્તાદ્ અતીવ્વ ઇતો=જ્ઞાતઃ અર્થો=જીવાજીવાદિપદાર્થો યેન સ આતીતાર્થઃ=સમ્યક્તયા પરિજ્ઞાતપદાર્થસાર્થઃ । યદ્વા-આતીતાઃ=સમ્યગ્રૂપેનાતિક્રાન્તા અર્થાઃ=પ્રયોજનાનિ યસ્ય સ આતીતાર્થઃ=નિવૃત્તવ્યાપારઃ, एवम्-‘અનાતીતઃ-આ=સમન્તાત્ અતીવ્વ ઇતઃ=ગતોઽનાદિસસારં સ આતીતઃ, અવિદ્યમાન આતીતો યસ્ય સઃ-અનાતીતઃ=અપારસંસારપારગામી, સ મિદ્યુઃ, તદ્=ઈક્ષિતમરણં-‘સત્ય’ સદ્ગ્રુપો હિતં સત્યં સર્વજ્ઞોપદેશેન સુગતિગમનેઽવિસંવાદાત્તથ્યં વિજ્ઞાય મિદુરં=પ્રતિક્ષણવિશરણશીલં કાયમ્=ઔદારિકં દેહં ત્યક્ત્વા=વિહાય વિરૂપરૂપાન્=વહુવિધાન્ પરીપહોપસર્ગાન્ સવિધૂય=અપનીય અસ્મિન્=વીતરાગોપદિષ્ટે શાસને વિશ્રમ્મણતયા=વિશ્વાસ-માજનતયા તદુક્તાગમસ્ય નિઃસશયં પરિશીલિતત્વેન ભૈસ્વ=કાતરાણા મયાવહ

કથંકથી હોતા હૈ, “મૈ અવ્વ હસ આચારકા પાલન કૈસે કર સકૂગા” ંસી કથા કિયા કરતા હૈ પરતુ યહ ંસા નહીં હૈ, ક્યોં કિ યહ મહાપુરુષ હોનેસે ધૃતિબલસમ્પન્ન હોતા હૈ । યહ આતીતાર્થ હોતા હૈ-અચ્છી તરહસે જીવ ંર અજીવ આદિ પદાર્થોં કા જ્ઞાતા હોતા હૈ । અથવા સમ્યક્રૂપસે અતિક્રાન્ત હો ચુકે હૈં સમસ્ત પ્રયોજન જિસકે ંસા હોતા હૈ । યહ અનાતીત-અપાર સંસારસે પારગામી હોતા હૈ ।

યહ સુનિ સર્વજ્ઞકે ઉપદેશસે સુગતિકે ગમનમ્ વિસવાદરહિત હોનેસે હી સજ્જનોંકે લિયે હિતવિધાયક હસ ંગિતમરણરૂપ સત્યકો જો કાયરોંકે લિયે મયાવહ હૈ જાનકર વીતરાગ ઉપદિષ્ટ શાસનમ્ વિશ્વાસયુક્ત હોનેકે કારણસે હી સેવન કરતા હૈ; ંર યહ સમજ્ઞતા હૈ કિ “યહ ંદારિક શરીર પ્રતિક્ષણ વિનાશરૂપ હૈ, હસ લિયે હસ મરણદ્વારા હસકા ટ્યાગ

તે મહાપુરુષ ડોવાથી ધૃતિબલસમ્પન્ન હોય છે, તે આતીતાર્થ હોય છે-સારી રીતે ભવ અને અભવ વગેરે પદાર્થોના બહુકાર હોય છે અથવા સમ્યક્રૂપથી અતિ કાન્ત થઈ ચુક્યા છે સમસ્ત પ્રયોજન જેમના એવા હોય છે, તે અનાતીત-અપાર સંસારથી પારગામી હોય છે

તે સુનિ સર્વજ્ઞના ઉપદેશથી સુગતિના ગમનમા વિસવાદરહિત ડોવાથી જ સમજ્ઞનેને માટે હિતવિધાયક એવા ંગિતમરણરૂપ સત્યને જે કાયરોને માટે ભયકારક છે બહુને વીતરાગદ્વારા ઉપદેશેલ શાસનમા વિશ્વાસ હોવાના કારણે સેવે છે અને સમજે છે કે-“આ ંદારિક શરીર પ્રતિક્ષણવિનાશરૂપ છે આ માટે એ મરણદ્વારા ટ્યાગ કરવો તે સર્વોત્તમ કાર્ય છે” આ ખ્યાલથી જે ંદારિક શરીરને એના સેવનથી પરિત્યાગ કરે છે એટલે આ મરણનુ આચરણ કરતી વખતે

साध्याचारम् अनुशीर्षं = भावस्तिथान्, तथापि = व्याधिपीडाजनितेच्छित्तम-  
रमस्वीकृत्येऽपि तस्य=कालस्य साधोः कालपर्यायं, कर्मनिर्भरत्स्योभयप्र  
समानत्वात्, अतः स तत्र व्यन्तिकारको भवति, इत्यारम्भ यावत् आनुगामिकं  
तस्य भवति। 'इति त्रयीमी'—स्यस्यार्षस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवें अध्यायनका छद्दा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥

करना सर्वोत्तम कार्य है" इसी काल से जो इस औदारिक शरीरका  
इसके सेवनसे परित्याग करता है, एवं इस मरणके आश्रयण करते  
समय इसे जो भी अनेक प्रकारके परीयह और उपसर्ग आते हैं उन्हें  
यह आनन्दसे सहन करता है, उस ओर ध्यान नहीं देता है,  
उस कालस्य साधुकी, व्याधिपीडासे जनित इस इंगितमरणमें भी  
कालपर्याय है, क्यों कि कर्मकी निर्जरा दोनों जगह समान है, इस  
तिय वह साधु संसारका अन्तकारक होता है और जन्ममरणके जालको  
पिनष्ट कर मोक्षके अनुकूल मार्गपर चलनेवाला होता है ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवें अध्यायनका छद्दा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥

ये अनेक प्रकारका परित्याग करने उपसर्ग आवे थे तेने ध्यान इत्थी सहन करे  
छेजे वरहे ध्यान आपत्ता नहीं जेवा कालस्य साधुनु व्याधि पीडाधी भवेत्त  
प्रति भवत्यु पद्य काणपर्याय छे केम के कर्मनी निश्चय जन्ने स्यजे समान  
छे अथ इत्ये ते साधु सत्त्वस्वरो अन्त करत्यर छेय छे अने जन्म भरवुनी  
अत्रने सेवीने मोक्षना अनुकूल भाव उपर आश्रयणत्वात् कर्म छे (सू ५)

आठवा अध्यायनको छद्दा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः ।

अभिहितः पष्ठ उद्देशः, साम्प्रतं सप्तम आरभ्यते । अस्य पूर्वोद्देशेन सहाय सम्बन्धः—पूर्वत्रैकत्वभावनाभावितान्तःकरणस्य धृति-संहननयुक्तस्येद्वितमरण वर्णितम् । अत्र चैकत्वभावना प्रतिमाभिः सम्पादनीयेत्येकत्वभावनामेव रुचयित्वा विशिष्टतरसंहननोपेतस्य पादपोपगमनमपि विधेयमिति प्रतिपादनीयम् । तत्र प्रथमप्रतिमाप्रतिपन्नस्याभिग्रहविशेषेणावस्था वर्णयति—‘जे भिक्खू’ इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—चाएमि अहं तणफासं अहियासित्तए, सीयफासं अहियासित्तए, तेउफासं अहियासित्तए, दंस—मसगफासं अहियासित्तए, एगयरे अन्नतरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छायणं चऽहं नो संचाएमि अहियासित्तए, एवं से कप्पइ कडिवंधणं धारित्तए ॥ सू० १ ॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश ॥

छट्ठा उद्देश कहा जा चुका है । अब सप्तम उद्देश प्रारंभ होता है । इसका पूर्व उद्देश के साथ यह संबन्ध है—पूर्व उद्देशमें एकत्वकी भावनासे भावित अन्तःकरणवाले, एव धृति-सहननसे युक्त साधुके इंगित मरणका वर्णन किया है । इस उद्देशमें प्रतिमाओं द्वारा वह एकत्व भावना संपादनीय है, अतः एकत्वभावनाका ही कथन करके विशिष्टतर संहननसे युक्त उस साधुको पादपोपगमन संधारा भी विधेय है, यह प्रतिपादित होगा । इसमें सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपन्न साधुकी अभिग्रहविशेषसे अवस्थाका वर्णन करते हैं—“से भिक्खू ” इत्यादि ।

आठमा अध्ययननो सातमो उद्देश

छठ्ठो उद्देश कहेवाचं गयेल छे डवे सातमा उद्देशनो आरंभ थाय छे आने । पूर्व उद्देशनी साथे आ संबन्ध छे—पूर्व उद्देशमा ऐकत्वनी भावनाथी भावित अन्तःकरणवाणा, अने धृति संहननथी युक्त साधुना इंगित मरणतु वर्णन करेल छे आ उद्देशमा प्रतिमाओंद्वारा ते ऐकत्वभावना संपादनीय छे आ रीते ऐकत्वभावनातु क कथन करीने विशिष्टतर ( ६६ ) संहननथी युक्त ऐ साधुने पादपोपगमन संधारे पद्य विधेय छे, आ प्रतिपादित थये ।

आमां सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपन्न साधुनी अलिग्रहविशेष अवस्थानु वर्णन करे छे—“से भिक्खू ” इत्यादि



छाया—यो मिष्टुरधेः पर्युषितस्तस्य स्फुट मिष्टोरेव भवति—श्वनोम्यर्ह  
 वृषस्यर्धमध्यासितु, शीतस्पर्शमध्यासितु, दंश-मशकस्पर्शमध्यासितुमेकतरानन्यतरान  
 विरूपरूपान् स्पृशान् अध्यासितु शीततिन्मद्वनं चार्हं नो श्वनोम्यध्यासितुम्, एवं  
 तस्य कल्पते कटिबन्धनं पठुम् ॥स० १॥

टीका—‘यो मिष्टु’—रित्यादि, यः प्रतिमाप्रतिपन्नो मिष्टुः=अन्नगारः, अन्वेलः  
 =अभिग्रहविशेष्य वसनवर्जितः सन् पर्युषितः=समये तपसि च व्यवस्थितोऽस्ति  
 तस्य मिष्टोः=सुनेचेतसि एवम्=इत्थं भवति—अर्हं तृणस्पर्शम्=तृणस्पर्शजन्यपीडाम्  
 अध्यासितुम्=अधिसहितुम्, एवं शीतस्पर्शमध्यासितुम्, किञ्च तत्रास्पर्शं=मध्यामा-  
 र्शकिरणनिवोपजन्यस्फुटमध्यासितुम्, तथा दंश-मशकस्पर्शं=दंश-मशकदंशनमनि-  
 त्तुल्यस्फुटमध्यासितुं, तथा एकतराम्=मुरूपान् केवलशीतोष्णादिजनितान्, अन्य  
 तान्=द्विबहोरकतरान्, तथाविधान् विरूपरूपान्=बहुविधान् कर्कशकठोरभूमिकष्ट

‘यो मिष्टु’=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, ‘अन्वेल’=अभिग्रहविशेष से  
 वस्त्ररहित होता हुआ, ‘पर्युषितः’=संयम और तपमें व्यवस्थित है, तस्य  
 मिष्टो’=उस मुनिके ‘चेतसि’ चित्तमें, ‘एवं भवति’=इस प्रकार विचार  
 जाता है कि—‘अर्हं’=मैं, ‘तृणस्पर्शं’=तृणस्पर्शजन्य पीडाको ‘अध्यासितुं’=  
 सहन करनेके लिये, ‘एवं’ इसी प्रकार ‘शीतस्पर्शं’=शीतस्पर्शजन्य बाधाको  
 ‘अध्यासितुं’=सहन करने के लिये, ‘तेजाः स्पर्शं’ सूर्यकी प्रखर किरणोंसे  
 जनित उष्णताजन्य कष्टको ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा  
 ‘दंशमशकस्पर्शं’=दंशमशकके काटनेसे उत्पन्न हुए परिपहविशेषका  
 ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा—‘एकतरान्’=केवल शीत मध्या  
 उष्ण भादि जनित किसी एक वु लको, तथा ‘अन्यतरान्’=शीत उष्ण  
 भादि दो में से अथवा बहुजनोंमें से किसी अन्यतर कष्टको, मध्या ‘विरूपरू-  
 पान्’=अनेक प्रकारके कर्कश और कठोर भूमि और कष्टक भादिसे

या मिष्टुः=प्रतिमाप्रतिपन्न साधु अन्वेलः=अभिग्रह विशेषी वस्त्ररहित  
 चेत्वा छाया पर्युषितः=समये अने तपसी व्यवस्थित है तस्य मिष्टोः=उस मुनिने  
 चेतसि चित्तमा एव भवति=इस प्रकारके विचार आवे है ई-अर्हं=हू  
 एवस्पर्शं=तृणस्पर्श बाणी पीडने, अध्यासितुं=सहन करना भाटे, “एवं” के  
 प्रकारे शीतस्पर्शं=शीता उपद्रवबाणी आधाने अध्यासितुं=सहन करना भाटे तथा  
 तेजाःस्पर्शं=अति तपसा सूर्यना उन्नतिशून्ये अध्यासितुं=सहन करना भाटे, तथा  
 दंशमशकस्पर्शं=दंश मशकने परिचल्य अध्यासितुं=सहन करना भाटे एकतरान्=  
 केवल-दंश मध्या अथवा अर्थी आ विभाषी जसे ते जेक अन्यतरान्=तथा पीड्य  
 प्रकारान् बहु दुःखोभाषी अन्यतर विरूपरूपान्=अनेक प्रकारान् कर्कशबाणी अने

કાર્દિજનિતાન્ સ્પર્શાન્=દુઃખાનિ અધ્યાસિતુ શક્નોમિ=સમર્થોઽસ્મિ । ધૃતિ-સંહનન-યુક્તસ્ય શ્રુતજ્ઞાનદૃષ્ટ્યા પરિજ્ઞાત-નારક-તિર્યગ્વેદનાભિભવસ્ય વૈરાગ્યભાવના-ભાવિતસ્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્નસ્ય મે તાદૃશાનિ દુઃખાનિ વહુશોઽનુભૂતપૂર્વાણિ સન્ત્યત એતાનિ દુઃખાનિ માં પરિભવિતું ન શક્નુવન્તીત્યાશયઃ, પરન્તુ-અહ કેવલં 'હીપ્રતિ-ચ્છાદન' દ્રિયા=લજ્જયા ગુહ્યસ્ય પ્રતિચ્છાદનમ્=આચ્છાદનમ્, મધ્યમપદસ્ય ગુહ્યસ્ય લોપઃ, ત્યક્તું=વિહાતુ ન શક્નોમિ=લજ્જાસ્વભાવત્વેન વિકૃતસાધુવેપશઙ્કયા ચ તત્પરિદર્શુ ન સમર્થોઽસ્મીત્યર્થઃ । एवं पूर्वोक्तहेतुभिः तस्य=प्रतिमाप्रतिपन्नस्य भिक्षोः कटिवन्धन=विस्तरेण चतुरङ्गगुलाधिकरहस्तप्रमाणं, दैर्घ्येण कटिप्रमाण, गणनया चैकं जनित 'स्पर्शान्'=दुःखोको, 'अध्यासितु'='सहन करनेके लिये, 'शक्नोमि' =समर्थ हूं ।

भावार्थ—ધૃતિ ઓર સહનનસે યુક્ત, શ્રુતજ્ઞાનકી દૃષ્ટિસે નરક ઓર તિર્યગ્ગતિકે કષ્ટોકો જાનનેવાલે, વૈરાગ્યભાવનાસે ભાવિત, ઓર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન, એસે મૈને જબ ઉસ ૨ પ્રકારકે દુઃખોકા પૂર્વમેં વહુતવાર અનુભવ કિયા હૈ તો ફિર યે દુઃખ મુક્ષે, દુઃખિત યા તિરસ્કૃત કરનેકે લિયે સમર્થ નહીં હો સકતે હૈ ।

“ હી-પ્રતિચ્છાદન ” હસ પદમેં મધ્યમ પદ “ ગુહ્ય ” કા લોપ હુઆ હૈ, અતઃ ‘દ્રિયા’=લજ્જાકે કારણ ‘ગુહ્યસ્ય’=ગુહ્યભાગકે ‘પ્રતિચ્છાદન’= આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રકો ‘ત્યક્તું’=છોડને કે લિયે મૈ, ‘ન શક્નોમિ’=લજ્જા-યુક્ત સ્વભાવવાલા હોનેસે, ઓર સાધુકાવેપકી વિકૃતિ હો જાનેકી શંકા સે સમર્થ નહીં હુ । ‘एव’=इन पूर्वोक्त कारणोंसे ‘तस्य’=उस प्रतिमाप्रतिपन्न साधुके, ‘कटिवन्धन’=चार अंगुल अधिक एक हाथ प्रमाण विस्तृत एवं

કઠોર ભૂમિના, અને કાટા વગેરેથી ભરેલા, સ્પર્શાન્=હુઃખોને, અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે શક્નોમિ=સમર્થ છુ

ભાવાર્થ—ધૃતિ અને સહનનથી યુક્ત શ્રુતજ્ઞાનની દૃષ્ટિથી નરક અને તિર્યગ્ ગતિના કષ્ટોને બાધુવાવાળા વૈરાગ્ય ભાવનાથી ભાવિત અને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન એવો મે બ્યારે જે જે દુઃખોનો અગાઉ ઘણી વખત અનુભવ કરેલ છે તે પછી આ હુ ખ મને દુઃખિત અથવા તિરસ્કૃત કરવામા સમર્થ બની શકનાર નથી

“ હીપ્રતિચ્છાદન ” આ પદમા મધ્યમ પદ “ ગુહ્ય ” નો લોપ થયેલ છે એ રીતે દ્રિયા=લજ્જાથી, ગુહ્યસ્ય=ગુહ્ય ભાગના, પ્રતિચ્છાદન=આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રને, ત્યક્તું=છોડવા માટે હુ, ન શક્નોમિ=લજ્જાયુક્ત સ્વભાવ હોવાથી, અને સાધુના વેપની વિકૃતિ થઈ જવાની શંકાથી સમર્થ નથી એવ=આ પૂર્વોક્ત કારણોથી ત્વસ્ય=એ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુએ, કટિવન્ધન=ચાર આંગળ અધિક એક હાથ

कटिबद्धं पतुं कल्पत। यदि पुनर्लज्जापरीपहसइतसमयाऽपि मवचर्हिं फक्त  
सदोस्त्र्यस्वस्त्रिकारमोहरणोपधिकोऽचेल एव पराक्रमत ॥ सू० १ ॥

बद्धरहितत्वेन शीतादिस्पर्शजन्यदुःखविशेषं सम्यगपि सहेतेति दर्शयति—  
'अदुषा' इत्यादि।

मूल्म्—अदुषा तस्य परक्रमत भुञ्जो अचेल तणफासा  
फुसति, सीयफासा फुसति, तेउफासा फुसति, दसमसगफासा  
फुसति, पगयरे अन्नयरे विरूधरूवे फासे अहियासेइ, अचेले  
लाघविय आगममाणे, जाव समभिजाणिया ॥ सू० २ ॥

छाया—अथवा तत्र परक्रममाणं भूयोऽचेलं तृणस्पर्शां स्पृशन्ति, शीतस्पर्शां  
स्पृशन्ति, तेन स्पर्शां स्पृशन्ति, दशमशकस्पर्शां स्पृशन्ति, एकरानन्पतरान् विरूप  
रूपान् स्पर्शान् भविसइत अक्षसो लाघविकमागमयन् यावत्समभिजानीयत्ता ॥ सू० २ ॥

टीका—'अथवे'—स्यादि, अथवा—पश्चान्तरं तत्र परं सूत्रे इतुसखे फलनं  
फत् यदि न सज्जते तदा वेसरहितं पराक्रमत, इत्युक्तम्, ततोऽन्यपक्षमाभित्य

कटिप्रमाण लम्ब एक कटिबद्धका धारण करना कल्पित है—शास्त्रबिहित  
मार्ग है। यदि वह साधु लज्जापरीपहको जीतनेमें शक्तिसंपन्न है तो  
श्री उसे बोरेसहित मुहपत्ति और रजोहरण, ये दो उपधियां तो  
रखना ही चाहिये। इनके रखन पर श्री वह अथेलक ही है ॥ सू० १ ॥

बद्धरहित होनेसे साधु शीतस्पर्श भादि जन्य दुःख विशेषको अच्छी  
तरह सहनकरे, इस विषयको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—'अदुषा'  
इत्यादि।

"अथवा" शब्द पश्चान्तरका द्योतक है इसलिय "पूर्वसूत्रमें लज्जा-  
विहेतुक सद्भावमें साधु बद्ध धारण कर, यदि लज्जापरीपह उसने जीत

प्रमाण पहेतु कला प्रमावे लांजु जेक वस्त्र केक उपर धारण कस्तु कल्पित  
छे—शास्त्रमा कहेल भागं छे परंतु ते साधु लम्बपरिबद्धने एतवामां शक्ति  
उपलब्ध छे तो पलु जेजे दोरासहित मुहपत्ति जने रत्नेकरण आ वि उपधियो  
ते शभयी व जेछेजे आने सपवाधी पलु ते ज्येवक व छे (सू १)

बद्धरहित होवाथी साधु कही आदि स्पर्शजन्य दुःख धारी शीते सहन  
करे, आ विषयने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—'अदुषा' इत्यादि।

"अथवा" शब्द पश्चान्तरने द्योतक छे भादे पूर्वं सूत्रमां "लज्जादि  
हेतुना सहसावमां साधु बद्ध धारण करे, कदाच लम्ब परिबद्ध तेजे एवी

कथयति-तत्र संयमे पराक्रममाणम् अचेलम्=वस्त्ररहितं तृणस्पर्शाः=तृणस्पर्शजन्य-  
दुःखानि स्पृशन्ति=अभिभवन्ति, एवं शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजःस्पर्शाः  
स्पृशन्ति, दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति, एतादृशान् एकतरान् अन्यतरान् विरूपरूपान्  
स्पर्शान् सोऽचेलः=अधिसहते लाघविक्रमागमयन् यावत् सम्यक्त्वमेव समभिजा-  
नीयात्। व्याख्या पूर्वदिशाऽवसेया ॥ सू० २ ॥

प्रतिमाप्रतिपन्नोऽभिग्रहविशेष स्वीकुर्यात्-“अहमन्येभ्यः प्रतिमाप्रतिपन्नेभ्यः  
किमपि दास्यामि, तेभ्यो वा ग्रहीष्यामि” इत्यादि चतुर्भङ्गिकया दर्शयति-  
'अस्स णं' इत्यादि।

लिया है तो वस्त्रका भी परित्याग कर देवे” जो यह विषय बतलाया है  
उससे भिन्न पक्षका आश्रय कर सूत्रकार कहते हैं कि-संयममें लवलीन  
वस्त्ररहित साधुको तृणस्पर्शजन्य दुःखविशेष पीडित करते हैं, शीतस्पर्श  
दुःखित करते हैं, उष्ण स्पर्श कष्ट पहुंचाते हैं, दंशमशक बाधा पहुंचाते  
हैं, एकतर या अन्यतर विरूपरूप परिषह उसे आकुलित करते हैं, परन्तु  
उस अचेल-वस्त्ररहित साधुका कर्तव्य है कि वह इन समस्त परिषह-  
जन्य बाधाओंको सहन करे। इससे उसे यह लाभ है कि उसके संचित-  
कर्मोंका भार हल्का होगा और आगामी कर्मोंका बंधन भी शिथिल  
होता रहेगा। 'लाघविय आगममाणे' यहांसे ले कर 'सम्मत्तमेव  
समभिजाणिया' यहां तकके इन पदोंकी व्याख्या चतुर्थ उद्देशमें पहिले  
की गई व्याख्या के अनुसार ही जान लेनी चाहिये ॥सू०२॥

लीषीः ह्येव तो वस्त्रको पक्ष परित्याग करे” जे आ विषय जतायेओ छे तेनाथी  
बिन्न पक्षतु आश्रय करी सूत्रकार कहे छे के-संयममा लवलीन वस्त्ररहित  
साधुने तृणस्पर्शजन्य दुःखविशेष पीडा करे छे, ठडीने स्पर्श दुःख करे छे,  
गरमीने स्पर्श पीडा पहुँचाउ छे उष्ण, मच्छर बाधा पहुँचाउ छे एकतर  
अने अन्यतर विरूपरूप परिषह तेने आकुण व्याकुण करता रहै छे, परतु जे  
अचेल-वस्त्ररहित साधुते जे कर्तव्य छे के ते आवी समस्त परिषहजन्य  
पीडाओ सहन करे आधी तेने जे लाभ छे के तेना संचित कर्मोना भार  
हुणवे धरै, अने आगामी कर्मोनु बंधन पक्ष शिथिल यता रहैथे.  
“लाघविय आगममाणे” अर्थाथी लघु “सम्मत्तमेव समभिजाणिया” अर्थाथी सुधीना  
पहोनी व्याख्या पहुँचा चतुर्थ उद्देशमा कहेवाथ गयेल व्याख्यानी अनुसार नाथी  
हेवी लघुअ. (सू०२)

मूष्-जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च खलु अत्तेसिं  
 भिक्खुण असण वा ४ आहहु दलइस्तामि, आहड च साइ  
 जिजस्तामि (१), जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च खलु  
 अन्नेसिं भिक्खुण असण वा ४ आहहु दलइस्तामि आहड च  
 नो साइजिजस्तामि (२), जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च  
 खलु असण वा ४ आहहु नो दलइस्तामि आहड च साइजिज  
 स्तामि (३), जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च खलु अ  
 न्नेसिं भिक्खुण असण वा ४ आहहु नो दलइस्तामि आहड  
 च नो साइजिस्तामि (४)। अह च खलु तेण अहाइरिच्छेण  
 अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण असणेण वा ४ अभिकंख  
 साहम्मियस्त कुञ्जा वेयावडिय करणाए, अह वा वि तेण  
 अहाइरिच्छेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण अस्तणेण वा ४  
 अभिकंख साहम्मिपहिं कीरमाण वेयावडिय साइजिजस्तामि,  
 लाघवियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू०३ ॥

छाया-यस्य सल्लु मिहोरेव मवति-अहं च सल्लु अन्येभ्यो मिधुम्योऽन्नं  
 वा ४ आहस्य दास्यामि, आहृतं च नो स्वादयिष्यामि (१), यस्य सल्लु मिहोरेवं  
 मवति-अहं च सल्लु अन्येभ्यो मिधुम्योऽन्नं वा ४ आहस्य दास्यामि, आहृतं च नो  
 स्वादयिष्यामि (२), यस्य सल्लु मिहोरेवं मवति-अहं च सल्लु अन्येभ्यो मिधुम्योऽ  
 न्नं वा ४, आहस्य नो दास्यामि, आहृतं च स्वादयिष्यामि (३), यस्य सल्लु मिहोरेवं  
 मवति-अहं च सल्लु अन्येभ्यो मिधुम्योऽन्नं वा ४ आहस्य नो दास्यामि, आहृतं  
 च नो स्वादयिष्यामि (४)। अहं च सल्लु तेन यथाऽतिरिक्त्तं यथैपवीयेन यथापरि  
 पृहीतेन अन्ननेन वा ४ अभिकाहस्य साधर्मिकस्य कुर्या वैयाहस्यं करणाए, अहं  
 पाऽपि तेन यथातिरिक्त्तं यथैपवीयेन यथापरिपृहीतेन अन्ननेन वा ४  
 अभिकाहस्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयाहस्यं स्वादयिष्यामि स्वपत्किष्मागमयन्  
 पान्त्तं साम्यस्त्वयं समभिजावीयात् ॥ सू ३ ॥

ટીકા—‘યસ્યે’-ત્યાદિ, અસ્યાથતુર્ભગ્ન્યા વ્યાખ્યા પૂર્વોક્તદિશૈવ જ્ઞેયા, એતેષા  
 ચાભિગ્રહાણાં ચતુર્ણામન્યતમમભિગ્રહ યજ્ઞીયાદિત્યાદિ । યદ્વા-ત્રિપિથાનામાધ્યાનામેરુ-  
 પદેનૈ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન કશ્ચિન્મુનિરભિગ્રહ યજ્ઞીત, ચતુર્થસ્ય ચ મજનેત્યાહ-‘અહ’-  
 મિત્યાદિ, યસ્ય મિશ્નોશ્વેતસિ એવ મરતિ-અહં ચ તેન પૂર્વોક્તેન યયાતિરિક્તેન=સ્વો-  
 પભોગોર્ધરિતેન, યથૈષણીયેન=પ્રતિમાપ્રતિપન્નાના યદેષણીયં તમનત્ક્રમ્ય યથૈષણીયેન  
 એવં યથાપરિગૃહીતેન=નિજાર્થાભ્યુપગતેન, અશનેન વાઽ = ચતુર્વિધેનાહારેણ

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ ઇસ અભિગ્રહવિશેષકો સ્વીકાર કરે કિ-“ મૈ  
 અન્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓંકે લિયે કુઠ ડૂગા ઓર ડનસે મી કુઠ  
 લૂગા ” ઇસી વિષયકો સૂત્રકાર ચારભંગોં દ્વારા પ્રદર્શિત કરતે હૈ-  
 “ જસ્સણ મિક્સુસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

ઇસ ચતુર્ભગ્નીકી વ્યાખ્યા ઇસી અધ્યયનકે પાંચવેં ઉદ્દેશમેં કી ગઈ  
 દ્વિતીય સૂત્રકી વ્યાખ્યાકે અનુસાર સમજ્ઞ લેની ચાહિયે । પ્રતિમા-  
 પ્રતિપન્ન મુનિ ઇન ચાર અભિગ્રહોંમેંસે કિસી એક અભિગ્રહકો, અથવા  
 આદિકે તીન અભિગ્રહોં મેં સે કિસી એક અભિગ્રહકો ગ્રહણ કરો । ચતુર્થ  
 અભિગ્રહકી મજના હૈ, ઇસકે લિયે સૂત્રકાર ‘અહ’-મિત્યાદિ સૂત્રાંશ  
 કહતે હૈ-જિસ મિશ્નુકે ચિત્તમેં એસા વિચાર આતા હૈ કિ  
 મૈ ડસ ચતુર્વિધ આહાર સે કિ જો મેરે ડપભોગસે વાકી વચ રહા હૈ,  
 તથા જો યથૈષણીય પ્રતિમાપ્રતિપન્નોંકે લિયે કલ્પનીય હૈ, ઓર જિસે મૈ  
 અપને લિયે લાયા હૂં, કર્મોંકી નિર્જરા કરનેકી ચાહનાસે સાધર્મી સાધુ

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ આ અભિગ્રહ વિશેષનો સ્વીકાર કરે કે “ હુ અન્ય  
 પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓને માટે અશનાદિ દર્શન અને એમની પાસેથી પણ  
 અશનાદિ લઈશ ” આ વિષયને સૂત્રકાર ચાર ભંગોં દ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે-  
 “ જસ્સ જં ” ઇત્યાદિ

આ ચાર ભંગોંની વ્યાખ્યા, આ અધ્યયનના પૂર્વ ઉદ્દેશમા કહેવામા  
 આવેલ ખીન્ન સૂત્રની વ્યાખ્યા અનુસાર સમજ્ઞ લેવી જોઈએ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન  
 મુનિ આ ચાર અભિગ્રહોંમાથી કોઈ એક અભિગ્રહને અથવા આગળના ત્રણ  
 અભિગ્રહોંમાથી કોઈ એક અભિગ્રહને ગ્રહણ કરે એથા અભિગ્રહની ભજના છે  
 આ માટે સૂત્રકાર આહ ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-જે મિશ્નુના ચિત્તમા  
 એવો વિચાર આવે છે કે હુ એ ચતુર્વિધ આહારથી કે જે મારા  
 ઉપભોગથી ખાકી ખઈ રહેલ છે, તથા જે યથૈષણીય-પ્રતિમાપ્રતિપન્નો માટે  
 કલ્પનીય, અને જેને હુ મારા માટે લાવેલ છુ કમોંની નિર્જરા કરવાની ચાહ-

अभिकाङ्क्ष्य=कर्मनिर्भरममिनाच्छ्रय करणाय=उपभोगाय साधर्मिकस्य=समानप  
 र्मणः साधोः वयावृत्त्यं कुर्यात् । एतादृशमभिच्छं कश्चिद् गृह्णाति । पुनः पदान्तरं  
 प्रदर्शयति—‘व्यावाप्यी’-त्यादि ‘वा’ शब्द-पदान्तरसूचकः, यस्य स्तु मियोभेतस्य  
 मवति—अहमपि=पुन तेन=यथातिरिक्तेन यथैपणीयेन यथापरिगृहीतेनाऽऽनेन  
 वाध कर्मनिर्भरममिकाङ्क्षस्य साधर्मिके क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वाद्यिष्यामि  
 =स्वीकरिष्यामि । एवं परिचिन्तयन् साधु किं कुर्यादिति दर्शयति—‘साधविक’-  
 मित्यादि, सर्वं व्यख्यातपूर्वम् ॥ सू०३ ॥

का वैयावृत्त्यं करे । इस प्रकारका अभिग्रह कोई साधु ग्रहण करता है,  
 और कोई साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि-मैं यथातिरिक्त, यथैपणीय  
 और यथापरिगृहीत चतुर्विध अधानसे कर्मोंकी निर्जरा होनेकी कामनासे  
 साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यको मैं स्वीकार करूँगा।

इस प्रकार विचार करनेवाला साधु क्या करे ? इसे सूत्रकार “छाद्य  
 विर्यं भागममाणे जाय समस्तमेव समभिजाणिया” इन पदोंसे प्रकट  
 करते हैं । इन समस्त पदोंका अर्थ पहिले इसी अध्ययनके चतुर्व्य उद्देश  
 में कहा जा चुका है।

भावार्थ—साधु द्वारा साधुकी वैयावृत्त्य करनेके प्रकार यहाँ पर  
 सूत्रकारने प्रदर्शित किये हैं, ये ही प्रकार जब नियमरूपसे अंगी  
 हृत होते हैं तब अभिग्रहविशेष कहलान लग जाते हैं, उन्हींका यहाँ  
 कथन है।

नयी साधुकी साधु वैयावृत्त्य कई आ प्रकारने अलिखक देाध साधु अकक्ष  
 करे छे केअ साधु जेवे अलिखक करे छे छे-छे यथातिरिक्त, यथैपणीय  
 कने यथापरिगृहीत अर प्रकारना अधनयी कर्मोनी निल’स जेवानी कामनायी  
 साधुकी साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यने स्वीकार करीश।

आ प्रकारने विचार कएवाजा साधु सुं करे जेने सूत्रकार “छाद्यवि  
 र्यं भागममाणे जाय समस्तमेव समभिजाणिया” आ पदोधी प्रकट करे छे जे  
 समस्त पदोने अर पदोवां आ अध्ययनना बोधा केशभां कहेवाकजके छे।

भावार्थ—साधुकेद्वारा साधुकेनी वैयावृत्त्य कएवाने प्रकार अर्कि  
 सूत्रकारे प्रकट करैत छे जेव अर नितभद्रपथी अजीकृत बाय छे त्पारे  
 अलिखकविशेष कहेवाभां आवी जाय छे जेनु अर्कि कथन छे।

टीका—‘यस्ये’-त्यादि, अस्याश्चतुर्भङ्ग्या व्याख्या पूर्वोक्तदिशैव ज्ञेया, एतेषा चाभिग्रहाणां चतुर्णामन्यतममभिग्रह गृह्णीयादित्यादि । यद्वा—त्रिविज्ञानामाद्यानामेकपदेनैव प्रतिमाप्रतिपन्न कश्चिन्मुनिरभिग्रह गृह्णीत, चतुर्थस्य च भजनेत्याह—‘अह’-मित्यादि, यस्य भिक्षुश्चेतसि एव भवति—अहं च तेन पूर्वोक्तेन यथातिरिक्तेन=स्वोपभोगोर्वरितेन, यथैषणीयेन=प्रतिमाप्रतिपन्नाना यदेषणीयं तमनतिक्रम्य यथैषणीयेन एवं यथापरिगृहीतेन=निजार्थाभ्युपगतेन, अशनेन वा४ = चतुर्विधेनाहारेण

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु इस अभिग्रहविशेषको स्वीकार करे कि—“ मैं अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुओंके लिये कुछ दूंगा और उनसे भी कुछ लूंगा ” इसी विषयको सूत्रकार चारभंगों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—“ जस्स ण भिक्खुस्स ” इत्यादि ।

इस चतुर्भङ्गीकी व्याख्या इसी अध्ययनके पांचवें उद्देशमें की गई द्वितीय सूत्रकी व्याख्याके अनुसार समझ लेनी चाहिये । प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि इन चार अभिग्रहोंमेंसे किसी एक अभिग्रहको, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से किसी एक अभिग्रहको ग्रहण करे। चतुर्थ अभिग्रहकी भजना है, इसके लिये सूत्रकार ‘अह’-मित्यादि सूत्रांश कहते हैं—जिस भिक्षुके चित्तमें ऐसा विचार आता है कि मैं उस चतुर्विध आहार से कि जो मेरे उपभोगसे बाकी बच रहा है, तथा जो यथैषणीय प्रतिमाप्रतिपन्नको लिये कल्पनीय है, और जिसे मैं अपने लिये लाया हूं, कर्मोंकी निर्जरा करनेकी चाहनासे साधर्मी साधु

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु या अलिग्रह विशेषको स्वीकार करे के “ हु अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुओने माटे अशनादि दृशश अने ओमनी पासेथी पणु अशनादि लशश ” या विषयने सूत्रकार यार ल गोलद्वारा प्रदर्शित करे छे—“ जस्स णं ” इत्यादि

या यार ल गोलनी व्याख्या, या अध्ययनना पूर्व उद्देशमा कडेवाभा आवेल गीज सूत्रनी व्याख्या अनुसार समझ लेनी जेथ ओ प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि या यार अलिग्रहोमाथी केथ ओक अलिग्रहने अथवा आगणना त्रधु अलिग्रहोमाथी केथ ओक अलिग्रहने ग्रहण करे योथा अलिग्रहनी लजना छे या माटे सूत्रकार अह इत्यादि सूत्रांश कडे छे—जे भिक्षुना चित्तमा ओयो विचार आवे छे के हु ओ चतुर्विध आहारधी के ने मारा उपभोगधी बाकी अथी रहेल छे, तथा जे यथैषणीय-प्रतिमाप्रतिपन्नो माटे कल्पनीय, अने जेने हु मारा माटे आवेल छु कर्मोनी निर्जरा करवानी चाह-



अभिधाकृत्य=कर्मनिर्हरणमभिधाकृत्य करणाय=उपभोगाय साधर्मिकस्य=समानधर्मः साधोः यथावृत्त्यं कुर्यात् । एषाद्वयमभिधाकृत्यं कश्चिद् गृह्णाति । पुनः पश्चान्तरं प्रवर्षयति—'अष्टौत्वाऽपी'-त्यादि 'वा' छन्दः पश्चान्तरसूक्तः, यस्य ससु मिश्रोभेदस्येव सवति—यथायपि=युनः तेन=यथातिरिक्तेन यथैपणीयेन यथापरिगृहीतनाऽश्वनेन वाध कर्मनिर्हरणमभिधाकृत्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि=स्वीकरिष्यामि । एवं परिचिन्तयन् साधुः किं कुर्यादिति वर्षयति—'साधर्मिक'-मित्यादि, सर्वं व्यख्यातपूर्वम् ॥ सू०३ ॥

का वैयावृत्त्यं कर्तुं । इस प्रकारका अभिग्रह कोई साधु ग्रहण करता है, और कोई साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि—मैं यथातिरिक्त, यथैपणीय और यथापरिगृहीत यत्तुविषय अज्ञानसे कर्मोंकी निर्जरा होनेकी कामनासे साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यको मैं स्वीकार करूँगा।

इस प्रकार विचार करनेवाला साधु क्या करे ? इसे सूत्रकार " साधर्मियं आगममाणे जाय समस्तमेव सममिजागिया " इन पदोंसे प्रकट करते हैं । इन समस्त पदोंका अर्थ पहिले इसी अध्ययनके यत्तुर्वं उद्देश में कहा जा चुका है।

भावार्थ—साधु द्वारा साधुकी वैयावृत्त्य करनेके प्रकार यहाँ पर सूत्रकारने प्रदर्शित किये हैं, ये ही प्रकार जब नियमरूपसे अंगीकृत होते हैं तब अभिग्रहविशेष कहलाने लग जाते हैं, उन्हींका यहाँ रूपम है।

यथा साधर्मिं साधुज वैयावृत्त्यं कर्तुं आ प्रकारेण अलिप्तकं केषं साधु प्रकृत्य करे छे केषं साधु जेवो अलिप्तकं करे छे के-कुं यथातिरिक्त, यथैपणीय अने यथापरिगृहीत आर प्रकारेण अज्ञानधी, कर्मोंनी निवृत्त होवानी कामनाधी साधर्मिक साधु द्वारा द्विग्राह्य वैयावृत्त्यने स्वीकार करीश।

आ प्रकारेण विचार करवावणा साधु शुं करे जेने सूत्रकार " साधर्मियं आगममाणे जाय समस्तमेव सममिजागिया " आ पदोंधी प्रकट करे छे जे समस्त पदोंने अर्थ पहिले आ अध्ययनना बोधा उद्देशमां कहेवाछं जेके छे

भावार्थ—साधुजोद्वारा साधुजोनी वैयावृत्त्य करवाने प्रकार अर्द्ध सूत्रकार प्रकट करेछे छे जे अन्वये नियमरूपधी अंगीकृत भाय छे त्पारे अलिप्तकविशेष कहेवानां अर्थी भाय छे जेनु अर्द्ध कथन छे

कोई २ साधु इस प्रकारसे अभिग्रह करते हैं कि-मैं अन्य साधुके लिये आहारादिक लाकर दिया करूँगा, यही मेरेद्वारा उनकी वैद्यावृत्त्य है, तथा कोई साधु मेरे लिये आहार पानी लाकर देगा तो मैं भी उसे स्वीकार कर लूँगा। यह अभिग्रहका एक प्रकार है।१।

कोई एक साधु इस प्रकारका अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरे साधुमी साधुके लिये आहारादिक ला दिया करूँगा पर दूसरेके द्वारा लाया हुआ आहार पानी अपने उपयोग में नहीं लूँगा। यह अभिग्रहका दूसरा प्रकार है।२।

कोई २ साधु इस प्रकारका अभिग्रह कर लिया करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा तो नहीं पर कोई मुझे लाकर देगा तो मैं उसे अपने उपभोग में ले लूँगा। यह अभिग्रहका तीसरा प्रकार है।३।

कोई २ साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि न मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा और न अपने निमित्त किसी अन्यसे मंगवाऊँगा। यह अभिग्रहका चौथा प्रकार है।४।

इन चार प्रकारके अभिग्रहोंमेंसे साधु चाहे जिस किसी भी अभिग्रह को धारण कर सकता है, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से भी

कोई कोई साधु ऐसे प्रकारकी अभिग्रह करे छे के-हुं नीज साधुओ भाटे आहारादिक लावी आपीश, आ रीते हुं तेमनी वैद्यावृत्त्य करीश तथा कोई साधु माराभाटे आहार पाणी लावी आपसे तो हुं स्वीकार करीश आ अभिग्रहने ओक प्रकार छे (१)

कोई कोई साधु आ प्रकारने अभिग्रह करे छे के-हुं नीज साधुमी साधु भाटे आहारादिक लावी आपीश पणु नीजना द्वारा लावेत आहार पाणी उपयोगमा नहीं लउ. आ अभिग्रहने भीजे प्रकार छे (२)

कोई कोई साधु आ प्रकारने अभिग्रह करे छे के-हुं नीजओ भाटे आहारादिक लावीश तो नहीं पणु कोई मने लावीने आपसे तो हुं तेने मारा उपयोगमा अवस्थ्य लउश. आ अभिग्रहने त्रीजे प्रकार छे (३)

कोई कोई साधु ऐसे अभिग्रह करे छे के-नीजओना भाटे हुं आहारादिक लावीश नहीं तेमन मारा भाटे पणु नीजथी मगावीश नहीं आ अभिग्रहने चोथे प्रकार छे (४)

आवा चार प्रकारना अभिग्रहमाथी साधु चोतानी छुछामा आवे तेवे कोई पणु अभिग्रह धारणु करी शके छे अथवा आदिना त्रणु अभि-

इत्यमन्यतरामिन्द्राग्निगोऽनगरस्याचेरुस्य सचेरुस्य वा शरीरपीडायाः  
सन्नायेऽसन्नाये वा स्वायुःशपतामवगच्छतां मुनेःस्यतमरणविधिमुपदर्शयति-  
-‘वस्तु पं’ इत्यादि ।

भूम्-जस्त णं भिक्षुस्त एवं भवइ-से गिलामि खलु  
अइ इमम्मि समए इम सरीरग अणुपुब्बेण परिवहित्तए, से  
अणुपुब्बेण आहार सुवट्टिज्जा, संबट्टित्ता कसाए पयणुए किञ्चा  
समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्षु अभिनिव्वुडच्चे अणु  
पविसिष्ठा गाम वा नगर वा जाव रायहाणि वा तणाइ जाइज्जा  
जाव सथरिज्जा, परथवि समए काय च जोग च ईरिय च पच्चक्खाइज्जा,  
तं सच्च सच्चवाई ओए तिस्से छिन्नकहकहे आईयट्ठे अणाईए  
विच्चा ण भेउर काय सविट्ठुणिय विरूथरूवे परीसहोपसग्गे,  
अस्सि विस्सभणयाए भेरवमनुचिन्ने, तथ वि तस्स कालप  
रियाए, सेऽवि तथ विअतिकारए, इच्चेय विमोहाययण हिय  
सुहं खमं निस्सेयस आणुगामिय-तिथेमि ॥ सू०४ ॥

छाया-यस्य खलु मिलोरथं भवति-तद् स्थायामि खलु भूम् अस्मिन् समये  
एवं शरीरकम् आनुपूर्व्यां परिवर्द्धयेत्, स आनुपूर्व्यां आहारं संवर्तयेत्, संस्यै कषायान्  
पतन्तू कृत्वा समाहितार्थः कल्पात्पर्यां उत्पाय मिश्रुरमिनिर्वातार्थः अतुप्रविश्य  
ग्रामं वा नगरं वा यावद् राजधानीं वा वृजानि यावेत् यावद् संस्वरत्,  
क्वापि समये कार्यं च योगं च ईर्यां च प्रत्याप्स्यतीत्, तत्सत्यं सत्यवादी,  
ओऽस्तीर्णमिच्छक्यं कषः भावीतार्थः, अनातीतः, त्यक्त्वा मिदुं क्षयं संविपूय  
किम्बरूपान् परीपहोपसर्गान् अस्मिन् मिभम्मणत्तया भेरवमनुषीणः, तथापि तस्य  
क्षम्यर्थायः, सोऽपि तत्र व्यन्तिकारकः, इत्यतश्चिमोहायतनं इति सुखं क्षमं निःश्रे  
यसमानुगामिकम्, इति श्रवीमि ॥ सू०४ ॥

बाहे जिसे कर सकता है। इस पक्षमें चौथे अभिग्रहकी मजना है-चारण  
करे न भी कर। नीचे के सूत्रांशसे सूत्रकारने यही बात प्रकट की है-इसमें  
सन्नेने प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अभिग्रहका प्रदर्शन किया है ॥ सू०३ ॥

श्रीभाषी पक्ष बाहे ते प्रकट करी शके छे. आ पक्षमें चौथा अभिग्रहकी मजना छे  
-भाष्य करे, न पक्ष करे, नीचेना सूत्रांशकी सूत्रकारने वात प्रकट करी छे. श्रीभा  
षीने प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अभिग्रहका प्रदर्शन करे छे (सू ३)

कोई २ साधु इस प्रकारसे अभिग्रह करते हैं कि-मैं अन्य साधुके लिये आहारादिक लाकर दिया कर्हूंगा, यही मेरेद्वारा उनकी वैयावृत्त्य है, तथा कोई साधु मेरे लिये आहार पानी लाकर देगा तो मैं भी उसे स्वीकार कर लूंगा। यह अभिग्रहका एक प्रकार है।१।

कोई एक साधु इस प्रकारका अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरे साधुके लिये आहारादिक ला दिया कर्हूंगा पर दूसरेके द्वारा लाया हुआ आहार पानी अपने उपयोग में नहीं लूंगा। यह अभिग्रहका दूसरा प्रकार है।२।

कोई २ साधु इस प्रकारका अभिग्रह कर लिया करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा तो नहीं पर कोई मुझे लाकर देगा तो मैं उसे अपने उपभोग में ले लूंगा। यह अभिग्रहका तीसरा प्रकार है।३।

कोई २ साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि न मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा और न अपने निमित्त किसी अन्यसे मगवाऊँगा। यह अभिग्रहका चौथा प्रकार है।४।

इन चार प्रकारके अभिग्रहोंमेंसे साधु चाहे जिस किसी भी अभिग्रह को धारण कर सकता है, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से भी

कोई कोई साधु ऐसे प्रकारकी अभिग्रह करे छे के-हु जीन्त साधुको भाटे आहारादिक लावी आपीश, आ रीते हु तेमनी वैयावृत्त्य करीश तथा कोई साधु मारा भाटे आहार पाणी लावी आपीशे तो हु स्वीकार करीश आ अभिग्रहने अेक प्रकार छे (१)

कोई कोई साधु आ प्रकारने अभिग्रह करे छे के-हु जीन्त साधुके साधु भाटे आहारादिक लावी आपीश पणु जीन्तना द्वारा लावेव आहार पाणी उपयोगमा नहीं लव. आ अभिग्रहने जीन्ते प्रकार छे (२)

कोई कोई साधु आ प्रकारने अभिग्रह करे छे के-हु जीन्तको भाटे आहारादिक लावीश तो नहीं पणु कोई मने लावीने आपीशे तो हु तेने मारा उपयोगमा अवश्य लवशि. आ अभिग्रहने जीन्ते प्रकार छे (३)

कोई कोई साधु ऐसे अभिग्रह करे छे के-जीन्तकोना भाटे हु आहारादिक लावीश नहीं तेमन् मारा भाटे पणु जीन्तकी मगावीश नहीं आ अभिग्रहने चौथे प्रकार छे (४)

आवा आर प्रकारना अभिग्रहमाथी साधु पोटानी छिछामा आवे तेयो कोई पणु अभिग्रह धारण करी शके छे अथवा आदिना पणु अभि-

अमहाप्रतयतुर्विषमप्याहारं प्रत्याख्याय काय=काययोगमाकुञ्चनप्रसारणरष्टिसञ्चार  
वादिरूपं कायव्यापार योगम्=अप्रशस्तमनोयोगं सर्वथा वाभ्योग च, यद्वा-कार्य  
=अयममर्थं योगं=तस्यैवाकुञ्चन-प्रसारणादिव्यापारम् । ईर्या=गमनागमनस्पर्धा  
क्रिया प्रत्यावसीत=परिहरेत् ।

एवं 'तं सञ्च' इत्यारभ्य सूत्रसमाप्तिपर्यन्तस्य व्याख्या पठारोक्षेऽवसेया ।  
'इति प्रथीमी'-स्यस्वार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-७ ॥

योगका, अथवा कायमें ममत्वरूप कायका और उसीके आकुञ्चन,  
प्रसारण आदि व्यापाररूप योगका, एवं गमनागमनरूप क्रियाका  
परित्याग कर दें ।

इस प्रकार 'तं सञ्च' पदां से लेकर उस सूत्रकी समाप्ति तकके  
पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छोटे उद्देशमें तथा चतुर्थ उद्देशके अन्तमें  
लिखी जा चुकी है उसीके अनुसार समझलेनी चाहिये । "इति प्रथीमी"  
इन पदोंका अर्थ भी कहा जा चुका है ॥ सू० ४ ॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥

अथवा कायमा ममत्वरूप कायने अने तेना आकुञ्चन, प्रसारण आदि व्यापार  
रूप भोजने, अथवा अमनागमनरूप क्रियाने परित्याग करे ।

आ प्रकारे "तं सञ्च" अर्थात् प्रथीमी शब्द करी आ सूत्रकी समाप्ति सुधीना  
पदोंकी व्याख्या आ अध्ययनता छुट्टे उद्देशमा तथा चौथा उद्देशना अतमा  
व्याप्ति अथवा छे ते अनुसार समझ लेनी चाहिये । "इति प्रथीमी" आ पदोंने  
अर्थ पद्य अनाउना अध्ययनमा कहेवाछि अथवा छे । (सू० ४)

आठमा अध्ययनने सातवां उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥

टीका—‘यस्यै’-त्यादि, ‘यस्य खलु’ इत्यारभ्य’ यावत् संस्तरेत्’ इत्यन्तस्य व्याख्याऽत्रंवाध्ययने षष्ठोद्देशे चतुर्थसूत्रे प्रोक्ता । तृणानि सस्तीर्य यद्विधेयं तदाह- ‘अत्राजी’-ति, अत्रापि सस्तारकोपवेशनावसरे कृतपादपोपगमनप्रतिज्ञो मिश्रुः ‘नमोत्युणं’ पठित्वा सिद्धान्तैतो धर्माचार्याश्च नमस्कृत्य तदनु स्वयमेव पुनर्गृहीतप-

इस प्रकार कीसी एक अभिग्रह को धारण करनेवाले सचेल तथा अचेल साधुकी शारीरिक पीडाके सम्भवमें या असम्भवमें अपनी आयुके अवशिष्ट भागका ज्ञान होने पर मरणविधि सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“जस्स णं” इत्यादि ।

“जस्स णं” यहां से लेकर “जाव संथरिज्जा” यहां तक के पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें कही जा चुकी है । घास का संधारा कर साधुके कर्तव्यका प्रदर्शन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—साधु संधारे पर बैठ जावे तब उस समय वह साधु कि जिसने पदपोपगमन संधारा धारण करनेका नियम लिया है वह पहले “नमोत्युणं” का पाठ पढ़े । पढ़कर सिद्धोंको, अर्हन्तोंको और धर्माचार्योंको नमस्कार करे । उसके बाद स्वयं पांच महाव्रतोंका पुनः ग्रहण कर, चारों प्रकारके आहारका परित्याग कर देवे, पश्चात् आकुञ्चन, प्रसारण, और दृष्टिसंचरण आदिरूप कायव्यापारका, अप्रशस्त मनोयोग का और सर्वथा वचन-

आ प्रकारे ढोई अेक अभिग्रहने धारणु करवावाणा सचेल तथा अचेल साधुनी, शारीरिक पीडाना सहभावमा अगर असहभावमा पोताना आयुध्याना अवशिष्ट भागना लक्षणकार होवाधी मरणविधि सूत्रकार प्रगट करे छे— “जस्स णं” इत्यादि.

“यस्य खलु” अर्थात् खलुने “यावत्संस्तरेत्” अर्थात् सुधीना पदोधी व्याख्या आ अध्ययनना छटा उद्देशमा उद्देशवायेल छे घासने संधारे करी साधुना कर्तव्यनु प्रदर्शन करता सूत्रकार कहे छे के—साधु न्यारे संधारा उपर जैसे त्यारे ते समये ते साधु के लेखे पादपोपगमन संधारे धारणु करवानो नियम लीधी छे ते, पढेवा “नमोत्युणं”नो पाठ लेखे पाठ लेखीने सिद्धोने, अर्हन्तोने अने धर्माचार्योने नमस्कार करे त्यार आह पोते पांच महाव्रतोने इरीधी ग्रहणु करे चार प्रकारना आहारने परित्याग करे पछी आकुञ्चन, प्रसारणु अने दृष्टिसंचरण आदिरूप कायाना व्यापारने, अप्रशस्त मनोयोगने अने सर्वथा वचनयोगने,

टीका—'आनुपूर्व्ये'—त्यादि, वसुमन्ताः=संयमिनः, 'मतिमन्त'—मननं मतिर्हे योपादेयपरिहासप्रहाप्यवसायाः, सा येषामस्तीति मतिमन्तः, धीराः=परीपहोपगस-  
लोम्या मुनयः, आनुपूर्व्याः=क्रमेण, स च क्रमो यथा—प्रवक्ष्या, शिक्षा, म्प्रार्थप्रवृत्त-  
त्परस्यैकाकिपिहारित्स्म, यद्वा-आनुपूर्व्याः=संलेखनाक्रमैवतुर्यं-पष्ठाऽष्टम-दशम-  
द्वादशमक्तादिकृतपोविशेषरूपैर्विप्रकृतैः यानि=कथितानि 'विमोहानि' विगतो मोह

संयम पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार एवं प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे सपन्न, तथा परीपह और उपसर्गों से अक्षोभ्य ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोर्मि वर्णित भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोपगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें "अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा" मसाधारण जानकर समाधिका पालन कर।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रव्याख्यान आदि समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—सर्वं प्रथम मुनिदीक्षा धारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण, मथवा युगपद्—एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

मथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश भक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। 'विमोह' शब्दका अर्थ—भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण आर पादपोपगमन संघारा है।

संयम पालन करवावाणा हेय अने उपादेय रूप पदार्थोने परिहार अने प्राप्त करावनार ज्ञानशी सफल, तथा परिपह अने उपसर्गोधी अक्षोभ्य, जेव मुनिजन कमशी पूव उद्देशोभ्य जतावेळ अक्षयपरिज्ञा, एजितभक्त्यु अने पाद पोपगमन रूप विमोह (विवेक)ने प्राप्त करी अने तेने "अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा" मसाधारण्य (विशेष) अव्युत्ति समाधिनु पालन करे.

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दने अर्थ कम छे, जे अक्षयप्रव्याख्यान आदि समाधिभारणेने धारण्य करवाणे कम आ प्रकारने छे—पठेव्य मुनिदीक्षा धारण्य करवो, त्यार पठी सूत्रनु अध्ययन अने तेना अर्थनु अवधारण, मथवा युगपद्—जेकी साथे जन्नेनु पठन अने अवधारण्य करवु आभा निष्णात मनी पठी जेकव्य विहार करवो.

अथवा—उत्कृष्ट चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त अने द्वादशभक्त आदि प्रवृत्तजनना क्रमस्वरूप तपविशेषोने धारण्य करवां विमोह शब्दने अर्थ—अक्षयपरिज्ञा एजितभक्त्यु अने पादपोपगमन संघारा छे

## । अथाष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः ।

सप्तमोद्देशकथनानन्तरमष्टमः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशैः सहाय सम्बन्धः—  
पूर्वं चतुर्थोद्देशे व्याघातिमरण वैहायस—गार्ध्वपृष्ठमरणं च, पञ्चमे—भक्तप्रत्याख्यानं,  
षष्ठे इङ्गितमरणं, सप्तमे च पादपोपगमनमुपदर्शितम् । अत्राष्टमे—तेषां त्रयाणां  
भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनानां विधिमुपदर्शयन् प्रथम भिक्षोः समाधिपरि-  
पालनप्रकारमेव दर्शयति—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि ।

मूलम्—अणुपुण्ड्रेण विमोहाइं, जाइं धीरा समासज्ज ॥

वसुमंतो मइमंतो, सव्वं नच्चा अणेलिसं ॥ १ ॥

छाया—आनुपूर्व्यां विमोहानि, यानि धीराः समासाद्य ॥

वसुमन्तो मतिमन्तः, सर्वं ज्ञात्वा अनीदृशम् ॥१॥

## आठवें अध्ययनका आठवां उद्देश ।

सप्तम उद्देशके कथनके बाद अब अष्टम उद्देश प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशोंके साथ यह संबंध है—चतुर्थ उद्देशमें व्याधि—मरण, वैहायस—मरण और गार्ध्वपृष्ठमरण, पंचम उद्देशमें भक्तप्रत्याख्यान, छठेमें इङ्गितमरण और सप्तम उद्देशमें पादपोपगमन सथारे का वर्णन सूत्रकारने किया है । इस अष्टम उद्देशमें भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और पादपोपगमन, इन तीनोंकी विधि दिखलाते हुए सूत्रकार प्रथम भिक्षुके समाधिपालनके प्रकारको प्रदर्शित करते हैं—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि ।

## आठमा अध्ययननो आठमो उद्देश.

सातमा उद्देशना कथन पछी हुये आठमा उद्देशनो प्रारम्भ थाय छे आ उद्देशनो पूर्व उद्देशोनी साथे आ सम्बन्ध छे—चौथा उद्देशमा व्याधिभरण, वैहायस भरण अने गार्ध्वपृष्ठ भरण, पाचमा उद्देशमा भक्तप्रत्याख्यान, छठामा इङ्गित भरण अने सातमा उद्देशमा पादपोपगमन सथारानु वर्णन सूत्रकारे करेल छे आ आठमा उद्देशमा भक्तपरिज्ञा, इङ्गितभरण अने पादपोपगमन, आ त्रयुनी विधि बतावने सूत्रकार प्रथम भिक्षुना समाधि पालनना प्रारम्भने कडे छे—  
—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि



टीका—'आनुपूर्व्यै'—त्यादि, षष्ठमन्तः=सपमिनः, 'मतिमन्तः'=मननं मतिर्हे  
 वोपादेयपरिहारग्रहणाध्यवसायः, सा वेपामस्तीति मतिमन्तः, धीराः=परीषदोपग  
 शोभ्या मुनय, आनुपूर्व्यां=क्रमेण, स च क्रमो यथा=प्रकृत्या, शिक्षा, मूत्रार्थग्रहण-  
 त्परस्यैकाकिविहारिस्थम्, यद्वा आनुपूर्व्यां=संलेखनाक्रमैश्चतुर्थ-यष्टाऽष्टम-दशम-  
 शतशतकादिकृतपोषिषेपस्यैर्विमोहैः यानि=कृतितानि 'विमोहानि' विगतो मोह

संपन्न पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार  
 एवं प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संपन्न, तथा परीषद् और उपसर्गों से अक्षोभ्य  
 ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोर्मि वर्णित भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और  
 पादपोषगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें "अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा"  
 असाधारण जानकर समाधिक्य पालन करे।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रत्याख्यान आदि  
 समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—सर्व प्रथम मुनिदीक्षा  
 पारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण,  
 अथवा युगपद्—एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें  
 निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

अथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और ब्राह्मण  
 भक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। 'विमोह'  
 शब्दका अर्थ—भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोषगमन संघारा है।

सुभ्रम पालन करवावाण्य हेय अने उपादेय रूप पदार्थोना परिहार अने  
 प्राप्त करवावनाइ ज्ञानशी संपन्न, तथा चरितक अने उपसर्गोधी अक्षोभ्य, जेवा  
 मुनिजन कर्मशी पूर्व उद्देशोभा अतावेक भक्तपरिज्ञा, एजितमरण अने पाद  
 पोषगमन रूप विमोह (निवेक)ने प्राप्त करी अने तेने "अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा"  
 असाधारण्य (विशेष) अखीने समाधियु पालन करे।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दने अर्थ कर्म छे, जे भक्तप्रत्याख्यान आदि  
 समाधिभक्त्योने धारण करवाने कर्म आ प्रकारने छे—पहेला मुनिदीक्षा धारण  
 करी, त्पार पछी सूत्रतु अध्ययन अने तेना अर्थतु अवधारण, अथवा युगपद्—  
 जेकी साथे अनेतु पठन अने अवधारण करणु अथवा निष्णात अनी पछी जेकेला  
 विहार करवे।

अथवा—उत्कृष्ट चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त अने ब्राह्मणभक्त आदि  
 सहेअनान्य कर्मस्वरूप तपविशेषोने धारण करवां विमोह शब्दने अर्थ—  
 भक्तपरिज्ञा एजितमरण अने पादपोषगमन संघारा छे।

एभ्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=भक्तपरिज्ञेद्वितमरणपादपोषगमनानि यथाक्रम-  
माप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीदृशम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुचितं  
वा पूर्वोक्तं भक्तपरिज्ञादिकं ज्ञात्वा समाधिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह—‘दुविहं’ इत्यादि ।

मूलम्—दुविहं पि विइत्ता णं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥

अणुपुव्वीइ संखाए, आरंभाओ त्तिउट्ठी ॥ २ ॥

छाया—द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥

आनुपूर्व्यां सङ्ख्याय, आरम्भात् घुट्यते ॥ २ ॥

टीका—‘द्विविधमपी’—त्यादि, बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेयाः, द्विविधमपि बाह्य-  
माभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=भासेव्य, यद्वा—द्विविधमपि=बाह्य शरीरोपकरणादिकम्,  
आभ्यन्तरं राग-द्वेषादिकमपि हेयतया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया त्यक्त्वेत्यर्थः,  
खलु=निश्चयेन धर्मस्य=श्रुतचारित्राख्यस्य पारगाः=पारगामिन सकलरहस्यवेत्तारो  
भवन्ति, तैः आनुपूर्व्यां=प्रव्रज्याग्रहण-द्वादशाङ्गाध्ययनादिक्रमेण संख्याय=“संयमं

वि + मोहमें ‘वि’ शब्दका अर्थ विगत-रहित है । विगत हुआ है मोह जिन्होंसे, अथवा जिन्होंका, अथवा जिन्होंमें वे विमोह हैं । ‘सर्व’ शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विचार अवश्य करे कि इनसधारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा किस समय अनुचित है ॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं—‘दुविहंपि’ इत्यादि ।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन बाह्य और आभ्यन्तर तपका सेवनकर निश्चय से श्रुतचारित्ररूप धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता होते हैं । वे प्रव्रज्याग्रहण और द्वादशाङ्गका अध्ययन आदिके क्रमसे भक्त-

वि + मोહમા ‘વિ’ શબ્દનો અર્થ વિગત-રહિત છે મોહ વિગત થયેલ છે, જેનાથી અથવા જેનો અથવા જેઓમાં તે વિમોહ છે “સર્વ” શબ્દ એ ભાવ પ્રકટ કરે છે કે સમાધિ ધારણ કરનાર એ વિચાર જરૂર કરે કે તે સંચારાતું ધારણ કરવું કયા સમયે ઉચિત છે ? અથવા કયા સમયે અનુચિત છે ? (૧)

વધુમા પણ સૂત્રકાર એ વિષયમા કહે છે—“દુવિહમ્પિ” ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોના પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય અને આભ્યંતર તપનું સેવન કરી નિશ્ચયથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના સંકળ રહસ્યના જ્ઞાતા હોય છે. તે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને દ્વાદશાંગના અધ્યયન વગેરેના ક્રમથી ભક્તપ્રત્યાખ્યાન

परिपाल्यतो ममाविधिधिल्लगाप्रतया संयमाराधने सामर्थाभावाच्छरीरपरित्यागा-  
 वरः समायातस्तस्माद्द्वै मक्तप्रत्याख्यानादिषु कस्मिन् मरणे समयोऽस्मी”-ति  
 विहित्य, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमशुनादिगवेषजातः वृष्टपठे=विरम्यते ॥२॥

अभ्युपगतमरणाय संलेखनां विद्वन्ता मृस्यत्वेन क्रोधादिप्रतनुकरणरूपा भावसं-  
 लेखना विवेयेति दर्शयति-‘कसाप’ इत्यादि ।

मूम्-कसाप पयणू किञ्चा, अप्याहारे तितिक्ष्वप ॥

अह भिक्षु गिलाइज्जा, आहारस्सेव अतिय ॥ ३ ॥

छाया--कपायात् प्रकमून कृत्वा, मस्याहारस्तिविषेत् ॥

अव मिह्मस्लापेत्, आहारस्यैवान्तिक्म् ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आदिका विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि  
 की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं । सूत्रमें “संस्वाप” शब्द यह मत  
 छाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते-  
 मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने  
 की भव शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय  
 आगुका है, इसलिये मक्तप्रत्याख्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा  
 मरण धारण करने में समर्थ हूँ । इस प्रकार विचार करके अशानादिकी  
 गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनकी मृस्यरूपसे क्रोधा-  
 दिक कपायों के कृदा करनेस्य भावसंलेखना करनी चाहिये, यह बात  
 सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘कसाप’ इत्यादि ।

वजैरेनो विचार करी शरीर धारणका निमित्त आहार वजैरेनी अवेषणाभी विरक्त  
 मनी अब छे सूत्रमां “संस्वाप” शब्द जेवु अतावे छे के मुनिजन जेवे  
 विचार करे के संयमनी परिपालना करवां करवा भाइ शरीर हवे शिथिल मध  
 जमु छे आधी संयमनी आराधना करवानी आराध शक्ति रही नथी, जेटवे  
 हवे आ शरीरने पस्तियाय करवाने समय आवी जथे छे आ भाटे लज्ज  
 प्रत्याख्यान वजैरे मरखेआंधी हुं जमु मरण धारण करवामां समर्थ हुं ? आ  
 प्रारम्भे विचार करी अशानादिनी अवेषणा करवने त्याग करी रे.

प्राप्तमरण भाटे संलेखना करवायाण मुनिजे मुस्यरूपधी क्षिधादि कपायेने  
 इत्येष भावसंलेखना करवी जेधजे आ बात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—

कसाप’ इत्यादि.

एभ्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=भक्तपरिज्ञेद्वितमरणपादपोषगमनानि यथाक्रम-  
प्राप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीदृशम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुचितं  
वा पूर्वोक्तं भक्तपरिज्ञादिकं ज्ञात्वा समाधिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह—‘दुविहं’ इत्यादि ।

मूलम्—दुविहं पि विइत्ता णं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥

अणुपुठ्वीइ संखाए, आरंभाओ तिउट्टई ॥ २ ॥

छाया--द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥

आनुपूर्व्यां सद्बुधाय, आरम्भात् बुट्द्यते ॥ २ ॥

टीका—‘द्विविधमपी’—त्यादि, बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेयाः, द्विविधमपि बाह्य-  
माभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=आसेव्य, यद्वा—द्विविधमपि=बाह्य शरीरोपकरणादिकम्,  
आभ्यन्तरं राग-द्वेषादिकमपि हेयतया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया त्यक्त्वैत्यर्थः,  
खलु=निश्चयेन धर्मस्य=श्रुतचारित्राख्यस्य पारगाः=पारगामिन सकलरहस्यवेत्तारो  
भवन्ति, तैः आनुपूर्व्यां=प्रव्रज्याग्रहण-द्वादशाङ्गाध्ययनादिक्रमेण सख्याय=“संयमं

वि + मोहमें ‘वि’ शब्दका अर्थ विगत-रहित है। विगत हुआ है मोह जिन्होंसे, अथवा जिन्होंका, अथवा जिन्होंमें वे विमोह हैं। ‘सर्व’ शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विचार अवश्य करे कि इनसथारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा किस समय अनुचित है॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं—‘दुविहंपि’ इत्यादि।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन बाह्य और आभ्यन्तर तपका सेवनकर निश्चय से श्रुतचारित्ररूप धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता होते हैं। वे प्रव्रज्याग्रहण और द्वादशाङ्गका अध्ययन आदिके क्रमसे भक्त-

वि + मोહમાં ‘વિ’ શબ્દનો અર્થ વિગત-રહિત છે. મોહ વિગત થયેલ છે, જેનાથી અથવા જેનો અથવા જેઓમાં તે વિમોહ છે “સર્વ” શબ્દ એ ભાવ પ્રકટ કરે છે કે સમાધિ ધારણ કરનાર એ વિચાર જરૂર કરે કે તે સથારાતું ધારણ કરવું કયા સમયે ઉચિત છે ? અથવા કયા સમયે અનુચિત છે ? (૧)

વધુમાં પણ સૂત્રકાર એ વિષયમાં કહે છે—“દુવિહપિ” ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોના પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય અને આંતર તપનું સેવન કરી નિશ્ચયથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના સંકળ રહસ્યના જ્ઞાતા હોય છે. તે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને દ્વાદશાંગના અધ્યયન વગેરેના ક્રમથી ભક્તપ્રત્યાખ્યાન

परिपालयतो ममातिश्रियिन्मात्रतया संयमाराधने सामर्थ्याभावाच्छरीरपरित्यागा-  
वसरः समायातस्वस्माद्दं मक्तप्रत्याख्यानादिषु कस्मिन् मरणे समर्थाऽस्मी”-ति  
विश्वित्य, आरम्भात्-शरीरभारभार्यमशनादिगवपनात्: दृष्टपते=विरम्यते ॥२॥

अभ्युपगतमरणाय संलेखनां विद्वत्ता मूल्यरूपेण क्रोधादिमतजुकरूपरूपा मायसं-  
सक्तना विधेयेति दर्शयति-‘कसाप’ इत्यादि ।

मूम्-कसाप पयणू किञ्चा, अप्पाहारे तितिकस्वप् ॥

अह भिक्सू गिलाइष्वा, आहारस्सेव अंतिय ॥ ३ ॥

प्राया-कपायान प्रतनून कृत्वा, अत्याहारस्तिविश्वेव ॥

अथ मिष्टुर्त्सायेत्, आहारस्यैवान्तिक्म ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आविष्ठा विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आवि  
की गवेषणासे विरक्त हो जाते है । सूत्रमें “संभ्राय” शब्द यह बात  
छाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते  
मेरा शरीर अथ शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने  
की अथ शक्ति नहीं रही है, अतः अथ इस शरीर के परित्यागका समय  
आवृत्त है, इसलिये भक्तप्रत्याख्यान आवि मरणोंमें से मैं कौनसा  
मरण धारण करने में समर्थ हूँ । इस प्रकार विचार करके अशानादिकी  
गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनकी मूल्यरूपसे क्रोधा-  
दिक कपायों के कृदा करनेक्य भावसंलक्षना करनी चाहिये, यह बात  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-‘कसाप’ इत्यादि ।

वजरेण विचार करी शरीर धारणना निमित्त आहार वजरेण अवेषणाधी विरक्त  
पनी अथ उ सूत्रमां “सत्वाय शब्द अथ अथावे उ के मुनिजन अवे  
विचार करे के अथमनी परिपालना कर्त्वा कर्त्वा भाउ शरीर हवे शिथिल पथ  
अथ उ अथी अथमनी असाधना कर्त्वानी आशामं शक्ति रही नथी, अथ  
हवे अ शरीरने अस्तिमाय कर्त्वानी समय अथी अथी उ अ भाटे अथ  
असाध्यान वजरे अथेगांभी हू कथु अथु धारण कर्त्वामं समर्थ हूँ ? अ  
अशाने विचार करी अशानादिनी अवेषणा कर्त्वानी त्याग करी रे ।

प्राप्तमरण भाटे संलेखना कर्त्वापाना मुनिजे अथमपथी कीपादिक कपायने  
कृदाप अथसंलेखना कर्त्वी अथमे अ वात सूत्रकार प्रदर्शित करे उ-  
कसाप’ इत्यादि ।

टीका—‘कषाया’—नित्यादि, स भिक्षुः, अल्पाहारः=स्तोकभोजी संलेखनाक्रमेण पष्ठाष्टमादिविधिना तपः कुर्वन् पारणादिने यदि केन चिदन्येन मुनिना समानीय दीयते तदप्यल्पं भुङ्क्ते, इति भावः। कषायान् कषस्य=संसारस्य आयाः=स्थानानि कषायास्तान्=क्रोधादीन् चतुर्विधान् प्रतनून्=कृशान् कृत्वा तितिक्षेत=नीचादपि दुर्भाषितादिकं सहेत, व्याध्यातङ्क च क्षमेत, अल्पाहारकरण कषायोपशमसम्भावनया भवति तथाऽपि कदाचित्तस्य कषायोदयो भवेत्तदापि स क्षमेत एवेत्याशयः ।

अल्पाहारी वह मुनि क्रोधादिक कषायोंको कृश करके नीच पुरुषोंके कुवचनोंको और व्याधिके आतंक को भी सहन करे । यदि कदाचित् अव्यावाध शिव-सुखका अभिलाषी वह मुनि ग्लान हो जाय तो वह चार प्रकारके आहारका ही परित्याग कर देवे—संलेखना के क्रमका नहीं । सूत्रस्थित अल्पाहार पद यह प्रकट करता है कि वह साधु संलेखनाक्रमसे—षष्ठ, अष्टम आदि विधिसे—तपस्या करता हुआ पारणाके दिन किसी अन्य मुनिके द्वारा लाकर दिये गये आहारको भी अल्प मात्रामें ही लेता है । कषाय—इसमें कष और आय, ये दो शब्द हैं, कषका अर्थ संसार और आयका अर्थ स्थान है । संसारके जो स्थान हैं उनका नाम कषाय है । अल्प आहारका करना कषायोंके उपशमकी सम्भावनासे होता है तो भी कदाचित् उसके कषायका उदय हो जावे उस समय भी वह दुर्भाषित आदिको सहन ही करता है, यह बात भी ‘तितिक्षेत’ इस पदसे प्रकट होती है ।

अल्पाहारी ते मुनि क्रोधादि कषायैने कृश करता नीच पुरुषाना कुवचनोने अने व्याधिना हु अने पञ्च महान करे, अने कदाचित् अव्यावाध शिवसुखोने अभिलाषी ते मुनि ग्लान अनी न्यय तो ते चार प्रकारना आहारने परित्याग करी हे—संलेखनाना क्रमने नही सूत्रगत अल्पाहार पद अे प्रकट करे छे के ते साधु संलेखनाक्रमधी—षष्ठ, अष्टम, आदि विधिधी तपस्या करता पारणाना द्विसे भीज केहि मुनिद्वारा लावी आपवाभा आवेल आहारने पञ्च अल्प मात्रामाज हे छे कषाय—अेमा कष अने आय अे जे शब्द छे कषने अर्थ संसार, अने आयने अर्थ स्थान छे संसारतु जे स्थान छे तेनु नाम कषाय छे अल्प आहार करवे ते कषायोना उपशमनी सम्भावनाधी थाय छे तो पञ्च कदाच तेने कषायने उदय आवे तो ते संभवे पञ्च दुर्भाषित आदिने सहनज करे छे. आ वात पञ्च ‘तितिक्षेत’ आ पदधी प्रकट थाय छे.

अथ=पश्चान्तरे, यदि मिष्टु=अभ्याषाषष्टिस्तुस्वामिभापी मुनिः स्थायेत्  
 =इनाप साधुना समानीता मिष्टा नोपसम्येत तेन कारणेन स्थानो मवेत्तदा  
 आहारस्यैव=चतुर्विधाआहारस्यैव अन्तिकम्=अन्तमपसानं कुर्यात्, न तु संलेखनाक्रमस्य।  
 अथ 'एव'-कारेण अपि मक्तप्रत्याख्यानादिकं कुर्यात् किन्तु "कतिचिदिनानि  
 हत्वा पश्चात्संलेखनाद्येव करिष्यामि" इत्यर्थं कातरतामुपगत्य संलेखनाक्रमं न  
 शोद्येदिति भावः ॥ ३ ॥

अन्यच्च-‘जीविय’ इत्यादि।

मृच्छ-जीविय नामिकस्त्रिज्जा, मरण नो वि पश्यत् ॥

बुद्ध्यओऽपि न सञ्चिज्जा, जीविय मरणे तथा ॥ ४ ॥

श्रुत्या-भीक्षितं नामिकाञ्चैत्, मरणं नापि मार्ययेत् ॥

उभयतोऽपि न सञ्जेत, जीविते मरणे तथा ॥ ४ ॥

‘स्थायेत्’ यह क्रियापद यह सूचित करता है कि किसी भी साधु  
 के द्वारा समानीत-लाई गई मिष्टा यदि उस साधुको नहीं मिछे तो वह  
 स्थान उस समय चारों प्रकारके आहारका ही त्याग कर देवे,  
 संलेखनाक्रमका नहीं।

“आहारस्यैव” यहाँ पर “एव” यह पद यह बतलाता है कि वह भक्त-  
 प्रत्याख्यान भावि करे तो परन्तु ऐसा कायर बनकर वह अपने संलेखना  
 के क्रमका भंग न करे कि ‘अबो कुछ दिनों आहार छोड़ पीछे अवशिष्ट  
 संलेखना पूर्ण कर लूंगा’ ॥३॥

अन्यच्च-‘जीविय’ इत्यादि।

स्थयेत् अ क्रियापद जो सूचित करे छे छे ठाँ पर साधुद्वारा  
 समानीत-लायेव मिष्टा कदाच ते साधुने न भवे तो ते स्थान ते समय  
 चारै प्रकारना आहारना त्याग करी छे परु संलेखनाना क्रमना नही

आहारस्यैव” अर्थ पर “एव” अ पद जेव बतावे छे छे ते कदा  
 प्रत्याख्यान आदि करे तो, परंतु जेवा कायर बननि ते पीछना संलेखनाना  
 क्रमना भंग न करे छे- आबो बोडा दिवस आहार करी लवँ परी आबो कटेव  
 संलेखना पूरा करी लवँश’ (३)

इरी परु कहे छे- जीविय इत्यादि

टीका—‘कषाया’-नित्यादि, स भिक्षुः, अल्पाहारः=स्तोत्रभोजी सलेखनाक्रमेण पष्ठाष्टमादिविधिना तपः कुर्वन् पारणादिने यदि केन चिदन्येन मुनिना समानीय दीयते तदप्यल्पं भुङ्क्ते, इति भावः। कषायान् कषस्य=संसारस्य आयाः=स्थानानि कषायास्तान्=क्रोधादीन् चतुर्विधान् प्रतनून्=कृशान् कृत्वा तितिक्षेत=नीचादपि दुर्भाषितादिकं सहेत, व्याध्यातङ्क च क्षमेत, अल्पाहारकरण कषायोपशमसम्भावनाया भवति तथाऽपि कदाचित्तस्य कषायोदयो भवेत्तदापि स क्षमेत एवेत्याशयः ।

अल्पाहारी वह मुनि क्रोधादिक कषायोको कृश करके नीच पुरुषोंके कुवचनोंको और व्याधिके आतंक को भी सहन करे। यदि कदाचित् अव्यावाध शिव-सुखका अभिलाषी वह मुनि ग्लान हो जाय तो वह चार प्रकारके आहारका ही परित्याग कर देवे-सलेखनाके क्रमका नहीं। सूत्रस्थित अल्पाहार पद यह प्रकट करता है कि वह साधु सलेखनाक्रमसे-षष्ठ, अष्टम आदि विधिसे-तपस्या करता हुआ पारणाके दिन किसी अन्य मुनिके द्वारा लाकर दिये गये आहारको भी अल्प मात्रामें ही लेता है। कषाय-इसमें कष और आय, ये दो शब्द हैं, कषका अर्थ संसार और आयका अर्थ स्थान है। संसारके जो स्थान हैं उनका नाम कषाय है। अल्प आहारका करना कषायोके उपशमकी सम्भावनासे होता है तो भी कदाचित् उसके कषायका उदय हो जावे उस समय भी वह दुर्भाषित आदिको सहन ही करता है, यह बात भी ‘तितिक्षेत’ इस पदसे प्रकट होती है।

अल्पाहारी ते मुनि क्रोधादि कषायोने कृश करता नीच पुरुषोना कुवचनोने अने व्याधिना दुःखने पक्ष सहन करे, अने कदाचित् अव्यावाध शिवसुखोना अभिलाषी ते मुनि ग्लान अनी व्यथ तो ते चार प्रकारना आहारोना परित्याग करी हे—सलेखनाना क्रमो नही सूत्रगत अल्पाहार पद ओ प्रकट करे छे छे ते साधु सलेखनाक्रमे-षष्ठ, अष्टम, आदि विधिथी तपस्या करता पारणाका दिनसे अगत काल मुनिद्वारा लायी आपवाना आवेल आहारने पक्ष अल्प मात्रामे ले छे कषाय-अर्था कष अने आय ओ छे शब्द छे कषोना अर्थ संसार, अने आयोना अर्थ स्थान छे संसारतु ओ स्थान छे तेनु नाम कषाय छे अल्प आहार करयो ते कषायोना उपशमनी सम्भावनाथी थाय छे तो पक्ष कदाचित् तेने कषायोना उदय आवे तो ते समये पक्ष दुर्भाषित आदिने सहन करे छे आ वात पक्ष ‘तितिक्षेत’ आ पदथी प्रकट थाय छे



वर्तितस्य कालपर्यायेण भरणं यद् यदा भवति तं कालं स समाहितमनाः परिपाल-  
यदित्याद्ययः॥ एवम् अन्तः=रूपायान् बहिः=शरीरोपकरणादिकं च व्युत्सृज्य=विहाय  
हृदं=राग-द्वेषाद्युपशममाश्लोतसिकावर्तितम्, अज्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेपयेत्=  
गवेषयत् ॥ ५ ॥

किञ्च—' जं किञ्चु ' इत्यादि ।

शब्द—ज किञ्चुवक्त्रम जाणे, आउक्त्वेमस्स मप्पणो ॥

तस्सेव अतरद्धाप, खिप्प सिक्खिज्ज पडिप्प ॥ ६ ॥

भाषा—यं कं चनोपक्रमं वानीयात्, आयुःश्लेमस्याऽऽत्मनः ॥

तस्यैव अन्तरदायां, सिधे सिधेत पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—' यं कं चने '—त्यादि, आत्मन = स्वस्य आयुःश्लेमस्य = स्वसम्बन्धिन  
वायुपः श्लेमस्य = हस्याणस्य च यं कं चन उपक्रमम् = उपक्रमबन्धुं वानीयात् तस्यैव =  
संछेसनाकालस्य अन्तरदायाम् = मध्यवर्तिकालं पण्डितः = अग्रगतद्वेषोपावेयतया  
स्वायुषो निब्रह्मस्य शोपायपरिज्ञाता सिधे = शीघ्रं सिधेत = मन्मसेत् । यद्वा—य  
वात्मनः = निब्रह्मस्य आयुःश्लेमस्य = सुखबीधितस्य यं कं चनोपक्रमम् आयुःपुद्गलानां  
समयकी बहू मुनि सावधानचित्त वन प्रतीक्षा करे । इस प्रकार अन्तरगती  
उपाधिस्वरूप कषायोक्ता, एवं बहिरगती उपाधिस्व शरीर और उपकरण  
आदिका परित्यागकर बहू मुनि राग द्वेष आदिके उपशमसे विज्ञोतसिका-  
संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अवन अन्तःकरणकी गवेषणा करे ॥५॥

किञ्च—' जं किं चुवक्त्रम ' इत्यादि ।

तथा—अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम  
को बहू जाने, उसका बहू शीघ्र ही संछेसना कालके मध्यवर्ति कालमें  
मन्मसेत् करे । अथवा—बहू मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी  
स्थिति पूरी होती हुई जाने, अपात् ' आयुके पुद्गलोंका संकुचिग होने का

इह आ प्रक्षरे अन्तर गती उपाधि रूप कषायो अने अक्षरणी उपाधि रूप शरीर  
अने उपकरणु ववेरेने। तथा इरी जे मुनि राग द्वेषधी रक्षित विज्ञोतसिका-  
संशयादिके दोष-रहित बर्ध पोताना अन्तःकरणनी अवेपयुा करे. (५)

इरी— ज किं चुवक्त्रम धर्मादि.

पोतानी आयुष्य अने कषायुना इहेक प्रक्षरणा उपक्रमने ते बहू, अने  
ते वरत ज संछेसनाकालना मध्यवर्ती क्षणने अवेपयुा करे. अथवा—अथरे ते  
पोताना मुणमम एवतनी स्थिति पुरी धती बहू, अथवा—आयुष्यना पुद्गलौने

टीका--'जीवित'-मित्यादि, स सलेखनाकारी मुनिः जीवित नाभिराङ्क्षेत्  
=नेच्छेत्, क्षुधापरीषदाभिभूतो मरणम्=औदारिकशरीरत्यागमपि न प्रार्थयेत्, तथा  
जीविते मरणे उभयतोऽपि=उभयस्मिन्नपि न सज्जेत=आसक्ति न कुर्यादित्यर्थः॥४॥

तदा कीदृशो भवेदित्याह-'मज्झत्थो' इत्यादि ।

मूलम्—मज्झत्थो निज्जरापेही, समाहिमणुपालए ॥

अंतो वहिं विउस्सिज्ज, अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥ ५ ॥

छाया—मध्यस्थो निर्जरापेक्षी, समाधिमनुपालयेत् ॥

अन्तर्बहिर्दुर्युत्सृज्य, अघ्यात्म शुद्धमन्वेपयेत् ॥ ५ ॥

टीका—'मध्यस्थ'-इत्यादि, मध्यस्थः राग-द्वेषयोरुदासीनः, यद्वा-मध्यस्थः  
=जीविते मरणेऽपि च निःस्पृहः, अत एव 'निर्जरापेक्षी' निर्जरा=कर्मनिर्जरणमपेक्षितु  
शीलं यस्य स निर्जरापेक्षी, स समाधि=मरणसमाधिम् अनुपालयेत्-जीवितमरणेच्छा-

वह संलेखनाकारी साधु संलेखनामें अधिक जीनेकी आकांक्षा न  
करे, क्षुधा-परीषह आदिसे त्रस्त होकर औदारिक शरीरके परित्यागस्व  
मरणकी, अर्थात् अधिक जीनेकी एव दुःखित होकर मरनेकी चाहना न  
रखे, तथा मरने जीने दोनों में आसक्ति न करे ॥ ४ ॥

उस समय वह कैसा होना चाहिये ? इसका उत्तर देने के लिये  
सूत्रकार कहते हैं—'मज्झत्थो' इत्यादि ।

राग और द्वेषमें उदासीन वृत्तिवाला, अथवा जीने और मरनेमें भी  
निःस्पृह, अत एव कर्मोंकी निर्जरा करनेकी अपेक्षाका स्वभाववाला, ऐसा  
वह मुनि मरणसमाधिकी अनुपालना करे, अर्थात्-जीवित और मरणमें  
इच्छारहित मुनिका कालपर्यायसे जिस समय में मरण होता है उस

ये संलेखनाकारी साधु संलेखनाभा वधारे एववानी आकाक्षा नहीं करे,  
क्षुधापरिषद आदिथी त्रस्त अनी औदारिक शरीरना परित्यागइप मरणुनी पद्य  
आकाक्षा न करे अर्थात्-अधिक एववानी अेभज् दुःखित अनीने भरवानी  
आहना न राणे तथा भरवा एववा अन्नेभा आसक्ति न करे (६)

ते समय अे केवे होवे अेध अे ? तेने उत्तर आपता सूत्रकार कडे छे-  
'मज्झत्थो' इत्यादि

राग अने द्वेषभा उदासीन वृत्तिवाला, अथवा एववामा अने मरणुमा पद्य  
नि स्पृह, माटे ज् कर्मोनी निर्जरापेक्षाना स्वभाववाला अेवा ते मुनि मरणु-  
समाधिनी अनुपालना करे एवव अने मरणुमा इच्छारहित मुनिनु हाण पर्या  
यथी अे समय मरणु थाय छे अे समयनी ते मुनि सावधान चित्तथी प्रतीक्षा

परिवृतस्य कामपर्यायण मरणं यद् यदा मरयति तं कालं स समाहितमनाः परिपाल-  
येदित्याश्रयः। एवम् अन्तः=कृपायान् बहिः=हरीरोपकरणादिकं च व्युत्सृज्य=विहाय  
हृदयं=राग-द्वेषाद्युपश्रमादिस्रोतसिकापरिमितम्, अभ्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेषयेत्=  
मन्वेषयत् ॥ ५ ॥

किञ्च—'जं किञ्चु०' इत्यादि।

मूढम्—ज किञ्चुवक्त्रम जाणे, आउक्खेमस्त मप्पणो ॥

तस्सेव अतरद्धाप, खिप्प सिखिखच्च पडिप्प ॥ ६ ॥

श्या—यं कं चनोपक्रमं जानीयात्, आयुःक्षेमस्याऽऽत्मनः ॥

तस्यैव अन्तरद्धायां, शिप्रं शिप्रत पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—'यं कं चने'—त्यादि, आत्मनः=स्वस्य आयुःक्षेमस्य=स्वसम्बन्धिन  
आयुषः क्षेमस्य=हस्याणस्य च यं कं चन उपक्रमम्=उपक्रमणम् जानीयात् तस्यैव=  
संश्लेषनाकालस्य अन्तरद्धायाम्=मन्वेषवर्तिकाले पण्डितः=अथगतद्वेषोपादेयतया  
स्वायुषो निबद्धक्षेमस्य चोपायपरिज्ञाता शिप्र=शीघ्र शिप्रेत=अभ्यसेत। यद्वा—य  
आत्मनः=निजस्य आयुःक्षेमस्य=सुखवर्जितस्य यं कं चनोपक्रमम् आयुःपुत्रगलानां  
समयकी वह मुनि माघमानचित्त वन प्रतीक्षा करे। इस प्रकार अन्तरगकी  
उपाधिस्वरूप कषायोक्ता, एवं बहिरगकी उपाधिस्वरूप शरीर और उपकरण  
भाविका परिष्ठागकर वह मुनि राग द्वेष आदिके उपशमसे चिन्तोत्सिका-  
संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अपने अन्तःकरणकी गवेषणा करे ॥५॥

किञ्च—'जं किं चुवक्त्रम' इत्यादि।

तथा—अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम  
को वह जाने, उसका वह शीघ्र ही संश्लेषना कालके मन्वेषवर्ति कालमें  
अभ्यास करे। अथवा—वह मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी  
स्थिति पूरी होती हुई जान, अर्थात् 'आयुके पुत्रलोक संकुचिग होने का

हरे. आ प्रकारे अन्तरगनी उपाधिश्च कषायो. अने बहिरगनी उपाधिश्च शरीर  
अने उपकरण वक्षेत्रेण त्वात्र हरी जे मुनि राग द्वेषभी रहित चिन्तोत्सिका-  
संशयादिक दोष-रहित चर्च पित्तान् अन्तःकरणनी अवेपय्या हरे. (५)

हरी—ज किं चुवक्त्रम इत्यादि.

पित्तान् आयुष्य अने कल्याणना हरेके प्रकारना उपक्रमने ते अवेपे, अने  
ते उत्तर च अवेपययित्ताना मन्वेषवर्ती कारणे अभ्यास हरे. अथवा—आरे ते  
पित्तान् सुखमय उपनती स्थिति पुरी यती अवेपे, अथवा—आयुष्यना पुत्रलोकने

સહોચન સમુપસ્થિતં જાનીયાત્ સ પષ્ટિતઃ=અમરજ્ઞઃ તસ્યૈવ=ઉપક્રમમ્ય સલેખના-  
વસરસ્ય અન્તરદ્વાયા=મધ્યકાલે ક્ષિપ્ર=શીઘ્ર શિક્ષેત=મક્તપરિજ્ઞાદિક્રમાસેપનેન  
પરિજ્ઞાનીયાત્ ॥ ૬ ॥

સ સંલેખનાપરિશુદ્ધકૃશશરીરો મરણકાલે ચોપસ્થિતે કિં વિદધીત? ઇત્યાહ-  
'ગામે વા' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્--ગામે વા અદુવા રણે, યંડિલં પડિલેહિયા ॥

અપ્પપાણં તુ વિન્નાય, તળાઈં સંથરે મુની ॥ ૭ ॥

છાયા--પ્રામે વા અથવા અરણ્યે, સ્થણ્ડિલ પ્રત્યુપેક્ષ્ય ॥

અલ્પપ્રાણ વિજ્ઞાય, ટ્ઠાણાનિ સસ્તરેન્મુનિઃ ॥ ૭ ॥

ટીકા--'ગામે વા' ઇત્યાદિ, મુનિઃ=મિશ્રુઃ સલેખનાશુદ્ધકૃશશરીરઃ પ્રામે વા  
અથવા અરણ્યે=વને અલ્પપ્રાણ=પ્રાણિર્વર્જિતં સ્થણ્ડિલ=સસ્તારકદેશં પ્રત્યુપેક્ષ્ય=સમ્પ-  
ગવધાર્ય વિજ્ઞાય=વિશેષરૂપેણ જ્ઞાત્વા, ટ્ઠાણાનિ=ગ્રામાદી યાચનયા પ્રાપ્તાનિ પ્રાસુ-  
કાનિ દર્માદીનિ સંસ્તરેત્=તૈઃ સસ્તરણં કુર્યાત્ ॥ ૭ ॥

સમય ઉપસ્થિત હોયુકા હૈ' એસા સમજો તવ હી વહ અવસરજ્ઞ મુનિ સંલે-  
ખના કે અવસરકે મધ્યકાલમેં શીઘ્ર હી ભક્તપરિજ્ઞા આદિકા સેવન  
કરને લગે ॥૬॥

સલેખના સે પરિશુદ્ધ કૃશ શરીર મુનિ મરણકાલકે ઉપસ્થિત હોને  
પર ક્યા કરે? ઇસકે ઉત્તરમેં સૂત્રકાર કહતે હૈ--' ગામે વા' ઇત્યાદિ ।

વહ મુનિ કિ જિસકા કૃશ શરીર સલેખનાસે શુદ્ધ હૈ વસતિમેં  
અથવા જગલ મેં પ્રાણિર્વર્જિત સસ્તારક પ્રદેશકા નિરીક્ષણ કરે, ઓર  
ઉસકે પશ્ચાત જવ યહ નિશ્ચિત હોજાયે કિ યહ પ્રદેશ જીવજંતુરહિત હૈ  
તવ ગ્રામાદિક મે યાચનાસે પ્રાપ્ત પ્રાસુક દર્મ આદિ ઘાસ કો વહાં પર  
વિજ્ઞાકર અપના સથારા તૈયાર કરે ॥૭॥

સકુચિત થવાનો સમય આવી ચુક્યો છે' એવું સમજો ત્યારે તે અવસરજ્ઞ મુનિ  
સલેખનાના અવસરના મધ્યકાળમાં સત્વર ભક્તપરિજ્ઞા વગેરેનું સેવન કરવા લાગે (૬)

સલેખનાથી જેનું કૃશ શરીર શુદ્ધ છે એવા મુનિ મરણકાળ ઉપસ્થિત  
થતા શુ કરે? આના ઉત્તરમાં સૂત્રકાર કહે છે--'ગામે વા' ઇત્યાદિ

જે મુનિનું કૃશ શરીર સલેખનાથી શુદ્ધ છે, વસતિમાં અથવા જગલમાં  
પ્રાણિર્વર્જિત સ્થાનનું નિરીક્ષણ કરે, અને એ પછી જ્યારે એવો નિશ્ચય થઈ  
જાય કે આ પ્રદેશ હવે-જતુથી રહિત છે, ત્યારે ગ્રામાદિકમાં યાચનાથી પ્રાપ્ત  
કરેલ ઠાં વગેરે ઘાસને ત્યા પીછાવી પોતાનો સથારો તૈયાર કરે (૭)

ततः किं कुर्यादित्याह—'अनाहारो' इत्यादि ।

स्मृ-अनाहारो तुयद्वेजा, पुष्टो तस्यऽहियासप ।

गातिवेल उवचरे, माणुस्सेहि वि पुष्टप ॥ ८ ॥

अना-अनाहारस्त्वम्वर्षयेत्, स्पृष्टस्तप्राध्यासम् ॥

नातिवैस्सुपचरेत्, मानुषैरपि स्पृष्टकः ॥ ८ ॥

टीका—'अनाहार'—इत्यादि—स संलेखनाशुद्धशरीरः, अनाहारः=त्रिषिष-चतुर्विंशतिपरिस्थानी, दृढीतमहाप्रतः स्वयं क्षान्तः क्षमापितसकम्पाणिगन्धः समदुःखसुखो विदितात्मतत्त्वतया मरणावप्यविभ्यन् स सस्तरे स्वम्वर्षयेत्=प्रतिलम्प्य प्रमाज्यं च पर्यपरिवर्तनं त्रिष्य्यात्, स एव तत्र सस्तरं स्पृष्ट=परीपहापसर्गोत्तिभूतः सन् दान् वध्यासयेत्=अभिसहेत्, अपि च—तत्र मानुष्यैः=अनुकूले-पुत्र-कलत्र-मिप्रादिसं

वह इसके पश्चात् क्या करे? इसके लिये सूत्रकार-कहते हैं—  
'अनाहारो' इत्यादि ।

संलेखना से शुद्ध शरीर वाला, तीन प्रकार या चार प्रकारके आहारका परिस्थानी, महाद्वर्तों को जिसने ग्रहण किया है, समस्त जीवोंको जिसने क्षमा प्रदान किया है और उनसे भी जिसने अपने समस्त प्रत्यक्ष और परोक्ष कृत दोषों की क्षमायाचना कर ली है, सुख और दुःख में जो समभाषी बन चुका है और आत्मतत्त्वका ज्ञाता होने से जो मरण से भी प्रसन्न नहीं है ऐसा वह मुनि उस पिछाये हुए सधारेकी पहिछे प्रतिछेखना करे पश्चात् उसकी प्रमाजना करे । प्रतिछेखना और प्रमाजना करने बाद फिर उस पर सोजावे । उस सधारे पर सोयेर ही वह परिपह और उपसर्गोंसे उपब्रधित बन उन्हें सहे । अपने अनुकूल-पुत्रनिग्रकलप्रादिकों क संसर्गसे जनित परीपह और

ये मुनि क्या पजी शु करे? जाने भाटे सूत्रकार कहे छे—'अनाहारो' इत्यादि.

संलेखनाधी शुद्ध शरीरवाला, त्रय प्रकार के चार प्रकारके आहारका परिस्थानी महाप्रतों के छे प्रदण करे छे समस्त छेवोने के छे क्षमाप्रदान करे छे छे जाने येते पण येवानी अपा प्रत्यक्ष अपने परोक्ष छेवोनी क्षमायाचना करे छे छे शुभ अपने इ अर्थां के समभाषी जनी चुके छे छे अपने अप्रभतत्त्वना क्षमा छेवोने करे छे के मरणोने लय लजता नथी, जेवोते मुनि वीज्यवधमां जाने छे अक्षयनी प्रतिछेखना करे करी परिभाष्यना करे, जे पजीते तेना उपसर्गोने सधारे प्रदण करे छे ते मुनि उपसर्गोधी न आश्रयते नेने अद्वान करे छेवोने अनुकूल-पुत्र-मित्र अपने इद जीवोना ससर्गधी आवेव प्रतिपह अपने

सर्गजनितैः, प्रतिकूलैः—वधव्यनाक्रोशादिसमुद्भूतैः परीपहोपसर्गैरपि स्पृष्टकः=स्पृष्ट एव स्पृष्टकः अनुकूलोपसर्गैस्तदनुव्यानपरः, प्रतिकूलैश्च तैः कोपपरायणः सन् अतिवेलं नोपचरेत्=साधुमर्यादा नातिक्रामेत् ॥ ८ ॥

उक्तार्थमेव विशदयति—‘ससप्पगा’ इत्यादि—

मूलम्—संसप्पगा य जे पाणा, जे य उड्ढमहेचरा ॥

भुंजंति संससोणियं, न छणे न पमज्जए ॥ ९ ॥

छाया—संसर्पकाश्च ये प्राणाः, ये च ऊर्ध्वमधश्चराः ॥

भुञ्जते मासशोणितं, न क्षणुयान्न प्रमार्जयेत् ॥ ९ ॥

टीका—‘संसर्पका’—इत्यादि, संसर्पकाः=संसर्पणशीलाः पिपीलिका—सर्प—मूपकादयश्च ये प्राणाः=प्राणिनः च=पुन. ये ऊर्ध्वमधश्चराः=ऊर्ध्वचारिणो गृध्रादयः, अधश्चराः=सिंह-व्याघ्र-शृगालादयः मासशोणितं भुञ्जते, तत्र मासभोजिनः गृध्र-सिंह-व्याघ्रादयः, शोणिताशिनः पिपीलिकादयः, आदिशब्दात् दश-मशक-मत्कुण-यूकालिक्षादयः सन्ति, स भिक्षुस्तान् पूर्वोक्तान् प्राणिनः स्वमासाद्यशनाय

उपसर्गोसे हर्षित हो कर, तथा प्रतिकूल-वध वंवन आक्रोश आदिसे उत्पन्न उनसे कोपपरायण होकर वह साधु मर्यादाका उल्लंघन न करे ॥८॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘संसप्पगा य’ इत्यादि ।

पिपीलिका—कीड़ी, सर्प और मूपक आदि संसर्पणशील प्राणी, गृध्र-वगैरह ऊर्ध्वचारी जीव, और सिंह, व्याघ्र एवं शृगाल आदि अधश्चारी जीव कि जो मांस और शोणित का आहार करने वाले हैं, वे यदि उस साधु के मांस शोणित को खानेके लिये आवे तो वह उनकी हिंसा न करे, तथा उनके द्वारा खाया गया अपने शरीरका कोई भी अवयव वह रजोहरणादिक से प्रमार्जित न करे। गृध्र, सिंह और व्याघ्र आदि मांस

उपसर्गोधी हर्षित जनी तथा प्रतिकूल-वध-अधन-आक्रोश वगैरेधी उत्पन्न तेजोधी कोपपरायण जनी साधुमर्यादातु ते उल्लंघन न करे (८)

आ अर्थने सूत्रकार स्पष्ट करे छे—‘ससप्पगा य’ इत्यादि

कीड़ी-सर्प-उदर-धुस-भीसकेली-छछुदर वगैरे संसर्पणशील प्राणी, गीध्र वगैरे ऊर्ध्वचारी एव, सिंह, व्याघ्र, शृगाल वगैरे अधश्चारी एव के जे मांस अने लोडिने न लक्षण करनारा छे, जे कदाय ते साधुना मांस अने लोडिनु लक्षण करवा आवे तो ते तेनी हिंसा न करे, तेम जेना द्वारा आवाभा आवेला शरीरना केह पण बागने रजोहरणादिकधी प्रमार्जित न करे गीध्र सिंह,

समागतान् न क्षुयात्=न हिंस्यात्, नापि वैभ्रज्यमानमवप्यं रजोहरणादिना ममा  
 र्भयेत् ॥ ९ ॥

अपि पाद-‘पाणा’ इत्यादि ।

मूष्म्-पाणा देह विहिंसति, ठाणाओ नवि उच्चमसे ॥

आसवेहिं विधित्तेहिं, तिप्यमाणोऽहियासम् ॥ १० ॥

प्राणा-प्राणा देह विहिंसति, स्थानान्नाप्युद्भ्रमेत् ॥

भासवैविक्रैः-स्तुप्यमाणोऽध्यासयेत् ॥ १० ॥

टीका-‘प्राणा’-इत्यादि, प्राणाः=प्राणिनो द्वीन्द्रियादयो देहः=मम शरीरं  
 विहिंसन्ति=मन्ति न पुना रत्नत्रयम्, अथ परिहृतवेदाद्यः समाचरितामिग्रहमूष्म  
 वाचान् न निवारयत् । नापि=नैव तस्मात् स्थानात्=स्वच्छिन्नात् उद्भ्रमेत्=अवप्यि-  
 न्यत्र गच्छेत् । अपि य-विक्रैः=मिनैः आसवे=प्राणादिपातादिभिः, अथवा-  
 द्विषियकपायादिभिर्वा तृप्यमाण=पीडयमानो अध्यासयेत्=तत्कृत्वा परीपहो-  
 पसर्गवाचामभिसहेत् ॥ १० ॥

भोजी हैं, पिपीलिकादिक. आदि शब्दसे दंश, मशक, खटमल, जू एवं  
 लीस आदि शोणितभोजी हैं ॥ ९ ॥

और मी-‘पाणा देह’ इत्यादि ।

‘ये द्वीन्द्रियादिक प्राणी मेरे शरीरकी ही हिंसा करते हैं, रत्नत्रयकी  
 नहीं’ ऐसा विचार कर अपने शरीरके ममत्व का त्यागी यह साधु  
 समाचरित-गृहीत अभिग्रहके संग के भय से उन मांसशोणितभक्षी  
 जीवोंका निवारण न कर, और न उनके भयसे वह उस स्थानसे किसी  
 और दूसरे स्थान में जावे । तथा यह साधु प्राणासिपातादिक अधवा  
 शब्दादिक विषय कपायरूप अनेक आसवोंसे आहत-पीडित होता हुआ  
 मी उन द्वारा की गई परीपह और उपसर्गकी पीड़ाको सहता रहे ॥ १० ॥

यद्यपि वज्रे भांस ज्ञान्यात् छे द्विती आदि आदि शब्दभी मन्थर भांडस लु,  
 दीन वज्रे होदी सुसनास छे (६)

इसी पद्य- पाणा देह इत्यादि

‘आ मे द्वीन्द्रियाणां प्राणी मास शरीरतु अक्षय्य इत्यर्थं छे पद्य रत्नत्रयम् नदी’  
 जेवे विचार इरी पीताना शरीरना मन्थवने त्यागी ते साधु, समाचरित-  
 अक्षय्य इरेस अभिग्रहना लजना अवधी जे मास-होदीनु अक्षय्य इत्यर्थ लवेने  
 इरे न इरे तेम जेना अवधी पीते जे स्थान छोडी जीव स्थान न बध्य, तथा  
 ते साधु प्रकृतिपाटादिक अवधया शब्दादिक विषय-कपायादय अनेक उपसर्गवादी  
 पीयते होना छतां पद्य ते दास यद्यपरिपह अने उपसर्गनी पीयते अहंन इरे (१)

सर्गजनितैः, प्रतिकूलैः—वधान्धनाक्रोशादिसमुद्भूतैः परीषहोपसर्गैरपि स्पृष्टकः=स्पृष्ट एव स्पृष्टकः अनुकूलोपसर्गैस्तदनुध्यानपरः, प्रतिकूलैश्च तैः कोपपरायणः सन् अतिवेत्तं नोपचरेत्=साधुमर्यादां नातिक्रामेत् ॥ ८ ॥

उक्तार्थमेव विशदयति—‘संसर्पगा’ इत्यादि—

मूळम्—संसर्पगा य जे पाणा, जे य उड्डमहेचरा ॥

भुञ्जति संससोणियं, न छणे न पमज्जए ॥ ९ ॥

छाया—संसर्पकाश्च ये प्राणाः, ये च ऊर्ध्वमधश्चराः ॥

भुञ्जते मांसशोणितं, न क्षणुयान्न प्रमार्जयेत् ॥ ९ ॥

टीका—‘संसर्पका’—इत्यादि, संसर्पकाः=संसर्पणशीलाः पिपीलिका—सर्प—मूषकादयश्च ये प्राणाः=प्राणिनः च=पुन ये ऊर्ध्वमधश्चराः=ऊर्ध्वचारिणो गृध्रादयः, अधश्चराः=सिंह—व्याघ्र—शृगालादयः मांसशोणितं भुञ्जते, तत्र मांसभोजिनः गृध्र—सिंह—व्याघ्रादयः, शोणिताशिनः पिपीलिकादयः, आदिशब्दात् दश—मशक—मत्स्य—यूकालिक्षादयः सन्ति, स भिक्षुस्तान् पूर्वोक्तान् प्राणिनः स्वमांसाद्यशनाय

उपसर्गोसे हर्षित हो कर, तथा प्रतिकूल—वध बंधन आक्रोश आदिसे उत्पन्न उनसे कोपपरायण होकर वह साधु मर्यादाका उल्लंघन न करे ॥८॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘संसर्पगा य’ इत्यादि ।

पिपीलिका—कीड़ी, सर्प और मूषक आदि संसर्पणशील प्राणी, गृध्र—वगैरह ऊर्ध्वचारी जीव, और सिंह, व्याघ्र एवं शृगाल आदि अधश्चारी जीव कि जो मांस और शोणित का आहार करने वाले हैं, वे यदि उस साधु के मांस शोणित को खानेके लिये आवे तो वह उनकी हिंसा न करे, तथा उनके द्वारा खाया गया अपने शरीरका कोई भी अवयव वह रजोहरणादिक से प्रमार्जित न करे। गृध्र, सिंह और व्याघ्र आदि मांस

उपसर्गोधी हर्षित अनी तथा प्रतिकूल—वध—अधन—आक्रोश वगैरेधी उत्पन्न तेजोधी क्लेशपरायण्यु अनी साधुमर्यादातु ते उल्लंघन न करे (८)

या अर्थने सूत्रकार स्पष्ट करे छे—‘संसर्पगा य’ इत्यादि

कीड़ी—सर्प—उदर—धुस—भीसकेली—छत्रुदर वगैरे संसर्पणशील प्राणी, गीध्र वगैरे ऊर्ध्वचारी एव, सिंह, व्याघ्र, शीयाण वगैरे अधश्चारी एव के ते मांस अने बोझीने न भक्षण्य करेनाश छे, अने उदात्त ते साधुना मांस अने बोझीतुं भक्षण्य करवा आवे तो ते तेनी छि सा न करे, तेम अने द्वारा आवामा आवेला शरीरना कोष्ठ पथु भागने रजोहृत्पादितधी प्रमार्जित न करे गीध्र सिंह,



तद्वत्प्रयत्नवद्वयति—'पद्मादिय०' इत्यादि, द्विविकस्य=संयमवतः विज्ञानतः=गीतार्थस्य  
 अपन्येनापि नवपूर्वाभिज्ञस्य नान्यस्य इव=वक्ष्यमाणमिद्विभरणं पश्यतीतत्कम्  
 अतिव्ययेन सम्यक् स्वीकृतं भवति । इद्विभरणेऽपि संसेवनात्संस्तारादिक  
 पूर्ववद् बोध्यम् ॥११॥

सन्मरणस्यान्यमपि विधिं दर्शयति—'अय' इत्यादि।

मूष्—अय से अपरे धम्मे, नायपुत्रेण साहिष ॥

आयवज्ज पटीयार, विज्जहिज्जा तिहा तिहा ॥१२॥

आया—अयं सः अपरः धर्मो, ज्ञातपुत्रेण स्थाहितः ॥

आत्मवर्नं मतीचारं, पिब्ब्यात् मिधा मिधा ॥१२॥

टीका—'अय'—मित्यादि, ज्ञातपुत्रेण=अगमता महावीरेण स्थाहित=मुष्ट  
 आहित=ज्ञातः केवलसालोक्यं स्मृत्पलम्प इत्यर्थः, अयं वक्ष्यमाणः इद्विभरणस्य  
 धर्मः, अपरः=अकपरिज्ञामरणात्पर्यगति, एतस्यापि मरणस्य प्रव्रज्यासंभेदनादिको  
 विधिः पूर्ववद् बोध्यः । इद्विभरणामिकाहसी सर्वसुपकरण परिहृत्य स्पष्टिसप्रत्यु

सूत्रकार कहते हैं कि—जो संयमी है, तथा कमसे कम तो नौ पूर्वके ज्ञाता  
 है वही इसे स्वीकार करता है—अन्य मुनि नहीं । इस में भी  
 संभेदनाएव धृणसंस्तार आदिकी विधि पूर्ववत् जाननी चाहिये ॥११॥

इस मरणकी अन्य विधि कहते हैं—'अयं से' इत्यादि।

ज्ञातपुत्र भी महावीर के द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकसे अच्छी  
 तरह जाना गया यह इंगितमरणरूप धर्म भक्तप्रत्याख्यान आदि मरण  
 से भिन्न है। इस मरण की भी प्रव्रज्या ग्रहण करना, संभेदनादिक  
 धारण करना आदि विधि पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये। इंगित  
 मरणका अभिज्ञानी मुनि समस्त उपकरणका परित्याग कर स्पण्डिलका

होठे छे छे के सबमी छे तथा के जोछायं जोछ नवपूर्वना वलुआरदोष छे  
 तेव तेने अजीकार छे छे—भील मुनि नहीं, ज्यमां पजु सवेपना अने  
 वासना सथात वजेरेनी विधि पढेवांनी भाइके अलुयी जेठं जे (११)

आ मरणनी भील पजु विधि हठे छे—'अय से' इत्यादि।

ज्ञातपुत्र भी महावीर द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकसे अच्छी (प्रकाशवदे)  
 भावी रीते अलुपामां आवेत्ते ते धर्मितमरणरूप धर्म लक्ष्यप्रत्याख्यान वजेरे  
 मरणधी लुध प्रकारतु छे अथ मरणनी पजु रीक्षा प्रवृत्त करनी सवेपना  
 वजेरेतु धारण इतु वजेरे विधि पढेवांनी भाइके समजणी जेठं जे, धर्मित  
 मरणनी अलिवाधी मुनिजे समस्त उपकरणेना परित्याग करी स्पण्डिलतु

अन्यच्चाह—'गंथेहि' इत्यादि।

मूलम्—गंथेहिं विविक्तोहिं, आउकालस्स पारण ॥

पग्गहियतरगं चयं, दवियस्स वियाणओ ॥११॥

छाया—ग्रन्थैर्विविक्तैः, आयुःकालस्य पारगः ॥

प्रशुद्धीतरक चेद, द्रविकस्य विजानतः ॥११॥

टीका—'ग्रन्थै'—रित्यादि, य विविक्तैः=पृथग्भूतैः, ग्रन्थैः=वाह्यैः शरीरादिभिः, आभ्यन्तरैश्च रागादिभिः स्वात्मानं भावयन् धर्मशुक्लध्यानैकतरसमन्वितः स आयुःकालस्य=मरणावसरस्य=पारगः=पारगामी स्यात्—चरमोच्छ्वासनिःश्वासपर्यन्त समाधिमान् भवेत्, एवंविधमरणादिविधायी नीरजाः सन् सिद्धिः, कर्मावशेषे देवलोक वा गच्छेत्। कथित भक्तपरिज्ञाख्यमरणम्, साम्प्रतं पद्याद्धेनेञ्जि-

और भी—'गंथेहिं' इत्यादि।

जो मुनि आत्मा से सर्वथा पृथग्भूत वाह्य-शरीरादिकरूप एवं आभ्यन्तर-रागादिरूप परिग्रहों से अपनेको भिन्न मानता है, और इसी प्रकारकी जिसकी सदा भावना बनी रहती है, तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान, इन दो ध्यानों में से जो किसी एक ध्यानसे समन्वित रहता है, वह मरणके अवसर का पारगामी होता है, अर्थात्—अन्तिम श्वास और निःश्वास पर्यन्त समाधिसुप्त रहता है। इस रीतिसे मरण करनेवाला साधु कर्मरूप रजसे रहित होकर सिद्धिलोकमें अथवा कर्मोंके अवशेष रहने पर देवलोक में जाता है। यहां तक भक्तपरिज्ञा-नामक मरणका कथन किया गया है। यहां से आगे अब आये पद्यसे सूत्रकार इंगितमरणका कथन आरंभ करते हैं—प्रथम इंगितमरण कौन करता है? इसके लिये

इरी पद्य—'गंथेहिं' इत्यादि

जो मुनि आत्मासे सर्वथा पृथग्भूत वाह्य-शरीरादिकरूप, अने आभ्यन्तर-रागादिकरूप परिग्रहोंकी पीताने भिन्न माने छे, अने आवा प्रकारनी जेनी सदा भावना बनी रहै छे, तथा धर्मध्यान अने शुक्लध्यान, आ अने ध्यानाभाथी जे कोछ् अेक ध्यानथी समन्वित रहै छे ते मरणना अवसरने पार करनार अने छे—अन्तिम श्वास अने निश्वास सुधी समाधिसुप्त रहै छे आ रीतथी मरण करवावाणा साधु कर्मरूप रजथी रहित अनीने सिद्धिलोकमा, अथवा कर्मनि अवशेष रहैवाथी देवलोकमा जाय छे अछि सुधी लकतपरिज्ञा नामक मरणत वधुन करवाभा आवेल छे आगण उवे अथी पद्यथी सूत्रकार इंगितमरणक कथनने आरंभ करे छे—प्रथम इंगितमरण कोण करे छे? जेने माटे सूत्रकार

मरणस्य पूर्ववति—'पगाहिय०' इत्यादि, द्विविकृत्य=संयमवतः विजान्तः=गीतार्थस्य  
 भक्ष्यनापि नवपूर्वाभिहितस्य नान्यस्य इव=वक्ष्यमाणमिहितमरणं मृष्टीवत्तत्कम्  
 अतिशयेन सम्यक् स्वीकृतं भवति । इहितमरणेऽपि संलेखनाद्युपसंस्तारादिकं  
 पूर्ववद् बोध्यम् ॥११॥

तन्मरणस्यान्यमपि विधिं दर्शयति—'अय' इत्यादि ।

सूत्रम्—अय से अपरे धम्मे, नायपुत्तेण साहिण् ॥

आयवज्ज पढीयार, विजहिज्जा तिहा तिहा ॥१२॥

प्राया—अयं सः अपरः धर्मो, ज्ञातपुत्रेण स्वारितः ॥

आत्मवर्जं प्रतीचारं, विजज्ञात् भिषा भिषा ॥१२॥

टीका—'अय'—मित्यादि, ज्ञातपुत्रेण=मगवता महावीरस्य स्वारितः=सुष्ठु  
 स्वारितः=ज्ञातः केवलालोकेन समुपलभ इत्यर्थः, अयं वक्ष्यमाण इहितमरणस्य  
 धर्मः, अपरः=मृतपरिग्रामरणाद्युपगति, एतस्यापि मरणस्य प्रव्रज्यासंलेखनादिको  
 विधिः पूर्ववद् बोध्यः । इहितमरणमिकाहसी सर्वसुपकरणं पवित्रस्य स्वण्डिसम्पत्त्यु-

सूत्रकार कहते हैं कि—जो संयमी है, तथा कमसे कम तो नौ पूर्वके ज्ञाता  
 है वही इसे स्वीकार करता है—अन्य मुनि नहीं । इस में भी  
 संलेखना एवं तृणसंस्तार आदिकी विधि पूर्ववत् जाननी चाहिये ॥११॥

इस मरणकी अन्य विधि कहते हैं—'अयं से' इत्यादि ।

ज्ञातपुत्र श्री महावीर के द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोफसे अच्छी  
 तरह जाना गया यह इंगितमरणरूप धर्मं भरतप्रत्याख्यान आदि मरण  
 से निम्न है । इस मरण की भी प्रव्रज्या ग्रहण करना, संलेखनादिक  
 धारण करना आदि विधि पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये । इंगित  
 मरणका भूमिलापी मुनि समस्त उपकरणका परित्याग कर स्थण्डिलका

होठे होठे से सबभी छे तथा से ज्ञेयार्थं ज्ञेय नवपूर्वना ज्ञेयारोप छे  
 तेव तेने ज्ञेयारोप छे छे—जीव्य मुनि नहीं ज्ञेयार्थं पञ्च संलेखना ज्ञेय  
 धर्मस्य संधारण वनेरेनी विधि पडेछानी माहं ज्ञेयार्थं ज्ञेय (११)

आ मरणनी जीव्य पञ्च विधि हडे छे—'अयं से' इत्यादि ।

ज्ञातपुत्र श्री महावीर द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोफपरधी (प्रकाशवटे)  
 धारी छेते ज्ञेयार्थमा ज्ञेयते ते इहितमरणरूप धर्मं भरतप्रत्याख्यान वनेरे  
 मरणधी ज्ञेय प्रकाशते छे आ मरणनी पञ्च धीषा मरण करनी संलेखना  
 वनेरेनु धारण करनु वनेरे विधि पडेछानी माहं ज्ञेयार्थं ज्ञेय छे इहित  
 मरणस्य अधिष्ठायी मुनिजे समस्त उपकरणने परित्याग करी स्थण्डिलं

पेक्षणपूर्वकमालोचितप्रतिक्रान्तः, गृहीतपुनःपञ्चमहाव्रतो यावदशनं विहाय संस्तार-  
स्थितो भवेत् । एतस्मिन् विशेष दर्शयति—‘आत्मवर्ज’—मित्यादिना, स तृणसस्ता-  
रगत इङ्कितमरणेच्छुः, त्रिधा—त्रिधा=त्रिविधैर्मनोवाक्कायरूपैः कृतकारितानुमति-  
मिथ आत्मवर्ज=निजशरीरावश्यककार्यवर्जं प्रतीचारम्=अवयवसञ्चारं विजह्यात्=  
परिहरेत्, स्वयमेव च—उद्धर्तनपरिवर्तन कायव्यापारादिक करोतीति भावः॥सू०१२॥

मृदुमृदुः प्राणिप्राणपरिपालनस्थावश्यकतामुपदर्शयति—‘हरिणसु’ इत्यादि ।

मूलम्—हरिणसु न निर्वंजिज्जा, थंडिलं मुणिथा सए ॥

विओसिज्ज अणाहारो, पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥१३॥

जाया—हरितेषु न निपीदेत्, स्थण्डिलं ज्ञात्वा शयीत् ॥

व्युत्सृज्यानाहारः, स्पृष्टस्तत्राध्यासयेत् ॥ १३ ॥

निरीक्षण, उसका संमार्जन, पापोंकी आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे।  
पांच महाव्रतोंको पुनः ग्रहण करे। अशनादिकको क्रमशः कुश करते हुए  
उसका सर्वथा परिहार करे, और ग्रामादिकसे घासकी याचना कर एकांत  
स्थान में निर्जीव स्थानपर उनका संधारा कर उस पर खमत-खामणा  
कर स्थित हो जावे। इंगित मरणका इच्छुक मुनि मन वचन एवं कायसे,  
तथा कृत, कारित एवं अनुमोदना से अपने शारीरिक आवश्यक कार्यों  
के सिवाय अन्य-अवयवों के संचार करनेरूप प्रतीचारका परिहार कर  
देवे। उद्धर्तन-परिवर्तनरूप कायव्यापारादिक यह कर सकता है ॥१२॥

सूत्रकार चारवार प्राणिघों के प्राणोंकी रक्षाकी आवश्यकता प्रकट  
करते हुए सूत्र कहते हैं—‘हरिणसु’ इत्यादि ।

निरीक्षण, तेषु संमार्जन, पापोंकी आलोचना तेमन् प्रतिक्रमण करी पाय भडा-  
मतेने पुन अङ्घु करे अन्न वगेरे ओछु करता वय अने छेवटे तेनासु पूर्ण  
त्याग करे, अने ग्रामादिकथी घासनी याचना करी ओकान्त स्थानमा, निर्जि  
स्थान उपर संधारे करी ओ उपर गेसी खमत-खामणा करी स्थिर अनी वय-  
इंगितमरणने छिछनार मुनि मन वचन अने कायाधी करेला, करयेला, अने  
अनुमोदन आपेला पोताना शारीरिक आवश्यक कार्यो सिवाय अनी अवयवोने  
संचार करवाइय प्रतिचारेने त्याग करी हे उद्धर्तन-परिवर्तनइय कायव्यापा-  
रादिक ते करी शके छे (१२)

सूत्रकार चारवार प्राणीयोना प्राणोनी रक्षानी आवश्यकता प्रकट करीने  
सूत्र कहे छे—‘हरिणसु’ इत्यादि

१ ‘नि’ पूर्वस्य ‘सद्’ घातो रूपम् ।

टीका—'हरितपि'—स्यादि, स मिधुः, हरितेषु—दूर्वाङ्कुसुतपु प्रवेशपु न निपीदेत्—नोपबिभृत्, तं स्वप्निषं=हरितादिवर्जितं स्थानं ज्ञात्वा शयीत्, व्युत्सृज्य=आहारं त्यक्त्वा अनाहारः=कृतानसन स्पृष्टः=परिपहोपसर्गैरभिभूतं सन् तत्र=संस्तरे वर्तमान एव अन्यासयत्=उपस्थितं परीपहोपसर्गाभिमभमभिसहेत् ॥१३॥

अन्वप्याह—'इदिपरि' इत्यादि ।

मूम्—इदिपरि गिलायतो, समिय आहरे मुणी ॥

तहावि से अगरिहे, अचले जे समाहिय ॥१४॥

आया—इन्द्रियैर्ग्रायमानः, श्रमितामाहारसेन्दुनिः ॥

तवाऽपि सः अर्गाः, अचलो यः समाहितः ॥ १४ ॥

टीका—'इन्द्रियै'—रित्यादि, अशनमत्याख्यानादिन्द्रियाणां क्षीणशक्तितया इन्द्रियै=भोत्रादिभिः, ग्रायमानः=ग्लानिमनुभवन् मुनिः श्रमिने=मनोनिग्रहबतो मावः श्रमिता, तां, यदा— साम्यम् ' इतिष्णाया, साम्यम्=समभाषम् आहारयत्=स्वारमनि स्थापयत्, भातध्यानसमन्विता न भवदित्याश्रयः । यथासमाधि तत्र

बह मिधु, जिस प्रवेशमें हरित-दूर्वादिके अंकुर हों उस प्रवेशमें नहीं बैठे । जहाँ हरितांकुर आदि न हों, वहाँ पर ऊठे बैठे एवं सोवे । अतुर्बिष आहार का परित्यागी बह मिधु परीपह और उपसर्गों से उपद्रवित होने पर उस संपार पर रहता हुआ ही उपस्थित उस परिपह और उपसर्ग अन्य पाषा को महे ॥१३॥

और भी—'इदिपरि' इत्यादि ।

आहार के परित्याग कर देने से इन्द्रियां स्वयं शिथिल हो जाती हैं, अतः आहार क परित्याग से क्षीणशक्तिवाली इन्द्रियां द्वारा मुनि जब ग्लानिका अनुभव करने लगे उस समय बह अपने मनका निग्रह करके समताभाषको धारण कर—भासध्यानसे युक्त न घने । इस्त—पावा

ते किधु के प्रदेशमा लीला इल आदिना अंकुर होय तेवा प्रदेशमा न भेसे, ल्यां लीला इलना अंकुर न होय त्या भेसे उठे अने सुवे. याए प्रकास्य अन्ध रना पक्षित्यात्री के साधु परिपह अने उपसर्गोषी उपद्रवित होवा छया सधारा उपर इलीने उत्पन्न मत्ता परिपह अने उपसर्गलन्य पाषाजोने अहन करे (१३)

पु ५५—'इदिपरि'—इत्यादि

आहारने त्याग करी देवाधी इन्द्रियो स्वयं शिथिल जनी लय छे अउठे आकास्य त्यागधी क्षीणशक्तिवाणी इन्द्रियोषी मुनि ल्यारे ग्लानि अनुभवच आवे के समये ते पाठान्य मननो निग्रह करीने समता भावने धारण करे-

पेक्षणपूर्वकमालोचितप्रतिक्रान्तः, गृहीतपुनःपञ्चमहाव्रतो यावदशनं विहाय संस्तार-  
स्थितो भवेत् । एतस्मिन् विशेष दर्शयति—‘आत्मवर्ज’—मित्यादिना, स तृणसस्ता-  
रगत इङ्गितमरणेच्छुः, त्रिधा—त्रिधा=त्रिविधैर्मनोवाक्कायरूपैः कृतकारितानुमति-  
भिश्च आत्मवर्ज=निजशरीरावश्यककार्यवर्जं प्रतीचारम्=अवयवसञ्चारं विजह्यात्=  
परिहरेत्, स्वयमेव च—उद्वर्तनपरिवर्तनं कायव्यापारादिकं करोतीति भावः॥मू० १२॥

मूढुर्मुहुः प्राणिप्राणपरिपालनस्यावश्यकतामुपदर्शयति—‘हरिणसु’ इत्यादि ।

मूलम्—हरिणसु न निर्वञ्जिज्जा, थंडिलं मुणिया सए ॥

विओसिज्ज अणाहारो, पुट्टो तत्थऽहियासए ॥१३॥

छाया—हरि तेषु न निपीदेत्, स्थण्डिलं ज्ञात्वा श्योत् ॥

व्युत्सृज्यानाहारः, स्पृष्टस्तत्राध्यासयेत् ॥ १३ ॥

निरीक्षण, उसका संमार्जन, पापोंकी आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे।  
पांच महाव्रतोंको पुनः ग्रहण करे। अज्ञानादिकको क्रमशः कृश करते हुए  
उसका सर्वथा परिहार करे, और ग्रामादिकसे घासकी याचना कर एकांत  
स्थान में निर्जीव स्थानपर उनका संधारा कर उस पर खमत-खामणा  
कर स्थित हो जावे। इङ्गित मरणका इच्छुक मुनि मन वचन एव कायसे,  
तथा कृत, कारित एवं अनुमोदना से अपने शारीरिक आवश्यक कार्यों  
के सिवाय अन्य-अवयवों के संचार करनेरूप प्रतीचारका परिहार कर  
देवे। उद्वर्तन-परिवर्तनरूप कायव्यापारादिक यह कर सकता है ॥१२॥

सूत्रकार बारबार प्राणियों के प्राणोंकी रक्षाकी आवश्यकता प्रकट  
करते हुए सूत्र कहते हैं—‘हरिणसु’ इत्यादि ।

निरीक्षण, तेलु संमार्जन, पापोंकी आलोचना तेमल प्रतिक्रमण करी पाच महा-  
व्रतोंके पुनः ग्रहण करे अन्न वगैरे छोड़ करत वन्य अने छेवटे तेनो स पूर्ण  
त्याग करे, अने ग्रामादिकथी घासनी याचना करी ओकान्त स्थानमा, निर्जीव  
स्थान उपर स थारो करी ओ उपर ऐसी प्रभत-भामणा करी स्थिर भनी वन्य-  
इङ्गितमरणके धिच्छिनार मुनि मन वचन अने कायाथी करेला, करथेला, अने  
अनुमोदन आपेला येताना शारीरिक आवश्यक कार्यो सिवाय जीव अवयवोंके  
संचार करवाइए प्रतिक्रमण त्याग करी हे उद्वर्तन-परिवर्तनरूप कायव्याप-  
रादिक ते करी शके छे (१२)

सूत्रकार बारबार प्राणियोंकी रक्षानी आवश्यकता प्रकट करीने  
सूत्र कहे छे—‘हरिणसु’ इत्यादि

१ ‘नि’ पूर्वस्य ‘सद्’ धातो रूपम् ।

टीका—‘अभिक्रामे’—दित्यादि, स मुनिः कायसाधारणायां देहस्यापि सु-  
 मारतया तभिरर्हणार्थम्, अभिक्रामेत्=संस्कारकामिमुखं गच्छत्, तथा प्रतिष्ठा-  
 मेत्=संस्कारकात् पश्चात् गच्छेत्, सङ्कोचयेत्—प्रसारयेत्=इस्तपादादीनां सङ्कोचन  
 प्रसारणं च कुर्यात्, अप्र वाऽपि पूर्वोक्ताभिक्रमणादिकरणेऽपि ‘वा’ शब्दात् सति  
 सामर्थ्ये पादपोषणमनसद्वेत्त्रेऽपि भवेत्तन्=शुष्ककाष्ठत् सर्वक्रियापश्चित  
 एव विज्ञेयः ॥ सू १५ ॥

तथाविधसामर्थ्यांश्चैव यद्विधेय तदाह—‘परिक्रमे’ इत्यादि ।

मूल्म्—परिक्रमे परिक्रिलते, अतुषा चिद्ध अहायप ॥

ठाणेण परिक्रिलते, निसीङ्गजा य अतसो ॥ १६ ॥

आया—परिक्रामेत् परिक्रान्तः, अपवा तिष्ठेद् ययायतः ॥

स्यानेन परिक्रान्तः, निपीदेण अन्तश्चः ॥ १६ ॥

यह मुनि देहके अतिस्तुकुमार होनेके कारण निर्बाह करने के लिये  
 संस्कारक क सन्मुख जा सकता है, वहांसे पीछे लौट कर वापिस भी  
 जा सकता है । अपन हाथ पैर आदि अवयवों को फैला सकता है और  
 उनका संकोच भी कर सकता है । इंगित मरण करने में उद्यत यह साधु  
 इन पूर्वोक्त क्रियाओंको कर सकता है । यदि उसमें शक्ति हो तो पादपो-  
 षणमें जैसे शुष्ककाष्ठ की तरह निष्क्रिय पडा रहता है उसी तरह  
 यह भी इस इंगितमरण में निष्क्रिय हो कर रह सकता है ॥१५॥

इस प्रकारकी शक्ति के अभाव में जो करने योग्य है यह सूत्रकार  
 प्रदर्शित करते हैं—‘परिक्रमे’ इत्यादि ।

ते मुनि देहत्या अति सुकुमार होवाने कारणे जेना चलन-चलन भटे  
 सवास्तनी आनुमान्यु अर्ध शके ते त्यांभी इरी ते पाछा सधारान्त स्थवे  
 आवी शके ते योताना दाह पत्र चरेरे अवयवोने देहानी शके ते जने तेने  
 चकोच पणु इरी शके ते एजित-भरवु इत्याभा डवभी ते साधु आवी पूर्वोक्त  
 क्रियाओ इरी शके ते जे तेनाभां शक्ति होय ते ते पादपोषणमनभां जेम  
 मुहेवां वाऽपि चो न निष्क्रिय पड्या शके ते म ते पणु आ एजितभरवुभा  
 निष्क्रिय यर्ध रही शके ते (१५)

आ प्रकाशनी शक्तिना अभावभा जे इत्या योच्ये ते सूत्रकार तेने  
 प्रदर्शित अतावे ते—परिक्रमे इत्यादि

તિષ્ઠેત્, તથા હિ-સંકોચનોદ્વિગ્નો હસ્તપાદાદ્યવયમં પ્રસારયેત્, તેન શ્રાન્ત આસીદેત્  
 ઇન્દ્રિતપ્રદેશે પરિભ્રમેદ્વા, તથાઽપિ=એમં કુર્વન્નપિ યો મુનિ, અભ્યુદ્યતમરણાદ્ ગિરિ-  
 રિવાઽપકમ્પ્યઃ શરીરમાત્રેણ તુ ચલિત એવ સમાહિતઃ=સમાધિસ્થાપિતચિત્તો ભવેત્  
 સોઽર્હ્યઃ=અનિન્દ્યઃ, આરાધક એવેત્યર્થઃ । સ ભાવતોઽચળ ઇન્દ્રિતપ્રદેશે ગમનાદિકં  
 કર્તુમર્હતીત્યાશયઃ ॥ સૂ૦ ૧૪ ॥

ઉક્તમેવાર્થ પ્રકટયતિ—‘અભિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અભિક્રમે પલિક્રમે, સંકુચણ પસારણ ॥

કાયસાહારણટ્ટાણ, ઇત્થ વાવિ અચેયણો ॥ ૧૫ ॥

છાયા—અભિક્રમેત્ પ્રતિક્રમેત્, સંકોચયેત્પ્રસારયેત્ ॥

કાયસાધારણાર્થાય, અત્ર વાઽપિ અચેતનઃ ॥ ૧૫ ॥

દિક અવયવોં કે સંકોચસે યદિ વહ ઉદ્વિગ્ન ચિત્તવાલા હો જાતા હૈ, તો  
 વહ હસ્તપાદાદિકો ફૈલા સકતા હૈ । લેટેર યદિ વહ ધક જાતા હૈ તો વહ ઉઠ  
 કર બૈઠ ભી સકતા હૈ, ઓર ઇગિતપ્રદેશમૈં ધૂમ ભી સકતા હૈ । ઇસ પ્રકારસે  
 અપની પરિસ્થિતિકો સંભાલતા હુઆ ભી વહ પ્રાપ્ત હુણ મરણસે ચચલ-  
 ચિત્ત નહીં બનતા, પ્રત્યુત પર્વતકે સમાન અડોલ હી રહતા હૈ । કેવલ શરીર  
 સે હી ચલતા હૈ પરન્તુ ગૃહીત સમાધિસે કિ જિસમૈં ઉસને અપના ચિત્ત  
 સ્થાપિત કિયા હૈ ઉસસે ચલિત નહીં હોતા । એસા સાધુ હી અનિન્દ્ય આરાધક  
 હોતા હૈ । ભાવસે અચલ હોકર હી યહ ઇગિત પ્રદેશ મૈં ગમનાદિક કર  
 સકતા હૈ ॥૧૪॥

કથિત અર્થકો હી સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ—‘અભિક્રમે’  
 હત્યાદિ ।

—આર્ત્તધ્યાનથી યુક્ત ન બને હાથ પગના અવયવોના સંકોચથી જો તે ઉદ્વિગ્ન  
 ચિત્તવાળા થઈ બંધ તો તે એને ફેલાવી શકે છે સુતા સુતાં જો તે થાકી બંધ  
 તો તે ઉઠીને બેસી શકે છે અને ઇગિત પ્રદેશમા ફરી શકે છે આ પ્રકારથી  
 પરિસ્થિતિને સંભાળતા છતાં પણ તે પ્રાપ્ત થતા મરણથી અચળ ચિત્તવાળા  
 બનતા નથી, પરંતુ પર્વતની જેમ અડોલ રહે છે કેવળ શરીરથી જ ચાલે છે  
 પરંતુ લીધેલ સમાધિથી કે જેમા તેણે ચિત્ત સ્થાપિત કરેલ છે તેનાથી ચલિત  
 થતા નથી એવા સાધુ જ પ્રશંસા મેળવનાર બને છે ભાવથી અચળ બનીને જ  
 તે ઇગિત પ્રદેશમા ફરી-ફરી શકે છે (૧૪)

કહેવામા આવેલા અર્થને જ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—‘અભિક્રમે’ ઇત્યાદિ.



टीका—‘अभिक्रामे’—वित्यादि, स मुनि कायसाधारणार्थाय देहस्यापि ह्य  
 ह्यमारतया तमिर्षहणार्थम्, अभिक्रामेत्=संस्वारकाभिमुखं गच्छत्, तथा प्रतिक्रामेत्=संस्वारकात्  
 पश्चाद् गच्छेत्, सङ्काषयत्=प्रसारयेत्=इस्तपाद्वादीनां सङ्कोचनं  
 प्रसारणं च ह्यर्थात्, अप्र वाऽपि पूर्वोक्ताभिक्रमणादिकरणेऽपि ‘वा’ शब्दात् सति  
 सामर्थ्ये पादपोषगमनवदश्रेत्रिवमरणेऽपि अचेतन=शुष्ककाष्ठवत् सर्वक्रियावर्जित  
 एव विज्ञेयाः ॥ सू १५ ॥

तथाविषसामर्थ्यात्सर्वत्र यद्विधेयं तदाह—‘परिक्रामे’ इत्यादि ।

सूत्रम्—परिक्रामे परिकिल्लते, अदुवा चिद्ध अहायम् ॥

ठाणेण परिकिल्लते, निसीद्धउजा य अतसो ॥ १६ ॥

छाया—परिक्रामेत् परिक्रान्तः, अथवा तिष्ठेत् यथायतः ॥

स्थानेन परिक्रान्तः, निपीवेश अन्तश्च ॥ १६ ॥

यह मुनि देहके अतिसुकुमार होनेके कारण निर्बाह करने के लिये  
 संस्वारक के सन्मुख जा सकता है, वहांसे पीछे लौट कर वापिस भी  
 जा सकता है । अपने हाथ पैर आदि अवयवों को फैला सकता है और  
 वनका सकोच भी कर सकता है । इंगित मरण करने में उद्यत यह साधु  
 इन पूर्वोक्त क्रियाओंको कर सकता है । यदि उसमें शक्ति हो तो पादपो  
 षगमन में जैसे शुष्ककाष्ठ की तरह निष्क्रिय पडा रहता है उसी तरह  
 यह भी इस इंगितमरण में निष्क्रिय हो कर रह सकता है ॥१५॥

इस प्रकारकी शक्ति के अभाव में जो करने योग्य है वह सूत्रकार  
 प्रदर्शित करते हैं—‘परिक्रामे’ इत्यादि ।

ते मुनि देहत्या अति सुकुमार होवाने कारणे जेना कवन-बलन भाटे  
 सधारणी आनुजालु अर्थ शके छे । तांहीं इरी ते पाछा सधाराना स्थाने  
 आवी शके छे । येताना काय पत्र वजरे अवयवोंने इलाची शके छे अने तेने  
 सकोच पणु करी शके छे । धनित-मरण करवामा कथमी ते साधु आवी पूर्वोक्त  
 क्रियाओं करी शके छे जे तेनाभा शक्ति होय ते ते पादपोषगमनभा जेभ  
 सुकेवां वाक्यांनी जेभ निष्क्रिय पड्या शके छे तेभ ते पणु आ धनितमरणभा  
 निष्क्रिय अर्थ रही शके छे (१५)

आ प्रकारनी शक्तिया अभावभा जे कथा भोअ छे सूत्रकार तेने  
 स्वकीय अत्यावे छे—परिक्रामे इत्यादि

ટીકા—‘ પરિક્રામે ’—દિત્યાદિ, યદા મુનેરુપવિશતઃ શરીરપીડા ભવેત્તદાસ પરિક્રાન્તઃ=શ્રમમુપગતઃ સન્ પરિક્રામેત્=પરિશ્રામ્યેત્ નિયતદેશે સરલગત્યા યાતા-યાતાદીનિ સમાચરેત્ । તત્રાપિ શ્રાન્તશ્ચેત્તદા ક્વિં કુર્યાદિત્યાહ—‘ અથવે ’—ત્યાદિ, અથવા યથાયતઃ=યથાસ્થાપિતશરીરઃ તિષ્ઠેત્, યદિ સ્થાનેન=એકસ્થાનાનસ્થિત્યા પરિક્રાન્તો ભવેત્—યદ્યુપવિષ્ટથેત્ પર્યટ્કુટકુટકાઘાસનાન્તરાણિ કુર્યાત્, ઉત્થિત-શ્ચેદ્ ગમનાગમનાદિકં કુર્યાત્, તતોડપિ ક્રાન્તશ્ચેત્તદા અન્તઃ=અન્તતો નિપોદેચ્ચ=ઉપવિશેત્, તસ્યામવસ્થાયાં પાર્શ્વશાયી દણ્ડાયતિકો લગુડશાયી વા ભૂત્વા યથા-યોગમવતિષ્ઠેતેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ૦ ૧૬ ॥

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘ આસીણે ’ ઇત્યાદિ ।

વૈઠે ૨ મુનિ કો જવ શારીરિક કષ્ટકા અનુભવ હોને લગે ઓર ઉસ દશામેં ઉસે અપના શરીર વખાસા માલૂમ પડને લગે તો વહ નિયમિત પ્રદેશ મેં સરલગતિ સે ગમનાગમન કર સક્તા હૈ । એસા કરતેર મી યદિ થક જાતા હૈ, તો ઉસે એક સ્થાન પર ઠહર જાના ચાહિયે । ઠહરતે સમય યદિ વહ વૈઠ ગયા હૈ, તો વહ પર્યટ્કાસન યા ઉત્કુટ આસન આદિસે વૈઠ સક્તા હૈ, યદિ યહા હી હૈ તો શ્રમ સમાપ્ત હોતે હી વહ ફિરસે ગમના-ગમન કર સક્તા હૈ । ઇસ મેં મી જવ વહ યક જાયે તો વહ અન્તમેં વૈઠ જાવે, ઇસ સમય વહ લેટ મી સક્તા હૈ, દણ્ડ જૈસા હો સક્તા હૈ, તયા વહ અપને હાંચ પૈર આદિ સમસ્ત અવયવોકો ઇચ્છાનુસાર પસાર સક્તા હૈ, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જિસ રૂપસે લેટનેમેં યા વૈઠનેમેં ઉસે સુખ માલૂમ હો વહ ઉસ પ્રકાર સે લેટ સક્તા હૈ અથવા વૈઠ સક્તા હૈ ॥ ૧૬ ॥

ઓર મી—‘ આસીણે ’ ઇત્યાદિ ।

બેઠા બેઠા મુનિને જ્યારે શારીરિક કષ્ટનો અનુભવ થવા લાગે અને એ દશામા તેને યોતાનુ શરીર થાકેલુ માલુમ પડે તો તે નિયમિત પ્રદેશમા સરળ ગતિથી હરી-હરી શકે છે એમ કરતા કરતા પશુ જો તે થાકી જાય તો તેણે એક સ્થાન ઉપર બેસી જવુ જોઈ એ જે સ્થાન ઉપર યોતે બેસી ગયેલ છે ત્યા તે પર્યટ્કાસન અથવા ઉત્કુટ ( ઉકડુ ) આસન વગેરેથી બેસી શકે છે જો ઉભા જ રહે તો શ્રમ લાગતા વળી ફરીથી હરી-હરી શકે છે એ વખતે પશુ જો તે થાકી જાય તો અતે બેસી જાય અને સુખ પશુ શકે છે, લાકડીની માફક ધઈ શકે છે, અને તે યોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવો ઇચ્છાનુસાર ફેરવી શકે છે તાત્પર્ય એ છે કે—જે રીતે સુવા બેસવામા એને સુખ પડે તે પ્રકારે તે સુખ બેસી શકે છે (૧૬)

વધુમા—‘ આસીણે ’ ઇત્યાદિ

मूढम्—आसीनेऽणोलिस मरण, इन्द्रियाणि समीरय ॥

कोलावास समासञ्ज, वित्तह पाउरेसय ॥ १७ ॥

भाषा—आसीनेऽनीदृशं मरणम्, इन्द्रियाणि समीरयत् ॥

कोलावासं समासाच्च, वित्तय प्रादुरेपयेत् ॥ १७ ॥

टीका—'आसीन'—इत्यादि अनीदृशम्=अनन्वहृत्स्य कातरभनवुष्करं मरणम्=इन्द्रिताम्यम् आसीनाः=उपविशन्=स्वीकुचन सादृशमरणकुताध्यवसाय इत्यर्थः, स मुनि इन्द्रियाणि=आभादीनि समीरयेत्=मनोहामनोइच्छद्याविनिषयेषु राग-द्वेषा-करणेन प्रेरयेत्=विषयेभ्य इन्द्रियाणि निवृत्तयेदित्यय । राग-द्वेषयोरसम्बन्धेन स्वत एव तानि स्वविषयेभ्यो निवृत्तानि मन्वन्तीति परमार्थः॥ स एव 'कोलावासं' कोलानां पुगास्यकीटविशेषाणाम् आवास =स्नान, धम्, अन्तपुणसत पीठफलकादिकं समासाच्च=प्राप्य वित्तधम्=अतवाभूत् कोलावासादन्य सर्वथा पुमादिवीषरहित

जिसे कायर जन अंगीकार नहीं कर सकते ऐसे इस इंगित मरण को स्वीकार करनेवाला यह मुनि अपनी भ्रोज आदि इंद्रियोंको मनोह और अमनोह शब्द आदि विषयों में राग और द्वेष नहीं करके उस तर्क से हटा छेबे । विषयों में जब इंद्रियोंका राग और द्वेष नहीं होगा तो वे स्वतः उस ओर से हट जायेंगी । यह मुनि कोलावास-भीतर से जिसे धुनने का लिया है ऐसे पीठ फलकादिको छोड़कर अच्छ मज भूत निच्छिद्र पीठ-फलकादिककी अपने सहारे के निमित्त गवेषणा करे । पुण नामक कीट-विशेषका नाम कोल है, इनका जिसमें स्नान है वह कोलावास है । इससे मिक्ष कि जिसके भीतर धुन न लगा हो जिसमें छिद्र न हो और जिसकी प्रतिछेम्बना आदि क्रिया अच्छी तरह से हो

नेने अत्यन्तभी जन अंगीकार नहीं करी शकता जेवा जे धर्मित-मरणने स्वीकार कसवाणा जे मुनि पेतानी भ्रोज ववेरे धर्मियेने मनोह अने अम नेम शब्द ववेरे विषयोभां राग अने द्वेष नहि करवा जे तरक्षी कटावी छे विषयोभा व्तारे धर्मियेने राग अने द्वेष न होय त्तारे ते अते अ ते तरक्षी करी जस्ये । ते मुनि नेने अतरक्षी पुष्य वावेरे छे जेच पीठ-इलकादिकने छेरी छर् आस मज्जुव छिद्र वजन्या पीठ-इलकादिकने पित्ताना नकारा भाटे जवेपवा करे जे लकायभां केळ हीयतु स्थान न होय तेच छिद्र वजन्या जेनी प्रतिछेम्बना ववेरे क्रिया सारी रीते अर्ध यके जेच

टीका—‘परिक्रामे’—दित्यादि, यदा मुनेरुपविशतः शरीरपीडा भवेत्तदा स परिक्रान्तः=श्रममुपगतः सन् परिक्रामेत्=परिभ्राम्येत् नियतदेशे सरलगत्या याता-यातादीनि समाचरेत् । तत्रापि श्रान्तश्चेत्तदा किं कुर्यादित्याह—‘अथवे’—त्यादि, अथवा यथायतः=यथास्थापितशरीरः तिष्ठेत्, यदि स्थानेन=एकस्थानावस्थित्या परिक्रान्तो भवेत्—यद्युपविष्टश्चेत् पर्यङ्कोत्कुटुकाद्यासनान्तराणि कुर्यात्, उत्थित-श्चेद् गमनागमनादिकं कुर्यात्, ततोऽपि क्लान्तश्चेत्तदा अन्तः=अन्ततो निषीदेच्च= उपविशेत्, तस्यामवस्थायां पार्श्वशायी दण्डायतिको लघुदशायी वा भूत्वा यथा-योगमवतिष्ठेतेति तात्पर्यम् ॥ सू० १६ ॥

अपि चान्यदप्याह—‘आसीणे’ इत्यादि ।

बैठे २ मुनि को जब शारीरिक कष्टका अनुभव होने लगे और उस दशामें उसे अपना शरीर थकासा मालूम पड़ने लगे तो वह नियमित प्रदेश में सरलगति से गमनागमन कर सकता है। ऐसा करते २ भी यदि थक जाता है, तो उसे एक स्थान पर ठहर जाना चाहिये। ठहरते समय यदि वह बैठ गया है, तो वह पर्यङ्कासन या उत्कुट आसन आदिसे बैठ सकता है, यदि खड़ा ही है तो श्रम समाप्त होते ही वह फिरसे गमना-गमन कर सकता है। इस में भी जब वह थक जावे तो वह अन्तमें बैठ जावे, इस समय वह लेट भी सकता है, दण्ड जैसा हो सकता है, तथा वह अपने हाथ पैर आदि समस्त अवयवोंको इच्छानुसार पसार सकता है, तात्पर्य यह है कि—जिस रूपसे लेटनेमें या बैठनेमें उसे सुख मालूम हो वह उस प्रकार से लेट सकता है अथवा बैठ सकता है ॥ १६ ॥

और भी—‘आसीणे’ इत्यादि ।

એકા એકા મુનિને જ્યારે શારીરિક કષ્ટનો અનુભવ થવા લાગે અને એ દશામા તેને પોતાનુ શરીર થાકેલુ માલુમ પડે તો તે નિયમિત પ્રદેશમા સરળ ગતિથી હરી-હરી શકે છે એમ કરતા કરતા પણ એ તે થાકી જાય તો તેણે એક સ્થાન ઉપર એસી જવું જોઈ એ જે સ્થાન ઉપર પોતે એસી ગયેલ છે ત્યા તે પર્યંકાસન અથવા ઉત્કુટ (ઉકડુ) આસન વગેરેથી એસી શકે છે એ ઉભા જ રહે તો શ્રમ લાગતા વળી ફરીથી હરી-હરી શકે છે એ વખતે પણ એ તે થાકી જાય તો અતે એસી જાય અને સુઈ પણ શકે છે, લાકડીની માફક ઘઈ શકે છે, અને તે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવો ઇચ્છાનુસાર ફેરવી શકે છે તાત્પર્ય એ છે કે-જે રીતે સુવા એસવામા એને સુખ પડે તે પ્રકારે તે સુઈ એસી શકે છે (૧૬)

વધુમા—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ.

बधोगाद् दुष्प्रसिद्धितवाग्योगावार्तस्यानादिमनोयोमाभापद्यमादुर्भानिकारणान्  
 मात्मानम् उत्कर्षयेत्=पृथक् कुर्यात् निर्वर्तयेदित्यर्थः । तत्र=इन्द्रितमरणे धृतिसं  
 न्नदुःखोऽप्रतिहर्मदेहः पक्षिणुशुमाभ्यन्सायो वीतरागमोक्षपदार्थसाधस्वरूप-  
 मद्वाप्ररूपणास्पृशनाप्रतिनिविष्टचित्तः 'सर्पस्य कञ्चुक इव शरीरमिदं मम त्याज्य'  
 मित्येवं कृतनिश्चय स मिधुः स्पृशान्=सकलदुःखविशेषान् अभ्यासयेत् 'एते च

उपवेशन और पाश्चपरिबतन आदिकाययोगसे, अशुभ वचनयोगसे  
 एष आत्साध्यान आदि युक्त मनोयोग से जो पापोंकी उत्पत्ति के कारण  
 है उनसे अपने को बह मुनि सबथा दूर रखे ।

इस-इंगितमरण-में धृति एवं संहननसे युक्त साधु, कि जिसके  
 शुभ अभ्यवसाय वचनशील है और वीतराग प्रभु द्वारा  
 प्ररूपित पदार्थों के स्वरूपकी अज्ञा करने में, समकी प्ररूपणा करनेमें और  
 अन्तरग भावसे उनकी स्पृशना करनेमें जिसका चित्त लयलीन हो रहा  
 है, जैसे सर्प अपनी कञ्चुकी (कांचली)को छोड़ विषा करता है-उसके परि-  
 त्याग में उसे किसी भी तरह का संकोच या कष्ट नहीं होता है उसी  
 तरह मुझे भी यह शरीर अवाध्य छोड़ने योग्य है, इस प्रकार से जिसने  
 यह निश्चय कर लिया है समस्त दुःखविशेषोंको सहन करता रहे ।  
 "ये सम्पूर्ण दुःखादिक पौद्गलिक शरीरके ही वाधा करते हैं, धर्मका  
 ममुष्ठान करनेवाले ऐसे मेरा तो ये कुछ भी बिगाड नहीं कर सकते"

तेषां ज्ञेयं ज्ञे इत्यान उपवेशनं ज्ञेयं चान्धैपस्वितं (पक्षु देस्वतु) वजरे  
 मय भोजनी अशुभ वचन भोजनी तेमच आत्साध्यान वजरे मुक्त मनोभोजनी  
 के पापेनी उत्पत्तिनु कारणे उ तेनाधी मुनि पीतानी ज्ञेयने सर्वथा दूर रखे  
 ज्ञे धर्मित भवसुभां धृति ज्ञेयं सङ्गनधी मुक्त के ज्ञेयं शुभ मय  
 तथा वर्धनशील ज्ञे ज्ञेयं वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित पदार्थाना स्वरूपनी  
 मय कस्यामा तेनी प्ररूपणा कस्यामा ज्ञेयं अन्तरग भावधी ज्ञेयनी स्पर्शना  
 कस्यामा ज्ञेयु चित्त लयलीन ज्ञेयं ज्ञेयं ज्ञेयं सर्व पीतानी संशयनी छेदी  
 हे छे-ज्ञेयं पक्षिणुशुमाभ्यन्सायो वीतरागमोक्षपदार्थसाधस्वरूप-  
 मय रीते भारे पक्षु अ शरीर अवरण छे तथा ज्ञेयं ज्ञेयं प्रकारने ज्ञेयं  
 एव निश्चय करी दीपित ज्ञेयं तेना मुनि समस्त दुःखेने ज्ञेयं प्रकारणा अकड वजरे  
 सङ्गन कस्या रहे " ज्ञेयं सम्पूर्ण दुःखादिक पौद्गलिक शरीरने ज्ञेयं वाधा करे छे-  
 धर्मनु अमुष्ठान कस्यावाण्य भास ज्ञेयनु ते ज्ञेयं ज्ञेयं पक्षु ज्ञेयानी सङ्गनाना

પ્રાદુરેષયેત્=પ્રકટં પ્રતિલેખનયોગ્યં છિદ્રવર્જિત પીઠફલકાદિકમવદ્દમ્બનાર્થમન્વે-  
પયેત્ ॥ ૧૭ ॥

કોલાવાસયુક્તપીઠફલકાદિવર્જને હેતુમાહ-‘જઓ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-જઓ વજ્જં સમુપ્પજ્જે, ન તત્થ અવલંબણ ॥

તઓ ઉક્કસે અપ્પાણં, ફાસે તત્થહિયાસણ ॥૧૮॥

છાયા--યતો વજ્જં સમુત્પદ્ધેત્, ન તત્થાવલમ્બેત્ ॥

તત ઉત્કર્ષયેદાત્માન, સ્પર્શસ્તિગ્રાહ્યાસયેત્ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા--‘યત’-ઇત્યાદિ, યત:=યસ્માત્ કોલાવાસાદિયુક્તપીઠફલકાદિવદ્-  
નાત્ વજ્જમ્=વજ્જમિવ ગુરુત્વાદ્ જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મ, યદ્વા-‘અવઘ’-મિતિચ્છાયા,  
અવઘ=પાપ સમુત્પદ્ધેત્=જાયેત, તત્ત્ર=તાદૃશે ઘુણક્ષતપીઠફલકાદી ન અવલમ્બેત્=  
અવદ્દમ્બનાદિક્રિયા નૈવ કુર્યાત્, તત:=તસ્માદ્ ઉત્થાનોપવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિકા-

સક્તી હો એસે પીઠ-ફલકાદિક કો હી વહ સાધુ અપને ઉપયોગ મેં લા  
સકતા હૈ, ઇસસે ભિન્ન કોલાવાસયુક્ત સછિદ્રકો નહીં ॥૧૭॥

પૂર્વોક્ત પ્રકારકે પીઠફલકાદિક ઉપયોગમેં ક્યોં નહીં લાના ચાહિયે?  
ક્યોં ઇનકા પરિહાર કરના ચાહિયે? ઇસ વિષયમેં કારણ વતાતે હુણ સૂત્ર-  
કાર કહતે હૈ--‘જઓ’ ઇત્યાદિ ।

કોલાવાસયુક્ત પીઠ-ફલકાદિકકો અપને ઉપયોગ મેં લાનેસે કઠોર  
વજ્જકી તરહ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપકા ઉસ સાધુકે વંધ  
હોતા હૈ, અર્થાત્-ઘુને પીઠ ફલકાદિકકા સહારા લેને સે સાધુ જ્ઞાનાવર-  
ણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપોંકા સંચય કરનેવાલા હોતા હૈ, ઇસલિયે  
ઉસકા ઉસે અવદ્દમ્બ-સહારા આદિ નહીં લેના ચાહિયે, ઇવ ઉત્થાન,

પીઠ-ફલકાદિકને જ તે સાધુ પોતાના ઉપયોગમા લઈ શકે છે તેનાથી ભિન્ન એટલે  
ઠીકાએ પાડેલા છિદ્રવાળા નહીં (૧૭)

ઠીકાએ પાડેલા છિદ્રવાળા લાકડાના પાટીયાનો ઉપયોગ પીઠ માટે કેમ ન  
લેવાય? એનો શા માટે પરિહાર કરવો જોઈ એ? આ વિષયમા કારણ બનાવતા  
સૂત્રકાર કહે છે--‘જઓ’ ઇત્યાદિ

ઠીકાએ કોતરેલા કે તેમા વાસ કરેલ પીઠ-ફલકાદિકને પોતાના ઉપયો-  
ગમા લેવાથી વજ્જના જેવા કઠોર જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંનો, અથવા  
‘અવઘ’-પાપનો બંધ થાય છે અદરથી ઠોડાઈ ગયેલા એવા  
લાકડાના પીઠ-ફલકાદિકનો આશરો લેવાથી સાધુ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંના  
અથવા પાપોંના સંચય કરવાવાળા બને છે, આ માટે તેનો સહારો સાધુએ ન

पूर्वोक्तविधिना पादपोषगमनविधिम् अनुपालयेत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि—सक-  
 लरोग्यापारनिरोधेऽपि उत्तप्यमानश्चरीरो मूच्छन् शृगाल—गृध्र—पिपीलिकादिभि-  
 र्यस्यमाजमांसशोणितः मारणान्तिष्ठसमुदात्तमाप्तो वा महासस्वतया तेनापि  
 ततोऽप्यस्त्वस्मन् स्थानात्—द्रव्यत्—संस्तारकस्थानात्, माषतः—शुभाष्यषसायात्  
 नापि—नैव व्युत्क्रमेत्—चलेत्, शृगालादिमक्षितमांसशोणितोऽपि तस्मात्स्थानादन्यत्र  
 नै मन्त्रेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोषगमनस्याधमत्स्य प्रदर्शयन् तद्विधिमाह—‘अयं’ इत्यादि ।

मूष्म्—अय से उत्तमे धम्मे, पुत्रद्वान्त्स पग्गह् ॥

अचिर पडिलेहिता, विहारे चिद्ध माहणे ॥ २० ॥

छाया—स उत्तमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥

अचिरं मस्युपेक्ष्य, विहारेचिष्टेन्माहनः ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोषगमनकी विधिका पालन  
 करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल  
 पिपीलिका और गृध्र आदि मांसशोणितमक्षी जीवों द्वारा अपने  
 शरीरका मांस और शोणित खाये जाने पर भी अखिलशरीर नहीं  
 होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा  
 मरणान्तिकसमुदात्त प्राप्त यह भिक्षु महासस्व—बलविशिष्ट होनेसे  
 ऐसी हालतमें भी उससे अखिल होता हुआ द्रव्यसे संस्तारक-  
 स्थानसे और माषसे—शुभ अध्यषसाय से विचलित नहीं होता है,  
 अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित खाये जानेपर  
 भी यह भिक्षु समाधिस्थानसे दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोषगमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिका  
 प्रदर्शन करते हैं—‘अयं से’ इत्यादि ।

जन्मानी विहित पादन करे छे ते मुनि पोताना शरीरना भोक्तव्यो तस्म विरक्त  
 जनी सिद्ध चार शीघ्रण वनेरे मांसरक्तलक्षक लये दारा पोताना शरी  
 र्त्स मांस जने होकी जवाता छत्ता पणु अहित जनता नथी—अथ पणु  
 कथने अनुभव इत्या नथी जने भूत्सु ज्ञापतां सुधी पणु ते भिक्षु महासत्व  
 पणुविशिष्ट होवाधी जेवी कालतना पणु जेवी अखलित जनी द्रव्यधी सहायना  
 स्थानधी जने आवधी शुभ जन्मवत्तावधी अहित कता नथी. अर्थात्—शीघ्रण  
 वनेरे द्वारा पोताना शरीरना मांस—होकी जवाया छत्ता पणु ते भिक्षु समाधि  
 स्थानधी पीब्य स्थणे जता नथी. (१६)

पादपोषगमनमा उत्तमता ज्ञापयतां सूत्रकार जेनी विधि कहे छे—‘अयं से’ इत्यादि.

સ્પર્શાઃ શરીરમેવામિભવન્તિ ન તુ માં ધર્માનુષ્ઠાયિન '—મિતિ વિચિન્ત્ય સર્વદુઃસ્વેદનાસહનશીલો ભવેદિત્યાશયઃ ॥ મુ૦ ॥ ૧૮ ॥

— ઇન્દ્રિત્તમરણાધિકારઃ પ્રોક્તઃ, ઇદાંની પાદપોપગમનમુપલક્ષ્ય દર્શયતિ—'અયં'ઇત્યાદિ મૂલ્ય—અયં ચાયતતરે સિયા, જો એવમણુપાલય ॥

સવ્વગાયનિરોહેઽપિ, ઠાણાઓ ન વિડબ્ધમે ॥ ૧૯ ॥

છાયા—અયં ચાયતતરઃ સ્યાદ્, ય એવમણુપાલયેત્ ॥

સર્વગાત્રનિરોધેઽપિ, સ્થાનાન્ન વ્યુદ્ભ્રમેત્ ॥૧૯॥

ટીકા—'અયં'—મિત્યાદિ, અયં ચ—ચકારસ્ત્વર્થે, અનુપદવક્ષ્યમાણઃ પાદપોગમન-વિધિઃ, આયતતરઃ=પૂર્વોક્તમક્તપરિજ્ઞિતમરણાપેક્ષયા શ્રેષ્ઠતરઃ, સ્યાત્=ભવેત્, અસ્તીત્યર્થઃ એતસ્મિન્નપિ મરણે પ્રવ્રજ્યા—સંલેખનાદિકમિન્દ્રિતમરણવિધિવદેવ સર્વે બોધ્યમ્ । કિમેતેન પ્રકૃતે સમાયાતમિત્યાદ—'ય એવં'—મિત્યાદિ, યઃ મુનિઃ, એવં=

इस प्रकार विचार कर वह आये हुए सप्तस्त दुःखजन्यवेदनाओंको सहन करने का स्वभाववाला बने ॥१८॥

यहां तक इंगितमरणका अधिकार कहा। अब यहांसे आगे पादपोपगमन संधारेका प्रकरण प्रारंभ होता है—'अयं' इत्यादि।

इस सूत्रमें "च" यह शब्द "तु" के अर्थमें आया है। यह पादपोपगमन संधाराकी विधि, कि जो अभी कही जानेवाली है वह पूर्वमें कथित भक्तपरिज्ञा और इंगितमरणकी अपेक्षासे श्रेष्ठतर है। इस मरणमें भी प्रव्रज्याग्रहण, संलेखना आदिका धारण, यह सब विधि इंगितमरणकी विधिभी तरह ही समझना चाहिये। इस कथन से प्रकृत कथनमें क्या बात आई? इसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—

नथी " आ પ્રકરનો વિચાર કરી તે આવેલી સપ્તસ્ત દુઃખજન્ય વેદનાઓને સહન કરવાના સ્વભાવવાળા બને (૧૮)

અહિ સુધી ઇંગિત મરણનો અધિકાર કહ્યો, હવે આગળ પાદપોપગમન સંધારાના પ્રકરણનો પ્રારંભ થાય છે—'અયં' ઇત્યાદિ

આ સૂત્રમાં "ચ" એ શબ્દ "તુ" ના અર્થમાં આવેલ છે એ પાદપોપગમન સંધારાની વિધિ કે જે હવે કહેવામાં આવશે તે અગાઉ કહેવામાં આવેલ ભક્તપરિજ્ઞા અને ઇંગિતમરણની અપેક્ષાથી શ્રેષ્ઠતર છે એ મરણમાં પણ પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ, સંલેખના વગેરેનું ધારણ, આ બધી વિધિ ઇંગિતમરણની વિધિની માફકજ સમજવી આ કથનથી પ્રકૃત કથનમાં કઈ વાત આવી? આનો ઉત્તર આપતા સૂત્રકાર કહે છે કે—જે મુનિ અગાઉની વિધિ પ્રમાણે પાદપોપ-



पूर्वोक्तविधिना पादपोषणमनविधिम् अनुपालयत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि—सक  
 ष्ठीररिष्यापारनिरोधेऽपि उच्यमानशरीरो मूर्च्छेन शृगाल—शूत्र—पिपीलिकादिभि-  
 र्मांसमाजमांसशोभित मारणान्तिफसमुद्घातप्राप्तो वा महासस्वतया तेनापि  
 ततोऽप्यस्त्वन्नं स्थानात्—द्रव्यत्—सस्तारकस्थानात्, भाषतः—शुमाध्यवसायात्  
 नापि—नैव व्युद्भ्रमत्—चलेत्, शृगालादिमक्षितमांसशोणिताऽपि तस्मात्स्थानादन्वय  
 नैव गच्छेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोषणमनस्याचमत्प्र प्रदर्शयन् तद्विधिमाह—‘अयं’ इत्यादि ।

मूर्च्छ—अय से उत्तमे धम्मे, पुष्टद्वान्णस्त पगगह ॥

अधिर पडिलेहिता, विहरे चिद्ध माहणे ॥ २० ॥

दाया—स उचमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥

अधिरं प्रत्युपेक्ष्य, विहरेचिष्टेन्माहन ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोषणमनकी विधिका पालन  
 करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल  
 पिपीलिका और शूत्र आदि मांसशोणितमक्षी जीवों द्वारा अपने  
 शरीरका मांस और शोणित स्त्राये जाने पर भी चञ्चितशरीर नहीं  
 होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा  
 मरणान्तिकसमुद्घात प्राप्त यह भिक्षु महासस्व—फलविशिष्ट होनेसे  
 ऐसी हान्तमें भी उससे अचलित होता हुआ द्रव्यसे सस्तारक-  
 स्थानसे और भाषसे—शुभ अध्यवसाय से विचलित नहीं होता है,  
 अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित स्त्राये जानेपर  
 भी यह भिक्षु समाधिस्थानसे दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोषणमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिका  
 प्रदर्शन करते हैं—‘अयं से’ इत्यादि ।

जमान्ती विधिनु पालन करे छे ते मुनि पोताना शरीरना मोक्षणे तदन विश्रव  
 जनी सिद्ध, वाध, शीघ्राण वनेरे मांसशकतकषक छये द्वारा पोताना शरी  
 रनु भास जाने दोकी जवावा छता पणु अचित जनता नधी—कत पणु  
 कथने अनुभव कस्त नधी जने मरुतु जवावा सुधी पणु ते सिद्धु महासस्व  
 फलविशिष्ट दोवाधी जेवी कालतमां पणु जेधी अनचित जनी द्रव्यधी सवाधाना  
 स्थानधी जने जावधी शुभ अध्यवसायधी अचित कता नधी. अर्थात्—शीघ्राण  
 वनेरे द्वारा पोताना शरीरना मांस—दोकी जवावा छता पणु ते सिद्धु समाधि  
 स्थानधी जीव स्थये कता नधी. (१६)

पादपोषणमनमां उचमता जवावा सूत्रकार जेनी विधि कहे छे—‘अयं से’ इत्यादि.

ટીકા—‘અય’—મિત્યાદિ, અયં પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટઃ પાદપોપગમનમરણવિધિઃ સઃ ધર્મઃ, યતઃ ‘પૂર્વસ્થાનસ્ય’ ઇતિ પશ્ચમ્યર્થે પઠી, તેન—પૂર્વસ્થાનાત્=મક્તપરિગ્નિત-મરણરૂપાત્ પ્રગ્રહઃ=શ્રેષ્ઠઃ, અત એવ સ ઉત્તમો ધર્મોઽસ્તિ । ઇગ્નિતમરણે કાયપરિપાલનાનુમતિરભિહિતા, અત્ર ચ તત્પરિસ્પન્દનમપિ ન કૃત્વન્યમ્ । છિન્નમૂલપાદપો યથા ચેષ્ટાવર્જિતઃ ક્રિયાવર્જિતો દલ્ભમાનશ્ચિદ્યમાનો વિપમપતિતઃ સમપતિતોઽપિ વા યથૈવાવતિષ્ઠતે ન તુ તસ્માત્ સ્થાનાત્ સ્થાનાન્તરં ગચ્છતિ, તથૈવ મુનિરપિ સતિ-

યહ પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટ પાદપોગમન મરણકી વિધિ પ્રવર્તમેં પ્રતિપાદિત મક્ત પરિજ્ઞા ઓર ઇગિતમરણરૂપ પૂર્વસ્થાન સે શ્રેષ્ઠ હૈ, ડસલિવે યહ ઉત્તમ ધર્મ હૈ । ઇગિતમરણ મેં શરીરકા પરિપાલન ઓર ઉસમેં અનુમતિ કહી ગઈ હૈ । અથવા ઇગિતમરણ પાલનેવાલા સાધુ અપને શરીરકી પાલનાનિમિત્ત દૂસરે સાધુઓંકો અનુમતિ દે સકતા હૈ, પરન્તુ ઇસ મરણમેં તો વહ મરણકર્તા સાધુ અપને શરીરકા પરિસ્પન્દન-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાકા મી સર્વથા પરિત્યાગી હો જાતા હૈ । જિસકા મૂલ છિન્ન હૈ, એસા ઉલ્ખડા હુઆ વૃક્ષ જિસ પ્રકાર સ્વયં ચેષ્ટાસે રહિત હોતા હૈ—ક્રિયાસે શૂન્ય વન જાતા હૈ, યાહે વહ કાટ દિયા જાય, યાહે વહ જલા દિયા જાય, યાહે સમસ્થાન પર પડે અથવા વિપમસ્થાનપર પડે કહી મી પડે જૈસાકા તૈસા પડા રહતા હૈ, નિશ્ચેષ્ટ રહતા હૈ—ઉસ સ્થાનસે એક રતીંબર મી આગે નહી ચલતા હૈ, ઇસી પ્રકાર ઇસ મરણકા ધારક મુનિ મી માના ગયા હૈ—યહ મી દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓંસે શૂન્ય રહતા હૈ । ઇસી વિષયકો સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરતે

આ પાદપોપગમન મરણની વિધિ પ્રથમ કહેવાયેલ ભકતપરિજ્ઞા અને ઇગિત મરણથી શ્રેષ્ઠ છે, આ કારણે તે ઉત્તમ ધર્મ છે ઇગિતમરણમા શરીરતુ પરિપાલન કરવાની અનુમતિ અપાયેલ છે અથવા—ઇગિતમરણ પાળવાવાળા સાધુ પોતાના શરીરની પાલનાનિમિત્ત બીજા સાધુએને અનુમતિ આપી શકે છે, પરતુ આ મરણમા તો મરણ સ્વીકારનાર સાધુ પોતાના શરીરના પરિસ્પન્દન-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાને પણ સંપૂર્ણ પણે પરિત્યાગી બની બંધ છે જેના મુળ તુટી ગયા એવુ ઉખડી ગયેલુ વૃક્ષ જે રાતે સ્વયં ચેષ્ટાથી રહિત બને છે—ક્રિયાથી શૂન્ય થઈ બંધ છે—ચાહે તેને કાપી નાખવામા આવે ચાહે બાળી નાખવામા આવે, ચાહે સમસ્થાન પર પડે—ચાહે વિપમસ્થાન પર પડે, ગમે ત્યા પડે જેમને તેમ પડી રહે છે, નિશ્ચેષ્ટ રહે છે—જે સ્થાને પડયુ હોય ત્યાથી એક દોરો પણ આગળ વધી શકતુ નથી આજ પ્રમાણે આ મરણને ધારણ કરનાર મુનિ માનવામા આવેલ છે એ દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓથી શૂન્ય રહે છે, આ વિષયને

प्लेत् । एतदेव स्पष्टपति—‘अचिर’—मित्यादि, माह्नः=मुनिः अचिरं=शीघ्रं प्रत्यु-  
पेक्ष्य=उत्स्वान्तं प्रतिष्ठिस्य तत्र विहरेत्=पादपोपगमनमाचरत् । पादपोपगमनप्रस-  
ङ्गेन तत्र विहारस्तद्विधिपरिपालनरूपः कथितः । अथ स्थानान्तरगमनं निवेद्यपितु  
माह—‘विष्ट’—दिति, सर्वगान्निराधेऽपि स्थानान्तरगमनान्निवृत्तः सन् छिन्नपादप-  
द् विष्टेत् ॥२०॥

किञ्च—‘अचिरं’ इत्यादि ।

मूळम्—अचित्त तु समासञ्ज, ठावय् तस्य अप्यग ॥

बोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा ॥ २१ ॥

छाया—अचिरं तु समासाय, स्थापयत्प्रारव्यकम् ॥

प्युत्सुजेत्सर्वज्ञः कायं, न मे देहे परीपहा ॥२१॥

है—इस मरणको धारण करनकी भाषनाबाला मुनि शीघ्र उस स्थानकी  
प्रतिष्ठेस्सना कर पादपोपगमन सधारा धारण करे । “विहरेत्” यह  
क्रियापद पादपोपगमनके प्रकरणक सब धसे उसकी विधिके परिपालन  
करनेरूप विहारका कथन करता है, अर्थात् मुनि पादपोपगमन संधार  
का धारण उसकी विधिके अनुसार ही करे । इस संधारेमें मुनि एकस्थान  
से दूसरे स्थानमें नहीं जा सकता है, इस बातको सूत्रकार “विष्ट माहणे”  
इस सूत्रांशसे प्रदर्शित करते हैं, यह मुनि समस्त शारीरिक  
क्रियामोंके निरोध होनेसे छिन्नवृक्षकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह  
जानेरूप क्रियाका सर्वथा परिहारी होता है ॥२०॥

और भी—‘अचित्त तु’ इत्यादि ।

सूत्रकार स्पष्ट करे छे—आवा मरणने धारण करवानी भाषनाबाला मुनि उत्सुकपति के  
स्थानकी प्रतिष्ठेस्सना करी पादपोपगमन सधारा धारण करे विहरेत् अथ क्रियापद  
पादपोपगमन प्रकरणक सब धसी जेनी विधितु परिपालन करवाइय विहारेत्  
कथन करे छे अर्थात्—मुनि पादपोपगमन सधारा जेनी विधि अनुसार न धारण  
करे जा सधाराभां मुनि जेठ स्थानकी नीब स्थान उपर लठ शक्य नहीं  
अथ बातने सूत्रकार विष्ट माहणे” अथ सूत्रांशकी प्रदर्शित करे छे ते मुनि  
समस्त शारीरिक क्रियाजोने निरोध होवानी पठेता वृक्षकी भाइके जेठ जगहकी  
नीब जगहके क्या रूप क्रिया सबथा परिहारी होय छे (२०)

इसे पद्य— अचित्त तु’ इत्यादि

टीका—‘अचित्त’—मित्यादि. स मुनिः, अचित्तम्=प्राणिशून्यं प्रासुक स्थण्डिलं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मक=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः परिहृतचतुर्विधाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितप्रत्युपेक्षणादिपरिकर्मा सन् सर्वशः=सर्वभावेन कार्यं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि तं शरीरपरीपदोपसर्गा अभिभवेद्युस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयेदित्याह—‘न मे’ इत्यादिना, मे=मम देहे=शरीरे परीपहाः तत्र समुत्पन्नाः—अनुकूल—प्रतिकूला न सन्ति, यतो देहोऽपि मदीयो नास्ति कथं तत्सम्बन्धिनः परीपहा मामभिभवेयुः, तद्विहितवेदनाया अननुभवादित्याशयः ॥२१॥

वह मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्तकर वहां अपनेको स्थापित करे, अर्थात् वहां ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परित्यागी एवं पर्वतके समान अचल वह साधु उस भूमिका समार्जन आदि परिकर्म कर उस पर अपना घासका संथारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त विधि कर वह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड़ देवे। उस समय यदि उसे परीपह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको, चित्तमें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि “देहे परीपहाः” ये अनुकूल और प्रतिकूल परीपह आदि देहमें हैं “न मे” मेरी आत्तामें नहीं है, जब देह ही मेरा नहीं है तो फिर उस सबंधी ये परीपह आदि मुझे दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकने हैं? क्यों कि इनसे उत्पन्न वेदनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

ते मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त करी त्या पोताने स्थापित करे, अर्थात् त्या रोकाली जग्य चार प्रकारना आहारना परित्यागी अने पर्वत समान अचल ते साधुअये भूमि साक्षर करी जेना उपर घासना स धार करे, आ रीते जधी विधि पूछी कर्था पछी ते साधु सर्वभावधी शरीरनु ममत्व छोडी दे अे समये कदाच तेने परिषुड अने उपसर्ग उपद्रव करे तो तेने चित्तमा आ प्रकारना विचारधी सहन करे के ‘देहे परिपहा’ अ अनुकूल अने प्रतिकूल परिषुड वगेरे देहमा छे “न मे” भारी आत्तामा नधी, ज्यारे आ देह न भारी नधी तो पछी ते सजधी आ परिषुड वगेरे मने उपद्रवित अथवा दुःखी पछु केम करी शके? केमके आनाधी उत्पन्न वेदनाने मने तो केम अनुभव न नधी थतो (२१)

ते परीषदा क्रियत्कात्मध्यासनीयाः? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘जाव-  
ज्जीवं’ इत्यादि ।

मूत्र्—जावज्जीवं परीसहा, उवसग्गा इति सखया ॥

सवुडे देहमेवाय, इयपझेऽहियासय ॥ २२ ॥

जाया—यावज्जीवं परीषदा,—उपसर्गा इति संख्याय ॥

संवृतो देहमेवाय, इतिप्रज्ञोऽध्यासयेत् ॥२२॥

टीका—‘यावज्जीवं’—मित्यादि, परीषदा उपसर्गाश्च यावज्जीव्यं—जीवनपर्यन्तं  
पथा स्यात्तथा सवनीयाः सन्ति, इति—एवं संख्याय=निमित्त्य स मुनिः देहमेवाय  
ध्यायपरित्यागार्थं संवृतः—कायाविसकलध्यापारनिवृत्तः इतिप्रज्ञः—पादपोषगमनसमु-  
चितविधिपरिज्ञानकुशलः, अध्यासयत्—सर्वं परीषदोपसर्गादिकमुपनतमस्तिहेतुः ॥२२॥

एतादृशं मिथुमुपसृत्य रामाविस्तं यदि निमन्त्रयेत्तन्निषेधायाह—‘ मन्त्रेसु ’  
इत्यादि ।

साधुको ये परीषद् कितने समय तक सहन करना चाहिये ? इस  
प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं—“ जावज्जीवं ” इत्यादि ।

“ जिस तरहसे वने उस तरहसे परीषद् और उपसर्ग साधुको  
जीवनपर्यन्त सहन करनेयाग्य हैं ” ऐसा विचार कर मुनि शरीरको  
छोड़नेके लिये कायाविके सकल ध्यापारोंसे निवृत्त होता हुआ, तथा पा-  
दपोषगमन संधारेकी उचित विधिके परिज्ञानमें कुशल बना हुआ  
जाय हुए परीषद् और उपसर्गादिकोंको सहन करे ॥ २२ ॥

ऐसे विशिष्ट तपस्वी मुनिको देख कर यदि राजा बगैरह उसे  
धार्मिकित कर तो इसके नियमके लिय कहते हैं—‘ मन्त्रेसु ’ इत्यादि ।

साधुको क्या परिषद देखा समय मुभी सहन करवे कोठको? आ  
प्रश्नकी उत्तराभां सूत्रकार कहे थे— जावज्जीवं इत्यादि.

“ जावज्जीवं एवे त्वांमुभी पत्तिदं अने उपसर्गं साधुको जेभ वने तेभ  
सहन करवा बहरी छे ” आवे विचार करी ते मुनि शरीरने छेड़ा भाटे कया  
रिना इरेक व्यवस्थेधी निवृत्त बत्ता अने पादपोषगमन संधारकी उचित  
विधिना परिज्ञानभां क व्यवधीन जनवा के हांथ परिषद अने उपसर्गादिके आवे  
वेने सहन करे (२२)

जेवा विशिष्ट तपस्वी मुनिने लेख कथय सन वनेरे जेने आभ तपु आवे  
वे जेना नियम भाटे सूत्रकार कहे थे— मन्त्रेसु इत्यादि.

टीका—‘अचित्त’—मित्यादि. स मुनिः, अचित्तम्=प्राणिशून्यं प्रासुकं स्थण्डिलं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मकं=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः परिहृतचतुर्विधाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितप्रत्युपेक्षणादिपरिकर्मा सन् सर्वशः=सर्वभावेन कायं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि तं शरीरपरीपहोपसर्गा अभिभवेयुस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयेदित्याह—‘न मे’ इत्यादिना, मे=मम देहे=शरीरे परीपहाः तत्र समुत्पन्नाः—अनुकूल-प्रतिकूलान् न सन्ति, यतो देहोऽपि मदीयो नास्ति कथं तत्सम्बन्धिनः परीपहा मामभिभवेयुः, तद्विहितवेदनाया अनुभवादित्याशयः ॥२१॥

वह मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्तकर वहां अपनेको स्थापित करे, अर्थात् वहां ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परित्यागी एव पर्वतके समान अचल वह साधु उस भूमिका समार्जन आदि परिकर्म कर उस पर अपना घासका संथारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त विधि कर वह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड़ देवे। उस समय यदि उसे परीषह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको, चित्तमें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि “देहे परीषहाः” ये अनुकूल और प्रतिकूल परीषह आदि देहमें हैं “न मे” मेरी आत्तामें नहीं है, जब देह हीं मेरा नहीं है तो फिर उस सबंधी ये परीषह आदि मुझे दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकने हैं? क्यों कि इनसे उत्पन्न वेदनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

ते मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त करी त्या पोताने स्थापित करे, अर्थात् त्या देशास्य अन्य थार प्रकारना आहारना परित्यागी अने पर्वत समान अचल ते साधुने भूमि साधुसूक्ष्म करी अने उपर घासनेा संथारे करे, आ रीते जधी विधि पूर्ण करी पछी ते साधु सर्वभावधी शरीरनु ममत्व छोडी दे अे समये कदाच तेने परिषह अने उपसर्ग उपद्रव करे तो तेने चित्तमा आ प्रकारना विचारधी सडन करे के ‘देहे परिषहा’ अ अनुकूल अने प्रतिकूल परिषह वगेरे देहमा छे “न मे” भारी आत्तामा नधी, त्यारे आ देह न भारी नधी तो पछी ते सजधी आ परिषह वगेरे अने उपद्रवित अथवा दुःखी पछु केम करी शके? केमके आनाधी उत्पन्न वेदनानेा अने तो केम अनुभव नधी थतो (२१)

किं चान्यदप्याह—'सासपहिं' इत्यादि ।

सूत्रम्—सासपहिं निमतिज्जा, दिव्यमाय न सहहे ॥

त पडिमुज्ज माहणे, सव्व नूम विहूणिया ॥२४॥

छाया—शास्त्रैर्निमन्त्रयेत्, दिव्यमायां न भ्रषीत ॥

तत्त्वविषुद्वपस्व माहनः, सर्वं न्यं विध्य ॥ २४ ॥

टीका—'शास्त्रै'—रित्यादि, यदि राजादिस्तं मिष्टं शास्त्रैः=यावज्जीवनयाभाष्या पनयोम्यैः, बहुदानादिनाऽप्यपरिहीयमाणैरर्थैर्निमन्त्रयेत् एवं देवादिस्तपः सन्धयितुं शैतलादिना, विरोधच्छया दिव्यदिप्रसामनेन वा निमन्त्रयत्तवा तां दिव्यमायां दनादिषिद्धिप्रपञ्चरूपां स न भ्रषीत=न तत्र भद्रां कुर्यात्, तत्र पृथो भूत्वा न तपः सन्धयेदित्यभिप्रायः । 'यदर्थं घनादिकमन्विष्यते तत् शरीरमेवाऽशास्त्रम्' इति

और भी सूत्रकार प्रकट करते हैं—' सासपहिं ' इत्यादि ।

यदि राजा आदि उस मिष्टके लिये उसके जीवनपर्यन्त, कि जिससे उसकी जीवमयात्राका निर्वाह अच्छी तरहसे हो सके, तथा जो दान करन पर भी कमीकम न हो सके इतने द्रव्य देनेका प्रलोभन दे कर उसे आमंत्रित कर, अथवा कोई देव आदि उसके तपको म्बडित करनेके लिये कौतूहलसे, विरोध की इच्छासे, अथवा दिव्य-सत्त्विके प्रलोभनसे उसे आमंत्रित करे तो यह मुनि उस राजाप्रदत्त प्रलोभनको एवं देवादिदत्त प्रपञ्चरूप उस दिव्य यमत्कारको भद्राकी दृष्टिसे न देखे । उसमें लुब्ध वन कर यह अपने तपको सण्डित न करे । इस प्रकार विचार कर ह माहन ! हे भ्रमण ! तुम समस्त भ्रष्ट कर्मों के दूर करनेमें उस शास्त्रत-यावज्जीव टिकनवाले अर्थको एवं दिव्य मायाको

वधुमा आ सुत्रकार प्रम ० इति छ— सासपहिं ध्रष्यादि

हेअं शब्द वनेरे के मिष्टु भटे जेना एवनसर्वातनी ७नाधी जेनी एवन वात्राने निषोड त्तारी दीते यधं शके तथा दान करवा एतां पणु के कही ज्योपुं न यधं शके जेटहु न्य देवानु प्रदोशन एधं जेने आमंत्रित करे, अथवा हेअं देव वनेरे जेना तपने भक्ति करवा भटे इतुडवधी विशपनी धियाधी म्बधवा दिव्य सिद्धिना प्रदोशनधी जेने आमंत्रण आपे त्तारे जे मुनि आवा शय वरदान प्रदोशनने, तथा देव आदिना प्रपञ्चरूप जेना दिव्य यमत्कारने भद्रानी इधीधी न बुजे, जेनां होगुप वनी ते पावानु तपने भक्ति न करे आ प्रकारने विचार करी दे माहन ! हे भ्रमण ! तपे नमस्त आड भयिने दूर करवानु ते शास्त्रत व्यवए व टिकनार यधने अने दिव्यभयाने अनर्थकारक नमजे

मूलम्—भेउंरसु न रजिज्जा, कामेसु बहुतरेसु वि ॥

इच्छालोभं न सेविज्जा, धुववर्णं सपेहिया ॥ २३ ॥

छाया—भिदुरेषु न रज्येत, कामेषु बहुतरेष्वपि ॥

इच्छालोभं न सेवेत, ध्रुववर्णं सप्रेक्ष्य ॥२३॥

टीका—'भिदुरेषु'—त्यादि, स भिक्षुः=हर्मनिर्जरणपरः बहुतरेष्वपि=बहुविधेष्वपि भिदुरेषु=क्षणभद्रशरेषु कामेषु=शब्दादिनामगुणेषु न रज्येत=न रागगुणगच्छेत्, राजा राजद्विप्रदानेनापि यद्युपनिमन्व्य प्रलोभयेत्तथाऽपि तत्र न समूर्च्छितो भवेदित्यभिप्रायः । किं च—स ध्रुववर्णं,=ध्रुववर्णं=आश्वतथाऽसौ वर्णः=सयमो मोक्षो वा ध्रुववर्णस्त मोक्ष तत्साधनं च सप्रेक्ष्य=समालोच्य इच्छालोभम्=इच्छापूर्वथासौ लोभः=इच्छालोभस्तम् इन्द्रादिसमृद्धिप्राप्त्यभिलाषं न सेवेत="इह लोकाससम्पत्तयो १ परलोकाससम्पत्तयो २ जीवियाससम्पत्तयो ३ मरणाससम्पत्तयो ४ कामभोगाससम्पत्तयो ५" इत्यादिभगवद्वचनादिहलोकपरलोकादिवाञ्छा निषेधवेदित्याशयः ॥ २३ ॥

कर्मोंकी निर्जरा करनेमें तत्पर वह भिक्षु अनेक प्रकारके भी क्षण-भंगुर ऐसे शब्दादिक कामगुणों में रागी न बने, अतः कोई राजा उस मुनिको राजऋद्धिके प्रदान करनेका प्रलोभन देकर भी यदि अपने यहां आमंत्रित करता है तो भी वह मुनि उसमें मूर्च्छित न बने। संयम अथवा मोक्षरूप ध्रुववर्णका एव उसके साधनोका विचार कर वह इच्छारूप लोभ-इन्द्रादिककी ऋद्धिकी प्राप्तिरूप अभिलाषा—का सेवन न करे—उसके वशवर्ती न बने। अपि तु—“इह लोकाससम्पत्तयो १, परलोकाससम्पत्तयो २, जीवियाससम्पत्तयो ३, मरणाससम्पत्तयो ४, कामभोगाससम्पत्तयो ५” इत्यादि भगवान्के वचनसे इस लोक और परलोक आदिकी वाञ्छाका सूत्र-कारने उसके लिये निषेध किया है, अर्थात् वह परलोक आदिकी कभी भी वाञ्छा न करे ॥ २३ ॥

कर्मोंकी निर्जरा करनेमें तत्पर एव ते भिक्षु अनेक प्रकारका क्षण-भंगुर एव शब्दोंकी लक्षण न इसाथ कदाचि राजा ते साधुने राजऋद्धितु पर आपवानु प्रलोभन आपी आमंत्रण आपे तो पणु ते साधु आवा प्रलोभनमा न इसाथ सयमद्वारा मोक्षरूप ध्रुववर्णने अने तेना साधनोने विचार करी ध्रुववर्णो लोभ-इन्द्रादिककी ऋद्धिकी प्राप्तिरूप अभिलाषा-नु सेवन न करे—अनार्थी न लक्ष्मण, अपितु—“इह लोकाससम्पत्तयो १, परलोकाससम्पत्तयो २, जीवियाससम्पत्तयो ३, मरणाससम्पत्तयो ४, कामभोगाससम्पत्तयो ५” इत्यादि भगवान्के वचनसे आ लोका अने परलोका आदिनी वाञ्छनाने सूत्रकारने अने निषेध करेले छे, अर्थात् ते परलोका आदिनी पणु कही ध्रुववर्ण न करे (२३)



मूर्च्छ-सव्यहोर्हि अमुच्छिद्य, आजकालस्त पारम् ॥

तितित्क्त्वं परम नद्या, विमोहन्नयर हियं ॥ २५ ॥

प्रामा-सर्वाधैरमूर्च्छितः, आयुःकालस्य पारम् ॥

विविधां परमं शास्त्रा, निमोहान्यतर हितम् ॥ २५ ॥

टीका-‘सर्वाधै’-रित्यादि, स सर्वाधै-सर्वे च तेषां: सर्वाधैस्तैः सर्वाधै पञ्चविधैः शब्दादिकामगुणैस्तस्मात्कथनसमूहैर्ना अमूर्च्छितः=असूक्ष्मः, आयुःकालस्य=यावत्कालमायुः संतिष्ठते स आयुःकालस्तस्य ‘पारम्:’-पारम्=आयुःकालपुत्रानां यावन्मात्रं गच्छतीति पारम्: =पूर्वोक्तविधिना पादपोषणमनपरः परिवर्द्धितकल्याणाभ्यवसायवान् निमायुःकालस्यान्तगामी स्यात् । इत्थं पादपोषणमनप्रकारमभिसमाप्य साम्प्रतं सकलमरणानां क्षेत्र-काल-युरुपावस्था मेदात् समानतास्यसंहरण-‘विविधा’-मित्यादि, सः सर्वस्मिन्नपि पूर्वोक्तमरणप्रकारे वि-

समस्त अर्धस्वरूप पांच इन्द्रियों के पांच प्रकारके शब्दादिक काम गुणोंसे, अथवा उनके साधक द्रव्यसमुदायसे अमूर्च्छित, एवं अपनी आयुके समयका पारगामी, जितने काल तक आयु रहती है वह आयु काल है, तथा आयुके पुत्रोंके विनाशका नाम पार है । पूर्वोक्त विधि से पादपोषणमनमें तत्पर तथा परिवर्द्धित कल्याणके अभ्यवसायवाला मुनि अपनी आयुके कालका अन्तगामी होता है । इस प्रकार सूत्रकार पादपोषणमन संघारेका कथन कर अब समस्त मरणोंमें क्षेत्र, काल और पुरुष अवस्थाके मेदसे समानता का उपसंहार करते हुए ‘तितित्क्त्वं’ इत्यादि सूत्रांश कहते हैं-वह मुनि पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा भादि मरणोंके प्रकार-मेदमें अनुकूल और प्रतिकूल परीपह एवं उपसर्गों से

समस्त अर्धस्वरूप पांच इन्द्रियोंका पांच प्रकारका शब्दादिक कामगुणोंसे, अथवा उनके साधक द्रव्यसमुदायसे अमूर्च्छित, एवं अपनी आयुके समयका पारगामी, जितने काल तक आयु रहती है वह आयु काल है, तथा आयुके पुत्रोंके विनाशका नाम पार है । पूर्वोक्त विधि से पादपोषणमनमें तत्पर तथा परिवर्द्धित कल्याणके अभ्यवसायवाला मुनि अपनी आयुके कालका अन्तगामी होता है । इस प्रकार सूत्रकार पादपोषणमन संघारेका कथन कर अब समस्त मरणोंमें क्षेत्र, काल और पुरुष अवस्थाके मेदसे समानता का उपसंहार करते हैं-वह मुनि पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा भादि मरणोंके प्रकार-मेदमें अनुकूल और प्रतिकूल परीपह एवं उपसर्गों से

विचार्य 'माहणे' माहनः 'मा हण मा हण' इत्युपदेशदायको मुनिः तत्-राजादिनिम-  
न्वितमर्थं देवर्द्धिं च प्रतिबुध्य=आत्मकल्याणप्रतिकूलतया विज्ञाय 'सर्वं नूम' सर्वं  
नूमं=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म 'विहूणिया' विधूनयेत्=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्येण दूरी-  
कुर्यात् । 'कर्मनिर्जरार्थमह निष्क्रान्तः' इति विचार्य मुनिः कर्मबन्धनहेतुं राजादि-  
निमन्वितमर्थादिकं ज्ञ-परिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिहरेत्, न तु तत्र  
रज्येदिति भावः । यद्वा- 'पडिबुज्ज' 'विहूणिया' इत्यनयो- 'प्रतिबुध्यस्व' 'विधूय'  
इतिच्छाया, तत्पक्षे-हे माहन=हे मुने ! इद 'सर्वं नूम' सर्वं प्रपञ्च विधूय-निःशेषतः  
परित्यज्य 'त' तत्=आत्मकल्याणहेतु रत्नत्रय प्रतिबुध्यस्व=विजानीहि, तत्समारा-  
धने तत्परो भवेदिति भावः ॥ २४ ॥

अन्यदप्याह—'सर्वद्वेहि' इत्यादि ।

अनर्थकर समझो । तात्पर्य यह कि-शाश्वत अर्थ देनेका प्रलोभन देकर  
निमत्रण-बुलानेकी प्रेरणा-करे उसमें, अथवा देवादिकोंकी मायामें प्रीति  
एव श्रद्धारहित हुआ मुनि 'यह समस्त, मोक्ष और उसके साधनोंसे प्रति-  
कूल है' ऐसा विचार कर उस शाश्वत अर्थमें एवं दिव्य मायामें मूर्च्छित  
न बने । दिव्य मायाका निरीक्षणकर वह मुनि अपने चित्तमें इस प्रकारसे  
विचार करे—'यह सब मेरी तपस्याके प्रतिकूल है, और मेरे तपका खण्डन  
करनेके लिये यह सब आयोजन किया गया है। यदि ऐसी बात न हो तो  
पुरुषोंको दुर्लभ यह बहुत प्रकारका चित्त-द्रव्य ऐसे क्षेत्र, काल, और  
भाव आदिमें कैसे सुलभ हो सकता है । इस लिये मालूम होता है कि  
यह समस्त मृगतृष्णारूप ही है-आभास मात्र है अर्थात् मूलमें कुछ  
मिलता जुलता नहीं है' ॥ २४ ॥

और भी सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—'सर्वद्वेहि' इत्यादि ।

तात्पर्य ये छे डे-राजमा उ थी पहवी आपी अर्थ बोलतु प्रलोभन छे निमत्रणु करे,  
तेमा अथवा देवादिदिकनी मायामा प्रीति अने श्रद्धा न राखतार मुनि 'आ अथु मोक्ष  
तथा अनेना साधनोधी विज्ञानु छे' अने विचार करीने अने अर्थदोभ  
अने दिव्य मायाना प्रलोभनमा न इसाय. दिव्य मायानु निरीक्षणु करी ते  
मुनि पोताना मनमा अने प्रकारने विचार करे डे आ अथु भारी तपस्थायी  
प्रतिकूल छे, अने मारा तपनु अउन कराववा माटे आ मायाजण उली कशर  
रहेल छे, अने अने न होय तो अने साथे आटलु अथु कथरीते अनी शके ?  
आधी मोक्ष छे डे आ अथु मृगतृष्णसमान छे-आभासमात्र छे-वास्तवमा  
कथरथु नथी (२४)

पहूमा सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—'सर्वद्वेहि' इत्यादि

मूत्र-सव्यद्वेहिं अमुच्छिप, आउकालस्स पारय ॥

तितिक्षस्व परम नद्धा, विमोहद्वय र द्वियं ॥ २५ ॥

जामा-सर्वाथैरमूर्च्छितः, आयुःकालस्य पारगः ॥

तितिक्षां परमं ज्ञात्वा, विमोहान्यतर द्वितम् ॥ २५ ॥

टीका—'सर्वाथै'—रित्यादि, स सर्वाथै—सर्वे च तेऽर्थाः सर्वाथैस्तैः सर्वाथैः पञ्चविधैः शब्दादिकामणैस्तत्साधकपनसमूर्ध्वं अमूर्च्छितः=अप्रसूयः, आयुःकालस्य=यावत्कालमायुः संतिष्ठते स आयुःकालस्तस्य 'पारगः'—पारम्=आयुःपुत्रलानां यावन्नाश गच्छतीति पारग=पूर्वोक्तविधिना पादपोपगमनपरः परिवर्द्धितकल्याणायकसापवान् निभायुःकालस्त्वान्तगामी स्यात् । इत्थं पादपोप गमनप्रकारमभिसमाप्य साम्प्रतं सकलमरणानां क्षेत्र-काल-पुरुषावस्था-भेदात् समा स्तासुपसंहारमाह—'तितिक्षा'—मित्यादि सः सर्वस्मिन्पि पूर्वोक्तमरणप्रकारे ति-

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियो क पांच प्रकारके शब्दादिक काम गुणोंसे, अथवा उनके साधक द्रव्यसमुदायसे अमूर्च्छित, एवं अपनी आयुके समयका पारगामी, जितने काल तक आयु रहती है वह आयु काल है, तथा आयुके पुत्रलोक विनाशका नाम पार है । पूर्वोक्त विधि से पादपोपगमनमें तत्पर तथा परिवर्द्धित कल्याणके अभ्यवसायवाला मुनि अपनी आयुके कालका अन्तगामी होता है । इस प्रकार सूत्रकार पादपोपगमन संघारेका कथन कर अब समस्त मरणोंमें क्षेत्र, काल और पुरुष भवस्थाके भेदसे समानता का उपसंहार करते हुए 'तितिक्षस्व' इत्यादि सूत्रांश कहते हैं—यह मुनि पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा आदि मरणोंके प्रकार-भेदमें अनुकूल और प्रतिकूल परीपह एवं उपसर्गों से

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियोना पांच प्रकारना शब्दादिक कामगु-  
णोधी, अथवा जेना साधक द्रव्यसमुदायोधी विरह्य अने पोतानी आयुना  
समयने आयुकार नेटला काज मुधी आयु रहे छे ते आयुकाज छे अने आयुना  
पुत्रलोकना विनाशना नाम पार छे अजग कहेवामां आवेव विधिधी पादपो  
पगमनमा तत्पर तथा परिवर्द्धित कल्याणना अभ्यवसायवाजा मुनि पोताना  
वत्कल्याणा आयुकार होय छे अ प्रकार पादपोपगमन संघारना कथन करी  
सूत्रकार हवे समस्त भव्योभां क्षेत्र काज अने पुरुष-भवस्थाना खेदधी अभा  
नवानो उपसंहार करवा "तितिक्षस्व" इत्यादि सूत्रांश कहे छे—ते मुनि अजग  
कहेवामां आवेव अउपपरिज्ञा अदि भव्योना प्रकार-खेदभां अनुकूल अने

तित्क्षाम्=अनुकूल-प्रतिकूल-परीपहोपसर्गाभिभवजन्यदुःखसहनरूपा परमम्=उत्कृष्ट  
 यथा स्यात्तथा ज्ञात्वा ' विमोहान्यतर ' विगतो मोहोऽज्ञानं येषु तानि विमोहानि,  
 तेषां=पूर्वोक्तानां भक्तपरिज्ञेद्विभरणपादपोपगमनानाम् अन्यतरत्=त्रयाणामन्यतरमं  
 किमप्येक हित=कर्मनिर्जरायाः सर्वत्र समसम्पादकतया सम्यगिष्ट विदधीत । ' इति  
 ब्रवीमी '—त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तप्रकारेणाऽवगन्तव्य इति ॥ सू० २५ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन्नध्ययने लसन्ति च विमोक्षाख्याष्टमे येऽखिला-

स्ते सूच्यन्त इमे क्रमेण विषयाः संक्षेपतस्तान् गृणु ॥

उद्देशे प्रथमे न्यरूपि विरहः पापण्डकैः सद्गते-

स्तेषां सम्मतिहानपूर्वकमथ त्यागस्तपो विद्विषाम् ॥ १ ॥

उत्पन्न दुःखोको सहन करनेरूप तित्क्षामो सर्वोत्तम जानकर पूर्वोक्त इन  
 भक्तपरिज्ञा, इद्विभरण, और पादपोपगमन, इन तीनोंमें से किसी एक  
 को हितकारी समझ कर धारण करे । इन तीनोंमें कर्मोंको निर्जरा सर्वत्र  
 एकसी है । “ इति ब्रवीमि ” इन पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें कथित  
 प्रकारसे जान लेना चाहिये ॥२५॥

इस अध्ययनके विषयोंका उपसंहार पद्योंसे करते हैं—

इस विमोक्ष अध्ययन बीचमें आठ बड़े उद्देश दिये ।

उनमें वर्णित विषयोंका हम थोड़ेमें वर्णन किये ॥

प्रथम उद्देशमें—पहिले—में पाण्डवी जनकी सगतिका परिहार कहा,

उन्हें न समति देना कुछ भी तप भी उनका हेय कहा ॥ १ ॥

प्रतिकूल परीपह और उपसर्गाधी आवेला दुःखोने सहन करवाइप तित्क्षामे  
 सर्वोत्तम लक्ष्मी अगाऊ कडेवायेल अे लकतपरिज्ञा, धिगतभरण, अने पाद  
 पोपगमन, त्रयुभाधी डोळ अेकने हितकारी समल धारण करे आ त्रयुभा  
 कर्मोनी निर्जरा सर्वत्र अेकसरभी छे “ इति ब्रवीमि ” आ पदोने अर्थ  
 अगाठना अध्ययनमा कडेवामा आवेल प्रकार जेयो समजवे लोभअे (२५)

आ अध्ययनना विषयोनी उपसंहार करे छे

आ विमोक्ष नामना प्रकरणमा आठ मोटा उद्देश लरेला छे अेमा  
 वर्णवामा आवेल विषयोनु अहिं सकिस वर्णन करेल छे—

प्रथम उद्देशमा—पाण्डवी भाषुसेनी सगतने त्याग, आवा तप वजरना भाषु-  
 सेने डोळ प्रकारनी समति न आपवी. (१)

शास्त्राऽप्यमुपेतमभवसनं त्याग्यं द्वितीये तथा  
 आहारादिनिषेधने गृह्यते रोपोपशान्त्यै विधिः ॥

कैस्तेनास्थितवपयो स्मरन्मभ्यावातश्चक्रा मुनी  
 पारावारवच्छत्रनिचय धिता तृतीयेऽप्यथाम् ॥ २ ॥

कामासृक्किचोपयातस्मृनाऽभ्यासाभिरेतुं मुने,-  
 सौम्यस्य मुक्तिर्दिशा निगदितारोश्च तृतीये तथा ॥

**द्वितीय उद्देश्यं**—शास्त्रनिषिद्ध अन्नवसनादिक मुनिजनको है कल्प्य नहीं,  
 वनका वृक्षा नहीं छेने पर हो जावे जो रुष्ट कहीं।  
 मुनिबर नहीं छेनेका कारण प्रकट खुलाशा पतलावे,  
 रोपशामनका यह विधान उद्देश्य दूसरा वरशावे ॥ २ ॥

**तृतीय उद्देश्यं**—कंपित मुनिवरके शरीरको, शीतादिक कारणवशासे,  
 देख पने शक्ति गृहस्थका मन मनोजक्ती जागृतिस।  
 शीतादिक मम गात्रकंपने कारण हैं न मनोजविकार,  
 इस प्रकार कह मुनिबर उसकी शंकाका कर दे परिहार ॥ ३ ॥

**चतुर्थ उद्देश्यं**—कामाधीन-चित्त छलनाजन के समीपसे जानेमें,  
 जो असमर्थ पने यह मुनिबर संपन्न भार निमानेमें।  
 धरे भावना-वैहायस अरु गार्धपृष्ठ ये मरण भले,  
 साथे यह तत्काल न बिलमें पर समयसे नहीं मूळे ॥ ४ ॥

**प्रीत्य उद्देश्यं**—शास्त्रमां नेने निषेध करवाना आवेक छे तेवा अन्न, वस्त्र-  
 दिनी मुनिजे अन्न न करवे लेधके आप्ता छिन्नार न देवाधी शुद्धे  
 धायते मुनिजे न देवानु करवु पुढासाधी तेने समन्वयी तेना सुस्थानु  
 यमन करवु लेधके, ते प्रीत्य उद्देश्यमा भवावेक छे (२)

**त्रीत्य उद्देश्यं**—उद्धि वनेरेना करवुधी आपत्ता मुनिवरना शरीरने लेध श का  
 शीत्य अनेक अदृश्यनी शकतु समाधान योग्य समभवुधी करवु लेधके  
 आ त्रीत्य उद्देश्यमा भवावावु छे (३)

**चैथ्य उद्देश्यं**—कामने आधीन अनेक बलना (नी) बननी साथे जवामां अन्न  
 भव अनेक मुनिजन समयने व्यवस्था वैहायस अने गार्धपृष्ठ आ  
 भरवने निज पित्तके स्वीकारी छे परतु समयधी वैशमान छे नकि  
 जेतु चैथ्य उद्देश्यमा कहेवावेक छे (४)

पूर्वाङ्गीकृतसंयमाक्षममुने-ग्लानाद्यवस्थावशात् ,  
 साधीयो मरणं विधानसहित प्रोक्तं तथा पञ्चमे ॥ ३ ॥  
 एकत्वस्य च भावनेन मरणं पष्ठे प्रशस्त कृत,  
 भिक्षुणा प्रतिमा मुनेरभिहिता पाल्यैकमासादिका ॥  
 सामर्थ्यं गलिते तनोर्मुनिवरैराहारसंक्षेपणं,  
 कृत्वा शास्त्रविधानतस्तरुसम स्थेय तथा सप्तमे ॥ ४ ॥  
 चारित्रं चरतो मुनेः कलयतोऽशक्त्या पर सीदतो,  
 देहत्यागविधिस्त्रिधा निगदितः साफल्यनीत्यै जनेः ॥

पचम उद्देशमें—ग्लानादिक हालतमें मुनिवर स्वीकृत संयम पालनमें,  
 हो असमर्थ सविधि वह धारे भक्तपरिज्ञा उस क्षणमें ॥ ५ ॥  
 षष्ठ उद्देशमें—मुनिवरका एकत्व भावनासे है मरण प्रशस्त कहा,  
 रहे सुरक्षित संयम—धन यह निर्मल मनमें भाव गहा ॥ ६ ॥  
 सप्तम उद्देशमें—एकमास आदिक मर्यादा वाली मुनिकी प्रतिमाएँ,  
 मुनिवर पाले टरे न उनसे चाहे आये बाधाएँ ।  
 सयम भार वहन करनेमें शक्तिहीन तन जब जाने,  
 षष्ठ अष्टमादिक तपक्रमसे भोजन कृश करना ठाने ।  
 शास्त्रविहित मर्यादा आफिक तरुसम बन सथार धरे,  
 देहाश्रित समस्त क्रियाओंका वह मुनि परिहार करे ॥ ७ ॥  
 अष्टम उद्देशमें—चिरपालितचारित्र-साधुकी सयम क्रिया न सघती हो,

पायमा उद्देशमा—शेगत्रस्त डालतमा, सयम पाणवामा असमर्थ जनी जय  
 तेवा मुनिजे पोते स्वीकारेल अभिग्रहना पालन माटे लकतपरिज्ञा नामनु  
 मरषु स्वीकारु जेष्ठजे, तेम जतावेव छे (५)

छठ्ठा उद्देशमा—जेकत्वभावनावाणु मुनिनु मरषु प्रशस्त कडेवामा आवेल  
 छे सयम धननु निर्मल मनथी पालन करवानो जाव समजववामा  
 आवेल छे (६)

सातमा उद्देशमा—जेक भासु छे तेथी वधारानी मर्यादावाणु मरषु मुनिजन  
 पाणे, बले गमे तेदली मुसीजतो सडेवी पडे छता अने शक्तिहीन जनी  
 जय ते छता सयमथी जरा पषु पियवित न जने, छट्ट-अकृम आदि  
 तपक्रमथी आडाशदिक जेष्ठ करे, अने शास्त्रनी मर्यादाभा जताव्या प्रमाजे  
 सथारे करी देहनी समस्त क्रियाजाने मुनिजन त्यागी हे (७)

आठमा उद्देशमा—चिरपालथी आरित्रस पन्न साधु वृद्धावस्था छे शेगना कारजे

उदेञ्जऽष्टम इत्यवोचि मुनिमिशारिभरलैषिभिः,  
 सारो ब्राह्मकरोऽनित्तं विजयतां तापोपशान्त्यै नृणाम् ॥ ५ ॥ इति ।  
 ॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देश समाप्तः ॥ ८-८ ॥

॥ इति श्री-विश्वविख्यात-महाशय-प्रसिद्धवाक्क-पञ्चदशमापाकस्मितलक्षित-  
 कलापालापक-प्रसिद्धद्वयपथनैकद्वयनिर्माणक-बादिमानमर्दक-शाह-  
 उग्रपति-कोन्हापुरराजप्रदत्त-“ नैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-  
 कोन्हापुरराजगुरु-पालकप्रचारि-नैनाचार्य-नैनधर्मविधाकर-  
 पूज्य-श्रीघासीलाल-प्रतिनिरपितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
 स्याऽऽधारचिन्तामणिटीकायां विमोक्षाख्यमष्टम-  
 मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

पलविहीन होनेसे इससे, चरमें पीडा जगती हो ।  
 तो वह साधु त्रियिष मरणमे से कोई संभार धरे,  
 जन्म सफल हो जाये उसका भवर कत्र संकलेश टरे ॥ ८ ॥

॥ आठवें अध्यायनका आठवां उद्देशः समाप्त ॥ ८-८ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्यायनकी आधार  
 चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

अशक्त जमी जकेल कोय, अनेतेजु शरीर पीडाभी रीजातु केय त्पारे  
 ते साधु त्रयु भरवनांभी केअ केक भरवु भाटे सभारे करे अने  
 शैताना अन्ने सहेण जन्मवी अवना इशने टणी रे (८)  
 आठमा अध्यायनने आठवां उद्देश समाप्त ॥ ८-८ ॥

आ आचाराङ्गसूत्रना विमोक्ष नामना आठमा अध्यायननी आधार-  
 चिन्तामणि-टीकाने शुद्धशती अनुवाद संपूर्ण ॥ ८ ॥

पूर्वाङ्गीकृतसंयमात्ममुने—गर्वानाद्यवस्थावशात् ,  
 साधीयो मरण विधानसहित प्रोक्त तथा पञ्चमे ॥ ३ ॥  
 एकत्वस्य च भावनेन मरण पण्डे प्रशस्त कृत,  
 भिक्षुणा प्रतिमा मुनेरभिष्टिना पाल्यैकमासादिका ॥  
 सामर्थ्यं गलिते तनोर्मुनिरैराहारसंक्षेपणं,  
 कृत्वा शास्त्रविधानतत्तरुसम स्येय तथा सप्तमे ॥ ४ ॥  
 चारित्रं चरतो मुनेः कल्पतोऽशक्त्या पर सीदतो,  
 देहत्यागविधिस्त्रिधा निगदित. साफल्यनीत्यै जनेः ॥

पंचम उद्देशमें—ग्लानादिक हालतमें मुनिवर स्वीकृत सयम पालनमें,  
 हो असमर्थ सविधि वह धारे भक्तपरिज्ञा उस क्षणमें ॥ ५ ॥  
 षष्ठ उद्देशमें—मुनिवरका एकत्व भावनासे है मरण प्रशस्त कहा,  
 रहे सुरक्षित सयम—धन यह निर्मल मनमें भाव गहा ॥ ६ ॥  
 सप्तम उद्देशमें—एकमास आदिक मर्यादा वाली मुनिकी प्रतिमाएँ,  
 मुनिवर पाले टरे न उनसे चाहे आये बाधाएँ।  
 सयम भार वहन करनेमें शक्तिहीन तन जब जाने,  
 षष्ठ अष्टमादिक तपक्रमसे भोजन कृश करना ठाने।  
 शास्त्रविहित मर्यादा माफिक तरुसम वन संयार धरे,  
 देहाश्रित समस्त क्रियाओंका वह मुनि परिहार करे ॥ ७ ॥  
 अष्टम उद्देशमें—चिरपालितचारित्र—साधुकी सयम क्रिया न सधती हो,

पाथमा उद्देशमा—शैलग्रस्त हालतमा, सयम पाणवामा असमर्थं गन्ती जय  
 तेवा मुनिञ्चे पोते स्वीकारेण अलिग्रहना पालन भाटे लकतपरिज्ञा नामनु  
 भरषु स्वीकारेणु ज्येष्ठे, तेम गतावेण छे (५)

छट्ठा उद्देशमा—अेकत्वभावनावाणु मुनिनु भरषु प्रशस्त कडेवामा आवेल  
 छे सयम धननु निर्माण मनथी पालन करवानो वाव समन्तववामा  
 आवेल छे (६)

सातमा उद्देशमा—अेक मास छे तेथी वधारानी मर्यादावाणु भरषु मुनिजन  
 पाणे, लवे गमे तेटली मुसीमतो सडेवी पडे छता अने शक्तिहीन गनी  
 जय ते छता सयमथी जरा पणु विचलित न गने, छट्ठ—अकुम आदि  
 तपक्रमथी आडारसदिक ओछा करे, अने शास्त्रनी मर्यादाभा गताव्या प्रभाणु  
 स थारे करी देहनी समस्त क्रियाओने मुनिजन त्यागी हे (७)

आठमा उद्देशमा—चिरकालीन चारित्रसंपन्न साधु वृद्धावस्था के रोगना कारणे



। उद्देश्यम् इत्यथोपि मुनिभिर्भारिभरत्नैपिभिः,  
 सारो प्राप्नोतरोऽनिर्घ्नं विनयतां वापोपशान्त्यै वृषाम् ॥ ५ ॥ इति ।  
 ॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

॥ इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धराचक-पञ्चदशभाषाकलितलसि-  
 क्तापासापक-प्रसिद्धद्वयपथनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्क-शाह-  
 उग्रपति-काव्यापुररानमदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पद्भूषित-  
 कौन्दापुरराजगुरु-वासुदेवपारि-जैनाचार्य-जैनधर्मविष्णु-  
 पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिरिचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
 स्याऽऽधारचिन्तामणिटीकायां विमोक्षाख्यमष्टम-  
 मध्ययन सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

पठविहीन होनेसे इससे, उरमें पीडा जगती हो ।  
 तो वह साधु त्रिभिध मरणमे से कोई संधार परे,  
 जन्म सफल हो जाये उसका भवर का संकलेश टरे ॥ ८ ॥

॥ आठवे अध्ययनका आठवां उद्देश समाप्तः ॥ ८-८ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्ययनकी व्याखार  
 चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

अष्टम जनी अथैव छेय, अने तेजु शरीर पीडभी रीजातु छेय त्यारे  
 ते साधु त्रयु मरुधभांभी केषु कोक मरुधु भाटे सवाशे करे अने  
 पीडाना जन्मने सकेन बनवी कवनु देशने टाणी रे (८)  
 आठमा अध्यायनना आठमा उद्देश समाप्त ॥ ८-८ ॥

या व्याखारंगसूत्रना विमोक्ष नामना आठमा अध्यायननी व्याखार-  
 चिन्तामणि-टीकाने गुजराती अनुवाद संपूर्ण ॥ ८ ॥

॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स वीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्तस्मात् साधुभिरपि तथैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुताख्यमध्ययन प्रारभ्यते-उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधानश्रुतमुच्यते । उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधान तद् द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधान शय्यादौ शिरसः समालम्बनवस्तु, भावोपधान तु-सप्तदशविधसयमः, स बाह्याभ्यन्तर तपश्च, तद्धि चारित्रपरिणामरूपस्य भावस्य स्थैर्यं

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोंमें जो विषय समझाया गया है, वह वीर-वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, इस लिये साधुजनोंको भी वह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारंभ किया जाता है। उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी इस नामसे कहा गया है। जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है। यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। शय्या आदिमें शिरका अवलम्बनरूप तक्रिया आदि द्रव्य-उपधान है, इसका यहां अधिकार नहीं है। सत्रह प्रकारका सयम, एव बाह्य और आभ्यन्तर तप, ये भाव-उपधान हैं। यह भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है।

नवमा अध्ययनने। पढेले। उद्देश

पढेला कडेवाथेला आठ अध्ययनोमा जे विषय समजववामा आवेल ते वीर-वर्धमान प्रभुजे पोतेजे कडेला जे साधुजनेजे पळु जेवु जे आचरळु करवु जेधजे आ वातने समजववामा भाटे उपधानश्रुत नामना अध्ययनने। प्रारंभ करवामा आवे जे उपधान अने श्रुतना प्रतिबोधक जेवाधी आ अध्ययन पळु जे नामथी कडेवाथेल जे जे पोतानी ज्ञानरीमा करवामा आवे जे तेवु नाम उपधान जे जे द्रव्य अने भावना जेदथी जे प्रकारना जे सुवानी पधारी वगेरेमा अवलम्बनरूप जोसीका वगेरे द्रव्य-उपधान जे तेना अहीया अधिकार नथी सत्तर प्रकारना सयम अने बाह्य तथा आभ्यन्तर तप, जे भाव-उपधान जे जे भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमा स्थिरता लावनार होय जे सयम

संवाहयति । संयमेन तपसा च भीषस्य ज्ञानापरणीयादिक सर्वं कर्मैरजोऽपगच्छति तस्मात् सकलकर्मसंपदेतुभूतस्य तस्य संयमस्य तपसश्च समालम्बनरूपत्वादुपधानत्वेन व्यपदेशः । भुवमपि द्रव्यमाशमेवात्-द्विविधम्, तत्र द्रव्यभुतम्-अनुपयुक्तस्य यत् भुतम्, द्रव्यार्थं वा यत् भुतम्, कुमावचनिकभुतं च द्रव्यभुतम् । भावभुतं तु-वाद्वाङ्भुतविषयोपयोग । उपधानं च भुतं च, इत्यनयो समाहार उपधानमुच्यते, तत्प्रतिपादकमध्ययनमुपधानभुताध्ययनमिति ।

इह प्रथमोद्देशे भगवत श्रीवर्षमानस्वामिनो विहारः द्वितीय भगवत श्रुत्याऽऽसनानि, तृतीय तस्यानुकूल-प्रतिकूल-परीपहोपसर्गसहिष्णुता, चतुर्थे तु संयम और तपसे जीवके साथ अनाविकालसे लगी हुई समस्त कर्मरूपी पुलि नष्ट हो जाती है इस कारण सकल कर्मों के क्षयका कारण उस संयम और तपका आलम्बनरूप होनेसे समर्पे ( भाव उपधानमें ) उपधान पनेका व्यपदेश होना है । भुत भी द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकार है । अनुपयुक्त भावमाका जो भुत है वह, अथवा द्रव्यके लिये जो भुत है वह, या कुमावचनिकों ( मिथ्यादृष्टियों ) का जो भुत है वह, द्रव्यभुत है । वाद्वाङ्भुतविषयक जो उपयोग है वह भावभुत है । उपधान और भुतका जो समाहार है वह उपधानभुत है, इनका प्रतिपादक अध्ययन भी 'उपधानभुताध्ययन' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है ।

इस उपधानभुताध्ययनमें चार उद्देश हैं । उनमें प्रथम उद्देशमें श्रीवर्षमानप्रभुके विहारका, द्वितीय उद्देशमें उनकी श्रुत्या एवं आसनादिका, तृतीय उद्देशमें अनुकूल प्रतिकूल परीपहोकी सहनशीलताका, और

अने तपशी लयनी साथे ज्ञानादिकाजशी ज्ञानेव कर्मरूपी पुण्यो नाश साथ छे । आ शरद्वे सकल कर्मना क्षयना शरद्वे के साथ अने तपना अवलम्बनरूप होवाशी जेमां ( भाव-उपधानमां ) उपधानपदाने व्यपदेश साथ छे । भुत पद द्रव्य अने भावना दोदधी ने प्रकार छे । अनुपयुक्त आत्माने के भुत छे ते, अथवा द्रव्यने भादे के भुत छे ते, अथवा मिथ्यादृष्टियाने के भुत छे ते । द्रव्य-भुत छे वाद्वाङ्भुतविषयक उपयोग छे ते भाव-भुत छे उपधान अने भुत जेनुं प्रतिपादक अध्ययन पद उपधानभुताध्ययन का नामशी प्रसिद्ध भवेत छे ।

आ उपधानभुताध्ययनमा चार उद्देश छे, जेमा प्रथम उद्देशमा श्रीवर्षमान प्रभुका विहारना जीव उद्देशमा जेमनी श्रुत्या अने आसन आदिने, त्रीव उद्देशमा अनुकूल प्रतिकूल परिपहोनी सहनशीलताने अने जोवा उद्देशमां भुधा

॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स वीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्तस्मात् साधुभिरपि तत्रैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुताख्यमध्ययन प्रारभ्यते-उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधानश्रुतमुच्यते । उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधान तद् द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधान शय्यादौ शिरसः समालम्बनमस्तु, भागोपधान तु-सप्तदशविधसयमः, स वाह्याभ्यन्तर तपश्च, तद्धि चारित्रपरिणामरूपस्य भावस्य स्वैर्य

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोंमें जो विषय समझाया गया है, वह वीर-वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, उस लिये साधुजनोंको भी वह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारंभ किया जाता है। उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी उस नामसे कहा गया है। जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है। यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। शय्या आदिमें शिरका अवलम्बनरूप तकिया आदि द्रव्य-उपधान है, इसका यहां अधिकार नहीं है। सत्रह प्रकारका सयम, एव वाह्य और आभ्यन्तर तप, ये भाव-उपधान है। यह भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है।

नवमा अध्ययनने। पहिले उद्देश

पहिला कहेवायेला आठ अध्ययनोमा जे विषय समजववामा आवेल छे ते वीर-वर्धमान प्रभुजे पोतेजे कहेला छे साधुजनोंजे पक्षु जेवु न आचरखु करवु जेधजे आ बातने समजववामा भाटे उपधानश्रुत नामना अध्ययनने। प्रारंभ करवामा आवे छे उपधान अने श्रुतना प्रतिबोधक छेवाथी आ अध्ययन पक्षु जे नामधी कहेवायेल छे जे पोतानी छानरीमा करवामा आवे छे तेनु नाम उपधान छे जे द्रव्य अने भावना वेदथी जे प्रकारना छे सुवानी पथारी वगेरेमा अवलम्बनरूप जोसीका वगेरे द्रव्य-उपधान छे तेना आहीया अधिकार नहीं सत्र प्रकारना सयम अने वाह्य तथा आभ्यन्तर तप, जे भाव-उपधान छे जे भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमा स्थिरता लावनार होय छे सयम

संपादयति । संयमेन तपसा च क्षीपस्य ज्ञानानरणीयादिकं सर्वं कर्मरजोऽपगच्छति  
 क्त्वात् सकलकर्मसंयमेतद्भूतस्य तस्य संयमस्य तपसश्च समालम्बनरूपत्वादुपधान  
 त्वेन व्यपदेशः । भूतमपि द्रव्यमात्रमेवात्-द्विविधम्, तत्र द्रव्यभूतम्-अनुपयुक्तस्य  
 च भूतम्, द्रव्यार्थं वा यत् भूतम्, कुमावचनिकभूतं च द्रव्यभूतम् । भावभूतं  
 तु-द्रावशास्त्रभूतविषयोपयोग । उपधानं च भूतं च, इत्यनयो समाहार उपधा  
 नभूतम्, क्त्वात्तिपादकमध्यमननुपधानमुदाध्ययनमिति ।

इह प्रथमादेशे मगस्त भीषर्षमानस्वामिनो विहारः द्वितीय मगस्त च  
 म्याऽऽनानानि, तृतीये तस्यानुकूल-परिकूल-परीपहोपसर्गसहिष्णुता, चतुर्थे तु  
 संयम और तपसे जीवके साथ अनादिकालसे लगी हुई समस्त कर्मरूपी  
 धूलि नष्ट हो जाती है इस कारण सकल कर्मों के क्षयका कारण उस  
 संयम और तपका आलम्बनरूप होनेसे सममें (भाव उपधानमें) उप-  
 धान पनेका व्यपदेश होता है । भूत की द्रव्य और भावके मेवसे दो  
 प्रकार है । अनुपयुक्त आत्माका जो भूत है वह, अथवा द्रव्यके लिये  
 जो भूत है वह, या कुमावचनिकों (मिथ्यादृष्टियों) का जो भूत है वह,  
 द्रव्यभूत है । द्रावशास्त्रभूतविषयक जो उपयोग है वह भावभूत है ।  
 उपधान और भूतका जो समाहार है वह उपधानभूत है, इनका प्रति-  
 पादक अध्ययन की 'उपधानमुदाध्ययन' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है ।

इस उपधानमुदाध्ययनमें चार उद्देश हैं । उनमें प्रथम उद्देशमें भीष-  
 र्षमानप्रसूके विहारका, द्वितीय उद्देशमें उनकी द्राव्यापक्ष आसमादिकका,  
 तृतीय उद्देशमें अनुकूल प्रतिकूल परीपहोकी सहनशीलताका, और

अने तपशी लुपनी साथे अनादिजालकी लजेत कर्मरूपी पुण्यो नष्ट साथ छे.  
 आ कारणे सकल कर्मना क्षयना कारणे से संयम अने तपसा अलम्बनरूप  
 होवापी जेमा (भाव-उपधानमां) उपधानपदानो व्यपदेश साथ छे. भूत पक्ष  
 द्रव्य अने भावना दोहरी जे प्रकार छे. अनुपयुक्त आत्मानो जे भूत छे ते,  
 अथवा द्रव्यने भूते जे भूत छे ते, अथवा मिथ्यादृष्टिमानो जे भूत छे ते  
 द्रव्य-भूत छे द्रावशास्त्रभूतविषयक उपयोग छे ते भाव-भूत छे उपधान अने भूत,  
 जेनु प्रतिपादक अध्ययन पक्ष 'उपधानमुदाध्ययन' आ नामकी प्रसिद्ध संश्लेष छे  
 आ उपधानमुदाध्ययनमा चार उद्देश छे जेमा प्रथम उद्देशमा भीष-  
 र्षमान प्रसूना निवारना जीवना उद्देशमा जेमानी द्रव्य अने भावन आदिना, त्रीव  
 उद्देशमा अनुकूल प्रतिपक्ष प्रतिपक्षोनी सहनशीलतानो अने दोसरा उद्देशमा सुधा

ક્ષુત્પીડાજનિતાઽઽતઙ્કસમુદ્ભવે વિશિષ્ટાભિગ્રહપાપાહારેણ તત્પતીકાર ઇત્યુચ્યતે, તસ્ય ભગવતસ્તપશ્ચરણવર્ણનં તૂદ્દેશકચતુષ્ટયાનુગામિ ॥

અથ ભગવતશ્ચર્યાવિધિં વૉધયિતું શ્રીસુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામિનમાહ—  
'અહાસુયં' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહાસુયં વઙ્ગસ્સામિ, જહા સે સમણે ભગવં ઉટ્ટાણ ।

સંખાણ તંસિ હેમંતે, અટ્ટુણા પઠ્ઠવઙ્ગે રીઙ્ગત્થા ॥ ૧ ॥

જાયા—યથાશ્રુત વદિષ્યામિ, યથા સ શ્રમણો ભગવાન ઉત્થાય ।

સખ્યાય તસ્મિન્ હેમંતે અધુના પ્રવ્રજિતોઽરીયત ॥ ૧ ॥

ટીકા—યથાશ્રુત=યથાશ્રવણવિષયીકૃત, તથા વદિષ્યામિ=કથયિષ્યામિ, તદ્ યથા—સઃ=લોકત્રયપ્રસિદ્ધઃ, શ્રમણો ભગવાન=મહાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, ઉત્થાય=ઉઠવવિહારં સ્વીકૃત્ય સર્વાભરણ વિહાય પચ્ચમુષ્ટિકં લોચ કૃત્વા ધર્મોપકરણતયા ગૃહીતવસ્ત્રઃ, સામાયિકાર્થં કૃતાભિગ્રહઃ, પ્રકૃટીભૂતમનઃપર્યયજ્ઞાનો જ્ઞાનાચતુર્યં ઉદ્દેશર્મે ક્ષુધા-પીડાસે જનિત આતંકકે સદ્ભાવર્મે વિશિષ્ટ અભિગ્રહસે પ્રાપ્ત આહારસે ઉસ ક્ષુધાજન્ય પીડાકે પ્રતિકારકા વર્ણન હૈ । ભગવાનકે તપશ્ચરણકા વર્ણન તો હન ચારોં ઉદ્દેશોં મેં હૈ હી ।

અવ—ભગવાનકી ચર્યાવિધિકો સમજ્ઞાનેકે લિપે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હે—'અહાસુય' ઇત્યાદિ ।

પ્રભુસે જૈસા મૈને સુના હૈ વૈસા હી તુમસે કહૂંગા, વહ હસ પ્રકાર—  
ઉચ્ચત (ઉત્કૃષ્ટ) વિહાર સ્વીકાર કર, સમસ્ત રાજચિહ્ન આદિ આભરણોંકા પરિત્યાગ કર, ઓર પચ્ચમુષ્ટિ કેશોંકા લુચન કર, વસ્ત્ર કો ધર્મકા ઉપકરણ સમજ્ઞકર માત્ર એક હી વસ્ત્ર ધારણકર, સયમકે લિપે

પાંડાથી થયેલ આતંકના સદ્ભાવમા વિશિષ્ટ અભિગ્રહથી પ્રાપ્ત આહારથી એ—  
ક્ષુધાજન્ય પીડાના પ્રતિકારતુ વર્ણન છે ભગવાનની તપશ્ચર્યાતુ વર્ણન તે એ  
આસે ઉદ્દેશમા છે જ

હવે ભગવાનની ચર્યા વિધિને સમજાવવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂ  
સ્વામીથી કહે છે—'અહાસુયં' ઇત્યાદિ

પ્રભુ પાસે જેલુ મે સાબજ્યુ છે તેવુંજ તમોને કહીજી ઉત્કૃષ્ટ વિહાર સ્વીકારી,  
સમસ્ત રાજચિહ્ન—વિગેરે આભરણોંનો પરિત્યાગ કરી, અને પચ્ચમુષ્ટિ કેશોંનું  
લુચન કરી, વસ્ત્રને ધર્મનું ઉપકરણ સમજી માત્ર એક જ વસ્ત્ર ધારણ

रक्षीयायष्टविधकर्मरक्षाऽपहर्षुं तीर्थं प्रवर्तयितुं च महत्तो भूत्वेत्यर्थः, संख्याय=प्रख्याकासं विज्ञाय, तस्मिन् प्रवृत्त्याप्रवृत्तविहारयोग्यतया प्रसिद्धे, हेम-ते=हमन्तौ, मार्गशीर्षमासे तस्य कृष्णदशम्यां पूर्वगामिन्यां छायायास्, अपराह्नसमय इति शब्दः । प्रवृत्त=पृथीतमन्वयः, अधुना=अस्मिन् काष्ठे-प्रवृत्त्याप्रवृत्तकाष्ठे, त्वत्परहितोत्तरकाल एवेति यावत्, अरीयत्=विहारमकरोत् ॥ १ ॥

पमोपकरणतया वस्त्रं भगवता पृथीतमित्यतद् वापयितुमाह—' जो चे विमेण ' इत्यादि ।

सूत्रम्—जो चेविमेण वत्येण, पिह्निस्सामि तसि हेमते ।

से पारय जावकहाय, एवं खु अणुधम्मिय तस्स ॥२॥

श्या—जो चैव अनन वस्त्रेण पिभास्यामि तस्मिन् हमन्ते ।

स पारगो यावत्कथम् एतद् खु अनुधार्मिकं तस्य ॥ २ ॥

कृतामिग्रहं होकर, मन पर्यय ज्ञानकी प्राप्तिसे युक्त पन ज्ञानावरणीय आवि भाठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धूलिको उड़ानेके लिये, एवं तीर्थकी प्रवृत्ति करनेके लिये कठिणत्वं होकर लोकप्रपमें प्रसिद्ध यह भगवान भी महावीर स्वामीने, प्रवृत्त्या काल जानकर प्रवृत्त्या ग्रहण एवं विहार करनेकी याग्यतासे प्रसिद्ध ऐसे हम-१-मार्गशीर्ष मास-में कृष्णपक्षकी दशमी १० तिथिके दिन अपराह्न समय-दिनके पिछले प्रहरमें दीक्षित होकर उसी समय विहार किया ॥ १ ॥

'वस्त्रं भी धार्मिक उपकरण है' ऐसा विचार कर वस्त्र ग्रहण किया, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—'जो चेविमेण' इत्यादि ।

इस समयमात्र भाटे कृतामिग्रहं वस्त्रं अन्तर्ध्याय शान्ती प्रसिद्धी युक्त पन ज्ञानावरणीय वस्त्रेण आठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धूलिको उड़ाने के लिये एवं तीर्थकी प्रवृत्ति करने के लिये कठिणत्वं वस्त्रं लोकप्रपमें प्रसिद्ध ते अन्तर्ध्याय भी महावीर स्वामीने प्रवृत्त्याप्रवृत्त काष्ठे त्वत्परहितोत्तरकाल एवेति यावत् कृष्णपक्षकी दशमी तिथिना द्विपदे अपराह्न समय-द्विपदेना पाछला आजमा दीक्षित वस्त्रं जे समये विहार करी (१)

वस्त्रं धार्मिक उपकरण है' जेवो विचार करी वस्त्र ग्रहण करी आ बात समझववा भाटे सूत्रकार कहे छे—'जो चेविमेण' इत्यादि ।

क्षुत्पीडाजनिताऽऽतङ्कसमुद्भवे विशिष्टाभिग्रहप्राप्ताकारेण तत्प्रतीकार इत्युच्यते, तस्य भगवतस्तपश्चरणवर्णनं तद्देशकचतुष्टयानुगामि ॥

अथ भगवतश्चर्याविधिं बोधयितुं श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह—  
'अहासुयं' इत्यादि ।

मूलम्—अहासुयं वइस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्टाए ।

संखाए तांसि हेमन्ते, अहुणा पव्वइए रीइत्था ॥ १ ॥

छाया—यथाश्रुतं वदिष्यामि, यथा स श्रमणो भगवान् उत्थाय ।

सख्याय तस्मिन् हेमन्ते अधुना प्रव्रजितोऽरीयत ॥ १ ॥

टीका—यथाश्रुतं=यथाश्रवणविषयीकृत, तथा वदिष्यामि=कथयिष्यामि, तद् यथा—सः=लोकत्रयप्रसिद्धः, श्रमणो भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी, उत्थाय=उद्यतविहारं स्वीकृत्य सर्वाभरणं विहाय पञ्चमुष्टिकं लोचं कृत्वा धर्मोपकरणतया वृष्टीतवत्तः, सामायिकार्थं कृताभिग्रहः, प्रकृटीभूतमनःपर्ययज्ञानो ज्ञाना-  
च्चतुर्थं उद्देशमें क्षुधा-पीडासे जनित आतकके सद्भावमें विशिष्ट अभि-  
ग्रहसे प्राप्त आहारसे उस क्षुधाजन्य पीडाके प्रतिकारका वर्णन है ।  
भगवानके तपश्चरणका वर्णन तो इन चारों उद्देशों में है ही ।

अब—भगवानकी चर्याविधिको समझानेके लिये श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—'अहासुयं' इत्यादि ।

प्रभुसे जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुमसे कहूँगा, वह इस प्रकार—  
उद्यत ( उत्कृष्ट ) विहार स्वीकार कर, समस्त राजचिह्न आदि आभरणोंका परित्याग कर, और पचमुष्टि केशोंका लुचन कर, वस्त्र को धर्मका उपकरण समझकर मात्र एक ही वस्त्र धारणकर, समयके लिये

पाँदाधी धधेत् आतकना सद्भावमा विशिष्ट अभिग्रहधी प्राप्त आहारधी अ-  
क्षुधाजन्य पीडाना प्रतिकारतु वर्णन छे भगवाननी तपश्चर्यातु वर्णन तो अ-  
यादे उद्देशेमा छे ७

इसे भगवाननी चर्या विधिने समझववा भाटे श्री सुधर्मास्वामी जम्बू-  
स्वामीधी कहे छे—'अहासुयं' इत्यादि

प्रभु पासे जेवु मे साक्षर्यु छे तेवुं तमेने कहीश उत्कृष्ट विहार स्वीकारी,  
समस्त राजचिह्न-विगेरे आभरणोना परित्याग करी, अने पचमुष्टि केशोतुं  
लुचन करी, वस्त्रने धर्मतु उपकरण समझ मात्र अेक ७ वस्त्र धारण



ननु तर्हि बह्व किमर्थमङ्गीकृतम् ? अथाह—सु=नियमेन, एतद्=बह्वभारण  
 तस्य=भगवतः, अनुषार्मिकम्=पूर्वपूर्वतीर्थहरणमांशुकत्वं, अपरै परंपरयास्वीक  
 र्तीयैरपि पूर्व धर्मोपकरणतया त्वाऽनुष्ठितमित्यर्थः ॥ २ ॥

दीक्षाकालिकानुष्ठितधर्मवदनादि सुगन्धबोमाद् भ्रमरादयः समागत्य भगवद्  
 इति हंसनं चक्रुरिति बोधयितुमाह—' बह्वारि साहिप ' इत्यादि ।

बह्व्—चत्वारि साहिप भासे, बहुषे पाणजाइया आगम्म ।

अभिरुह्ण काय विहरिंसु आरुसिया ण तस्य हिंसिंसु ॥३॥

अथा—सुत सापिकान् मासान्, बहुष प्राणिजातयः आगन्म ।

अभिरुह्ण काय विहरिंसु, आरुस्य लल्ल तण हिंसिंसुः ॥ ३ ॥

शंका—अथ बह्वसे शरीरको भाण्डादित नहीं करनेका अभिग्रह  
 भगवानने यावज्जीवन अंगीकृत किया तो फिर भगवानने बह्वका ग्रहण  
 ही क्यों किया ?

उत्तर—शंका ठीक है, परन्तु आभारपाठनके लिये ही उन्हेंनि ऐसा  
 किया। जिस प्रकार परपरासे होनेवाले धर्मतीर्थप्रवर्षक तीर्थकरोंने  
 बह्वका धर्मका उपकरण होनेसे ग्रहण किया है। यही बात "अनुषार्मि  
 कम" इस पदसे सूत्रकार प्रकट की है ॥ २ ॥

दीक्षा समयमें जब भगवानके शरीरमें अदनादि सुगन्धित द्रव्योंका  
 प्रवहन—लेप किया गया उस समय उनकी सुगन्धिसे आये हुए भ्रमर  
 भगवानके शरीरको काटने लगे, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार  
 कहते हैं—' बह्वारि साहिप ' इत्यादि ।

शंका—अपरे वक्ष्यी शरीरने आभणदित न कल्पानो अकिञ्च भजयाने  
 आलपन कधीभूत क्यो तो पञ्जे भजयाने पत्ताने केम न तत्त्व्या ?

उत्तर—शंका ठीक है परन्तु आभार पाठन करना माटे अ तेमले जेम  
 क्यु" से प्रकार तीर्थहरणे पत्ताने धर्म—उपकरणरूप मानी अकल्प करेले आ  
 वाद "अनुषार्मिकम्" आ पक्षी सूत्रकारे प्रकट करेले छे (२)

दीक्षा समयमें अपरे भजयानया शरीर उपर अदनादि सुगन्धित द्रव्योंको  
 लेप करवार्ना आभ्यो आ समये तेनी सुगन्धी आभणार्थ भजयानो शरीर  
 उपर वेसवा द्वाभ्यां कने करववा द्वाभ्यां, आ वातने समन्वयतां सूत्रकारे कहे छे—  
 बह्वारि साहिप इत्यादि ।

टीका—स भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी, एव विभावयतिस्म-अनेन वस्त्रेण=तस्मिन् शैत्यवर्धकतया प्रसिद्धे हेमन्ते=हेमन्ताख्ये ऋतौ, न चैव पिधास्यामि स्वदेहमहं नैव प्रावरिष्यामि, एतदुपभोगेन शीतसमये स्वात्मानं सुखयितुं प्रवृत्तो न भविष्यामीत्यर्थः । ईदृशविचारणाकरणप्रदर्शक तस्य विशेषण प्रदर्शयति-पारग इति, प्रतिज्ञायाः पारगामी, प्रतिज्ञापूर्वणसमर्थ इत्यर्थः । यद्वा—ससारसागरपारगमने समर्थ इत्यर्थः । क्रियन्त कालमपेक्ष्य प्रतिज्ञात् भगवतेति जिज्ञासायामाह-यावत्कथमिति, यावज्जीवनमित्यर्थः ।

भगवान् महावीरने पेसा विचार क्रिया कि इस वस्त्रसे शैत्यवर्धक-पनेसे प्रसिद्ध हेमन्त ऋतुमें मैं अपने शरीरको नहीं ढकूंगा-इसके उप-भोगसे शीतसमयमें मैं अपनेको सुखित करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होऊँगा । इस प्रकारकी भगवान् महावीरकी विचारणाका कारण यह था कि वे अपने अभिग्रहका पूर्णरूपसे निभानेमें शक्तिशाली थे, यही बात “पारगः” इस विशेषण पदसे सूत्रकारने प्रदर्शित की है । उनके शरीरमें इतनी शक्ति थी कि जिसके आगे उस मार्गशीर्ष जैसे मासकी ठंडकी शक्ति उनके प्रति कुण्ठित हो गई थी । अथवा “पारगः” इस विशेषण पदका यह भी दूसरा अर्थ हो सकता है कि जब वे उसी भवसे संसाररूपी अथाह समुद्रको पार करनेमें समर्थ थे तब उनके समक्ष यह शीतकाल किस गणनामें था । वस्त्रसे शरीरको आवृत नहीं करनेकी प्रतिज्ञा भगवानने कुछ समयके लिये नियमरूपसे अंगीकृत नहीं की थी, किन्तु यावत्कथ-यावज्जीवन यह प्रतिज्ञा उन्होंने स्वीकार की थी ।

भगवान् महावीरने ऐसे विचार किये कि मैं वस्त्रही ढकी आपवामा प्रसिद्ध ऐसी हेमन्तऋतुमा हुं मारा शरीरने ढकीश नहीं—आना छपसो गधी ढकीना समयमा हुं मने सुधी करवामा प्रवृत्त नहीं थकीश आ प्रकारनी भगवान् महावीरनी विचारणातु कारण ऐ इतु के तेसे पोताना अभिग्रहतु पालन पूर्णरूपधी निभाववामा शक्तिशाली हुता ऐ बात ‘पारगः’ आ विशेषण पदधी सूत्रकारे प्रदर्शित करेले छे ऐमना शरीरमा ऐटली शक्ति हुती के लेनी सामे भागशर भङ्गिनी ढकीनी शक्ति पणु निर्माण जनी गर्ध हुती अथवा “पारग” आ विशेषणुना पीले ऐ पणु अर्थ थकी शके छे के लिये ते ऐव अवधी ससाररूपी अथाह समुद्रने पार करवामा समर्थ हुता आ समर्थ आत्मा सामे शीत कालनी गणनी शु? वस्त्रधी शरीरने आवृत न करवाने अभिग्रह भगवाने थोडा समयने माटे नियमरूपधी अंगीकृत करेले नहीं परतु आवृत्तन ऐ अभिग्रह ऐमणु स्वीकार किये हुते ।

ननु तर्हि ब्रह्मं किमर्थमङ्गीकृतम् ? अथाह—सु=नियमन, एतद्=वस्त्रधारण  
 तस्य=मगधत, अनुधार्मिकम्=पूर्वपूर्वतीर्थहरणमाङ्गीकृतम्, अपरै परंपरयावतीष  
 तीर्थहरैरपि पूर्व धर्मापकरणतया तथाऽनुष्ठितमित्यर्थः ॥ २ ॥

दीक्षाकालिकानुष्ठितवस्त्रनादिसुगन्धलोमाश्च भ्रमरादयः समागत्य मगध  
 पुत्रि वंशेन चक्रुरिति भाषयितुमाह—' वस्तारि साह्विप ' इत्यादि ।

सूत्रम्—वस्तारि साह्विप मासे, बह्वे पाणजाइया आगम्य ।

अभिरुद्ध काय त्रिहुरिसु आरुसिया ण तत्थ हिंसिसु ॥३॥

भाषा—वस्तारि साह्विकाम् मासान्, बहव प्राणिजातय आगम्य ।

अभिरुद्ध कार्यं विप्रहृष्टः, आरुम्य स्वल तथ जिहिसु ॥ ३ ॥

शंका—जब ब्रह्मसे शरीरको आच्छादित नहीं करनेका अभिप्राय  
 भगवानने पावडीबन अंगीकृत किया तो फिर भगवानने ब्रह्मका ग्रहण  
 ही क्यों किया ?

उत्तर—शंका ठीक है, परन्तु आचारपालनके लिय ही उन्होंने ऐसा  
 किया। जिस प्रकार परंपरासे होनेवाले धर्मतीर्थप्रवर्त्सक तीर्थकरोंने  
 ब्रह्मका धर्मका उपकरण होनेसे ग्रहण किया है। यही बात 'अनुधार्मि  
 कम्' इस पदसे सूत्रकार प्रकट की है ॥ २ ॥

दीक्षा समयमें जब भगवानके शरीरमें बचनादि सुगन्धित द्रव्योंका  
 उपवन-लेप किया गया उस समय उनकी सुगन्धिसे आये हुए भ्रमर  
 भगवानके शरीरको काटने लगे, इस बातको समझानेके लिय सूत्रकार  
 कहते हैं—' वस्तारि साह्विप ' इत्यादि ।

शंका—अपरे वस्त्रधी शरीरने आच्छादित न करवानो अभिरुद्ध भजनाने  
 आच्छादन आजीवित कर्षो ते पछे भजनाने वस्त्राने केम न तन्व्या ?

उत्तर—शंका हीक है परन्तु आप्पार पठन करवा भाटे व तेमजे जेम  
 क्खुं जे उकार तीर्थहरणे वस्त्राने धर्म-उपकरणरूप मानी ब्रह्मण करवा आ  
 चर " अनुधार्मिकम् " आ पदधी सूत्रकारे प्रकट करेव है (२)

दीक्षा समयमें अपरे भजनानना शरीर उपर बचनादि सुगन्धित द्रव्योंका  
 लेप करवाभां आब्यो आ समयमें तेनी सुगन्धी आकर्षण भजनानो शरीर  
 उपर वेसवा आब्यो अने करवा आब्य, आ बातने समझवतां सूत्रकार कहे है—  
 वस्तारि साह्विप इत्यादि

टीका—वह्नः प्राणिजातयः भ्रमरादयः चतुरः साधिकान् मासान् मनोज्ञ-  
गन्धलोभान् आगम्य काय=भगवतः शरीरम्, अभिरुच्य विजहुः=निजनिजचरणानि  
सपरुपरुपर्शं चारयामासुः । तथा-तदीयस्त्वाद्यर्थितया च आरुष्य=प्रकृष्येव तत्र=  
भगवत शरीरे जिहिमुः=ददधुः ॥ ३ ॥

तद् वस्त्रं भगवान् कियत्कालं दधारेति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘सवच्छरं  
साहियं’ इत्यादि ।

मूलम्—संवच्छरं साहियं मासं, ज न रिक्तासि वत्थगं भगवं ।

अचेलण तओ चाई, तं वोसिरिज वत्थमणगारे ॥४॥

छाया—सवत्सर साधिक मास, यत् न रिक्तवान् वस्त्रकं भगवान् ।

अचेलकः ततः त्यागी, तद् व्युत्कृत्य उत्स्रमणगारः ॥ ४ ॥

टीका—भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी उत्स्रकं=तद् वस्त्रं सवत्सरम्=एकवर्षं, तथा  
साधिक मास=साधिकैरुमास किञ्चिदधिकत्रयोदशमासान्तिवर्धः, यत् न रिक्तवान्

कुछ अधिक चार मासमे बहुतसी—अनेक प्राणियोंकी जातियां,  
अनेक जातिके भ्रमरादिक जीवजन्तु मनोज्ञ सुगंधके लोभसे  
आकर भगवानके शरीरके आजू-बाजू भिनर करते हुए उनके शरीरको  
कटोर स्पर्श करते हुए चारों ओर घूमने लगे और क्रोधित की तरह  
उनके शरीरको काट कर लोही खांस खाने लगे ॥ ३ ॥

उस वस्त्रको भगवानने कितने समयतक धारण किया? शिष्यकी  
इस जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘सवच्छरं  
इत्यादि ।

भगवानने उस वस्त्रको कुछ अधिक एक महीनासे युक्त एक वर्ष,

थोडा अधिक चार महीनाभा घण्टा प्राणुियोंो अने घण्टी जतना लभश  
वगेरे एव न तुनी जतियो मनने सुगंधथी वरपुर जन्वावी दे तेवी सुगंधना  
लोभना पडी लगवानना शरीर उपर तेमज चारे तरई इरी वणी गणुगणुट  
शई करी वीधी अने जणु कोधवाणा जन्वा होय जे रीते तेमना शरीर उपर  
सुगंध युसवानी लपनाथी लोडी तथा मासने जावा लाण्य (३)

जे वस्त्रने लगवाने केटला समय सुधी धारण कयुं ? शिष्यनी आ लज्ञा-  
थातु समाधान करवा माटे सूत्रकार कहे छे—‘सवच्छरं’ इत्यादि  
लगवाने थोडा अधिक जेक महीनाथी युक्त जेक वर्ष—जेरले थोडा अधिक

त्यक्तवान् तत् 'स्वित्कल्पः' इति कृत्वा तत् ऊर्ध्वं तद् वस्य व्युत्सुग्य=अपनीप  
 त्यागी=वस्त्रपरित्यागी भनगारः=भगवान् भवेत्कः=भवत्कः, अयुदित्यर्थः ॥४॥

क्रिञ्च--'अवु पोरिसि' इत्यादि ।

मूष्म्-अवु पोरिसि तिरियभित्ति चक्खु मासज्ज अन्तसो झाइ ।

अह चक्खुभीया सहिया, ते हता हता बहषे कदिंसु ॥५॥

भाषा--अव पौरुषीं तिरिग्मिसि चक्षुरासाद्य अन्तश्चो ज्ञायति ।

अय चक्षुर्पीता सञ्जितास्त, इता इत्या इहवचक्रन्दुः ॥ ५ ॥

टीका--अय=अनन्तरं, तिर्यग्मिषि=प्रवेशस्थान सङ्गचितामत्रे विस्तीर्णा, पौ  
 षी=पुरुषप्रमाणां वीथीं गच्छन् अन्तश्चः=मध्ये अभ्यन्तर, चक्षुरासाद्य=ज्ञानदृष्टि  
 निषाय, सोपयोगो भूत्वा, ज्ञायति=ईयांसमितो गच्छति । ईयांसमितस्य गमनमेवात्र  
 ध्यानम् ।

अपौत्र कुछ अधिक लेरह महीने तक स्थितकल्प समझकर रखा । फिर  
 उसके बाद उसका परिहार कर के अश्वेल-बकरहित हुए ॥४॥

फिर भी--'अवु पोरिसि' इत्यादि ।

प्रवेश स्थानमें संकुचित और आगे विस्तृत ऐसे मार्गसे वे भग  
 वान ईयांसमितिपूर्वक चले । यहां "ज्ञायति" यह क्रियापद 'भगवान्  
 ईयांसमितिसे गमन करते हुए' इस अर्थका बोध कराता है, क्योंकि कि  
 सोपयोग ईयांसमिति बालेका गमन ही यहां ध्यान है । "चक्षुरासाद्य"  
 यह पद यह प्रकट करता है कि वे भगवान् ज्ञानदृष्टिको रखकर-उप  
 योग सहित होकर चले । ईयांसमितिसे चलते हुए भी उपयोग अस्थिर  
 हो सकता है-परन्तु यहां पर भगवान्का उपयोग अस्थिर नहीं था यह  
 विशेषता प्रकट करनेके लिये 'चक्षुरासाद्य' यह पद सूत्रकारने रखा है ।

वेरभक्तिना सुधी ते वस्त्रने स्थितकल्प समझने सम्भु आ पडी तेजो जे तेने । त्याज  
 करी अने अश्वेल-वस्त्रसहित यथा (४)

इरी- अवु पोरिसि इत्यादि ।

प्रवेशस्थानमा शक्तिम् अने अत्रण वर्ता विस्तृत जेटते पक्षेण भाजं  
 इपर लत्रवान् ईयांसमितिपूर्वकं यास्या अदि ज्ञायति आ क्रियापदं लत्र  
 वान् ईयांसमितिधीं अमन इरेव आ अर्धेना बोध इत्यथ ऐ केम के सोपभेज  
 ईयांसमितिवाणानु अमन ए ध्यान ऐ चक्षुरासाद्य' आ यह जेपु प्रकट इरे  
 ऐ के लत्रवान् ज्ञानदृष्टिधी उपयोगसहित जे भाजधी यास्या ईयांसमितिधी  
 यातवावाणानो उपभेज अस्थिर पवु यथं यके ऐ परंतु लत्रचनने उपयोग अस्थिर  
 न कते, आ विशेषता प्रकट करती चक्षुरासाद्य आ यह सूत्रकारे शब्द ऐ ।

टीका—वहवः प्राणिजातयः भ्रमरादयः चतुरः साधिकान् मासान् मनोज्ञसु-  
गन्धलोभात् आगम्य कायं=भगवतः शरीरम्, अभिरुह्य विजहुः=निजनिजचरणानि  
सपरुपरुपर्शं चारयामासुः । तथा—तदीयरक्ताद्यर्थितया च आरुण्य=प्रकृष्येव तत्र=  
भगवत शरीरे जिहिंसुः=ददशुः ॥ ३ ॥

तद् वस्त्रं भगवान् कियत्कालं दधारेति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘संवच्छरं  
साहियं’ इत्यादि ।

मूलम्—संवच्छरं साहियं मासं, जं न रिक्वासि वत्थगं भगवं ।

अचेलए तओ चाई, तं वोसिरिज्ज वत्थमणगारे ॥४॥

श्याया—सवत्सर साधिक मास, यत् न रिक्तवान् वस्त्रक भगवान् ।

अचेलकः ततः त्यागी, तद् व्युत्सृज्य वस्त्रमनगारः ॥ ४ ॥

टीका—भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी वस्त्रकं=तद् वस्त्रं सवत्सरम्=एकवर्षं, तथा  
साधिक मासं=साधिकैकमास किञ्चिदधिकत्रयोदशमासानित्यर्थः, यत् न रिक्तवान्

कुछ अधिक चार मासमें बहुतसी-अनेक प्राणियोंकी जातियां,  
अनेक जातिके भ्रमरादिक जीवजन्तु मनोज्ञ सुगंधके लोभसे  
आकर भगवानके शरीरके आजू-बाजू भिनर करते हुए उनके शरीरको  
कटोर स्पर्श करते हुए चारों ओर घूमने लगे और क्रोधित की तरह  
उनके शरीरको काटने कर लोही सांस खाने लगे ॥ ३ ॥

उस वस्त्रको भगवानने कितने समयतक धारण किया? शिष्यकी  
इस जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘संवच्छरं’  
इत्यादि ।

भगवानने उस वस्त्रको कुछ अधिक एक महीनासे युक्त एक वर्ष,

थोडा अधिक चार महीनामा वस्त्रा प्राणियोंने अने वस्त्रों जतना समझ  
वगेरे एव न तुनी जातियो मनने सुगंधकी कारण भगवती दे तेवी सुगंधना  
लोभना पडी भगवानना शरीर उपर तेमन चारे तरफ़ इरी वणी गच्छुगच्छुट  
शर करी दीधे अने जल्ले क्रोधवाणा अन्या होय ये रीते तेमना शरीर उपर  
सुगंध सुसवानी लावनाथी लोडी तथा मासने जावा लाग्या (३)

ये वस्त्रने भगवानने केटला समय सुधी धारण क्युं ? शिष्यनी आ लक्षा  
सातु समाधान करवा माटे सूत्रकार कडे छे—‘संवच्छरं’ इत्यादि

भगवानने थोडा अधिक एक महीनाथी युक्त एक वर्ष—अर्थात् थोडा अधिक

=त्यक्तवान् तत् 'स्थितकल्प' इति कृत्वा तत् ऊर्ध्वं तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=अपनीय  
 त्यागी=बन्धुपरित्यागी अनगारः=भगवान् मवेच्छाः=मवेच्छा, मभूदित्यर्थः ॥४॥

किञ्च--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

मूळम्--अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्रतु मासञ्च अन्तसो झाइ ।

अह चक्रतुभया सहिया, तेहता हता बहुषे कर्दिसु ॥५॥

प्राया--अप पीरुपीं तिर्यग्मिषिं चधुरासाय अन्तसो प्यापति ।

अप चधुर्मीता सहितास्त, इता इत्ता वद्वयध्रन्दुः ॥ ५ ॥

टीका--अप=अनन्तरं, तिर्यग्मिषिं=प्रवेशस्थानं सङ्कुचितामध्ये विस्तीर्या, पी  
 र्पी=पुरुषप्रमाणां वीर्षी गच्छन् अन्तःशः=मध्ये अभ्यन्तरं, चधुरासाय=ज्ञानदृष्टि  
 निषाय, सोपयोगो मूत्वा, ध्यायति=ईर्ष्यासमितो गच्छति । ईर्ष्यासमितस्य गमनमेवात्र  
 प्यात्सु ।

अर्थात् कुछ अधिक तेरह महीने तक स्थितकल्प समझकर रखा। फिर  
 उसके बाद उसका परिहार कर के अचेत-बन्धरहित हुए ॥४॥

फिर श्री--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

प्रवेश स्थानमें सङ्कुचित और आगे विस्तृत ऐसे मार्गसे वे भग  
 वान ईर्ष्यासमितिपूर्वक चले । यहाँ "प्यापति" यह क्रियापद "भगवान्  
 ईर्ष्यासमितिसे गमन करते हुए" इस अर्थका बोध कराता है, क्यों कि  
 सोपयोग ईर्ष्यासमिति वालेका गमन ही यहाँ ध्यान है । "चधुरासाय"  
 यह पद यह प्रकट करता है कि वे भगवान् ज्ञानदृष्टिको रम्यकर-उप  
 योग सहित होकर चले । ईर्ष्यासमितिसे चलते हुए भी उपयोग अस्तिर  
 हो सकता है-परन्तु यहाँ पर भगवान्का उपयोग अस्तिर नहीं था यह  
 विशेषता प्रकट करनेके लिये 'चधुरासाय' यह पद सूचकारने रखा है ।

तेरहदिना सुधी ते वरने स्थितकल्प समझने सञ्चु आ पछी तेजोअतेने त्यांअ  
 र्पी अने अचेत-बन्धरहित धया (४)

इरी- अदु पोरिसिं इत्यादि ।

प्रवेशस्थानमें सङ्कुचित अने आगे अन्तः विस्तृत जेटवे पडोण भा-  
 उपर भगवान् ईर्ष्यासमितिपूर्वक व्याख्या अदि ध्यायति आ क्रियापद भग  
 वान् ईर्ष्यासमितिसे गमन करेत् आ अर्थने बोध करात्तु उ हेम के सोपयोग  
 ईर्ष्यासमितिवाणानु गमन अ ध्यान है । चधुरासाय आ यह जेवु प्रकट करे  
 उ हे भगवान् ज्ञानदृष्टिको उपयोगसहित जे भावधी व्याख्या ईर्ष्यासमितिधी  
 आशयवाणाने उपयोग अस्तिर पदु यहाँ राके उ परन्तु भगवान्को उपयोग अस्तिर  
 नहोत्वे आ विशेषतः प्रकट करत्तु चधुरासाय आ यह सूचकरे शयेतु है ।

તં તથા વ્રજન્તમવલોક્ય બાલકા ઉપસર્ગ ચક્રુરિત્યાહ—‘અય ચક્ષુર્ભીતાઃ’  
 इत्यादि ।

અચ=અનન્તરં, ચક્ષુર્ભીતાઃ=અત્ર ચક્ષુઃશબ્દેન દર્શનં ગૃહ્યતે, દર્શનાદ્ગ્રીતાઃ  
 મગવન્ત વિલોક્ય મયમુપગતાઃ, અત એવ સહિતાઃ=મિલિતાઃ, તે=વાલકા હત્વા  
 હત્વા=ધૂલિમક્ષેપાદિભિઃ પુનઃ પુનસ્તાડયિત્વા ચક્રન્દુઃ=અન્યાન્ વાલાનાદ્યવન્તિ સ્મ,  
 ‘શ્દાગચ્છત પશ્યત મુષ્ટિતોડ્ય’—મિતિ, તથા—‘કિદેશીયઃ કુતઃ સમાયા-  
 તોડ્ય’—મિતિ કલકલશબ્દ ચક્રુરિત્યર્થ. ॥ ૫ ॥

કિંચ—‘સયણેહિં’ इत्यादि ।

મૂલમ્—સયણેહિં વિતિમિસ્સેહિં, इत्थीओ तत्थ से परिज्ञाय ।

सागारियं न सेवेइ य, से सयं पवेसिया झाइ ॥ ६ ॥

છાયા--શયનેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ સ્ત્રિયસ્તત્ર સ પરિજ્ઞાય ।

सागारिक न सेवेत च स स्वयं प्रवेश्य ध्यायति ॥ ६ ॥

ટીકા—શયનેષુ=શય્યતે યત્ર તાનિ શયનાનિ=આગન્તુકાર્થવાસસ્થાનાનિ,  
 તેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ=કુતશ્ચિત્ કારણાદ્ ગૃહસ્થૈસ્તીર્થિકૈશ્ચ સંયુક્તેષુ સત્સુ તત્રાવસ્થિ-

भगवानको इस तरह विहार करते हुए देखकर भयसे युक्त हो बालक  
 मिलकर उनके ऊपर धूलि आदि डालर कर उपसर्ग करने लगे और  
 कोलाहल करते हुए कहने लगे कि-आओ देखो यह मनुष्य मुडित है,  
 यह अजब ढगका आदमी कहाँसे आया है ॥५॥

और भी—‘सयणैहिं’ इत्यादि ।

आगन्तुक-पथिक जनोंके लिये बसने योग्य स्थानोंका नाम शयन है ।  
 इन शयनोंमें अनेक प्रकारके व्यक्ति आकर ठहरते हैं और चले जाते हैं, ऐसे  
 स्थानोंमें यदि मुनिजन ठहरे और वहाँ पर गृहस्थजन या अन्य तीर्थिक-

ભગવાનને આ રીતે વિહાર કરતા જોઈ બયભીત બનતા બાળકોએ ધુળ  
 ઠાકસ વગેરે તેમના ઉપર નાખવા માડયા, અને તમાસો જોવાના નિમિત્તે બીજા  
 બાળકોને પણ જોલાવવા લાગ્યા અને ઠોલાહલ મચાવી કહેવા લાગ્યા કે—જુઓ  
 જુઓ આ માણસ માથે મુડેલ એવા અજબ ઢગનો છે આ માણસ અહિં  
 કયાથી આવેલ છે ? (૫)

श्री—‘सयणैहिं’ इत्यादि

આગ તુક—માર્ગવહેતા માણસોને વસવા યોગ્ય સ્થાનોનું નામ શયન છે આ શયનોમા  
 અનેક પ્રકારના માણસો આવી રોકાય છે, અને ચાલ્યા બન્ય છે આવા સ્થાનોમા કઠીક  
 મુનિ પણ રોકાય છે અને બીજા ગૃહસ્થજન અને અન્યતીર્થિક બીજા ધર્મવાળા માણસો



तः सन् स्त्रीभिः पार्ष्णिभ्यो भवति वेत् तदा स स्त्रियः परिज्ञाय=इ-परिज्ञया 'इमाः सपमसरणिमतिरोषिकाः' इति ज्ञात्वा, प्रत्यास्याम-परिज्ञया परिश्र्जयन् 'मुनिः सागारिकं=मैपुर्न न सेवेत्' इत्येवं स्वधर्ममनुस्मरन् स=भगवान् महावीरः भी वर्षमानस्वायी वैराग्यमार्गे स्वयं=स्वमात्मानं प्रवेद्य ध्यायति=धर्मध्यानं करोति स्म ॥ सू० ६ ॥

यदि मार्गे गृहस्था आगत्य मित्थन्ति पृच्छन्ति, तदानीमपि भगवतो ध्यानम-ज्ञो नासूचित्याह—'जे के इमे' इत्यादि ।

मूम्-जे के इमे अगारस्था, मीसीभावं पहाय से झाई ।

पुढो वि नाभिभासिसु, गच्छइ नाइवत्तइ अजू ॥ ७ ॥

जाया—ये केबिइ इमे अगारस्थाः मिधीभावं प्रहाय स ध्यायति ।

पृष्टोऽपि नाम्यमापत्, गच्छति नातिर्वर्षते ऋजुः ॥ ७ ॥

जन मी ठहर हों और उनमेंस कोई कामिनी उस मुनिसे अपनी वैपयिक अभिलाषा प्रकट करे तब वह मुनि उस स्त्रीको 'यह संयम मार्गकी प्रतिरोषिका है' ऐसा ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञासे सर्वथा उसका परिहार कर वेचे, और इसकी वैपयिक अभिलाषाकी पूर्ति न करे, इस प्रकारके अपने धर्मका विचार करते हुए वे भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमें अपने आपको ओत-प्रोत कर धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥ ६ ॥

मार्गमें चलते हुए भगवानको यदि गृहस्थजन आकरके मित्थसे और कुछ पूछते तो मी भगवानका ध्यानभंग नहीं होता, इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जे के इमे' इत्यादि ।

पद्य रहे छे. आमां डेअं स्त्री आ स्थानमां शोभयेवा मुनिजनधी पीत्तानी वैपयिक अभिलाषा प्रकट करे जे समये मुनि "स्त्री स बधभाजनने अपशेष करनार छे" जेतुं ज-परिज्ञाधी आवी प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञाधी जेने त्वाज करी हे आने जेने वैपयिक-विषयसजधी अभिलाषानी पूर्ति न करे, आ प्रहारधी पीत्तान्य धर्मने विचार करवा अत्रवान् महावीर वैस्यधर्मार्जमां पीत्ताने ज्योत-प्रोत अत्रधी धर्मध्यानमां भंग रहे छे (६)

धर्ममां आकटां अत्रवानने डेअं अहस्थजन आरीने भजे आने पुठपसठ करे तो पद्य अत्रवानन्य ध्यानने अत्र नदि बते आ बातने सूत्रकार प्रकट करे छे— ज के इमे इत्यादि

તં તથા વ્રજન્તમવલોક્ય વાલકા ઉપસર્ગ ચકુરિત્યાહ—‘ અથ ચક્ષુર્મીતાઃ ’  
 ઇત્યાદિ ।

અથ=અનન્તરં, ચક્ષુર્મીતાઃ=અત્ર ચક્ષુઃશબ્દેન દર્શન ગૃહ્યતે, દર્શનાદ્મીતાઃ  
 મગવન્તં વિલોક્ય ભયમુપગતાઃ, અત એવ સંહિતાઃ=મિલિતાઃ, તે=વાલકા હત્વા  
 હત્વા=ધૂલિપ્રક્ષેપાદિભિઃ પુનઃ પુનસ્તાહયિત્વા ચક્રન્દુઃ=અન્યાન્ વાલાનાહ્યન્તિ સ્મ,  
 ‘ ઇહાગચ્છત પશ્યત મુષ્ટિતોઽય ’—મિતિ, તથા—‘ કિદેશીયઃ કુતઃ સમાયા-  
 તોઽય ’—મિતિ કલકલશબ્દ ચકુરિત્યર્થ. ॥ ૫ ॥

કિંચ—‘ સયજોર્હિં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સયજોર્હિં વિતિમિસ્સેહિં, ઇત્થીઓ તત્થ સે પરિજ્ઞાય ।

સાગારિયં ન સેવેઙ્ ય, સે સયં પવેસિયા જ્ઞાઙ્ ॥ ૬ ॥

જ્ઞાયા--શયનેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ સ્ત્રિયસ્તત્ર સ પરિજ્ઞાય ।

સાગારિક ન સેવેત ચ સ સ્વયં પવેશ્ય ધ્વાયતિ ॥ ૬ ॥

ટીકા—શયનેષુ=શય્યતે યત્ર તાનિ શયનાનિ=આગન્તુકાર્થવાસસ્થાનાનિ,  
 તેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ=કુતચિત્ કારણાત્ ગૃહસ્થૈસ્તીર્થિકૈશ્ચ સયુક્તેષુ સત્સુ તત્રાવસ્થિ-

ભગવાનકો ઇસ તરહ વિહાર કરતે હુણ દેખકર ભયસે યુક્ત હો વાલક  
 મિલકર ઉનકે ડપર ધૂલિ આદિ ઢાલર કર ઉપસર્ગ કરને લગે ઓર  
 કોલાહલ કરતે હુણ કહને લગે કિ-આઓ દેખો યહ મનુષ્ય મુઢિત હૈ,  
 યહ અજબ ઢગકા આદમી કહાંસે આયા હૈ ॥૬॥

ઔર મી—‘ સયજોર્હિં ’ ઇત્યાદિ ।

આગન્તુક—પથિક જનોંકે લિયે વસને યોગ્ય સ્થાનોંકા નામ શયન હૈ ।  
 ઇન શયનોંમેં અનેક પ્રકારકે વ્યક્તિ આકર ઠહરતે હૈં ઔર ચલે જાતે હૈં, એસે  
 સ્થાનોંમેં યદિ મુનિજન ઠહરેં ઔર વહીં પર ગૃહસ્થજન યા અન્ય તીર્થિક-

ભગવાનને આ રીતે વિહાર કરતા જોઈ બચ્ચીત બનતા બાળકોએ ધુળ  
 ઢાકરા વગેરે તેમના ઉપર નાખવા માડ્યા, અને તમાસો જોવાના નિમિત્તે ધીજાં  
 બાળકોને પણ જોલાવવા લાગ્યા અને ઢોલાહલ મચાવી કહેવા લાગ્યા કે—બુઝો  
 બુઝો આ માણસ માથે મુ ડેલ એવા અજબ ઢગનો છે આ માણસ અહિં  
 કયાથી આવેલ છે ? (૫)

દ્વરી—‘ સયજોર્હિં ’ ઇત્યાદિ

આગ તુક—માર્ગવહેતા માણસોને વસવા યોગ્ય સ્થાનોનું નામ શયન છે આ શયનોમા  
 અનેક પ્રકારના માણસો આવી રોકાય છે, અને ચાલ્યા નાચ છે. આવા સ્થાનોમાં કદીક  
 મુનિ પણ રોકાય છે અને ધીજા ગૃહસ્થજન અને અન્યતીર્થિક ધીજા ધર્મવાળા માણસો

मापते—अप्रधीति, नाप्यनभिवाचयद्गुणम् कुप्यतीत्यपि उपसर्गार्थतयाऽवगन्तव्यम्।  
प्रतिकूलोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानमज्ञो नाभूद्विस्थाह—'इत्पूर्व' इत्यादि।  
उपसर्गार्थदेहादौ विद्वन् अल्पपुण्यैः—हीनपुण्यैर्धर्मसंस्कारहितैरनार्थैश्चैतपूर्वः  
पूर्व इतः, तथाकृपितपूर्वः—विस्मितपूर्वः केचनानादिभिः पूर्वं विस्मितोनामिमापते,  
न कृपायमावं प्राप्तवानित्यर्थ ॥ ८ ॥

किञ्च—'फरुसाइ' इत्यादि।

मूषम—फरुसाइ दुत्तितिक्रसाइ, अइअच्च मुणी परवकममाणे।

आघायनदृगीयाइ, ददजुद्धाइ मुट्टिजुद्धाइ ॥९॥

प्राया—परुयाणि दुस्तिविक्षामि अतिगत्य धुनिः पराक्रममाण ।

भाम्यातदृत्पगीतानि दण्डपुद्गानि मुष्टियुद्गानि ॥ ९ ॥

चाहें कि हम 'मी' इस प्रकारके मांभमें अपने जीवनको डालें तो यह नहीं  
हाल सकते। भगवान अपने को बचना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं  
पोलते और उपलक्षणसे नहीं बचनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान्  
के ऊपर चाहे कितनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो 'मी' वे  
अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देशादिकमें बिहार करते  
समय भगवान धर्मसंस्कारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी  
ताड़ित हुए, और केचानादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःखित 'मी' किये  
गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान्  
उनके प्रति कृपायमावसे सपन्न नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और 'मी'—'फरुसाइ' इत्यादि।

हे दुः पक्षु अथ प्रकारे भासा एचनने लक्ष्मि अठ तो जे प्रमावे ते करी शके  
नहीं—जे प्रकारेने बाग धणी शके नहीं सजवाननी बडना कश्चा अपवत्ता  
भाजुसे चाहे तेजो प्रेमभी जालता नहीं; अने उपलक्षणधी नहीं पांढवापण्य  
ऊपर क्रोध करता नहीं तेमन्ता ऊपर अने तेदवा प्रतिकूल अने अनुकूल उप  
सर्ग आवे तो पक्षु तेजो पीताना ध्यानधी विचलित भवा नहीं अनार्य देश  
दिकमां बिहार कस्ती बभते धर्मसंस्कारी रक्षित जेवा हीनपुण्य अनार्योंधी सज  
जानने अनेके प्रकारेना कष्टो सडेषा पडेबां, इह विजैरनी ताडनाधी तेमन्  
भाधन्ता पाण बडरी जेजवा विजैरधी सजवानने अनेके रीते दुःख पडेबां  
जमां आवेला कंकस, तेमन् पधस विजैरना प्रकारे कस्याभा आन्धा कता  
तो पक्षु जेमन्ता तरर कणवकपपन्न नदि यथा. (८)

इरी—फरुसाइ अर्थादि.

टीका—ये केचिद् इमे अगारस्थाः=गृहस्थाः आगत्य समिलन्ति तैर्मिथी-  
भाव=सहवास प्रहाय=परित्यज्य सः=भगवान् ध्यायति=ध्यानमेवावलम्बते स्म ।  
तथा-तैः कश्चिद् विषयं पृष्टोऽप्यपृष्टो वा स ऋजुः सरलहृदयो भगवान् नाभ्य-  
भाषत, किन्तु-गच्छति ईर्यासमितः सन् मार्गं व्रजत्येव, तथा नातिवर्तते=मोक्ष-  
मार्गं व्यानं वा न परित्यजति स्मेत्यर्थः ॥ ७ ॥

किञ्च—‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

मूलम्—णो सुकरमेयमेगोसिं, नाभिभासए अभिवायमाणे ।

हयपुण्वे तत्थ दंडेहिं, लूसियपुण्वे अप्पपुण्णेहिं ॥८॥

छाया—नो सुकरमेतद् एकेपां नाभिभाषते अभिवादयतः ।

हतपूर्वः तत्र दण्डै लूषितपूर्वः अल्पपुण्यैः ॥ ८ ॥

टीका—एतद्=उक्तं वक्ष्यमाण च, भगवच्चरितं एकेषाम्=अन्येषां नो सुकर  
=न कर्तुं शक्यम्, तदेव दर्शयति-अभिवादयतः=अभिवन्दनं कुर्वतो जनान्, नाभि-

जो कोई गृहस्थजन आकरके भगवानसे मार्गमें मिलते तो वे उनके साथ सहवास नहीं करते, और अपने ध्यान हीमें मग्न रहते। उनके द्वारा किसी विषयको लेकर पूछे गये अथवा नहीं पूछे गये वे सरल हृदयवाले भगवान् उनसे बोलते-चालते नहीं, मार्गमें ईर्यासमितसे ही चलते रहते। मोक्षमार्ग अथवा ध्यानकी ओरसे वे अपने चित्तको नहीं हटाते थे ॥ ७ ॥

फिर भी—‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

यह कहा हुआ और आगे कहा जाने वाला भगवानका चरित्र अन्य मनुष्योंके लिये सुकर-आचरण करना सहज-नहीं है, अन्य मनुष्य

जे डोई गृहस्थ जन आर्वा मार्गमा भगवानने मणता ते तेमनी साथे भगवान सहवास करता न छता अने पोताना ध्यानमा न भक्ष रहता छता पूछवाभा आवती अथवा नहीं पूछवाभा आवती डोई पक्ष वातने भगवान नवाभ आपता नहीं-डोईनी साथे गोलता आलता नहीं मार्गमा इर्यासमितिथी आलता रहता मोक्षमार्गथी अने ध्यानना तरक्षथी तेओ पोतानु चित्त नरा पक्ष पीछ तरक्ष इश्वता नहीं ( ७ )

इरी—‘णो सुकर०’ इत्यादि

आ उडेवाभा आवेद अने आगण उडेवाभा आवतार भगवाननु चरित्र पीछ भाषसे माटे ओ रीतथी आचरक्ष करनु सडेन नहीं डोई भाषस विचारि

मापते—न प्रवीति, नाप्यनभिवाद्ययज्ञघ्न कुप्यतीत्यपि उपलक्ष्यार्थतयाऽवगन्तव्यम्।  
 मरिचसोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानमज्ञा नासूदित्याह—‘इत्पूर्वः’ इत्यादि।  
 तत्र—अनार्यदंष्ट्रादौ विहरत् अल्पपुण्यैः—हीनपुण्यैर्धर्मसम्हारश्चित्तरनार्थदंष्ट्रैश्चत्पूर्वः  
 पूर्व इतः, तथाऽपि तत्पूर्वः—द्विसितपूर्व केन्द्रलक्षणादिभिः पूर्वं द्विसितो नामिमापते,  
 न कृपायमात्र प्राप्तवानित्यर्थः ॥ ८ ॥

किञ्च—‘फरुसाह’ इत्यादि।

मूकम्—फरुसाह दुत्तितिक्रसाह, अइमच्च मुणी परक्कममाणे।

आघायनदृगीयाह, ददजुद्धाह मुद्विजुद्धाह ॥९॥

जया—फरुपाणि दुस्वितिसाणि भतिगस्य मुनिः पराक्रममाणः।

भास्यातदृत्पगीतानि दम्बपुद्गानि मुद्विपुद्गानि ॥ ९ ॥

चाहें कि हम भी इस प्रकारके मांभमें अपने जीवनको बालें तो ये नहीं  
 बाल सकते। भगवान् अपने को बचना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं  
 बोलते और उपलक्षणसे नहीं बचनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान्  
 के ऊपर चाहें कितनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो भी ये  
 अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देशादिकमें विहार करते  
 समय भगवान् धर्मसम्हारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी  
 ताड़ित हुए, और कशालुखनादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःस्थित भी किया  
 गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान्  
 उनके प्रति कृपायमात्रोंसे सपन्न नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और भी—‘फरुसाह’ इत्यादि।

हे तुं पक्षु आ प्रकारे भाश एवने लक्ष्णं लक्ष तो जे प्रभावे ते करी शके  
 नहीं—जे प्रकारने बाण दानी शके नहीं भगवान्नी वचना करुण आवता  
 भाषसे साथे तेजो प्रेमभी बोलता नहीं; जने उपलक्ष्युधी नहीं वास्तवावाण  
 ऊपर क्रोध करता नहीं तेमना ऊपर जमे तेदला प्रतिकूल जने अनुकूल उप-  
 सर्ग आवे तो पक्षु तेजो धेताना ध्यानधी विचलित भला नहीं अनार्य देश-  
 दिग्भां विदार करती वजने धर्मसंघाधी रहित जेवा हीनपुण्य अनार्योंधी भज  
 वजने जनेक प्रकारना कथे सहेषा पडेला इह विजिरेनी ताडनाधी तेमज  
 भाषाना वण शरी जेवना विजिरेधी भगवानने जनेक शीते दृष्ट पक्षोवाक  
 कर्मा आवेला कंठश, तेमज पक्षु विजिरेना प्रकारे करुणभा आवता इता  
 तो पक्षु जेमना वरु कृपायमात्रपन्न नहि भया (८)

इरी—फरुसाह इत्यादि।

टीका—मृनिः=श्रीवर्धमानस्वामी, परुपाणि=कठोरवचनानि, दुस्तितिक्षाणि  
=अन्यैः प्राकृतपुरुषैर्दुःसहानि अतिगत्य=अविगणय्य, पराक्रममाणः=सम्यक्-  
तितिक्षावान् भवति, तथा-आख्यातनृत्यगीतानि=आख्यातानि नृत्यगीतानि उद्दि-  
श्य कौतुकं न करोति, तथा-दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि दृष्ट्वा श्रुत्वा वा नापि रोमा-  
ञ्चितो भवति ॥ ९ ॥

किञ्च—‘गडिण’ इत्यादि ।

मूलम्—गडिण मिहोकहासु, समयमि नायसुए विसोगे अदक्खू ।

एयाइं से उरालाइं, गच्छइ नायपुत्ते असरणाए ॥ १० ॥

छाया—गृहः मिथःकथासु समये ज्ञातसुत विशोकः अद्राक्षीत् ।

एतानि स उदारणि गच्छति ज्ञातपुत्रः अशरणाय ॥ १० ॥

टीका—समये=एकस्मिन् काले कदाचित् ज्ञातमुतः=भगवान् महावीरः श्री  
वर्धमानस्वामी मिथःकथासु=परस्पर कामसम्बन्धिवातालापेषु गृह्णा=आसक्ताः  
स्त्रीः, विशोकः=रागरहितः सन् अद्राक्षीत् । स ज्ञातपुत्रः=भगवान् अशरणाय=शरणं=

मुनि श्री वर्धमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी भी जिन्हें सहन न  
कर सकें ऐसे कठोर वचनोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर सम्यक् प्रकारसे  
सहन करने वाले हुए—सर्व प्रकारसे अच्छी तरह सहनशील बने । तथा  
आख्यात ( कथा-वार्ता ) नृत्य और गीतकी तरफ आश्चर्यसे युक्त  
न हुए, एवं दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्धोंको देखकर या सुनकर रोमाञ्चित-  
आश्चर्यचकित भी न बने ॥९॥

फिर भी—‘गडिण’ इत्यादि ।

एक समय की बात है कि भगवान् महावीरने परस्पर कामसंबंधी-  
वार्तालापोंमें आसक्त स्त्रियोंको देखा तो भी वे उस ओरसे वीतराग

मुनिश्री वर्धमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी पक्ष में सहन न करी  
शके जेवा कठोर वचनोनी तरफ नरा पक्ष ध्यान न दध सम्यक् प्रकारथी सहन  
करवावाणा तथा-सर्व प्रजास्थी तेज्जा सहनशील वृत्तिना अन्य आख्यात(कथावाता)  
नृत्यो अन्ये गीतोमा तेज्जाने आश्चर्य थयेल नडी, तेम इउयुद्ध अन्ये मुष्टियुद्धने जेध  
तथा सावणी रोमाञ्चित-आश्चर्यचकित अन्या न डता (९)

इरी—‘गडिण’ इत्यादि

जेक समयनी बात छे के भगवान महावीर परस्पर कामसंबंधी वार्ता-  
लापोमा श्रीजाने आसक्त जनेली जेवा छता पक्ष जे पारामा जेज्जा वीतरागी

यह यत्र नास्तीत्युद्धरणः—सयमस्तस्मै, संयमाराधनार्थम्, एतानि—अनुकूल—प्रति-  
कूलानि परीपहोपसर्गरूपाणि उदारार्थि—अन्यजनैर्दुःस्थानि गच्छति—अधिक्रामति,  
परीपहोपसर्गः प्रतिबद्धो न भवतीति भावः ॥ १० ॥

तत्र भगवता वीक्षाग्रहणात् पूर्वं साधिक्यर्पणयतः श्रोतत्रम् परिबर्निवमित्याह—  
—‘अबिसाहिप’ इत्यादि ।

मूय्—अबि साहिप दुवासे, सीतोदं अभोच्छा णिक्खते ।

एगत्तगप पिहियच्चे, से अहिह्मायदंसणे संते ॥११॥

छाया—अपि साधिके द्वे षपे वीतादकम् अस्तुत्वा निष्कान्तः ।

एकस्वगतः पिहितार्थं स अमिह्मातदर्शनं श्रान्तं ॥ ११ ॥

टीका—अपि च—स भगवान् साधिके द्वे षपे वीतादकम्—सच्चित्तजलम्,  
अस्तुत्वा—अपीत्वा, एकस्वगतः—एकत्वभावनामाभित—‘अहमेक एवासहायाऽस्मि  
नास्ति मम कश्चिदात्मकल्याणार्थं द्वितीय महाप, अपि च नास्ति कनाऽपि सह

ही रहे, अर्थात् उनकी ओर भगवान्ने रागसहित दृष्टि भी नहीं रखी ।  
ज्ञानपुत्र भगवान् अहारण रहे—संयमकी आराधनाके लिये अन्यजनोका  
हारण नहीं लिया, एवं वुसह प्रतिकूल और अनुकूल परीपहोके आने  
पर भी अडोल रहे ॥ १० ॥

भगवान्ने वीक्षाग्रहण करनके पहिले कुछ अधिक दो षपोंसे शीत  
सह—सच्चित्त पामीका त्याग कर दिया था, इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित  
करते हैं—‘अबि साहिप’ इत्यादि ।

भगवान्ने कुछ अधिक दो षपों से सच्चित्तजलका त्याग करदिया था,  
अर्थात्—सच्चित्तजल नहीं पिया । इस एकत्व भावनासे कि—‘मैं एक  
हूँ और असहाय हूँ—आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आनवाले मेरे लिये

न रहा अर्थात् भगवान्ने तेमन्त वरह सजसहितक दृष्टि रही ज्ञानपुत्र भगवान्  
अहारणक रहा—संयमना आराधना भाटे जीवन्तु सारण न बीधु जने त्रमे तेना  
प्रतिपुण के अनुकूल प्रतिबद्धो—दुःसह के जे आवण कथा पणु अठेठ रहा (१०)  
भगवाने वीक्षा वीधा पडेलां जे वर्षभी पणु वधारे समथयी कय पावुनिने  
त्याज करी दीपेले, अ वाव सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—अबि साहिप अर्थादि  
भगवाने जे वर्षभी पणु वधारे समथयी कय पावुनिने त्याज करी दीपेले  
—अर्थात्—कु (असु) पावुनी पीपिल नही, अ जेअल—भावनाभी क— कु जेअ कु  
जने असहाय छे आत्मकल्याणका मार्गमें आगे आनवाले मेरे लिये

टीका—मुनिः=श्रीवर्धमानस्वामी, परुपाणि=कठोरवचनानि, दृस्तितिक्षाणि  
=अन्यैः प्राकृतपुरुर्यैर्दुःसहानि अतिगत्य=अविगण्य, पराक्रममाणः=सम्यक्-  
वितितिक्षावान् भवति, तथा—आख्यातवृत्त्यगीतानि=आख्यातानि नृत्यगीतानि उद्दि-  
श्य कौतुकं न करोति, तथा—दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि दृष्ट्वा श्रुत्वा वा नापि रोमा-  
ञ्चितो भवति ॥ ९ ॥

किञ्च—‘गडिण्’ इत्यादि ।

मूलम्—गडिण् मिहोकहासु, समयमि नायसुष् विसोगे अदक्खू ।

एयाइं से उरालाइं, गच्छइ नायपुत्ते असरणाए ॥ १० ॥

छाया—गृद्धः मिथःक्यासु समये ज्ञातसुत विशोकः अद्राक्षीत् ।

एतानि स उदारणि गच्छति ज्ञातपुत्रः अशरणाय ॥ १० ॥

टीका—समये=एकस्मिन् काले कदाचित् ज्ञातसुतः=भगवान् महावीरः श्री  
वर्धमानस्वामी मिथःक्यासु=परस्पर कामसम्बन्धिवातालापेषु गृद्धा=आसक्ताः  
स्त्रीः, विशोकः=रागरहितः सन् अद्राक्षीत् । स ज्ञातपुत्रः=भगवान् अशरणाय=शरणं=

मुनि श्री वर्धमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी भी जिन्हे सहन न  
कर सकें ऐसे कठोर वचनोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर सम्यक् प्रकारसे  
सहन करने वाले हुए—सर्व प्रकारसे अच्छी तरह सहनशील बने । तथा  
आख्यात ( कथा—वार्ता ) नृत्य और गीतकी तरफ आश्चर्यसे युक्त  
न हुए, एवं दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्धोंको देखकर या सुनकर रोमाञ्चित-  
आश्चर्यचकित भी न बने ॥९॥

फिर भी—‘गडिण्’ इत्यादि ।

एक समय की बात है कि भगवान् महावीरने परस्पर कामसंबंधी-  
वार्तालापोंमें आसक्त स्त्रियोंको देखा तो भी वे उस ओरसे वीतराग

मुनिश्री वर्धमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी पशु जेने सहन न करी  
शके जेवा कठोर वचनोनी तरह नरा पशु ध्यान न दछ सम्यक् प्रकारशी सहन  
करवावाणा तथा—सर्व प्रकारशी तेज्यो सहनशील वृत्तिना अन्या आप्यान(इथावार्ता)  
नृत्यो अने गीतोभा तेज्योने आश्चर्य धयेव नही, तेम दडयुद्ध अने मुष्टियुद्धने जेछ  
तथा साधारणी रोमाञ्चित—आश्चर्यचकित अन्या न छता (९)

इरी—‘गडिण्’ इत्यादि

जेक समयनी बात छे के भगवान महावीरे परस्पर कामसंबंधी वार्ता-  
लापोभा श्रीयोने आसक्त अनेवी जेवा छता पशु जे पारामा जेज्यो वीतरागी



मगधता पृथिव्यादिपद्मनीचनिकापारम्भ परिवर्तितः, इत्याह—‘पयाह’  
इत्यादि ।

मूत्रम्—“ पयाह सति ” पडिलेह, चित्तमताइ से अभिज्ञाय ।

परिवर्जिय विहरित्था, इय संस्त्राय से महावीरे ॥१३॥

छाया—“ एतानि सन्ति ” प्रतिष्ठेस्य चित्तमन्ति स अमिज्ञाय ।

परिवर्ज्यं विहरति स्म इति सम्भ्याय स महावीर ॥ १३ ॥

गीष्ठा—म भगवान् महावीरः ‘एतानि पृथिव्यादीनि चित्तमन्ति’ सन्ति इति  
प्रतिष्ठेस्य=विचार्य, तद् अमिज्ञाय स्वरूपतो ज्ञात्वा, इति=एवं सख्याय=मेद-प्रमे-  
द्याया सर्वज्ञो विज्ञाय, उदारम्भं परिवर्ज्यं विहरति स्म ॥१३॥

श्रीवानां प्रसन्नानुरक्त्वेन मदमृगपदभ्रं तेषां परम्परानुगमनं भवतीति बोधयि-  
तुमाह—‘अदु धावरा’ इत्यादि ।

मूत्रम्—अदु धावरा य तसत्ताप, तसा य धावरत्ताप ।

अदुवा सवधजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो थाला ॥ १४ ॥

मगधानके द्वारा पृथिवी आदि छह जीवनिकार्योकर आरम्भ त्यक्त  
हुआ, इसी विषयको सूत्रकार पुन प्रदर्शित करते हैं—‘पयाह सति’ इत्यादि।

भगवान् महावीरने इन पृथिवी आदि पद्मजीवनिकार्य के जीवोकि  
आरंभका परित्याग यह विचारकर किया कि—“ये ममस्त पृथिवी आदिक  
सचित्त-सजीव हैं”। तथा “इन सबका स्वरूप क्या है?” इसे भी अच्छी  
तरहसे जानकर एवं इनके मेद और प्रमेदोका सबीक्षणसे मनन कर  
उनके आरंभसे रहित हो वे प्रभु विहार करते थे ॥१३॥

घस और स्थावररूपसे जीवोकि मेदोको समझाने के लिये सूत्रकार  
कहत है—“अदु धावरा” इत्यादि ।

भगवान् द्वारा पृथ्वी विज्ञेरे पद्मजीवनिकार्योको आरम्भ त्यक्तानां आवेदोः  
आ विषयने सूत्रकार पुन प्रदर्शित करे थे—‘पयाह सति’ इत्यादि।

भगवान् महावीर आ पृथ्वी विज्ञेरे पद्मजीवनिकार्योको आवेदनां आरम्भने  
पक्षिणां को विचारने करेदो है को लया सचित्त-सजीव थे तथा आ लयानु  
स्वरूप शुं थे ? जेने पद्म आरी रीते लक्ष्मी जेना खेड जने प्रसेदोने सपुषु रीते  
विचारी जेना आरम्भो रचित अर्धप्रभु विचार करवा कता. (१३)

लवेजना तस जने स्थावररूपना खेदोने समभावया भाटे सूत्रकार कहेथे—  
अदु धावरा इत्यादि।

शाश्वतिकः पारमार्थिक सम्बन्धो ममे'—त्यादिरूपामेकत्वभावनामुपगत इत्यर्थः, तथा पिहितार्चः=अर्चा=क्रोधज्वाला पिहिता=उपशमिता येन स तथाविधः, तथा—अभिज्ञातदर्शनः=सम्यक्त्वभावनाभावितः, अत एव शान्तः सन् निष्क्रान्तः=दीक्षां जग्राह ॥ ११ ॥

किञ्च—'पुढविं च' इत्यादि ।

मूलम्—पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च ।

पणगा य बीय-हरियाइं, तसकायं च सठ्वसो णच्चा ॥ १२ ॥

छाया—पृथिवीं चापूकायं तेजस्कायं च वायुकाय च ।

पनकाश्च बीजहरितानि त्रसकायं च सर्वशो ज्ञात्वा ॥ सू० १२ ॥

टीका—भगवान् पृथिवीं=पृथिवीकायं, अपूकाय, तेजस्कायं, वायुकायं पनकान्=शैवालान्, बीजहरितानि=वनस्पतीन् त्रसकायं च ज्ञात्वा='सर्व एवैते सजीवा.' इत्यवबुध्य सर्वशः=सर्वप्रकारेण तदारम्भ परिवर्जयन् विहरति स्मेत्यर्थः ॥ १२ ॥

इस मार्गमें कोई और दूसरा सहायक नहीं है, मेरा किसीके भी साथ निरन्तर पारमार्थिक संबध नहीं है" ऐसा विचार कर सदा एकत्व भावनामें तत्पर रहे । क्रोध-कषायकी ज्वालाको प्रभुने उपशमित की । सम्यक्त्वकी भावनासे भावित प्रभुने इसी लिये शान्तचित्त बन दीक्षा अंगीकार की ॥ ११ ॥

और भी—'पुढविं च' इत्यादि ।

भगवान्ने पृथिवीकाय, अपूकाय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल, और बीज-हरितादिरूप वनस्पतिकाय, एव त्रसकाय, इन छह कायके जीवोंको " ये सब ही जीवसहित हैं " ऐसा जानकर सर्वप्रकारसे उनके आरंभका परित्याग करते हुए ही विहार किया ॥ १२ ॥

आ मार्गमा कोई जीने सहायक नहीं, मेरा कोईनी साथे निरन्तर पारमार्थिक सणध नहीं" आये। विचार करी प्रभु सदा ऐकत्व भावनामा तत्पर रहैता कोधकषायनी ज्वालाणे प्रभुणे सभावी हीधी डती सम्यक्त्वनी भावनाधी भावित प्रभुणे आने व माटे शान्तचित्त यनी दीक्षा अंगीकार करेदी (सू० ११)

इरी—'पुढविं च' इत्यादि

लगवाने पृथ्वीकाय, अपूकाय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल अने जीव हरितादिरूप वनस्पतिकाय अने त्रसकाय, आ छ कायना लुवोने "आ गधा लुवमडित छे" ऐवु लक्ष्मी सर्व प्रकारेधी येना आरबोना परित्याग करता करता व विहार करेदी (१२)

भगवता पृथिव्यादिपद्मजीविकापारम्भः परिवर्जित', इत्याह—'पयाइ' इत्यादि ।

मूष्म्—“ पयाइ सति ” पडिलेह चित्तमताइं से अभिधाय ।

परिवर्जिय विहरित्या, इय सखाय से महावीरे ॥१३॥

छाया—“ एतानि सन्ति ” प्रतिष्ठेस्य चित्तमन्ति स अभिधाय ।

परिक्वर्ज्यं विहरति स्म इति सख्याय स महावीर ॥ १३ ॥

टीका—स भगवान् महावीरः “एतानि पृथिव्यादीनि चित्तमन्ति” सन्ति इति प्रतिष्ठेस्य=विचार्यं, तद् अभिधाय स्वरूपतो ज्ञात्वा, इति=एवं सख्याय=भद्र-प्रय राग्यां सर्वोक्तो विधाय, तदारम्भं परिक्वर्ज्यं विहरति स्म ॥१३॥

जीवानां प्रसथारस्येन मद्मपुपदृश्यं तेषां परम्परानुगमनं मक्तीति बोधयि तुमाह—'अदु धावरा' इत्यादि ।

मूष्म्—अदु धावरा य तसत्ताए, तसा य धावरत्ताए ।

अदुवासव्वज्जोणिया सत्ता, कम्मूणा कप्पिया पुढो षाला ॥ १४ ॥

भगवानके द्वारा पृथिवी भादि छह जीवनिकार्योका आरम्भ स्पष्ट हुआ, इसी विषयको सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करते हैं—'पयाइ संति' इत्यादि ।

भगवान् महावीरने इन पृथिवी आदि पद्मजीविकाय के जीविके आरम्भका परित्याग यह विचारकर किया कि—“ये समस्त पृथिवी आदिक सन्ति—मजीव हैं”। तथा “इन सपका स्वरूप क्या है?” इसे भी अच्छी तरहसे जानकर एवं इनके भेद और प्रमेदोका सर्वोपशरूपसे मनन कर इनके आरम्भसे रहित हो वे प्रभु विहार करते थे ॥१३॥

प्रस और स्थावररूपसे जीविके भेदोको समझाने के लिये सूत्रकार कहते हैं—“अदु धावरा” इत्यादि ।

भगवान द्वारा पृथ्वी विज्ञेरे पद्मजीविकायेने आरम्भ तज्जामां आवेदो आ विषयने सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करे छे— पयाइ सति इत्यादि ।

भगवान महावीरे आ पृथ्वी विज्ञेरे पद्मजीविकायेना लोकेना आरम्भने पक्षियाय जे विचारने करेदो हे जे लया सचित्त-सलप छे, तथा आ लघानु स्वरूप हु छे । जेने पक्षु सासी सेवे लोकी जेना सेह जेने प्रसेदोने स पूषु रीते विचारो जेना आरम्भो रहित अर्ध प्रभु विहार करत्ता हत्ता (१३)

लोकेना प्रस जेने स्थावररूपना सेदोने समझाववा भा सूत्रकार कहेछे— अदु धावरा इत्यादि ।

छाया—अथ स्थावराश्च व्रसतया, व्रसाश्च स्थावरतया ।

अथवा सर्वयोनिक्ताः सच्चाः कर्मणा कल्पिताः पृथग् बालाः ॥१४॥

टीका—अथ=अनन्तरं स्थावराः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः व्रसतया=कर्म-  
प्रभावाद् द्वीन्द्रियादिरूपेण जायन्ते, व्रसाश्च=व्रसजीवा द्वीन्द्रियादयश्च स्थावरतया=  
पृथिव्याद्येकेन्द्रियरूपेण पुनरुत्पद्यन्ते, अथवा सर्वयोनिक्ताः=सर्वयोनय=उत्पत्ति-  
स्थानानि येषां ते सर्वयोनिक्ताः=चतुर्गतिगन्तारः, सच्चाः=जीवाः, बालाः=मूढाः,  
कर्मणा=स्वोपात्तेनाष्टविधकर्मणा पृथक्=पृथक्त्वेन- सर्वयोनिगामित्वेन च कल्पिताः=  
व्यवस्थिता इति । तथा चोक्तम्—

पृथिवी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति, ये सब स्थावरकाय-एके-  
न्द्रिय जीव हैं । ये कर्मके प्रभावसे द्वीन्द्रियादिक रूपसे परभवमें उत्पन्न  
हो जाते हैं । द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, और पचेन्द्रिय जीव, ये व्रस  
हैं, क्यों कि इनके व्रस नामकर्मका उदय रहता है । ये व्रस जीव भी  
कर्मकी विचित्रतासे स्थावर-पृथिवी आदिक एकेन्द्रियरूपसे दूसरे भवमें  
उपन्न हो जाते हैं । अथवा-समस्त योनियां हैं उत्पत्तिस्थान  
जिन्होंकी ऐसे सर्वयोनिक-चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाले-जीव अज्ञानसे  
आवृत्त बन अपने-द्वारा उपात्त-ग्रहण किये गये अष्टविध कर्मके प्रभा-  
वसे भिन्न रूपमें सर्व योनियोंमें जाने वाले होते हैं । तात्पर्य यह कि-  
हर एक भिन्न योनिमें रहता हुआ जीव कर्मके उदयसे परभवमें दूसरी  
योनिमें जन्म धारण कर सकता है । ऐसा नहीं है कि वह एक ही योनिमें  
नियमितरूपसे जन्म लेता रहे । सो ही कहा है—

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु अने वनस्पति, आ अथा स्थावरकाय ऐकेन्द्रिय  
एव छे ऐ कर्मना प्रभावधी द्वीन्द्रियादिक इपथी परभवमा उत्पन्न थर्ष नय  
छे ऐकेन्द्रिय, त्रिषुइन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाच इन्द्रिय एव ऐ व्रस छे, ऐमके  
ऐमने व्रसनामकर्मना उदय रहे छे आ व्रस एव पञ्च कर्मनी विचित्र  
ताधी पृथ्वी आदि स्थावर-ऐकेन्द्रिय-इपथी भील भवमा उत्पन्न थाय छे  
अथवा-समस्त योनीयो ऐमनु उत्पत्तिस्थान छे ऐवा सर्वयोनिक-चार  
गतिमा भ्रमण उरवावाणा एव अज्ञानधी आवृत्त धनी पालपोताना द्वारा उपात्त  
-ग्रहण करवाभा आवेद अष्टविध कर्मना प्रभावधी लुदा लुदा इपमा सर्व  
योनीयोमा लवावाणा छेय छे तात्पर्य ऐ छे ऐ-इरेक योनीयोमा रहैल एव  
कर्मना उदयधी परभवमा भील योनिमा जन्म धारण करी शके छे ऐनु नही  
इ ऐक ज योनिमा नियमित इपथी ते जन्म लेता रहे ऐ ज कहु छे—

“रत्नभूमिर्न सा काश्चिच्छुद्धा जगति विद्यते ।

विचित्रैः कर्मनेपथ्यैर्यत्र सत्त्वेर्न नादितम्” ॥१॥ इति ॥ १४ ॥

किञ्च—‘मगध’ इत्यादि ।

मृष्य—भगव च एवमज्ञेसिं, सोषहिप द्नु लुप्पई षाले ॥

कम्म च सञ्जसा नच्चा, त पट्टियाइक्खे पावगभगव ॥१५॥

प्राया—भगवांशैषमनैपीत् सोपधिकः एष लुप्यत बालः ।

कर्म च सर्वशो ब्रह्मा तत् प्रत्याख्याति पापकं मगधान ॥ १५ ॥

टीका—मगधान् मगधीरं धीवर्धमानस्वामी एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अन्ये पीत्=मवधीत् धाम.=मोक्षगुणगत, सापधिका=उपधिना सह वर्तत इति सोपधिकः—  
दृश्यमानोपधियुक्तं सन् लुप्यत एष=छिद्यते मिद्यत एष, कर्मप्रभावात् क्लेशमनु-  
मस्येवेत्यर्थः । तस्माद् मगधान् कर्म, सर्वमकारेण ज्ञात्वा तत्=कर्म, पापकं च=  
कर्मनिबन्धन सावयव्यापार च प्रत्याख्याति=निराकृतवान् ॥ १५ ॥

“रत्नभूमिर्न सा काश्चिच्छुद्धा जगति विद्यते ।

विचित्रैः कर्मनेपथ्यैर्यत्र सत्त्वेर्न नादितम्” ॥ १ ॥

जगतमें ऐसी कोईसी भूमि शुद्ध नहीं यथी कि जहाँ पर कर्मकी विचित्र रचनासे युक्त इस जीवने अपना नाटक न किया हो ॥ १४ ॥

किर भी— मगध च’ इत्यादि ।

मगधान भी वर्धमान स्वामीमें यह पात जान ली कि जो अज्ञानी प्राणी ब्रह्म और माध उपधिसे युक्त है, वे ही कर्मके प्रभाव-उदयसे छेदे और मेदे जाते हैं, रात दिन अनेक क्लेशोंका अनुभव करते ही रहते हैं । इसी लिय प्रभुने कर्मका यह विचित्र प्रभाव सर्वप्रकारसे

रत्नभूमिर्न सा काश्चिच्छुद्धा जगति विद्यते ।

विचित्रैः कर्मनेपथ्यै,—यत्र सत्त्वेर्न नादितम्” ॥१॥

जगतमा जेना ठाई पक्ष भूमि शुद्ध नहीं यथी के ल्या कर्मनी विचित्र रचनाधी युक्त आ छेदे पंतानु नाटक न कर्तुं होय. (१४)

इति—“मगध च” इत्यादि ।

मगधान भी वर्धमान स्वामीमें आ पात अज्ञेयी के के जगत्की प्राणी इत्ये जने आव उपधिसे युक्त छे ते कर्मना प्रभाव-उदयधी छेदाय जने वेदाय छे रात दिवस अनेक क्लेशोंने अनुभव करय च रहे छे आ माटे प्रभुने

કિંચ—‘દુવિહ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—દુવિહં સમિચ્ચ મેહાવી, કિરિયામક્ખાયઽણેલિસં નાણી ।

આયાણસોયમઙ્ગવાયસોયં, જોગં ચ સઠ્ઠવસો ણચ્ચા ॥૧૬॥

જાયા--દ્વિવિધ સમેત્ય મેઘાવી ક્રિયામાખ્યાતવાન્ અનીદર્શી જ્ઞાની ।

આદાનસોતઃ અતિપાતસોતઃ યોગં ચ સર્વેશો જ્ઞાત્વા ॥ ૧૬ ॥

ટીકા--મેઘાવી=હેયોપાદેયવિવેકવાન્, જ્ઞાની=જ્ઞાનચતુષ્ટયસપન્નો ભગવાન્

દ્વિવિધ ણેયાંપથિક-સાપરાયિકભેદાદ્ દ્વિપ્રકારકં કર્મ સમેત્ય=અવબુદ્ધ્ય, તથા-

આદાનસોતઃ=આદીયતે ગૃણતે વ્યવ્યતે કર્માનેનેત્યાદાન દુષ્પ્રણિહિતમિન્દ્રિય, તદ્વપ

સોતઃ=કર્માગમનમાર્ગઃ મિથ્યાત્વાદિરૂપસ્તત્, અતિપાતસોતઃ=પ્રાણાતિપાતાદિરૂપે

જાનકર ઉક્ત કર્મકાં ઓર કર્મકે કારણભૂત પાપજનક સાવચ વ્યાપારકા

મદાકે લિયે ત્રિયોગ ઓર ત્રિકરણસે પ્રત્યાખ્યાન કિયા ॥૧૫॥

ઓર મી--‘દુવિહ’ ઇત્યાદિ ।

હેય ઓર ઉપાદેયકે જ્ઞાનસે યુક્ત, તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર જ્ઞાન-

ધારી ભગવાન શ્રીમહાવીર સ્વામીને ણેયાંપથિક ઓર સાંપરાયિકકે ભેદસે

કર્માર્થી દ્વિવિધતા સ્વચ જાનકર, તથા આદાનસોતરૂપ મિથ્યાત્વ આદિ,

અતિપાતમોતરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, ણ્વ અશુભ ઘન વચન ઓર કાયકો

“ મં ગય સર્વ પ્રકારસે કર્મવન્ધકે કારણ હે ” તેસા જાનકર સયમકા

ખનુજ્ઞાન-પાલન કાનેરૂપ ક્રિયાકા કથન કિયા, અર્થાત્ આચરણ કિયા ।

જિગ્ણે યારા કર્મોકા વધન હો વહ આદાન હે, ઓર વહ અશુભરૂપસે

પાળના ણ વિચિત્ર પ્રભાવને જાણી એ કર્મોનુ અને કર્મના કારણભૂત પાપજનક

પાપ્ય વ્યાપારનું રાહને માટે ત્રિયોગ અને ત્રિકરણથી પ્રત્યાખ્યાન કરેલ (૧૫)

કરી-‘દુવિહ’ ઇત્યાદિ

હેય અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી યુક્ત તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર

જ્ઞાનધારી ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ ણેયાંપથિક અને સાંપરાયિકના ભેદથી

કર્મોની વિવિધતા રાખે જાણી, અને આદાનસોતરૂપ મિથ્યાત્વ વગેરે, અતિપા-

તજ્ઞાનરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, એમ જ અશુભ ઘન વચન અને જાયાને “ એ બધા

ગયે પ્રકારથી કરાં બન્ધનના કારણ છે ” આલુ જાણી સયમનુ અનુજ્ઞાન-પાલન

કરવારૂપ જિગ્ણું જ્ઞાન જોટલે આચરણ કર્યું જેનાથી કર્મોનુ બધન થાય છે તે

આદાન છે, અને તે અશુભરૂપથી પ્રવૃત્ત અનેલ ઇન્દ્રિયોરૂપ હોય છે કર્મોના આવવાના

योगे=दुष्प्रवृत्तितं मनोवाक्याय सर्वत्र=सर्वप्रकारे कर्मवन्वाय वात्या अन्तोरणीम्=  
 अकृष्णक्रिया=सयमानुष्ठानरूपाम् आकृषातवान्=आचरितवानित्यर्थे ॥१६॥

द्विज—'अइवस्त्विय' इत्यादि ।

मूत्रम्—अइवत्त्विय अणाउट्टि, सयमस्रोसि अकरणयाप ।

जस्तिरधीओ परिज्ञाया सव्वकम्मावहा उ से अदक्खू॥१७॥

छाया—भविपातिकाम् अनाकुट्टि स्वयमन्यपाम् अकरणतया ।

यस्य स्त्रिय परिज्ञाताः सर्वकर्मावहा तु साऽप्राप्रीत् ॥१७॥

टोका—यो भगवान् भविपातिकं=भविपापेभ्यः=प्राणातिपातन्याऽपिष्कान्तां  
 प्राण्युपमर्दनवर्जिताम्, अनाकुट्टिम्=भाकुट्टिर्हि सा तदन्याऽनाकुट्टिः=अहिता, तामनु  
 स्सत्य, स्वयमन्यपां च अकरणतया—स्यत' परण ५ हितापरिवर्जनेन प्रवृत्तः, तथा-  
 यस्य भगवत' स्त्रियः सर्वकर्मावहा =सर्वविषयकर्मवन्वमूला इति परिज्ञाताः=अ-  
 पछिया हाताः प्रत्याख्यान-परिच्छया परित्यक्ता भवन्ति, स भगवान् भ्याक्षीत्=  
 पयाऽवस्थित संसारस्वमार्ष परमार्थतत्त्वं ज्ञातवान् ॥१७॥

प्रवृत्तित की गई इन्द्रियारूप होता है । कर्मोंके भानेके मार्गका नाम  
 स्रोत है । यह निष्पात्त्व भादि रूप है । अख्यानरूप स्रोतका नाम  
 भावानस्रोत है ॥१६॥

और 'मी'—'अइवस्त्वियं' इत्यादि ।

प्राणातिपातरूप पापोंसे रक्षित होनेसे शुद्ध ऐसी अहिंसाका भग  
 वानने स्वयं अनुसरण करके वृत्तोंसे 'मी' हिंसादिक कार्योंका परिक-  
 र्जन कराया । भगवानने सर्व प्रकारसे कर्मवृत्तका मूल कारण स्त्रीवर्ग  
 का, अ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञासे परिरयाग किया, और  
 पयावस्थित संसारका स्वभाव भी जानलिया ॥ १७ ॥

अर्थात् नाम स्रोत से ते निष्पात्त्व भादि रूप से भावानरूप स्रोतनु नाम  
 भावानस्रोत से (१६)

द्वि— अइवत्त्विय इत्यादि

प्राणातिपातरूप पापोंकी रक्षित होनाकी शुद्ध जेवों अहिंसासे कर्मवाने स्वयं  
 अनुसरण करके, जीवजाने पय कि सादिक कर्मोंके त्याग कराने कर्मवाने सर्व  
 प्रकारकी कर्मवृत्त अस्त्यु स्त्री वर्गने उपरिज्ञाकी वषु प्रत्याख्यान-परिज्ञाकी  
 परित्याग करी पयावस्थित संसार स्वभावने वषु दीपि (१७)

મગવતો મૂલગુણાનમિધાયોત્તારગુણાનાહ—‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—અહાકહડં ન સે સેવે, સઠ્વસો કમ્મુણો વંધં અદક્ષૂ ।

જં કિંચિ પાવગં મગવ, તં અકુવ્વં વિચડં મુંજિત્થા ॥૧૮॥

ઢાયા—યથાકૃતં ન સ સેવતે સર્વશઃ કર્મણો વન્ધમદ્રાક્ષીત્ ।

યત્ કિંચિત્પાપક મગવાંસ્તદકુર્વન્ વિકૃતમમુદ્ધ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—યથાકૃતમ્=યથા યેન પ્રકારેણ પૃષ્ઠાપૃષ્ઠા વા સાધુમુદ્દિચ્ય કૃતં યથા-કૃતમ્ અથઃકર્માદિકદોષદૂષિતં સર્વશઃ=સર્વપ્રકારેણ, કર્મણા=જ્ઞાનાવરણીયાદિ-નાઽઽત્મનો વન્ધમદ્રાક્ષીત્=દૃષ્ટવાન્, તસ્માત્ સ અથઃકર્માદિદોષદૂષિતમાહાર ન સેવતે સ્મ । અન્યદપ્પેવમ્મૂત ન સેવતે સ્મેત્યાહ—‘યત્ કિંચિત્’ ઇત્યાદિ । યત્ કિંચિત્’ પાપક=પાપકારણ, સદોષમત્ત્રાદિકં, તદ્ અકુર્વન્=અસ્વીકુર્વન્ અમુદ્ધન્ વિકૃત=પાપુકમ્ અમુદ્ધ=સેવતે સ્મ ॥ ૧૮ ॥

કિંચ—‘ગો સેવહ’ ઇત્યાદિ ।

મગવાન કે મૂલગુણોંકા કથન કર અવ સૂત્રકાર ઉત્તર ગુણોંકા કથન કરતે હૈ—‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ ।

પૂછકર અથવા નહીં પૂછકર સાધુકે ઉદ્દેશ્યસે જો કિયા ગયા હો ઉસકા નામ યથાકૃત હૈ । યથાકૃત આહારાદિક અથઃકર્માદિદોષોંસે દૂષિત રહતા હૈ । મગવાનને ઇસ યથાકૃત-અથઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકા સેવન નહીં કિયા, કારણ કિ “ઉસ પ્રકારસે આહારાદિકે સેવનસે આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરતી હૈ, ઓર ઉનકા બધ કરતી હૈ” ઇસા મગવાનને અપને જ્ઞાનચક્ષુસે દેલા । ઇસો પ્રકાર ઓર મી સદોષ પાપકારણ અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરનેકા મગવાનને ત્યાગ કર દિયા । કેવલ વે નિર્દોષ પ્રાપ્તુક હી આહારાદિ લેતે થે ॥૧૮॥

મગવાનના મૂળગુણોંકા કથન કરી હવે સૂત્રકાર ઉત્તરગુણોંકા કથન કરે છે— ‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ

પૂછીને અથવા ન પૂછીને સાધુના ઉદ્દેશથી જે કરાયેલ છે તે યથાકૃત આહારાદિક છે, જે અથઃકર્માદિ દોષોંથી દૂષિત રહે છે મગવાને આ યથાકૃત અથઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકા સેવન કરેલ નથી, કારણ કે “આવા પ્રકારના આહારાદિકના સેવનથી આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરે છે, અને તેના અથઃકર્મ પશુ કરે છે” એવું મગવાને પોતાના જ્ઞાનચક્ષુથી જોયું આ રીતના ખીલ પશુ સદોષ પાપકારણવાળા અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરવાનો મગવાને ત્યાગ કર્યો. તેઓ ફક્ત નિર્દોષ પ્રાપ્તુક જ આહારાદિક લેતા હતા (૧૮)



शुक्ल—जो सेवइ य परवस्थ, परपाण वि से ण भुजित्था।

परिवज्जियाण ओमाण, गच्छइ सत्त्वद्धिमसरणाप ॥१९॥

श्या—जो सेवते च परवत्तं, परपाणोऽपि स नाहृत्क।

परिवर्ष्यापमानं गच्छति संत्वद्धिमसरणाप ॥ १९ ॥

गीका—स=भगवान् परवस्थे न सेवते=न गृह्णाति, अपि च परपाणोऽपि नाहृत्क, अपमान परिवर्ष्य=भगवयित्वा अश्रणाप=संयमाराधनार्थमवीनमनस्कः। संत्वद्धि=संस्त्वद्धिन्त उपवर्ष्यन्ते प्राप्तिनो यत्र तां संत्वद्धिम्=आहारपाकस्थानं मच्छति=भगवत्पर्यः। अथ संत्वद्धि=शब्द इतिभोजनरूपोऽर्थो न गृह्यते, तस्यां घास्त्रे निपिदत्वात् ॥ १९ ॥

क्रिञ्च—'मायणो' इत्यादि।

शुक्ल—मायणो असणपाणस्स, नाणुगिद्ध रसेसु अपाहिञ्चे।

अच्छिपि नो पमाज्जिञ्चा, नो वि य क्कहूयप मुणीगाया ॥२०॥

श्या—मासाङ्गोऽथनपानस्य, नाणुगिद्धो रसेषु भवतिञ्चः।

मच्छिपी अपि नो प्रमार्जयति, नापि च क्कहूयते मुनिगात्रम् ॥ २ ॥

और 'मी'—'जो सेवइ' इत्यादि।

भगवानन वृत्तरोका ब्रह्म अपन उपयोगमें नहीं लिया, भार न वृत्तरोके पात्रमें भोजन ही किया। अपने अपमानका भ्यास न कर, स्वयं भगवान सयम आराधनाक निमित्त अवीनमन होकर आहारके पाकस्थान (गृहस्थोके यहाँ आहार बनानेक भोजनघर) में जाते थे। भगवानन यह क्याल नहीं किया कि आहार छेनेके लिये जानेमें मेरा अपमान है। ऐसा करनेसे ही संयमकी अप्यही तरहसे पालना होनी है, ऐसी भाषनासे वे स्वयं आहार छेने जाया करते थे ॥ १० ॥

इरी— जो सेवइ इत्यादि

भजवाने श्रीवज्जियाण पञ्चाने चोत्ताना उप्पमाजमां नभी वीत्ता। तेमव माव्वन्ता पात्रमा सेवन्त पणु क्किं नभी, चोत्ताना अपमानते पञ्चाल क्क्या विन्ता। भजवाने चोते सयम आराधनाया निमित्त अवीनमन वनीने शुक्लस्थाने त्य तेमना चोत्तानाउडे वत्ता इत्ता आमां भजवाने चोते पञ्चाल नभी क्क्यो के आहार देवा वचनामा माई अपमान घाथ छे आवुं क्क्यावोव वचनानी चारी रीते पालना काय छे चोवी पालनामीव तेचो व्ते आहार देवा वत्ता इत्ता। (१६)

टीका—अशनपानस्य मात्रज्ञः=परिमाणज्ञः । तथा रसेषु=मधुरादिषु नानुगृह्यः  
 =अनासक्तः, गृहस्थावभ्यायामपि रसगृह्णिरद्वितत्वादिति भावः, अत एव अपतिज्ञः  
 रसविशेषप्रतिज्ञावर्जितः, 'अद्य मया मोदका एव प्राद्याः' इत्यादिरूपा प्रतिज्ञा  
 भगवतो नासीत्, किन्तु शीतलपर्युषितपिण्डनीरसपुराणकुलत्थादिके सप्रतिज्ञ एव ।  
 तथा—अक्षिणी अपि रजःकणकादिनिस्सारणाय न प्रमार्जयति, अपि च मुनिः=सर्व-  
 जीवसमभावो भगवान् गात्र न कण्डूयते दशमशकादिर्दंशनेऽपि हस्तादिना शरीर-  
 सघर्षणं न कृतवानित्यर्थः ॥ २० ॥

फिर भी—'भायण्णे' इत्यादि ।

भगवान् सदा अशनादिकका सेवन मात्रानुसार ही किया करते  
 थे, क्यों कि वे स्वयं 'इन्हें कितनी मात्रामे लेना चाहिये' इस विषयसे  
 परिचित थे। तथा प्रसु कभी भी किसी भी रसमें गृह्य नहीं वने। गृहस्थ  
 अवस्थामे भी ये रसगृह्णिसे रहित रहे, इसी लिये भगवान् किसी रसवि-  
 शेषके लेनेकी प्रतिज्ञा अगोचर नही की। "आज मैं मोदक ही  
 खाऊँगा" इत्यादि प्रकारकी प्रतिज्ञा भगवानने कभी भी धारण नहीं  
 की। शीतल, पर्युषित पिण्ड और नीरस पुरानी कुलथी आदिके आहार  
 लेनेमें तो वे नियमयुक्त ही रहे। भगवानने अपनी आंखोंमे गिरे हुए  
 रजके कणोंको निकालनेके निमित्त आंखोंको कभी कहीं न मसलते और  
 न दशमशकादिकके काटने पर शरीरको खुजाते थे ॥ २० ॥

इसी—'भायण्णे' इत्यादि

भगवान् सदा अशनादिकके सेवन मात्रानुसार न करता हुआ, केम के  
 तेजो स्वयं 'जोने डेटली मात्राथी लेवा जेधये' तेनाथी परिचिन हुआ, तथा  
 प्रसु क्यारेय पणु डेध पणु रसमा गृह्णिवाणा तथा नथी गृह्णथ अवस्थामा  
 पणु तेजो रसगृह्णिथी अलिप्त रह्या हुआ आ कारणे भगवाने कही कोध रस  
 विशेषने लेवानी प्रतिज्ञा अगोचर करेल न हुती "आज हुं लाडु न  
 खाउंश" इत्यादि प्रकारनी प्रतिज्ञा भगवाने कहि पणु धारणु करेल न हुती  
 शीतल, पर्युषित-पिण्ड अने मुनि कणथी वगेरेने आहार लेवामा तो तेजो  
 प्रतिज्ञावाणा न रह्या, भगवाने पोटानी आणोमा पडेला रजकेणुने अहार  
 काठवा निमित्ते पणु आणोने कहि मसणी न हुती, तेम अस, मच्छरना कर  
 उवाथी शरीरने कहि पणु अणवाणेल नथी (२०)



टीका—अशनपानस्य मात्रज्ञः=परिमाणज्ञः । तथा रसेषु=मधुरादिषु नानुगृह्यः  
 =अनासक्तः, गृहस्थावस्थायामपि रसगृह्णिरहितत्वादिति भावः, अत एव अप्रतिज्ञः  
 रसविशेषप्रतिज्ञावर्जितः, 'अथ सया मोदका एव ग्राह्याः' इत्यादिरूपा प्रतिज्ञा  
 भगवतो नासीत्, किन्तु शीतलपर्युषितपिण्डनीरसपुराणकुल्युत्थादिके समतिज्ञ एव ।  
 तथा—अक्षिणी अपि रजःकणकादिनिस्सारणाय न प्रमार्जयति, अपि च मुनिः=सर्व-  
 जीवसमभावो भगवान् मात्र न ऋण्यते दशमशकादिद्रव्येऽपि हस्तादिना शरीर-  
 सघर्षणं न कृतवानित्यर्थः ॥ २० ॥

फिर भी--'मायण्णे' इत्यादि ।

भगवान् सदा अशनादिकका सेवन मात्रानुसार ही किया करते थे, क्यों कि वे स्वयं 'इन्हें कितनी मात्रामें लेना चाहिये' इस विषयसे परिचित थे। तथा प्रभु कभी भी किसी भी रसमें गृह्य नहीं बने। गृहस्थ अवस्थामें भी वे रसगृह्णिसे रहित रहे, इसी लिये भगवान् किसी रसविशेषके लेनेकी प्रतिज्ञा अगोचर नहीं की। "आज मैं मोदक ही खाऊँगा" इत्यादि प्रकारकी प्रतिज्ञा भगवानने कभी भी धारण नहीं की। शीतल, पर्युषित पिण्ड और नीरस पुरानी कुलथी आदिके आहार लेनेमें तो वे नियमयुक्त ही रहे। भगवानने अपनी आंखोंमें गिरे हुए रजके कणोंको निकालनेके निमित्त आंखोंको कभी कहीं न मसलते और न दशमशकादिकके काटने पर शरीरको खुजाते थे ॥ २० ॥

इसी—'मायण्णे' इत्यादि

भगवान् सदा अशनादिकके सेवन मात्रानुसार न करता हुआ, केम के तेजो स्वयं 'जोने केटली मात्रावी लेवा जेधजे' तेनावी परिचिता हुआ, तथा प्रभु व्याप्ये पञ्च कोर्ध पञ्च रसमा गृह्णिवाणा तथा नथी गृह्ण्ये अवस्थामा पञ्च तेजो रसगृह्णिथी अलिप्त रक्षा हुआ आ कारणे भगवाने कही कोर्ध रस विशेषने लेवानी प्रतिज्ञा अगोचर करेन न हुती "आज हु लाडु न जाधश" इत्यादि प्रकारनी प्रतिज्ञा भगवाने कदि पञ्च धारण करेन न हुती शीतल, पर्युषित-पिण्ड अने जुना कणथी वजेरेना आहार लेवामा तो तेजो प्रतिज्ञावाणा न रक्षा, भगवाने पैतानी आपोमा पडेला रजकेलेने अहार काढवा निमित्ते पञ्च आपोने उदि मसणी न हुती, तेम अस, मञ्छणा कर उवाथी शरीरने उदि पञ्च अजवाजेन नथी (२०)

अन्यच्च—‘अप्य तिरियं’ इत्यादि ।

मूळम्—अप्य तिरिय पेहाप, अप्यं पिट्टओय पेहाप ।

अप्य बुद्धप पडिभासी, पपपेही चरे जयमाणे ॥२१॥

शायी—अप्य तिर्यक् प्रेक्षते, अन्यं पृच्छतः प्रेक्षते ।

अप्यमुक्तः प्रतिभापी, पयिप्रेक्षी चरति यतमानः ॥ २१ ॥

टीका—मगवान् मार्गे गच्छन् तिर्यक्=तिरस्वीनम् अन्यं प्रेक्षते=न पश्यति स्म । यत्राप्यप्यस्यो निषेधार्थकः । तथा पृष्टोऽपि अन्यं प्रेक्षते । उक्तः=कनापि पृष्टः सन् अप्य प्रतिभापी=न ग्रथीति स्म, किन्तु पयिप्रेक्षी=पन्थान=स्वशरीर परिमिता पुरोवर्तिनी भूमिं प्रेक्षितु=द्रष्टुं शीलमस्येति स तद्योक्ता यतमान =यतनां कुर्वाणः सन् चरति=निहरति स्म ॥ २१ ॥

पुनश्च—‘सिसिरसि’ इत्यादि ।

मूळम्—सिसिरसि अरुपडिघट्ट, त घोसिज्ज वरथमणगारे ।

पसारित्तु घाहु परक्कमे, नो अवलवियाण स्वर्धमि ॥२२॥

शायी—विधारेऽप्यप्रतिपक्ष, -स्तव् व्युत्सृज्य बह्मनगारः ।

पसार्यं वाह पराक्रमते, नो यवसम्म्य स्फुन्धे ॥ २२ ॥

और भी—‘अप्य तिरियं’ इत्यादि ।

मगवानमे मार्गमें बिहार करते समय न तिरछा देखते और न पीछे ही देखते, किन्तु अपने शरीरप्रमाण भूमिका ही सामने निरीक्षण करते । बिहारमें किसीके पूछने पर भी प्रश्न किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, और यतनाचारपूर्वक ही प्रश्न बिहार करते थे ॥ २१ ॥

फिर भी—‘सिसिरसि’ इत्यादि ।

श्री पद्य—“ अप्य तिरियं ” इत्यादि.

मगवान् मार्गमा बिहार कर्त्वी यजते अङ्क मण्ड्य वेदा न क्त्वा, तेभ पाठय पद्य इरीने वेदा न क्त्वा, पद्य पित्तान्य शरीरप्रभाय भूमिने च वेधने भावता विहारमां कोधता पूज्या उपर पद्य प्रश्न कोधधी बोलता न क्त्वा अने क्त्वायाश्च पूर्वक प्रश्न विहार क्त्वा क्त्वा. (२१)

श्री— सिसिरसि इत्यादि

टीका—अध्वप्रतिपन्नः=मार्गारूढः अनगारो=भगवान् विशिरे=शीतकाले तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=परित्यज्य वाहू=भुजा स्क्न्धभागे नो अपलम्ब्य=शीतवाधानिवा-  
रणार्थं न संस्थाप्य, किन्तु प्रसार्य=वाहुद्वय विस्तार्य च पराक्रमते=परीषदसहनय  
यतते स्म ॥ २२ ॥

उपसहरन्नाह--' एस विही ' इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेण, भगवया एवं रीयंति-त्तिवेमि ॥२३॥

छाया--एष विधिरनुक्रान्तो माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन भगवता, एवं रीयंते, इति ब्रवीमि ॥ २३ ॥

टीका—माहनेन=यः स्वयं हनननिवृत्तः सन् पर प्रति 'मा हन मा हन' इत्येव  
वदति, स माहनस्तेन, मतिमता=हेयोपादेयप्रज्ञायता बहुशोऽप्रतिज्ञेन=सर्वथा निदान-

मार्गारूढ-विहारमें रहे हुए-भगवानने उस वस्त्रका शीतकालमें  
परित्याग कर दिया । शीतको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने दोनों  
हाथोंको कंधों पर नहीं रखा, अर्थात् शीतसे पीड़ित होने पर लोग  
दाये हाथको बांये कंधे पर और बांयें दाथको दाहिने कंधे पर दबा कर  
रखलेते हैं, इससे शीतवाधा सताती नहीं है, सो प्रभुने शीतवाधाकी  
निवृत्तिके लिये वस्त्र त्यागकरके भी ऐसा नहीं किया, प्रत्युत दोनों  
भुजाओको ऊची करके वे शीत-परीषदको सहन करते थे ॥२२॥

उपसहार करते हुए कहते हैं—'एस विही' इत्यादि ।

स्वयं हननादिकार्योंसे निवृत्त होकर दूसरोंको भी 'मा हन, मा हन-  
'मत मारो, मत मारो' इस प्रकार कहकर उनसे निवृत्त कराने वाले, तथा

मार्गारूढ-विहारमा रहेता-भगवाने ओ वस्त्रने ठडीना समये त्याग करी  
हीथेल ठडीने दूर करवा माटे तेओओ पोताना अन्ने हाथेने पाध उपर  
राभ्या नथी, अर्थात् ठडीथी पिडाती वभते बोडो आभा हाथने नभछा काध  
पर अने नभछा हाथने आभा काध उपर राभे छे, जेथी ठडीनी पीडा अने  
सतावती नथी, परतु प्रभुओ ठडीथी अथवा वस्त्रत्याग कर्या पछी पछु अेम उरेल न  
छतु, परतु अन्ने हाथेने उया करी तेओओ शीत-परिषदने सहन करता छता (२२)

उपसहार करता छडे छे—'एस विही' इत्यादि

स्वयं छछुवादिठ कार्योथी निवृत्त अनी भीनओने पछु मा हन-मा हन--"मारो  
नछि, मारो नछि" आ प्रकारनु ठडीने तेनाथी निवृत्त करावनार, तथा छेय अने

रहितेन मगधता=भीषर्षमानस्वामिना एष.=यायुक्तः विधिः=आचारः मनुक्रान्तः=मनुसंविता, एषम्=अनेन विधिनाऽन्यऽपि मोक्षसाधकः साधवः सकलकर्मसंपार्षरीयते=विहरन्ति सयममार्गे निहरेयुरिति भावः। 'इति प्रवीमि' अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ २३ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥ ९-१ ॥

हेय और उपादेयके विभेदसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित, ऐसे भीषर्षमानस्वामीने यह पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन किया, अतः इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्तकर्मों का नाश करनेके लिये संयममार्गमें विचरण करे, अर्थात् इसी प्रकारसे इस विधिका पालन कर अन्य मोक्षार्थी मुनि भी अपने कर्मोंका नाश करनेके लिये संयम मार्गमें खवलीन पने। "इति प्रवीमि" इन पदोंकी व्याख्या पहिले की गई व्याख्याकी तरह जान लेनी चाहिये ॥२३ ॥

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

उपरोक्त विवेकी मुक्त अने सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित जेवा भीषर्षमान स्वामीके आ पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेव ओटके आ रीते भीष साधसाधक (मोक्षना अधिकारी) साधुजन पय पोताना समस्त कर्मनिना नाश करवा भाटे निरस्तु करे. अर्थात्—जेवा प्रकारकी जेवी लिखित पालन करी भीष मोक्षार्थी मुनि पय पोताना कर्मनिना नाश करवा भाटे सयममार्गमें खवलीन पने 'इति प्रवीमि' आ पदोनी व्याख्या अन्यापन अध्ययनोभा कहेवाया प्रभाषे समझी जेव जे ( २३ )

नवमा अध्ययनने प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

टीका—अध्वप्रतिपन्नः=मार्गारूढः अनगारो=भगवान् शिशिरे=शीतकाले तद्  
 वस्त्रं व्युत्सृज्य=परित्यज्य वाहू=भुजाँ स्कन्धभागे नो अवलम्ब्य=शीतवाधानिवा-  
 रणार्थं न सस्थाप्य, किन्तु प्रसार्य=वाहुद्वय विस्तार्य च पराक्रमते=परीपहसहनया  
 यतते स्म ॥ २२ ॥

उपसंहरन्नाह—‘एस विही’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेण, भगवया एवं रीयंति-त्तिवेमि ॥२३॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तो माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन भगवता, एवं रीयते, इति ब्रवीमि ॥ २३ ॥

टीका—माहनेन=यः स्वयं हनननिवृत्तः सन् पर प्रति ‘मा हन मा हन’ इत्येवं  
 वदति, स माहनस्तेन, मतिमता=हेयोपादेयप्रज्ञायता बहुशोऽप्रतिज्ञेन=सर्वथा निदान-

मार्गारूढ-विहारमें रहे हुए-भगवानने उस वस्त्रका शीतकालमें  
 परित्याग कर दिया । शीतको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने दोनों  
 हाथोंको कंधों पर नहीं रखा, अर्थात् शीतसे पीड़ित होने पर लोग  
 दाये हाथको बांये कंधे पर और बांये दाथको दाहिने कंधे पर दया कर  
 रखलेते हैं, इससे शीतबाधा सताती नहीं है, सो प्रभुने शीतबाधाकी  
 निवृत्तिके लिये वस्त्र त्यागकरके भी ऐसा नहीं किया, प्रत्युत दोनों  
 भुजाओंको ऊची करके वे शीत-परीषहको सहन करते थे ॥२२॥

उपसहार करते हुए कहते हैं—‘एस विही’ इत्यादि ।

स्वयं हननादिकार्यों से निवृत्त होकर दूसरोंको भी ‘मा हन, मा हन-  
 ‘मत मारो, मत मारो’ इस प्रकार कहकर उनसे निवृत्त कराने वाले, तथा

मार्गारूढ-विहारमा रहेता-भगवाने ये वस्त्रने ठडीना समये त्याग करी  
 द्विषेन ठडीने दूर करवा भाटे तेओओ पोताना भन्ने हाथेने पाध उपर  
 राभ्या नथी, अर्थात् ठडीथी पिडाती वभते बोडा अथा हाथने नभञ्जा काध  
 पर अने नभञ्जा हाथने अथा काध उपर राभे छे, जेथी ठडीनी पीडा अने  
 सतावती नथी, परतु प्रभुओ ठडीधी भयवा वस्त्रत्याग कर्या पछी पञ्च ओभ करेन  
 छतु, परतु भन्ने हाथेने उया करी तेओ शीत-परिषहने सहन करता छता (२२)

उपसहार करता छडे छे—‘एस विही’ इत्यादि

स्वयं हननादिक कार्योंसे निवृत्त भनी भोजनओने पञ्च मा हन-मा हन-“मारो  
 नहि, मारो नहि” आ प्रकारतु कहीने तेनाथी निवृत्त करवानार, तथा छेय अने



एवं पृष्ट धीमुषर्मा स्वामी जन्मूस्वामिनं प्रत्याह—‘ आवेशण० ’ इत्यादि ।

मूष्म—आवेशणसभापवासु, पणियशालासु पगया वासो ।

अदुषा पलियद्वाणेषु, पलालपुजेसु पगया वासो ॥२॥

छाया—आवेशनसमापवासु पण्यशालासु एकदा वासः ।

अथवा पलितस्थानेषु पलालपुठनेषु एकदा वास ॥२॥

टीका—एकदा=कदाचित्, आवेशनसमापवासु=भा=समन्तात् विशन्ति यत्र, वदावशनम्=शून्यगृहम्, समा=ग्रामनगरवासिनां लोकानामास्याधिकार्यमागन्तुकानां पयनार्थं च या कुड्यापाकृतिप्रामवासिभिर्नगरवासिभिश्च क्रियत सा समा, मपा=पानीयशाला, आवेशन च, समा च, प्रपा च, पपाभित्तरयोगद्वन्द्वः आवेशनसमाप वास्तासु तथा कदाचित्-पण्यशालासु=आपणेषु भगवतो वास अमृत। अपना-कदाचित् पमित्तस्थानेषु=पमित्तमिष पलितं=कर्म तस्य स्थानानि कर्मस्थानानि कर्मा-

इस प्रकार पूछे जाने पर श्री सुषर्मास्वामी जन्मूस्वामीसे कहते हैं—  
‘ आवेशण ’ इत्यादि ।

उन त्रिलोकप्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शय्या और आसन सब मिसर प्रकार के थे । वे कभी आवेशन-शून्यगृहमें, कभी समा-नगर या ग्रामवासियोंद्वारा नगर और ग्रामके लोगोंको बैठनके लिये और पशुको मोनेके लिये जो कुड्यासूति-आस्थाई (चोरा) पनाई हुई होती है उसमें, कभी प्याऊ-पानीकी शाला-में कभी पण्यशाला-दुकानोंमें, या पलितस्थान-द्वारकी शालामें और कभी पलालकी बनी हुई शोपणीमें निवास करते थे । “ पलियद्वाणेषु ” की संस्कृत छाया “ पलितस्थानेषु ” है । इसका अर्थ “ पलितमिष पलितं-कर्म, तस्य स्थानं कर्मस्थानं=कर्मादा-

या शीते पुष्यामी श्री सुषर्मास्वामी जन्मूस्वामीने कहे थे— आवेशण इत्यादि.

ते तस्य लोकमा प्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शय्या अने आसन कुछ कुछ प्रकारका कर्तव्ये के क्यारेक उज्ज्वल घरमा, कही सभा-नगर अथवा ग्रामवा सीमाके दोहारे के सभा भाटे अने मुसाइशने उतरवा भाटे बनावेत सार्वक निक आपामगृहमा, क्यारेक परवासा, क्यारे-क्यारेक कौर्त दुकानोमा अथवा दुकानो केठमा अने क्यारेक परगणी बनावेती कुपडीया निवास करेते। “ पलियद्वाणेषु ” नी संस्कृत छाया “ पलितस्थानेषु ” छे अने अर्थ-पलितमिष

। अथ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरप्रथमोद्देशके महावीरस्य भगवतो विहारः कथितः, तत्र शय्याऽऽसनानि यथा तस्याऽऽसन् तद्बोधनार्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्र जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—‘चरियासणाइ’ इत्यादि ।

मूलम्—चरियासणाइं सिजाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ ।

आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेविस्थासे महावीरो ॥१॥

छाया—चर्यासनानि शय्या एकिका या उक्ताः ।

आख्याहि तानि शयनासनानि यानि सिपेवे स महावीरः ॥ १ ॥

टीका—‘चरिया’ इति लुप्तविभक्तिकमिदम् । चर्याया=विहारावस्थायां यानि आसनानि, याश्च, शय्या एकिकाः=एकैकप्रकारा विभिन्नरूपाः पूर्वम् उक्ताः, यानि शयनासनानि स=लोकत्रयप्रसिद्धः भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी सिपेवे तानि आख्याहि, इति ॥१॥

नववें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

इस नवम अध्ययनके प्रथम उद्देशमें श्री महावीर प्रभुका विहार वर्णित किया जा चुका है । उस विहारमें प्रभुकी शय्या और आसन जिस प्रकारके थे उन्हें समझानेके लिये सूत्रकार इस द्वितीय उद्देशका प्रारंभ करते हैं । यहां जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामीसे पूछते हैं—‘चरियासणाइं’ इत्यादि ।

भगवन् ! यह तो कहिये कि भगवान् श्री महावीरने विहार करते समय जिन २ शय्या और आसनोंका सेवन किया है ये एक ही प्रकारके थे या भिन्न २ प्रकारके ॥१॥

नवमा अध्ययनना भाजे उद्देश

आ नवमा अध्ययनना प्रथम उद्देशमा श्री महावीर प्रभुना विहारतु वर्णन करवाभा आवेल छे ओ विहारमा प्रभुनी शय्या अने आसन के प्रकारना बताओ ओ समझववा भाटे सूत्रकार आ भाजे उद्देशना प्रारंभ करे छे अहिं जम्बूस्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे—‘चरियासणाइ’ इत्यादि ।

भगवन् ! ओ तो बतावो के भगवान् श्री महावीर विहार करती वधते के के शय्या अने आसनतु सेवन करेल ते ओके २ प्रकारना बताओ के ओका प्रकारना ? (१)

एवं पृष्ट श्रीसुधर्मास्वामी मन्वृस्वामिनं प्रत्याह—‘ आवेसण० ’ इत्यादि ।

मन्वृ—आवेसणसभापवासु, पणियसालासु पगया वासो ।

अदुवा पलियट्टाणेषु, पलालपुंजेसु पगया वासो ॥२॥

छाया—आवेदनसमापवासु पण्यशालासु एकदा वासः ।

अथवा पलितस्यानेपु पलालपुंजेसु एकदा वासः ॥२॥

टीका—एकदा=कदाचित्, आवेदनसमापवासु=मा=समन्ताद् विशन्ति यत्र, पदावहनम्=शून्यगृहम्, समा=ग्रामनगरवासिनां लोकानामास्याधिकार्यमागन्तुकानां उपनार्यं च या कुठपायाकृतिप्रामनासिभिर्नगरवासिमिथ क्खिपत् सा समा, प्रपा=पानीपशाख, आवेदन च, समा च, प्रपा च, पपामितेतरयोगद्वन्द्वः आवेदनसमाप वास्तासु, तथा कदाचित्-पण्यशालासु=प्रापणेषु भगवतो वासः अभूत् । अथवा-कदाचित् पलितस्यानेपु=पलितमिथ पलितं=कर्म तस्य स्वानानि कर्मस्थानानि कर्मा

इस प्रकार पूछे जाने पर श्री सुधर्मास्वामी जन्मस्वामीसे कहते हैं—  
‘ आवेसण ’ इत्यादि ।

वन त्रिलोकप्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी प्राप्या और आसन सब मिश्रर प्रकार के थे । वे कमी आवेधान-शून्यगृहमें, कमी समा-नगर या ग्रामवासियोंद्वारा नगर और ग्रामके लोगोंको बैठनेके लिये और पथिकोंको सोनक लिये जो कुठपाकृति-भास्थार्ह (चोरा) बनाई हुई होती है उसमें, कमीर प्याऊ-पानीफी शाला-में कमीर पण्यशाला-बुकानेमें, या पलितस्थान-द्वारकी शालामें और कमीर पलालकी घनी हुई छोंपडीमें निवास करते थे । “ पलियट्टाणेषु ” की संस्कृत छाया “ पलितस्यानेपु ” है । इसका अर्थ “ पलितमिथ पलितं-कर्म, तस्य स्थानं कर्मस्थानं=कर्मादा-

या शीते पुष्पाधी श्री सुधर्मास्वामी मन्वृस्वामीने कहे छे— आवेसण इत्यादि ।

ते तस्य लोकमां प्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शय्या अने आसन लुहा लुहा प्रकारनां कदां तेस्ये कचारिक उल्लस प्रथमा, कही सभा-नगर अथवा ग्रामवा सीनेअने दोहनेने केसवा भाटे अने मुसाकेसने उतस्वा भाटे अनावेस आर्षअ निक आशामभूदोभां, कचारिक परवेभां कचारिक-कचारिक केअ इकानेभां अथवा सुकानेनी केअभा अने कचारिक पसणनी अनावेसी सुपडीमां निवास करेथे । “ पलियट्टाणेषु ” नी संस्कृत छाया “ पलितस्यानेपु ” छे अथने अर्थ-पलितमिथ

दानस्थानानि 'कारखाना' इति प्रसिद्धानि, तेषु लोहकारादिशालादिषु, तथा कदाचित् पलालपुञ्जेषु=पलालनिर्मितकुटीरेषु तस्य वासः अभूत् ॥२॥

किञ्च—'आगतारे' इत्यादि ।

मूलम्—आगतारे आरामागारे, तद् य नगरे वि एगया वासो ।

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगया वासो ॥३॥

छाया—आगन्त्रगारे आरामागारे तथा च नगरेऽपि एकदा वासः ।

श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूलेऽपि एकदा वासः ॥३॥

टीका—एकदा=कदाचित् आगन्त्रागरे=आगन्त्रभ्यः अगारम् आगन्त्रगारं ग्रामान्नगराद् वा वहिरागन्त्रकजननिवासार्थं गृह धर्मशालेत्यर्थः, तस्मिन् भगवतो वासः =अवस्थानं बभूव । एकदा=कदाचित् आरामागारे=आरामः=उपवनं तत्रागारं=गृहं तस्मिन्, तथा कदाचित् नगरेऽपि=नगरमध्येऽपि तस्य वासो बभूव । तथा एकदा श्मशाने वा, अथवा शून्यागारे=शून्यगृहे कदाचित् वृक्षमूलेऽपि=वृक्षतलेऽपि भगवतो वासो बभूव ॥३॥

नस्थानं" इस व्युत्पत्तिके अनुसार कर्मों के आदानका स्थानभूत-कार-खाना भी होता है । पलाल-एक तरहका घास होता है ॥२॥

और भी—'आगतारे' इत्यादि ।

कभी२ वे प्रभु ग्राम तथा नगरसे बाहर बनी हुई धर्मशालामें उतरते तो कभी २ बगीचामें ठहरते । कभी नगरमें तो कभी श्मशानमे, कभी किसी शून्यघरमें तो कभी किसी वृक्षके नीचे ही रहजाते । इस प्रकार प्रभुके ठहरनेका कोई नियमित स्थान नहीं था, जहां अवसर देखते वहां प्रासुक स्थानमें ठहर जाते ॥ ३ ॥

पलितं, कर्म, तस्य, स्थानं=कर्मस्थानं, कर्मादानस्थानं आ व्युत्पत्ति अनुसार कर्मोना आदानतु स्थान-कारणानु पञ्चु थाय छे त्या पराण आ कोक जाततु वास छे (२)

इती—“ आगतारे ” इत्यादि

क्यारेक क्यारेक प्रभु गाम अथवा तो शहरेनी पहार भनेती धर्मशा-लाओमा उतरता तो क्यारेक बगीचामा रोडाता क्यारेक नगरमा तो क्यारेक श्मशानमा, क्यारेक उन्नड धरोमा तो क्यारेक कोर्ध वृक्षना नीचे रहती जता आ रीते प्रभुना रोडावानु कोर्ध नियमित स्थान न छेतु, न्या अवसर भजतो त्या प्रासुक स्थानमा रोडाधि जता. (३)

मगवान् क्रियन्ते कासं यावत् तपासंयमाराधनं कृत्स्नानिति जिज्ञासायामाह—  
'एषहिं मुणी' इत्यादि।

मन्त्र—एषहिं मुणी सयणे हिं, समणे आसि पतेरसवासे।

राइदियपि जयमाणे, अप्यमचे समाहिण् झाइ ॥४॥

छाया—एतेषु मुनिः क्षयनेषु भ्रमणः आसीत् प्रत्रयोदशवर्षाणि।

रात्रिदिवमपि यतमान अप्रमत्तः समाहितो ध्यायतिः ॥४॥

मुनिः—मगवान् महावीरः श्रीवर्षमानस्वामी पतेषु—प्रायुक्तेषु क्षयनेषु—वसतिषु  
प्रयोदशवर्षाणि—मरुपेण—किंचिदधिकार्धभागन त्रयोदशं येषु तानि तथाभूतानि  
वर्षाणि, सार्धपञ्चमासन्पूत्रप्रयोदशवर्षाणीत्यर्थः; रात्रिदिवमपि—अहर्निशं, यतमानः  
—संयमाराधनपरायणः, भ्रमणः—तपसि समुपुक्त आसीत्। तथा अप्रमत्तः निद्रादि  
प्रमादपरिवर्जितः समाहितः—विश्लेषसिंकारहितः सन् ध्यायति धर्मध्यानमिति ॥४॥

किञ्च—'णिह पि नो' इत्यादि।

मन्त्र—णिह पि नो पगामाप, सेवइ भगव उट्टाप।

जग्गवइ य अप्पाण, ईसिसाई आसि अपडिसे ॥५॥

छाया—निद्रामपि नो प्रकामतया सपते मगवान् उत्थाय।

आगत्यति चात्मानं ईपच्छायी आसीत् अप्रविष्टः ॥ ५ ॥

मगवानने कितने समयतक तप और संयमका आराधन किया ?  
इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
'एषहिं' इत्यादि।

बिहार अवस्थामें भ्रमण मगवान महावीर इन पूर्वोक्त वसतिघोमें  
तेरह वर्षसे कुछ कम अधीत्—साठेवारह वर्ष और पन्त्रह दिन—रहे। व  
रात और दिन संयमकी आराधना करते हुए तपश्चर्यामें तत्पर रहे, और  
प्रमादरहित होकर समाधिभाषयुक्त वे सदा धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥४॥

और भी—'णिहपि नो' इत्यादि।

मगवाने केवल समय सुधी तप करने संयमकी आराधन करी ? आ  
प्रकामती लज्जसातु समाधान करवा सूत्रकार केके छे— एषहिं इत्यादि।

विहार अवस्थामें भ्रमण मगवान श्री महावीर वस्तीघोमें १३ तेर  
वर्षकी घंटा जोअरे समय रखा देवा तेजो सतद्विषय संयमकी आराधना करवा  
करवा तपश्चर्यामें तत्पर रहेवा अने प्रमादरहित वरु समाधिसायुक्त धर्म  
ध्यानमें सदा जोडरूप लनी रहवा. (४)

हरी—'णिहपि नो' इत्यादि।

टीका—भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राञ्चीनो न बभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मान जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अप्रतिज्ञः=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईपच्छायी=उन्नस्थावस्थाया अन्तिमरात्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—‘संबुज्जमाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—संबुज्जमाणे पुनरपि, आसिंसु भगवं उट्टाए ।

निक्खम्म एगया राओ, वहि चंकमिया मुहुत्तागं ॥६॥

छाया—संबुध्यमानः पुनरपि आसिष्ट भगवान् उत्थाय ।

निष्क्रम्यैरुदा रात्रौ वहिश्चक्रम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संबुध्यमानः=निद्रादोष सम्यग् जानन् ‘निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती’—त्यवगच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एरुदा=रुदाचित् शीतकाले रात्रौ वहिर्निष्क्रम्य=वहिति-

भगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए । जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे । ये स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे । उन्नस्थावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—‘संबुज्जमाणे’ इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके अधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मबन्धका कारण है । यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत-

भगवान् श्रीमहावीर स्वामीએ કહી અધિક નિદ્રાનું સેવન કર્યું નથી, અર્થાત્ તેઓ નિદ્રાને આધીન બન્યા નથી. જે સમયે નિદ્રા આવવાનો સમય હોય એ સમયે સાવધાન બની પોતાના આત્માને તપ અને સંયમની આરાધનામાં લગાડી દેતા હતા તેઓ સ્વાપ-સુવાની પ્રતિજ્ઞાથી રહિત હતા, છન્નસ્થાવસ્થાની છેલ્લી રાત્રે અન્તર્મુહૂર્તકાળમાત્રમા સ્વપ્નદર્શી બન્યા (૫)

इरी—‘संबुज्जमाणे’ इत्यादि

निद्राके श्री महावीर प्रभु कर्म अधनु कारण मानीने तेने त्याग करता हता क्यारे निद्रा आवती तो शीतकालनी रात्रीमा भकान पहार बध मुहुर्त मात्र धर्मध्यानमा तपस अनि निद्राना विनेता बनता (६)



टीका—भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राधीनो न बभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अप्रतिज्ञः=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईष्योऽयी=उग्रस्थावस्थाया अन्तिमरात्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—'सवुज्जमाणे' इत्यादि ।

मूलम्—सवुज्जमाणे पुणरपि, आसिंसु भगवं उट्ठाए ।

निक्खम्म एगया राओ, वहि चंकमिया मुहुत्तागं ॥६॥

छाया—संवुध्यमानः पुनरपि आसिष्ट भगवान् उत्थाय ।

निष्क्रम्यैकदा रात्रौ वहिश्चक्रम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संवुध्यमानः=निद्रादोषं सम्यग् जानन् 'निद्रा कर्मवन्धस्य कारणमस्ती'—त्यक्वगच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एकदा=एकदाचित् शीतकाले रात्रौ वहिर्निष्क्रम्य=वहिर्नि-

भगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए। जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे। ये स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे। उग्रस्थावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—'सवुज्जमाणे' इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके अधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मवन्धका कारण है। यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत-

भगवान् श्री महावीर स्वामीके कटी अधिक निद्रासे सेवन क्युं नहीं, अर्थात् तेको निद्राने अधीन करना नहीं थे समये निद्रा आववाने समय होय के समये सावधान बनी पोटाना आत्माने तप बने सधमनी आराधनामा लगाडी देता हुता तेको स्वाप-सुवानी प्रतिज्ञाधी रहित हुता, उग्रस्थावस्थानी छेदली रात्रे अन्तर्मुहूर्तकालमात्रमा स्वप्नदर्शी बन्या (५)

इरी—'सवुज्जमाणे' इत्यादि

निद्राने श्री महावीर प्रभु कर्म बधनु कारणु मानीने तेने त्याग करता हुता क्यारे निद्रा आवती तो शीतकालनी रात्रीमा भडान बडार बध मुहूर्त मात्र धर्मध्यानमा तत्पर बनी निद्राना विन्नेता बनता. (६)



अस्य सुहृत्कं=सुहृत्तंमात्रं चङ्कम्य=ध्याने विद्वस्य धर्मध्यानात्स्वितो भूत्वेत्यर्थः  
 बाधिष्ट=उपाविशत्-निद्रां परिभ्रमयामासेति भावः ॥ ६ ॥

किञ्च—'सयणेहि' इत्यादि।

मूष्य-सयणेहि तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूषा य ।

ससप्यगा य जे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरति॥७॥

पत्ता--शयनेषु तस्योपसर्गा भीमा भासन् अनेकरूपाय ।

संसर्पकाय य प्राजा अथवा पक्षिण उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका—शयनेषु=शय्यते=स्थीयते धिनिधासनादिभिर्यत्र तानि शयनानि  
 नामयस्यानानि, तेषु तस्य मगधत भीवर्धमानस्याग्निः भीमाः=घोराः अनेकरूपा  
 उपसर्गा भासन्=उपस्थिता बभूवुः । तथा-य संसर्पका=सरीसृपाः क्षून्यसृष्टौ  
 सर्पन्सादयाः, प्राजाः=प्राणिनाः, अथवा-ये पक्षिण=श्मशानादौ मृदादयस्तेऽपि  
 उपचरन्ति=नानाविधमूपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्वाभ्रधर्ममांसादिकं कुन्वन्ति स्मेत्यर्थः॥७॥

किञ्च—'अदु कुचरा' इत्यादि ।

घासकी रातमें मकानसे बाहर जाकर सुहृत्तंमात्र धर्मध्यानमें तल्लीन  
 होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥६॥

और भी—'सयणेहि' इत्यादि ।

शयनोमें-आभयमृत स्थानोमें उन भीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग  
 उपस्थित होते थे। कभी २ क्षून्य घरमें रहने पर सरीसृप-सर्प नकुल  
 आदि प्राणी, अथवा श्मशानमें बसन पर मृद आदि पक्षी अनेक प्रक-  
 रसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे भीर भीर सपकुष्ठ सहन करते  
 थे, यहाँ तक कि जय मृद आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोचते  
 तो भी वे समभावसे सहन करते परंतु उनका निवारण नहीं करते ॥७॥

और भी—'अदु कुचरा' इत्यादि ।

हरी— सयणेहि इत्यादि।

शयनमा-आभयवत्या स्थानोमां भी भद्रवीर प्रभु उपर घोर उपसर्ग  
 उपस्थित यदा कदा क्वचरेक उन्मत्त वश्यां श्लेषाशी उप वनेरे प्राणी तेमल  
 रमशानमां श्लेषाशी जीम वनेरे पक्षीभी अनेक प्रजात्यां दुःखे संडेवां पश्यां क्वां  
 भीर भीर जेवा प्रभु म्मा अर्था दुःखेने सहन करवाते त्यां सुधी के न्यारे जीम  
 वनेरे पक्षीयो तेमना शरीरमां भक्षने आशिधी व्याकवा तो पक्ष समभावशी म्मु  
 सहन करवा परंतु तेषु निवारण इत्या नही (७)

हरी— अदु कुचरा इत्यादि।

मूलम्—अदु कुचरा उवचरन्ति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य ।

अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगइया पुरिसा य ॥८॥

छाया—अथ कुचरा उपचरन्ति ग्रामरक्षाश्च शक्तिहस्ताश्च ।

अथ ग्राम्या उपसर्गा स्त्रियः एकिकाः पुरुषा वा ॥ ८ ॥

टीका—कुचराः=कुत्सिताचरणशीलाः चौरव्यभिचारिमृत्तयः उपचरन्ति=भगवत उपसर्गं कुर्वन्ति स्म । स्वस्वकार्येऽन्तरायं मत्वा भगवन्त कदादिभिस्ताडयन्ति स्मेत्यर्थः । तथा—शक्तिहस्ताः=शस्त्रविशेषधारिण ग्रामरक्षाः=प्राहरिकादयः उपचरन्ति=चौरलुप्टऋगङ्गया भगवन्तं प्रहरन्ति स्म । अथवा ग्राम्याः=ग्रामवर्मावस्थिताः कामवशगा इत्यर्थः, अत एवोपसर्गाः=उपसर्गकारित्वादुपसर्गरूपाः स्त्रियः एकिकाः=एकाकिन्यः समागत्य उपचरन्ति=भगवन्त विषयार्थमुपसर्गयन्ति स्म । वा=अथवा—पुरुषा अपि तम् उपचरन्ति=इममन-

चौर, व्यभिचारी आदि जन भी उनको उपसर्ग देते थे । इसका कारण यह था कि वे भगवानको अपने २ कार्योमें विघ्नरूप मानते थे, अतः वे भगवानको चाबुकसे मारते थे । गांवकी रक्षा करनेवाले कोटवाल आदिजन भी कि जिनके हाथमें शक्ति नामका शस्त्र रहता था, भगवानको चौर, लुटेरा समझकर उनपर प्रहार करते । कभी२ कामाधीन मदीन्मत्त स्त्रियां भी भगवानके पास अकेली आकर उनसे वैपयिक लालसा प्रकट करती, इस तरह वे भी भगवानके ऊपर अनेक प्रकारसे उपद्रव बरसाती । कोई पुरुषवर्ग भी यह समझकर कि 'यह अतिशयरूप संपन्न है—अनन्तरूप और लावण्यका भंडार है, इसे देखकर हमारी

चौर, व्यभिचारी विगेरे भाषुसे तरइथी बारे शीतने त्रास आपवामा आवतो, जेतु डारण्णे ओ हंतुं के ओ लोडो भगवानने पीतपीताना कार्योमां विघ्नरूप गणुता, आथी तेओ भगवानने साण्णभाथी भारतता हुता गामनी रक्षा करवावाणा पटेल पसायता वगेरे लोडो पणु के जेना हाथमा शक्ति नामतु शस्त्र रडेत्तु हंतुं, भगवानने लूटारा, चौर वगेरे मानता अने आ डारण्णे अवनवीन त्रास आपता डोई डोई वधत कामथी मदीन्मत्त भनेली ओवी ओओ पणु भगवान पासे ओठली आवती अने तेमनी पासेथी विषयलोगनी लालसा जणुवती आ डारण्णे आनी ओओ पणु भगवाननी उपर अनेक प्रका-रना उपद्रव बरसावती डोई पुरुषवर्ग पणु भगवानतु अतिशय लावण्यमय शरीर नेथ ओवी शका धरावता के 'अमारी ओओ आमनु लावण्य-

नरूपसावप्यशास्त्रिनं विलोक्य मदीयद्वयिता मत्सो घिरता 'मधिष्यती'-  
 सि मत्वोपसर्गं चकारेत्पर्यं ॥८॥

किञ्च—'इहलोइयाइ' इत्यादि ।

मूल्म—इहलोइयाइ परलोइयाइ, भीमाइ अणेगरूवाइ ।

अधि सुब्धि—तुब्धिभगधाइं, सहाइ अणेगरूवाइ ॥९॥

छाया—पेशमौक्किकान् पारसीक्किकान् भीमान् अनेकरूपान् ।

अपि सुरमिदुरमिगन्धान् शब्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका—मगवान् पेशमौक्किकान्=मनुष्यकृतान्, पारलोक्किकान्=देवतिर्यक्-  
 कृतांश्च भीमान्=मयङ्कृतान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहते स्म ।  
 तथा—सुरमिदुरमिगन्धान्=सुरमिगन्धान्=स्रक्चन्दनमणिषान्, दुरमिगन्धान्=  
 पूविगन्धान् मूलसर्पशृगालकलेषरसमुत्पान्, तथा अनेकरूपान्=मनोहामनोश्चान्  
 सर्वेषां सहते स्म ॥ ९ ॥

छलनार्थं हमसे चिरक्त हो जायगी' इस दुरभिप्रायसे उन पर उप  
 सर्ग करते ॥८॥

और 'भी—'इहलोइयाइ' इत्यादि ।

वे 'मगवान् परीपह और उपसर्गोंकी कुछ 'भी परवाह न कर मनु  
 ष्यकृत अनेक भयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यक्कृत अनेक कठोर  
 उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहते थे। पुष्पोंकी  
 माला, और मलयगिरिबंधनसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सड़े हुए सर्प,  
 शृगाल आदिके फलेषरकी दुर्गन्धिमें, तथा मनोह और अमनोह इन्द्रि  
 योंके प्राकृतिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब  
 अबस्थामें समभावी थे ॥९॥

मय शरीर जेष्ठ जन्माशयी चिरकृत जनी लये' आये। अथल विचार मनमा  
 लयी जेभना उपर त्रास पश्यावता (८)

इरी—इहलोइयाइ इत्यादि।

मगवान् जावा दुःखे अने उपसर्गोंकी देश मात्र परवा न करता मनुष्ये  
 दास करता अनेक लयकर उपद्रवों देव अने तिर्यक्की करता अनेक कठोर  
 उपसर्गों, चाहे ते अनुकूल होय के प्रतिकूल, तेने सहन करता। पुष्पोंकी माला,  
 मलीयाजिरी बंधनकी रूपत सुगन्धिमा तथासठेला सर्प तेमच अन्ध भरीला  
 पशुजोना सठेला शरीरकी दुर्गन्धिमा, तथा मनोह अने अमनोह इन्द्रियेना  
 यथादि विषयोना जेभने न तो राग कते न द्वेष, तेजो इरेक अवस्थाभां  
 समभावी कता (९)

मूलम्—अदु कुचरा उवचरन्ति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य ।

अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगइया पुरिसा य ॥८॥

छाया—अथ कुचरा उपचरन्ति ग्रामरक्षाश्च शक्तिहस्ताश्च ।

अथ ग्राम्या उपसर्गां स्त्रियः एकिकाः पुरुषा वा ॥ ८ ॥

टीका—कुचराः=कुत्सिताचरणशीलाः चौरव्यभिचारिप्रभृतयः उपचरन्ति=भगवत् उपसर्गं कुर्वन्ति स्म । स्वम्यकार्येऽन्तराय मत्वा भगवन्तं कशादिभिस्ताडयन्ति स्मेत्यर्थः । तथा—शक्तिहस्ताः=शस्त्रविशेषधारिण ग्रामरक्षाः=प्राहरिकादयः उपचरन्ति=चौरलुप्टक्राड्या भगवन्तं प्रहरन्ति स्म । अथवा ग्राम्याः=ग्रामवर्मावस्थिताः कामप्रशमा इत्यर्थः, अत एवोपसर्गाः=उपसर्गकारित्वादुपसर्गरूपाः स्त्रियः एकिकाः=एकाकिन्यः समागत्य उपचरन्ति=भगवन्तं विषयार्थमुपसर्गयन्ति स्म । वा=अथवा-पुरुषा अपि तम् उपचरन्ति=‘उममन-

चौर, व्यभिचारी आदि जन भी उनको उपसर्ग देते थे । इसका कारण यह था कि वे भगवानको अपने २ कार्योमे विघ्नरूप मानते थे, अतः वे भगवानको चाबुकसे मारते थे । गांवकी रक्षा करनेवाले कोटवाल आदिजन भी कि जिनके हाथमे शक्ति नामका शस्त्र रहता था, भगवानको चौर, लुटेरा समझकर उनपर प्रहार करते । कभी२ कामाधीन मदोन्मत्त स्त्रियां भी भगवानके पास अकेली आकर उनसे वैपयिक लालसा प्रकट करती, इस तरह वे भी भगवानके ऊपर अनेक प्रकारसे उपद्रव बरसाती । कोई पुरुषवर्ग भी यह समझकर कि ‘यह अतिशयरूप सपन्न है—अनन्तरूप और लावण्यका भंडार है, इसे देखकर हमारी

चोर, व्यभिचारी विगेरे भाषुसो तरइथी बारे रीतने त्रास आपवामा आवतो, जेनु कारणु अे इतु डे अे लोडो भगवानने चोतपोताना कार्योभा विघ्नइथ गलुता, आथी तेअो भगवानने बाणभाथी भारता इता गामनी रक्षा करवावाणा पठेल पसायता वगेरे लोडो पणु डे जेना छाथभा शक्ति नामनु शस्त्र रडेतु इतु, भगवानने लूटारा, चोर वगेरे मानता अने आ कारणु अवनवीन त्रास आपता डेअ डेअ वप्रत कामथी मदोन्मत्त अनेली अेवी अीअो पणु भगवान पासे अेकली आवती अने तेमनी पासेथी विषयखोजनी लालसा जणुावती आ कारणु आवी अीअो पणु भगवाननी उपर अनेक प्रका-रना उपद्रव बरसावती डेअ पुइधवर्ग पणु भगवाननु अतिशय लावण्यमथ शरीर जेअ अेवी शका बरावता डे ‘अमारी अीअो आमनु लावण्य-

नस्त्वलाषण्यशास्त्रिनं बिलोक्य मदीपदयिता मत्तो विरता भविष्यती'-  
ति मत्पोपसर्गं वकारेत्यर्थं ॥८॥

किञ्च—'इहलोइयाइ' इत्यादि ।

एषम्—इहलोइयाइ परलोइयाइ, भीमाइ अणेगरूवाइं ।

अवि सुब्भि—सुब्भिभगधाइं, सदाइ अणेगरूवाइं ॥९॥

छाया—पेरसौक्किडान् पारसौक्किडान् मीमान् अनेकरूपान् ।

यपि सुरमिदुरमिगन्धान् शब्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् पेरसौक्किडान्=मनुष्यकृतान्, पारसौक्किडान्=देवतिर्यक्-  
कृत्वाथ मीमान्=मयकृतान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहाते स्म ।

वषा—सुरमिदुरमिगन्धान्=सुरमिगन्धान्=स्रक्षन्वदनननिताम्, दुरमिगन्धान्=  
पूरिगन्धान् मृतसर्पशृगाकृच्छेवरसमुत्त्वान्, तथा अनेकरूपान्=मनोहामनोहान्  
सर्पंश्च सहाते स्म ॥ ९ ॥

छसनाएँ हमसे विरक्त हो जायगी' इस दुरमिप्रायसे उन पर उप-  
सर्ग करते ॥८॥

और भी—'इहलोइयाइ' इत्यादि ।

वे भगवान परीषह और उपसर्गोंकी कुछ भी परधाह न कर मनु-  
ष्यकृत अनेक भयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यक्कृत अनेक कठोर  
उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहाते थे । पुष्पोंकी  
माला, और मलयागिरबंधनसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सड़े हुए सर्प,  
शृगाल आदिके कछेबरकी दुर्गन्धिमें, तथा मनोह और अमनोह इन्दि-  
योंके शब्दादिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब  
अवस्थामें सममायी थे ॥९॥

मय शरीर जोई अभाशधी विरक्त जनी बरी' आवे। अशाभ विआए मनभां  
छनी जेभना उपर त्रास वरवाववा (८)

इह—इहलोइयाइ इत्यादि

भगवान् आया इत्ये। अने उपसर्गोंनी देश भात्र परवा न करवां मनुष्ये।  
दाश करवा अनेक लय कर उपद्रवे देव अने तिर्यक्की करवा अनेक कठोर  
उपसर्गो, चाहे ते अनुकूल होव हे प्रतिकूल, तेने सहन करवा। पुष्पोंनी माला,  
मदीयाजिरी बदनधी उत्पन्न सुगन्धिं तथासठेहा सर्प तेमव अन्य भरीवा  
प्राण्येना सठेहा शरीरनी दुर्गन्धिं, तथा मनोह अने अमनोह इन्दिरीय  
शब्दादिक विषयोंमें जेभने न वे राग छते न द्वेष, तेज्ये इरेक अवस्थामें  
सममायी छेवा (९)

अन्यच्च—‘अहियासए’ इत्यादि ।

मूलम्—अहियासए सयासमिए, फासाइं विरुवरुवाइं ।

अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अवहुवाइं ॥१०॥

छाया—अध्यास्ते सदासमितः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।

अरतिं रतिम् अभिभूय रीयते माहनः अवहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमित = पञ्चसमितिसमन्वितः विरूपरूपान् = अनेकप्रकारकान् स्पर्शान् = दुःखविशेषान् अध्यास्ते = अधिसहते स्म । अवहुवादी = अल्पभाषी माहनः = भगवान् अरतिं सयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिभूय = तिरस्कृत्य निवार्येत्यर्थः, रीयते = तपःसंयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगचरा वि एगया राओ ।

अव्वाहिय कसाइत्था, पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥११॥

छाया—स जनै तत्र अप्रच्छि एकचरा अपि एकदा रात्रौ ।

अव्याहृते कपायिताः प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ॥ ११ ॥

और भी—‘अहियासए’ इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया। वे सदा ही हित मित प्रिय वचन बोलते। अल्पभाषण करते—बहुत थोड़ा बोलते। सयमसे अरतिभावको और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

इरी—‘अहियासए’ इत्यादि

प्रभु निरन्तर पांच समितियोंका पालनमा सावधान रहेता, अने अनेक प्रकारका दुखोंने सहन करता तेज्जा सदा हित मित अने प्रिय वचन बोलता, अल्पभाषण करता थोड़ा बोलता सयमशी अरतिभावने अने विषयेशी रतिभावने इर करवाभा नगृत रहेता तप अने सयमनी आराधनामा सदा तैयार रहेता (१०)

इरी—‘स जणेहिं’ इत्यादि.

टीका-शून्यग्रहे निर्जने वा स भगवान् जनैः अप्रच्छिन्नः पृष्ट, यथा-‘को मत्तान्? किमत्र स्थित? कुतः समापातः? इत्येवं शृष्टोऽपि तूष्णीमेवासीत्। तथा-एकवराः=एकाकिनः नारपुरुषादयः एकदा=एवाचित्, रात्रौ विषस मा भगवन्तं पशुः, तदा भगवता-भम्पादृते सति कपापिताः=क्रोधादियुक्ताः सन्तः भगवन्तं दृष्ट्वादिभिस्ताडयन्ति स्म। भगवांस्तु अप्रतिहः=वैरनिर्यासिनप्रतिहारहितं समाधि मेसमाधः=धर्मध्यानं समासम्भयन् सहत स्म ॥११॥

किञ्च—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् जिस समय विहारमें रहते हुए शून्यग्रह आदिमें ठहरते तो उस समय मनुष्य अनेक प्रकारके उनसे प्रश्न करते-कोई पूछता-तुम क्यों हो? क्यों ठहरे हो। कोई २ पूछता-अरे तुम कहाँसे जाये हुए हो, इत्यादि। इस प्रकार पूछे जाने पर भी वे प्रश्न किसीको कुछ भी उत्तर नहीं देते और मौन रहते। इसी प्रकार कभीरूपमिथ्यारी पुरुष अकेले आकर जब भगवानसे कुछ पूछते तो भगवान् उस समय भी मौन रहते-उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देते। इस प्रकार उनके चित्तमें भगवानके प्रति कपायपरिणति जागृत हो जाती और इससे क्रोधाभिष्ट हो वे भगवानको वृष्ट और झुके आदिसे खूब पीटते-मारते, परन्तु फिर भी भगवानके चित्तमें वैरका यवला केनेका भाव उनके प्रति जागृत नहीं होता था, प्रस्युत समाधिपूर्वक वे धर्मध्यानमें ही लह्वीन होकर उन सब उपसर्गों को सहते ॥११॥

और भी—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् ७ समय विहारमा रहेवा अने उन्मत्त घर बजेरे स्थिति शक्या तो के समये भावसे आधी अनेक प्रकारना प्रश्नो कर्त्वा केळ पुछत तमे केळु छे ? अथि केम शक्या छे ? केळ केळ पुछत के तमे कथाची अज्या छे ? वजेरे आ रीते पुछनासज्येभान्य केळिने पळु प्रश्न केळ पळु उत्तर आपवा नथी परतु मौन रहेवा आर रीते केळ केळ व्यभिचारी पुरुष ओकतै आधी भगवानने केळ पुछे तो पळु भगवान मौन व रहेवा, अने पळु केळ ववाव आपवा नथी आधी के दोहोना दिसमा भगवान प्रत्ये कपायपरिवृत्ति जगती जती अने कीधयुक्त जती आधा भावसे भगवानने वाक्यीणी के कायची पुष्य भार भास्ता, छतां पळु भगवानना दिलमां तेमना प्रत्ये जडतै देवाणी वृत्ति जगती नथी अमे तेवा समये पळु तेजो समाधिपूर्वक धर्मध्यानमा व तळीन रही आ जधा उपसजेनि सकन कर्त्वा (११)

इरी—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

अन्यच्च—‘अहियासए’ इत्यादि ।

मूलम्—अहियासए सयासमिए, फासाइं विरुवरुवाइं ।

अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अवहुवाइं ॥१०॥

छाया—अध्यास्ते सदासमितः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।

अरतिं रतिम् अभिभूय रीयते माहनः अवहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमितं=पञ्चसमितिसमन्वितः विरूपरूपान्=अनेकमकारकात् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यास्ते=अधिसहते स्म । अवहुवादी=अल्पभाषी माहनः=भगवान् अरतिं सयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिभूय=तिरस्कृत्य निवार्यैत्यर्थः, रीयते=तपःसयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगचरा वि एगया राओ ।

अव्वाहिय कसाइत्था, पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥११॥

छाया—स जनै तत्र अप्रच्छि एकचरा अपि एकदा रात्रौ ।

अव्याहृते कपायिताः प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ॥ ११ ॥

और भी—‘अहियासए’ इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया । वे सदा ही हित मित प्रिय वचन बोलते । अल्पभाषण करते—बहुत थोड़ा बोलते । सयमसे अरतिभावको और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

श्री—‘अहियासए’ इत्यादि

प्रभु निरन्तर पांच समितियोंका पालनमा सावधान रहेता, अने अनेक प्रकारका दुःखोने सहन करता तेजो सदा हित मित अने प्रिय वचन बोलता, अल्पबोले बोलता थोड़ा बोलता सयमधी अरतिभावने अने विषयोधी रतिभावने दूर करवाना जागृत रहेता तप अने सयमनी आराधनामा सदा तैयार रहेता (१०)

श्री—‘स जणेहिं’ इत्यादि.



किञ्च—'जसिप्येगे' इत्यादि।

शूभ्र—जसिप्येगे पवेयति, सिसिरे मारुष पवायते।

तसिप्येगे अणगारा, हिमवाष् निषायमेसति ॥१३॥

छया—यस्मिन्नप्येके प्रवेपते क्षिप्रिरे मारुते प्रवाति (सति)।

तस्मिन्नप्येकेऽनगारा, हिमवाष् निषातमपयन्ति ॥१३॥

टीका—यस्मिन् क्षिप्रिरे=क्षिप्रिश्चतौ, मारुते=श्रीतपवन प्रवाति=प्रक्षर्षेण  
पहति सति, एके=केचन अन्ये जनाः प्रवेपते=प्रक्षर्षेण दन्तवीभावादन्पुरस्तर  
कम्पन्ते। यद्वा—'प्रवेदयन्ति' इति छाया, श्रीतसमुत्थं स्पर्शदुःखमनुभवन्ति।  
तस्मिन्नपि काल एके=केचन अन्येऽनगारा हिमवाते=श्रीतवधमीर पहति सति  
निषात=निर्वातस्थानम्, अपयन्ति=गवपयन्ति ॥ १३ ॥

किञ्च—'संघाढीओ' इत्यादि।

शूभ्र—संघाढीओ पवेसिस्तामो, एहा य समाद्दहमाणा।

पिहिया व सक्त्वामो, अद्दुक्खे हिमगसफासा ॥१४॥

छया—संघाढी प्रवक्ष्याम, एपांसि च समादहन्तः।

पिहिया वा शस्याम, भविदुःखान् हिमकसस्रधान् ॥१४॥

आर भी—'जसिप्येगे' इत्यादि।

शीतप्रतुमें कि जिसमें शीतल पवनक चलन पर कई मनुष्योंके  
शरीरमें रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दांतोंस दांत पज्जल लगते हैं, शरीरमें  
खूप कपकपी छूटने लगती हैं, इस प्रकार पड़ी मुदिकलस शीतका कुम्भ  
सहन होता है। कई एक अनगार ता इस शीतकालमें ऐसे स्थानकी  
भोजमें रहते हैं कि जहां शीतल वायुका संघार तक भी न हो आर  
वही ह्यासे प्राण-रक्षण-होता रहे ॥ १३ ॥

इति—जसिप्येगे छंयादि।

शरीरकी शतुभा के पवनना वातवाधी भावनेना शरीरमा केने प्रवेय

यथा इत्यादि वना यथा यथा उ इत सामे इत अत्राप उ शरीरमा केपरी  
छूटे उे आ रीते पुनज्ज सुरकेवीयो केने इत्ये नावुत्ते अदन के उे केत्त  
अन्नाय ते आ केवीधी अनया केया स्थानना तपस्रमां रहे उे के केपयुने  
सव्यार पयुन यथा यथा केने केवीधी केने अथाय यथा यथा (१३)

मूलम्—अयमंतरंसि को इत्थ ? अहमंसिति भिक्षु आहद्दु ।

अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥१२॥

छाया—अयमन्तः कोऽय ? अहमस्मीति भिक्षुः आहृत्य ।

अयमुत्तमः स धर्मस्तूष्णीकः कपायितान् ध्यायति ॥१२॥

टीका—अन्तः=मन्त्रे, अयं कोऽस्ति, इत्येव दुःशीलैः कर्मकरादिभिर्वा षष्ठः

भगवान् क्वचिद् शङ्कादिदोषचारणार्थमाह स्म—‘अह भिक्षुरस्मि’ इति। एत-  
मुक्ते सति स्वार्थव्याघातेन कपायितास्ते भगवन्तमब्रुवन्—‘आहद्दु’=अयं देशीयः  
शब्दः शीघ्रार्थकः, शीघ्रमितः स्थानान्निर्गच्छ, ततः स भगवान् अय=निषेधित-  
स्थानान्निस्सरणरूपो धर्मः=आचारः उत्तमः=श्रेष्ठः, इति कृत्वा ततो निर्जगाम।  
यदि ते निर्गन्तुं नाब्रुवन् तदा कपायितान् प्रति तूष्णीकः सन् ध्यायति=ध्यानस्य  
एवासीत्=धर्मध्यानात् प्रच्युतो न बभूवेत्यर्थः ॥१२॥

“इस शूने घरके भीतर कौन ठहरा हुआ है” इस प्रकार जब प्रभुसे कोई दुःशील कर्मकरादि जन पूछता, तब भगवान उसकी शका-  
की निवृत्तिके लिये यही प्रत्युत्तर देते कि—मैं भिक्षु हूँ। इस प्रकार प्रभुके  
कहने पर जब उसका किसी प्रकारका स्वार्थ उनके वहाँ रहनेसे घातित  
होता तो वह भगवान पर क्रुद्ध होकर उनसे कहता कि—तुम यहांसे  
निकल कर शिघ्र ही किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ। भगवान भी इसकी  
इस प्रकारकी बातसे भी मध्यस्थभावयुक्त होकर यह समझकर कि ‘निषेध  
किये गये स्थानपर साधुको नहीं ठहरना चाहिये, यही साधुका उत्तम आचार  
है’ वहांसे निकल जाते। यदि वे वहांसे निकलनेको नहीं कहते तो भी  
प्रभु अपने ऊपर कषाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावी होकर धर्म-  
ध्यानमें ही मग्न रहते—धर्मध्यानसे कभी ये प्रच्युत नहीं होते ॥१२॥

“आ उन्वजं धरमा डोषु उतरैव छे” जे प्रकारची ज्यारे प्रभुने डोष  
पुछतु त्यारे भगवान जेनी शकानु समाधान करवा जेटले ज प्रत्युत्तर आपता  
हे—हुँ भिक्षु छु आ जवाण पछी पुछनारने आमा डोष प्रकरने स्वार्थ न देजाते  
ते ते भगवान सामे कोषित जनी छहेते के तमे अडिथी नीकणी डोष जिन  
स्थान उपर तात्कालिक खात्या जव भगवान पणु आ प्रकारनी जेनी वातथी  
मध्यस्थ भावयुक्त थर्ष जेसु समलने जे स्थानने त्याग करता के ‘ज्या विरोध  
करवामा आवे जे स्थानमा साधुजे न रोकावु जेथजे जे ज साधुने उत्तम  
आचार छे’ त्याथी नीकणी जता जे ते त्याथी निकणवानु नडि छहेता ते पणु  
प्रभु पोताना उपर कषाययुक्त थता ते माणुसे प्रत्ये समभावी जनी धर्म  
ध्यानमा मग्न रहैता धर्मध्यानथी कवी पणु तेजे च्युत न थता (१२)

किञ्च—‘असिप्येगे’ इत्यादि।

सूत्रम्—असिप्येगे पवेयति, सिसिरे मारुप् पवायते।

तसिप्येगे अणगारा, हिमवाप् निवायमेसति ॥१३॥

छाया—यस्मिन्मध्येके प्रवेपते शिशिरे मारुते प्रवाति (सति)।

तस्मिन्मध्येकेऽनगारा,—हिमवाते निवायमेपयन्ति ॥१३॥

टीका—यस्मिन् शिशिरे=शिशिरश्चतौ, मारुते=शीतपवने प्रवाति=प्रकर्षेण परति सति, एके=केचन अन्ये जनाः प्रवेपन्ते=प्रकर्षेण दन्तवीणावादनपुरस्सरं कल्पन्ते। यद्वा—‘प्रवदयन्ति’ इति छाया, शीतसमुत्थं स्पर्शदुःखमनुभवन्ति। तस्मिन्मध्येके काल एके=केचन अ-यऽनगाराः हिमवाते=शीतलसमीरं वहति सति निवाते=निवातस्यानम्, एपयन्ति=गवपयन्ति ॥१३॥

किञ्च—‘संघाडीओ’ इत्यादि।

सूत्रम्—संघाडीओ पवेसिस्तामो, पहा य समावहमाणा।

पिहिया च सक्खामो, अइवुक्खे हिमगसफासा ॥१४॥

छाया—संघाटीः प्रवेक्ष्यामा, एषासि च समावहन्तः।

पिहितो वा दक्ष्यामः, अतिवृत्तान् हिमकससञ्चान् ॥१४॥

धीर मी—‘असिप्येगे’ इत्यादि।

शीतलक्षणे कि जिसमें शीतल पवनके चलने पर कई मनुष्योंके शरीरमें रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दाँतोंसे दाँत घजने लगते हैं, शरीरमें खूप कापकपी छूटने लगती है, इस प्रकार पड़ी मुद्दिकलसे शीतल दुःख महान होता है। कई एक अनगार तो इस शीतलकालमें ऐसे स्थानकी सोजमें रहते हैं कि जहाँ शीतल वायुका संसार तक मी न हो और ठंडी हवासे प्राण-रक्षण-होता रहे ॥ १३ ॥

धी— असिप्येगे इत्यादि।

शरीरनी श्रुता ठंडा पवनना आहवासी भावसेना शरीरमां जेना प्रवेश वया इत्यां अर्थात् अथ ते एव यागे एव अथवाय ते शरीरमां उपारी छुटे ते आ शीते पुणव सुरेदीवी ङीनु इण्य भावसेना सहन करे ते कोर् अन्तार ते आ ङीवी अथवा जेना स्थाननी तपसमां रहे ते ते ङी वायुने सवाए पवन वर्य शके अने ङीवी जेना पचाव वर्य शके (१३)

टीका—तथा-केचिदेकेऽनगाराः=साधनः इच्छन्ति-शीतार्दिता वयं सघाटीः= शीतनिवारणक्षमाणि प्रावरणानि यथावश्यक्रमेण द्वय त्रय वा प्रवेक्ष्यामः=स्पर्शीरं तत्र निवेशयिष्याम इति, तथा कुर्वन्ति च। परतीर्थिकास्तापसाद्यस्तु एवमिच्छन्ति-वयम्-एधासि=रूपाणानि समादहन्तः अतिदुःखान् हिमरुसस्पर्शान्=शीतस्पर्शान् सोढुं शक्यामः=पारयिष्यामः, इति, तथा कुर्वन्ति च। एके केचिद् गृहस्थाः पुनरेव वाच्छन्ति-वयं पिहिताः=शीतनिवारणक्षममृदुकरुम्वलशालद्विशालकादिभिराच्छादिताः सन्तः शीतस्पर्शान् सोढुं शक्याम इति, तथा कुर्वन्ति च॥१४॥

किञ्च--' तसि ' इत्यादि।

मूलम्—तांसि भगवं अपडिञ्चे, अहे विगडे अहियासए दविण्।

निकखम्म एगया राओ, चाएइ भगवं समियाए ॥१५॥

और भी—' संघाडीओ ' इत्यादि।

कई एक साधुजन अपने पासमे रखी हुई उपधिसे अपने शरीरको ढांक कर शीतसे अपनी रक्षा करते हैं, कभी ऊनी कवल ओढ लिया करते हैं तो कभी सूती दो वस्त्रोंसे अपने शीतका निवारण कर लेते हैं। इससे भी यदि ठंडका निवारण नहीं हो तो ऊनी कवलके साथ सूती चदर मिलाकर शीतकी बाधासे अपनी रक्षा किया करते हैं। परतीर्थिक तापसजन तो ऐसे समयमे लकडे जलाकर धूनी लगा लेते हैं और उसके पास बैठकर तापते हुए शीतकी कड़कनी ठंडीसे अपनी रक्षा करते रहते हैं। कई धनिक गृहस्थजन इस समय शीतनिवारण योग्य शाल दुशाले ओढकर शीतसंबंधी दुःखोंसे अपनेको बचाते रहते हैं ॥१४॥

इरी--' संघाडीओ ' इत्यादि

कैई कैई साधुजन ङडीना गयाव भाटे पोता पासे राजेवा वस्त्रादिकथी पोताना शरीरमे ढाडी ङडीथी रक्षाय भेगवे छे क्यारेक ऊनी कम्मल ओढी दे छे तो क्यारेक सुतरना जे वस्त्रोथी पोतानी ङडीनु निवारण करी ल्ये छे परतु न्यारे ङडीने उपद्रव वधे छे, त्यारेऊनी कम्मल अने सुतराङ वस्त्रो बेणा करी ओढे छे अने ङडीथी पोतानु रक्षाय करे छे परतीर्थिक तापसजन तो आ समये लाकडा गायी धुखी धभावी जेनी पासे जेसी तापे छे अने जे शीते ङडकडती ङडीथी पोतानी रक्षा करे छे धनवाणा कैई गृहस्थो आ समये शाल दुशाला ओढीने ङडीथी पोताने गयावे छे (१४)

छाया—तस्मिन् अमतिष्ठः, अपोविकटे अध्यास्ते द्रविकः ।

निष्कर्म्यैकदा रात्रौ शकनोति, मगवान् क्षमितया ॥१५॥

टीका—तस्मिन्=स्थाभूते क्षिप्रिरे काष्ठे हिमघाते मयइति सति अमतिष्ठः= निर्वातस्थानवार्यनादिरूपप्रतिष्ठाविश्वितं, द्रविकः—द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः=वपमा, सोऽस्यास्तीति द्रविक=वयास्यात्चारित्र्यः, मगवान्=भीषर्षमान-स्वामी अपोविकटे=कुडपादिरहिते स्थाने स्थित्वा अध्यास्ते=अतिदुःखदधीतसर्धा नभिसहते स्म । एकदा=कदाचित् रात्रौ निष्कर्म्य=गृहूर्धमात्र बहिः स्थित्वा मगवान् क्षमितया=उपशान्तमात्रेण व्यवस्थितः सन् अतिदुःखान् हिमसंस्पृष्टान् सोढुं शकनोति=अभिसहते स्म ॥१५॥

भोर भी 'तसि' इत्यादि ।

ऐसे शीतकालमें भी भी वीर प्रसुने यह स्वप्न तकमें भी विचार नहीं किया कि सुझे कोई निर्वात स्थान मिल जाय, प्रस्युत वे इस समयमें भी चौकटे पर कि जहां चारों ओरसे शीतल पवन पाहकर ठंडको खूप असह्य पना देती है, स्थित होकर यथाभ्यात चारित्र्य की आराधनामें तल्लीन रहते हुए शीतपरीपहको सहन करते। कभीए रात्रिमें भी वसतिसे पाहर निकल कुछ समय तक वहां ठहर कर उपशान्त भावसे वे प्रसु शीतकालके कष्टोंको सहते।

इस सूत्रमें 'द्रविक' शब्दका अर्थ—“यथाभ्यातचारित्र्यका आराधन करने वाला” ऐसा है। “द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः” कर्मरूप

इति— ससि” इत्यादि।

आवा क दीना समबभामं पलु भी वीर प्रसुको स्थाने पलु भवेत् विचार नहीं कर्षो के भने केड ठ दीधी वषी शकाम तेलु स्थान भगी अय. आवी कडकडी क दीना समये पलु प्रसु तदन उवाया के अमा आरे तरक्षी क दी पय नने सुसवाये वागते होय तेन स्थाने स्थित वनी यथाभ्यात चारित्र्यी आराधनामां तल्लीन रही क दीना उपद्रवने सहन करत. क्यारेक क्यारेक आवी कडकडी क दीमां सत्रीना वपते वसतीभी वहाए नीकणी वर उपशांत भावभी क दीना कथेने सहन करत.

आ सूत्रमा द्रविक शब्दने अर्थ— यथाभ्यात चारित्र्य आराधन करवावग्य भवेत् छे 'द्रावणात् कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः' केनाभी क म इप म भीनि विनाश काय छे ते द्रव—सवम अर्थात् यथाभ्यात चारित्र्ये. आ द्रव केनामा होय छे ते द्रविक छे

ટીકા—તથા—કેચિદેકેઽનગારાઃ=સાધવઃ ઇચ્છન્તિ-શીતાર્દિતાં વય સઘાટીઃ=શીતનિવારણક્ષમાણિ પ્રાવરણાનિ યથાપશ્યક્રમેક દ્વય ત્રય વા પ્રવેક્ષ્યામઃ=સશરીરં તત્ર નિવેશયિષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ । પરતીર્થિકાસ્તાપસાદયસ્તુ એવમિચ્છન્તિ-વયમ્-એધાસિ=કાષ્ઠાનિ સમાદહન્તઃ અતિદુઃખાન્ હિમકસસ્પર્શાન્=શીતસ્પર્શાન્ સોદુ શક્ષ્યામઃ=પારયિષ્યામઃ, ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ । એકે કેચિદ્ ગૃહસ્થાઃ પુનરેવ યાચ્છન્તિ-ત્રય પિહિતાઃ=શીતનિવારણક્ષમમૃદુકકમ્બલશાલદ્વિશાલકાદિમિરાચ્છાદિતાઃ સન્તઃ શીતસ્પર્શાન્ સોદુ શક્ષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ ॥૧૪॥

કિન્ન—‘ તંસિ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—તંસિ ભગવં અપહિન્ને, અહે વિગડે અહિયાસૅ દવિષ ।

નિકલમ્મ એગયા રાઓ, ચાણ્ઠ ભગવં સમિયાણ ॥૧૫॥

ઔર મી—‘ સઘાઢીઓ ’ ઇત્યાદિ ।

કઈ એક સાધુજન અપને પાસમેં રહી હુઈ ઉપધિસે અપને શરીરકો ઢાંક કર શીતસે અપની રક્ષા કરતે હૈ, કમી ઝની કવલ ઓઢ લિયા કરતે હૈ તો કમી સૂતી દો વસ્ત્રોસે અપને શીતકા નિવારણ કર લેતે હૈ । ઇસસે મી યદિ ઠઢકા નિવારણ નહીં હો તો ઝની કવલકે સાથ સૂતી ચદર મિલાકર શીતકી વાધાસે અપની રક્ષા કિયા કરતે હૈ । પરતીર્થિક તાપસજન તો એસે સમયમેં લકડે જલાકર ધૂની લગા લેતે હૈ ઔર ઉસકે પાસ બેઠકર તાપતે હુણ શીતકી કઢકની ઠઢીસે અપની રક્ષા કરતે રહતે હૈ । કઈ ધનિક ગૃહસ્થજન ઇસ સમય શીતનિવારણ યોગ્ય શાલ દુશાલે ઓઢકર શીતસવધી દુઃખોસે અપનેકો બચાતે રહતે હૈ ॥૧૪॥

ફરી—‘ સઘાઢીઓ ’ ઇત્યાદિ

કોઈ કોઈ સાધુજન ઠડીના બચાવ માટે પોતા પાસે રાખેલા વસ્ત્રાદિકથી પોતાના શરીરને ઢાંકી ઠડીથી રક્ષણ મેળવે છે ક્યારેક ઠડી કમ્બલ ઓઢી લે છે તો ક્યારેક સુતરના બે વસ્ત્રોથી પોતાની ઠડીતુ નિવારણ કરી લે છે પરતુ બ્યારે ઠડીનો ઉપદ્રવ વધે છે, ત્યારેઠની કમ્બલ અને સુતરાઈ વસ્ત્રો ભેળા કરી ઓઢે છે અને ઠડીથી પોતાનુ રક્ષણ કરે છે પરતીર્થિક તાપસજન તો આ સમયે લાકડા બાળી ધુણી ધખાવી ઝેની પાસે બેસી તાપે છે અને એ રીતે કડકઠડી ઠડીથી પોતાની રક્ષા કરે છે ધનવાળા કોઈ ગૃહસ્થો આ સમયે શાલ દુશાલા ઓઢીને ઠડીથી પોતાને બચાવે છે (૧૪)

स्वयं इननादि कार्यो से निवृत्त होकर दूसरों को भी मा इन-मा इन-  
 'मत मारो-मत मारो' इस प्रकार कह कर उनसे निवृत्त करानेवाले,  
 तथा हेय और उपादेयके विषयसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित  
 ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने इस पूर्वोक्त आचारका स्वयं पालन किया, अतः  
 इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्त कर्मोंका नाश  
 करनेके लिये संयम मार्गमें विचरण करें। अर्थात् इसी प्रकारसे इस  
 विधिवा पालन कर अन्य मोक्षाभिलाषी साधुजन भी अपने कर्मोंका  
 नाश करनेके लिये संयममार्गमें लयलीन वनें। 'इति ब्रवीमि' इ अम्बु!  
 जैसा मैंने भगवानसे सुना हूँ वैसा ही कहता हूँ, अपनी कल्पनासे नहीं। १९।

॥ नवमं अध्यायनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ०-२ ॥

स्वयं इननादि कार्यो से निवृत्त जनी जीवज्योने पक्ष मा इन मा इन-  
 'मत मारो नदि मारो नदि' आ प्रकारतु कहीने तेनाभी निवृत्त कसवनाए  
 तथा हेय जने उपादेयता विवेकधी मुक्त जने सर्वथा निदानशून्य, ज्येवा श्रीवर्ध  
 मन स्वामीजे ज्ञा पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेत्, आटे ज्ञा रीते जीव  
 मोक्षसाधक साधुजन पक्ष पिताना समस्त कर्मोना नाश करवा आटे सजम  
 भाजंभा विचरण करे अर्थात् ज्येना प्रकारधी ज्येनी विहित पालन करी जीव  
 मोक्षाभिलाषी साधुजन पक्ष पिताना कर्मोना नाश करवा आटे सजम भाजंभा  
 लयलीन वने. 'इति ब्रवीमि' हे अम्बु! हेतु मे भगवानधी सांलक्ष्यु तेवुं  
 कहुं छु पितानी कल्पनाधी नदि (१९)

नवमा अध्यायनना जीजे उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥



ઉદ્દેશનાર્થમુપસદ્દરનાદ—‘ एस विही ’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्रंतो, माहणेण मइमया ।

वहुसो अपडिन्नेण, भगवया एवं रीयांति-त्तिवेमि ॥१६॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तो, माहनेन मतिमता ।

वहुशोऽप्रतिबेन, भगवता, एवं रीयन्ते ॥ इति ब्रवीमि ॥१६ ॥

अस्य व्याख्या—अस्यैवाध्ययनस्य प्रथमोद्देशगताऽन्तिमगाथा(२३)व्याख्यावद् विज्ञेया । इति ब्रवीमीत्यर्थस्तूक्त एव ॥ १६ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ९-२ ॥

ग्रन्थिका जिससे विनाश हो वह द्रव-सयम, अर्थात् यथाख्यात चारित्र है, यह द्रव जिसके मौजूद हो वह द्रविक है । यथाख्यातचारित्रकी आराधनासे ही जीव अपने अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंका नाश कर मुक्तिस्थानका पात्र हो जाता है, इसके बिना नहीं, ऐसा शास्त्रसंमत सिद्धान्त है। “अधोविकट” शब्द कुडधादि-भीत आदिरहित स्थानका वाचक है । वह स्थान कि जिसमें भीत आदिका आवरण नहीं हो, चौहटा ही ऐसा होता है, क्यों कि वह चारों ओरसे बिलकुल खुला हुआ रहता है, और ऐसे ही स्थानमें सब तरफसे बहुत जोरकी हवा आती है । ‘शमिता’ शब्दका अर्थ-उपशान्त भाव है । राग द्वेषका सबध जिस भावमें नहीं होता है वही उपशान्तभाव कहा गया है ॥१५॥

अब सूत्रकार इस उद्देशके अर्थका उपसंहार करते हुए कहते हैं—  
‘ एस विही ’ इत्यादि ।

यथाख्यात चारित्रकी आराधनाधीन एव पोताना अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंने नाश करी मुक्तिस्थान भेगववा भाग्यशाणी भनी रहे छे, जेना वगर नहीं जेवो शास्त्रसंमत सिद्धान्त छे. “अधोविकट” शब्द भीत वगेरेधी रहित जेवा स्थाननो वाचक छे जे स्थानके लेने भीत वगेरेनो अभाव न डेख तेने उदाहु स्थान कडेवाभा आवे छे, केभडे चारे तरइधी ते भीबकुल ખુલ્લુ ડેખ છે અને જોવા સ્થાનમા ચારે તરइधी મોટા પ્રમાણમા ખુલ્લી હવા આવતી ડેખ છે શમિતા શબ્દનો અર્થ ઉપશાન્ત ભાવ છે રાગ દ્વેષનો સબધ ને ભાવમા નથી તે ઉપશાન્ત ભાવ કહેવાય છે (૧૫)

હવે સૂત્રકાર આ ઉદ્દેશના અર્થને ઉપસહાર કરતા કહે છે—‘ एस विही ’ इत्यादि



स्वयं इननादि कार्यों से निवृत्त होकर दूसरों को भी मा इन-मा इन-  
 'मत मारो-मत मारो' इस प्रकार कह कर उनसे निवृत्त करानेवाले,  
 तथा हेय और उपादेयके बिभेकसे युक्त, एवं मर्यया अप्रतिज्ञ-निदानरहित  
 ऐसे भीवर्धमानस्वामीने इस पूर्वोक्त आचारका स्वयं पालन किया, अतः  
 इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्त कर्मोंका नाश  
 करनेके लिये संयम मार्गमें विचरण करें। अर्थात् इसी प्रकारसे इस  
 विधिका पालन कर अन्य मोक्षाभिलाषी साधुजन भी अपने कर्मोंका  
 नाश करनेके लिये संयममार्गमें लघलीन बनें। 'इति ब्रवीमि' हे जम्बू!  
 जैसा मैंने भगवानसे सुना हूँ वैसा ही कहता हूँ, अपनी कल्पनासे नहीं। १६।

॥ नवमं अध्ययनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ९-२ ॥

स्वयं इननादि कार्योंसे निवृत्त जनी जीवन्मुक्ते पद्य मा इन मा इन-  
 "मारो नहिं मारो नहिं" का प्रकारसे कहने सेनाभी निवृत्त करवाना  
 तथा हेय और उपादेयता विवेकधी युक्त होनेसे सर्वथा निदानशून्य, जेवा भीवर्ध  
 मान स्वामीने का पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेता भाटे का रीते जीव  
 मोक्षसाधक साधुजन पद्य पाताना समस्त कर्मोंने नाश करवा भाटे संयम  
 मार्गमें विचरण करे अर्थात् जेवा प्रकारधी जेनी विधिनु पालन करी जीव  
 मोक्षाभिलाषी साधुजन पद्य पाताना कर्मोंने नाश करवा भाटे संयम मार्गमें  
 लघलीन बने 'इति ब्रवीमि' हे जम्बू! जेवुं से भगवानधी संसृज्यु देवुं  
 कहुं उ पातानी कल्पनाधी नहिं (१६)

नवमा अध्ययनने जीवने उद्देश समाप्त ॥ ९-२ ॥



॥ अथ नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ॥

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके भगवतः शय्यासनानि कथितानि । तत्रावस्थितेन ये परीषदा उपसर्गाश्च यथा भगवता सोढास्तत्प्रतिबोधनार्थं तृतीयमुद्देशक कथयन् भगवत्स्वृणस्पर्शादिसद्वनमाह—‘ तणफासे ’ इत्यादि ।

मूलम्—तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंसमसगे य ।

अहियासए सया समिण, फासाइं विरूवरूवाइं ॥१॥

छाया—तृणस्पर्शान् शीतस्पर्शां च, तेजःस्पर्शांश्च दशमशकाश्च ।

अध्यास्ते सदा समितः, स्पर्शान् विरूपरूपान् ॥ १ ॥

टीका—सदा—सर्वकाले समितः=सम्यग्भावं गतः, यद्वा—समितिसमन्वितः, भगवान् आतापनादिकाले तृणस्पर्शान्=कुशादिस्पर्शान्, शीतस्पर्शांश्च, तथा तेजः—

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इससे पहिले द्वितीय उद्देशमें सूत्रकारने भगवान श्री वीर-प्रभुके शयन और आसनोंका वर्णन किया है । उस उद्देशमें यह कहा गया है कि उस अवस्थामें रहे हुए प्रभुने अनेक प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको सहा है । इस तृतीय उद्देशमें सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि किस २ प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको प्रभुने सहा है ? अतः सर्व प्रथम तृणस्पर्श आदि परीषहोंके सहन करनेके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं—‘ तणफासे ’ इत्यादि ।

सम्यग्भाव, या पांच समितिसे युक्त वे प्रभु आतापना आदिके समयमें अनेक प्रकारके तृणस्पर्शजन्य कष्टोंको, शीतस्पर्शजन्य दुःखोंको,

नवमा अध्ययननो त्रीजे उद्देश

आ त्रीज उद्देशथी पडेला भीज उद्देशमा सूत्रकारे भगवान श्री वीरप्रभुना शयन अने आसनेतु वर्णन करेले छे ते उद्देशमा जेवु पातांयु छे के तेनी अवस्थामा रहेला प्रभुजे अनेक प्रकारना परिषद अने उपसर्गों सह्या छे आ त्रीज उद्देशमा सूत्रकार जे स्पष्ट करथे के भगवाने केव केवा परिषद अने उपसर्गों सहन कर्या छे आथी सर्व प्रथम तृणस्पर्श आदि परिषदो सहन करवाना विषयतु सूत्रकार कथन करे छे—‘ तणफासे ’ इत्यादि

सम्यग्भाव, अने पांच समितिथी युक्त ते प्रभु आतापना आदिना समयमा अनेक प्रकारना तृणस्पर्शजन्य कष्टोने, ठडीना त्रासजन्य दुःखने,

स्पर्शान्=उष्णस्पर्शान्, तथा दशमशकान्=दशमशकवृक्षनभनिततीव्रदु सहस्पर्शान्,  
एतान् विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकाम् स्पर्शान् अर्ध्यास्ते=सहवेस्म ॥१॥

किञ्च—'अह'—स्यादि।

मूष्म्—अह दुश्चरलाठमचारी, वज्जमूर्मि च सुब्भमूर्मि च ।

पत सिज्ज सेर्विसु आसणगाणि चेष पताणि ॥२॥

छाया—अथ दुश्चरलाठमचारीत् वज्जमूर्मि च शुब्भमूर्मि च।

प्रान्तां शय्यामसेविट्, भासनफानि चेष प्रान्तानि ॥२॥

टीका—अथ=अनन्तरम् मगधान् दुश्चरलाठं=दुर्गमं लाडनान्ना प्रसिद्ध देशविश्ले-  
षम्, अचारीत्=मगात्। लाडवृक्षो द्विविधमूर्मिकः, वज्जमूर्मिकः शुब्भमूर्मिकश्चेति तत्र  
द्विविधेऽपि देशे मगधान् विहारं कृतवानित्याह—'वज्जमूर्मि च'—त्यादि। वज्जमूर्मि तथा  
शुब्भमूर्मि च=लाडान्तर्गतदेशविश्लेषम् अचारीदित्यन्वयः। तत्र च प्रान्ताम्-  
भमनाशां नीर्णयन्त्यमृदादिरूपां विविधापद्रव्ययुक्तां, शय्यां=वसतिं प्रान्तानि च

उष्णस्पर्शजन्य व्याधयोक्तो, और दशमशक आदिके काटनेसे उत्पन्न  
हई तीव्र-दु सह पीडाओंको सहते थे ॥१॥

किञ्च—'अह दुश्चर०' इत्यादि।

मगधान अनेक प्रकारके परीषह और उपमर्गोंको सहते हुए  
विहार करते २ जिस देशमें प्रवृत्त करना मुश्किल है ऐसे लाड देशमें  
पहुँचे। वहाँपर वज्जमूर्मि और शुब्भमूर्मि इस प्रकार दो प्रकारकी मूर्मियाँ  
हैं। मगधानने इन दोनोंमें विहार किया। इस विहारमें उन्हें  
प्रान्त-अमनोस-जीर्ण एवं शूयघररूप अनेक प्रकार के उपद्रवोंसे युक्त  
शय्या-वसति, और चूलि आदिसे परिपूर्ण-घूमरित एवं दूटे छूटे काठ

उष्णस्पर्शजन्य व्याधयोक्ते, अने संस तथा मच्छर आदिना कष्टवाची उत्पन्न  
वती तीव्र असह्य पीडाओंने सहन करता क्या (१)

इति—अह दुश्चर इत्यादि।

मगधान अनेक प्रकारना परिषद अने उपसर्जने सहत्वा सहत्वा विहार  
करता करता ये देशमा प्रवेश करवे मुश्किल थे जेवा अनाथ लाड देशमा  
पहुँच्यथा त्या वज्जमूर्मि अने शुब्भमूर्मि आ प्रकारना वे वाजो थे मगधाने जे  
जन्नेमा विहार कर्यो. आ विहारमा तेमने प्रान्त-अमनोस-एव जेटवे पठार  
जेवा शून्य पथमा अनेक प्रकारना उपद्रवोधी मुष्टय सभ्या-वसती अने पूज

धूलिशर्करालोष्टादिपूर्णानि, दुर्घटितकाष्ठानि आसनकानि फलकादीनि च भगवानसेविष्ट ॥ २ ॥

किञ्च—लाढनामकेषु देशविशेषेषु भगवतो वहवः प्रतिकूला उपसर्गा बभूवुस्तान् भगवान् सहतेस्म, इत्याह—‘लाढेहिं’ इत्यादि।

मूलम्—लाढेहिं तस्सुवसग्गा, वहवे जाणवया लूसिसु ।

अह लूह देसियभत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिसु निवइंसु ॥३॥

छाया—लाढेषु तस्योपसर्गा वहवो जानपदा अलूपिपुः ।

अथ रूक्षदेश्यं भक्तं कुक्कुरास्तत्र जिहिंसुः निपेतु ॥ ३ ॥

टीका—लाढेषु=लाढारूपेषु देशविशेषेषु, तस्य=भगवतः, वहवः=बहुविधाः, उपसर्गाः प्रतिकूलरूपाः बभूवुः । तान् कथयति—“जाणवया” इत्यादि । जानपदाः=जनपदे भद्राः—तद्देशीया दुश्चरित्रा अनार्या लोकाः अलूपिपुः=उल्मुकदण्डमहारादिभिर्भगवन्तमताडयन् । अथ=अपि च तत्र रूक्षदेश्यं=रूक्षरूपम् विगतरसम्

आदिवाले आसन-फलक वगैरह मिले, जिन्हें प्रभुने समभावसे अपने उपयोगमें लिया ॥ २ ॥

इस लाढनामके देशमें भगवानको बहुत अधिक प्रतिकूल उपसर्ग सहने पड़े, इस बातको बतलानेके लिये सूत्रकार कहतेहैं—‘लाढेहिं’ इत्यादि।

इस लाढ नामके देशविशेषमें भगवानने अनेक प्रकारके उपसर्गोंको सहा । जैसे—उस देशके अनार्य मनुष्योंने भगवानके ऊपर उल्मुक-मशालदण्ड और अस्त्र शस्त्र आदि द्वारा अनेक प्रकारसे प्रहार किये—उन्हें मारे—पीटे । वहां उन्हें अन्त प्रान्त आहार मिला । वहाँके कुत्तोंने भी भगवानके शरीरको अपने तीक्ष्ण दांतों द्वारा विविधरूपसे क्षत-

वगेरथी परिपूष्णं ज्येवा धुणीया भक्तान् जेने। तुटेव कुटेव ङाडभाण छे, अने ज्येवाञ्च आसन-इलक वगेरे भजेला जेने प्रभुज्ये समभावथी पोताना उपयोगभा लीधेल (२)

आ लाढ नामना देशभा भगवानने धञ्जा ञ्च प्रतिकूल उपसर्गों सडेवा पडेला आ वात यताववा भाटे सूत्रकार ङडे छे—‘लाढेहिं’ इत्यादि

आ लाढ नामना देशविशेषभा भगवाने अनेक प्रकारना उपसर्गों सहा जेम-ते देशना अनार्य मनुष्योंजे भगवान ऊपर उल्मुक-मशाल, दंड, अस्त्र शस्त्र वगेरथी अनेक प्रकारे प्रहार कर्था—ज्येमने भार्या-पीटया त्या तेमने अन्त प्रान्त आहार भजेला त्या कुत्तराज्ये पञ्च भगवानना शरीरने पोताना तीक्ष्ण

अन्तमान्त भक्तम्=भक्तम्, भगवता लक्ष्यम् । तत्र कुकुराः=पान, जिहिसुः=भगवतः  
 शरीरं दन्तैश्चिच्छिद्युः, उपरि च निपतुः=आरोहयन्त ॥ ३ ॥

किञ्च—‘अप्ये’ इत्यादि ।

प्लम्—अप्ये जणे निवारइ, लूसणए सुणए दसमाणे ।

लुलुकरति आहतु, समण कुकुरा दसतु—त्ति ॥४॥

छाया—अग्नो जना निवारयति लूपकान् शुनकान् दक्षतः ।

शु-शु कुर्वन्ति आहस्य ‘ भमषं कुकुरा दक्षन्तु ’ इति ॥ ४ ॥

टीका—यः लूपकान्=अशुभकृष्णवादिभिर्मगवतो हिमकान् मनान्, दंशत’=  
 मगधमात्र दन्तैश्छेद्यत शुनकांश्च=कुकुरान् निवारयति=शूरीकराति, ताश्चो  
 जनस्तत्र क्लृपः=छोऽपि नासीदित्यर्थः, अल्पद्वन्द्वोऽप्रामात्रार्थकः’ मत्युत जना  
 आहस्य=ताडयित्वा “ भमषम्=एनं मुण्डिनं कुकुरा दक्षन्तु ” इषीच्छया लु-लु  
 कुर्वन्ति=दंशनाय कुकुरान् भेदयन्ति स्म-भगवन्त कुकुरैर्दंशयामासुरित्यर्थः । एन-  
 म्भूते प्रतिष्ठापसर्गाकारक दक्ष भगवान् पश्चात्पर्यन्तमवतस्यौ ॥४॥

विक्षत किया । भगवानको दक्षकर से कुचे उन्हें काट म्याले और उनके  
 क्मर चढ़जाते ॥३॥

और भी—‘अप्ये जणे’ इत्यादि ।

उस दक्षमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो भगवानको मारने  
 वालोंसे तथा कान्ने वाले कुत्तोंसे पचाता । उल्टे चहकि लोग इसी  
 भावनासे कि ‘इस मुण्डित भ्रमणका कुसे काट ल्याबे’ ऐसा विचार कर  
 उनपर कुत्तोंको छुछकारते और उनसे उन्हें फटवाते । इस प्रकार इस  
 प्रतिकूल अवस्थावाले दक्षमें भी भगवानने छ महीने तक पिहार किया ॥४॥

द्वितीया लुहे लुहे स्थजे नटका करेवा जगवानने जेवाए जे जेभना पर भसी  
 ज्यवाए जने नटका करेवा (३)

हरी— अप्ये जणे इत्यादि ।

जे देशमां जेवे केई पक्ष मावुअ न कते के ने अजवानने भास्वाए  
 ज्यजेभी के करेवा कुतलज्येभी ज्यवे उह्य ल्याए होके जेवी ज्यवनावाण  
 कते के आ मुण्डित साधुने कुतलज्ये करी ज्यए जेवा विचारबी कुतलज्येने  
 तेभना उपर स्वकारीने करेववा भाटे छकी मुकवा ज्यवा प्रतिकूल अवस्थावाण  
 देशमां पक्ष अजवाने छ महीना सुधी विहार कर्गे । (४)

धूलिशर्करालोष्टादिपूर्णानि, दुर्घटितकाष्ठानि आसनकानि फलकादीनि च भगवानसेषिष्ठ ॥ २ ॥

किञ्च—लाढनामकेषु देशविशेषेषु भगवतो वहवः प्रतिकूला उपसर्गा वभ्रुवस्तान् भगवान् सहतेस्म, इत्याह—‘लाढेहिं’ इत्यादि।

मूलम्—लाढेहिं तस्सुवसग्गा, वहवे जाणवया लूसिसु ।

अह लूह देसियभत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिसु निवइंसु ॥३॥

छाया—लाढेषु तस्योपसर्गा वहवो जानपदा अलूपिपुः ।

अथ रूक्षदेश्यं भक्तं कुक्कुरास्तत्र जिहिंसुः निपेतु ॥ ३ ॥

टीका—लाढेषु=लाढारूपेषु देशविशेषेषु, तस्य=भगवतः, वहवः=बहुविधाः, उपसर्गाः प्रतिकूलरूपाः वभ्रुवुः । तान् कथयति—“जाणवया” इत्यादि । जानपदाः=जनपदे भवाः—तद्देशीया दुश्चरित्रा अनार्या लोकाः अलूपिपुः=उल्मुकदण्डप्रहारादिभिर्भगवन्तमताडयन् । अथ=अपि च तत्र रूक्षदेश्यं=रूक्षकल्पम् विगतरसम्

आदिवाले आसन-फलक वगैरह मिले, जिन्हें प्रभुने समभावसे अपने उपयोगमें लिया ॥ २ ॥

इस लाढनामके देशमें भगवानको बहुत अधिक प्रतिकूल उपसर्ग सहने पडे, इस घातको बतलानेके लिये सूत्रकार कहतेहैं—‘लाढेहिं’ इत्यादि।

इस लाढ नामके देशविशेषमें भगवानने अनेक प्रकारके उपसर्गोंको सहा । जैसे—उस देशके अनार्य मनुष्योंने भगवानके ऊपर उल्मुक-मशालदण्ड और अस्त्र शस्त्र आदि द्वारा अनेक प्रकारसे प्रहार किये-उन्हें मारे-पीटे । वहां उन्हें अन्त प्रान्त आहार मिला । वहांके कुत्तोंने भी भगवानके शरीरको अपने तीक्ष्ण दांतों द्वारा विविधरूपसे क्षत-

वगेरेथी परिपूष्णं ज्येवा धुणीया मक्षान जेने। तुटेव कुटेव काठमाण छे, अने ज्येवाञ् आसन-इलक वगेरे भजेला जेने प्रभुजे समभावथी पोताना उपयोगमा लीधेव (२)

आ लाढ नामना देशमा भगवानने धञ्जा ञ् प्रतिकूल उपसर्गो सडेवा पडेला आ वात भताववा भाटे सूत्रकार कडे छे—‘लाढेहिं’ इत्यादि

आ लाढ नामना देशविशेषमा भगवाने अनेक प्रकारना उपसर्गो सड्ढा जेभ-ते देशना अनार्य मनुष्योजे भगवान ऊपर उल्मुक-मशाल, इड, अस्त्र शस्त्र वगेरेथी अनेक प्रकारे प्रहारे कर्या—जेभने भार्या-पीट्या त्या तेभने अन्त-प्रान्त आहार भजेव। त्या कुत्तज्ये पञ्च भगवानना शरीरने पोताना तीक्ष्ण

मगधदाहानुवर्तिनां साधूनां तु स्थविरावस्थामन्तरेण न कल्पते दण्डधारणं, तथा पोक्तं व्यवहारसूत्रे (३०८) “धेरारणं धेरभूमिपत्तारणं कल्प्य इदं वा०” इत्यादि; अत्र ‘धेरारणं’ इत्युपलक्षणं रोगिग्लानानाम्, स्थविरादेस्तत्र दण्डधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वादानामाविहितत्वात्, अत एवासौ “निहाय

उत्तर—वहाँ पर ये साधु कुत्ता आविको भगाने या उर्हे ताडनेके लिये अपने हाथोंमें अपन शरीरप्रमाण दण्ड और अपने शरीरसे चार अंगुल अधिक ऊँची नलिका-इण्डबिद्योष पासमें रखते हैं, और विचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहाँ विहार करते समय अपने हाथमें दण्ड आदि रक्खा ?

उत्तर—स्थविर—वृद्ध अवस्थाके सिवाय दण्ड धारण करनेकी आज्ञा भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः भगवानने भी उस समय वहाँ दण्ड आदि पासमें नहीं रखा, व्यवहार सूत्रमें भी यही कहा है—

“धेरारणं धेरभूमिपत्तारणं कल्प्य इदं वा०” इत्यादि। इस सूत्रमें ‘धेरारणं’ यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थविरादि अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें दण्डका धारण करना युक्त नहीं माना गया है, क्यों कि एक तो दण्डका धारण करना अन्यजीवोंको भयका जनक तथा हिंसाका जनक होता है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

उत्तर—ते स्थवे तेवा साधु कुत्त वजेरेने से अण्डवा भाटे अने तेने भास्वा भाटे पोतान्ना दाधेभा पोतान्ना शरीरप्रमाणे लाडवी अने पोतान्ना शरीरधी चार अंगुल भाटी जेवे इठ राजे छे अने विदार करे छे

शंका—भगवानने पण्डु जे हेसभां विदार करवां पोतान्ना दाधभां इठ-लाडवी वजेरे केभ न सम्भा ?

उत्तर—वृद्ध अवस्था सिवाय इठ धारण करवानी आज्ञा भगवान्ना शासनभां रहेवावाण्ण साधुजोत्ता सिद्धांतभां नधी भाटे भगवानने पण्डु ते समय ते स्थवे इठ वजेरे चाये राजेण न इत्तां अवधार सूत्रभां पण्डु जे व इठेल छे—

“धेरारणं धेरभूमिपत्तारणं कल्प्य इदं वा०” इत्यादि।

जे सूत्रभां “धरणं” आ पड शंकी अत अवस्थातु उपलक्षक छे भाटे स्थविर आदि अवस्था सिवाय अन्य अवस्थाजोभां इठने धारण करवा जे युक्त मानेल नधी, केभके कोक ते इठने धारण करवे ते जीव लोपाने भयजनक तथा हिंसाके प्रोत्साहन आपनार छे धीण्डु शास्त्रभां इठ धारण करवातु इठो पण्डु

किञ्च—'एलिक्खए' इत्यादि।

मूलम्—एलिक्खए जणा भुज्जो, वहवे वज्जभूमि परुसासी।

लट्ठिं गहाय नालियं, समणा तत्थ य विहरिंसु ॥५॥

छाया—ईदृक्षा जना भूयो वहवो वज्जभूमौ परुपाशिन।

यष्टिं गृहीत्वा नालिका श्रमणास्तत्र च विजहुः ॥ ५ ॥

टीका—ईदृक्षाः=उक्तविधाः जना यत्रासन्, तत्र देशे भगवान् भूयः=मनुष्यः विहरतिस्म। तत्र लाढदेशे वज्जभूमौ=वज्जभूमिनाम्नि देशविशेषे वहवो जनाः परुपाशिन=तुच्छभोजिनः, अत एव क्रोधस्वभावाः सन्ति तेन ते साधुमवलोक्य कुकुरादिभिः कदर्शयन्ति। नन्वेव कुकुरादिभिः साधुरुदर्थने तत्रत्याः शाक्यादयः कथं तत्र विचेरुः? इति जिज्ञासायामाह—'यष्टिं'—मित्यादि। तत्र च श्रमणाः=अन्ये-शाक्यादयः श्वादिनिगारणार्थं यष्टिं=स्वदेहप्रमाण दण्डं नालिका=स्वदेहाच्चतुरङ्गुलाधिकप्रमाणं दण्ड वा गृहीत्वा विजहुः=विचरन्तिस्म।

और भी—'एलिक्खए जणा' इत्यादि।

यद्यपि इस प्रकारके ही बहुतसे मनुष्य वहाँ थे तो भी भगवानने वहाँ विहार बंद नहीं किया—प्रत्युत वे वार-वार वहीं पर विचरते और प्रतिकूल परीषद् और उपसर्गोंको धैर्यके साथ शांतचित्तसे सहन करते। वज्जभूमिमें बहुत मनुष्य तुच्छ आहार करते हैं, इसलिये उनके स्वभावमें क्रोध ही क्रोध सदा बना रहता है—वे बिना किसी निमित्तके भी सदा क्रोधसे भरे रहते हैं। ये साधु सतोंको देखकर द्वेष करते हैं और कुत्ते आदिकोंसे उन्हें व्यर्थमें कष्ट पहुँचाते हैं।

शका—यदि ऐसी बात है तो वहाँ पर शाक्यादि साधु कैसे विचरण करते हैं?

द्वि—'एलिक्खए जणा' इत्यादि

जो वे जोवा प्रकारका माणुसो धण्डा छत्ता तो पणु लगवाने त्यानो विहार भय करेन न छतो, अने तेज्जो वारवार त्या विचरता अने प्रतिकूल परिषद तथा उपसर्गाने धैर्य साथे शान्त रीते सहन करता वज्जभूमिमा धण्डा मनुष्यो तुच्छ आहार करे छे जेनाथी तेना स्वभावमा क्रोधन लरेली रहे छे कोर पणु नतना करणु वगर पणु तेज्जो क्रोधयुक्त न रहे छे साधु सताने जेध तेमना उपर द्वेष करे छे अने कुतशज्जो विजेरेथी तेमने दु.प पडोआडे छे

शका—आधी बात छे तो त्या शाक्यादि सधु कथ रीते विचरी शके छे?



भगवदाज्ञानवर्तिनां साधूनां तु स्थविरावस्थामन्तरेण न कल्पते दण्डधारणं, तथा चोक्तं स्ववहारसूत्र (३०८) “घेराणं घेरभूमिपक्षाणं कण्णइ दंडप चा०” इत्यादि; अत्र ‘घेराणं’ इत्युपलक्षणं रोगिग्लानानाम्, स्थविरादस्त्वय दण्डधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वाद्वागमाविहितत्वाच्च, अत एवाग्रे “निहाय

उत्तर—यहां पर ये साधु कुत्सा आविक्तो भगाने या उ हैं ताडनेके लिये अपने हाथोंमें अपने शरीरप्रमाण दण्ड और अपने शरीरसे चार अंगुल अधिक ऊंची नलिका-दण्डविशेष पासमें रखते हैं, और पिचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहां विहार करते समय अपने हाथमें दण्ड आवि रक्खा ?

उत्तर—स्थविर-वृद्ध अवस्थाके सिवाय दण्ड धारण करनेकी आज्ञा भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः भगवानने भी उस समय वहां दण्ड आवि पासमें नहीं रखा, व्यवहार सूत्रमें भी यही कहा है—

“घेराणं घेरभूमिपक्षाणं कण्णइ दंडप चा०” इत्यादि। इस सूत्रमें ‘घेराणं’ यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थविरादि अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें दण्डका धारण करना युक्त नहीं माना गया है, क्यों कि एक तो दण्डका धारण करना अन्यजीवोंको भयका जनक तथा हिंसाका जनक होता है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

उत्तर—ते स्थणे तेवा साधु कुतस वजेरेने जे जगज्जवा भाटे जने तेने भास्वा भाटे पोत्ताना डावोभां पोत्ताना शरीरप्रमाणे लाकडी जने पोत्ताना शरीरी चार अंगुल भोगे जेवे इठ सजे छे जने विहार करे छे

शंका—जजवाने पणु जे देसभां विहार करवा पोत्ताना डावभां इठ-लाकडी वजेरे ठेभ न सक्का ?

उत्तर—वृद्ध अवस्था सिवाय इठ धारणु करवानी आज्ञा भगवानना शासनाभां रहेवावाया साधुज्जेना सिद्धांतभा नही, भाटे जजवाने पणु ते समय ते स्थणे इठ वजेरे पास सजेले न इटां व्यवहार सूत्रभां पणु जे व करेले छे—

“घेराणं घेरभूमिपक्षाणं कण्णइ दंडप चा ॥” इत्यादि।

जे सूत्रभां “घेराणं” ज्जा पद शरीरी ग्लान अवस्थानु उपलक्षक छे, भाटे स्थविर ज्जादि अवस्था सिवाय अन्य अवस्थाज्जेभां इठने धारणु करवा जे युक्त मानेले नही, हेभजे जेक ते इठने धारणु करवे ते जीव जेवेने कपकनक तथा हिंसाने प्रोत्साहन आप्णार छे. पीलु शास्त्रभा इठ धारणु करवानु कही पणु

दंडं पाणेहि ० इत्यपि वदता भगवता दण्डधारण स्वयमनाचरितं, मुनीना च दण्ड-  
धारणप्रतिषेधायोपदिष्टमिति सुस्पष्टं ज्ञायते । ये तु दण्डिनः 'सर्वावस्थायां  
दण्डधारणं मुनिरुत्पः' इति मत्वा सर्वदा दण्डेन सह वर्चन्ते तदेतत्तेषां प्रबलमोह-  
विजृम्भणमात्रम् ॥५॥

किञ्च—'एवं पि' इत्यादि ।

मूलम्—एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्टपुठ्वा अहेसि सुणएहिं ।

संलुचमाणा सुणएहिं, दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं ॥६॥

छाया—एवमपि तत्र विहरन्तः स्पृष्टपूर्वा आसन् शुनकैः ।

संलुच्यमाना शुनकैः दुश्चराणि तत्र लाढेपु ॥ ६ ॥

रखनेका कोई विधान भी नहीं है "निहाय दंड पाणेहि" इस सूत्रांशसे  
आगे चलकर भगवानने यही स्पष्ट किया है, अतः इस अवस्थामें  
दण्डका धारण अयोग्य समझ श्री वीरप्रभुने भी दण्ड ग्रहण नहीं किया ।  
जब अन्य मुनिजनोंको भी पूर्वोक्त अवस्थाओंके अतिरिक्त दण्ड धारण  
करनेकी वीरप्रभुकी आज्ञा ही नहीं है, तो विचारनेकी बात है कि वे  
प्रभु स्वयं दण्ड कैसे ग्रहण कर सकते थे । जो लोग यह समझकर  
कि दण्ड धारण करना मुनियोंका कल्प है सदा दण्ड धारण करते हैं यह  
उनकी भ्रान्त्यता शास्त्रीय मार्गसे सर्वथा प्रतिकूल है, तथापि दण्डरखते हैं  
इसका कारण सिर्फ प्रबल मोहका ही विलास जानना चाहिये ॥५॥

और भी—'एव पि' इत्यादि ।

विधान नहीं "निहाय दंड पाणेहि" या सूत्रांशकी आगण वाली भगवाने से  
स्पष्ट करेले छे भाटे से अवस्थामा दंड धारण करवे से अयोग्य समझ  
वीर प्रभुसे दंड धारण करेले न हुतो न्यारे भील मुनियोने भाटे पणु पूर्वोक्त  
अवस्थाओना अतिरिक्त दंड धारण करवानी वीर प्रभुनी आज्ञा नहीं त्यारे  
विचारवानी से बात छे के न्या भीलने भाटे दंड ग्रहण करवानी आज्ञा नहीं त्या  
प्रभु पीते दंड शी रीते धारण करी शके? ने लोको दंड राणे छे ते सेवु समने छे  
के दंड राणवे ते मुनियोने कल्प छे तेथी सदा दंड धारण करे छे सेमनी  
से भ्रान्त्यता शास्त्रीय मार्गथी तदन विज्ञानी छे तो पणु दंडराणे छे, आतु  
धारण केवण प्रणण मोहुने विलासण समणवे जेठ से (५)

इरी—'एव पि' इत्यादि

टीका—तत्र=छात्रदेशेषु एवमपि=यष्ट्यादिग्रहणेनापि विहरन्तः भ्रमणाः=अन्ये  
शाक्यादयः, शुनकैः=कुक्षुरैः स्पृष्टपूर्वा=दृष्टपूर्वा आसन्। तथा शुनकैः सलुप्य-  
मानाः=इतश्चेतश्च गात्रे मद्भ्यमायाः आसन्। दण्डैर्भार्यमाणा अपि तत्रत्याः आनाः  
मतिन्विष्टा न भवन्तीति भावः, अत एव तत्र=तेषु छात्रेषु दुःखराशि=सर्वा दुर्ग-  
मानि ग्रामादीनि सन्तीत्यर्थ ॥ ६ ॥

‘अन्ये भ्रमणा यष्ट्यादिकं गृहीत्वा किञ्चुः’ इत्युक्तम्, भगवान् कथं तत्र  
छात्रेषु विहारमकरोदिति दर्शयितुमाह—‘निहाय दण्डं’ इत्यादि।

मूषम्—निहाय दण्ड पाणेहिं त कायं वोसिरिज्ज मणगारे।

अहं गामकटप्प भगवते, अहिआसप्प अभिसमिञ्चा ॥७॥

छाया—निहाय दण्डं प्राणियु तं कायं व्युत्सुज्यानगारः।

अथ ग्रामकृष्टकान् भगवानभ्यास्त अभिसमत्स्य ॥ ७ ॥

उस छात्रदेशमें इतने पलिष्ठ कुचे हैं कि दंडा हाथमें लेकर भी  
बिचरण करनेवाले अन्य शाक्यादिक भ्रमण उनको भगाते तो भी वे  
छपकर झूम जाते और काट खाते हैं पहिले भी इनको उन्होंने कईबार  
काट खाया है। बहकि ग्राम इन कुर्सीसे ही दुर्गम पने हुए हैं। अतः  
अपरिचित कोई भी व्यक्ति वहां नहीं जा सकता ॥६॥

जब अन्य साधुजन दण्डादिसे सज्ज होकर वहां बिचरण करते हैं  
तब भगवान् भीर प्रभुने कैसे वहां बिहार किया ? इस विषयको सूत्रकार  
स्पष्ट करते हैं—‘निहाय दण्डं’ इत्यादि।

भगवानने उस छात्रदेशमें बिहार करते समय अनेक प्रकारके परी  
पह और उपसर्गोंको कर्मोंकी निर्जराका कारण मान पडे ही धैर्य और

लाह देशमें जेवा जणवान कुतरा जेप छे ते काक्यां वड लधने विज  
एवु कस्यावण्य शाक्यादिके भ्रमण जेने अजाडे छत्ता ते आभे कुदीने करे छे।  
अजाडे पणु वणु शाक्यादिके भ्रमणेने जे कुतस्येजे करी जाभा छे त्याना  
नामजं आ कुतराजेथी दुर्गम रहे छे जेरते अपरिचित केड पणु अहित त्यां  
वर्ष शकती नथी। (१)

अथारे अन्य साधुजन दंड वजैरैथी सज्ज बरध त्यां विचरण करे छे तयारे  
अभयान भीर प्रभुजे त्यां विहार कथ रीते करी ? आ विषयने सूत्रकार स्पष्ट  
करे छे—‘निहाय दंडं’ इत्यादि।

जे लाह देशमें विहार करती वपते भगवाने अनेक प्रकारस्य परिचर  
अने उपसर्गेने कर्मोनी निव रतु करण भागी पुन व धैर्य अने समभाव साथे  
वड

दंडं' पाणेहि० इत्यपि वदता भगवता दण्डधारणं स्वयमनाचरितं, मुनीनां च दण्ड-  
धारणप्रतिषेधायोपदिष्टमिति सुस्पष्टं ज्ञायते । ये तु दण्डिनः 'सर्वावस्थायां  
दण्डधारणं मुनिकल्पः' इति मत्वा सर्वदा दण्डेन सह वर्चन्ते तदेतत्तेषां प्रबलमोह-  
विजृम्भणमात्रम् ॥५॥

किञ्च—'एवं पि' इत्यादि ।

मूलम्—एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्टपुट्वा अहेसि सुणएहिं ।

संलुचमाणा सुणएहिं, दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं ॥६॥

छाया—एयमपि तत्र विहरन्तः स्पष्टपूर्वा आसन् शुनकैः ।

संलुच्यमाना शुनकैः दुक्षराणि तत्र लाढेषु ॥ ६ ॥

रखनेका कोई विधान भी नहीं है "निहाय दंड पाणेहि" इस सूत्रांशसे  
आगे चलकर भगवानने यही स्पष्ट किया है, अतः इस अवस्थामें  
दण्डका धारण अयोग्य समझ श्री वीरप्रभुने भी दण्ड ग्रहण नहीं किया ।  
जब अन्य मुनिजनोंको भी पूर्वोक्त अवस्थाओंके अतिरिक्त दण्ड धारण  
करनेकी वीरप्रभुकी आज्ञा ही नहीं है, तो विचारनेकी बात है कि वे  
प्रभु स्वयं दण्ड कैसे ग्रहण कर सकते थे । जो लोग यह समझकर  
कि दण्ड धारण करना मुनियोंका कल्प है सदा दण्ड धारण करते हैं यह  
उनकी भ्रान्तता शास्त्रीय मार्गसे सर्वथा प्रतिकूल है, तथापि दण्डरखते हैं  
इसका कारण सिर्फ प्रबल मोहका ही विलास जानना चाहिये ॥५॥

और भी—'एव पि' इत्यादि ।

विधान नहीं "निहाय दंड पाणेहि" आ सूत्रांशकी आगण वाली भगवाने से  
स्पष्ट करेले छे माटे से अवस्थामा दंड धारण करवे से अयोग्य समझ  
वीर प्रभुसे दंड धारण करेले न छेतो न्याये णीण्ड मुनियोने माटे पणु पूर्वोक्त  
अवस्थाओंना अतिरिक्त दंड धारण करवानी वीर प्रभुनी आज्ञा नहीं त्यारे  
विचारवानी से बात छे के न्या णीण्डने माटे दंड अडणु करवानी आज्ञा नहीं त्या  
प्रभु पोते दंड शी रीते धारण करी शके? ले लोके दंड राणे छे ते सेवु समजे छे  
के दंड राणवे ते मुनियोना कल्प छे तेथी सदा दंड धारण करे छे सेमनी  
से भ्रान्तता शास्त्रीय मार्गशी तदन विज्ञानी छे तो पणु दंडराणे छे, आणु  
धारण केवण प्रणण मोडने विलासण समजवे लेई से (५)

इरी—“एव पि” इत्यादि

स केन प्रकारेण ग्रामकण्टकतपरीपहोपसर्गान् सङ्घते ? इति सप्त्यान्तमाह-  
'नागो' इत्यादि ।

मूळम्—नागो सगामसीसे वा, पारप तस्य से महावीरे ।

एव पि तस्य लाडोर्हि, अलङ्कपुञ्जो वि पगया गामो ॥८॥

उवाच—नागः सग्रामशीर्षे इव पारगः तत्र स महावीरः ।

एवमपि तत्र लाडेषु अस्मभपूर्वोऽप्यकदा ग्रामः ॥ ८ ॥

टीका—संग्रामशीर्षे=युद्धक्षेत्रे नाग इव=इस्तीव तत्र=तेषु लाडेषु महावीरः  
पारगः=पारगामी अभूत् । यथा—इस्ती युद्धभूमौ शत्रुसेनां विजित्य कस्यारगामी  
भवति, तथा स महावीरः=मगवान् अपि लाडेषु परीपहोपसर्गानीक विजित्य कस्या  
रगामी अभूत् । किञ्च—एवमपि तत्र=तेषु लाडेषु ग्रामाणामतिदूरवर्तिनाद् एकदा=  
एकस्मिन् काले कदाचिद् मगवता ग्रामः=साकानां वासस्थानम् अस्मभपूर्वः=पूर्वं न  
अस्माः, तेनारभ्यमार्गे गच्छतो मगवतः समीपमागत्यात्नार्यलाकाः परीपहोपसर्ग  
भवन् । एतच्चानुपदमेव वक्ष्यते ॥८॥

इष्टान्तद्वारा सूत्रकार इसी बातकी पुष्टि करते हैं—'नागो' इत्यादि।

जिस प्रकार युद्धक्षेत्रमें गजराज शत्रुसेनाको परास्त कर  
उससे पार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार वे महावीर प्रभु भी लाडदेशमें  
उपसर्गरूपी सेनाको जीतकर उससे पार हुए। एक समयकी बात  
है कि जब मगवान बिहार करते-एक ऐसे ग्राममें आ रहे थे जो छोड़े  
हुए ग्रामसे बहुत दूर था, तथा जिसमें वे पहिंछे कमी नहीं आये थे,  
उस समय जंगली मार्गसे आते हुए उनके पास बहुतसे अनार्यजन  
आये और उनका प्रकारका परीपह और उपसर्ग करने लगे ॥८॥

इष्टान्तद्वारा सूत्रकार जे व बातनी पुष्टि करे छे—'नागो' इत्यादि

जे रीते युद्धक्षेत्रमें जेभ गजराज शत्रुसेनाने परास्त करी जेनी  
कारण नीकणी जय छे अथवा जे व रीते महावीर प्रभु पञ्च लाड देशमें  
परीपह अने उपसर्गरूप सेनाने छुटी जेनाथी पार भयल जेक समयनी बात  
छे के न्यारे समयान विचार करतां करतां जेक जेना ग्राममा बर्छ रह्य दया  
के जे छोड़ेला ग्रामथी बहुत दूर दूरी अने न्यां अथा छे छी पञ्च अथ न  
दया जे वयते व अथना मार्गथी जया बहुत अनार्य लोगे तेमनी पास  
आयल अने जेमना उपर अनेक प्रकारका परिपह अने उपसर्ग करवा दायल (८)

टीका--अनगारः=भगवान् प्राणेषु=प्राणिषु दण्डं=लकुटयष्ट्यादिकं निहाय=अगृहीत्वा सर्वथा परित्यज्य 'ओहाक् त्यागे' इति धातोर्ल्यवन्तरूपम्। यद्वा-दण्ड=द्रुध्रणिहितमनोवाक्कायरूपं निहाय=त्यक्त्वा, तथा तम्=अनार्यकृतोपसर्गापन्नं काय काय=ममत्वं व्युत्सृज्य अथ=अनन्तरम् अभिसमेत्य=सम्यग् निर्जरां विदित्वा ग्रामकण्टकान्=रुक्षभाषिणोऽनार्यलोकान् तत्कृतपरीपहोपसर्गानिति यावत्, अध्यास्ते=अधिसहतेस्म। दुस्तहपरीपहोपसर्गसम्प्राप्तौ सत्यामपि भगवान् सर्वमेव सहतेस्म, किन्तु-प्राणिभयहिंसाजनकत्वाद् यष्टिलकुटादिकं न गृहीतवानिति भावः॥७॥

समभावके साथ सहन किया, परन्तु फिर भी दण्ड आदिका उन्होंने उस अवस्थामें भी ग्रहण नहीं किया, उसका कारण प्राणियोंको अभय देना था, यदि वे दण्ड बगैरहका उस समय वहां उपयोग करते तो अन्य प्राणियोंको उससे भय अवश्य होता, जो जैन मुनियोंके लिये सर्वथा हेय है। भगवान शारीरिक ममत्वसे रहित थे। रक्षाके साधनोंका उपयोग वे ही लोग करते हैं-जिन्हें बाह्य पदार्थोंसे अपने बिगाड़का भय होता है, भगवान निर्भय थे अतः न तो उन्हें उन अनार्यों से भय हुआ और न उनके द्वारा कृत उपसर्ग और उपद्रवोंसे। सूत्रका शब्दार्थ इस प्रकार है-शारीरिक ममतासे रहित वे प्रभु 'जीवोंको मेरे द्वारा भय न हो' इस अभिप्रायसे दण्डका अथवा मन वचन कायकी अशुभ प्रणिधानरूप प्रवृत्तिका सर्वथा परित्याग कर "ये सब बाह्य उपसर्ग और परिषह मेरे कर्मोंकी निर्जराके साधक है" ऐसा विचार कर उन्हें अनार्यों के ससर्गसे विचलित नहीं होकर सहा ॥७॥

सहन कर्था परन्तु छता पणु तेभणु लाकडी सरणीये साथे न लीधी, ओतुं कारणु प्राणीयेने अलय आपवानु छतु ने ये समये प्रभु लाकडी वगेरे राभत तो अन्य प्राणीयेने जेनाथी लय अवश्य लागत ने जैन मुनियेने भाटे सर्वथा त्याग्ये छे भगवान शारीरिक ममत्वथी तर्कन रहित छता रक्षाना साधनेने उपयोग तो ये बोको करे छे के जेभने बाह्य पदार्थथी पोताना भगडने लय छेय छे भगवान निर्भय छता आथी जेभने न अनार्योंने लय थये के न तो जेना तरुथी करयेला उपसर्गं अने उपद्रयेने सूत्रने शब्दार्थ आ प्रकारने छे-शारीरिक ममताथी रहित जे प्रभु 'जुवेने भाराथी लय न छे.' आ अकिप्रायथी दडने अथवा मन वचन अने कथानी अशुभ प्रणिधानरूप प्रवृत्तिने सर्वथा परित्याग करी "आ गथा बाह्य उपसर्गं अने परिषहं भारा कर्मोनी निर्जराणा साधक छे" जेवा विचार करी अनार्योंना ससर्गथी विचलित न जनता सहन करेव. (७)

स केन प्रकारेण ग्रामकण्टककृतपरीपहोपसर्गान् सङ्घते ? इति सङ्घट्टान्तमाह—  
'नागो' इत्यादि ।

पृथ्म्—नागो संगामसीसे वा, पारए तस्य से महावीरे ।

एष पि तस्य लाडोहिं, अलङ्कपुञ्चो वि पगया गामो ॥८॥

भाषा—नागः संग्रामशीर्षे इव पारगः तत्र स महावीरः ।

एवमपि तत्र लाङ्कपु अलङ्कपूर्वोऽप्येकदा ग्रामः ॥ ८ ॥

टीका—संग्रामशीर्षे=युद्धक्षेत्रे नाग इव=इस्तीय तत्र=तत्र लाङ्केषु महावीरः  
पारगः=पारगामी अभूत् । यथा=इस्ती युद्धभूमौ शत्रुसेनां विविस्य तत्पारगामी  
भवति, तथा स महावीरः=भगवान् अपि लाङ्केषु परीपहापसर्गानीक विविस्य तत्पा-  
रगामी अभूत् । किञ्च—एवमपि तत्र=तेषु लाङ्केषु ग्रामात्प्रामतिदूर्ध्ववर्तित्वाद् एकदा=  
एकस्मिन् काले कदाचिद् भगवता ग्रामः=सोकानां वासस्थानम् अलङ्कपूर्वः=पूर्वं न  
अलङ्क्य, तेनारण्यमार्गं गच्छतो भगवतः समीपमागत्यानार्यलोकाः परीपहोपसर्गं  
पशुः । एतच्चानुपदमेष वक्ष्यते ॥८॥

दृष्टान्तद्वारा सूत्रकार इसी बातकी पुष्टि करते हैं—'नागो' इत्यादि।

जिस प्रकार युद्धक्षेत्रमें राजराज शत्रुसेनाको परास्त कर  
उससे पार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार ये महावीर प्रभु भी लाङ्केश्वरमें  
उपसर्गरूपी सेनाको जीतकर उससे पार हुए। एक समयकी बात  
है कि जब भगवान् बिहार करते-एक ऐसे ग्राममें आ रहे थे जो छोटे  
हुए ग्रामसे बहुत दूर था, तथा जिसमें वे पहिंछे कमी नहीं आये थे,  
उस समय जंगली मार्गसे आते हुए उनके पास बहुतसे अनार्यजन  
आये और अनेक प्रकारके परीपह और उपसर्ग करने लगे ॥८॥

दृष्टान्तद्वारा सूत्रकार ने जो बातकी पुष्टि करे है—'नागो' इत्यादि।

जो शीते युद्धक्षेत्रमें जेम् अलङ्कय शत्रुसेनाने परास्त करी जेनी  
अपराध नीकणी लखे जे अलङ्कय जे शीते महावीर प्रभु पशु लाङ्क देशमें  
परिपह अने उपसर्ग रूप सेनाने लुट्टी जेनाथी पार गया जेक समयकी बात  
है जे अन्धारे लखवान बिहार करतां करतां जेक जेवा अभय लखे रहा कथा  
है जे छोटेवा अभयी पशु दूर कते। अने अन्ध अन्ध करी पशु तथा न  
कथा जे लखते लखना अन्धकी लख पशु अनार्य लोकें तेमनी पारसे  
अन्ध, अने जेअना उपर अनेक प्रकारका परिपह अने उपसर्ग कथा लाया (८)

तदेवाह—‘उवसंकमंत०’ इत्यादि ।

मूलम्—उवसंकमंतमपडिन्नं, गामंतियं पि अप्पत्तं ।

पडिनिक्खमित्तु लुसिंसु, एयाओ परं पलोहि-त्ति ॥९॥

छाया—उपसंक्रामन्तमप्रतिज्ञं ग्रामान्तिकमपि अप्राप्तम् ।

प्रतिनिष्क्रम्य अल्लुषिषुः एतस्मात् परं पलायस्वेति ॥ ८ ॥

टीका—प्रतिनिष्क्रम्य=तेऽनार्यलोकास्तस्माद् ग्रामात् प्रतिनिर्गत्य, अप्रतिज्ञं=नियतावस्थानादिप्रतिज्ञारहितम्—उपसंक्रामन्तम्=वासायं व्रजन्तं, ग्रामान्तिके=वसतिसमीपे प्राप्तमप्राप्तं वा भगवन्तम् अल्लुषिषुः=दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयामासुः, ऊचुश्च—‘एतस्मात्=इतः स्थानात् परम्=अन्यस्थान, पलायस्व’ इति ॥ ९ ॥

किञ्च—‘ह्यपुव्वो’ इत्यादि ।

सूत्रकार इन्हीं परीषद् और उपसर्गोंको बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—‘उवसंकमंत०’ इत्यादि ।

उस ग्रामके वे अनार्यजन अपने २ घरसे निकल कर नियमित स्थान पर ठहरनेके अथवा एक नियत स्थान पर रहने आदिके बन्धसे रहित उन भगवानसे जो उस समय ठहरनेके लिये उस ग्रामकी ओर षड रहे थे, तथा वसतिमें आने भी नहीं पाये थे, उस पहले ही पासमें आकर कहने लगे कि तुम शीघ्र ही यहांसे किसी दूसरी जगह भाग जाओ। ऐसा कहते हुए उन लोगोंने भगवानको दण्ड, मुष्टि आदिसे खूब प्रहार किया ॥९॥

और भी ‘ह्यपुव्वो’ इत्यादि ।

सूत्रकार के परिषद् अने उपसर्गोंने समझववा भाटे सूत्र कहे थे—  
‘उवसंकमंत०’ इत्यादि

के गामना के अनार्यजन पोत-पोताना धरथी नीकणी नियमित स्थान पर रोकावाना अथवा केक नियत स्थान पर रहेवा आदिना धधनथी रडीत केवा भगवानथी के के ते समय रहेवा भाटे ते गामनी तरङ्ग आवी रवा हुता, अने वसतीमा आवी पणु नहि शक्या ते पडेवाञ्च सामने आवी कडेवा दाव्या के तमे तात्कालिक अडीथी पीलु ज्य्याके भागी नव्ये केम कडी के दोडोके भगवानने वाकडी, दाधनी सुठी वगेरथी पुण प्रहार करेवा. (६)

दरी—‘ह्यपुव्वो’ इत्यादि.





तदेवाह—‘उवसंकमत०’ इत्यादि ।

मूलम्—उवसंकमतमपडिन्नं, गामंतियं पि अप्पत्तं ।

पडिनिक्खमित्तु लुसिंसु, एयाओ परं पलेहि-त्ति ॥९॥

छाया—उपसंक्रामन्तमप्रतिज्ञं ग्रामान्तिकमपि अप्राप्तम् ।

प्रतिनिष्क्रम्य अल्लपिपुः एतस्मात् परं पलायस्वेति ॥ ८ ॥

टीका—प्रतिनिष्क्रम्य=तेऽनार्यलोकास्तस्माद् ग्रामात् प्रतिनिर्गत्य, अप्रतिज्ञं=नियतावस्थानादिप्रतिज्ञारहितम्—उपसंक्रामन्तम्=त्रासाथं व्रजन्त, ग्रामान्तिके=वसतिसमीपे प्राप्तमप्राप्त वा भगवन्तम् अल्लपिपुः=दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयामासुः, ऊचुश्च—‘एतस्मात्=इतः स्थानात् परम्=अन्यस्थान, पलायस्व’ इति ॥ ९ ॥

किञ्च—‘ह्यपुव्वो’ इत्यादि ।

सूत्रकार इन्हीं परीषद् और उपसर्गोंको बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—‘उवसंकमत०’ इत्यादि ।

उस ग्रामके वे अनार्यजन अपने २ घरसे निकल कर नियमित स्थान पर ठहरनेके अथवा एक नियत स्थान पर रहने आदिके बन्धसे रहित उन भगवानसे जो उस समय ठहरनेके लिये उस ग्रामकी ओर षड रहे थे, तथा वसतिमें आने भी नहीं पाये थे, उस पहले ही पासमें आकर कहने लगे कि तुम शीघ्र ही यहांसे किसी दूसरी जगह भाग जाओ। ऐसा कहते हुए उन लोगोंने भगवानको दण्ड, मुष्टि आदिसे खूब प्रहार किया ॥९॥

और भी ‘ह्यपुव्वो’ इत्यादि ।

सूत्रकार ओ परीषद् अने उपसर्गोंने समझववा भाटे सूत्र कहे छे—  
‘उवसंकमत०’ इत्यादि

ओ गामन्ता ओ अनार्यजन पोत-पोताना धरेथी नीकणी नियमित स्थान पर रोकवाना अथवा ओक नियत स्थान पर रहेवा आदिना अधनथी रकीत ओवा भगवानथी के ओ ते समय रहेवा भाटे ते गामन्ती तरक् आवी रक्का इता, अने वसतीमा आवी पणु नहि शक्या ते पडेलाज सामने आवी कहेवा लाय्या के तमे तात्कालिक अहीथी पीणु लज्याओ लागी लज्या ओम कही ओ लोकोओ भगवानने लाकडी, लाधनी मुठी वगेरेथी पुण प्रहार करेला. (६)

क्षरी—‘ह्यपुव्वो’ इत्यादि

रव मप्रतिज्ञः=दुःस्वप्नपरीकारप्रतिज्ञारहिता, अत एव दुःस्वप्नः=सोपहोपसर्गजन्य दुःस्वप्नविष्णुः सन् प्रगत' =म=प्रकरणेन नतः=धर्मध्यानलीन भासीत् ॥१२॥

ममन्तः पठपपरीपहसहर्न सहप्यन्तमाह-'सुरो' इत्यादि ।

गृह्य-सुरो सगामसीसे वा, सखुडे तस्य से महावीरे ।

पदिसेवमाणे फरुसाह, अष्वल भगव रीइरथा ॥१३॥

काया-सुरः संग्रामधीर्षे इव, संवृत्स्वप्न स महावीरः ।

पदिसेवमाणः परुषान्, अष्वलो भगवान् अरीयत् ॥ १३ ॥

टीका-सङ्ग्रामधीर्षे=रजसूयो संवृता=कवचाच्छादितकायः सुर इव=अप्रति-  
रुपप्राप्ती योद्धेव स महावीरः संवृता=वैर्षादिगुणाच्छादितमनोवाक्काययोगः

पह और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें लीन होनेसे जीते । धर्मध्यानमें लीनता होने पर ही कायसे ममत्त्वका अभाव होता है, जहां धर्मध्यान का सर्वभाव होता है वहां दुःस्वप्नादिकोंक होने पर भी आत्मा उनसे विचलित नहीं होती, वे प्रभु अप्रतिज्ञ-उन प्रहारादि परीषहोंके प्रतीकार करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुष-कठोरवचनविजय्य परीषहोंको कैसे सहन किया ? इस विषयका सुलाशा सूत्रकार इत्यान्तसे करते हैं-'सुरो' इत्यादि ।

जिस प्रकार कवच धारण किये हुए कोई एक खल्ल घोषा युद्धमें शत्रुओंके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये भाँसे भाँदि शत्रुओंके भाषणों से बाँधर बच निकलता है और विजयभी की प्राप्तिसे सुशोभित होता

अथ वाच्य ग्रह कने दुःस्वप्नो जजवान धर्मध्यानमां लीन होचधी लतेल, धर्मध्यानमां लीनता होवाधी अ हावाना भगवनेनो अलव्य भाष छे अभां धर्म ध्यानने सुखव्य होव छे त्वां अमे तेवां दुःस्वप्नो आधी पडे तो पय आत्मा विचलित वते नधी ते प्रभु अप्रतिज्ञ-अमे तेवा आकभय बया छतां तेनी त्यामे मवाप करवानी हे सामने करवानी भावनाधी रहित वता. (१२)

भगवानने जो अनार्योनीं कठोर वचनोधी तथा भारधी वरपल मयेल परी षोने कर्ष रीते सहन कर्षां ? अ विषयने सुलासा सूत्रकार इत्यावधी करे छे-  
'सुरो' इत्यादि

ये प्रकारे कवच धारण करेला केवल केवल सुखव्य सैनिक युद्धमां शत्रुने वरधी काला, वरधार वजेरे शत्रुधी बया प्रकेशेनी तेम अ तेना शरीरमा धांअव तेमा वकार नीकणी अर्वा तेनी पय इकार न करवां विषय येव्य

विविधप्रतिकूलपरीपहरूपा अनार्यलोकाः भगवन्तमलुञ्चिपुः=आकृष्टवन्तः, अथवा-  
पांसुना=धूलिना उपाकिरन्=भगवतः शरीरमाच्छादयामासुः ॥ ११ ॥

किञ्च—' उच्चालइय ' इत्यादि ।

मूलम्—उच्चालइय निहणिसु, अदुवा आसणाउ खलइंसु ।

वोसट्टकाए पणयाऽऽसी, दुक्खसहे भगवं अपडिन्ने ॥१२॥

छाया—उच्चाल्य निजध्नुः अथवा आसनादस्खलयन् ।

व्युत्सृष्टकायः प्रणत आसीत् दुःखसहः भगवान् अपतिज्ञः ॥१२॥

टीका—अनार्यलोकाः उच्चाल्य=उच्चैर्नीत्वा=भगवन्तमूर्ध्वमुत्थाप्य निजध्नुः  
=भूमौ निपातयामासुः । अथवा आसनात्=गोदोहिकोत्कुटुक्वीरासनादिकात्  
अस्खलयन्=भगवन्तं निपातितवन्तः । भगवान् परीपहोपसर्गं केन प्रकारेण सेहे ?  
इत्याह—व्युत्सृष्टकाय इत्यादि । भगवास्तु व्युत्सृष्टकायः=कायोत्सर्गस्थितः, अत

लिया था, फिर भी उनकी भगवानको दुःखित करने की कुत्सित मनो-  
वृत्तियां शांत नहीं हुईं । वे कभी २ भगवानके शरीर पर अनेक प्रकार-  
से आक्रमण कर उन्हें इधर उधर लोंच डालते और फिर बादमें  
उनके ऊपर अधिकसे अधिक धूलि फेंकते ॥ ११ ॥

और भी—' उच्चालइय ' इत्यादि ।

वे अनार्यजन कभी २ भगवानको ऊपर उठाकर नीचे पटक देते थे,  
अथवा गोदोहिक आसन, उत्कुटक आसन, और वीरासन आदिसे नहीं  
चलायमान उन प्रभुको वे उन आसनोंसे चलायमान करते—हिलाकर  
पटक देते । भगवानने ये परीपह और उपसर्ग किस प्रकारसे जीते इसे  
' वोसट्टकाए ' इस पदसे स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—ये सब परी-

अवयवभाषी भासना बोध्या पणु क्वापी लीधेवा, आ प्रकारना द्वियकारा कृत्यधी  
पणु न सतोषाता बोधी नीतरता प्रभुना शरीरने ऐक आणुधी जील आणु  
दसरउवातु तेमज कुण अने डाकशआधी पधु इ पीत अनापवातु करेणु (११)

इरी पणु—' उच्चालइय ' इत्यादि ।

ये अनार्य बोकेने आटलेधी पणु सतोष न थये। डोय तेम  
भगवानना क्षत-विक्षत अगी गथेवा शरीरने उयु उपाडी इ उवाभा पणु  
णाडी रापेव नही परतु गोदोहिक आसन, उत्कुटक ( उकडु ) आसन  
अने वीरासन वगेरेधी ध्यानस्थ थयेवा प्रभुने ये बोके चलायमान करी शक्या  
नही भगवाने आ प्रकारना मानवताविडोषु अनार्योद्वारा अपायेवा कष्टोने  
केवा-प्रकारे उडन कर्था ? अने 'वोसट्टकाए' अे पदधी स्पष्ट करता सूत्रकार उडे छे-

एत अमप्रतिज्ञः=दुःस्वमतीकारप्रतिज्ञारहितः, अत एव दुःस्वसहः=परीपशोपसगबन्ध  
 दुःस्वसहिष्णुः सन् प्रणतः=प्र=प्रकर्षेण नतः=धर्मध्यानहीन आसीत् ॥१२॥

मगवतः परुपपरीपहसहर्न सहृष्टान्तमाह—'सूरो' इत्यादि ।  
 मूय्—सूरो सगामसी से वा, सबुडे तरथ से महावीरे ।  
 पढिसेवमाणे फरुसाइ, अषल भगव रीड्स्था ॥१३॥

अथा—सुरः संग्रामशीर्षे इव, सहृष्टस्तत्र स महावीरः ।  
 प्रतिसेवमानः परुपाम्, अषलो भगवान् अरीयत ॥ १३ ॥

टीका—सहृष्टग्रामशीर्षे=रत्नयूषौ संवृतः=ध्वजाच्छादितकायः सुर इव=व्यप्रति-  
 रतपराक्रमी योदेव स महावीरः संवृतः=वैर्यादिदुष्मान्छादितमनोवाक्यायोगः  
 यह और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें हीन होनेसे जीते । धर्मध्यानमें  
 हीनता होने पर ही कायसे ममत्वका अभाव होता है, जहाँ धर्मध्यान  
 का सर्वभाव होता है वहाँ दुःस्वादिदोके होने पर भी आत्मा उनसे  
 विचलित नहीं होती, वे प्रभु अमप्रतिज्ञ—उन प्रहारादि परीपहोके प्रतीकार  
 करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुप—कठोरवचनाविजन्त्य परीपहोको कैसे सहन  
 किया ? इस विषयका सुलाशा सूत्रकार इष्टान्तसे करते हैं—'सूरो'  
 इत्यादि ।

जिस प्रकार कषय धारण किये हुए कोई एक सबल योधा युद्धमें  
 शत्रुकोके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये भांसे भादि शत्रुकोके आघातों  
 से बालर बच निकलता है और विजयभी की प्राप्तिसे सुशोभित होता

अथ यथा तस्य अने दुःखो अजवान धर्मध्यानमां हीन होवाही लतेक  
 धर्मध्यानमां हीनता होवाही अ हाकना अमभवने अभाव भाव छे अथ धर्म  
 ध्यानने सुखाव होय छे त्यां गये तेवां दुःखो आवी पडे तो पयु अत्रमा  
 विचलित यतो नथी ते प्रभु अमप्रतिज्ञ—गये तेवां आकमयु तथा छय तेनी सभे  
 अभाव करवानी के सामने करवानी भावनाभी रहित हवा (१२)

अजवाने जे अनाथीनां कठोरवचनेवाही तथा भावभी अरुपय वरेत पथी  
 पढीने कथ रीते सहन करवा ? अ विषयने सुलासे सूत्रकार इष्टावथी करे छे—  
 सूरो इत्यादि

अ प्रकारे कषय धारण करेत कथ जेक सलण अनेक युद्धमें शत्रुकोके  
 परुपथी सातां, उत्थार वजेरे शत्रुकोकी बला प्रकृतिनी तेम अ तेम शरीरने  
 अंतक्य होय अकार नीकणी अतां तेनी पयु इकार न करय विषय अनेक

तत्र=लाढदेशे परुपान्=दुःसहपरीपहान् प्रतिसेवमानः=सहमानः, अत एव अचलाः= निष्कम्पः सन् अरीयत=विहरतिस्म । यथा शूरः शत्रुभिः कुन्तादिशस्त्रैः प्रतिहन्यमानोऽपि कवचावृतशरीरः सन् न पराजयं प्राप्नोति तथा भगवानपि अनार्यलोकैर्दण्डमुष्ट्यादिविविधघोरपरीपहोपसर्गैरुपद्रुतोऽपि धैर्यादिगुणसंवृतः सन् न धर्मव्यानच्युतिलक्षण पराजय प्रापेति भावः ॥१३॥

उद्देशकार्यमुपसंहरन्नाह—‘एस विही’ इत्यादि।

मूलम्—एस विही अणुकृतो माहणेण मइमया ।

वहुसो अपडिन्नेण भगवया एवं रियंति—त्तिवेमि ॥१४॥

है, उसी प्रकार उस लाढ देशमें धैर्य आदि सद्गुणरूप कवचसे युक्त मन, वचन और काय योगवाले भगवान् महावीरने उन दुःसह परीषहोंको अडोल बन कर सहते हुए विहार किया । तात्पर्य यह है कि—जिस प्रकार कवच पहिरे हुए योधा युद्धमें शत्रुओद्वारा किये गये वारों को बचाता हुआ अपने लक्ष्य पर डटा रहता है और अन्तमें विजयकी प्राप्तिसे जैसे आनंदित होता है, उसी प्रकार ठीक भगवान् महावीर भी उस लाढदेशमें इन अनार्यों द्वारा किये गये अनेक प्रकारके भयंकर उपद्रवोंसे युक्त होने पर भी धैर्य आदि गुणोंसे संवृत शरीरवाले होनेसे उन्हें सहते हुए अपने धर्मध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥१३॥

इस उद्देशके अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—‘एस विही’ इत्यादि ।

वामां न तन्मय अनी शत्रुओने इराववामा न ओटले के ध्येयनी प्राप्तिमा न भशशुल रहे छे, अने वेदनानी के पोताना शरीरना लभउता भासना बोयानी नरा सरभीओ परवा करतो नथी, ओ न रीते ओ लाढ देशमां धैर्य वगेरे सहशुशुइप कवचधी शोभता अने तेमन मन, वचन अने कायाना योगवाणा भगवान् महावीरे पणु असह्य ओवा हु ओने अडोल रह्यी सहन करता विहार कथो तात्पर्य ओ के-ओ रीते कवच धारणु करेला योद्धाने युद्धमा शत्रुओ तरुधी करवामा आवता प्रहार-वारने भयावता भयावता ते योद्धो पोताना लक्षधी नरा पणु विचलित भनतो नथी, अने अते विजय प्राप्त करे छे, हीक ओ न रीते भगवान् महावीर पणु ओ लाढ देशमा अनार्यो द्वारा करवामा आवेल अनेक प्रकारना लय कर उपद्रवो आववा छता पणु धैर्य वगेरे शुष्ठीधी शोभता शरीरवाणा डोवधी आनी पडेला उपद्रवोने सडेवा छता पोताना धर्मध्यानधी बेश मात्र पणु यलित भनेल न छता (१३)

या उद्देशना अर्थनो उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे—‘एस विही’ इत्यादि

षया—एष विधिरनुकान्तः माहनेन मतिमता ।

बहुधाः अप्रतिज्ञेन मगधता एषं रीयन्ते, इति व्रथीमि ॥१४॥

टीका—अस्य व्याख्याऽपेक्षाध्ययने प्रथमोद्देशऽमिहिता, तत्र एवावग  
न्त्या । इति व्रथीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एष ॥ १४ ॥

नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ०-३ ॥

इस सूत्रकी व्याख्या इसी अध्ययनके प्रथम उद्देशमें की जा चुकी  
है, अतः यहाँसे समाप्त लेनी चाहिये । 'इति व्रथीमि' इसका अर्थ पहले  
किया जा चुका है ॥ १४ ॥

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥०-३॥

आ सूत्रकी व्याख्या आ अध्ययनना प्रथम उद्देशमां उद्देशमां आवी अर्ध  
ते, माटे त्याधी उभल देवी अर्धमे. 'इति व्रथीमि' आने अर्थ पहले आवी  
अर्थे ० (१४)

नवमा अध्ययनना तीजे उद्देश समाप्त ॥०-३॥

तत्र=लाहदेशे परुपान्=दुः-  
 निष्कम्पः सन् अरीयत=नि-  
 मानोऽपि कवचावृतशरीरः  
 दंष्ट्रमुष्ट्यादिविविधघोरव-  
 नच्युतिलक्षण पराजय प्र-  
 उद्देशकार्यमुपसंहरन्।

मूलम्—एस विही ३  
 बहुसो अपा

है, उसी प्रकार उरु  
 मन, वचन और क  
 प्होंको अडोल बन  
 जिस प्रकार कवच  
 को बचाता हुआ  
 प्राप्तिसे जैसे आन  
 उस लाहदेशमें :  
 उपद्रवोंसे युक्त ह  
 उन्हें सहते हुए :  
 इस उद्देशसे  
 'एस विही' इत्

वामां ज तन्मय ७  
 भयशुल रहे छे,  
 जरा सरभीओ प  
 शुष्कइप कवचथी .  
 वान महावीरि पक्ष  
 तात्पर्य ओ के-जे र  
 आवता प्रहार-वार  
 विचलित भनतो न  
 महावीर पक्ष ओ ला  
 कय कर उपद्रवो ७  
 होवाथी आवी पठेला  
 चलित भनेल न छ  
 आ उद्देशना अ





## ॥ अथ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके भगवतः परीपहोपसर्गसहनं प्रतिबोधितम् । अथ चतुर्थोद्देशके रोगातङ्कपीडाप्रतीकारपरिहारेण परीपहोपसर्गाणामतीव सहनं तपश्चर्याप्रवृत्तिं च भगवतः कथयन्नाद्यं सूत्रमाह—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

मूलम्—ओमोयरियं चाण्ड, अपुष्टेऽपि भगवं रोगेहिं ।

पुष्टे वा अपुष्टे वा, नो से साइज्जइ तेइच्छं ॥१॥

छाया—अवमौदरिका करोति अस्पृष्टोऽपि भगवान् रोगैः ।

स्पृष्टो वा अस्पृष्टो वा नो स स्वदते चिकित्साम् ॥ १ ॥

टीका—भगवान् रोगैस्स्पृष्टोऽपि=वातादिप्रकोपरहितोऽपि, अवमौदरिका=न्यूनोदरतां करोतिस्म, लोका हि रोगाऽऽक्रान्ताः सन्तस्तत्प्रशमनार्थं न्यूनोदरतां करोति, भगवास्तु रोगानाक्रमणेऽपि कर्मनिर्जरार्थं तां कर्तुं प्रवृत्त इति भावः । यद्यपि स भगवान् अस्पृष्टो वा=कासश्वासादिभिरनाक्रान्त आसीत्, किन्तु स्पृष्टो वा=कुकुरादिभिः क्षतपात्रोऽपि सन् चिकित्सां=औषधादिभिस्तत्प्रतीकारं नो स्वदते=नाभिलषतिस्म ॥१॥

## ॥ नववें अध्ययनका चौथा उद्देश ॥

तृतीय उद्देशमें भगवानने किनर परीपह और उपसर्गोंको सहा ? यह प्रकट किया गया है । इस चतुर्थ उद्देशमें भगवानद्वारा आचरित तपश्चर्याका वर्णन किया जायगा, अतः सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तरका कथन करते हैं—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

भगवान यद्यपि किसी भी वातादिकके प्रकोपसे उत्पन्न होने वाले रोगसे सदा रहित थे तो भी ऊनोदर नामक तपको करते थे, कारण कि कर्मोंकी निर्जराका प्रधान साधन तप ही है । तपके बिना कर्मोंकी निर्जरा

### नवमा अध्ययननेो चौथो उद्देश

श्रील उद्देशमा भगवाने देवा देवा परिषु अन्ये उपसर्गो सहा तेनु वलुन करवामा आवेल छे आ चौथा उद्देशमा भगवाने आचरेली तपस्थानु वलुन करवामा आवेशे आ माटे सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तपनु कथन करे छे—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

भगवान जे के डोर्पणु वात आदिना प्रकोपथी उत्पन्न थवावाणा रोगथी महा रहित छता ते पणु उनोदरी तप करता छता, कारण के कर्मोनी निर्जरातु प्रधान साधन तप छे, तप वगर कर्मोनी निर्जरा

नहीं हो सकती है। तपसे दो लाभ होते हैं—एक तो सभित कर्मोंकी निर्जरा और दूसरा संभरकी प्राप्ति, इसी लिये मोक्षार्थियोंको मोक्षप्राप्तिके लिये तपश्चर्याकी अनिवार्य आवश्यकता है। भगवानने भी इसी अनि प्रायसे तपश्चर्या करनेमें थोड़ी भी कमी नहीं रखी, और उपादासे उपादा तपश्चर्या करने में ही अपने आपको संलग्न किया, इस विषयमें उन्हें अनेक परीपह और उपसर्गोंको सहने पड़े—जो सामान्यजनक लिये असम्भव होते हैं।

भाषा :—प्रायः यह बात देखी जाती है कि मनुष्य जब किसी रोग भाविसे आक्रान्त होता है, तब वह ऊनोवर रहता है जिससे उसके रोग शमित हो, परन्तु भगवान तो जन्मसे ही रोगादिकसे रहित थे, फिर भी तप करनेमें जो उन्हें निरकरकर नहीं रखी, उसका कारण सिर्फ कर्मोंकी निर्जरा करना था। इसी प्रकार श्वास कास (खांसी) भाविसे भगवान रहित थे। उन्हें त्रिलोकमें भी कोई ऐसी बीज-वस्तु नहीं थी जो दुर्लभ होती, परन्तु फिर भी जब उनके उपर कुछे भावि उपसर्ग करते, उनके शरीर पर झपटकर जब उन्हें काट खाते तब भी वे किसी भी औषधिक उपचार नहीं करते ॥ १ ॥

जनी शक्ति नहीं। तपसी के लाभ काय है—जो तो सभित कर्मोंकी निर्जरा करने की वरन् प्राप्ति का भाटे मोक्षार्थियोंको मोक्षप्राप्ति भाटे तपश्चर्या करके मोक्षके अनिवार्य है। भगवानने पक्ष आन्विप्रपथी तपस्या करवायां पक्ष पक्ष पाकी सजेव नथा, जने नधारेमां वधारे तपस्या करवायां पते पौतान्य आत्माने कोउठे। आ आराभा जेभने अनेक प्रकारका परिपद जने उपसर्गों सहने पठका के सामान्य भावसे भाटे असम्भव होय ॥

भाषा :—आधी के वात लेवाभा जने है के नधारे के शि शिज वजेरधी पीय जनी काय है त्पारे ते कुप्ये स्ते के नधी तेना शिज जोकि काय, परतु जन्मान तो जन्मभी व शिजार्थिके शक्ति वत्ता तो पक्ष तप करवायां तेकोले जन्म पक्ष उपरुप सधी नहीं, तेतु कारण हैव कर्मोंकी निर्जरा करवातु कर्तुं आ प्रकारे खांसी—वधारे वजेरधी भगवान रहित वत्ता तेभना भाटे तपु दोकभां जेपी के शि पक्ष वस्तु न वती के के तेभने भाटे दुर्लभ होय, तो पक्ष नधारे कुवशको वजेरे तेभना उपर आकम्पु करवा जने उपसर्ग आपत्ता, तेभना शरीर उपर जपद भारी करवा—जभकां करवा त्पारे के शि पक्ष औषधिनो उपचार प्रभु करवा नहीं (१)

तदेव दर्शयितुमाह—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

मूलम्—संसोहणं च वमणं च, गायबभंगणं च सिणाणं च ।

संवाहणं च न से कप्पे, दंतपक्खालणं च परिन्नाए ॥२॥

छाया—संशोधन च वमनं च गात्राभ्यञ्जनं च स्नानं च ।

संवाहनं च न तस्य कल्पते दन्तप्रक्षालनं च परिज्ञाय ॥२॥

टीका—परिज्ञाय=अशुचि, अशुचिसंभवमौदारिकशरीरमिति विदित्वा संशो-  
धनं=वस्तिकर्मणौषधप्रयोगेण वा मलकोष्ठस्य सम्यक् शोधनं, तस्य भगवतो न कल्पत  
इत्यन्वयः । एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम् । वमनं=वमनजनकौषधप्रयोगेण शरी-  
रान्तर्वर्तिकफादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकतैलादिभि-  
श्चन्दनकुङ्कुमकेसरादिमिर्वा गात्रोद्वर्तन, तथा-स्नानं=द्रव्यस्नानं=अप्रासुकेन-  
प्रासुकेन वा जलेन स्नानम् । तद् द्विविधं—देशस्नानं सर्वस्नानं चेति । तत्र हस्ताद्य-  
धिष्ठानादिशौचातिरेकेणाऽक्षिपक्षमप्रक्षालनमपि देशस्नानम् । सर्वस्नानं—सर्वाङ्गप्र-

हसी वातको और स्पष्ट करते हैं—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

भगवानने कभी भी संशोधन-वस्तिकर्म—इमेमा अथवा विरेचक औषधि  
आदिक्रारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे  
शरीरके भीतरके कफादिक मैलका संशोधन—बाहर निकालना, शतपा-  
कवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा चदन, कुंकुम और केशर  
आदिसे शरीरका उबटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्य स्नान  
करना, ये समस्त क्रियाएँ बिलकुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी  
क्रियाओंका करना उनके आचारसे उन्हें कल्प्य नहीं था । द्रव्यस्नान-  
देशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है । हाथ पैर आदिकी  
शुद्धिके सिवाय आखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना देशस्नान,

आ वातने वधु स्पष्ट करवाभा आवे छे—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि

भगवाने ठही पक्ष संशोधन—वस्तिकर्म—इमेमा अथवा विरेचक औषधी  
वगेरे द्वारा मजशुद्धिनी क्रिया, कथ—उलटी करावनाश औषधीना उपचारथी शरीरनी  
अहरना वधु वगेरे मेलने पछार डाढये, शतपाकके सहस्रपाक तैलथी मर्दन,  
अथवा चदन, कुकु के केशर वगेरेथी शरीरनु लैपन, गरम अथवा ठंडा पाण्ठीथी  
द्रव्यस्नान करवु, आधी पधी क्रियाओने भगवाने सर्वथा त्याग कर्यो छते,  
कारण के आ प्रकारनी क्रियाओ करवा माटे तेमना आचारथी तेमने कल्प न छती  
द्रव्यस्नान—देशस्नान तथा सर्वस्नानना लेहथी ये प्रकारना छे हाथ पग वगेरेनी  
शुद्धिना सिवाय आओ आने लेनी पापण्ठोनु पक्ष प्रक्षालन करवु ये देश-स्नान,

शास्त्रम्—अप्रासुकजलेन स्नानकरणेऽपूकायाविविरापनया तपस्यमधिनाशात्,  
प्रासुकजलेनापि स्नानकरणे शुषिरविदीर्णभूमिष्वर्तिमन्तूनामुत्प्लावनेन प्राग्विरा  
पनायाः सङ्मावात् साधोः स्नानं न कल्पत इति भाष । उक्तम्—

नोदकफिलभ्रगाप्रोऽपि, स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुषि ॥१॥

षित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि षुषीर्तं सुराभाण्डमिवाशुषि ॥ २ ॥

और समस्त अंग उपांग सहित शरीरका प्रक्षालन करना सर्वस्नान  
है। अप्रासुक जलसे स्नान करनेपर अपूकायके जीवोंकी विरापना होती है,  
इससे स्नान करनेवालेके तप और संयमका बिघात होता है। प्रासुकजलसे  
भी स्नान करनेसे जीवोंकी विरापना इसलिये होती है कि वह पानी  
बहकर जमीनमें नीतर समा जाता है और जेवमें मरजानेसे उनके  
नीतर रहे हुए जीव उससे मर जाते हैं। इस प्रकार उन्हें कष्टका कारक  
होनेसे वह प्रासुकजल द्वारा किया गया स्नान भी साधुओंके लिये  
हेय है। कहा भी है—

नोदकफिलभ्रगाप्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुषिः ॥१॥

षित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि षुषीर्तं सुराभाण्डमिवाशुषि ॥२॥

जने समस्त अंग उपांग सहित शरीरको प्रक्षालन करने से तप-स्नान  
अप्रासुक जलसे स्नान करवाया अपूकाय लगेगी विरापना घाय है, जेधी स्नान  
करनासे तप तेमक सबमने विघात घाय है प्रासुक जलसे पय स्नान करवाधी  
लगेगी विरापना जे रीते घाय है के ते पाणी वहेतु-वहेतु जमीनमा समाई  
वय है तेमक जमीनमा छिरीमा वतधी जतु होवाधी तेमा रवेवा लगे मरे है  
अ मारे तेना कष्टु करुषु होवाधी तेच प्रासुक जलसे करवाधी स्नान पय  
साधु माटे लयल्य होय है कस्तु पय है—

नोदकफिलभ्रगाप्रोऽपि, स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुषिः ॥१॥

षित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि षुषीर्तं सुराभाण्डमिवाशुषि ॥ २ ॥

तदेव दर्शयितुमाह—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

मूल्म्—संसोहणं च वमणं च, गायबभंगणं च सिणाणं च ।

संवाहणं च न से कप्ये, दंतपक्खालणं च परिन्नाए ॥२॥

छाया—संशोधनं च वमनं च गात्राभ्यञ्जनं च स्नानं च ।

संवाहनं च न तस्य कल्पते दन्तप्रक्षालनं च परिज्ञाय ॥२॥

टीका—परिज्ञाय=अशुचि, अशुचिसंभवमौदारिकशरीरमिति विदित्वा संशोधनं=वस्तिकर्मणौषधप्रयोगेण वा मलकोष्ठस्य सम्यक् शोधनं, तस्य भगवतो न कल्पत इत्यन्वयः । एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम् । वमनं=वमनजनकौषधप्रयोगेण शरीरान्तर्वर्तिकफादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकतैलादिमिश्रन्दनकुङ्कुमकेसरादिमिर्वा गात्रोद्धर्तनं, तथा—स्नानं=द्रव्यस्नानं=अप्रासुक्येन-प्रासुक्येन वा जलेन स्नानम् । तद् द्विविधं—देशस्नानं सर्वस्नानं चेति । तत्र इस्ताद्यधिष्ठानादिशौचातिरेकेणाऽक्षिपक्षमप्रक्षालनमपि देशस्नानम् । सर्वस्नानं-सर्वाङ्गप्र-

इसी बातको और स्पष्ट करते हैं—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

भगवानने कभी भी संशोधन-वस्तिकर्म-इमेमा अथवा विरेचक औषधि आदिद्वारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे शरीरके भीतरके कफादिक मैलका संशोधन-बाहर निकालना, शतपाकवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा चदन, कुंकुम और केशर आदिसे शरीरका उबटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्य स्नान करना, ये समस्त क्रियाएँ विलकुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी क्रियाओंका करना उनके आचारसे उन्हें कल्प्य नहीं था। द्रव्यस्नान-देशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है। हाथ पैर आदिकी शुद्धिके सिवाय आखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना देशस्नान,

आ वातने पशु स्पष्ट करवाभा आवे छे—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि

भगवाने कही पशु संशोधन-वस्तिकर्म-इमेमा अथवा विरेचक औषधी वगेरे द्वारा भगवद्विनी किया, क्य-डिली करावनास औषधाना उपचारथी शरीरनी अहरना कइ वगेरे मेलने पहार काढेवा, शतपाकके सहस्रपाक तैलथी मर्दन, अथवा चदन, कुंकु के केशर वगेरेथी शरीरतु छेपन, गरभ अथवा ठस पाण्ठीथी द्रव्यस्नान करवु, आनी षधी क्रियाओने भगवाने सर्वथा त्याग कर्यो इते, कारण के आ प्रकारनी क्रियाओ करवा भाटे तेमना आचारथी तेमने कल्प न इतो द्रव्यस्नान-देशस्नान तथा सर्वस्नानना लेहथी ये प्रकारना छे हाथ पैर वगेरेनी शुद्धिना सिवाय आणे अने तेनी पापछोतु पशु प्रक्षालन करवु अे देश-स्नान,

प्रसूनम्-प्रासुकजलेन स्नानकरणेऽपृक्कायादिविराधनया तपसंयमविनाश्यात्,  
प्रासुकजलेनापि स्नानकरणे शुपिरविदीर्णभूमिषत्तिंघन्तूनामुत्स्नाधनेन पाषिविरा  
धनाया सद्रूमायात् साधो स्नानं न कल्पत इति भावः । उक्तञ्च—

नोदकक्लिमभगाश्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१॥

चिन्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

श्वश्रोऽपि वपुर्धौतं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

और समस्त अंग उपाग सहित शरीरका प्रक्षालन करना सर्वस्नान  
है। अत्रासुक जलसे स्नान करनेपर अपृक्कायके जीर्णोकी विराधना होती है,  
इससे स्नान करनेवालेके तप और संयमका विधात होता है। प्रासुकजलसे  
भी स्नान करनेसे जीर्णोकी विराधना इसलिये होती है कि वह पानी  
पहकर जमीनमें नीतर समा जाता है और छेदोंमें भरजानेसे उनके  
नीतर रहे हुए जीव उससे मर जाते हैं। इस प्रकार उन्हें कष्टका कारण  
होनेसे वह प्रासुकजल द्वारा किया गया स्नान भी साधुओंके लिये  
रूप है। कहा भी है—

नोदकक्लिमभगाश्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१॥

चिन्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

श्वश्रोऽपि वपुर्धौतं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥२॥

जने अस्त अत्र उपरो उद्धित शरीरतु प्रक्षालन करतु ते सर्व-स्नान  
अत्रासुक जलभी स्नान कस्याभा अपृक्काय लवेनी विराधना याय छे जेधी स्नान  
कस्याने तप तेम अघनने विधात याय छे प्रासुक जलभी पक्ष स्नान कस्याधी  
लवेनी विराधना जे शीते याय छे छे ते पाणी बहेतु-बहेतु जमीनभा समाध  
अथ छे तेम जमीनभा छिद्रीभां उतरी अतु डोवाधी तेमां बहेला लवे भरे छे,  
या प्रकार तेना अतु भरषु डोवाधी तेवा प्रासुक जलभी कस्याने स्नान पक्ष  
साधु माटे ल्याय डोवा छे कक्षु पक्ष छे—

नोदकक्लिमभगाश्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥१॥

चिन्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

श्वश्रोऽपि वपुर्धौतं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

अन्यच्च—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रता ॥१॥

अपरच्च—“मलमडलपंकमडला, धूलीमडला न ते नरा मडला ।

जे पावपंकमडला, ते मडला जीवलयंमि ” ॥ १ ॥

छाया—“मलमलिनाः पङ्कमलिना, धूलीमलिना न ते नरा मलिनाः ।

ये पावपङ्कमलिना, स्ते मलिना जीवलोके ॥१॥ ” इति ।

तथा सवाहनं=इस्तादिना शरीरपरिकर्म, अस्थ्यादिसुखार्थं गात्रनिष्पीडनम् ।  
तथा-दन्तप्रक्षालनं=काष्ठेन चूर्णादिना वा दन्तमार्जनं च तस्य भगवतः श्रीवर्द्धमान-  
स्वामिनो न कल्पते ॥ २ ॥

और भी—स्नान मददर्पकर, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

फिर भी—मलमडलपंकमडला, धूलीमडला न ते नरा मडला ।

जे पावपंकमडला, ते मडला जीवलयंमि ॥१॥

भावार्थ—पानीको शरीर पर डालना, अथवा उससे शरीरको गीला करना इसका नाम स्नान नहीं है । ऐसे लौकिक स्नानसे न बाह्य शरीरकी शुद्धि होती है और न आभ्यन्तर आत्माकी ही । इन दोनों प्रकारकी शुद्धिका कारण दमस्नान है । पांच इन्द्रिय और मनको वश करनेका नाम दम है । इससे ( पांच इन्द्रियोंके वश करने से ) शरीरकी, और मनको वश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है, इसीका नाम बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि है । दम को स्नान इस लिये कहा है कि जिस प्रकार जल स्नानसे शरीर आदिके ऊपरका लगा हुआ मैल दूर हो जाता है

इरी पशु—स्नानं मददर्पकर, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

इरी पशु—“मलमडलपंकमडला, धूलीमडला न ते नरा मडला ।

जे पावपंकमडला, ते मडला जीवलयंमि ” ॥१॥

भावार्थ—पशुजिने शरीर उपर डोणु, अथवा तेनाथी शरीरने धोवु तेतु नाम स्नान नथी पशु जेवा लौकिक स्नानथी नथी बाह्य शरीरनी शुद्धि घती के नथी तेम अइरना आत्मानी पशु, आ जन्ने प्रकारनी शुद्धितु कारणु दमस्नान छे पाव पंकमडला आने मनने वश करवावु नाम दम छे आथी पाव इन्द्रियोने वश करवाथी शरीरनी आने मनने वश करवाथी आत्मानी शुद्धि थाथ छे तेतु नाम अथतर शुद्धि छे दमस्नान आ माटे कडेवायेल छे के के प्रकारे जणस्नानथी शरीर वगेरे उपर लागेबे मैल दूर थछे नथ छे अे प्रकारे आ दमक्रियाथी



किञ्च—'विरप' इत्यादि ।

मूष्म-विरप य गामधस्मेहिं, रीयइ माहणे अथहुवाई ।

सिसिरमि पगया भगवं, छायाए झाइ आसीय ॥३॥

छाया—विरतभ ग्रामधर्मेभ्यो, रीयते माहनः भवहुवायी ।

शिशिरे एफवा भगवान्, छायायां प्यायति आसित्वा ॥३॥

वसी प्रकार इस दम-क्रियासे इन्द्रिय आदिकी निरगल प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुई शारीरिक और आत्मिक अपवित्रता भी जो एक मैल जैसी मानी गई है नष्ट हो जाती है। दमनानके बिना इस अन्तर्गत चिस्की दुष्टता चाहे हजारों भी तीर्थोंमें स्नान क्यों न कर लिया जाय कभी नष्ट नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मविराके रम्बनेका चलन अनेक बार घोने पर भी शुचि-पवित्र नहीं होता है, उसी प्रकार सैफडों बाहिरी उपायसे पोया गया यह शरीर भी कभी पवित्र नहीं हो सकता है। इसलिये जो दमस्नान करनेमें रत साधु हैं वे इस मद् और दुर्पकारी तथा कामके प्रधान कारणभूत इस जलस्नानसे दूर रहते हैं। इसी लिये प्रभु इन सब पातोंसे परे रहे और आत्मिक शुधिताकी वृद्धिकी ओर अग्रसर हुए। भगवानने इसी प्रकार 'शरीरको सुख मिछे' इस भावनासे दमरोंको धेरित कर कभी भी किसीसे अपना शरीर नहीं दूषवाया और न अपने वागोंका प्रक्षालन-दन्तघाशन ही किया, क्यों कि ये सब पाते जैनकीक्षामें हेय-त्याज्य-भानी जाती हैं ॥२॥

इन्द्रिय चरेशनी निरगल प्रवृत्तिधी रूपत बनेल शारीरिक अने आत्मिक अपवित्रता पक्ष बनेने सेल बनेनी मानी देवासेल छे ते नास पाये छे इमस्नान बिना अन्तर्गत चित्तनी दुष्टता कलशे तीर्थोभा स्नान करवायी पक्ष नास पावती नथी के शीते झाइ राभवान्तु इम अनेक पभवत साइ करवा छत्त पक्ष ते तेनी वासधी मुकत धर्ष पवित्र जन्तु नथी, तेवी शीते लकारना से कडे उपबोधधी पोवाभा आवेल आ शरीर पक्ष इही पवित्र भत्तु नथी भाटे के साधु इमस्नान करवाभा भस्त छे तेवा साधु आव्वा मर अने दुर्पकारी तथा इमना प्रधान कारणभूत आ जलस्नानधी दूर रहे छे आधी न प्रभु आव्वा शीतधी दूर रह्वा अने आत्मिक शुद्धिनी वृद्धिने भाटे अग्रसर रह्वा। भजवाने आव्वा शीते शरीरने सुख भजे आ भावनाधी जीवज्जोने धेरित भरी इही पक्ष इहोधी पोवान्तु शरीर दूषापराणु नकि, अने पोतानी हातानु पोतु जेदके हातपक्ष करवुं पनेए पक्ष करेद नथी कारण के आ पधी पाते जैनकीक्षाम हेय-त्याज्य-भाने छे (९)

अन्यच्च—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रता ॥१॥

अपरच—“मलमङ्गलपंकमङ्गला, धूलीमङ्गला न ते नरा मङ्गला ।

जे पापपंकमङ्गला, ते मङ्गला जीवलयंमि ” ॥ १ ॥

छाया—“मलमलिनाः पङ्कमलिना, धूलीमलिना न ते नरा मलिनाः ।

ये पापपङ्कमलिना, स्ते मलिना जीवलोके ॥१॥ ” इति ।

तथा सवाहनं=हस्तादिना शरीरपरिकर्म, अस्थ्यादिसुखार्थं गात्रनिष्पीडनम् ।

तथा-दन्तप्रक्षालनं=काष्ठेन चूर्णादिना वा दन्तमार्जनं च तस्य भगवतः श्रीवर्द्धमान-  
स्वामिनो न कल्पते ॥ २ ॥

और भी—स्नान मददर्पकर, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

फिर भी—मलमङ्गलपंकमङ्गला, धूलीमङ्गला न ते नरा मङ्गला ।

जे पापपंकमङ्गला, ते मङ्गला जीवलयंमि ॥१॥

भावार्थ—पानीको शरीर पर डालना, अथवा उससे शरीरको गीला करना इसका नाम स्नान नहीं है । ऐसे लौकिक स्नानसे न बाह्य शरीरकी शुद्धि होती है और न आभ्यन्तर आत्माकी ही । इन दोनों प्रकारकी शुद्धिका कारण दमस्नान है । पांच इन्द्रिय और मनको वश करनेका नाम दम है । इससे ( पांच इन्द्रियोंके वश करने से ) शरीरकी, और मनको वश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है, इसीका नाम बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि है । दम को स्नान इस लिये कहा है कि जिस प्रकार जल स्नानसे शरीर आदिके ऊपरका लगा हुआ मैल दूर हो जाता है

इरी पद्य—स्नान मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

इरी पद्य—“मलमङ्गलपंकमङ्गला, धूलीमङ्गला न ते नरा मङ्गला ।

जे पापपंकमङ्गला, ते मङ्गला जीवलयंमि ” ॥१॥

भावार्थ—पाणीने शरीर ઉપર ઢોળવુ, અથવા તેનાથી શરીરને ધોવું તેનું નામ સ્નાન નથી પણ એવા લૌકિક સ્નાનથી નથી બાહ્ય શરીરની શુદ્ધિ થતી કે નથી તેમ અદરના આત્માની પણ, આ બંને પ્રકારની શુદ્ધિનું કારણ દમસ્નાન છે પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનને વશ કરવાનું નામ દમ છે આથી પાંચ ઇન્દ્રિયોને વશ કરવાથી શરીરની અને મનને વશ કરવાથી આત્માની શુદ્ધિ થાય છે તેનું નામ અભ્યંતર શુદ્ધિ છે દમસ્નાન આ માટે કહેવાયેલ છે કે જે પ્રકારે બળસ્નાનથી શરીર વગેરે ઉપર લાગેલો મેલ દૂર થઈ બાકી છે એ પ્રકારે આ દમક્રિયાથી

मगवान् कियन्त काठं रूक्षोदनादीनि सत्रते स्मेत्याह—'एयाणि' इत्यादि ।  
 मूष्य-एयाणि तिष्ठि पडिसेवे, अहमासे य जावय भयव ।

अधि इत्थ एगया भगव, अहमास अवुवा मासपि ॥५॥

प्राया-एसानि श्रीणि प्रतिसेपते, अष्टमासांश्च यापयति मगवान् ।

अप्यथ एकदा मगवान्, अर्द्धमासमथवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका-मगवान् एतानि-पूर्वोक्तानि श्रीणि-भोदनादीनि यथाप्राप्तं प्रति-  
 सपठेत्स । एवं कृत्वाऽष्टौ मासान् यापयति-शरीरयात्रां निर्ब्रूहिस्मि । अथ  
 ममवतस्तपो वर्जयति-'अधि इत्थ' इत्यादि । अपिच-एकदा मगवान् अत्र-छत्र  
 स्वारस्यायाम् अर्द्धमासमथवा मासमपि चतुर्विंशतिवारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

क्रिञ्च-अधि साहिय' इत्यादि ।

मूष्य-अधि साहिय वुवे मासे, छप्पि मासे अवुवा विहरिस्था ।  
 राओवराय अपडिन्ने, अन्न गिलायमगया मुजे ॥६॥

भादि, पीरो-पोरोके चूर्ण भादि तथा कुसुपी भादिसे अपने शरीरका  
 निर्वाह करते । यह सब रूक्ष आहार है ॥ ४ ॥

मगवानने कितने दिनों तक रूक्ष आहारका सेवन किया? इसे सूत्र  
 चार प्रकार करते हैं—'एयाणि' इत्यादि ।

मगवानने इन भोदन-कोदण्ड, मंघु-धरचूर्ण और कुसुपी, ये तीन  
 प्रकारके पशुपित रूक्ष आहार जिस समय गोचरीमें जो मिल जाता था  
 वही छेते थे, इस प्रकार आठ मास तक रूक्ष आहार सेवन किया ।  
 मगवानने अपनी इस छत्रस्यावस्थामें कभी-कभी अर्ध मास या एक मास भादि  
 अनेक चौबिहार तपश्चर्या की ॥६॥

बजेर तथा कण्ठी बजेरशी चोत्तान् शरीरानो निर्वाहं कृत्वा च तथा इक्ष  
 चकार छे (४)

मगवानने डेटला दिवसे। मुधी इक्ष आकारतु सेवन कर्तुं? अने सूत्रकार  
 प्रकट करे छे— एयाणि इत्यादि ।

मगवानने जो जोहन-डेटण मधु-गिरसुर्ष' अने कण्ठी, जो मधु  
 प्रकारता पशुपित वाली इक्ष आकार के अगसे जेवरीमां के भणी चतु ते देवा  
 देवा च प्रकार आठ मास मुधी इक्ष आकारतु सेवन कर्तुं मगवानने चोत्तानी  
 जो छत्रस्थ अवस्थां कही कही अर्धमास, अत्रर अर्धमास भादि अनेक  
 चौबिहार तपश्चर्या कही (५)

टीका—ग्रामधर्मैभ्यः=शब्दादिविषयेभ्य, विरतः=निवृत्तः, माहनः=अहिंसो-  
पदेशी, अवहुवादी=अल्पभाषी, भगवान् रीयते=विद्वरतिस्म। एकदा शिशिरे  
भगवान् छायाया वृक्षलतामण्डपादेरघस्ताद् आसित्वा=उपविश्य ध्यायति=ध्यान-  
लीनो बभूव ॥ ३ ॥

किञ्च—‘ आयावइ ’ इत्यादि ।

मूलम्—आयावइ य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभितावे ।

अदु जावइत्थ लूहेणं, ओयणमंथुकुम्मासेणं ॥४॥

छाया—आतापयति च ग्रीष्मेषु, तिष्ठति उत्कुडुकः अभितापम् ।

अथाऽयापयद् रुक्षेण, ओदनमन्थुकुल्माषेण ॥ ४ ॥

टीका—भगवान् ग्रीष्मेषु आतापयति=सूर्यातापनां सेवतेस्म । केन प्रकारेण-  
त्याह—‘ तिष्ठती ’—त्यादि । उत्कुडुकः=उत्कुडुकासनो भूत्वा अभिताप=सूर्याभिमुखं  
तिष्ठति । अथ=समुच्चये, तथा रुक्षेण=नीरसेनान्तप्रान्तेन पर्युषितेन च ओदनम-  
न्थुकुल्माषेण, ओदनः=कोद्रवोदनादिः, मन्थु=वदरचूर्णादिक, कुल्मापः=कुलत्यादिः,  
एषा समाहारः ओदनमन्थुकुल्माषं, तेन अयापयत्=शरीरयात्रा निर्वहतिस्म ॥४॥

फिर भी—“ विरय ” इत्यादि ।

शब्दादिक पांच इन्द्रियोंके विषयोंसे सर्वथा विरक्त वे भगवान्  
सदा जीवोंको अहिंसा धर्मका उपदेश देनेवाले थे । बहुत कम बोलते  
थे । यदि बोलनेका अवसर आता तो सदा हित मित और प्रिय वचन  
बोलते थे । कभीर शिशिर ऋतुमें भगवान् वृक्ष, लता-मण्डप आदिके  
नीचे बैठ कर ध्यानमें लीन होते थे ॥३॥

और भी—‘ आयावइ य ’ इत्यादि ।

ग्रीष्मऋतुमें प्रभु सूर्यके संमुख उत्कुडुक ( उक्कुडु ) आसनसे  
बैठकर आतापना लेते । तथा अन्त प्रान्त और पर्युषित कोद्रवका अन्न

करी—‘ विरय य ’ इत्यादि

शब्दादिक पांच इन्द्रियोंका विषयोंकी सर्वथा विरक्त वेवा भगवान् सदा  
बोलनेकी अहिंसाना उपदेशक हुता थेडु बोलता हुता कदाय बोलवानो प्रसंग  
आवतो तो सदा हित मित अने प्रिय वचन कहेता हुता कही कही शिशिर ऋतुमा  
भगवान् वृक्ष, लतामण्डप वगेरेनी नीचे जेसी ध्यानमा लीन थता हुता (३)

करी पद्य—‘ आयावइ य ’ इत्यादि

ग्रीष्मऋतुमा प्रभु सूर्यनी सामे उत्कुडुक ( उक्कुडु ) आसनथी जेसी आतापना  
लेता हुता, तथा अन्त प्रान्त अने पर्युषित कोद्रवमा अन्न वगेरे, गोरतु बरु

ममवान् क्रियन्त कालं रूद्रोदनादीनि सेवत स्मेत्याह—'पयाणि' इत्यादि।

मूकम्—पयाणि तिस्रि पडिसेवे, अष्टमासे य जावण भयव ।

अधि इत्थ पगया भगव, अष्टमास अवुवा मासपि ॥५॥

जाया—एतानि श्रीणि पविसेवते, अष्टमासांश्च यापयति मगवान् ।

अप्यत्र एकदा भगवान्, अष्टमासपयवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका—मगवान् एतानि=पूर्वोक्तानि श्रीणि=ओदनादीनि यथासात् प्रवि-  
सेवतेस्म। एष कृत्वाऽष्टौ मासान् यापयति=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म। भय  
मगवतस्सपो वगंयति—'अधि इत्थ' इत्यादि। अपिच—एकदा भगवान् अष्ट=अष्ट  
स्वास्वयाम् अष्टमासमयवा मासमपि चतुर्विधाहारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

किञ्च—'अधि साह्विप' इत्यादि ।

मूकम्—अधि साह्विप दुवे मासे, छप्यि मासे अवुवा विहरित्था ।

राओधराय अपडिन्ने, अन्न गिलायमगया मुजे ॥६॥

भादि, पैरीं—पौरोके पूर्ण भादि तथा कुलपी भादिसे अपने शरीरका  
निर्वाह करते। यह सब कष्ट आहार है ॥ ४ ॥

भगवानने कितने दिनों तक कष्ट आहारका सेवन किया? इसे सूच  
कार प्रकट करते हैं—'पयाणि' इत्यादि।

भगवानने इन ओदन—ओत्रव, मधु—वरपूर्ण और कुलपी, ये तीन  
प्रकारके पशुपित कष्ट आहार जिस समय गोशरीरमें जो मिल जाता था  
वही छेते थे, इस प्रकार आठ मास तक कष्ट आहार सेवन किया।  
भगवानने अपनी इस छद्मस्थावस्थामें कभी-कभी मास या एक मास भादि  
बनेक चौबिहार तपश्चर्या की ॥५॥

वनेरे तथा कण्ठी वनेरेधी पोताना शरीरने निर्वाह करता. अथ अथ इक्ष  
आहार के. (४)

भगवानने कितने दिनोंसे मुधी इक्ष आहारसे सेवन शुरू? बनेरे सूचकार  
प्रकट करे छे—'पयाणि' इत्यादि।

भगवानने जो ओदन—ओत्रव, मधु—ओरपूर्ण अने कलपी, जो मधु  
प्रकारका पशुपित वासी इक्ष आहार के समवे गोशरीरमें के मणी अतु ते बेटा  
कता अथ प्रकारे अथ मास मुधी इक्ष आहारसे सेवन शुरू भगवानने पोतानी  
के छद्मस्थ अवस्थामें कभी कभी अर्धमास, अथर जेकमास भादि अनेके  
पौर्विकार तपश्चर्या करी. (५)

छाया--अपि साधिकौ द्वौ मासौ पडपि मासान् अथवा विजहार ।

रात्रोपरात्रमप्रतिज्ञः, अत्र ग्लानमेकदा भुङ्क्ते ॥ ६ ॥

टीका--अपि च-साधिकौ द्वौ मासौ=सार्धमासद्वयम् । अथवा पण्मासान्  
अपि पानीयमप्यपीत्वा अप्रतिज्ञः=पानप्रतिज्ञारहितः सन् रात्रोपरात्रम्=अहर्निशं  
विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म । तथा-एकदा=तपःपारणादिवसे ग्लान=पर्युषित-  
मन्तमान्तम्, अन्नम्=ओदनादिकं भुङ्क्तेस्म ॥६॥

किञ्च--' छट्टेण ' इत्यादि ।

मूलम्-छट्टेण एगया भुंजे, अदुवा अट्टमेण दसमेणं ।

दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने ॥७॥

छाया--पष्ठेन एकदा भुङ्क्ते अथवा अष्टमेन दशमेन ।

द्वादशेन एकदा भुङ्क्ते प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥ ७ ॥

टीका--अप्रतिज्ञः=इहलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः समाधि=सयमसमाधि प्रेक्ष-  
माणः=पर्यालोचयन् भगवान् एकदा=कदाचित् पष्ठेन=पष्ठभक्तेन भुङ्क्तेस्म ।  
अथवा अष्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशभक्तेन च भुङ्क्तेस्म । पष्ठभक्तादीनां  
पारणां चकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी--' अवि माहिण ' इत्यादि ।

इतना ही नहीं--किन्तु कभीरु ढाईर मास तक अथवा छह छह  
मास तक चौविहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लवलीन रहे । पार-  
णाके दिन अन्त-प्रान्त और पर्युषित ओदनादिका आहार ग्रहण  
करते थे ॥ ६ ॥

और भी--' छट्टेण एगया ' इत्यादि ।

कभी भगवान् छठ ( बेला ) करते थे, कभी अट्टम ( तेला ) करते,  
कभी द्वादशभक्त ( पचीला ) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे ॥७॥

इरी पद्य--' अवि साहिण ' इत्यादि

अट्टम ४ नहीं पद्य केरि केरि वभते अठ्ठे अठ्ठी अठ्ठी मडिना सुधी  
अथवा छ छ मडिना सुधी चौविहार तपस्या करीने भगवान् तपमा लवलीन  
रहा पारणांना दिवसे अन्त प्रान्त अने वामी ओदनादिनु सेवन करता हुता (६)

इरी--' छट्टेण एगया ' इत्यादि

क्यारिके भगवान् छठु करता हुता, क्यारिके अठ्ठम करता हुता, क्यारिके द्वादशभक्त  
करता समाधी लावमा लवलीन रहेता हुता (७)

क्रिय—‘णञ्चा ण’ इत्यादि ।

पृष्म्—णञ्चा णं से महावीरे, नो वि य पावग सयमकासी ।

अन्नेहिं वा ण कारिरथा, कीरतंपि नाणुजाणिरथा ॥८॥

णया—इत्वा स्वतु स महावीरः नापि च पापकं स्वयमकर्णीत् ।

अन्यैर्वा नाकारयत्, कुर्वन्तमपि नान्वहासीत् ॥ ८ ॥

टीका—अपि च—स महावीर इत्वा हेयोपादेयमनुष्य पापक कर्म=हिंसा-  
दिष्म न स्वयमकर्णीत्, अन्यैर्वा तस्यापकं कर्म नाकारयत् । कुर्वन्तं=पापकर्म  
प्रमाचरन्तमन्यमपि नान्वहासीत्=नान्कमोदयत् ॥ ८ ॥

अथ भगवता ब्रासैपणाभिपिनार—‘गाम पविस्स’ इत्यादि ।

पृष्म्—गाम पविस्स नगरं वा, घासमेसे कञ्च परद्वाए ।

सुविसुद्धमेसिया भगव, आयतजोगयाए सेषिरथा ॥९॥

णया—ग्रामं प्रविश्य नगरं वा ब्रासमपयति कृतं पराधीय ।

सुविद्धमेपयित्वा भगवान् आयतयोगतयाऽसेषिष्ट ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् ग्रामं नगरं वा प्रविश्य ब्रासमन्वेपयतिस्म । कीरत्तं ब्रासमि  
त्याह्वयाभाह—‘कञ्च परद्वाए’ इत्यादि । परार्याय कृष्म्—उद्गमदोपरिष्ठे,

और मी—‘नञ्चा ण’ इत्यादि ।

हेय और उपादेय तत्त्वके ज्ञाता भगवान् महावीरने कमी मी न  
स्वयं पापकर्म किया, न किसीसे कराया और न पापकर्म करते हुएका  
अनुमोदन किया ॥ ८ ॥

अथ भगवान् की घास-एषणाभिपिको कहते हैं—‘गाम पविस्स’ इत्यादि ।

ईयांसमितिपूर्वक बिहार करनेवाले प्रभु महावीरने ग्राम अथवा  
नगरमें प्रवेश कर उद्गम और उत्पादनाके दोषोंसे रहित शुद्ध भाहार

करी—नञ्चा ण इत्यादि

हेय अने उपादेय तत्त्वना ज्ञाता भगवान् महावीरने कभी पक्षु पेटे पापकर्म  
कर्मानवी अने वीर्य पासे करान्या पक्षु नवी, तेमए पापकर्म उत्पादनातु कतु  
येहन पक्षु कर्तु नवी. (८)

अथ भगवान् की घास-एषणाभिपिको कहते हैं—‘गाम पविस्स’ इत्यादि

अथ अत्र नजरमा प्रवेश करी उद्गम अने उत्पादनाका दोषाधी रहित  
शुद्ध भावनाकी अवस्था करी. जवेपक्षा करी नाहमा ज्ञानयतुष्टपधी मन वरुन

छाया--अपि साधिकौ द्वौ मासौ पडपि मासान् अथवा विजहार।

रात्रोपरात्रमप्रतिज्ञः, अन्न ग्लानमेरुदा भुङ्क्ते ॥ ६ ॥

टीका--अपि च-साधिकौ द्वौ मासौ=मार्धमासद्वयम्। अथवा पण्मासान् अपि पानीयमप्यपीत्वा अप्रतिज्ञः=पानप्रतिज्ञारहितः सन् रात्रोपरात्रम्=अहर्निश विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म। तथा-एरुदा=तपःपारणादिवसे ग्लानं=पर्युषित-मन्तमान्तम्, अन्नम्=ओदनादिक भुङ्क्तेस्म ॥६॥

किञ्च--'छट्टेण' इत्यादि।

मूलम्--छट्टेण एगया भुंजे, अट्टुवा अट्टमेण दसमेणं।

दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥७॥

छाया--पठेन एरुदा भुङ्क्ते अथवा अष्टमेन दशमेन।

द्वादशेन एकदा भुङ्क्ते प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥ ७ ॥

टीका--अप्रतिज्ञः=उदलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः समाधि=सयमसमाधि प्रेक्ष-माणः=पर्यालोचयन् भगवान् एकदा=कदाचित् पठेन=पठभक्तेन भुङ्क्तेस्म। अथवा अष्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशभक्तेन च भुङ्क्तेस्म। पठभक्तादीनां पारणां चकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी--'अपि साहित्ण' इत्यादि।

उतना ही नहीं--किन्तु कभी२ ढाई२ मास तक, अथवा छह छह मास तक चौविहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लवलीन रहे। पारणाके दिन अन्न-प्रान्त और पर्युषित ओदनादिका आहार ग्रहण करते थे ॥ ६ ॥

और भी--'छट्टेण एगया' इत्यादि।

कमी भगवान् छठ (बेला) करते थे, कमी अट्टम (तेला) करते, कमी द्वादशभक्त (पचौला) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे॥७॥

इरी पद्य--'अपि साहित्ण' इत्यादि

अथवा छ छ भङ्गिना सुधी यौविहार तपस्या उरीने भगवान् तपमा लवलीन रद्धा पारणांना द्विवसे अन्त प्रान्त अने वानी ओदनादिनु मेवन करता हता (६)

इरी--'छट्टेण एगया' इत्यादि

क्यारिक भगवान् छठु करता हता, क्यारिक अठम करता हता, क्यारिक द्वादशभक्त करता समाधी भावमा लवलीन रहेता हता (७)



पक्षिणः प्रासैपणया—मस्रणपानेच्छया भूम्युपरि तिष्ठन्ति=बिचरन्ति, तथा सत-  
तम्=प्रतिक्षणं निपतितान्—आकाशात् भूमितलमागतान् प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा भगवान्—तेषां  
प्रतिरोपमङ्गलं पार्श्वमागतं शनैर्गच्छन् प्रासमन्वैपीदिति तृतीयगाथया सम्बन्धः ॥१०॥

श्लोक—'अबुवा' इत्यादि । 'बिचिच्छेयं' इत्यादि ।

मूष्य—अबुवा माहृण च समण वा, गामपिण्डोलग च अतिर्हि वा ।

सोवाग मूसियारिं वा, कुक्कुरं वापि चिद्विय पुरतो ॥११॥

विचिच्छेय वज्रतो, तेसिमप्यत्तियं परिहरतो ।

मद् परक्रम भगवं, अर्हिसमाणो घासमेसिस्था ॥१२॥

प्राया—अपना प्राणायं च भ्रमणं वा ग्रामपिण्डोत्सकं चातिर्धि वा ।

अपाकं मूपिचारिं वा कुक्कुरं वापि स्थितं पुरतः ॥ ११ ॥

इचिच्छेयं वज्रयन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन् ।

मन्दं परक्रमते भगवान् अर्हिसन् प्रासमन्वैपीत् ॥ १२ ॥

टीका—अपना—प्राणायं तथा भ्रमणं=प्राणायामःऽऽजीवकपरिवाजकत्वापसन्निर्वन्या  
नामन्यतर्यं, तथा—ग्रामपिण्डोलकं=मिश्रकं, अतिर्धिम्=अकस्मात्प्रागर्तं, अपाकं=आच्छादं,

रीतिसे अपने आपको संभालते हुए वहाँकि समीपसे धीरे-  
धीरे निकल जाते । तात्पर्य यह है कि—प्रभु जिस समय आहार लेनेके लिये  
निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं  
पहुँचता था । यहाँ तक कि जो कछुआ आदि जीव मार्गमें चुगते हुए  
इधर उधर फिरा करते उस समय उनके नजदीकसे यत्नापूर्वक भगवान्  
निकल जाते ॥१०॥

फिर मी—'अबुवा' इत्यादि । 'बिचिच्छेयं' इत्यादि ।

इसी प्रकार प्राणायण, भ्रमण, शाक्य, आजीवक, परिवाजक,  
तापस, मिश्रक, और अकस्मात् आया हुआ आँडाल एवं माज्जर—दुग्धका

आजुमांशु धीरे धीरे नीकली क्या तापस' के छे के—प्रभु के समये आहार  
लेना नीकली क्या त्वारे केमना क्या अथवाभी केछे पद्य अपने कष्ट पहुँचाने  
नहीं, तथा सुधी के के कछुआ वगैरे एवं मार्गमें अथ कछुआ आम—तेम  
इत्या के समये कचवान केमनी नलकभी सावधानीपूर्वक नीकली क्या (१)

इति—अबुवा इत्यादि ।

आ रीते प्राणाय, भ्रमण, शाक्य आजीवक, परिवाजक तापस आने मिश्रक  
आजुमांशु केछेने पद्य तेमना कछुआ वगैरे क्या नहीं आने अकस्मात्

तथा-सुविशुद्धम्=उत्पादनादोषवर्जितम्, एषयित्वा=एषणादोषं परिहरन् अन्वेप्य,  
भगवान् आयतयोगतया=आयतश्चासौ योगश्च-आयतयोगः=ज्ञानचतुष्टयेन सम्यग्  
मनोवाकायलक्षणयोगप्रणिधानम्, तस्य भावः आयतयोगता, तया=ग्रसैषणादोष-  
परिवर्जनेन सम्यक् शुद्धमाहारम् असेविष्ट ॥ ९ ॥

पुनरपि ग्रसैषणामिधिं गाथात्रयेणाह-‘अदु वायसा’ इत्यादि ।

मूलम्-अदु वायसा दिगिंछिया, जे अन्ने रसेसिणो सत्ता ।

घासेसणाए चिट्ठंति, सययं णिवत्तिए य पेहाए ॥१०॥

छाया—अथ वायसा बुभुक्षिता येऽन्ये रसैषिणः सत्त्वाः ।

ग्रसैषणया तिष्ठन्ति सतत निपतिताश्च प्रेक्ष्य ॥१०॥

टीका—अथ भिक्षार्यं गच्छतो भगवतः पथि बुभुक्षिताः=क्षुत्वीडिताः  
रसैषिणः=पिपासाकुलाः वायसाः=काकाः, तया येऽन्ये सत्त्वाः पारावतादय

की गवेषणा की । गवेषणा कर बादमें ज्ञानचतुष्टयसे मन, वचन और काय,  
इन तीन योगोंकी शुभ प्रवृत्तिपूर्वक उस आहारका जो ग्रस-एषणाके  
दोषोंके परिहारसे भलीभांति शुद्ध था सेवन किया ॥१०॥

ग्रस-एषणा की विधिका कथन सूत्रकार तीन गाथाओंसे प्रकट  
करते हैं—‘अदु वायसा’ इत्यादि ।

भगवान् जिस समय आहारके लिये विचरण करते थे, उस समय  
भूखसे व्याकुल और प्याससे दुःखित कौवा तथा कबूतर आदि जो  
अपनी बुभुक्षाके शमनार्थ इधर उधरसे आकर जहां संमिलित होते  
रहते, उनको जरा भी कष्ट न हो, आहार पा कर ये उड़ न जायें, इस

अने काय, आ त्रयु योऽगोनी शुभप्रवृत्तिपूर्वकं ये आहारं के के ग्रसैषणाना  
दोषोना परिहाराथी सारी रीते शुद्ध होय तेतु सेवन करेहु (९)

ग्रस-एषणाना विधिनु कथन सूत्रकार त्रयु गाथाओंकी प्रकट करे छे,—  
‘अदु वायसा’ इत्यादि

भगवान् आहार माटे के समथे विचरणु करता हुता अने समथे भूथी  
व्याकुल अने तरसथी दुःभी अेषा कागडा तथा कणुतरा वगेरे लुयो के के  
भूथने सतोषवा रस्तामा नुर्डी कर्डीथी आवी न्या अेक न्याअे भणता हुता  
अने भीजत पणु वधु सथ्यामा आवी तेमनी साथे भणता हुता. आवा पक्षिअे  
उडी न अथ अने तेने नरा पणु कष्ट न पडोअे आ रीते सभाजपूर्वक अेमनी

पक्षिणः प्रासैषणया=भ्रमणपानेच्छया भूम्युपरि तिष्ठन्ति=विचरन्ति, तथा सत  
 तम्=प्रतिक्षण निपतितान्-आकाशाद् भूमितलमागतान् प्रेष्य=दृष्ट्वा भगवान्-तेषां  
 प्रविरोधमङ्घर्वन् पार्श्वमागतः शनैर्गच्छन् प्रासमन्वैपीदिति वृत्तीयगायया सम्बन्धः ॥१०॥

किञ्च—'अनुवा' इत्यादि । 'चित्तिच्छेय' इत्यादि ।

भ्रम्य-अनुवा माह्वण च समण वा, गामपिंडोलग च अतिहिं वा  
 सोवाग मूसियारिं वा, कुक्कुर वावि चिष्टिय पुरओ ॥११॥

वित्तिच्छेय वज्जतो, तेसिमप्पत्तिय परिहरतो ।

मद परक्कमे भगव, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥१२॥

शया—अथवा ब्राह्मणं च भ्रमण वा ग्रामपिण्डोलकं वातिपिं वा ।

अपाकं मूपिकारिं वा कुक्कुरं वापि स्थितं पुरतः ॥ ११ ॥

इत्तिच्छेदं वज्रयन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन् ।

मन्दं पराक्रमते भगवान् अहिंसन् प्रासमन्वैपीत् ॥ १२ ॥

टीका—अथवा-ब्राह्मणं तथा भ्रमणं=ब्राह्मण्यःऽऽजीवकपरिव्राजकतापसनिर्ग्रन्था  
 नामन्वयं, तथा-ग्रामपिण्डोलकं=मिष्ठुकं, अतिपिण्डु=अकस्मादागतं, अपाकं=पाण्डाकं,

रीतिसे अपन आपको संभालते हुए उन्हींके समीपसे धीरे-निकल  
 जाते । तात्पर्य यह है कि-प्रभु जिस समय आहार छेनेके लिये  
 निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं  
 पहुंचता था । यहाँ तक कि जो कबूतर आदि जीव मार्गमें चुगते हुए  
 इधर उधर फिरा करते उस समय उनके नजदीकसं यत्नापूर्वक भगवान्  
 निकल जाते ॥१०॥

फिर भी—'अनुवा' इत्यादि । 'चित्तिच्छेय' इत्यादि ।

इसी प्रकार ब्राह्मण, भ्रमण, शाक्य, भाजीवक, परिव्राजक,  
 तापस, मिष्ठुक, और अकस्मात् आया हुआ आंबाल एवं मार्जार-दुग्धका

वास्तुमांसी धीरे धीरे निकली जाता वहपक्ष को छे के-प्रभु के समये आहार  
 लेना निकलता होता थावे कोमना तथा अववाभी केअ पक्ष अपने कष्ट पहोअतु  
 नहीं, तथा सुधी के के कबूतर वजेरे एवं मार्गमा कबु वसुवा आम-तेम  
 इत्यां को समये कबवान कोमनी नलकधी अपधानीपूर्वकं निकली जाता (१)

इति—अनुवा इत्यादि ।

आ रीते ब्राह्मण, भ्रमण, शाक्य आलपक परिव्राजक तापस जाने मिष्ठुक  
 आमांसी केअने पक्ष तेमना वरुधी नदतर वदा नहीं जाने आरमात्

तथा—सृविशुद्धम्=उत्पादनादोपवर्जितम्, एषयित्वा=एषणादोषं परिहरन् अन्वेष्य, भगवान् आयतयोगतया=आयतश्चासौ योगश्च-आयतयोगः=ज्ञानचतुष्टयेन सम्यग् मनोवाक्कायलक्षणयोगप्रणिधानम्, तस्य भावः आयतयोगता, तथा=ग्रासैषणादोष-परिवर्जनेन सम्यक् शुद्धमाहारम् असेविष्ट ॥ ९ ॥

पुनरपि ग्रासैषणाविधिं गाथात्रयेणाह—‘अदु वायसा’ इत्यादि ।

मूलम्—अदु वायसा दिर्गिच्छिया, जे अन्ने रसेसिणो सत्ता ।

घासेसणाए चिष्टंति, सयधं णिवत्तिए य पेहाए ॥१०॥

छाया—अथ वायसा बुभुक्षिता येऽन्ये रसैषिणः सत्त्वाः ।

ग्रासैषणया तिष्ठन्ति सतत निपतिताश्च प्रेक्ष्य ॥१०॥

टीका—अथ भिक्षार्थं गच्छतो भगवतः पथि बुभुक्षिताः=क्षुत्पीडिताः रसैषिणः=पिपासाकुलाः वायसाः=काकाः, तथा येऽन्ये सत्त्वाः पारावतादयः की गवेषणा की । गवेषणा कर बादमें ज्ञानचतुष्टयसे मन, वचन और काय, इन तीन योगोंकी शुभ प्रवृत्तिपूर्वक उस आहारका जो ग्रास-एषणाके दोषोंके परिहारसे भलीभांति शुद्ध था सेवन किया ॥१॥

ग्रास-एषणा की विधिका कथन सूत्रकार तीन गाथाओंसे प्रकट करते हैं—‘अदु वायसा’ इत्यादि ।

भगवान् जिस समय आहारके लिये विचरण करते थे, उस समय भूखसे व्याकुल और प्याससे दुःखित कौवा तथा कवृतर आदि जो अपनी बुभुक्षाके शमनार्थ इधर उधरसे आकर जहाँ समिलित होते रहते, उनको जरा भी कष्ट न हो, आहार पा कर ये उड़ न जायें, इस

अने काय, आ त्रष्टु योगोनी शुभप्रवृत्तिपूर्वकं जे आहार के जे ग्रासैषणाना होवोना परिहारधी सारी रीते शुद्ध होय तेनु सेवन करेखु (९)

ग्रास-एषणानी विधिनु कथन सूत्रकार त्रष्टु गाथाओंकी प्रकट करे छे,— ‘अदु वायसा’ इत्यादि

भगवान् आहार भाटे जे समये विचरण करता हुता जे समये भूभधी व्याकुल अने तरसधी दुःखी जेवा कागडा तथा कवृतरा वगेरे एवो के जे भूभने सतोपवा रस्ताभा जर्डी कर्डीधी आवी जया जेक जयाजे भणता हुता अने पीन पखु वधु सज्याभा आवी तेमनी साथे भणता हुता. जया पक्षिजो हुडी न जय अने तेने जरा पखु कष्ट न पडोये आ रीते सहाणपूर्वक जेमनी

पशुभिः प्रासैपणया=भक्षयमानेच्छया भूम्युपरि विष्ठन्ति=विचरन्ति, तथा सत  
 तम्=प्रतिघ्नन् निपतितान्-आफावाद् भूमितलमागतान् प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा भगवान्-तेषां  
 प्रतिरोधमकुर्वन् पार्श्वमागतः अनैर्गच्छन् प्रासमन्यैपीदिति तृतीयगायया सम्बन्धः ॥१०॥

किञ्च—'अबुवा' इत्यादि। 'विसिच्छेयं' इत्यादि।

भूम्य्-अबुवा माहण च समण वा, गामपिण्डोलग च अतिर्हि वा।

सोवाग मूसियारि वा, कुक्कुरं वावि विष्टिय पुरतो ॥११॥

विसिच्छेयं वज्रतो, तेसिमप्यसिय परिहरतो।

मद परक्रमे भगव, अर्हिसमाणो घासमेसित्था ॥१२॥

णया—अथवा ब्राह्मण च भ्रमणं वा ग्रामपिण्डोक्तं चातिर्षि वा।

अपाकं मूपिकारि वा कुक्कुरं वापि स्थितं पुरतः ॥११॥

विसिच्छेयं वज्रयन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन्।

मदं पराक्रमते भगवान् अर्हिसन् प्रासमन्यैपीत् ॥१२॥

टीका—अथवा-प्राह्वयं तथा भ्रमणं=शक्यःऽऽजीवकपरिभ्रामकत्वापसन्निर्भ्रन्वा-  
 नामन्यतमं, तथा-ग्रामपिण्डोक्तं=मिश्रकं, अतिर्षिम्=अकस्मादानतं, अपाकं=वाण्डालं,

रीतिसे अपने आपको संभालते हुए उन्हींके समीपसे धीरे-निकल

जाते। तात्पर्य यह है कि-प्रभु जिस समय आहार छेदनेके लिये

निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं

पहुँचता था। यहाँ तक कि जो कबूतर भादि जीव मार्गमें चुगते हुए

इपर उभर फिरा करते उस समय उनके मजदीकस यत्नापूर्वक भगवान्

निकल जाते ॥१०॥

फिर भी—'अबुवा' इत्यादि। 'विसिच्छेयं' इत्यादि।

इसी प्रकार ब्राह्मण, भ्रमण, शक्य, आजीवक, परिभ्राजक,  
 तापस, मिश्रक, और अकस्मात् आया हुआ वाण्डाल एवं मार्जार-बुग्घका

पशुओंकी धीरे धीरे नीकली तथा वापस के छे के-भ्रु के समझे आकार

केवा नीकलता तथा त्पारे जेभन्ना तथा आपवाणी केअ पशु अपने अन्त पक्षेभन्तु

नहीं, तथा बुधि के ले कुत्तर नगरे लप मार्गमां अथ वापुता आम-तेम

इत्यां के समझे लभवान् जेभनी नलकषी आपधानीपूर्वक नीकली तथा (१०)

३१- अबुवा इत्यादि।

आरीते प्राह्वय, भ्रमण, शक्य, आजीवक परिव्राजक वापस जाने मिश्रक  
 आभाषी केअने पशु तेमअ वरक्षी नलतर यदा नहीं, अने अकस्मात्

मृषिकारिं=दुग्धार्थिनं मार्जारं, अपि च कुकुरं=थानं वा पुरतः अग्रे स्थित दृष्ट्वा  
तेषां वृत्तिच्छेदं वर्जयन्, अपत्ययिकम्=अपतीति परिहरन् भगवान् मन्द पराक्रमते=  
पार्श्वभागत शनैर्गच्छतिस्म । तथा अर्हिसन्=कुन्थुप्रभृतीनिपि जन्तून् अपीडयन्  
प्रासमन्वैपीत्=एषणाशुद्ध्या भिक्षार्थमटतिस्म ॥११॥१२॥

किञ्च—‘अवि सूइयं’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि सूइयं वा सुक्कं वा, सीयं पिंडं पुराणकुम्मासं ।

अदु बुक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविण् ॥१३॥

छाया—अपि सूचित वा शुक्क वा, शीतं पिण्डं पुराणकुल्मापम् ।

अथ बुक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिण्डे अलद्धे द्रविकः ॥ १३ ॥

टीका—अपि च—सूचितं=व्याघारितं हिङ्गुजीरकादिना संस्कृत व्यञ्जना-  
दियुक्तं तक्रादौ निक्षिप्तं मुद्रचणकादिचटकानि ‘दहीवडा’ इति भाषा-

अर्थी विलाव, और कुत्ता आदिको देख कर भगवान् इन किसीको विघ्न  
नहीं करते हुए यत्नापूर्वक धीरे २ निकल जाते । उनके चलनेसे कुन्थु  
आदि सूक्ष्म जीवों तकको भी कोई कष्ट न पहुँचता ॥११-१२॥

और भी—‘अवि सूइयं’ इत्यादि ।

भगवान् को भिक्षा निमित्त जाते समय जो भी गृहस्थोंके यहां  
शुद्ध निर्दोष आहार मिल जाता था, वे उसे ही ले लेते, चाहे वह बिल-  
कुल रूक्ष भी क्यों न हो । हींग और जीरे आदिसे संस्कृत, व्यञ्जनादि  
से युक्त एव तक्र-छांछमें पड़े हुए, मूग और चना आदिकी  
गीली दालको घांट तैलमें तल कर तयार किये पदार्थका नाम सूचित है।  
भाषामें इसे “दहीवडा” कहते हैं । सूचित पदसे राईता, करम्बा

आनी अडेल आडाल, तेमज दुधनी बोषी पीलाडी, कुतरा वगेरेने जेई लगवान  
जे डोईने विघ्नरूप न थता यतनापूर्वक धीरे धीरे नीकणी जाता जेमना आलवाधी  
कुथवा डे डीडी, मडोडी वगेरे सूक्ष्म एवेने पणु डोई कण्ट थतु नई। (११-१२)

इरी—‘अवि सूइयं’ इत्यादि

लगवाने भिक्षा निमित्त जवाना समये जे पणु गृहस्थेने त्या शुद्ध निर्दोष  
आहार भणी जाता तेने अडणु करता, आडे ते पीलकुल रूक्ष पणु डेम न डोय  
डींग अने एउ वगेरेथी वधारेशा व्यञ्जनादिथी युक्त जेमज तक्र-छासमा  
पडेला भग अने चणानी हाणने लीजवी वाटी तैथार ठरवाभा आवेला पदार्थनु  
नाम सूचित छे भाषामा जेने “दहीवडा” कडेपामा आवे छे, सूचित-पदधी

प्रसिद्धं, करम्बादिकं वा, 'रार्द्धा' इति मापाप्रसिद्धं वा, तथा-शुष्कं वा मर्मितचणकादिकं, तथा वीतं=पर्युषितं वा पिण्डम्=आहारम् तथा पुराणकुर्मार्गं=पुरातनमापकुर्मार्गादि बहुदिवससिद्धस्थितकुर्मार्गमित्यन्ये। अथ-शुष्कं वा नीरस-धान्यैर्दानं वा, यद्वा-पुरातनसक्तुपिण्डं वा, तथा पुलाकं वा=यषधानादिकं 'जषधानी' इति मापाप्रसिद्धं सन्ध्या, तथाऽन्यस्मिन्नपि निर्दोषि पिण्डे=सम्भेऽप्यलम्भे वा शक्ति एव=संयममना पद्यासीत्। अयं भावः-सम्भे सति ययासम्भपुंषित-

भावि भी लिय जाते हैं। सुजे हुए चने आदि अलम्का नाम शुष्क है। पर्युषित (पासी), आहार-चील और पुरानी उड़वकी दाल तथा कुलभी भाविको कहते हैं। नीरस धान्यके चाबल अथवा पुराना सफसुपिण्ड-शुष्क, और यष-धान भाविक जिसे भापामें 'जषकी घाणी' कहते हैं और वही पुलाक कहलता है। आहारमें प्रसुको दहीबड़ा आदि पदार्थ मिल जावे तो कोई हर्ष नहीं और सुजे हुए चने आदि शुष्क पदार्थ मिल जावें तो कोई शोक नहीं। इनके अतिरिक्त और भी चाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि यह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रसु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर लेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह छे छेते थे। नहीं मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें समभाव रखते थे। मिलने पर वे उस गृहस्थकी अथवा उस गाँवकी प्रशंसा नहीं करते

राज्या करवा विजेरे पञ्च देवास छे शेकेला यथा वीरे अजनु नाम शुष्क छे. पर्युषित (वासी) आकारने, दाही अने लुनी अरुइनी दान अने इषधी वजेरेने कुर्माप कडे छे नीरस धान्या भोज्या, अथवा बीजा वषतधी अन्ववेला अक्षुपि क-शुष्क, अने यषधान वारे, वेने भाषामां "जषनी घाणी कडे छे अनेच पुलाक कडे छे आकारमां प्रसुने इहीपदा वीरे भणी अथ तो हर्ष नहीं अने शेकेला यथा वजेरे शुष्क पदार्थ भजे तो हार्थ शोक नहीं आनधी भील अतने हार्थ पञ्च पदार्थ कडे भजे पञ्च ने निर्दोष अने शुद्ध होव तो प्रसु अने पोताना आकार माटे अक्षु करी बेता शुद्ध अने निर्दोष जेवे हार्थ पञ्च पदार्थ प्रसु पोताना आकार माटे अक्षु करी बेता, न भगवाधी पञ्च अथमधी पोताना भन्ने अक्षित वच न देता आकार भजे तो डीक न भजे तो डीक आ रीत अन्नेमा अन्वया सभवा. भगवाधी तेअे आधनार

मूषिकारिं=दुग्धार्थिनं माज्जरं, अपि च कुकुरं=धानं वा पुरतः अग्रे स्थितं दृष्ट्वा  
तेषां वृत्तिच्छेदं वर्जयन्, अपरत्ययिः=अप्रतीतिं परिहरन् भगवान् मन्द पराक्रमते=  
पार्थभागतं शनैर्गच्छतिस्म । तथा अहिंसन्=कुन्धुप्रभृतीनापि जन्तून् अपीडयन्  
ग्रासमन्वैपीत्=एषणाशुद्ध्या भिक्षार्थमटतिस्म ॥११॥१२॥

किञ्च—‘अवि सूइय’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि सूइयं वा सुवकं वा, सीयं पिंडं पुराणकुम्भासं ।

अदु बुवकसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविण् ॥१३॥

छाया—अपि सूचितं वा शुष्कं वा, शीतं पिण्डं पुराणकुम्भापम् ।

अथ बुवकसं पुलागं वा, लद्धे पिण्डे अलद्धे द्रविकः ॥ १३ ॥

टीका—अपि च—सूचितं=व्याघारितं द्विद्गुजीरकादिना संस्कृतं व्यञ्जना-  
दियुक्तं तक्रादौ निक्षिप्तं मुद्रचणकादिवटक्रानं ‘दहीबडा’ इति भाषा-

अर्थी विलाय, और कुत्ता आदिको देख कर भगवान् इन किसीको विघ्न  
नहीं करते हुए घटनापूर्वक धीरे २ निकल जाते । उनके चलनेसे कुन्धु  
आदि सूक्ष्म जीवों तकको भी कोई कष्ट न पहुँचता ॥११-१२॥

और भी—‘अवि सूइय’ इत्यादि ।

भगवान् को भिक्षा निमित्त जाते समय जो भी गृहस्थोंके यहाँ  
शुद्ध निर्दोष आहार मिल जाता था, वे उसे ही ले लेते, चाहे वह विल-  
कुल रूक्ष भी क्यों न हो । हींग और जीरे आदिसे संस्कृत, व्यञ्जनादि  
से युक्त एवं तक्र-छांछमें पडे हुए, मूग और चना आदिकी  
गीली दालको बाँट तैलमे तल कर तयार किये पदार्थका नाम सूचित है।  
भाषामें इसे “दहीबडा” कहते हैं । सूचित पदसे राईता, करम्बा

आवी अडेस आडास, तेमज दुधनी डोषी भीलाडी, कुतरा वगेरेने जेठ भगवान  
जे डोईने विघ्नइय न थता यतनापूर्वक धीरे धीरे नीकणी जाता जेमना आलवाधी  
कुथवा डे डीडी, नडेडी वगेरे सूक्ष्म एवने पणु डोई कष्ट थतु नही. (११-१२)

इती—‘अवि सूइय’ इत्यादि

भगवाने भिक्षा निमित्त जाताना समये जे पणु गृहस्थाने त्या शुद्ध निर्दोष  
आहार मणी जाता तेने अडणु करता, आडे ते ओलकुल रूक्ष पणु डेम न डोय  
हींग अने एइ वगेरेथी वघारेला व्यञ्जनादिथी युक्त जेमज तक्र-छासमा  
पडेला भग अने अणुानी हाणने एीजवी वाटी तयार करवामा आवेला पदार्थतु  
नाम सूचित छे भाषामा जेने “दहीबडा” कडेवामा आवे छे, सूचित-पदथी



प्रसिद्धं, करम्बादिकं वा, 'रार्द्धता' इति मापाप्रसिद्धं वा, तथा-शुष्कं वा  
 मर्मितचक्रादिकं, तथा शीतं=पर्युषितं वा पिण्डम्=आहारम्, तथा पुरातनमापं=  
 पुरातनमापकुस्रयादि बहुविधससिद्धस्थितकुन्माषमित्यन्य। अथ-शुष्कं वा नीरस-  
 धान्यौदनं वा, यद्वा-पुरातनसक्तुपिण्डं वा, तथा पुलाकं वा=यवधानादिकं 'जवषाणी'  
 इति मापाप्रसिद्धं सम्भवा, तथाऽन्यम्मिमपि निर्दोषि पिण्डे=सम्भेऽप्यसम्भे वा  
 शक्ति एव=संयममना एवासीत्। अयं भाष-सम्भे सति यवाम्भपपर्युषित

भादि भी लिये जाते हैं। मूजे हुए चने आदि अन्नका नाम शुष्क है पर्युषित  
 (भासी), आहार-दीत और पुरानी उखदकी दाल तथा कुलपी आदिको  
 कहते हैं। नीरस धान्यके चावल अथवा पुराना सक्तुपिण्ड-शुष्कस, और यव  
 धान आदिक जिसे भाषामें 'जवकी घाणी' कहते हैं और वही पुलाक  
 कहलता है। आहारमें प्रभुको वहीचड़ा आदि पदार्थ मिल जावे तो कोई  
 हर्ष नहीं और मूजे हुए चने आदि शुष्क पदार्थ मिल जावे तो कोई शोक  
 नहीं। इनके अतिरिक्त और भी चाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि  
 वह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रभु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर  
 छेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह छे छेते थे। नहीं  
 मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार  
 मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें समभाष रखते  
 थे। मिलने पर वे उस गृहस्थकी अथवा उस गाँवकी प्रशंसा नहीं करते

राशता, करवा विवेरे पशु लेवाप उ शेकेला बलु वीरे अतनु नाम  
 शुष्क उ. पर्युषित (वासी) अकारने, यदी चने लुनी अदानी दान अने  
 कणधी वगेरेने प्रभाष कडे उ नीरस धान-धान्य शेषा, अथवा बाजा वधतथो  
 बनावेला अक्तुपिण्ड-शुष्कस, अने यवधान वगेरे केने भाषामा "अपनी  
 पापी कडे उ अनेच पुलाक कडे उ आकारमा प्रभुने इदीपदां वगेरे मणी  
 अथ तो हर्ष नहीं अने शेकेला बलु वगेरे शु क पदार्थ मजे तो कर्ष शोक नहीं।  
 आनाधी वीलु अतनु कर्ष पशु पदार्थ अडे मजे पशु ने निर्दोष अने शुद्ध  
 केष तो प्रभु अने पोताना आकार माटे अदपु करी लेता शुद्ध अने निर्दोष  
 जेवे कर्ष पशु पदार्थ प्रभु पोताना आकार माटे अदपु करी लेता, न भगवाधी  
 पशु अथमधी पोताना मनने अलित बवा न देता आकार मजे तो की न  
 मजे तो की अ शीत अनेमां अमभाष अथवा भगवाधी तेजे अथपार

मन्तप्रान्तादिक निर्दोषमशनादिकं रागद्वेषरहितः सन् शुद्धवृत्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिक  
गृहस्थमात्मान वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—‘अवि ज्ञाइ’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि ज्ञाइ से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुए ज्ञाणं ।

उद्धं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः ध्यानम् ।

उर्ध्वमघस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च—स महावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुटुकगोदोहिकावीरा-  
सनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा-अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषा-  
दिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्ति प्रेक्षमाणः=भावयन् उर्ध्वमघस्तिर्यक्=लोक  
और नहीं मिलने पर अपनी एव गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं  
करते, समभाव घन अपने संयममार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अवि ज्ञाइ’ इत्यादि ।

वे भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन  
एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें  
तल्लीन होते । ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता । मुख नेत्र  
आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती ।  
शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं  
मिलती । सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते । ध्यानमें वे  
उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

गृहस्थनी अथवा जे गामनी प्रसशा न करता, अने न भगता पोतानी के,  
न आपनार गृहस्थनी अथवा जे गामनी निन्दा न करता समभावधी सयम  
भार्गमा ऐकचित्त रहेता (१३)

दूसरी पद्य—‘अवि ज्ञाइ’ इत्यादि

भगवान् महावीर, उत्कुटुक ( उकडु ) आसन, गोदाहिकाआसन,  
अने वीरासन, आमाना कौछ अके आसनधी विराजमान थछ ध्यानमां तल्लीन  
रहेता ध्यान करती वषते तेमनु शरीर निष्कंप रहेतु, मुख, नेत्र वगेरे कौछ  
पद्य अवयवनी हलन चलननी क्रिया यती नहीं शरीरनी शुश्रूषानी भावना  
ऐमनामा कही पद्य यती न छती सहा आत्मशान्तिनी ज भावना राषता  
ध्यानमा उर्ध्वलोक, मध्यलोक अने अधोलोक, आ त्रये लोकना स्वरूपना तथा

अपिपयकं ध्यानं=मीवानीवादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनित्यानित्यादिक्रमतया  
चिन्तनस्य ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

हिंज—'अकसाई' इत्यादि ।

मूढम्—अकसाई विगयगोही य, सहस्रवेसु अमुच्छिप हाइ ।

छउमरथोऽपि पराक्रममाणो, न पमाय सह पि कुण्विरथा ॥१५॥

छाया—अकसायी विगतगृदिभ शब्दरूपु अमूर्च्छितो ध्यायति ।

छद्यस्योऽपि पराक्रमणो न प्रमादं सहस्रप्यकार्यीत् ॥१५॥

टीका—अकसायी=श्लोपादिश्लोपापरहित, अत एव—विगतगृदि=

विषयाऽऽसक्तिरहितः, अत एव—शब्दरूपेषु=उपसर्गप्रकारेणात् शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु,

अमूर्च्छितः=ममत्वभावरहित सन ध्यायतिस्म तथा—छद्यस्योऽपि भगवान्

पराक्रममाणः=उपःसयमे विहरन् सन प्रमादं सहस्रपि=एकवारमपि नाक्षर्यीत्=न

इनक भीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और

पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥१४॥

और भी—'अकसाई' इत्यादि ।

श्लोच आदि कथापरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोर्मि

भासक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौष्टलिक गुणोंकी

ममतासे रहित हो कर ध्यायका अचलम्भन किया । यद्यपि भगवान् चार

ज्ञानके घाटी थे, अतः छद्यस्यावस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और

संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्होंने केवलज्ञानकी प्राप्ति

तक एक बार भी प्रमादका सेवम नहीं किया । जबसे दीक्षा धारण करी

ज्येनी अक्षर रहनेवाला रूप अने अलक्ष्य आदि पदार्थोंना द्रव्य शब्द अने पदार्थ

की अपेक्षाधी नित्य अने अनित्यरूप स्वरूपने विचार करता ॥१४॥

द्वितीय— अकसाई इत्यादि

श्लोच पक्षे छयाय परिशुद्धि रहित भगवान् महावीर विषयोर्मि

भासक्तिधी अने शब्द, रूप, अने अक्षर पक्षे पौष्टलिक गुणोंमा

ममताधी स्वीत रही ध्यानत अचलम्भन करता अने के भगवान् चार

ज्ञानना धारक कता आधी छद्यस्थ अवस्थाधां पदभात कता तो पक्ष तप अने

संयमधां घेतानी शक्तिनी स्फूर्ति करीने तेजोअने केवलज्ञाननी प्राप्ति सुधी अने

चार पक्ष प्रमाद सेभी नहीं अकारधी दीक्षा धारण करी त्पक्षे केवलज्ञान

सन्तप्रान्तादिकं निर्दोषमशनादिकं रागद्वेषरहितः सन् भुङ्क्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिकं गृहस्थमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—‘अवि झाइ’ इत्यादि।

मूलम्—अवि झाइ से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुए झाणं ।

उड्डं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः ध्यानम् ।

ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च—स गदावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुटुकगोदोहिकावीरासनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा—अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषादिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्तिं प्रेक्षमाणं=भावयन् ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्=लोक

और नहीं मिलने पर अपनी एव गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं करते, समभाव वन अपने सयममार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अवि झाइ’ इत्यादि ।

वे भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें तल्लीन होते । ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता । मुख नेत्र आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती । शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं मिलती । सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते । ध्यानमें वे ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

गृहस्थनी अथवा ये गामनी प्रसशा न करता, अने न भगता पोतानी के, न आपनार गृहस्थनी अथवा ये गामनी निन्दा न करता समभावधी सयम मार्गमा ऐकचित्त रहेता (१३)

इरी पद्य—‘अवि झाइ’ इत्यादि

भगवान् महावीर, उत्कुटुक ( उकडु ) आसन, गोदाहिकाआसन, अने वीरासन, आमाना केह ऐक आसनधी विराजमान थर्ध ध्यानमा तल्लीन रहेता ध्यान करती वर्धते तेमतु शरीर निष्कंप रहेतु, मुख, नेत्र वगेरे केह पद्य अवयवनी हलन चलननी क्रिया थती नही शरीरनी शुश्रूषानी भावना ऐभनामा कही पद्य थती न हती सदा आत्मशान्तिनी न भावना राधता ध्यानमा ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक अने अधोलोक, आ त्रेणे लोकना स्वरूपना तथा

अप्यपि यत्कं ध्यानं=भीवामीषादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनित्यान्तित्यादिरूपतया  
विन्तनस्मं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

छिन्न—'अकसाई' इत्यादि ।

मूम्—अकसाई विगयगोही य, सहरूपेसु अमुच्छिप झाइ ।

छउमस्थोऽविपरक्कममाणो, न पमाय सई पि कुब्बिस्था ॥१५॥

उपा—मन्मामी विगतदृदिभ शब्दरूपेषु अमूर्च्छितो ध्यायति ।

उपस्थोऽपि पराक्रमाणो न प्रमाई सच्छदप्यकार्पीत् ॥१५॥

टीका—अक्रपायी=कोषादिक्रपायरहित, अत एव—विगतदृदि=

स्वियाऽप्रकिरहित, अत एव—शब्दरूपेषु=उपसम्भार्यत्वात् शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु,

अमूर्च्छितः=ममत्वमावरहितः सन् ध्यायतिस्म तथा—छमस्थोऽपि भगवान्

पराक्रममाणः=उपसयमे विहरन् सन् प्रमाई सच्छदपि=एककारमपि नाकार्पीत्=न

इनक मीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और

पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥१४॥

और नी—'अकसाई' इत्यादि ।

कोष आदि कथायपरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोर्मे

प्रासक्तिके और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौत्रुलिक गुणोंकी

ममतासे रहित हो कर ध्यानका अबलम्बन किया । यद्यपि भगवान् चार

ज्ञानके घाटी से, अतः छद्मस्वावस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और

संयममें अपनी शक्तिकी स्मृति करते हुए उन्होंने केवलज्ञानकी प्राप्ति

तक एक बार भी प्रमात्का सेवम नहीं किया । जबसे दीक्षा धारण करी

जोगी अदर रहेनास लय अने अलय आदि पदार्थोंना द्रव्य अणु अने पथी

की अपेक्षाकी नित्य अने अनिद्रव्य स्वरूपने विचार करता (१४)

दरी पथ—'अकसाई' इत्यादि

कोष जैसे उपाय परिष्कृतिधी संकित अजवान महावीर विषयोर्मे

प्रासक्तिकी अने शब्द, रूप, अने उध वजरे पौत्रुलिक अणुमा

ममताधी स्वीत रही ध्याननु अबलम्बन करता अने के अजवान चार

ज्ञाननु धारके कृता आधी छद्मस्व अवस्थाभां वत भान कृता तो पणु तप अने

सकमभां पोतानी शक्तिनी स्मृति करीने तेकोको केवलज्ञाननी प्राप्ति सुधी जे-

वार पणु प्रमाइ सेवने नहीं आरधी दीक्षा धारणु करी तथाकी केवलज्ञान

७७

मन्तप्रान्तादिक निर्दोषमशनादिकं रागद्वेषरहितं सन् मुद्वक्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिक  
गृहस्थमात्मान वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—‘अवि झाइ’ इत्यादि।

मूलम्—अवि झाइ से महावीरे, आसणतथे अकुक्कुए झाणं ।

उड्डं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

श्याया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः व्यानम् ।

ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च—स गदावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुडुगोदोहिकावीरा-  
सनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा—अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषा-  
दिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्तिं प्रेक्षमाणः=भावयन् ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्=लोक

और नहीं मिलने पर अपनी एव गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं  
करते, समभाव वन अपने संघममार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अवि झाइ’ इत्यादि ।

वे भगवान् महावीर, उत्कुडुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन  
एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें  
तल्लीन होते । ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता । मुख नेत्र  
आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती ।  
शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं  
मिलती । सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते । ध्यानमें वे  
उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

गृहस्थनी अथवा ये गामनी प्रसशा न करता, अने न भणता पोतानी डे,  
न आपनार गृहस्थनी अथवा ये गामनी निन्दा न करता समभावधी संयम  
मार्गमा अकचित्त रहेता (१३)

इरी पद्य—‘अवि झाइ’ इत्यादि

भगवान् महावीर, उत्कुडुक ( उकडु ) आसन, गोदाहिकाआसन,  
अने वीरासन, आमाना केह अके आसनधी विशजमान थर ध्यानमा तल्लीन  
रहेता ध्यान करती वधते तेमनु शरीर निष्कंप रहेतु, मुख, नेत्र वगेरे केह  
पद्य अवयवनी हलन चलननी क्रिया थती नही, शरीरनी शुश्रूषानी भावना  
अभनमा कही पद्य थती न हती सदा आत्मशान्तिनी अ भावना राधता  
ध्यानमा उर्ध्वलोक, मध्यलोक अने अधोलोक, आ त्रहे लोकना स्वरूपना तथा

परया गणधरैस्तदीयचरितं सूत्ररूपं सप्रथितं, तदेव चाप्रोपधानभुताध्ययनं मुनीना-  
 षकारार्थं प्रवृत्तं, तस्मात्कथमपि नास्त्यत्र प्रदर्शापरकस्वरङ्गापसर इति, उक्तम्—

“सद्ये तित्थयरा खलु, नियचरियं जं क्खेति उचहाणे ।

गंधंति गणहरा व, तद्देव नो नूणमम्महिंयं ॥१॥ ” इति ।

प्राया—सर्प तीर्थकराः खलु, निश्चरितं यद्भवति उपनाम ।

प्रपन्नन्ति गणधरास्तव, तथैव नो न्यूनमन्यधिकम् ॥१॥ इति ।

इस प्रकारक तप और संयमकी अनुष्ठित प्रवृत्तिको सुनकर, अथवा जानकर  
 मुक्तिमार्गमें उत्साहशील पने और मुक्तिकर लाभ करते रहें, अतः समस्त  
 भागमों में गणधरोंने जो तीर्थक्षेत्रों के चरितका सूत्ररूपसे वर्णन किया है  
 वही इस उपधानभुत नामक अध्ययनमें अन्य मुनिजनोके उपकार निमित्त  
 चर्चित किया गया है—इसमें उनकी प्रशंसा की कल्पना करनेकी बात ही  
 कौन सी है, इस विषयमें उनकी प्रदर्शापरता की कल्पना करना बिल्कुल  
 निर्मूल ही है । कहा भी है—

“सद्ये तित्थयरा खलु, नियचरियं जं क्खेति उचहाणे ।

गंधंति गणहरा तं, तद्देव नो नूणमम्महिंयं ” ॥ १ ॥

यह भागमप्रसिद्ध बात है कि अपने-२ गणधरों के प्रति जो समस्त  
 तीर्थक्षेत्र अपने-२ चरितका कथन करते हैं, व गणधर उपधानमें उस  
 चरितका इसी रूपसे (न कम और न अधिक) प्रथन करते हैं ॥१॥

इसमें ही अनुष्ठित प्रवृत्तिने साक्षात्कीने अथवा आत्मीने मुक्तिमार्गमें उत्साहशील  
 पने अने मुक्तिमो लाभ करता रहे भागे समस्त आश्रमोंमें अनुष्ठितके ने  
 तीर्थक्षेत्रोंके चरितके सूत्ररूपसे वर्णन करेले छे ते अ उपधानभुत नामक  
 अध्ययनमें अन्य मुनिजनोके उपकार निमित्त वर्णन करेले छे आभा तेमनी  
 प्रशंसा करवानी बात अ क्या छे ? अ विषयमें तेमनी प्रशंसा अनेकी करवनी  
 इतनी बिलकुल निमु ग अ छे. उक्त पद्य छे—

“सद्ये तित्थयरा खलु, नियचरियं जं क्खेति उचहाणे ।

गंधंति गणहरा व तद्देव नो नूणमम्महिंयं ॥ १ ॥

अ आनमप्रसिद्ध बात छे के पोटपाठाना अनुष्ठितके समस्त तीर्थक्षेत्र  
 पोटपाठाना चरितके वर्णन करेले छे ते अनुष्ठित उपधानमें ते चरितके अ रूपसे  
 (न कम और न अधिक) प्रथन करेले छे. (१)

કૃતવાન્, દીક્ષાગ્રહણાનન્તરં યાવત્કેવલપર્યાયં પ્રાપ્તવાન્ તાન્નઠ્ઠસ્થાવન્ધ્યાયામપિ ભગવાન્ લેશતોઽપિ પ્રમાદં ન ચકારેતિ ભાવઃ ।

કેચિત્ત્વેવં વદન્તિ—एतद्वचन भगवतः प्रशंसापरं, परमार्थतो भगवान् पड्लेश्या-  
धारी प्रमादवान् संयमे स्वलित इति, तथा 'भगवान् चूके' इति भाषायामपि प्रल-  
पन्ति, तन्निर्मूलं प्रवलमोहोदयजनितकल्पनामात्रम्, आगमरहस्यानभिज्ञानात्,  
तथाहि—सर्वे तीर्थङ्कराः स्वस्वगणधरेभ्यः स्वयमनुष्ठितं तपःसयमविधिं कथयन्ति—यद-  
न्येऽपि मोक्षाभिलाषिणः सोत्साहमनुष्ठाय मोक्षपदं प्रयान्तु—इति सर्वस्मिन्नागमेऽपि पर-  
तवसे केवलज्ञान प्राप्त होनेकी अवस्था तक उन्होंने अपनी छद्मस्थाव-  
स्थामें भी कभी भी प्रमादको अंगतः भी अपने पास तक नहीं आनेदिया ।

कोई २ इस गाथाके “सकृदपि प्रमाद नाकार्षीत्” इस वचन  
को केवल भगवान् की प्रशंसापरक ही मानते हैं । प्रशंसा प्राय  
वस्तुस्थितिसे रिक्त होनी है । उसका कारण वे यह बतलाते हैं कि “भग-  
वान् पड्लेश्याधारी थे, तथा प्रमादसहित और सयमसे भी स्वलित-  
च्युत थे, इसी लिये वे लोग “भगवान् चूके” ऐसा कह दिया करते हैं”  
सो उनका इस प्रकारका कथन निर्मूल है—सत्यसे रहित है । मालूम  
होता है कि इस प्रकारकी कल्पना करनेवाले व्यक्तिको आगमका रहस्य  
ज्ञात नहीं है कि समस्त तीर्थङ्कर अपने द्वारा अनुष्ठित तप और सयम  
की विधिको अपने २ गणधरोसे कहते हैं । इस प्रकारके कथन करनेका  
उनका उद्देश सिर्फ यही होता है कि अन्य मोक्षाभिलाषी मुनि भी उनके

પ્રાપ્ત થવાની અવસ્થા સુધી તેઓએ પોતાની છદ્મસ્થ અવસ્થામાં પણ કોઈ  
વખત પ્રમાદને અશ પણ પોતાની પાસે આવવા દીધો નથી

કોઈ કોઈ આ ગાથાના “સકૃદપિ પ્રમાદ નાકાર્ષીત્” આ વચનને કેવળ  
ભગવાનની પ્રશંસાપરકજ માને છે પ્રશંસા પ્રાય વસ્તુસ્થિતિથી રિક્ત હોય  
છે એનું કારણ પણ આ બતાવે છે કે ભગવાન છલેશ્યાધારી હતા, પ્રમાદ-  
સહિત અને સયમથી પણ ચ્યુત હતા આ કારણે તે લોકો “ભગવાન ચૂક્યા” એવું  
કહ્યા કરે છે” તેઓનું આ પ્રકારનું કહેવું નિર્મૂળ છે—સત્યથી રહિત છે માત્ર  
પડે છે કે આ પ્રકારની કલ્પના કરવાવાળા માણસોને આગમનું આ રહસ્ય જાણ-  
વામાં આવ્યું નથી કે સમસ્ત તીર્થ કર પોતાના દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ અને સયમની  
વિધિને પોતપોતાના ગણધરોને કહે છે, આ પ્રકારનું કથન કરવાનો ઉદ્દેશ ફક્ત  
એજ છે એ કે બીજા મોક્ષાભિલાષી મુનિ પણ તેમના આ પ્રકારના તપ અને



परया गणधरैस्तदीयपरितं सूत्ररूपेण सम्रथितं, तदेव चाप्रोपधानभुताप्ययनं मुनीना  
 वृषकारार्थं प्रवृत्तं, तस्मात्कथमपि नास्त्यत्र प्रदर्शसापरकत्वं शक्यतावसर इति, उक्तम्—

“सद्ये तित्थयरा स्सु, नियपरियं अं क्खेति उवहाणे ।

गर्भति गणहरा व, त्थेव नो नूणमग्गहिंयं ॥१॥ ” इति ।

जया—सर्वे तीर्थकराः सन्तु, निजपरितं यद्भवति उपधाने ।

ग्रथन्ति गणधरास्तत्, तथैव ना न्यूनमग्गधिक्कम् ॥१॥ इति ।

इस प्रकारके तप और संयमकी अनुष्ठित प्रवृत्तिको सुनकर, अथवा जानकर  
 मुक्तिमार्गमें उत्साहशील होने और मुक्तिका लाभ करते रहें, अतः समस्त  
 भागमों में गणधरोंने जो तीर्थहूतोंके चरितकर सूत्ररूपसे वर्णन किया है  
 वही इस उपधानभूत नामक अध्ययनमें अन्य मुनिजनोंके उपकार निमित्त  
 वर्णित किया गया है—इसमें उनकी प्रशंसा की कल्पना करनेकी बात ही  
 कौन सी है, इस विषयमें उनकी प्रदर्शसापरता की कल्पना करना पिलकुल  
 निर्मूल ही है । कहा भी है—

“सद्ये तित्थयरा स्सु, नियपरियं अ क्खेति उवहाणे ।

गर्भति गणहरा तं, त्थेव नो नूणमग्गहिंयं ” ॥ १ ॥

यह भागमप्रसिद्ध बात है कि अपनरे गणधरों के प्रति जो समस्त  
 तीर्थहूत अपने २ चरितका कथन करते हैं, व गणधर उपधानमें उस  
 चरितका उसी रूपसे (न कम और न अधिक) प्रथन करते हैं ॥१॥

सबमनी अनुष्ठित प्रवृत्तिने साक्षणीने अथवा व्यक्तीने मुक्तिमार्गमें उत्साहशील  
 होने अने मुक्तिनो लाभ करता रहे, भागे समस्त आनयिमां जयधारीने ने  
 तीर्थहूतना चरितकर सूत्ररूपे वर्णन करे व ते अत उपधानभूत नामना  
 अध्ययनना अन्य मुनिजनोंना उपकार निमित्त वर्णन करे व अथमां तेमनी  
 प्रशंसा करवानी बात व कहा है । आ विषयमां तेमनी प्रशंसा अनेनी करवना  
 कस्वी पीलकुल निरुत्त व है अतु पय है—

“सद्ये तित्थयरा स्सु, नियपरियं अ क्खेति उवहाणे ।

गर्भति गणहरा व त्थेव नो नूणमग्गहिंयं ॥ १ ॥

आ आनमप्रसिद्ध बात है कि प्रेतपाताना जयधारी पासे समस्त तीर्थकर  
 प्रेतपाताना चरितकर कथन करे व ते जयधर उपधानमां ते चरितनु अने व इच्छी  
 (न अने न वधारे) प्रथन करे व (१)

ભાવતઃ પદ્મલેશ્યાપ્તુ તુ ભગવતઃ કૃપમપિ ન સંભવતિ, ધર્મપ્રકૃતિકસ્ય તસ્ય ધર્મલેશ્યામાત્રસદ્ભાવાત્, ધર્મલેશ્યા હિ તિસ્રઃ સન્તિ, તથા ચોક્તમ્—“ તેઽપમ્હા મુક્તા, તિન્નિ ઇયાઓ ધમ્મલેસ્સાઓ । ” ઇતિ । અધર્મસ્ય તુ તત્ર લેશતોઽપિ શદ્ધા નાસ્તિ, અસ્મિન્નેવોદ્દેશકે—

“ ગચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ણ કારિત્થા, કીરંત પિ નાણુજાણિત્થા (૧-૮) ” ॥

ઇત્યષ્ટમગાથાયા ભગવતા ન સ્વયં પાપં કૃત, નાન્યૈઃ કારિત, કુર્વન્તમન્ય પ્રતિ નાનુમોદિતમિત્યેવં ત્રિરુરુણત્રિયોગૈર્ભગવતઃ પાપસમ્બન્ધાભાવો વ્રોધિતઃ । એવં ચ તસ્મિન્નધર્મલેશ્યાત્રયસ્ય સ્થાનં નોપપદ્યતે ।

યહ જો કહા ગયા ઠૈ કિ ભગવાન છહ લેશ્યાવાલે યે સો ધી કથન યુક્તિસંગત નહીં ઠૈ, કારણ કિ સ્વભાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રભુકે સિર્ફ ધર્મલેશ્યા માત્રકા હી સદ્ભાવ હોતા ઠૈ, પાપલેશ્યાકા નહીં । તેજ, પદ્મ ઓર શુક્લ, યે તીન લેશ્યા ધર્મલેશ્યા કહી જાતી હૈ કૃષ્ણ, નીલ ઓર કાપોત, યે અધર્મલેશ્યા ( પાપલેશ્યા ) હૈ । ઇન અધર્મલેશ્યાઓકા તો વહાં અંશતઃ ધી સદ્ભાવ નહીં પાયા જાતા ઠૈ, ક્યો કિ હસી ઉદ્દેશમે—

“ ગચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતપિ નાણુજાણિત્થા ” ॥ ( ૧-૮ )

હસ આઠવીં ગાથા દ્વારા યહી વાત સ્પષ્ટ કી ગઈ ઠૈ કિ—જવ ભગવાનને સ્વય કમી પાપ નહીં કિયા ઓર ન દૂસરોસે હી કરાયા, તથા કરનેવાલોં કી અનુમોદના ધી નહીં કી, હસ પ્રકાર વે તીન કરણ ઓર

આ જે કહેવાયુ છે કે ભગવાન છ લેશ્યાવાળા હતા તે પણ કહેવુ યુક્તિસંગત નથી, કારણ કે સ્વભાવત ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રભુને કૃત ધર્મલેશ્યા માત્રનો જ સદ્ભાવ હોય છે, પાપ-લેશ્યાનો નહીં તેજ, પદ્મ, અને શુક્લ, આ ત્રણ લેશ્યાઓ ધર્મલેશ્યા કહેવાય છે કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેશ્યા ( પાપ-લેશ્યા ) છે એ અધર્મ-લેશ્યાઓનો ત્યા લેશ માત્ર પણ સદ્ભાવ દેખવામા આવતો નથી. કેમકે એ જ ઉદ્દેશમા—

“ ગચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતપિ નાણુજાણિત્થા ॥ ” ( ૧-૮ )

આ આઠવી ગાથા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે જ્યારે ભગવાને પોતે કહી પાપ કરેલ નથી, અને ન બીજાથી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પણ આપ્યુ નથી આ પ્રકારે જ્યારે તેઓ તીન કરણ અને ત્રણ યોગથી પાપના

‘प्रमादवशेन संयमे स्तस्मिन्’ इत्यपि तेषां कथनान्मत्तप्रलयनम्, “छन्दमत्थो वि परकममाणो न पमायं स्रष्टि कृष्विस्था” इति यदत्र गाथायां सुस्पष्टं वचनं येषां दृष्टिषु नारोहति ते प्रयत्नमोहान्वाः सम्पद्दृष्टिर्निर्वयनीया इत्यस्य विस्तरेण ॥१५॥

तीन योगसे पापके त्यागी रहें तो फिर उनमें पापका ( पापछेदयाजोका ) सम्बन्ध कल्पित करना बिलकुल मूर्खतापूर्ण है, इस लिये यह बात अवश्य-माननी चाहिये कि भगवानमें अधर्मछेदयाके लिये किञ्चिन्मात्र भी स्थान घटित नहीं होता है ।

तथा ‘भगवान् ब्रूके’ इस प्रकार कह कर जो यह बात सिद्ध करना चाहते हैं कि ‘भगवान् प्रमादके वशसे संयमसे स्तस्मिन् भुप हैं’ यह भी कथन एकतरह उन्मत्तका प्रत्यापन जैसा ही है, क्योंकि “छन्दमत्थो वि परकममाणो न पमायं स्रष्टि कृष्विस्था” मालूम होता है यह आगम वचन उनकी दृष्टिमें नहीं आया है, नहीं तो वे इस प्रकारका स्पर्ध प्रत्यापन नहीं करते । इसको जान बूझकर भी जो अपनी दृष्ट्याहिता नहीं छोडे तो उनके लिये हम क्या कहें—येसे जीब प्रयत्न मोहसे ही भ्रम बने हुए हैं, जो जान-बूझकर भी वास्तविक वस्तुस्थितिसे अज्ञान हो रहे हैं, ऐसे जीवों पर सम्पद्दृष्टि जीब केवल व्याके सिवाय और क्या अपनी ओर से प्रकट कर सकते हैं । अथ इस विषयमें और अधिक कहने की जरूरत नहीं है ॥१५॥

त्यागी रहा तो पक्षी तेमनाभा पापवैश्याजोने स ज प कल्पित करेवे ते जीवकुल भूषतापुषु छे आ माटे जे वात अवश्य भागवी जोड जे के अजवानमा ज प भदिरथा माटे वशासपुषुके स्थान व कल्पित नथी.

“ भगवान् ब्रूयात् आ प्रकारेण कर्माने के जे वात सिद्ध करेवा छिडे के अजवान प्रमादवशशी स यमधी रणितिव यथा छे आ छेडु पक्षु जेके तरेकना छे भादने प्रत्यापन छे केमके—“ छन्दमत्थो वि परकममाणो न पमायं स्रष्टि कृष्विस्था मालूम थाय छे के आयुं आ प्रमत्त वचन तेनी द्रष्टीमा आबु नथी, नकी तो ते आ प्रकारने अध प्रत्यापन करत आबी शीते अवस्था पक्षी पक्षु के पोतानी कथनकता न छिडेते तेने माटे छेडवानुं गु डोष ? जेवा एव प्रजग मोहधी ज प भनेव छे के वाणीपुछने पक्षु वास्तविक वस्तुस्थितिधी अवापु रहे छे. जेवा एवे उपर सम्यग्दृष्टी एव केवज तथा सिवाय पातन्य तराधी जीवु गु करी थडे ? एवे आ विषयमा अधिक छेडवानी जरूरत नथी. (१५)

ભાવતઃ પદ્મલેશ્યાવત્ત્વં તુ ભગવતઃ રુધમપિ ન સંભવતિ, ધર્મપ્રકૃતિકસ્ય તસ્ય ધર્મલેશ્યામાત્રસદ્ભાવાત્, ધર્મલેશ્યા દિ તિસ્રઃ સન્તિ, તથા ચોક્તમ્—“ તેઽ પમ્હા સુકા, તિન્નિ ઇયાઓ ધમ્મલેસ્સાઓ । ” ઇતિ । અધર્મસ્ય તુ તત્ત્વ લેશતોઽપિ શદ્ધા નાસ્તિ, અસ્મિન્નવોદેશકે—

“ ગચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ણ કારિત્થા, કીરંતં પિ નાણુજાણિત્થા (૯-૮) ” ॥

ઇત્યષ્ટમગાથાયા ભગવતા ન સ્વયં પાપ કૃત, નાન્યૈઃ કારિત, કુર્વન્તમન્ય પ્રતિ નાનુમોદિતમિત્યેવ ત્રિકરણત્રિયોગૈર્ભગવતઃ પાપસમ્બન્ધાભાવો વૉધિતઃ । एवं च तस्मिन्नधर्मलेश्यात्रयस्य स्थानं नोपपद्यते ।

યહ જો કહ્યા ગયા છે કે ભગવાન છદ્ધ લેશ્યાવાલે થે સો મી કથન યુક્તિસંગત નહીં છે, કારણ કિ સ્વભાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રમુકે સિર્ફ ધર્મલેશ્યા માત્રકા હી સદ્ભાવ હોતા છે, પાપલેશ્યાકા નહીં । તેજ, પદ્મ ઓર શુકલ, યે તીન લેશ્યાઈ ધર્મલેશ્યા કહી જાતી છે કૃષ્ણ, નીલ ઓર કાપોત, યે અધર્મલેશ્યા ( પાપલેશ્યા ) છે । इन अधर्मलेश्याओंका तो वहां अंशतः भी सद्भाव नहीं पाया जाता है, क्योंकि इसी उद्देशमें—

“ ગચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતપિ નાણુજાણિત્થા ” ॥ ( ૯-૮ )

હસ આઠવીં ગાથા દ્વારા યહી વાત સ્પષ્ટ કી ગઈ છે કિ—જવ ભગવાનને સ્વયં કમી પાપ નહીં કિયા ઓર ન દૂસરોંસે હી કરાયા, તથા કરનેવાલોં કી અનુમોદના મી નહીં કી, હસ પ્રકાર વે તીન કરણ ઓર

આ એ કહેવાયુ છે કે ભગવાન છ લેશ્યાવાળા હતા તે પણ કહેલુ યુક્તિસંગત નથી, કારણ કે સ્વભાવત ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રમુને કૃત ધર્મલેશ્યા માત્રનો જ સદ્ભાવ હોય છે, પાપ-લેશ્યાનો નહીં તેજ, પદ્મ, અને શુકલ, આ ત્રણ લેશ્યાઓ ધર્મલેશ્યા કહેવાય છે કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેશ્યા ( પાપ-લેશ્યા ) છે એ અધર્મ-લેશ્યાઓનો ત્યા લેશ માત્ર પણ સદ્ભાવ દેખવામા આવતો નથી. કેમકે એ જ ઉદ્દેશમા—

“ ગચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતપિ નાણુજાણિત્થા ॥ ” ( ૯-૮ )

આ આઠમી ગાથા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે જ્યોરે ભગવાને પોતે કહી પાપ કરેલ નથી, અને ન બીજાથી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પણ આપ્યુ નથી આ પ્રકારે જ્યોરે તેઓ તીન કરણ અને ત્રણ યોગથી પાપના

उक्तम्—

“आदित्यादिर्विबुधपितरः सारमस्यां त्रिलोक्याः—  
मास्कन्दन्त पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वामुवाच।  
तीर्थं नाथाऽलघुमवमयच्छेदि तूर्णं निवृत्तये,—  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥१॥” इति।

तीर्थं यत्तीर्थं कर्म प्रवृत्तोऽभूदिति त्वं पितृमाह—‘आत्मज्ञोप्या’ कर्मणः  
क्षयोपशमाहुपशमाह सयाभ्यस्तमनः श्रोषिस्तया, आयतयोगं—सुप्रधिधानपुक्तमनो-

“आदित्यादिर्विबुधपितरः सारमस्यां त्रिलोक्याः—  
मास्कन्दन्त पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वामुवाच।  
तीर्थं नाथाऽलघुमवमयच्छेदि तूर्णं निवृत्तये,—  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव,  
अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिवपद—भोक्तपदको प्राप्त करने  
के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि  
—“ हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेयासे तीर्थकी आप  
शोध स्थापना कर ” यह उनकी प्रार्थना आपके लिय निवेदनमात्र है,  
क्यों कि आप तो स्वयंभुद्द हैं । उन देवोंका यह केवल परम्परागत  
साधार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्र्यमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशाम, उपशाम और सर्वथा

“आदित्यादिर्विबुधपितरः सारमस्यां त्रिलोक्याः,  
मास्कन्दन्त पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वामुवाच।  
तीर्थं नाथाऽलघुमवमयच्छेदि तूर्णं निवृत्तये,  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव अनु-  
पम होने लगे होकर आत्भूत जेव शिवपद—भोक्तपद—ने प्राप्त करवा आने  
उद्यत—तेवहार कयेव आरपी यासे आनीने आ प्रकारे प्रार्थना करे छे के— हे  
नाथ ! आ संसाररूपी महाभयने नष्ट करवायात्र त्वंकी आप शोध स्थापना  
करे ॥ आ प्रकारकी तेजोनी प्राधान आपने माटे निवेदनमात्र छे केभके  
आप तो स्वयंभुद्द छे ते देवोंने आ केवग परंपरागत आकार छे (१)

भगवान् पीतान् चारित्र्यमोहनीयरूप कर्मना क्षयोपशाम, उपशाम अने

किञ्च—'सयमेव' इत्यादि।

मूलम्—सयमेव अभिसमागम्य, आयतजोगमायसोर्हीण ।

अभिनिवृत्ते अमाइह्ये, आवकहं भगवं समियासी ॥१६॥

छाया—स्वयमेवाभिसमागम्य आयतयोगमात्मशोध्य ।

अभिनिवृत्तः अमायावी यावत्कथं भगवान् समित आसीत् ॥१८॥

टीका—अमायावी=मायारहितः भगवान् स्वयमेव=आत्मनैव, अभिसमागम्य=संसारस्वरूप विदित्वा स्वयंबुद्ध सन् तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्यतो बभूवेत्यर्थः । यद्यपि भगवान् स्वयमेव तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्युक्त आसीत् तथापि लोकान्तिका देवा भगवदन्तिकं समागत्य परम्परागताचारमालम्ब्य भगवन्त तीर्थप्रवर्तनाय प्रार्थयामासुः ।

और भी—'सयमेव' इत्यादि ।

मायाचारीकी प्रवृत्तिसे सर्वथा रहित भगवान् महावीरने अपने आप ही इस संसारका स्वरूप 'मली'भांति जान कर परित्याग किया, उन्होंने 'संसारकी' असारताका पाठ किसी दूसरेके पाससे नहीं सीखा, क्यों कि तीर्थङ्कर स्वयंबुद्ध होते हैं । सांसारिक असारताके चित्तमें चढ़ने पर दीक्षाके भाव होते ही लोकान्तिक देवोंका शीघ्र ही आगमन होता है । ये आ कर तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हैं । यद्यपि भगवान् तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये पहिलेसे ही तय्यार रहते हैं, फिर भी लोकान्तिक देवोंका ऐसा ही परम्परागत नियोग-आचार-है कि प्रभु जब दीक्षा लेनेके लिये उद्यत होते हैं तब ये आ कर अपने परम्परागत इस नियोग की पूर्ति करते हैं । कहा भी है—

इसी पद्य—'सयमेव' इत्यादि

मायाचारीनी प्रवृत्तिथी सर्वथा रहित भगवान् महावीरे चोतानी जाते आ संसारनु स्वरूप जली-जातिथी जलुी परित्याग करी तेओओ संसारनी असारतानेर पाठ भीज केड पासेथी शीघेर न डता केमके तीर्थ कर स्वयंबुद्ध होथे छे सासारिक असारता चित्तमा चडता दीक्षाना भाव यता न लोकान्तिक देवानु शीघ्र आगमन थाथ छे ओ आवीने प्रभुथी तीर्थ-प्रवृत्ति करवा माटे प्रार्थना करे छे जे के भगवान् तीर्थप्रवृत्ति करवा माटे पहिलेथी न तय्यार रहे छे तो पद्य लोकान्तिक देवानो ओवो परम्परागत नियोग-आचार-छेके प्रभुन्यारे दीक्षा लेवा माटे उद्यत होथे छे त्यारे ते आवीने चोतानी परम्परागत आ नियोगनी पूर्ति करे छे कहुं पद्य छे—

उक्तम्—

“आदित्यादिर्विबुधभिस्तरः सारमस्यां त्रिलोक्या,  
मास्कन्दन्त पद्मनुपमं यच्छिष्यं त्वाप्तुवाच।  
वीर्यं नाथाऽलक्ष्मणमवयच्छेदि तूर्णं विचस्त्वे,  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥१॥” इति।

वीर्यमवर्तनार्थं कथं प्रवृत्तोऽभूदिति दर्शयितुमाह—‘आत्मशोष्या’ कर्मणाः  
क्षयोपशमादुपशमात् क्षयात्त्वात्मनः शोभिस्तया, आयतयोगं—सुप्रशिक्षितयुक्तमनो-

“आदित्यादिर्विबुधभिस्तरः सारमस्यां त्रिलोक्या,  
मास्कन्दन्तं पद्मनुपमं यच्छिष्यं त्वाप्तुवाच।  
वीर्यं नाथाऽलक्ष्मणमवयच्छेदि तूर्णं विचस्त्वे,  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव,  
मनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिष्यपद—मोक्षपदको प्राप्त करने  
के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि  
—“ हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाले तीर्थकी आप  
शीघ्र स्थापना कर ” यह उनकी प्रार्थना आपके लिय निवेदनमात्र है,  
क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं । उन देवोंका यह केवल परम्परागत  
आचार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्र्यमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशाम, उपशाम और सर्वथा

“आदित्यादिर्विबुधभिस्तरः सारमस्यां त्रिलोक्या,  
मास्कन्दन्तं पद्मनुपमं यच्छिष्यं त्वाप्तुवाच।  
वीर्यं नाथाऽलक्ष्मणमवयच्छेदि तूर्णं विचस्त्वे,  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देवो मनु-  
पम अने त्रये लोकमें सारभूत जेवा शिष्यपद—मोक्षपद—ने प्राप्त करवा माटे  
उद्यत—तेषां वनेल आपनी पसे आपीने आ प्रकारे प्रार्थना करे छे के—‘ हे  
नाथ ! आ साररूपी महाभयने नष्ट करवावाञ्छ तीर्थनी आप शीघ्र स्थापना  
करे’ आ प्रकारनी तेजोनी प्राचना आपने माटे निवेदनमात्र छे केमके  
आप तो स्वयंबुद्ध छे, ते देवाने आ केवल परंपरागत आचार छे. (१)

भगवान् योवान् चारित्र्यमोहनीयरूप कर्मना क्षयोपशाम, उपशाम अने

वाकाययोगं विधाय, अभिनिर्वृतः=रूपायानलप्रशमेन शीतीभूतः, अत एव यावत्कथं=  
यावज्जीव समितः=समितिपञ्चकसमन्वित, तथा गुप्तित्रयसमन्वितश्चासीत् ॥१६॥

उपसंहरन्नाह—‘ एस विही ’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुवकंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेणं, भगवया एवं रीयंति—त्तिवेमि ॥१७॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तः, माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन, भगवता एवं रीयन्ते—इति व्रवीमि ॥१६॥

टीका—अस्य व्याख्या प्रथमोद्देशकेऽभिहिता तत एवाधिगन्तव्या । ‘ इति  
व्रवीमि ’ अस्य व्याख्याऽपि पूर्वं गता ॥ १७ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥९-४॥

क्षयसे आत्माकी शुद्धि कर चारित्र अंगीकार कर मन, वचन और कायकी  
प्रवृत्तिको सुप्रणिधानयुक्त करते हुए कषायरूपी अग्निके प्रशमसे अत्यंत  
शीतल हुए और जीवनपर्यन्त पांच समिति एव तीन गुप्तिसे युक्त  
शोभित हुए ॥१६॥

अब सूत्रकार उपसंहार करते हुए कहते हैं—‘ एस विही ’ इत्यादि ।

इस सूत्रकी व्याख्या प्रथम उद्देशमें की जा चुकी, है अतः वहींसे  
जान लेनी चाहिये ॥१७॥

॥ नववे अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥९-४॥

सर्वथा क्षयशी आत्मानि शुद्धि करी अस्त्रि अंगीकार करी, वीक्षा धारण करी  
मन, वचन अने कायानी प्रवृत्तिने सुप्रणिधानयुक्त करता करता कषायरूपी  
अग्निना प्रशमशी अत्यंत शीतल अन्था अने लवनपर्यन्त पाच समिति अने  
त्रय गुप्तिशी युक्त शोभित यथा (१६)

इवे सूत्रकार उपसंहार करता उहे छे—‘ एस विही ’ इत्यादि

आ सूत्रनी व्याख्या प्रथम उद्देशमा कडेवाळ गयेल छे, अतडे त्याशी समल  
लेवी जेथये (१७)

नवमा अध्ययनना चौथा उद्देश समाप्त ॥ ९-४ ॥



अध्ययनविषयोपसंहारः—

भविष्यमानस्य विमोर्षिहारः, श्रव्यात्तनं घोरपरीपरांभ ।  
 विस्मयामिग्रहस्मयसुक्तिं, शोच्ये नवाङ्गाप्ययने सुधर्मा ॥ १ ॥  
 मापशुक्लमयोदस्यां, गुरौ पुष्ये च वैक्रमे ।  
 व्रपक्षिक्रिसहस्रेऽप्ये, टीकेय पूर्णवामगात् ॥ २ ॥  
 ॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायामुपधानास्यं  
 नवममध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

अध्ययनके विषयोक्ता उपसंहारः—

इस अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारने इस नवमें अध्ययनके चार  
 उद्देश्योंमें वर्णित विषयका उपसंहार रूपसे कथन किया है, वे पतलाते  
 हैं कि श्रीसुधर्मास्वामीने प्रथम उद्देश्यमें भगवान् के विहार का, द्वितीय  
 उद्देश्यमें उनके शयन और आसनका, तृतीय उद्देश्यमें घोर परीपह और  
 उपसर्गोंके सहनेका और चतुर्थ उद्देश्यमें नाना प्रकारके कठिन अभिप्रहोसे  
 प्राप्त आहारका वर्णन किया है ॥१॥

विक्रम संवत् २००२ माघशुक्ल १३ बृहस्पतिवार पुष्य नक्षत्रमें  
 यह टीका पूर्ण हुई है ॥ २ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके उपधानमुत्त नामके नवमें अध्ययनकी आचार  
 चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ९ ॥

अध्ययनना विषयोक्ता उपसंहारः—

आ अन्तिम श्लोकद्वारा उक्ताकारे आ नवमा अध्ययनना शोषा उद्देश्यमा  
 पूर्णवपरां आवेदा विषयना उपसंहार रूपे कथन करेत्त छे. तेजो जत्तावे छे  
 के श्री सुधर्मास्वामीने पठेदा उद्देश्यमा अस्वयानना विकार जाभवत्, जीव्य उद्देश्यमा  
 ज्येष्ठना शयन अने आसन जाभवत्, त्रीव्य उद्देश्यमा पार परिपह अने उपसर्गो  
 सहनेवा जाभवत्, अने शोषा उद्देश्यमा यथा प्रकारना उक्तं अलिप्रदोषी भजेत्त  
 आहारतु वर्णन करेत्त छे. (१)

विक्रम संवत् २० २ मङ्गलमुक्ति १३ बृहस्पतिवार पुष्य नक्षत्रमां आ टीका  
 पूर्ण कर्त्त छे (२)

आ आचाराङ्गसूत्रना उपधानमुत्त नामना नवमा अध्ययननी आचार-  
 चिन्तामणि-टीकाको अनुवाद स पूर्ण ॥ ९ ॥

वाक्काययोगं विधाय, अभिनिवृत्तः=रूपायानलप्रशमेन शीतीभूतः, अत एव यावत्कथं=  
यावज्जीव समितः=समितिपञ्चकसमन्वितः, तथा गुप्तित्रयसमन्वितश्चासीत् ॥१६॥

उपसहरन्नाह—‘ एस विही ’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुयकंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेणं, भगवया एवं रीयंति—त्तिवेमि ॥१७॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तः, माहनेन मत्तिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन, भगवता एवं रीयन्ते—इति ब्रवीमि ॥१६॥

टीका—अस्य व्याख्या प्रथमोद्देशकेऽभिहिता तत एवाधिगन्तव्या । ‘ इति  
ब्रवीमि ’ अस्य व्याख्याऽपि पूर्वं गता ॥ १७ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥९-४॥

क्षयसे आत्माकी शुद्धि कर चारित्र अंगीकार कर मन, वचन और कायकी  
प्रवृत्तिको सुप्रणिधानयुक्त करते हुए कषायरूपी अग्निके प्रशमसे अत्यंत  
शीतल हुए और जीवनपर्यन्त पांच समिति एव तीन गुप्तिसे युक्त  
शोभित हुए ॥१६॥

अब सूत्रकार उपसंहार करते हुए कहते हैं—‘ एस विही ’ इत्यादि ।

इस सूत्रकी व्याख्या प्रथम उद्देशमें की जा चुकी, है अतः वहींसे  
जान लेनी चाहिये ॥१७॥

॥ नववे अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥९-४॥

सर्वथा क्षयधी आत्मान्नी शुद्धि करी चारित्र अंगीकार करी, वीक्षा धारणु करी  
मन, वचन अने कायानी प्रवृत्तिने सुप्रणिधानयुक्त करता करता कषायरूपी  
अग्निना प्रशमथी अत्यंत शीतल गन्था अने जीवनपर्यन्त पांच समिति अने  
त्रय गुप्तिथी युक्त शोभित तथा (१६)

इवे सूत्रकार उपसंहार करता कहे छे—‘ एस विही ’ इत्यादि ।

आ सूत्रनी व्याख्या प्रथम उद्देशमा कहेवाछ गयेल छे, ओतवे त्याथी समल  
लेवी ओधये (१७)

नवमा अध्ययनना चौथा उद्देश समाप्त ॥ ९-४ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

श्रीवर्षमानस्य विमोर्विहारं, क्षय्यासनं घोरपरीपहांध।  
 दिग्ब्रह्माभिन्नहस्त्वसृक्तिं, मोक्षे नवाङ्गाध्ययने सुपर्मा ॥ १ ॥  
 मापद्भुवत्प्रयोदश्यां, गुरौ पुष्ये च वैक्रमे।  
 द्रपधिकद्विसहस्रेऽन्वे, टीकेय पूर्णतामगात् ॥ २ ॥  
 ॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायामुपघानास्य  
 नवममध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

अध्ययनके विषयोका उपसंहारः—

इस अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारने इस नवममें अध्ययनके चार उद्देश्योंमें वर्णित विषयका उपसंहार रूपसे कथन किया है, ये बातें बताते हैं कि श्रीसुधामतीस्वामीने प्रथम उद्देश्यमें भगवान् के विहार का, द्वितीय उद्देश्यमें उनके वाचन और आसनका, तृतीय उद्देश्यमें घोर परीपह और उपसर्गोंके सहनेका और चतुर्थ उद्देश्यमें माना प्रकारके कठिन अभिप्रहोंसे प्राप्त आहारका वर्णन किया है ॥१॥

विक्रम संवत् २००२ माघशुक्ल १३ बृहस्पतिवार पुष्य मक्षममें यह टीका पूर्ण हुई है ॥ २ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके उपघानमुक्त नामके नवममें अध्ययनकी आचार चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ९ ॥

अध्ययनना विषयाना उपसंहारः—

अ अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारे अ नवमा अध्ययनना चोद्य उद्देशमा चतुर्विधमा आवेत्। विषयना उपसंहार इयं कथन करेत्। तेजो जलावे उ के श्री सुधामतीस्वामीके पहले उद्देशमा भगवान्का विहार भाष्यत, द्वितीय उद्देशमा योगना शसन अने आसन जालत, त्रीत्य उद्देशमा घोर परिपह अने उपसर्गोंके सहनेवा जालत, अने चोथा उद्देशमा भक्ष्य प्रकारना कथ्य अलिशद्वेषी भवेत्। आहारनु वर्णन करेत्। (१)

विक्रम संवत् २० २ मङ्गलसुति १३ शुक्रवार पुष्य नक्षत्रमा अ टीका पूर्ण वर्ध उ (२)

अ आचाराङ्गसूत्रना उपघानमुक्त नामना नवमा अध्ययननी आचार-चिन्तामणि-टीकाने अनुवाद संपूर्ण ॥ ९ ॥

## शास्त्रप्रशस्तिः—

तस्मै श्री-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।

दयालवे सदा भूयाद्, घासीलालकृता नतिः ॥१॥

उद्यद्दीरजरामरस्य महतः पूज्यस्य गच्छाश्रितः,

शान्तो दान्त उदारचित्तकमलः शब्दागमन्यायवित् ॥

नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छाधिपो भासुरः,

श्रीमानस्ति गुलाबचन्द्र-विवुधः षट्शानुषट्शश्रितः ॥ २ ॥

शान्तो दान्त उदञ्चितामलयशश्वन्द्रो महान् पण्डितः,

सेवासद्विनयैर्वशीकृतजगद्विद्यागुणैर्मण्डितः ॥

धर्माचारनिदेशपूतधरणिर्भग्यैकचिन्तामणिः,—

लोकानन्दकरो विभाति धनजी-स्वामी सदा सन्मुनिः ॥३॥

गणेऽस्मिन् प्रमुख्यः सुधीवृन्दवन्यो,—

भ्रमन् देशदेशान्तरं पावयन् यः ॥

मविस्थापितस्त्रीयधर्मप्रबोधो,—

मुनिर्नानचन्द्रः कवीन्द्रः सुबोधः ॥ ४ ॥

अत्रत्यः प्रियधर्मको दृढतरं धर्मं दधानस्तथा,

श्रीसङ्घोऽतितरामुदारचरितो धन्यादिवोधे क्षमः ॥

पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो जीवानुकम्पापरो,—

जीवाऽजीवमुखं च तत्त्वमभितो विद्वान् सदा राजते ॥५॥

चारित्र-श्रुतयुगमकेन मृषमा जैानुशास्तेर्यथा,

सङ्घाभ्यां जिनशासनस्य च तथा सा लिम्ब्वडीपत्तने ॥

एव स्थानकवासिसङ्घ उभयोऽन्योऽन्यानुरागोन्ततो,—

जानन्नास्रव-संवरादिकमय रत्नत्रये तत्परः ॥ ६ ॥

बालोऽपि धर्मी स्थविरोऽपि धर्मी,

समागतः प्राघुणकोऽपि धर्मी ॥

प्रायोऽत्र सङ्घे सकलोऽपि धर्मी,

धन्या जनन्यो जनयन्ति तौश्च ॥ ७ ॥

श्रीमान् यादवजी-स्वामी, सेवाभावी विनीतिमान् ।

मुनिप्रवचरो धीमान्, साम्भरं राजचेतराम् ॥ ८ ॥

मिनागमः प्रियमञ्जुमापी,  
विहाय दोषान् गुणतो विलासी ॥

उपाक्रियाज्ञाननिस्तकन्त्रः,  
सदा मुनिश्चरति रूपचन्द्र ॥९॥

धीमान् केशवसालज्जीमुनिपरः स्वामी सतां सेवका,  
शीलं विश्वनशीकरं च विनये संपारयन् यस्ततः ॥

परमादेशरतो दयाद्रुतमनाधारिभरस्यारो,-  
धीरं वीरपरं सदा परिचरन् ज्ञान्तोऽधुना राजते ॥१०॥

शान्तिमान् मूलजीस्वामी, मद्रभाषसमन्वितः,  
शान्तो दयापपाराश्रितः, स्थानवासी विरामते ॥११॥

मुनि श्रीनागजीस्वामी, व्याख्यानामृततोपकः ।  
शान्तो यदुस्वभाष्य, दयालुः क्षोभते मुनि ॥ १२ ॥

नद्यत्तचन्द्रमुनिर्षिनयान्वितो,-  
मृदुसचिष उदारमतिः सदा ॥

सकलसाधुनिपेसगतस्वरो,-  
चिद्धबोधकलाज्ञेन उद्यतः ॥१३॥

विनीतः मुञ्चान्तो दयाराभितान्तः,  
सदा सत्ये विद्यमानोऽतिशान्तः ॥

तपःसंयमाचारनिष्ठाविद्यालः,  
सुधीहृन्दसेवी मुनिम्पुन्निलालः ॥१४॥

मृदुस्वभाषो विनयी गुण्यः  
सदा सदाचारसत्समग्रः ॥

निरन्तरध्यानसन्निभनेत्रं  
मुञ्चामतं पीषिमनो महेन्द्र ॥१५॥ इति ॥

॥ इति श्री-विश्वविस्मात-जगद्गुरु-मसिद्धशास्त्र-पञ्चदशमापाकस्तिलकित-  
क्यापासापक-प्रस्थितगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वारिमानमर्दक-शाह-  
छप्रपति-कान्दापुरराजमर्दक-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पद्भूषित-  
कोन्दापुरराजगुरु-बाणप्रसन्नपारि-शैनाचार्य-जैनपरमविद्वान्-  
पूज्य-श्रीधामीलाल-प्रतिपिचितापाम् भाषाराहस्य-  
स्याऽऽचारचिन्तामपिटीकायां प्रथमः भूतम्बन्ध  
सम्पूर्णः ॥ १ ॥

## शास्त्रप्रशस्तिः—

तस्मै श्री-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।

दयालवे सदा भूयाद्, घासीलालकृता नतिः ॥१॥

उद्यद्दीरजरामरस्य महतः पूज्यस्य गच्छाश्रितः,

शान्तो दान्त उदारचित्तकमल. शब्दागमन्यायवित् ॥

नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छाधिपो भासुरः,

श्रीमानस्ति गुलाबचन्द्र-विबुधः पट्टानुपट्टाश्रितः ॥ २ ॥

शान्तो दान्त उदञ्चितामलयशश्वन्द्रो महान् पण्डितः,

सेवासद्विनयैर्वशीकृतजगद्विधाशुणैर्मण्डितः ॥

धर्माचारनिदेशपूतधरणिर्भन्यैकचिन्तामणिः,—

लोकानन्दकरो विभाति धनजी-स्वामी सदा सन्मुनिः ॥३॥

गणेऽस्मिन् प्रमुख्यः सुधीवृन्दबन्धो,—

भ्रमन् देशदेशान्तरं पावयन् यः ॥

भविस्थापितस्वीयधर्मप्रबोधो,—

मुनिर्नानचन्द्रः कवीन्द्रः सुबोधः ॥ ४ ॥

अत्रत्यः प्रियधर्मको दृढतरं धर्मं दधानस्तथा,

श्रीसहोऽतितरामुदारचरितो वन्धादिवोधे क्षमः ॥

पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो जीवानुकम्पापरो,—

जीवाऽजीवमुखं च तत्त्वममितो विद्वान् सदा राजते ॥५॥

चारित्र-श्रुतयुग्मकेन सुपमा जैनानुशास्तेर्यथा,

सङ्घाभ्या जिनशासनस्य च तथा सा लिम्बडीपत्तने ॥

एवं स्थानकवासिसङ्घ उभयोऽन्योऽन्यानुरागोन्नतो,—

जानन्नास्रव-संधरादिकमय रत्नत्रये तत्परः ॥ ६ ॥

वालोजपि धर्मी स्थविरोऽपि धर्मी,

समागतः प्राद्युणकोऽपि धर्मी ॥

प्रायोऽत्र सङ्घे सकलोऽपि धर्मी,

धन्या जनन्यो जनयन्ति तांश्च ॥ ७ ॥

श्रीमान् घादबजी-स्वामी, सेवाभावी विनीतिमान् ।

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનઠવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

અરેલીયા કુવા રોડ-મીન ઢોલ પાસે

રોજકોટ



સમિતિની સફળતા તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી  
તા-૨-૧૧-૫૭ સુધીમાં ઘાનવીર મહાસાથે  
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવહી.



( રૂ. ૨૫૦ થી વધારી રકમો આ ગાદીમાં સમાવ કરેલી નથી )







શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનઠવાસી

જેન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીયા મુના રોડ-શ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

\*

સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી  
તા. ૨-૧૧-૫૭ સુધીનાં દાનથીર મહાસભા  
તરફથી મળેલી રકમોની નામચલી.

\*

( રૂ. ૧૫૦ થી વધારી રકમો આ યાદીનાં સામેલ કરેલી નથી. )

\*

## આદ્ય સુરુખીશ્રી-૪

	(ઓછામાં ઓછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)	
૧૦૦૦૦	શેઠ શાતિલાલ મગજદાસભાઈ, પ્રમુખ સાહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચ દ કાલીદાસભાઈ ( હા શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચ દભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ )	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચ દભાઈ અન્નરામર હા હરગોવી દભાઈ જેચ દ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

## સુરુખીશ્રીઓ-૨૧

	(ઓછામાં ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)	
૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા કોઠારી કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૯૧૧-૧૧	મહેતા જીલાખચ દ પાનાચ દ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર
૩૧૦૧	સ ઘવી પીતામ્બરદાસ જીલાખચ દ	બામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખમીરસી હજી બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચ દ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચ દભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચ દ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઈ
૧૬૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સ ઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચ દ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલાદાસ હરખચ દ	મુબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રગીલાદાસ હરખચ દ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	બામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચ દ્રસિહજી મહેતા ( રેદેવે મેનેજર સાહેબ )	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	બામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચ દ નેણુશીભાઈ	( કરાચીવાળા ) મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચ દ	ખલાલ
૧૦૦૨	દોશી કપુરચ દ અમરશી હ દલપતરામ કપુરચ દ દોશી બામજોધપુર	

(બોક્ષમાં બોધી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમ હા. શેઠ સુબ્રહ્મણ્ય વેલ્લીભાઈ	૧૬૫૭ શહેર
૭૫૦	મોડી કેશવલાલ હરિચંદ્ર	સાબરમતી
૭૦૦	શેઠ નરોત્તમદાસ બોધકભાઈ	બેશવસ્ત્રનગર
૫૦૧	શેઠ શાંતલાલ કમરભાઈ	લીમી
૫૦૦	કામદાર વારાચંદ પેપટલાલ મિરાલવાળા	સુબકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમ	ધાનમઠ
૫૦૦	શેઠ તારાચંદ્રલ પુખસજી	ઝોરગાવાડ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમ	ઝોરગાવાડ
	૧૫૦ શેઠ શેખમલલ ભવરાજી	
	૧૨૫ ,, જાનસજી લાલચંદ	
	૧૨૫ પુકકચંદ્ર રૂપચંદ	
	૧૦૦ , દમડુમલલ ચાંદમલલ	
	૫૦૦	
૫૦	મહેવા મોહનભાઈ કપુરચંદ	સુબકોટ
૫૦૦	શેઠ ગોવંદીલ પેપટભાઈ	સુબકોટ
૫૦	મહેતા મુળચંદ શમચંદ હા મનનાલાલભાઈ તથા દુલ્લાલભાઈ બ્રાહ્મી	
૫૦૧	શેઠ હરજીચંદ પરસોત્તમ હા ભાઈ ઇન્દુકુમાર	ધારવાડ
૫૧	શેઠ ખીમલ જાવાભાઈ હા તેમના પુત્ર કુલચંદભાઈ નાગરદાસભાઈ બુલાચંદભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	સુબકોટ
૫૧	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ કમલી હા. શેઠ મુળલભાઈ મણીલાલ સુબકોટ	
૫૧	શેઠ ઇન્દુલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	જમદાવાડ
૫૦૧	શેઠ બદુલાલ ઇમનલાલ	જમદાવાડ
૫૦૧	સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હ. શેઠ વાલચંદ સાકરચંદ	સુબકોટ
૫૦૦	જી. સી. બેન મણીગૌરી મનનાલાલ તે મહેવા સોમચંદ તુલસીરાસના ખર્મખતિ	૧૬૬૫મ
૫૦૧	સ્વ. પીતામી નદાલના સ્મરણાર્થે હ. વેણીચંદ ચાંતિલાલ (બંધુઆવળા)	મેઘનગર

## આદ્ય સુરુખીશ્રી-૪

	(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)	
૧૦૦૦૦	શેઠ શાતિલાલ મગળદાસભાઈ, પ્રમુખ માહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ (હા શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ)	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચંદભાઈ અન્નરામર હા હરગોવીંદભાઈ જેચંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

## સુરુખીશ્રીઓ-૨૧

	(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)	
૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા કોઠારી કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૯૧૧-૧૧	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણિકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર
૩૧૦૧	સઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	બામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસી હજી.બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઈ
૧૬૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણિકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણિકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી જીવીલદાસ હરખચંદ	મુબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	બામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા ( રેલવે એજેન્ટ સાહેબ )	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોષ્ટલાલ માવજીભાઈ	બામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણુશીભાઈ	(કરંચીવાળા) મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હ. દલપતરામ કપુરચંદ દોશી બામજોધપુર	

२५१	शाकं लक्ष्मीय इ हपुरय इ	'नेतलसर व' केशन
२५१	शाकं अतुरदास धरेशीबाध	बभनभर
२५१	अदेरीया कन्तिदास तनकास (शेथन भास्तर)	बाकानेर
२५१	शाकं केशवदास केव इ	वेसका
२५१	शाकं भीमय इ शौलाभ्यय इ वसनल	वेशवज
२५१	स्व. जापदा वन्ध्याज तुलसीदासनां धर्मपति कमणवाध	
	तरक्षी का भावेकव इबाध तथा हपुरय इबाध	वेडल
२५१	शेक छजनदास नानलबाध	मुळ
२५१	वेलाजी त्रीकमल बाधाबाध	मुनारदेव
२५१	शेक श्रीरक्षदास हरमय इ	अमदावाद
२५१	शेक छेटादास वजतय इ	अमदावाद
२५१	जोसलिमा करिदास दासय इ	अमदावाद
२५१	शेक प्रेमय इ भावेकव इ	अमदावाद
२५१	शेक भावेकदास अजानदास	अबात
२५१	श्री स्वानकासी केन स व का पटेल कन्तीदास अजादास अबात	अबात
२५१	शेक रमणीकास जे. कपासी	केन्दापुर
२५१	अडेन सुसीअडेन (लक्ष्मीजेन)	
	का भडेता करीदास पीताम्बरदास	घलनपुर
२५	शेक वाडीदास नेमज इ वकील	वीरमजाम
२५१	शाकं वीठकास गोही भास्तर	वीरमजाम
२५१	शाकं नाजरदास भावेकव इ	वीरमजाम
२५१	शाकं भणीदास लवणदास	वीरमजाम
२५१	शाकं नाजरदास बापलबाध	अमदावेर
२५१	श्री स्वानकासी केन स व	अमदावेर
२५१	शेक मनुबाध मुजव इ (फिलिपीपर बाडेन)	सज्जोड
२५१	शेक सांतिदास प्रेमय इ	
	[तिमना धर्मपतीना वरसीतप प्रस'वे सुशाहीना]	सज्जोड
२५०	श्री स्वानकासी केन स व का बापादास भावे	वेडल
२५१	शेक मीतीदास ल वकुलदास ल कीज इ	वेडपुर
२५	शेक जाडरमल मुसलमल जे क' इ	पावनीसी
२५	शेक जोपादास भीमबाध	काटीना भाजीवा
२५१	वेलाजी न्यासय इ काडीमय इ (वकील)	सज्जोड

૭૫૧	શાહ રગણભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી જેતપુરવાળા	મુબઇ
૫૨૭	ખાટવીયા ગીરધર પ્રભાણુદ હસ્તે અમીચદ ગીરધરભાઈ—	ખાખીબળીયા
૫૧૧	મોરખીવાળા સઘવી દેવચદ નેણુશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ, મણીભાઈ તરફથી હા મુળચંદ દેવચદ કરાચીવાળા	મલાડ
૫૦૧	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી શુગલીયા	રાજાવાસ
૫૦૧	સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હસ્તે ખાટવીયા અમીચદ ગીરધરભાઈ	ખાખીબળીયા
૫૦૨	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ

### પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો—૨૭૭

(ઝોછામા ઝોછી રકમ રૂ. ૨૫૦ આપનાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ધ્રાક્ષ
૪૦૦	ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટિંગ વર્કસ	રાજકોટ
૩૫૩	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	બમજોધપુર
૩૦૧	શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેકચદ	ભાણુવડ
૨૫૧	સઘવી માણેકચદ માધવજી	ભાણુવડ
૨૫૧	શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચદ (લાલપુરવાળા)	ભાણુવડ
૨૫૧	શેઠ રામજી ઝીણાભાઈ	ભાણુવડ
૨૫૧	પચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ	વડીઆ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	વાકાનેર
૨૫૧	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચદ	રાજકોટ
૨૫૦	ખાણુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મગનલાલ છગનલાલ વિશ્રામ (ધ્રાક્ષવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ. ખજેન સંતોક કચરા હા ઝોતમચદભાઈ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ ખુશાલચદભાઈ કાનજીભાઈ હા, શેઠ પ્રતાપભાઈ	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	ભામનગર

२५१	शाकं लक्ष्मीवत् कपुरवत्	देवस्यै लक्ष्मण
२५१	शाकं सत्पुत्रस्य शक्रश्रीभाष	व्यमनस्यै
२५१	भद्रेशीया कान्तिबाल व्रणकलाव (श्लेशन भास्वर)	वाङ्मनेर
२५१	शाकं केशवलाव केवद	वेरावण
२५१	शाकं श्रीमन्वत् शौलाभ्यवत् वसन्तल	वेशवण
२५१	स्य भाषया वन्द्यस्तत्र तुलसीदासनां धर्मपत्नि कर्मजलाध	
	तरुधी दा भाष्येकस्यैवाध तथा कपुरस्यैवाध	वेरावण
२५१	शेकं छत्रनलाव नानलभाध	मुष्क
२५१	वेलापुत्री श्रीकर्मल वाधाभाध	कुम्भारदेव
२५१	शेकं गीरधरलाव करमन्वत्	अमदावाव
२५१	शेकं छिद्रावाव वणतप्यत्	अमदावाव
२५१	शेकं सविद्या करिवाव लावजत्	अमदावाव
२५१	शेकं प्रेमन्वत् भाष्येकवत्	अमदावाव
२५१	शेकं भाष्येकलाव अजयानदास	अलाव
२५१	श्री स्वानकवासी नैन सद्य क् पटेल कान्तीलाव अणालाव अणाल	
२५१	शेकं रमणीकलाव जे, कपासी	केशवपुर
२५१	अहोन सुश्रीअहोन (लक्ष्मीनेन)	
	दा महेता करीलाव पीताम्बरदास	प्राणपुर
२५०	शेकं वादीलाव नेमन्वत् वकील	वीरमजाम
२५१	शाकं वीरकदास भाषी भास्वर	वीरमजाम
२५१	शाकं नानरदास भाष्येकवत्	वीरमजाम
२५१	शाकं मणीलाव लक्ष्मणलाव	वीरमजाम
२५१	शाकं जगन्नाथस्य वापलभाध	अमलनेर
२५१	श्री स्वानकवासी नैन सद्य	अमलनेर
२५१	शेकं मनुभाध सुजणवत् (हिल्लीनर आहोन)	राजकोट
२५१	शेकं श्यतिवाव प्रेमन्वत्	
	[तिमनां धर्मपत्नीना वरसीतप प्रसवे पुयालीना]	राजकोट
२५	श्री स्वानकवासी नैन सद्य दा अणालाव भास्वर	देवाण्डिया
२५१	शेकं भाषीलाव लक्ष्मणलाव लक्ष्मणलाव कीर्णवत्	उडीपुर
२५	शेकं आदरमलल सुखमलल जे कर्ष	बादनीरी
२५	शेकं जेवालाव श्रीकाभाध	दादीना भा...
२५१	वेलापुत्री न्यालवत् कर्ममन्वत् (वकील)	स

૨૫૧	શેઠ પ્રજારામ વીઠલજી	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મેઘરાજજી દેવીચ દજી મહેતા	મદ્રાસ
૨૫૧	પટેલ ગોવિંદલાલ ભગવાનજી	કોલકતી
૩૦૨	પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘાણી	કોલકતી
૨૫૧	શેઠ હુકમીચ દ દીપચ દ ગોંડલવાળા [ સ્ટેશન માસ્ટર ભક્તિનગર ]	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ વસનજી નારજીજી	જામખ ભાળીયા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	જામખ ભાળીયા
૨૫૧	શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ	ખીચન (પાલી)
૨૫૧	શેઠ પદમસી બીમજી ફેફરીયા	ભાણવડ
૨૫૧	અ સો બહેન બચીબહેન ગાણુભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શેઠ નેમચ દ સવજીભાઈ મોદી	લાલપુર
૨૫૦	શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા પ્રમુખ શેઠ ત્રેમચ દ ભગવાનલાલ ન હુરખાર	
૨૫૧	શેઠ અમૃતલાલ હુરજીભાઈ જસાપરવાળા હા. નરલેરામભાઈ જેતપુર	
૨૫૧	દોશી છોટાલાલ વનેચ દ	જેતપુર
૨૫૧	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્ની બાઈ અબકબહેન તરફથી હા. બાઈ શાંતિલાલ	જેતલસર
૨૮૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	જામજોધપુર
૨૫૧	સ્વ બહેન વિજ્યાગૌરી રાયચ દ હા. શેઠ રાયચ દ પનાચ દ ધોરાજી	
૨૫૦	ગાધી પોપટલાલ જ્યેદભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા પ્રમુખ રાયચ દ વૃજલાલ અજમેરા	વીછીયા
૨૫૧	શેઠ મુળચ દ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસી ગલાલભાઈ	લાલપુર
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ ( હાટીના માળીયાવાળા )	બુનાગઢ
૨૫૧	સ્વ વસાણી હરગોવિંદકાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ જીબલબેન તરફથી	બોટાદ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	સુડા (આલાવાડ)
૨૫૧	શેઠ મગનલાલજી આગરેચા	ઉકેપુર
૨૫૧	શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ	સુરેન્દ્રનગર



२५१	स्थानकवासी केन सप्त	मिटाव
२५१	एव पूज्य आतुभी अमरतण्डिका स्मरणात् का. टाकटर आदिम नशितमहास मुनीश्वर कापटीया	राणपुर
२५१	एव तुशनीया लोकेस्व इ भावेकस्व इ मुद्रामहावाणना स्मरणात् तेमना भर्मापत्नी लुपतीनाम तरक्षी का. न्य तिहाल लोकेस्व इ अनास	
२५१	मी रवा. केन मिटा सप्त	प्रान्ता
२५१	शाक इतिपुत्रव सवर्षिहाल	
	का. शैक सवर्षिहाल त्रणकहाल	बडवाणु टाकेर
२५१	शैक छेदुनाम कस्त्रोवि इहास कटोरीवाणा	मुण्ड
२५१	स. त. नाघालाह डी भेदा	मिन्नाहा
२५१	अवती आणुहाल लवलनाम	अमण नापीया
२५१	नावीशी भस्मीहाल अत्रकुण्डा स्मरणात् तेमना भर्मापत्नी नाम भस्मीनेन तरक्षी	
	का. लक्ष रथीकहाल, अनीलनांत तथा विनाइस्य	असनसोत
२५१	भावसाय जोडीहास अवेगनाम	धमुडा
२५१	शाक पोपुहाल धनलनाम	धमुडा
२५१	एव सुहालअ इनामना स्मरणात् का. वेरा पोपुहाल नानअ इ	धमुडा
२५१	शैक अत्रकुण्ड नागलनाम वसाणी	धमुडा
२५१	एव मिहानहाल नरक्षीहासना स्मरणात् तेमना भर्मापत्नी सुस्त्रनेन मीरारल तरक्षी	अस्वाण
२५१	मी स्थानकवासी केन सप्त	पाणुसवा (ली'अडी)
२५१	सवाणी मुण्डाकेर कस्त्रोपननामना स्मरणात् का. तेमना पुत्रो अतिहालनाम तथा सम्वीकहालनाम कापटीया	
२५१	शाक भजनहाल जोकण्डास	
	का. स्तीहाल भजनहाल कामास	बडवाणु टाकेर
२५१	सवनी मुण्डा इ विअरनाम	
	का. लपनहाल अरुहास	बडवाणु टाकेर

- २५१ ञडेन सुयभाणा नौतमलाल नसाष्ठी  
[वरसतीपना पारष्णी भुशालीमा] रान्कोट
- २५१ शाह रायचंद ठाकरशीना स्मरष्ठी  
डा बाध शातीलाल रायचंद लभतर
- २५१ भावसार हरणवनदास प्रभुदासना स्मरष्ठी  
डा. बाध त्रीलोवनदास हरणवनदास लभतर
- २५१ शाह तलकशी डीरायदना स्मरष्ठी  
डा बाध अमृतलाल तलकशी लभतर
- २५१ शाह युनीलाल भाष्केचंद लभतर
- २५१ शेठ वृजलाल सुभलाल वढवाष्ठी शहेर
- २५१ शेठ हातिलाल नागरदास वढवाष्ठी शहेर
- २५१ योरा चत्रभुज भगनलाल वढवाष्ठी शहेर
- २५१ सधवी शीवलाल डीभलभाध वढवाष्ठी शहेर
- २५१ शाह देवशीभाध देवकरष्ठी वढवाष्ठी शहेर
- २५१ शाह नदवल ओघडभाध सदादवाणाना स्मरष्ठी  
डा बाध शातिलाल नदवल लभतर
- २५१ भावसार युनीलाल प्रेमचंदभाध सुरेन्द्रनगर
- २५१ श्री वर्धमान श्वेताम्बर तथा श्रावक सध  
डा शेठ केसरीभलल अनोपचंदल गुगणीया मलाड (मुम्भ)
- २५१ दोशी ठाकरशी गुलाबचंदना स्मरष्ठी तेमना  
धर्मपत्नी सभरतणेन वृजलाल तरक्षी  
डा नयतीलाल ठाकरशी लभतर
- ३०० शाह अमूलभाध वई गयुभाध नागरदासना धर्मपत्नि  
अ. सौ. जेन लीलालतीन वरसतीपना पारष्णी  
भुशालीमा डा बाध हातीलाल नागरदास वीरभगाम
- २५१ कामदार केशवलाल डीभतराम प्रोईसरसाडेण (गोडलवाणा) वडोदरा
- २५१ शेठ दुंगरशी हसरान वीसरीया मुम्भ
- २५१ शेठ धनराज सुणचंद मुधा लोनावाला (पुना)
- २५१ भडेता नानालाल छगनलालना धर्मपत्नी  
स्व चचणणेन तथा पुरीणेनना स्मरष्ठी  
डा बाध मनहरलाल नानालाल मु. वष्ठी (वीरभगाम)

૨૫૧	શાહ રતનશી મોણીશીની કું	મુંબઈ
૨૫૧	ભાવસાર શેઝીલાલ જમનાદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ શીવજી માણેકભાઈ	વૈરાજ (કમ્પ)
૨૫૧	શાહ હુણાજી બુલાબચંદ	સજેલી (પચમહાલ)
૨૫૧	શ્રી સ્થાનૈન સવ હા. શાહ પ્રેમચંદ	હલીચંદ સજેલી (પચમહાલ)
૨૫૧	શાહ દૂવરજી ગુલાબચંદ	લીમટી (પચમહાલ)
૨૫૧	શાહ પાનાબંદ સમલભાઈ હા. ત્રલકલાલ રતીલાલ	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઈ મુળાજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ. બેન વદ્રહાતાના સ્મરણાઈ હા. અમુલખ મુળાજીભાઈ	હારીજ
૨૫૧	સ્વ. પદમશી સુસ્વદના સ્મરણાઈ હા. શીવલાલ પદમશી મેસાણા	
૨૫૧	શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી	ગેલન કમ્પ
૨૫૧	શ્રીમતી જી. સૌ. બેન વદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાકરના ખર્મપતિ હા. શેક રવુજીવલાલજી હીજડ	ઉડેપુર
૨૫૧	સ્વ. શેક વીરવદલાઈ જેશીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાઈ હા. કેશવલાલ વીરવદ શેક	મુંબઈ
૨૫૧	જાગેઠ ધાસીરામ બુલાબચંદ	લીમટી (પચમહાલ)
૩૫૧	મહેતા પ્રમુદાસ મુળાજીભાઈ	વૈરાજ
૩૦૧	શ્રીમતી હીરબેન નચુભાઈના વરસીત્વપ નીમીત્તે હા. નચુભાઈ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. મણીચાર પરસોત્તમ મુદરજીના સ્મરણાઈ હા. સાકરચંદ પરસોત્તમ	વીરમગામ
૨૫૧	શેક મણીલાલ શીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીલોચનદાસ બજવાનજી પાનેલીવાળા	અમલોદપુર
૨૫૧	શાહ નરવરલાલ ચંદુલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	શાહ ત્રીલોચનદાસ હાનલાલ	વૌપરા
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીલોચનદાસ	અમદાવાદ
૩ ૧	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત મુનીલાલ ગોપાણી હા. ગોપાણી મુનીલાલ માણેકચંદ	રાવપુર

- ૨૫૧ શ્રી શાહપુર, દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય  
હા વહીવટ કરનાર શેઠ ઈશ્વરદાસ પુરુષોત્તમદાસ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન સઘ  
હા. શેઠ ચંદુલાલ અમૃતલાલ અમદાવાદ
- ૨૭૭ શ્રી સ્થાનકવાસી છકોટી જૈન સઘ  
હા મહેતા યુનીલાલ વેલણ માડવી (કચ્છ)
- ૨૫૧ વડીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ વડોદરા
- ૨૫૧ શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ  
અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાહ ભાઈલાલ ઉજમશી અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ કેશવલાલ મુળાભાઈના ધર્મપત્ની, સ્વ, અમૃતબાઈના  
સ્મરણાર્થે હા ભાઈલાલ કેશવલાલ યાનગઢવાળા સુરેન્દ્રનગર
- ૨૫૧ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણુ સઘની લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી સાણુદ
- ૨૫૧ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા ભીખાલાલ નેમચંદ સાણુદ
- ૨૫૧ સઘની નારણુદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે  
હા જ્યતીલાલ નારણુદાસ સાણુદ
- ૨૫૧ શા પ્રવિણુચંદ્ર નરસીદાસ સાણુદવાળા બોડેલી (ગુજરાત)
- ૨૫૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનભાઈ હા મહેતા  
અમૃતલાલ જેઠાલાલ સીવીલઈન્જનીયર સાહેબ લાખેરી (રાજસ્થાન)
- ૨૫૧ શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ  
હા ડો. કુ સરસ્વતી ખેડેન શેઠ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા જૈન સઘ  
હા શાહ કાતીલાલ જીવનલાલ અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ શેઠ કાળુલાલભાઈ લોદાના સ્મરણાર્થે  
હા શેઠ દોલતસિંહભાઈ લોદા ઉદેપુર
- ૨૫૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમના ધર્મપત્ની કુવરબાઈ હરખંચંદ તરફથી  
( માનકુવા સ્થા જૈન સઘને માટે ) માનકુવા (કચ્છ)



५१	स्व. शाह वेलशीबाई साकरचंदना स्मरणाथे डा श्रीमंतलाल वेलशी कत्राणवाणा	वीरभगाम
५१	शाह पोयालाल पीतांबरदास	अमहावाह
५१	पारभ मल्लीलाल टोकरशी लातीवाणा तरुंधी मोटीजेतना स्मरणाथे	वीरभगाम
५१	शाह नारणदास नानलुभाईना सुपत्रं वाडीबाईना धर्मपत्नी अ सौ नारणीजेतना धर्मपत्नी निमित्ते डा. श्यामीबाई	वीरभगाम
५१	शाह पोपटलाल मोहनलाल	अमहावाह
५०	शेठ प्रेमचंद साकरचंद	अमहावाह
५१	लाल पुरणचंदलाल जैन (सेन्ट्रल जेन कवाणा)	रीडि
५१	स्व. छणीलदास गोकुलदासना स्मरणाथे तेमना धर्मपत्नि कमलाजेन तरुंधी डा. मणुवाकुमारी	वीरभगाम
५१	शाह रतीलाल वाडीलाल	अमहावाह
५१	शेठ लालबाई मणुदास	अमहावाह
५१	अ सौ. कमलाजेन ते कामदार गोरधनदास मंगललालना धर्मपत्नि (वठवाणवाणा)	रंजुन
५१	वोरा डोसाबाई लालचंद स्था जैन सद्य डा. वोरा नानचंद शिवलाल	वठवाण शहरे
५१	वोरा धनलुभाई लालचंद स्था न सद्य डा. वोरा पाताचंद गोअरदास	वठवाण शहरे
५१	स्व. अमृतलाल वर्धमानना स्मरणाथे डा. कडानलुभाई अमृतलाल देशाई	अमहावाह
५१	श्री वीरभगाम स्था जैन आर्विका सद्य	वीरभगाम
५१	स्व. त्रिबोवनदास देवचंद तथा स्व. अ सौ. अ यणजेतना स्मरणाथे डा. डोकटरी छिंभतलाल सुअलाल वीरभगाम	
५१	शाह सुलचंद कानलुभाई तरुंधी डा. शाह नागरदास ज्योदासबाई	वीरभगाम
५१	शेठ मोहनलाल पीतांबरदास डा. बाई देशवलाल तथा मंगलुअलालभाई	वीरभगाम

૨૫૧	ચાહ હીરાચ દણ વનેચ દણ કટારીયા	હુલથી (ધારવાક)
૨૦૧	સ્વ. જટાર કર ડેવણ દોરીના સ્મરણાથે કા. દોરી સ્વજિતદાસ (બાબુભાઈ) જટાર કર ટ કારાવાળા મુળઈ	
૨૪૧	સ્વ. શેઠ વજ્રરસી ત્રીશોવનદાસ બોડાના સ્મરણાથે કા. જજલવન વજ્રાસ્થી સ્વરસઈવાળા	મલાક
૨૫૧	સ્વ. પિતામ્હી કનણ મુળણના સ્મરણાથે તથા માતૃમ્હી દિવાળીબાઈના સોબ ઉપવાસના પારણ પ્રસંગે કા. દોરી જજલીલાલ કનણ કાળાવકવાળા	મલાક
૨૫૧	સ્વ. જજભેરા ત્રીશોવનદાસ મજપાલ બીછીજીવાળાના સ્મરણાથે કા. જજભેરા હરજોવીદાસ ત્રીશોવનદાસ	મુળઈ
૨૫૦	શેઠ ખુશાલભાઈ જે જાસ્લાઈ	મુળઈ
૨૪૧	ચાહ પ્રેમણ માલગી જ મર	મલાક
૨૦૧	સ્વ. પિતામ્હી સમસી વેદણના સ્મરણાથે કા. ચાહ હમણ સમસી	મુળઈ
૨૦૧	ચાહ વેદણ લેલી જભાઈ ઠાસસવાળા (લેમના કમ પત્ની સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાથે)	મલાક
૨૪૧	સ્વ. પિતામ્હી પતુભાઈ પ્રેનાબાઈના સ્મરણાથે કા. ચાહ કાનણભાઈ પતુભાઈ કચ્છ મુદાળાવાળા	મુળઈ
૨૫૧	શેઠ ત્રબકલાલ કસ્તુરચંદ (લીમડીવાળા તરફથી અજામરણ ચાચબ દારને ભેટ)	માટુ જા
૩ ૧	સ્વ. પિતામ્હી ભીમચી કૈરચી તથા માતૃમ્હી પાતાબાઈના સ્મરણાથે કા. ચાહ ઉમરચી ભીમચી કચ્છજરીવાળા	મલાક
૨૪૧	મિસઈ સખાણી દાનપીઠ કપની કા. શેઠ માણેકલાલ વાવીલાલ	મુળઈ
૨૫૧	ચાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શેઠ મુનિલાલ નરસોરામ વેશરોવાળા	મુળઈ
૨૫૧	સ્વ. માતૃમ્હી છવીબાઈના સ્મરણાથે કા. ચાહ ચામણ સીવણ કચ્છમુદાળાવાળા	ગોરગાંવ
૨૫૧	ચાહ વરબ નભાઈ સીવણ	મલાક
૨૫૧	સ્વ. માતૃમ્હી કાકભાઈના સ્મરણાથે કા. દેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ	બનસરાબાવાણી

૨૫૧	સ્વ. શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ વેલશી કાન્નજવાળા	વીરમગામ અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતાબરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરથી લાતીવાળા તરફથી મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપત્ર વાડીભાઈના ધર્મપત્ની અ સૌ નારંગીબેનના વરસીતપ નિમિત્તે હા. શાતીભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૦	શેઠ ગ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૩૫૧	લાલ પુરણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલબે કવાળા)	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા મણુલાકુમારી	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ લાલભાઈ મગજદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગજલાલના ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંજુન
૨૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા ઠહાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા જૈન શ્રાવિકા સંઘ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ ત્રિભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ અ. સૌ ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા ડોકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મુલચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ગ્યોઘડભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતાબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	વીરમગામ



२५१	शा.कं. हीराचण्डल वनेचण्डल कटारीण्य	हुणबी (धारवाह)
२०१	स्व. जटाश कर देवल कोशीना स्मरव्याधे	
	क. दोशी रघुसिद्धास (गामुण्य) जटाश कर ट. काशवाजा सु. जर्ष	
२५१	स्व. शै.कं. वसुधरबी त्रिखिपनदास जे.दा.ना. स्मरव्याधे	
	क. जजलवन वसुधरबी सपसर्षवाण	महा.क.
२५१	स्व. पिताम्ही अनल मुणलन्य स्मरव्याधे तथा मातुभी	
	दिवानीबाधनी जे.ज. वसवासना यारव्या प्रय.वे	
	क. दोशी जपतीकात कानल कागावडवाजा	महा.क.
२५१	स्व. जजभेस त्रिखिपनदास प्र.प.हा. वी. जी.वा.वा.जना	
	स्मरव्याधे क. जजभेस करणेची कडास त्रिखिपनदास	मु.जर्ष
२५०	शे.कं. पु.शा.क.मार्क जे. ज.र.मार्क	मु.जर्ष
२५१	शा.कं. प्रेमल भा.दशी ज.ज.र.	महा.क.
२०१	स्व. पिताम्ही रामबी वे.ल.ना. स्मरव्याधे	
	क. शा.कं. रामल रामशी	मु.जर्ष
३०१	शा.कं. वे.ल. के.सी. ज.भा.धं. ज.स.स.वा.जा	
	(वे.म.ना. ध.र.प.नि. स्वा. नानगाधनी स्मरव्याधे)	महा.क.
२५१	स्व. पिताम्ही पतुजाधं मिनाबाधनी स्मरव्याधे	
	क. शा.कं. कानलभाधं पतुजाधं क.म.च. ल.म.जा.वा.जा	मु.जर्ष
२५१	शे.कं. त्र.प.क.सा.व. कस्तुरबा.क. (वी.म.डी.वा.जा. वर.र.भी)	
	जज.र.म.र.ल. शा.स.क. धार.ने. वे.क.)	मा.दु.जा.
३१	स्व. पिताम्ही बी.म.शी. के.र.भी. तथा मातुभी पा.दा.वा.धनी	
	स्मरव्याधे क. शा.कं. व.म.र.शी. बी.म.शी. क.म.च.र.नी.वा.जा.	महा.क.
२५१	मि.स.स. ज.वा.वी. द.म.च.पे.क. क.प.नी	
	क. शे.कं. भा.वे.क.सा.व. वा.पी.का.व.	मु.जर्ष
२५१	शा.कं. न.वा.व.क.क. कर.प.ज.क.	सुरे.त्र.न.म.र.
२५१	शे.कं. सु.नि.का.व. न.र.के.र.म. वे.क.रो.प.ण्य	मु.जर्ष
२५१	स्व. मातुभी ल.पी.बा.धनी स्मरव्याधे	
	क. शा.कं. शा.म.ल. शी.व.ल. क.म.च.ल. वा.जा.वा.जा.	वे.र.वा.व.
२५१	शा.कं. व.र.क. म.ज.धं. शी.व.ल.	महा.क.
२५१	स्व. मातुभी वा.क.व.धनी स्मरव्याधे	
	क. शे.कं. म.ज.का.व. वा.पी.का.व.	ज.म.स.रा.भा.वा.वी.

૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકચંદ,	અમદાવાદ
૩૦૧	શેઠ જ્વાનમલલ નેમીચંદલ હા	ગાધી રીખચંદલ રાણાવાસ
૨૫૧	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારસોડ
૨૫૧	શાહ ખીમલ મુળલ પુળ	મલાડ
૨૫૧	સાવળા શામલ હીરલ	
	સદાનદી જન મુનિશ્રી છોટાલાલલ મહારાજના ઉપદેશથી	
	સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘના જ્ઞાન ભંડારને લેટ. સુવર્ધ (કમ્ચ)	
૨૫૧	ઘેલાણી વલભલ નરભેરામ હા	નરશીદાસ વલભલ ઘેલાણી મુબઈ
૨૫૧	અ સૌ. સમતાબેન શાતિલાલ	
	C/o શાતિલાલ ઉજમશી શાહ	મલાડ
૨૫૧	તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	મુબઈ
૨૫૧	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા માર્ગી જૈન પુસ્તકાલય	
	હા. મહેતા મણીલાલ ભાઈચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે	
	હ. પૂ માતુશ્રી સુરજબેનનીવતી તનસુખલાલ કેશવલાલ	મલાડ
૨૫૧	દહીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ	ઘાટકોપર
૨૫૧	અ સૌ. લાચૂળેન	
	હા શાહ રવલ શામલ	કાદેવલી
૨૫૧	શાહ શેરમલલ દેવીચંદલ જસવ તગદવાળા	
	હ. પૂનમચંદલ શેરમલલ મોલ્યા	મનોર (થાણા)
૨૫૧	શેઠ સરદારમલલ દેવીચંદલ કાવેડીયા	મુબઈ
૨૫૧	દોશી ચત્રબુજ સુદરલ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી જુગલકીશોર ચત્રબુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રબુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	મહેતા રતિલાલ ભાઈચંદ	મુબઈ
૨૫૦	સ્વ. શાહ ત્રિભોવનદાસ માનસીંગ દોઢીવાળાના	
	સ્મરણાર્થે હ. શાહ હરખચંદ ત્રિભોવનદાસ	મુબઈ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ હામરશી ધાગધાવાળા,	
	હ વાઢીલાલ જેઠાલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	મુબઈ

२५१	मोदी नाशाखल महादेवदास	अमदावाद
२५१	* शाह मोहनदास त्रीकभदास	अमदावाद
२५१	स्व. शेठ प्रतापमल्ल साभलाना स्मरकुर्वे डा. भागुदास हीशदास साभल	उदेंपुर
२५१	श्री छोटोटी स्था. जैन सभ डा. शाह योग्यदास पीताम्बरदास	अमदावाद
२५१	दोशी वीरचंद सुरचंद डा. दोशी नानचंद उज्जयिनी	वडवाळु शહેર
२५१	स्व. वेरा मण्डीदास भजनदास डा. वेरा जयकुंज भजनदास	वडवाळु शહેર
२५१	शाह पोपटदास चं सत्तलाना स्मरकुर्वे डा. शेठ भागुदास पोपटदास	अमदावाद
२५१	शाह कुंवरलाल चं सत्तल	मुळर्ष
२५१	देशार्थ अमृतदास वर्धमान व्यापारसवाजा डा. बाईदास अमृतदास देशार्थ	अमदावाद
२५१	देशार्थ अमृतदास वर्धमान व्यापारसवाजा डा. इलीय च अमृतदास देशार्थ	मुळर्ष
२५१	शाह साकरचंद मोहनदास	अमदावाद
२५१	शाह नवनीतदास अमृतजराव	अमदावाद
२५१	शाह मण्डीदास आशासभ	अमदावाद
२५१	शेठ श्रीजुआर्ष साकरचंद	अमदावाद
२५१	ज. सौ य. पामिन जेसलीया डा. जेसलीया करीदास जालचंद	अमदावाद
२५१	श्री वटामल स्था. जैन सभ डा. श्री लखानार्थ चं तुआर्ष	वटामल (पिजडा)
२५१	डोडरी जेठरकुमार वेष्टीदास	जेठपुर
२५१	शाह परलजनादास उमिदचंद	अमदावाद
२५०	श्री स्थानकवासी जैन सभ	साजरभती
२५१	शेठ अमरचंद उमनदास जानरेया	नामदारा

૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૩૦૧	શેઠ જ્વાનમલજી નેમીચંદજી હા. ગાધી રીખચંદજી	રાણાવાસ
૨૫૧	શેઠ શુભાખચંદ બુદરબાઈ	ખારરોડ
૨૫૧	શાહ ખીમજી મુળજી પુબ	મલાડ
૨૫૧	સાવળા શામજી હીરજી	
	સદાનદી જન મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજના ઉપદેશથી	
	સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘના જ્ઞાન બહારને લેટ સુવર્ધ (કચ્છ)	
૨૫૧	ઘેલાણી વલભજી નરખેરામ હા નરશીલાસ વલભજી ઘેલાણી મુખર્ધ	
૨૫૧	અ સૌ સમતાળેન શાંતિલાલ	
	C/o શાંતિલાલ ઉજમશી શાહ	મલાડ
૨૫૧	તેજણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	મુખર્ધ
૨૫૧	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	મુખર્ધ
૨૫૧	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા માગી જૈન પુસ્તકાલય	
	હા મહેતા મણીલાલ ભાઈચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે	
	હ પૂ માતુશ્રી સુરજબેનગીવતી તનસુખલાલ કેશવલાલ	મલાડ
૨૫૧	હડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ	ઘાટકોપર
૨૫૧	અ સૌ લાચૂળેન	
	હા શાહ સ્વજી શામજી	કાદેવલી
૨૫૧	શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગઢવાળા	
	હ પૂનમચંદજી શેરમલજી યોલ્યા	મનોર (ધાણા)
૨૫૧	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા	મુખર્ધ
૨૫૧	દોશી ચત્રબુજ સુદરજી	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી જુગલકીશોર ચત્રબુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રબુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	મહેતા રતિલાલ ભાઈચંદ	મુખર્ધ
૨૫૦	સ્વ. શાહ ત્રિલોચનદાસ માનસીંગ દોઢીવાળાના	
	સ્મરણાર્થે હા શાહ હરખચંદ ત્રિલોચનદાસ	મુખર્ધ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ હમરશી ધાગધ્રાવાળા,	
	હ વાઢીલાલ જેઠાલાલ	મુખર્ધ
૨૫૧	શાહ ચંદલાલ કેશવલાલ	મુખર્ધ

૨૫૧	શાહ પ્રેમણ દીશણ નાલા	સુભર્ષ
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી યામગણ ઠક્ષ્યાણુણ ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી ઢા. મજલાલ યામગણ	સુભર્ષ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ( સઠસભાર્જિયા રૂા ૧૫૧ મળીને )	ખજાવાલ
૨૫૨	શાહ યાંતિલાલ મેહનલાલ ધાગધાવાળા	ખમદાવાલ
૩૦૧	પીતાશ્રી ભગવાનણ દીસચ દ જસાણીના સ્મરણાર્થે ઢા. લક્ષ્મીચંદ્રભાર્ષ તથા કેશવલાલ ભગવાનણ	સુભર્ષ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી હસરા / હીરાના સ્મરણાર્થે જ. દેવશી હસરાચ	કચ્છ બિડલાવાળા-મલાલ
૨૫૧	જ સૌ બેન સ્તનબાર્ષ નારેચા હ. શાહ પુલાણ ન શાલાલણ	ખમદાવાલ
૨૫૧	શાહ હરીલાલ જોડલાલ જાડલાવાળા	ખમદાવાલ
૨૫૧	શેઠ પીપટલાલ સબવણ સમીટીવાળા હ નાનસી જ પ્રેમચંદ સમીટીવાળા	ભગસરાભાયાણી
૨૫૧	શેઠ ગાંધી કેશવણ ( જ્ઞાનભ યર મા )	કચ્છબેલાલ

\*

## કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

૪ જ્ઞાપે મુરબીશીઓ	૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૧ મુરબીશીઓ	૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૨૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૧૦ કુલ મેમ્બરો

( બીજા વર્ગને સહ તર બ મ કરનાર્મા આવેલ છે )

શબ્દોદ વા ૨-૧૧-૫૭

୨୫୨	ଦେବାଣୀ ପ୍ରଭୁଘାସ ତ୍ରିକ୍ରମ	ସୁଂଘର୍ଷ
୩୦୧	स्व. स धनी मनसुभलाल मोडनलालना स्मरञ्जुर्थे डा. धीरञ्जलाल मनसुभलाल	पालेज
୩୦୦	भडेता गुलाभचंद्र गभीरमल	बोलवड (धाञ्जु)
୨୫୧	शाह भीमचंद्र मुजुलुभाई	बलसाड
୨୫୧	शाह छरलुवनभाई केशवल	सुଂଘର୍ଷ
୨୫୧	श्री स्थानकवासी जन स ध डा. छोटुभाई अक्षेयचंद्र शाह	सुरत
୨୫୧	शाह मोडनलाल पोपटलाल पानेलीवाणा	उमरगामरेड
୨୫୧	शाह रचलुभाई तथा भाईलालनी कु.	कटिवली
୨୫୧	शाह रञ्जनीकान्त कस्तुरचंद्र	अमडावाड
୨୫୧	स धनी लुवलुलाल छगनलाल (स्था. जैन)	अमडावाड
୩୦୧	स्व मातुश्री भाञ्जुकभाईना स्मरञ्जुर्थे डा. शाह बलभद्रास नानलु पौरभ इरवाणा	सुଂଘର୍ଷ
୨୫୧	शेठ देवराजलु लतमललु पुनमीआ साहडीवाणा	सुଂଘର୍ଷ
୩୦୧	शाह युनिलाल नारलुल	आटकोट
୨୫୧	ओक सङ्ग्रहस्थ डा. शेठ सुहरलाल भाञ्जुकचंद्र	सुଂଘର୍ଷ
୨୫୧	अ सौ भडेन पानभाई डा. शेठ पदमसी नरशीभाई	मलाड
୨୫୧	श्री सरसपुर इरीआपुरी आठकोटी स्था. जैन उपाश्रय डा. भावसार लोगीलाल छगनलाल	अमडावाड
୨୫୧	भावसार लोगीलाल छगनलाल	अमडावाड
୩୦୧	स्व पिनाश्री नागशीभाई सेजपालना स्मरञ्जुर्थे डा. शाह रामलु नागशी गुढाणावाणा	मलाड
୨୫୧	शाह रामलुभाई करशनलु थानगढवाणा	सुଂଘର୍ଷ
୨୫୧	शाह ठाकरशी करशनलु	थानगढ
୨୫୧	शाह जेठालाल त्रीशोवनहास	थानगढ
୨୫୧	शाह धारशी पाथवीर	थानगढ
୨୫୧	शाह नगीनहास कल्याणुलु वेरावणवाणा	सुଂଘର୍ଷ
୨୫୧	शेठ शीवलाल गुलाभचंद्र	सुଂଘର୍ଷ

૨૫૧	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગણા	મુબઈ
૩૦૧	સ્વ. પિતામહી શામળજી કચ્વાણી જોડિયાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. મજલાલ શામળજી	મુબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ( સકલભાર્તિયા ડ્રા. ૧૫૧ મળીને )	ખલાલ
૨૫૨	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ખાત્રાવાળા	અમદાવાદ
૩૦૧	પીતામહી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા. લક્ષ્મીબહેનબાઈ તથા કેશવલાલ ભગવાનજી	મુબઈ
૨૫૧	સ્વ. પિતામહી હ સરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હ. દેવશી હ સરાજ	કચ્છ બિંદાલાવાળા-મલાદ
૨૫૧	અ. સૌ બેન રતનબાઈ નાદેચા હ. શાહ ધુલાલ બ પાલાલજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ હરીલાલ જેઠાલાલ જાડલાવાળા	અમદાવાદ
૨૫૧	ચેક પોપટલાલ સમજલ તાઈડીવાળા હ. માનસીબ પ્રેમચંદ, તાઈડીવાળા	બજવરાજાચાણી
૨૫૧	ચેક ગાજલ કેશવજી ( જ્ઞાનભાઈર માટે )	કચ્છબેરાબ

\*

### કુલ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

૪ આણંદ મુસ્લમીકોમી	૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૧ મુસ્લમીકોમી	૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૨૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૧૦ કુલ મેમ્બરો

( બીજા વર્ગને સહ તર બધા કચ્છમાં આવેલ છે )

રાજકોટ તા. ૨-૧૧-૫૭

સે કડો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા  
કેટલાક તાબ અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્રીસ્થાનેથી ( જૈનજ્યોતિ ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમાં ગિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂજ્ય જ ખત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સુત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર મસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને ચોવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખન્નવીજી મહારાજે ખત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ. ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક જ શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જ્વાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચગડાગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિંદી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર મસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર મસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી ખત્રીસે ખત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર મસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા ૨૫૧૭ બરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી લેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને દો કાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રલાવના કરવાનો ધર્મ લાભ પણ મળે છે.



આ સાથે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલ મહાશયના મુશિબ પ મુનિશ્રી કન્હેવા  
લાલ મહારાજ મહાક મુકામે વ્યવસ્થાસ જિલ્લે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના  
મેમ્બરે કરવા માટે અધ્યયન પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને  
અત્યાર મુખીમાં મુખર્ષ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ  
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુખર્ષના લગભગ ૩ • જેટલા મેમ્બરે ધાસ તે  
મહિલા સોસાય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હલારે રૂપિયા પોતાના ઘર બજાયા તેમજ  
શાસ્ત્રોના કાર્યોમાં તેમજ વ્યવહારિક કાર્યોમાં વાપરી રહ્યા છે તે અધ્યા  
શાસ્ત્રોદ્ધાર ટેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તે ખર્ચની સેવા કરી ગણાશે.  
અને બહુલાભ ઉત્તમ આજમસાહિત્યની એક લાભોરી બની જશે, જેનું વાંચન  
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



સે કડો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા  
કેટલાક તાબ અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્રીસ્થાનેથી ( જૈનજયોતિ ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂજ્ય જ ખત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સુત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખત્રણીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ. ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જ્વાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચગઠાગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિંદી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેના હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કગવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ લીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા ૨૫૧૭ બરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને દો કાજ બનને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ લાભ પણ મળે છે.

## શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ઢુઠ પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ જોકની જોક સસ્થા છે કે જેણે જતવાર મુખીના તેર સૂત્રો છપાવાં બહાર પાટી લીધા છે ત્રાત સૂત્રાં હયાસ છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સસ્થાએ મહાન પ્રગતિ સાધી છે તેનો ઢુઠ પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન બાઈબલોનોએ આ સસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હલુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ધગા વાજે વલ્લો જૈન સ્થા. કેા ફરન્ટ જેમ જોના બલુગા કુઠનારી સસ્થાની કોઈ કિંમત નધા, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જીનની જનિવાઈ ફરજ છે

જને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહા રાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર વલ્લો મહાન ઉપકાર છે વરોવૃધ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ હલુ મુખી બીજા કોઈએ હમુ નથી અને બીજુ કોઈ કરા શક્યે કે નહિ તે વલુ શકા બમુ છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન ઉપકારનો કિંશિત બહલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જનની કદર કરવામાં પાઉા હકે તેમ નથી એવી અમા અપશા સખીએ છીએ

“જૈનસિદ્ધાંત પત્ર જ્યોતોમ્બર ૧૯૫૭



શતાવધાની મુનિશ્રી જ્ય તિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા. ૫-૯-૫૭ ના અકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સાફ લખુ છું

‘શાસ્ત્રોત્તુ કામ એક ગઢન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ ત પૂર્ણ શાસ્ત્રોત્તુ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓતુ જ્ઞાન હોય તેજ આગમોદ્ધારકતુ કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનતુ આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમા શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિશાજે તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારતુ કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમા જરાપણ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે

લી

શતાવધાની શ્રી જ્ય ત મુનિ-અમદાવાદ

## શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી બૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ જોકની જોક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીના તેર સૂત્રો છપાવા બહાર પાડી દીધા છે ત્રાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ રૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ લાધી છે તેનો ટુક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા બૈન શાસ્ત્રોદ્ધારને આ સંસ્થાને સધાયકિત મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી પ્રગ વાજે ધણે જોન સ્થા. કેા હરન્ત જેમ જોના બહુમાં ટુકનારી સંસ્થાની કોઈ કિંમત નથી ત્યારે નક્કર કામ કરનારાં આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને ઘરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની ઘરેક સ્થાનકવાસી બૈનની અનિવાર્ય જરૂર છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી વાસીલાલજી મહા-શાસ્ત્રો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણેા મહાન ઉપકાર છે વધેાવધ વેાવા છતા તેજોશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજી કોઈ કરી શક્યો કે નહિ તે પણ સકા બહુ છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સલાહ કરીને વાગવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ રાજની કદર કરવામા પાછો જકે તેમ નથી જોવી અમેા આશા સખીએ છીએ.

“બૈનસિદ્ધાંત પત્ર” જ્યોતોગ્ગર ૧૯૫૭



શતાવધાની મુનિશ્રી જ્ય તિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા. ૫-૯-૫૭ ના અકમાં છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ધિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સારૂ લખુ છું

‘શાસ્ત્રોતુ કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ સ પૂર્ણ શાસ્ત્રોતુ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓતુ જ્ઞાન હોય તેજ આગમોદ્ધારકતુ કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા ધિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનતુ આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમા શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થાય છે? કરવામા આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિશાસ્ત્રે તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારતુ કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે મમાજને ખાત્રી આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાં સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમા જરાપણ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે

લી

શતાવધાની શ્રી જ્ય ત મુનિ-અમદાવાદ

## શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ જોડની જોડ સસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવા બહાર પાડી દીધા છે ત્યાં સૂત્રો છપાવ છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેના ટુક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધારને આ સસ્થાને સમાયક્તિ મદદ કરી તંત્ર કાર્યને ઢલુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી પ્રગ વાગે થયેા જૈન સ્થા. કેા ફરન્ત જેમ જોના બલુજા કુકનારી સસ્થાની કેઈ કિંમત નથી, ત્યાં નક્કર કામ કરનાર આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

જને આ સવ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ધામીલાલજી મહા શબ્દને સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર થયેા મહાન ઉપકાર છે વધોવૃદ્ધિ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ ઢલુ મુધી બીજા કેઈએ કરુ નથી અને બીજુ કેઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકા થયુ છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંમ્મિત બદલેા સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાગવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછેા ખડે તેમ નથી જોવી અગિ અગ્રા શામીએ છીએ

જૈનસિદ્ધાંત પત્ર" જોડદોઢમ્બર ૧૯૫૭

## શાસ્ત્રોની માહિતી

### છાપાયેલાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- (૧) શ્રી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર  
 (૨) ,, દશવૈકલિક ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)  
 (૩) ,, વિપાક ,,  
 (૪) ,, આચારાગ ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)  
 (૫) ,, અન્તકૃત દશાગ ,,  
 (૬) ,, આવશ્યક ,,  
 (૭) ,, અનુતરોપપાતિક ,,  
 (૮) ,, દશાશ્રુત સ્કન્ધ  
 (૯) થી (૧૩) શ્રી નિર્યાવલિકા,, (એકથી પાચ ભાગ)

ઉપાસક દશાગ અને દશવૈકલિક ભાગ પહેલો, પહેલી આવૃત્તિ ખલાસ થતાં બીજી આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામા આવેલ છે.

### તુરતમાં પ્રસિદ્ધ થનારાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- ૧ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૩ બે  
 (૧૪) ૨ ઉવવાઈ (ઔપપાતિક) સૂત્ર  
 (૧૫) ૩ કલ્પ સૂત્ર  
 ૪ આવશ્યક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

### ત્રેસમાં છાપવા આપેલાં બીજા સૂત્રોનાં નામ

- (૧૬) ૧ નદી સૂત્ર  
 ૨ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ)  
 ૩ વિપાક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)  
 ૪ અન્તકૃત સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

### બીજી આવૃત્તિ છાપવા આપવાનાં સૂત્રોનાં નામ

- ૧ દશાશ્રુત સ્કન્ધ (બીજી આવૃત્તિ)  
 ૨ અનુતરોપપાતિક (બીજી આવૃત્તિ)

### લખેલાં તૈયાર સૂત્રોનાં નામ

- (૧૭) ૧ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (સ સ્કૃત-હિન્દી-શુબરાતી તૈયાર)  
 (૧૮) ૨ રાતા ,, (સ સ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સ શોધન તથા શુબરાતી બાકી)



(૧૬) ૩ સમવાર્ધાંત્ર સૂત્ર	(સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સ શોધન તથા ગુજરાતી બાકી)
(૨૦) ૪ પ્રથમ બ્યાકરણ ,	(સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સ શોધન બાકી ગુજરાતી બાકી)
(૨૧) ૫ અનુબોજદ્વાર	(સંસ્કૃત તૈયાર હિન્દી અનુવાદ બાકી ગુજરાતી બાકી)
(૨૨) ૬ શયપસેષી "	(સંસ્કૃત તૈયાર હિન્દી ગુજરાતી બાકી)
(૨૩) ૭ સ્થાનાંશ "	(સંસ્કૃત તથા હિન્દી ગુજરાતી બાકી)

## ચાલુ ક્રમ

- (૨૪) ૧ જન્મબુદ્ધિપ પ્રસૂતિ સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે  
 (૨૫) ૨ સુમત્રકામ સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.

## અપવાના બાકી શાસ્ત્રોનાં નામ

(૨૬) ૧ ભગવતી સૂત્ર	(૩ ) ૫ ચંદ્ર પ્રસૂતિ સૂત્ર
(૨૭) ૨ જીવાભિજમ "	(૩૧) ૬ અવધાર "
(૨૮) ૩ પ્રસાપ્ત્યા "	(૩૨) ૭ બહુલકર્ય "
(૨૯) ૪ સુર્ષપ્રસૂતિ "	(૩૩) ૮ નીશીથ "

ત્રીસ સૂત્રો તથા બેક કલ્પસૂત્ર મળી સૂત્રોની સંખ્યા ત્રીસ થયેલ છે. જે અલ્પવા માટે ઉપર ૧ થી ૩૩ ના આંક આપવામાં આવેલ છે.

નોંધ—અત્યારે મેમ્બર યનારને તૈયાર થાઓ હાલમાં જે છોકરાં છે તે તુસ્ત મોકલવામાં આવે છે અને પાછળથી બીજા તૈયાર થયે સ્વાના કલ્પમાં આવશે.

## શાસ્ત્રોની માહિતી

### છપાચેલાં શાસ્ત્રોના નામ

- (૧) શ્રી ઉપાનિષદ દશાગ સૂત્ર  
 (૨) ,, દશવૈકલિલક ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)  
 (૩) ,, વિપાક ,,  
 (૪) ,, આચારાગ ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)  
 (૫) ,, અન્તકૃત દશાગ ,,  
 (૬) ,, આવશ્યક ,,  
 (૭) ,, અનુત્તરોપપાતિક ,,  
 (૮) ,, દરાશુલ સ્કન્ધ  
 (૯) ધી(૧૩) શ્રી નિર્યાવલિકા,, (એકધી પાચ ભાગ)

ઉપાનિષદ દશાગ અને દશવૈકલિલક ભાગ પહેલો, પહેલાં આવૃત્તિ ખલામ થતા બીજી આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામા આવેલ છે

### તુરતમાં પ્રસિદ્ધ થનારાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- ૧ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૩ ને  
 (૧૪) ૨ ઉવવાઈ (ઔપપાતિક) સૂત્ર  
 (૧૫) ૩ કલ્પ સૂત્ર  
 ૪ આવશ્યક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

### પ્રેસમાં છાપવા આપેલાં બીજા સૂત્રોનાં નામ

- (૧૬) ૧ નદી સૂત્ર  
 ૨ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ)  
 ૩ વિપાક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)  
 ૪ અન્તકૃત સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)  
 બીજી આવૃત્તિ છાપવા આપવાનાં સૂત્રોનાં નામ  
 ૧ દશાશ્રુત સ્કન્ધ (બીજી આવૃત્તિ)  
 ૨ અનુત્તરોપપાતિક (બીજી આવૃત્તિ)

### લખેલાં તૈયાર સૂત્રોનાં નામ

- (૧૭) ૧ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (સંસ્કૃત-હિન્દી-ગુજરાતી તૈયાર)  
 (૧૮) ૨ જ્ઞાતા ,, (સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સંશોધન તથા ગુજરાતી બાકી)

## શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસક દશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત ણે સૂત્રો લૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એપણિય જેવા શ્રમણ પ્રત્યે ખળવાં શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધમ્નદ્વાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરંતુ ‘કલ્પ શુ અને અકલ્પ શુ’ એતુ જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘમડી રહ્યા છે અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાય કુમેવા કરી રહ્યા છે તેમાંથી ખત્રી લાલતુ કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને યજ્ઞ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કળ્વામાં સહ-યક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી મુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવસ્ય ગૃહસ્થની કરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોધ્ધારતુ અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧૫ બરી મેમ્બર થનારને રૂા ૪૦૦-૫૦૦ ની લગલગ કીમતના ખત્રીએ આગમો ક્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧૫ બરી મેમ્બર થઈ ખત્રીએ આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ ખત્રીએ શાસ્ત્રોના લગલગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાભ પોતાની નિર્જ્જરા માટે પુન્યાનુખધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત ખને સૂત્રોની કીમત સમિતિ કઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીમતે, મફત અથવા પૂરી કીમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ—ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે, તત્રી—

“ રત્નભયોત ” યત્ર

તા ૧-૧૦-૫૭